।। श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ।।

1291

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

कथा-सुधा-सागर

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

आचार्य कृपाशंकर रामायणी

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

भारतीय वाङ्मयमें श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण आदिकाव्यके रूपमें प्रतिष्ठित है। इस महामहनीय आदिकाव्यने भारतीय वाङ्मयको ही नहीं अपितु सारे संसारके वाङ्मयको प्रभावित किया है। भारतके विविध रामायण एवं अधिकांश काव्य, नाटक, चम्पू, आख्यान, आख्यायिका आदिका उपजीव्य यह रामायण ही है।

महर्षि वाल्मीकिजीने अपौरुषेय वेदों, उपनिषदों तथा देवर्षि नारदजीके उपदेशोंसे श्रीरामकी कथावस्तु जानकर एवं समाधिजनित ऋतम्भराप्रज्ञासे रामायणके सम्पूर्ण चरित्रोंका प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर रामायणकी रचना की। वे रामके समकालीन महर्षि थे, अतः इसमें वर्णित कथावस्तु सत्य घटनाके अन्तर्गत है। इसीलिये रामायणकी अद्वितीय लोकप्रियता निरन्तर अक्षुण्ण ही नहीं वरन् शताब्दियोंतक बढ़ती रही; क्योंकि मानव-हृदयको आकर्षित करनेकी अद्वितीय शक्ति जो रामकथामें विद्यमान है वह अन्यत्र दुर्लभ है। भारतीय मनीषियोंकी दृष्टिमें राम और कृष्णकी कथाएँ केवल वाग्विलास या कण्ठशोषण मात्र नहीं हैं, वे अनुपम शान्ति, भक्ति तथा मुक्ति देनेवाली हैं। इसी कारण उनकी लोकप्रियता है।

रामकथाकी इस व्यापकता एवं लोकप्रियताका श्रेय श्रीवाल्मीकीय रामायणको ही है। विश्व साहित्यके इतिहासमें शायद ही किसी ऐसे कविका प्रादुर्भाव हुआ है जिसने भारतके आदिकविके समान इतने व्यापक रूपसे परवर्ती साहित्यको प्रभावित किया हो।

कहा जाता है कि रामचरित्र शतकोटि (एक अरब) श्लोकोंमें विस्तृत है, अर्थात् अपार है और उसके एक-एक अक्षरमें महापातकोंके विनाशकी क्षमता है—

‘चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥’

रामचरित्रके प्रत्येक अक्षरमें महापातकोंके विनष्ट करनेकी शक्ति निहित है। *‘राम अनन्त अनन्त गुन अनन्त कथा विस्तार’* श्रीरामजीके अनन्त गुण हैं और उनकी कथाका विस्तार भी अनन्त है। संसारमें रामसे बढ़कर सत्यमार्गपर आरूढ़ कोई दूसरा है ही नहीं—‘नहि रामात् परो लोके विद्यते सत्पथे स्थितः’।

रामके इस शतकोटिप्रविस्तर चरितका सार चौबीस सहस्र श्लोकोंमें महर्षि वाल्मीकिने अपने रामायणमें निबद्ध किया है। इसके पाठ एवं स्वाध्यायका अत्यधिक महत्त्व अपने शास्त्रोंमें बताया गया है।

गीताप्रेसद्वारा पूर्वमें सम्पूर्ण वाल्मीकीयरामायण सानुवाद तथा मूलरूपसे प्रकाशित हुआ है। परंतु सर्वसाधारणको वाल्मीकीयरामायणकी कथासे अल्पकालमें परिचित होनेके लिये ‘श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण कथा-सुधा-सागर’ पुस्तकका प्रकाशन किया जा रहा है, जिसमें वाल्मीकीय-रामायणका कथासार पूर्णरूपसे प्रस्तुत है। अवधनिवासी राम-कथाके मर्मज्ञ विद्वान् पं० श्रीकृपाशंकरजी रामायणीने कुछ दिनों पूर्व नैमिषारण्यमें वाल्मीकीय रामायणकी नौ दिनोंमें कथा सम्पन्न की थी। इस सम्पूर्ण कथाको लिपिबद्ध कर लिया गया तथा पूज्य महाराजजीने कृपापूर्वक अपने परिश्रमसे संशोधन, परिवर्धन करके वाल्मीकीय रामायणकी पूरी कथाका सारांश इस पुस्तकमें निबद्ध किया है, जिसे यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। इस पुस्तककी मुख्य विशेषता है कि मूल श्लोकोंके साथ कथाकी प्रस्तुति की गयी है, जिससे पाठकोंको रामकथाके आस्वादनके साथ-साथ महर्षि वाल्मीकिकी पवित्र वाणीका भी सान्निध्य प्राप्त होगा। आशा है पाठकगण इससे लाभान्वित होंगे।

—राधेश्याम खेमका

॥ श्रीसीतारमणो विजयते ॥

वन्दना

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे । यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥
या देवी स्तूयते नित्यं ब्रह्मेन्द्रसुरकिन्नरैः । सा ममैवाऽस्तु जिह्वाग्रे पद्महस्ता सरस्वती ॥

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माऽच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् । पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥
नमोऽस्तु रामाय स लक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै । नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः ॥
गुर्वर्थे व्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषाऽऽरोपितभ्रूविजृम्भत्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः ॥

यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि
गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम्।
तं नाकपालवसुपाल किरीटजुष्ट-
पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥

ध्यायेदाजानुबाहुं धृतशरधनुषं बद्धपद्मासनस्थं
पीतं वासो वसानं नवकमलदलस्पर्धिनेत्रं प्रसन्नम्।
वामाङ्कारूढसीतामुखकमलमिलल्लोचनं नीरदाभं
नानालङ्कारदीप्तं दधतमुरुजटामण्डलं रामचन्द्रम् ॥

माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालुर्नान्यं जाने नैव जाने न जाने ॥

चित्रकूटालयं राममिन्दिरानन्दमन्दिरम् । वन्दे च परमानन्दं भक्तानामभयप्रदम् ॥
दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा । पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥
आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम् । अभिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान् स नः प्रभुः ॥
जानकीजीवनं वन्दे माण्डवीप्राणवल्लभम् । उर्मिलारमणं वन्दे कीर्तिकान्तन्नमाम्यहम् ॥
रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम् । सुग्रीवं वायुसूनुञ्च प्रणमामि पुनः पुनः ॥

सीतामुदारचरितां विधिसाम्बविष्णुवन्द्यां त्रिलोकजननीं शतकल्पवल्लीम्।
हैमैरनेकमणिरञ्जितकोटिभागैर्भूषाचयैरनुदिनं सहितां नमामि ॥
अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिवरदूतं वातजातन्नमामि ॥

आञ्जनेयमतिपाटलाननं काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम् । पारिजाततरुमूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम् ॥
यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् । बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥
कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम् । आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥
कवीन्द्रं नौमि वाल्मीकिं यस्य रामायणीकथाम् । चन्द्रिकामिव चिन्वन्ति चकोरा इव साधवः ॥
वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः । शृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम् ॥
वाल्मीकिगिरिसम्भूता रामसागरगामिनी । पुनाति भुवनं पुण्या रामायणमहानदी ॥
श्लोकसारसमाकीर्णं सर्गकल्लोलसंकुलम् । काण्डग्राहमहामीनं वन्दे रामायणार्णवम् ॥
वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च । पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥

॥ श्रीसीतारमणो विजयते ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके नवाह्नपाठके विश्राम-स्थल—

प्रथमे तु अयोध्यायाः षट्सर्गान्ते शुभा स्थितिः।
तस्यैवाशीतिसर्गान्ते द्वितीये दिवसे स्थितिः॥
तथा विंशतिसर्गान्ते चारण्यस्य तृतीयके।
दिने चतुर्थे षट्चत्वारिंशत्सर्गे कथास्थितिः॥
किष्किन्धाख्यस्य काण्डस्य पाठविद्भिरुदाहृता।
सुसप्तचत्वारिंशत्के सर्गान्ते सुन्दरे स्थितिम्॥
पञ्चमे दिवसे कुर्यादथ षष्ठे तथोच्यते।
युद्धकाण्डस्य पञ्चाशत्सर्गान्ते विमला स्थितिः॥
एकोनशतसंख्याके सर्गान्ते सप्तमे दिने।
युद्धस्यैव तु काण्डस्य विश्रामः सम्प्रकीर्तितः॥
तथा चोत्तरकाण्डस्य षट्त्रिंशत्सर्गपूरणे।
अष्टमे दिवसे कृत्वा स्थितिं च नवमे दिने॥
शेषं समाप्य युद्धस्य चान्त्यं सर्गं पुनः पठेत्।
रामराज्यकथा यस्मिन् सर्ववाञ्छितदायिनी॥
एवं पाठक्रमः पूर्वैराचार्यैश्च विनिर्मितः।

(अनुष्ठानप्रकाश)

पहले दिन बालकाण्डसे आरम्भ करके अयोध्याकाण्डके छठे सर्गपर विश्राम करें। दूसरे दिन अयोध्याकाण्डके ही ८०वें सर्गपर विश्राम करना चाहिये। तीसरे दिन अरण्यकाण्डके २०वें सर्गपर विश्राम करना चाहिये। चौथे दिन किष्किन्धाकाण्डके ४६वें सर्गपर विश्राम करना चाहिये। पाँचवें दिन सुन्दरकाण्डके ४७वें सर्गपर विश्राम करना चाहिये। छठे दिन युद्धकाण्डके ५०वें सर्गपर विश्राम करना चाहिये। सातवें दिन युद्धकाण्डके ही ९९वें सर्गपर विश्राम करना चाहिये। आठवें दिन उत्तरकाण्डके ३६वें सर्गपर विश्राम करना चाहिये। नवें दिन उत्तरकाण्ड समाप्त करके युद्धकाण्डके अन्तिम सर्गका पाठ करना चाहिये। युद्धकाण्डके अन्तिम सर्गमें सर्वमनोरथपूरयित्री श्रीरामराज्यकी कथाका मंगलमय वर्णन है। इस प्रकार पूर्वाचार्योंने श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके नवाह्नपारायणका क्रम निश्चित किया है।

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

कथा-सुधा-सागर

माहात्म्य

श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः। मङ्गलमूर्त्तये श्रीहनुमते नमः। वाग्देवतायै श्रीसरस्वत्यै नमः।

श्रीराम:शरणं समस्तजगतां
रामं विना का गती
रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं
रामाय कार्यं नमः।
रामात् त्रस्यति कालभीमभुजगो
रामस्य सर्वं वशे
रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे
राम त्वमेवाश्रयः॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणको ही 'रामायण'-के नामसे जाना जाता है।

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा है—

बंदउँ मुनि पद कंजु रामायन जेहिं निरमयउ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित॥

(श्रीरामचरितमानस १। १४ (घ))

अन्य रामायणोंके पहले उसके निर्माताका नाम जोड़ा जाता है। जैसे 'भुशुण्डिरामायण', 'लोमशरामायण', 'हनुमद्रामायण' आदि। श्रीतुलसीदासजीकी रामायणका नाम 'श्रीरामचरित-मानस' है।

रचि महेस निज मानस राखा।
पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥
तातें रामचरितमानस बर।
धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर॥

(श्रीरामचरितमानस १। ३५। ११-१२)

श्रीरामायणजीकी वेदके समान महिमा है। वेदवेद्य परम पुरुषोत्तम स्वयं जब दशरथनन्दन कौसल्यानन्दसंवर्द्धन श्रीमद्रामचन्द्रके रूपमें इस धराधाममें अवतीर्ण हुए तब भगवान् वेद ही महर्षि श्रीवाल्मीकिके मुखसे श्रीमद्रामायणके रूपमें प्रकट हुए हैं।

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना॥

एतावता श्रीमद्रामायणकी महिमा वेदोंसे अन्यून है। वैदिक वाङ्मयके पश्चात् विश्वका पहला महाकाव्य है; इसीलिये श्रीमद्रामायणको आदिकाव्य और श्रीवाल्मीकिजीको आदिकवि शब्दसे अभिहित किया जाता है।

उसी श्रीमद्रामायण-माहात्म्यका संक्षिप्त निरूपण यहाँ प्रस्तुत है। माहात्म्यके पूर्व की गयी वन्दनाका भाव दिया जाता है।

'श्रीरामः शरणं समस्त जगताम्'—सम्पूर्ण जगत्के भगवान् श्रीराम ही शरण हैं। 'शरण' का अर्थ होता है आश्रय, धाम और रक्षक। अर्थात् समस्त संसारके आश्रय श्रीरामजी ही हैं। **'समस्त-जगताम्'** कहनेका भाव—मूर्खोंके आश्रय भी वे हैं और विद्वानोंके भी आश्रय वे ही हैं। अर्बुदपतियोंके—धनिकोंके और वराकापतियोंके—निर्धनोंके भी आश्रय वे ही हैं। ब्राह्मणों और चाण्डालों—दोनोंके एकमात्र आश्रय वे ही हैं। अतः **'श्रीरामः शरणं समस्त जगताम्'** कहा है।

(१) श्रीरामजीके बिना दूसरी कौन-सी गति है? गतिका अर्थ है 'मार्ग'। **'गम्यते अस्यामिति गतिः'**। श्रीमद्भगवद्गीतामें दो प्रकारकी गतियोंका—मार्गोंका निरूपण है—

'रामं विना का गती'—

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।

(८।२६)

ये अर्चि आदि शुक्ल गति और धूमादि कृष्ण गति निश्चय ही संसारमें सनातन मानी गयी हैं। परंतु इन गतियोंके भी परमाश्रय तो श्रीरामजी ही हैं।

(२) सारे संसारका ज्ञान हो; परंतु श्रीरामजीका ज्ञान न हो तो समस्त ज्ञान व्यर्थ हैं। **'रामं विना का गती'**। 'गति' का अर्थ ज्ञान भी होता है। **'गम्यते ज्ञायते अनया इति गतिः'**। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने श्रीकवितावली-रामायणमें लिखा है—

कामु-से रूप, प्रताप दिनेसु-से,
सोमु-से सील, गनेसु-से माने।
हरिचंदु-से साँचे, बड़े बिधि-से,
मघवा-से महीप बिषै-सुख-साने॥
सुक-से मुनि, सारद-से बकता,
चिरजीवन लोमस तें अधिकाने।
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी',
जो पै राजिवलोचन रामु न जाने॥

(७।४३)

'रामेण प्रतिहन्यते कलिमलम्'—श्रीरामजीके द्वारा समस्त कलिमलोंका विनाश हो जाता है। **'कलिमल'** के दो अर्थ सम्भाव्य हैं—

(क) **'कलिमल'** अर्थात् कलियुगके युग-प्रभावसे जायमान मल कलिमल है।

(ख) कलिका अर्थ कलह भी होता है अर्थात् वाद-विवादसे समुत्पन्न मल भी कलिमल है। इन दोनोंका नाश श्रीरामजीके द्वारा हो जाता है।

'रामाय कार्यं नमः'—श्रीरामजीको नमस्कार करना चाहिये। (क) नमस्कार करनेयोग्य तो श्रीरामजी ही हैं। परंतु और किसीका अनादर नहीं करना चाहिये। किसीका अनादर करनेवाला सच्चा रामभक्त नहीं है—

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

(रा० च० मा० ७।११२(ख))

तात्पर्य यह है कि सबको प्रणाम करे, परंतु सीय राममय जानकर प्रणाम करे—

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

(ख) औरोंके चरणोंमें मस्तक रगड़ते रहो वे देखते ही नहीं; परंतु श्रीरामजी तो मनसे भी किये हुए प्रणामका किंवा प्रणाम करनेके प्रयत्नका भी अत्यन्त आदर करते हैं। जो एक बार प्रणाम कर लेता है उसकी कीर्तिका वर्णन ठाकुरजी स्वयं श्रीमुखसे करते हैं। **'सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत कहत सुनत फिरि गाउ'**। अतः ऐसे कृतज्ञ ठाकुरके श्रीचरणोंमें प्रणाम करना चाहिये। **'रामाय कार्यं नमः'**।

(ग) हे संसारके पार जानेकी इच्छा करनेवालो! आपको प्रणामका महत्त्व भलीभाँति समझ लेना चाहिये। श्रीठाकुरजीके श्रीचरणोंमें किया हुआ एक बारका प्रणाम दस अश्वमेध यज्ञोंके तुल्य है। परंतु दशाश्वमेधी—दस अश्वमेध यज्ञ करनेवाला संसारमें पुनः जन्म लेता है; परंतु श्रीठाकुरजीके मङ्गलमय श्रीचरणोंमें प्रणाम करते हुए जो प्राणपरित्याग कर देता है उसका संसृतिचक्र सर्वथा प्रणष्ट हो जाता है—

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामः
दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥

इसलिये **'श्रीरामाय कार्यं नमः'** स्तुतिकी चर्चा छोड़ो, भक्तिकी चर्चा छोड़ो। श्रीरघुनन्दनके श्रीचरणोंमें किया हुआ एक प्रणाम भी आपको सब कुछ प्रदान करनेमें समर्थ है।

'रामात् त्रस्यति कालभीमभुजगो'—

(१) प्रचण्ड पराक्रमी श्रीरघुवीरसे कालरूपी भयङ्कर व्याल भी त्रस्त रहता है। श्रीमद्भागवतमें बड़ा भावपूर्ण वर्णन है कि जब समस्त देवतागण श्रीनृसिंहभगवान्के क्रोधावेशको शान्त करनेमें असमर्थ हो गये। श्रीब्रह्मा और श्रीशंकरकी भी शक्ति कुण्ठित हो गयी। भगवान्की प्राणप्रिया प्रियतमा प्राणवल्लभा भगवती भास्वती श्रीलक्ष्मीजी भी अपने स्वामीके सन्निकट जानेमें असमर्थ हो गयीं **'सानोपेयायशङ्किता'**। उस समय श्रीब्रह्माजीकी प्रेरणासे भगवान्के अतिशय प्रेमी सर्वदा शङ्कारहित भक्तवर श्रीप्रह्लादजी भगवान्के श्रीचरणोंमें साष्टाङ्ग लेट गये। अपने श्रीचरणोंके सन्निकट पड़े हुए भक्तप्रवर श्रीप्रह्लादजीको देखकर ठाकुरजीका अशेषक्रोध निःशेष हो गया। उनका हृदय कृपा-परिप्लुत हो गया—कृपासे भर गया—दया-ही-दयाका सञ्चार हो गया। सर्वाङ्गसे दया छलकने लगी। श्रीनृसिंहभगवान्ने अपने भक्तको उठाकर उनके मस्तकपर अपना करकमल स्थापित कर दिया—

स्वपादमूले पतितं तमर्भकं
विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः।
उत्थाप्य तच्छीर्ष्ण्यदधात् कराम्बुजं
कालाहिवित्रस्तधियां कृताभयम्॥

(श्रीमद्भागवत ७। ९। ५)

श्रीव्यासजी ठाकुरजीके मङ्गलमय करकमलका वर्णन करते हुए कहते हैं—**'कालाहिवित्रस्तधियां कृताभयम्'** अर्थात् **'काल एवाहिः सर्पः तस्माद् वित्रस्ता भीता धीर्येषां तद्भयाच्छरणागतानां तेषां कृतमभयदानं येन तादृशमित्यर्थः।'** काल ही सर्प है। उसके भयसे भयभीत पुरुषोंको—शरणागतोंको कालसर्पभयसे निर्भयता प्रदान करनेवाले अपने भयमोचक कराम्बुजोंको परम भाग्यवान् श्रीप्रह्लादके मस्तकपर स्थापित करके उनके अवशेष अशेष-भयोंको, अशुभोंको प्रणष्ट कर दिया। इसीलिये कहते हैं—**'रामात् त्रस्यति कालभीमभुजगः'**।

(२) श्रीठाकुरजीकी मङ्गलमयी पावनी कथा भी कालव्याल प्रणाशिनी है **'कालव्यालमुखग्रास-त्रासनिर्णाशहेतवे'**। अर्थात् कालव्याल श्रीरामकथासे डरता है।

'रामस्य सर्वं वशे'—सब कुछ श्रीरामजीके वशमें है अथवा सब लोक श्रीरामजीके वशमें हैं—**'यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः'।**—जड़चेतनात्मक समस्त जगत् जिनकी मायाके वशमें है और ब्रह्मादि देवता तथा असुर, दैत्य, दानव, राक्षस जिनकी मायाके वशवर्ती हैं। आप चाहो तो भी श्रीरामजीके वशमें हो और न चाहो तो भी श्रीरामजीके वशमें हो। आपकी या किसीकी भी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। सब लोग श्रीरामजीके वशंगत और वशंवद हैं।

'रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे'—प्रार्थनाके अन्तमें कहते हैं—याचना करते हैं कि श्रीरामजीमें मेरी अखण्ड भक्ति हो। भक्तिके अनेक प्रकार हैं। अखण्ड भक्तिसे अभिप्राय है कि मेरा मन सदा आपके श्रीचरणोंमें ही लुब्ध भ्रमरकी तरह निवास करे। श्रीकपिलजी कहते हैं—

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥

(श्रीमद्भागवत ३। २९। ११)

जिस प्रकार गङ्गाका प्रवाह अखण्डरूपसे समुद्रको लक्ष करके ही प्रवाहित होता रहता है, उसी प्रकार किसी विशेष उद्देश्य-सिद्धिकी वासनाके बिना ही मेरे गुणोंके श्रवणमात्रसे ही मनकी गतिका तैलधारावत् अविच्छिन्नरूपसे सर्वान्तरात्मा—सबके हृत् प्रदेशमें निवास करनेवाले मेरे प्रति हो जाना ही अखण्ड भक्ति है। **'गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ'**

का भाव करते हुए श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं—'**अम्बुधिना स्वलहरीभिः परावर्तितस्याप्यम्भसो यथा अम्बुधावेवगतिस्तथा मयापि पारमेष्ठ्यसार्ष्टि-सालोक्यादि फलैः प्रलोभितस्यापि तस्य मय्येव गतिरिति। एवञ्च भक्तमनसो गङ्गाजलदृष्टान्तेन द्रौत्य, शैत्य, पावित्र्य, जगत्पूज्यत्वादीन्युक्तानि**'। अर्थात् जैसे समुद्र अपनी प्रचण्ड लहरोंसे गङ्गाके प्रवाहको परावर्तित करना चाहता है, फिर भी गङ्गाप्रवाह विमुख नहीं होता है; क्योंकि उसकी तो एकमात्र गति समुद्र ही है। उसी प्रकार भगवान्‌रूप समुद्र सार्ष्टि, सालोक्य, पारमेष्ठ्यादि पदका प्रलोभन दे करके भक्तरूपी गङ्गाप्रवाहको विमुख करना चाहते हैं; परंतु भक्त तो अनन्यगतिक है, अतः वह किसी भी प्रलोभनसे प्रलुब्ध न हो करके भगवच्चरणोंका ही आश्रय लेता है। गङ्गाजलके दृष्टान्तसे भक्तका द्रुत होना, शीतल होना, उसकी पवित्रता, उसका जगत्पूज्यत्व आदि कहा गया है। श्रीवल्लभाचार्यजी कहते हैं—'**पर्वतादिभेदनमपि कृत्वा यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ गच्छति, तथा लौकिकवैदिकप्रतिबन्धान् दूरीकृत्य या भगवति मनसो गतिः**'। जैसे गङ्गाजल मार्गमें प्रतिबन्धक बड़े-बड़े पर्वतोंको भी छिन्न-भिन्न करके—चूर-चूर करके समुद्रमें जाता है, उसी प्रकार भक्त भी लौकिक-वैदिक प्रतिबन्धोंका अपाकरण करके अपने परम प्रेमास्पद जीवनसार-सर्वस्वके श्रीचरणोंमें पहुँच करके ही विश्राम लेता है। इसीको 'अखण्ड भक्ति' कहते हैं। याचना है कि श्रीरामचन्द्रजीमें मेरी अखण्ड भक्ति हो। अन्तमें कहते हैं— '**रामत्वमेवाश्रयः**' अर्थात् हे रघुनन्दन! हमारे तो एकमात्र आप ही आधार हैं।

चित्रकूटालयं राममिन्दिरानन्दमन्दिरम्।
वन्दे च परमानन्दं भक्तानामभयप्रदम्॥

(श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणम-माहात्म्य १।२)

यह श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके माहात्म्यकी वन्दनाका दूसरा श्लोक है। बड़ा भावपूर्ण श्लोक है। चित्रकूट धाममें सर्वदा निवास करनेवाले, परब्रह्ममहिषी लक्ष्मीजी—श्रीसीताजीके आनन्द-मन्दिर—अपने भक्तोंको निर्भयता प्रदान करनेवाले और साक्षात् परमानन्दस्वरूप श्रीरामजीकी मैं वन्दना करता हूँ।

'**चित्रकूटालयम्**'—(१) भगवान् श्रीरामजी श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजीके साथ चित्रकूटमें अद्यावधि सब दिन नित्य निवास करते हैं।

चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत।
राम नाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत॥

(दोहावलीरामायण ४)

(२) '**चित्रकूटालयम्**' शब्द दो शब्दोंके योगसे बना है। चित्रकूट और आलयम्। 'चित्रकूट' शब्दका अर्थ है—'**चित्राणि कूटानि शृङ्गाणि यस्य**' अर्थात् जिस पर्वतके शृङ्ग बहुत रम्य हों उसे चित्रकूट कहते हैं। '**चित्रकूटगिरिस्तत्र रम्यनिर्झरकाननः**'। चित्रकूटके वन और झरने अत्यन्त सुरम्य हैं। 'आलय' शब्दका अर्थ है—'**आलीयतेऽस्मिन्निति**'। अर्थात् भगवान् श्रीराम चित्रकूटमें पर्णकुटी निर्माण करके प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं। (३) चित्रकूटमें ठाकुरजी लयपर्यन्त निवास करते हैं, ऐसे चित्रकूटालय श्रीरामजीकी वन्दना करते हैं '**चित्रकूटालयं श्रीरामं वन्दे**'।

'**इन्दिरानन्दमन्दिरम्**'—श्रीरामजी इन्दिरा अर्थात् श्रीसीताजीके आनन्दमन्दिर हैं। भाव कि श्रीरामजीके द्वारा चित्रकूटमें श्रीजनककिशोरीजीको विशेष आनन्द मिला है। मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीको जो चित्रकूटमें आनन्द मिला वह अनोखा आनन्द है। भावुक भक्तजन कहते हैं कि चित्रकूटमें श्रीरामजीने श्रीसीताजीके साथ अनेक प्रकारके रास-विहार किये हैं। श्रीभुशुण्डिरामायण आदि

ग्रन्थोंमें इस रासविहारका विशेष वर्णन है। श्रीरामचरितमानसमें श्रीठाकुरजीके द्वारा श्रीसीताजीके शृङ्गारका वर्णन चित्रकूटकी स्फटिकशिलाके प्रसङ्गमें निरूपित है—

एक बार चुनि कुसुम सुहाए।
निज कर भूषन राम बनाए॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर।
बैठे फटिक सिला पर सुंदर॥

श्रीगीतावलीरामायणमें भी संक्षिप्त परंतु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चित्रण है—

बिरचित तहँ परनसाल, अति बिचित्र लषनलाल,
निवसत जहँ नित कृपालु राम-जानकी।
निजकर राजीवनयन पल्लव-दल-रचित सयन
प्यास परसपर पीयूष प्रेम-पानकी॥
सिय अँग लिखैं धातुराग, सुमननि भूषन-बिभाग,
तिलक-करनि का कहौं कलानिधानकी।
माधुरी-बिलास-हास, गावत जस तुलसिदास,
बसति हृदय जोरी प्रिय परम प्रानकी॥

(१। ४४)

इस जुगल झाँकीका मङ्गलमय दर्शन करनेके लिये बड़े-बड़े अमलात्मा वीतराग महात्मा चकोरका रूप धारण करके आ करके परमानन्द प्राप्त करते हैं—

चितवत मुनिगन चकोर, बैठे निज ठौर ठौर,
अच्छय अकलंक सरद-चंद-चंदिनी।
उदित सदा बन-अकास, मुदित बदत तुलसिदास,
जय जय रघुनंदन जय जनकनंदिनी॥

(१। ४३)

चित्रकूटाद्रिविहारी श्रीमैथिली-आनन्दनिकेतन भक्तजनोंको अभयदान देनेवाले परमानन्दस्वरूप श्रीरघुनन्दन रामचन्द्रकी हम वन्दना करते हैं।

शौनकादि अट्ठासी हजार भगवत्कथा-रसरसिकोंने हरिकथा कहनेमें परम प्रवीण सूतजीसे पूछा—हे भगवन्! आप विद्वान् हैं, ज्ञानी हैं। आपने हमारी अनेक जिज्ञासाएँ शान्त की हैं। हे ब्रह्मन्! कलियुगमें अनेक प्रकारके पापकर्म हो जाते हैं, पापकर्मके प्रभावसे मनुष्यका अन्तःकरण—मन शुद्ध नहीं होता है। मनःशुद्धि न होनेसे लोगोंकी मुक्ति कैसे होगी?

मनःशुद्धिविहीनानां निष्कृतिश्च कथं भवेत्।
यथा तुष्यति देवेशो देवदेवो जगद्गुरुः॥

(श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमाहात्म्य १। १५)

जबतक मन शुद्ध नहीं होगा तबतक कोई क्रिया, साधना सफल नहीं होगी। यह बात आप निश्चयपूर्वक समझ लें—आप निर्धन हैं कोई चिन्ता नहीं, मूर्ख हैं कोई चिन्ता नहीं, आपको बोलना नहीं आता है कोई चिन्ता नहीं, आपने सभ्यताका पाठ नहीं पढ़ा है कोई चिन्ता नहीं। श्रीठाकुरजीने यह कहीं नहीं कहा है कि हमें विद्वान् अच्छा लगता है मूर्ख नहीं। श्रीरामजी यह भी नहीं कहते कि हमें असभ्य नहीं भाता है। यदि उन्हें सभ्य ही अच्छा लगता तो वानरोंको कैसे प्यार करते? उन्हें कैसे अपनाते? इनसे बढ़कर असभ्य कौन होगा, जो प्रभुके सरपर चढ़कर बैठ जाते हैं—

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान॥

श्रीरामजीको धनी भी प्यारा नहीं है।

सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या
निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका।
हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय
प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः॥

(श्रीमद्भागवत-माहात्म्य ३। ७३)

वह निर्धन धन्य है जिसके पास कौपीनका वस्त्र भी ठीकसे नहीं है; परंतु उसके मुखसे 'राम राम सीताराम श्रीराम' की मङ्गलध्वनि स्नेहपूर्वक हमेशा निकलती रहती है। श्रीरामजी कहते हैं—हे भक्तो! हे साधको! ध्यानसे सुन लो, हमें

निर्धन भी प्यारा है, असभ्य भी प्यारा है और मूर्ख भी प्यारा है। हमें वैदुष्यकी अपेक्षा नहीं, साधन-सम्पन्नताकी अपेक्षा नहीं, सभ्यताकी अपेक्षा नहीं, चित्र-विचित्र अलङ्कारोंसे अलङ्कृत भाषाकी भी अपेक्षा नहीं है। चिकनी-चुपड़ी प्रभाव डालनेवाली भाषासे तो हमें घृणा है। सावधान होकर सुन लो, हमें तो केवल निर्मल मनकी अपेक्षा है। हमें कपट नहीं अच्छा लगता है, छल नहीं भाता है और छिद्रान्वेषण करनेवालेकी ओर तो मैं देखता भी नहीं हूँ—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

ढक्कन मत लगाओ। ढक्कन पसन्द नहीं है श्रीरामजीको। आवरणका वरण नहीं करते हैं श्रीरामजी। आवरणसे—बनावटी व्यवहारसे दुनियाबी लोग रीझ सकते हैं, श्रीरामजी नहीं। श्रीरामजी तो निरावरणका वरण करते हैं। श्रीकबीरदासजी बड़ी स्पष्ट वाणीमें घोषणा करते हैं—'**घूँघट के पट खोल रे तोहि राम मिलेंगे**'। प्रियतमको चाहते हो तो आवरण समाप्त कर दो। जबतक आवरण है तबतक प्रियतमका प्रसाद कहाँ? श्रीशौनकादिकजी पूछते हैं—'**मनःशुद्धिविहीनानां**....'।

सज्जनो! कौन पूछ रहा है? भारतवर्षका मस्तिष्क पूछ रहा है—मन शुद्ध कैसे हो? मनःशुद्धिका क्या उपाय है? क्योंकि मनःशुद्धिके बिना भगवान् प्रसन्न नहीं होंगे। शौनकादि कहते हैं—हमारे दो प्रश्नोंका उत्तर दें, पहला मनःशुद्धि कैसे हो? दूसरा प्रश्न है कि देवाधिदेव देवेश्वर जगद्गुरु भगवान् श्रीरामचन्द्रजी किस प्रकार सन्तुष्ट होंगे?

महात्माओंके प्रश्नको सुनकर सूतजी प्रसन्न हो गये। अच्छी बात सुननेके लिये अच्छा प्रश्न भी करना चाहिये। श्रीमद्भागवतमें भी इसी प्रकार कहा गया है—'**इति सम्प्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः**'। इस श्लोकमें '**रौमहर्षणिः**' शब्दका भाव यह है कि श्रीरोमहर्षणजी जब भगवान्की कथा-सुधाका आस्वादन कराते थे तब वे स्वयं परमानन्दसुधा-समुद्रमें निमग्न हो जाते थे और उनका शरीर रोमाञ्च-कण्टकित हो जाता था—उनके शरीरमें पुलकावली हो जाती थी, हृदय आनन्दसे ओत-प्रोत हो जाता था, आँखोंमें प्रेमाश्रु छलकने लगते थे। सूतजी उन्हींके पुत्र हैं, आज जब इनकी भी वही स्थिति हो गयी तब व्यासजीने '**रौमहर्षणिः**' शब्दसे इन्हें अभिहित किया।

शौनकादि ऋषियोंका प्रश्न सुनकर सूतजी प्रसन्न होकर कहने लगे—हे मुनियो! आपलोग सावधान होकर मेरी बात सुनें। आपलोगोंका अभीष्ट विषय मैं सुनाता हूँ अर्थात् जो आपको प्रिय लगनेवाला विषय भगवच्चरित्र है वह मैं सुनाऊँगा।

शृणुध्वमृषयः सर्वे यदिष्टं वो वदाम्यहम्।
गीतं सनत्कुमाराय नारदेन महात्मना॥

(१।१८)

ऋषियोंने कहा—हे महात्मन्! अवश्य सुनावें आनन्द आ जायगा, आपकी बात निश्चय ही मौलिक होगी। श्रीसूतजीने कहा—हमारे पास मौलिक कुछ नहीं है। हम तो आपको वह सुनावेंगे, जो महामना श्रीनारदजीने अमलात्मा परमहंस श्रीसनत्कुमारजीको सुनाया था। हम तो परम्परया प्राप्त बात आपको सुनायेंगे। आजकल लोग मौलिक विचार बहुत पसन्द करते हैं। मौलिक विचारका अर्थ है कि इस प्रकारका विचार पहले किसीने नहीं प्रकट किया था। यह मौलिक—मस्तिष्ककी उपज है। अदृष्टपूर्व और अश्रुतपूर्व है। परंतु जब हम शास्त्रदृष्ट्या देखते हैं तब यह मौलिकता निर्मूल हो जाती है। किसी भी विचारका कहीं-न-कहीं मूल

होना चाहिये, बीज होना चाहिये, आधार होना चाहिये। आधारहीन विचार तो गन्धर्वनगरकी भाँति मिथ्या है। ईश्वरसम्बन्धी विचार सनातन विचार है। उसका मूल सम्प्रदाय परम्परासे होना चाहिये। उसका कोई-न-कोई गुरु होना आवश्यक है। श्रीसूतजी कहते हैं कि श्रीनारदजीने श्रीसनत्कुमारको सुनाया था—'**गीतं सनत्कुमाराय नारदेन महात्मना**'। ब्रह्माजीके प्रिय पुत्र श्रीनारदने ब्रह्माजीके मानस-पुत्र सनकादिकोंको रामायण महाकाव्य सुनाया—

रामायणं महाकाव्यं सर्ववेदेषु सम्मतम्।
सर्वपापप्रशमनं दुष्टग्रहनिवारणम्॥

(१।१९)

'रामायण' शब्दका अर्थ है—(क) '**श्रीरामस्य चरितान्वितम् अयनं शास्त्रम्**' अर्थात् श्रीरामचरित्रसे संयुक्त शास्त्रका ही नाम श्रीरामायण है।

(ख) 'रामायण' का सीधा अर्थ है 'श्रीरामजीका अयन—घर' अर्थात् इसमें श्रीरामजी सपरिकर नित्य निवास करते हैं; इसलिये इस ग्रन्थको सँभालकर रखना चाहिये—गाना चाहिये—

जे गावहिं यह चरित सँभारे।
तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥

(ग) श्रीरामायणजी श्रीरामजीका साक्षात् स्वरूप है। इसके एक-एक अक्षर श्रीरामजीके रोमराजि हैं, एतावता श्रीरामायणजीके अक्षरोंका अर्थ सँभालकर करना चाहिये अन्यथा रोम टूटनेकी तरह श्रीरामजीको पीड़ा होती है।

(घ) यह ग्रन्थ श्रीरामजीकी प्राप्तिका साधन है। जिसके द्वारा श्रीरामजीकी साक्षात् प्राप्ति हो उसे श्रीरामायण कहते हैं। '**श्रीरामः अय्यते प्राप्यते येन तद् रामायणम्**'।

(ङ) श्रीरामजीके स्वरूपका जिससे परिज्ञान हो उसे श्रीरामायणजी कहते हैं। यह भाव भी 'अय् गतौ' धातुसे ही सिद्ध होगा। लोग कहते हैं कि हम चार बार रामायण पढ़ गये। मेरी प्रार्थना है कि श्रीरामायणको केवल पढ़ें नहीं, अपना लें, जीवनमें उतार लें और अपना कण्ठहार बना लें, श्रीरामजी निश्चित मिल जायँगे।

'**सर्ववेदेषु सम्मतम्**'—इसमें मनगढ़न्त कथा नहीं है—काल्पनिक किस्सा-कहानी नहीं है। यह सम्पूर्णरूपसे वेदार्थोंकी सम्मतिके अनुकूल है। यह तो साक्षात् वेदावतार है।

'**दुष्टग्रहनिवारणम्**'—'ग्रह' शब्दके दो प्रकारके अर्थ सम्भव हैं। (क) जो वक्रा, अतिवक्रा, कुटिला, मन्दा, मन्दतरा, समा, शीघ्रा और शीघ्रतरा—इन आठ विशेष गतियोंको स्वीकार करे उसे ग्रह कहते हैं। '**गृह्णाति गति विशेषानिति ग्रहः**'। (ख) जो जीवोंको अनेक प्रकारके शुभाशुभ फल दे उसे ग्रह कहते हैं। इन ग्रहोंकी संख्या नौ है—

सूर्यश्चन्द्रो मङ्गलश्च बुधश्चापि बृहस्पतिः।
शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति नवग्रहाः॥

इन ग्रहोंमें भी कुछ शुभग्रह हैं और कुछ पापग्रह—दुष्टग्रह हैं। श्रीरामायणजी समस्त दुष्टग्रहोंकी बाधाको निवृत्त कर देती हैं।

इन ग्रहोंके अतिरिक्त एक और अनोखा महामङ्गलमय परम कृपालु ग्रह है। वह ग्रह जब ग्रस्त कर लेता है—स्वीकार कर लेता है तब अन्य ग्रहोंकी कुछ भी नहीं चलती है। इस ग्रहका नाम है—रामग्रह, कृष्णग्रह। श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवतके सप्तम स्कन्धमें इस कृष्णग्रहके प्रभावका बड़ा विलक्षण एवं भावपूर्ण वर्णन किया है—

न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत् तन्मनस्तया।
कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम्॥
आसीनः पर्यटन्नश्नञ्छयानः प्रपिबन् ब्रुवन्।
नानुसन्धत्त एतानि गोविन्दपरिरम्भितः॥

(श्रीमद्भागवत ७।४।३७-३८)

यद्यपि श्रीप्रह्लादजी अवस्थामें बालक थे फिर भी उन्होंने बाल्यलीलाका परित्याग कर दिया था। दूसरोंको वे जड़की तरह—पाषाणकी तरह प्रतीत होते थे; क्योंकि उनका मन श्रीहरिमें एकाग्र हो गया था। उन्होंने अन्य भक्तोंकी भाँति अपने मनको भगवान्‌में नहीं लगाया था। अपितु मङ्गलमय ग्रहकी भाँति श्रीकृष्णग्रहने ही उनके मनको आकृष्ट कर लिया था; क्योंकि वह श्रीकृष्णग्रह अन्य आकर्षण करनेवाले विषयोंसे अधिक आकर्षक था। श्रीप्रह्लाद **'कृष्णग्रहगृहीतात्मा'** थे। **'कृष्ण एव ग्रहः विषयेभ्यः आकर्षकः तेन गृहीतः आकृष्टः आत्मा मनो यस्य सः कृष्णग्रहगृहीतात्मा'**। एतावता उन्हें जगत्‌की कुछ भी स्मृति नहीं रहती थी, उनकी दृष्टिमें तो सब कुछ कृष्णमय था।

श्रीप्रह्लाद चलते थे तब उन्हें मार्गका अनुसंधान नहीं होता था, वे बैठते थे परंतु आसनका ज्ञान नहीं होता था, वे भोजन अवश्य करते थे,परंतु उन्हें भक्ष्य-भोज्यका ध्यान नहीं रहता था। जलदुग्धादिका पान अवश्य करते थे, परंतु उन्हें पेय पदार्थका आभास नहीं होता था। वे पूछनेपर कुछ बोलते अवश्य थे, परंतु ग्रहगृहीतकी तरह असम्बद्ध वार्तालाप करते थे; क्योंकि वे गोविन्द-परिरम्भित थे। **'श्रीगोविन्देन भगवता श्रीहरिणा परिरम्भितः संश्लिष्टः गोविन्दानुसंधानरूपतत्परिरम्भविस्मृतदेह-धर्मः'**। भाव कि जैसे अत्यन्त पुत्रवत्सला माता किंवा पुत्रवत्सल पिता अपने वात्सल्यभाजन पुत्रका परिरम्भण करके प्रतिक्षण अपनी गोदमें ही लिये रहते हैं उसी प्रकार प्रह्लादजी भी अनुपल, अनुक्षण अपनेको भगवान्‌की मङ्गलमयी गोदमें ही अनुभव करते थे। धन्य है! श्रीकृष्णग्रह—श्रीरामग्रह जिसे लग जाय, चिपट जाय उसके बड़े भाग्य हैं। नवग्रहोंका मङ्गलग्रह भी कभी-कभी साहचर्यवशात् अमङ्गल भी करता है; परंतु रामग्रह तो उन अमङ्गलरूप शनि, मङ्गल आदि ग्रहोंका निवारण करके सर्वदा मङ्गल ही करते हैं। एक बात और ध्यान देनेकी है कि ये शनि आदि ग्रह तो कुछ कालके पश्चात् दशाके समाप्त होनेके बाद दशा बिगाड़कर छोड़ देते हैं; परंतु यदि श्रीरामग्रहकी दशा आ जाय तो समस्त दशाएँ स्वयमेव सुधर जाती हैं और वह रामग्रह कभी छोड़ता नहीं है। उसको पकड़कर छोड़नेकी आदत नहीं है। इसलिये श्रीरामायणजीकी महिमाका वर्णन करते हुए लिखते हैं—**'सर्वग्रहनिवारणम्'**।

श्रीशौनकादि महात्माओंने बड़े आश्चर्यसे पूछा—हे सूतजी! हे महामुने! श्रीनारद और श्रीसनकादि कैसे मिल गये, इन दोनोंका कहीं निश्चित पता नहीं है। बिना पता-ठिकानाके तो मिलना बहुत मुश्किल है। सनकादिने और श्रीनारदजीने कहीं आश्रम बनाया ही नहीं है, घर भी बनाया-बसाया नहीं है। विवाह ही नहीं किया तो घर बना करके क्या करें? घरवाली हो तो घरकी आवश्यकता होती है। घरवालीको ही घर कहते हैं **'गृहिणी गृहमित्याहुः'**। **'बिनु घरनी घर भूत का डेरा'**। इसलिये हे सूतजी! ये दोनों बिना पतेवाले बिना घरवाले कैसे मिल गये? कहाँ मिल गये? वे दोनों तो विचरण करनेवाले हैं। भक्तिरसका, ब्रह्मरसका, कथारसका, रामरसका और कृष्णरसका परिवेषण करनेवाले हैं। परिवेषण करनेवाला खड़ा नहीं रहता है, स्थिर नहीं रहता है, दौड़ता रहता है। यदि परिवेषक खड़ा रह जाय तो लोग भूखे रह जायँगे। परिवेषकको तो विविध पदार्थ थालमें सजाकर दौड़ना पड़ता है और बोलते हुए—

उच्च स्वरसे बोलते हुए दौड़ना पड़ता है। ले लो! ले लो! महाप्रसाद ले लो, पूड़ी ले लो, कचौड़ी ले लो, इमरती ले लो, रसगुल्ला ले लो। श्रीनारद और सनकादिगण तो दौड़ते ही रहते हैं—श्रीरामरसके विविध व्यञ्जन बनाकर परिवेषण करते रहते हैं। कभी नामका परिवेषण करते हैं, कभी रूपका परिवेषण करते हैं, कभी लीलारसका परिवेषण करते हैं और कभी कथा-रसका परिवेषण करते हैं। उनका कोई पता नहीं है, ऐसे लापता लोग ही श्रीरामजीका पता पाते हैं। ऐसे लापता लोग ही श्रीरामजीका पता बताते हैं किं बहुना श्रीरामजीके वे ही पता हैं।

शौनकजी बड़े आश्चर्यसे पूछते हैं—

कथं सनत्कुमाराय देवर्षिर्नारदो मुनिः।
प्रोक्तवान् सकलान् धर्मान् कथं तौ मिलितावुभौ॥
कस्मिन् क्षेत्रे स्थितौ तात तावुभौ ब्रह्मवादिनौ।
यदुक्तं नारदेनास्मै तत् त्वं ब्रूहि महामुने॥

(२।१-२)

श्रीसूतजी कहते हैं—ब्रह्माजीके मानसपुत्र सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन ब्रह्माजीकी सभाका दर्शन करनेके लिये कनकाचलके शिखरपर गये। भगवान् श्रीहरिके चरणारविन्दोंसे समुद्भूत महापुण्यमयी श्रीगङ्गाजीकी अलकनन्दा, चक्षु, सीता और भद्रा नामकी चार धाराएँ हैं। वहाँपर सीता नामकी धारा प्रवाहित है। ब्रह्मध्यानपरायण, परम विष्णुभक्त सनकादिक श्रीगङ्गाजीकी धारा देखकर अपने परम प्रियतम भगवान्का स्मरण करके सजलनयन हो गये। वे स्नान करनेके लिये प्रस्तुत ही थे कि उसी समय उनके कानोंमें बड़ा मधुर स्वर सुनायी दिया। वीणाके तारोंको झङ्कृत करते हुए देवदर्शन देवर्षि नारद नारायण! अच्युत! अनन्त! वासुदेव! जनार्दन! यज्ञेश! यज्ञपुरुष! विष्णो! हरे! और हे राम! आपको नमस्कार है। इस प्रकार भगवन्नामोंका स्नेहिल स्वरमें उच्चारण करते हुए वहाँ सहसा आ गये—

नारायणाच्युतानन्त वासुदेव जनार्दन।
यज्ञेश यज्ञपुरुष राम विष्णो नमोऽस्तु ते॥

(२।९)

सनकादिकोंने और श्रीनारदजीने एक-दूसरेका अभिवादन किया। अभिवादनके पश्चात् सद्यः सत्सङ्ग आरम्भ हो गया। जब दो संसारी मिलते हैं तब संसारी चर्चा चलती है और जब दो सन्त मिलते हैं तब सद्यः भगवच्चर्चा आरम्भ हो जाती है। श्रीनारद और सनकादिगण महासिद्ध सन्त हैं। भक्तिरसमें आकण्ठ निमग्न हैं, एतावता बिना भूमिकाके सनकादिने एक जिज्ञासा की—हे महाप्राज्ञ नारदजी! जिनसे स्थावर-जङ्गमात्मक निखिल जगत् प्रकट हुआ है तथा ये श्रीगङ्गा जिनके श्रीचरणोंसे समुद्भूत हुई हैं उन भक्तमनहरण श्रीहरिके स्वरूपका ज्ञान कैसे होता है?

येनेदमखिलं जातं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
गङ्गा पादोद्भवा यस्य कथं स ज्ञायते हरिः॥

(२।१४)

'येनेदमखिलं जातम्' का भाव कि उन्हींसे यह संसार उत्पन्न है, वे ही इसका पालन करते हैं और वे ही प्रलय भी करते हैं। सनकादिके प्रश्नमें शुद्ध जिज्ञासा है, अभिमानराहित्य है और प्रेमसाहित्य भी है। श्रीनारदजीने सद्यः वन्दना करके सत्सङ्ग आरम्भ कर दिया। कथाके आरम्भमें वन्दना की जाती है कि हे प्रभो! हम अत्यन्त असमर्थ हैं, बुद्धिरहित हैं, आपके चरित्र अनन्त हैं, उनको समझना कठिन है मुझे सामर्थ्य दें कि मैं उसका यत्किञ्चित् वर्णन कर सकूँ। किंवा— वन्दना करनेसे अभिमान निवृत्त

हो जाता है। किं बहुना वन्दन करनेसे लौकिक प्रपञ्चके बन्धन सर्वथा निवृत्त हो जाते हैं। दासकी तो यह धारणा है कि श्रीरामजीकी वन्दनासे संसारके भौतिक बन्धन कट जाते हैं और स्वयं श्रीसीतारामजी प्रेमबन्धनमें बँध जाते हैं—भक्तके हृदयमें वन्दी बनकर आ जाते हैं—विराजमान हो जाते हैं—'**सद्योहृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्**'। श्रीनारदजीने अत्यन्त विलक्षण वन्दना की है। उनकी वन्दना बड़ी भावपूर्ण है। वन्दनाके पश्चात् श्रीनारदजी कहते हैं—हे कृपालु सन्तो! आपने पूछा है कि '**कथं स ज्ञायते हरिः**'। आपके इस प्रश्नका अत्यन्त संक्षिप्त और सारगर्भित उत्तर है कि श्रीरामजीकी महिमाकी मधुरिमाका आस्वादन करनेके लिये—जाननेके लिये कार्तिक, माघ और चैत्रमासके शुक्लपक्षमें श्रीरामायणजीकी अमृतमयी कथाको भक्तिभावपूर्वक—आदरपूर्वक श्रवण करना चाहिये। इस कथाको नौ दिनमें सुनना चाहिये—

ऊर्जे मासि सिते पक्षे चैत्रे माघे तथैव च॥
नवाह्ना किल श्रोतव्यं रामायणकथामृतम्।

(२। २३-२४)

श्रीनारदजीने कहा—श्रीरामायणजीकी कथाके प्रभावसे महर्षि गौतमके—अपने गुरुके अपमानके कारण श्रीशङ्करजीके शापसे राक्षसशरीर प्राप्त करनेवाला सुदास नामका ब्राह्मण शापसे मुक्त हो गया।

श्रीसनत्कुमारने पूछा—हे देवर्षे! सर्वधर्म-फलप्रद श्रीरामायणका किसने वर्णन किया है और किसने निर्माण किया है? सौदासको कैसे शाप मिला फिर वह श्रीरामायणके प्रभावसे कैसे मुक्त हुआ? यह हमें सुनावें।

श्रीनारदने कहा—हे ब्रह्मन्! श्रीरामायणजीका प्रादुर्भाव आदिकवि कविता-कानन कोकिल महर्षि श्रीवाल्मीकिजीके मुखसे हुआ है—

शृणु रामायणं विप्र यद् वाल्मीकिमुखोद्गतम्॥

(२। २८)

सत्ययुगमें धर्म-कर्म-विशारद सोमदत्त नामके ब्राह्मण थे। उन्हींका नाम सुदास भी था। सुदासने श्रीगौतम मुनिसे श्रीगङ्गातटपर सम्पूर्ण धर्मोंका, पुराणों और शास्त्रोंकी कथाओंके माध्यमसे तत्त्वज्ञान प्राप्त किया था। एक दिनकी बात है, सुदासजी भगवान् शङ्करकी आराधना कर रहे थे। उसी समय उनके गुरु महर्षि गौतमजी आ गये। सुदासने उनका उत्थापन एवं अभिवादन नहीं किया। उनके इस उच्छृङ्खल व्यवहारसे उनके गुरुको तो क्रोध नहीं आया परंतु उनके आराध्य सर्वजगद् गुरु श्रीशङ्करजीने राक्षसयोनिमें जानेका श्राप दे दिया—

यस्त्वर्चितो महादेवः शिवः सर्वजगद्गुरुः॥
गुर्ववज्ञाकृतं पापं राक्षसत्वे नियुक्तवान्।

(२। ३४-३५)

अब तो सुदासका अभिमान समाप्त हो गया। उसे अपराधबोध हो गया। अन्तमें तो सभीको कर्त्तव्यबोध होता है; परंतु कार्यके नष्ट हो जानेपर पश्चात्ताप ही हाथ लगता है। सुदास अपने गुरुदेव श्रीगौतमजीके चरणोंमें गिर पड़ा और कहने लगा—हे भगवन्! मैंने आपका भयङ्कर अपमान किया है—अपराध किया है। मुझे क्षमा कर दीजिये—

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वदर्शिन् सुरेश्वर।
क्षमस्व भगवन् सर्वमपराधः कृतो मया॥

(२। ३६)

गुरुदेवने उसके कल्याणकी बात बतायी कि कार्तिकमासके शुक्लपक्षमें किसीसे भी श्रीरामायणजीकी अमृतमयी कथाका आदरपूर्वक श्रवण करना—इससे तुम्हारा कल्याण हो जायगा।

सुदास राक्षसशरीरका आश्रय लेकर राक्षसोंका जघन्य कार्य करने लगा। नित्य मनुष्यमांस खाने लगा। सर्वलोकभयङ्कर राक्षस श्रीनर्मदाजीके तटपर जा पहुँचा—

जगाम नर्मदातीरे सर्वलोकभयङ्करः।

(२।४८)

एक दिन एक ब्राह्मण मिल गये। उनके कन्धेपर गङ्गाजल था, वे श्रीविश्वनाथजीकी स्तुति कर रहे थे तथा भगवान् श्रीरामके नामोंका भी गान कर रहे थे—

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः कश्चिद् विप्रोऽतिधार्मिकः॥
कलिङ्गदेशसम्भूतो नाम्ना गर्ग इति स्मृतः।
वहन् गङ्गाजलं स्कन्धे स्तुवन् विश्वेश्वरं प्रभुम्॥
गायन् नामानि रामस्य समायातोऽतिहर्षितः।

(२।४८—५०)

उन्हें देखकर यह राक्षस उन्हें खानेके लिये दौड़ा। राक्षसने अनेक प्रयास किये; परंतु मुनिके पासतक नहीं पहुँच पाया। अब तो वह नरभक्षी राक्षस दूरसे ही उनकी स्तुति करने लगा—हे महाभाग! आप महात्माको नमस्कार है। आप जो श्रीहरिका नामस्मरण कर रहे हैं इसके प्रभावसे राक्षस भी दूर भाग जाते हैं। हे विप्रदेव! आपके पास श्रीरामनामका कवच है वह आपकी रक्षा करता है। हे मुने! आपके मुखसे भगवन्नामका उच्चारण सुनकर मेरी तरह घोर राक्षसको भी शान्ति मिलती है—

नामप्रावरणं विप्र रक्षति त्वां महाभयात्।
नामस्मरणमात्रेण राक्षसा अपि भो वयम्॥
परां शान्तिं समापन्ना महिमा कोऽच्युतस्य हि।

(२।५४,-५५)

हे प्रभो! आपके मुखसे रामनाम सुनकर मुझे अपने कृपालु गुरुदेवकी बात याद आ गयी। हे सर्वशास्त्रार्थकोविद! हे महाभाग! हे ब्रह्मन्! आप श्रीरामायणी कथा सुना करके इस पापकर्मसे मेरी रक्षा कीजिये। ब्राह्मण देवताने कृपा करके उसको कार्तिकमासमें कथा सुनायी। परिणामस्वरूप उसका समस्त पाप नष्ट हो गया। कथाश्रवणमात्रसे उसका राक्षसभाव दूर हो गया और वह देवताकी तरह सुन्दर हो गया—

कथाश्रवणमात्रेण राक्षसत्वमपाकृतम्।
विसृज्य राक्षसं भावमभवद् देवतोपमः॥

(२।६७)

श्रीसनत्कुमारजीने कहा—हे श्रीनारदजी! श्रीरामायण-माहात्म्यका आप विस्तारपूर्वक पुनः वर्णन करें—

अहो विप्र इदं प्रोक्तमितिहासं च नारद।
रामायणस्य माहात्म्यं त्वं पुनर्वद विस्तरात्॥

(३।१)

श्रीनारदने कहा—हे महात्माओ! द्वापरयुगमें एक सुमति नामके प्रसिद्ध राजा थे। वे सदा श्रीरामकथा श्रवण करते थे, श्रीरामकी पूजामें लगे रहते थे और जो भगवान् श्रीरामजीकी पूजा करते थे उनकी सेवा बड़े भावसे करते थे। सबसे बड़ी बात थी कि उनमें अहङ्कारका अभाव था—

सदा रामकथासेवी रामपूजापरायणः॥
रामपूजापराणां च शुश्रूषुरनहंकृतिः।

(३।७-८)

श्रीरामभक्तोंमें राजा-रानीकी बड़ी ख्याति थी। एक दिन उनके भक्तिभावकी चर्चा सुनकर उनको देखनेके लिये अपने अनेक शिष्योंके साथ महर्षि विभाण्डक पधारे—

आययौ बहुभिः शिष्यैर्द्रष्टुकामो विभाण्डकः॥

(३।१४)

राजाने बड़ी श्रद्धासे महर्षिका पूजन किया। श्रीविभाण्डकने पूछा—हे राजन्! श्रीहरिको संतुष्ट

करनेवाले अनेक साधन हैं, पुराण भी बहुत हैं, परंतु इस माघमासमें आप दोनों श्रीरामायणजीमें ही इतना अनुराग करके रामायणकी ही आराधना क्यों कर रहे हैं? रामभक्त राजा सुमतिने कहा—हे महामुने! पूर्वजन्ममें मैं मालति नामका शूद्र था। अनेक प्रकारके दुष्कर्म करता था। बड़े-बड़े पापियोंसे मेरा सम्पर्क था। देवताओंकी सम्पत्तिसे अपनी जीविका चलाता था। हे महामुने! दैवयोगसे एक दिन मैं भूखा, प्यासा, परिश्रान्त, निद्रित एक निर्जन वनमें आया। वहाँ श्रीवसिष्ठ मुनिके आश्रमको मैंने देखा—

एकदा क्षुत्परिश्रान्तो निद्राघूर्णः पिपासितः।
वसिष्ठस्याश्रमं दैवादपश्यं निर्जने वने॥

(३।३३)

मैं वहीं पासमें ही टूटी-फूटी झोंपड़ी बनाकर रहने लगा। यह मेरी साध्वी पत्नी भी वहीं आ गयी। उस समय इसका नाम काली था, यह निषादकन्या थी। दूसरोंका धन चुराना, चुगली करना ही इसका काम था। इसने अपने पतिको भी मार डाला, अतः परिवारवालोंने घरसे निकाल दिया—

परस्वहारिणी नित्यं सदा पैशुन्यवादिनी॥
बन्धुवर्गैः परित्यक्ता यतो हतवती पतिम्।
कान्तारे विजने ब्रह्मन् मत्समीपमुपागता॥

(३।४४-४५)

इसके आनेपर मैं इससे पत्नीका सम्बन्ध बनाकर रहने लगा। हे महात्मन्! एक दिन हम लोगोंने श्रीवसिष्ठ-आश्रममें महान् उत्सव देखा। वहाँ बड़े-बड़े देवर्षि आये थे, माघका महीना था, रामायणी कथा हो रही थी। हम दोनों अनिच्छासे ही श्रीवसिष्ठ-आश्रममें चले गये और निराहार रहकर नौ दिनपर्यन्त श्रीरामायणजीकी कथा सुनी। हे मुने! उसी समय हम दोनोंकी मृत्यु हो गयी। मरनेके बाद सुन्दर लोकमें गये, वहाँका आनन्द लेकर मृत्युलोकमें आकर चन्द्रवंशमें हमारा जन्म हुआ। पूर्वजन्मका हमें स्मरण है। उसी संस्कारके कारण हम श्रीरामायणजीकी कथा सुनते हैं। हे मुने! विवश होकर भी यदि श्रीरामायणजीकी कथा सुनी जाय तो उसका भी विशेष महत्त्व है। **'अवशेनापि यत्कर्म कृतं तु सुमहत्फलम्'** यह सब सुनकर विभाण्डक ऋषि बड़े प्रसन्न हुए। राजाका अभिनन्दन करके अपने तपोवनमें चले गये—

एतत्सर्वं निशम्यासौ विभाण्डको मुनीश्वरः।
अभिनन्द्य महीपालं प्रययौ स्वतपोवनम्॥

(३।५९)

श्रीनारदजीने कहा—हे महर्षियो! श्रीरामायणजीकी कथा तो कामधेनुके समान समस्त मनोरथ-प्रपूरिका है—

रामायणकथा चैव कामधेनूपमा स्मृता॥

(३।६०)

हे महात्माओ! श्रीरामायण-माहात्म्यको विज्ञापित करनेवाला एक इतिहास और सुनो।

प्राचीन कलियुगमें एक कलिक नामका व्याध था। वह परस्त्री और परधनके हरण करनेमें सदा लगा रहता था—

आसीत् पुरा कलियुगे कलिको नाम लुब्धकः।
परदारपरद्रव्यहरणे सततं रतः॥

(४।५)

वह एक बार सौवीर नगरमें गया। वहाँ एक उपवनमें भगवान्का बहुत सुन्दर मन्दिर था। उस मन्दिरमें अनेक स्वर्णकलश थे, और भी बहुत सम्पत्ति थी। उस व्याधने निश्चय किया कि यहाँसे बहुत सम्पत्ति चुराऊँगा। ऐसा निश्चय करके वह चौर्यलोलुप श्रीराममन्दिरमें गया—

जगाम रामभवनं कीनाशश्चौर्यलोलुपः।
तत्रापश्यद् द्विजवरं शान्तं तत्त्वार्थकोविदम्॥

(४।१२)

मन्दिरमें व्याधने एक शान्त ब्राह्मणको देखा, जो ठाकुरजीकी सेवा विधिवत् करते थे, उनका नाम उत्तङ्क था। वे तपोधन अकेले रहते थे, बड़े दयालु थे, उन्हें किसी भी प्रकारकी स्पृहा नहीं थी, वे ध्यानलोलुप थे, ठाकुरजीके ध्यानका लोभ उनके मनमें बना रहता था—

परिचर्यापरं विष्णोरुत्तङ्कं तपसां निधिम्।

(४।१३)

आधी रातके समय व्याध मन्दिरका धन चोरी करके जब चला तो पुजारी ब्राह्मणकी छातीपर पैर रखकर उनके कण्ठको हाथसे पकड़कर तलवारसे मार डालनेको प्रस्तुत हुआ, तब उत्तङ्क मुनिने कहा—तुम व्यर्थमें मेरी हत्या क्यों करना चाहते हो? मैं तो निरपराध हूँ—

भो भोः साधो वृथा मां त्वं हनिष्यसि निरागसम्॥

(४।१६)

मनुष्य दूसरोंका धन अपहरण करके स्त्री आदिका पालन करता है; परंतु अन्तमें सबको छोड़कर वह अकेला ही परलोक जाता है। मेरी माता, मेरे पिता, मेरी पत्नी, मेरे पुत्र तथा मेरा यह सब कुछ इस प्रकारकी ममता व्यर्थ ही प्राणियोंको कष्ट देती रहती है—

मम माता मम पिता मम भार्या ममात्मजाः।
ममेदमिति जन्तूनां ममता बाधते वृथा॥

(४।२६)

मनुष्यके अर्जित धनका उपयोग, उपभोग तो सब करते हैं; परंतु मूर्ख प्राणी अपने किये हुए पापके फलरूप दुःखको अकेला भोगता है। अब तो ऋषिके वचनका प्रभाव जादूका-सा काम कर गया। वह व्याध बार-बार कहने लगा—मुझे क्षमा कर दीजिये। उसने प्रार्थना करके कहा—हे प्रभो! मेरा उद्धार किस प्रकार होगा? मैं किसकी शरणमें जाऊँ?

कथं मे निष्कृतिर्भूयात् कं यामि शरणं विभो।

(४।३२)

दयालु मुनिके उपदेशसे उस व्याधने चैत्रमासमें श्रीरामायणजीकी कथा सुनी। मरनेके बाद दिव्य विमानपर आरूढ़ निष्पाप व्याधने उत्तङ्क मुनिसे कहा—हे विद्वन्! आपकी कृपासे मैं महापातकोंके सङ्कटसे मुक्त हो गया। हे परोपकाररत ब्रह्मन्! मैं आपके श्रीचरणोंमें प्रणाम करता हूँ। मेरे अपराधोंको क्षमा करें—

विमुक्तस्त्वत्प्रसादेन महापातकसङ्कटात्।
तस्मान्नतोऽस्मि ते विद्वन् यत् कृतं तत् क्षमस्व मे॥

(४।४०)

इसके अनन्तर वह व्याध हरिलोक चला गया।

श्रीनारदजीने कहा—हे सनत्कुमारजी! आपने जो श्रीरामायणजीका माहात्म्य पूछा था, वह सब मैंने आपको बता दिया। अब और आप क्या सुनना चाहते हैं?

श्रीसनत्कुमारजीने कहा—हे देवर्षे! आपने श्रीरामायणजीका माहात्म्य कहा उसे सुनकर अब मैं श्रीरामायणजीके नवाह्नपारायणकी विधि सुनना चाहता हूँ—

रामायणस्य माहात्म्यं कथितं वै मुनीश्वर।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि विधिं रामायणस्य च॥

(५।२)

श्रीनारदजीने कहा—आप लोग समाहित चित्तसे रामायणजीकी विधि सुनें—

रामायणविधिं चैव शृणुध्वं सुसमाहिताः।

(५।४)

पहले स्वस्तिवाचन करके सङ्कल्प करे कि हम नौ दिवसपर्यन्त श्रीरामायण-कथामृतका पान करेंगे—

सङ्कल्पं तु ततः कुर्यात् स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।

अहोभिर्नवभिः श्राव्यं रामायणकथामृतम्॥

(५।७)

यहाँपर स्वस्तिवाचन उपलक्षण है अर्थात् कथाके अनुष्ठानमें जितनी वेदियाँ बनायी जाती हैं, जितने देवताओंका पूजन होता है, वह सब करना चाहिये।

प्रत्येक दिन प्रातःकाल अपामार्गकी शाखासे दन्तधावन करना चाहिये और रामभक्तिपरायण होकर विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये—

प्रत्यहं दन्तशुद्धिं च अपामार्गस्य शाखया।
कृत्वा स्नायीत विधिवद् रामभक्तिपरायणः॥

(५।९)

इस कथाको स्वयं सुने और अपने बन्धु-बान्धवों, इष्ट-मित्रों और सबको बुलाकर सुनावे। अपनी इन्द्रियोंको, चित्तवृत्तियोंको भगवान्में लगाकर कथा सुननी चाहिये—

स्वयं च बन्धुभिः सार्धं शृणुयात् प्रयतेन्द्रियः।

(५।१०)

प्रतिदिन देवार्चन करके, सङ्कल्प करके श्रीरामायणजीका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये—

नित्यं देवार्चनं कृत्वा पश्चात् सङ्कल्पपूर्वकम्।
रामायणपुस्तकं च अर्चयेद् भक्तिभावतः॥

(५।१२)

हवनकार्य भी करना चाहिये **'होमं कुर्यात् प्रयत्नेन'**। शुद्ध होकर इन्द्रियोंको वशमें करके सबका हितसम्पादन करते हुए जो श्रीरामायणजीका आश्रय लेते हैं, वे परम सिद्धिको प्राप्त करते हैं—

इत्येवमादिभिः शुद्धो वशी सर्वहिते रतः।
रामायणपरो भूत्वा परां सिद्धिं गमिष्यति॥

(५।२०)

गङ्गाके समान कोई तीर्थ नहीं है, माताके समान कोई गुरु नहीं है, भगवान् विष्णुके समान कोई देवता नहीं है और श्रीरामायणजीके समान कोई शास्त्र नहीं है—

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः।
नास्ति विष्णुसमो देवो नास्ति रामायणात् परम्॥

(५।२१)

कथाके अन्तमें गोदान करना चाहिये—

तदन्ते वेदविदुषे गां दद्याच्च सदक्षिणाम्।
रामायणं पुस्तकं च वस्त्रालङ्करणादिकम्॥

(५।२४)

श्रीरामायणजीकी कथा पञ्चमीसे पूर्णिमापर्यन्त श्रवण करनी चाहिये। हे महात्माओ! यतियों, ब्रह्मचारियों तथा प्रवीरोंको भी रामायणकी नवाह कथा सुननी चाहिये—

यतीनां ब्रह्मचारिणां प्रवीराणां च सत्तमाः।
नवाह्ना किल श्रोतव्या कथा रामायणस्य च॥

(५।३६)

इसलिये हे विप्रेन्द्रो! आपलोग श्रीरामायण-कथामृतका पान करें। श्रोताओंके लिये यह सर्वोत्तम श्रवणीय कथा है और पवित्रोंमें भी परम उत्तम है—

तस्माच्छृणुध्वं विप्रेन्द्रा रामायणकथामृतम्।
श्रोतॄणां च परं श्राव्यं पवित्राणामनुत्तमम्॥

(५।३८)

भगवान् श्रीरामके मन्दिरमें अथवा किसी पुण्यक्षेत्रमें एवं सन्तोंकी सभामें श्रीरामायणी कथाका प्रवचन करना चाहिये—

'वाचयेद् रामभवने पुण्यक्षेत्रे च संसदि।'

श्रीरामजी तो सर्वदेवमय हैं। श्रीरामजीकी उपासनासे समस्त देवताओंकी उपासना हो जाती है। श्रीरामजी स्मरण करनेके साथ ही दुःखी प्राणियोंके दुःखकी निवृत्ति कर देते हैं। श्रेष्ठ भक्तोंके ऊपर तो उनका सदा ही स्नेह रहता है। एक बात और अच्छी तरह जान लें कि श्रीरामजी तो भक्तिसे ही प्रसन्न होते हैं और किसी साधनसे प्रसन्न

नहीं होते हैं—

सर्वदेवमयो रामः स्मृतश्चार्त्तिप्रणाशनः॥
सद्भक्तवत्सलो देवो भक्त्या तुष्यति नान्यथा।

(५।४३-४४)

जिसकी श्रीरामरसमें भक्ति और प्रीति है वही समस्त शास्त्रोंके अर्थज्ञानमें पण्डित है और कृतकृत्य है—

यस्य रामरसे प्रीतिर्वर्तते भक्तिसंयुता॥
स एव कृतकृत्यश्च सर्वशास्त्रार्थकोविदः।

(५।४७-४८)

श्रीरामका नाम—केवल श्रीरामनाम ही मेरा जीवन है। कलियुगमें और किसी उपायसे जीवोंकी सद्गति नहीं होती, नहीं होती, नहीं होती है। महात्मा नारदजीके द्वारा इस प्रकार ज्ञानोपदेश प्राप्त करके सनत्कुमारजीको सद्यः परमानन्दोपलब्धि हो गयी—

रामनामैव नामैव नामैव मम जीवनम्॥
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।
एवं सनत्कुमारस्तु नारदेन महात्मना॥
सम्यक् प्रबोधितः सद्यः परां निर्वृतिमाप ह।

(५।५१—५३)

श्रीसूतजी कहते हैं—हे शौनकादि महर्षियो! पूर्वकालमें श्रीसनत्कुमार महर्षिके भक्तिपूर्वक प्रश्न करनेपर नारदजीने जो कुछ सुनाया था, वह मैंने आप लोगोंको सुना दिया। जो एकाग्रचित्त होकर श्रीरामायणजीकी कथा सुनता और पढ़ता है वह सर्वपापविनिर्मुक्त होकर वैष्णवलोक प्राप्त करता है—

यस्त्वेतच्छृणुयाद् वापि पठेद् वा सुसमाहितः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥

रामजी पालनेमें

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
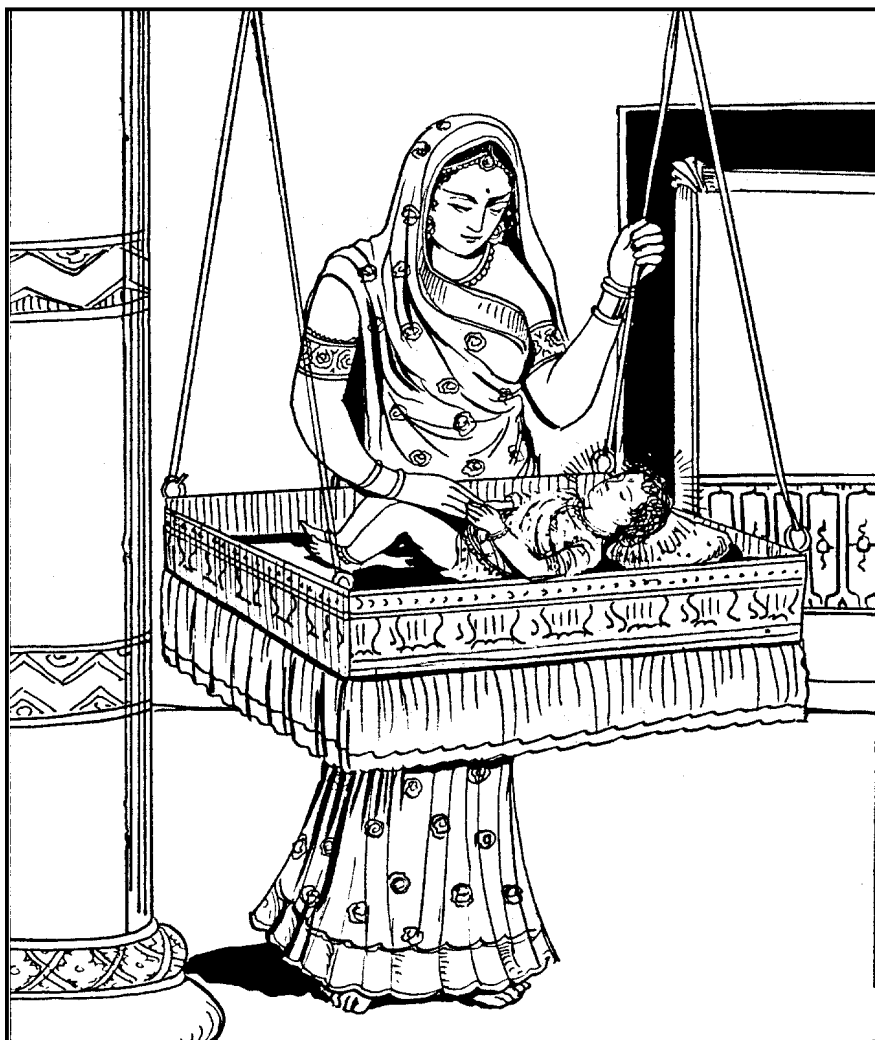
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

कथा-सुधा-सागर

बालकाण्ड

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसरस्वत्यै नमः। अस्मद् गुरुभ्यो नमः। ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः। साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः। मङ्गलमूर्तये श्रीहनुमते नमः।

ॐतपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम्॥

(१।१।१)

महान् तपस्वी महर्षि श्रीवाल्मीकिजीने तपस्या और स्वाध्यायमें निरत, समस्त विद्याओंके परिज्ञाताओंमें परम श्रेष्ठ और समस्त मननशील महात्माओंमें पुङ्गव—श्रेष्ठ, देवदर्शन देवर्षि श्रीनारदजीसे अत्यन्त सारगर्भित श्रेष्ठ प्रश्न अत्यन्त विनम्रतापूर्वक पूछा।

यह श्लोक महर्षि श्रीवाल्मीकिकी लेखनीसे निकला हुआ प्रथम श्लोक है। वैदिक वाङ्मयके पश्चात् विश्वका सर्वप्रथम पद है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डके प्रथम सर्गका प्रथम श्लोक है। श्रीरामचरितका प्रथम श्लोक है। इस श्लोकमें मङ्गलाचरण भी सन्निहित है। इस श्लोकमें श्रीमद्रामायणके वक्ता और श्रोताका संक्षिप्त परिचय है। इस श्लोकमें श्रीरामचरित्रके वक्ता और श्रोताका अनुपम लक्षण भी अन्तर्निहित है।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणका आरम्भ 'त' अक्षरसे हुआ है। '**तपःस्वाध्यायनिरतम्**'। तकारसे आरम्भ करनेका भाव—(१) जिस ग्रन्थका आरम्भ तकारसे होता है उस ग्रन्थके वक्ता-श्रोता और पाठक सौख्यकी उपलब्धि करते हैं—'**वस्तुलाभकरोणस्तु तकारः सौख्यदायकः**'। किं बहुना तकारका प्रयोग विघ्नविनाशक भी है। '**तकारो विघ्ननाशकः**'। एतावता तकारसे ग्रन्थका आरम्भ हुआ है। (२) श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणका आरम्भ 'तकार' से करनेका महत्त्वपूर्ण भाव यह भी है कि 'त' अक्षर वेदमाता भगवती गायत्रीदेवीके मन्त्रके आदिवर्णका प्रतिनिधिभूत है। श्रीगायत्रीमें चौबीस वर्ण हैं और श्रीमद्रामायणमें चौबीस हजार श्लोक हैं। एक-एक सहस्र श्लोक एक-एक अक्षरके प्रतिनिधिभूत हैं। श्रीगायत्रीमन्त्रका आरम्भ 'त' से होता है और समापन भी 'त्' से होता है। इसी प्रकार श्रीमद्रामायणका प्रारम्भ भी 'त' से होता है। '**तपःस्वाध्यायनिरतम्**' और समापन भी 'त्' से होता है—

ततः समागतान् सर्वान् स्थाप्य लोकगुरुर्दिवि।
हृष्टैः प्रमुदितैर्देवैर्जगाम त्रिदिवं महत्॥

(श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण ७।११०।२८)

श्रीगायत्रीकी आराधना करनेवालेका त्राण—रक्षा श्रीगायत्रीदेवी करती हैं। '**गायन्तं त्रायते यस्माद् गायत्री त्वं ततः स्मृता**'। इसी प्रकार श्रीमद्रामायणका गान करनेवाले रामभक्तोंकी रक्षा श्रीरामायणजी स्वयं ही करती हैं, अन्य साधनोंकी अपेक्षा नहीं है। श्रीगायत्रीकी आराधनामें सबका अधिकार नहीं है परन्तु श्रीमद्रामायणके श्रवण करनेमें प्राणिमात्र साधिकार हैं।

इस श्लोकमें चार विशेषण हैं। इनमें तीन विशेषण श्रीनारदजीके हैं और एक श्रीवाल्मीकिजीका

है। श्रीनारदजीका पहला विशेषण है '**तपःस्वाध्यायनिरतम्**'। आइये, इस विशेषणपर संक्षेपमें कुछ विचार करें।

(१) '**तपश्च स्वाध्यायश्च तपः स्वाध्यायौ तयोर्निरतं तपःस्वाध्यायनिरतम्**' अर्थात् श्रीनारदजी तपमें—चित्तप्रसादहेतुभूत व्रत—नियमादिकर्ममें तथा भगवद्विषयक स्वाध्यायमें निरन्तर निरत रहते हैं। (२) 'तप' का अर्थ है वेद। श्रुति कहती है '**तपो हि स्वाध्यायः**'। उन वेदभगवान्‌का जिनसे प्रादुर्भाव हो उन ब्रह्माजीका नाम '**तपस्सू**' है, उनके उत्कण्ठापूर्वक स्मरणद्वारा जिस परमतत्त्वकी उपलब्धि होती है, उन साकेतविहारी भगवान् रघुनन्दन श्रीमद्रामचन्द्रजीको ही '**तपस्वाध्या**' कहते हैं। उन '**तपस्वाध्या**' में—भगवान् श्रीरामचन्द्र परमात्मामें जिनका मन सर्वदा निरत है—उन्हींके मनन-चिन्तन और ध्यानमें जो सर्वदा संलग्न हैं, उन देवर्षि श्रीनारदजीसे श्रीवाल्मीकिजीने पूछा। ''**तपो वेदः', 'तपो हि स्वाध्यायः' इति श्रुतेः, तस्य सूः प्रादुर्भावो यस्मात्स तपस्सूर्ब्रह्मा तस्याध्या उत्कण्ठापूर्वकं स्मरणं तेन अयते प्राप्नोतीति सः तपःस्वाध्यायः, दिव्यधाम साकेतनित्यविहारी श्रीराघवेन्द्र रामचन्द्रः तत्र निरतं तद् ध्यानपरायणं श्रीनारदं परिपप्रच्छ**''। (३) 'तप' का अर्थ है 'ब्रह्म' अर्थात् श्रीरामजी, उन श्रीरामचन्द्रजीके स्वाध्यायमें जो निरन्तर संलग्न हैं अर्थात् जिनका एक क्षण भी भगवद्भजनके बिना नहीं व्यतीत होता है,जो क्षणका सर्वदा सुन्दर उपयोग करते हैं वे श्रीनारदजी ही तपःस्वाध्यायनिरत हैं।

'**वाग्विदां वरम्**'—'वाक्' शब्दके दो अर्थ संभव हैं '**उच्यते असौ इति वाक्**' अर्थात् जिसका उच्चारण किया जाय वह 'वाक्' शब्द वाच्य है। इस प्रकार 'वेद' भी 'वाक्' है। '**उच्यते अनया इति वाक्**' अर्थात् जिसकी कृपासे वक्तृत्व-शक्ति प्राप्त हो उसे भी 'वाक्' कहते हैं। इस प्रकार वाग्देवता भगवती भास्वती श्रीसरस्वतीजीको 'वाक्' शब्दसे अभिहित किया जाता है। '**गीर्वाक् वाणी सरस्वती**'।

(१) 'वाक्' अर्थात् 'वेद' '**अनादिनिधना ह्येषा वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा**' इसमें 'वाक्' शब्दका प्रयोग 'वेद' के ही अर्थमें है। वेदोंके अर्थोंको जाननेवालोंको '**वाग्विदः**' कहते हैं। उनमें—वेदार्थज्ञोंमें श्रीनारदजी श्रेष्ठ हैं। '**वाक् वेदः तां विदन्ति जानन्तीति वाग्विदः वेदार्थज्ञाः तेषां मध्ये वरं श्रेष्ठम्**'। (२) 'वाक्' अर्थात् सरस्वती उन श्रीसरस्वतीकी मङ्गलमयी कृपा प्राप्त करनेवालोंको '**वाग्विदः**' कहते हैं। उन श्रीसरस्वतीजीके पुत्रोंमें—कृपापात्रोंमें श्रीनारदजी भक्त होनेके कारण श्रेष्ठ हैं। एतावता वे वाग्विदांवर हैं। '**वाक् सरस्वती तया विद्यन्ते लभ्यन्ते इति वाग्विदः सरस्वतीपुत्राः भगवद्भक्ततया तेषां मध्ये श्रीनारदः वरःश्रेष्ठः**'। पहले अर्थमें '**विद्**' धातुका प्रयोग ज्ञानके अर्थमें है, '**विद् ज्ञाने**'। दूसरे अर्थमें लाभके अर्थमें है। '**विद्लृलाभे**' धातुका प्रयोग है।

(३) रामायणशिरोमणि टीकाकार कहते हैं—'**वाग्विद्भिः वेदाद्यभिज्ञैः व्रियते साकेताधीश ज्ञानलाभार्थं स्वीक्रियते पूजाऽलङ्कारादिभिः अर्च्यते वाऽसौ वाग्विदांवरः तं वाग्विदां वरम्**'। अर्थात् अयोध्यानाथ सीतानाथ अनाथनाथ श्रीसीतारामजीकी लीलाश्रवणके लिये उनका स्वरूपज्ञान करनेके लिये वाग्विदोंके द्वारा—वेदार्थज्ञोंके द्वारा जिनका वरण किया जाता है किं वा वैदिक विद्वानोंके द्वारा जिनकी अर्चना-पूजा आदि होती है, उनके द्वारा जिनका सम्मान किया जाता है, उन श्रीनारदजीको '**वाग्विदांवर**' कहते हैं।

'**मुनिपुङ्गवम्**'—'**मुनिषु पुङ्गवः मुनिपुङ्गवः तं मुनिपुङ्गवम्**' अर्थात् जो मुनियोंमें—मननशील महात्माओंमें श्रेष्ठ हो उसे 'मुनिपुङ्गव' कहते हैं। 'पुङ्गव' का अर्थ श्रेष्ठ भी होता है। '**बुधे च**

पुङ्गवःश्रेष्ठे वृषभे भिषजां वरे' (विश्वकोष)। श्रीनारदजी भगवच्चरित्रके मनन करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। इन्होंने श्रीकृष्णद्वैपायनमुनि तथा श्रीवाल्मीकि-मुनिको भी भगवल्लीलाऽमृतरसका समास्वादन कराया है, अतः ये 'मुनिपुङ्गव' हैं। ये तीन विशेषण श्रीनारदजीके—वक्ताके हैं। श्रोताका एक विशेषण है, साभिप्राय है, महत्त्वपूर्ण है और अपने-आपमें पूर्ण है।

'तपस्वी'—इन तीन अक्षरोंमें कविताकानन-कोकिल महर्षि श्रीवाल्मीकिजीका जीवनदर्शन सन्निहित है। श्रीवाल्मीकिजीकी तपस्या अपूर्व है। श्रीरामनामजपके महर्षि अनुपम उदाहरण हैं।

उलटा नामु जपत जगु जाना।
बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

(श्रीरामचरितमानस, २।१९४।८)

रामु बिहाइ 'मरा' जपतें
बिगरी सुधरी कबि कोकिलहू की।
नामहि तें गजकी, गनिकाकी,
अजामिलकी चलि गै चलचूकी॥
नामप्रताप बड़ें कुसमाज
बजाइ रही पति पांडुबधूकी॥
ताको भलो अजहूँ 'तुलसी' जेहि
प्रीति-प्रतीति है आखर दूकी॥

(श्रीकवितावली रामायण ७।८९)

नाम जपते-जपते इनका देहाध्यास समाप्त हो गया। देहाध्यासका समाप्त होना तपस्याकी चरम परिणति है। उनका शरीर वल्मीकावृत हो गया। तपस्याके द्वारा उन्हें सब कुछ मिल गया, सुतराम् वे 'तपस्वी' हैं। (२) **'तपस्वी' इत्यनेन शमदमादिसम्पत्तिरपि सिद्धा'** अर्थात् तपस्वी शब्दसे यह व्यक्त होता है कि महर्षि शमदमादि सम्पत्तिसे सम्पन्न थे। (३) **'तपो न्यासः न्यासः शरणागतिः'** तप न्यासको कहते हैं और न्यासका अर्थ शरणागति है, अर्थात् वे पूर्णरूपसे भगवान्‌की शरणागतिरूप वैष्णवधर्मसे सम्पन्न थे। किं वा श्रीनारदजीके चरणोंमें—गुरुदेवके श्रीचरणोंमें प्रणिपातरूपा शरणागतिसे सम्पन्न थे। ज्ञानप्राप्तिके लिये प्रणिपात आवश्यक है। **'तद् विद्धिप्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया'** सुतराम् श्रीवाल्मीकिको तपस्वी कहा है। (४) 'तप' का अर्थ वेद, व्याकरण और ज्ञान भी होता है। आशय यह है कि महर्षि वेद, व्याकरण और ज्ञानसम्पन्न थे। **'तपो वेदो व्याकरणं ज्ञानञ्च तद्वान्'।**

इस प्रकार वक्ता और श्रोताके गुणोंका वर्णन करके उनकी साधनाका वर्णन करके अब उनके नामका निरूपण करते हैं।

'नारदम्'—(१) भगवत्तत्त्व परिज्ञानके बिना जिसकी निवृत्ति न हो उस अज्ञानको ही 'नार' कहते हैं। नारदीयपुराणमें कहा गया है—मनुष्योंके अज्ञानान्धकारको श्रीनारद-भगवच्चरित्रज्ञापनके द्वारा निर्मूल कर देते हैं। **'न ऋच्छति विज्ञानमन्तरा न निवर्तते इति नारमज्ञानम् तद्द्यति साकेताधीशज्ञापनद्वारा निर्मूलयतीति नारदः तं नारदम्। उक्तञ्च नारदीये—'गायन्नारायणकथां सदा मायाभयापहाम्। नारदो नाशयन्नेति नृणामज्ञानजं तमः॥'**

(२) **'नॄ नये'** इस धातुसे निष्पन्न 'नर' शब्दका अर्थ परमात्मा होता है। **'नरति सद्गतिं प्रापयतीति नरः परमात्मा'।** महाभारतमें कहा भी है—**'नरतीति नरः प्रोक्तः परमात्मा सनातनः'।** नर ही नार है। जो अपने उपदेशोंके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति करा दे उसे नारद कहते हैं। **'नर एव नारः तं ददाति उपदिशतीति नारदः तं नारदम्'।** श्रीनारदजीने अपने मङ्गलमय उपदेशोंके द्वारा अनेकों भक्तोंको भगवत्-प्राप्ति करा दी, यह उनके नारद नामकी सार्थकता है। प्रस्तुत प्रसङ्गमें भी श्रीनारदजी अपनी मङ्गलमयी वाणीके द्वारा श्रीवाल्मीकिजीको श्रीमद्दशरथनन्दन, कौसल्या-

नन्दसम्वर्द्धन, रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीके मङ्गलमय पावन चरित्रका दान करेंगे अतः उन्हें 'नारद' शब्दसे अभिहित किया गया है।

संसारकी संस्कृतिमें—सभ्यतामें श्रीराम और श्रीकृष्णका अत्यन्त महत्त्व है। इन दोनों चरित्रोंके—श्रीरामचरित्र और श्रीकृष्णचरित्रके उत्स—मूल श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण और श्रीमद्भागवत-महापुराण हैं। इन दोनों ग्रन्थोंके प्रधान उपदेशक देवर्षि श्रीनारदजी ही हैं।

अत्यन्त संक्षेपमें बात समाप्त करता हूँ। श्रीनारदजीके असंख्य शिष्य हैं। उनमें मात्र चार नाम ले रहा हूँ। दो वृद्ध शिष्य और दो बालक शिष्य हैं। बालक शिष्योंके नाम हैं श्रीध्रुव और श्रीप्रह्लाद और वृद्ध शिष्योंके नाम हैं श्रीवाल्मीकि और श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास। इनके विचारोंसे संसारकी संस्कृति प्रभावित है। इनका उच्छिष्ट ही भारतीय संस्कृतिका जीवनाधार है। इनके साहित्यको निकाल दिया जाय तो कुछ बचेगा ही नहीं। परन्तु स्मरण रहे, इनके मूलमें भी श्रीनारदजीका उपदेश ही प्रधान है।

भारतीय संस्कृतिके कण-कणमें श्रीनारद-नाम परिव्याप्त है, यदि श्रीनारद न होते तो भारतीय संस्कृतिका कोना सूना हो जाता। कोई भी पौराणिक कथा श्रीनारदके बिना अग्रसर नहीं होती है। श्रीनारदका बहुत बड़ा ऋण है समाजपर। कोई भी सम्प्रदाय श्रीनारदके बिना शून्य है। हर सम्प्रदायके आचार्योंमें श्रीनारदनाम अग्रिम पङ्क्तिमें है। श्रीनारदके ऋणसे यह देश, इस देशकी संस्कृति, इस देशका साहित्य, इस देशकी सभ्यता और इस देशके भक्त उऋण नहीं हो सकते हैं। परन्तु हा हन्त! क्लेश है कि आज नारद-नामकी अवहेलना होती है। किसीने चुगली किया, निन्दा किया, लड़ाई लगायी तो लोग सद्यः कह देते हैं, नारद आ गया। मुझे शूलकी तरह ये शब्द कष्ट देते हैं। श्रीनारदजीके अनोखे व्यक्तित्वसे लोग अपरिचित हैं। मेरा मस्तक श्रीनारदजीका स्मरण करके कृतज्ञतासे झुक जाता है। मन आह्लादित हो जाता है। मैं उन देवर्षि देवदर्शन श्रीनारदजीके चरणोंमें प्रणाम करके कथा आगे बढ़ा रहा हूँ। श्रीमद्भागवतका एक श्लोक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—

अहो देवर्षिधन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत्॥

(श्रीमद्भागवतमहापुराण १।६।३९)

श्रीशौनकादि ब्रह्मर्षियोंसे श्रीसूतजी श्रीनारद महिमाका वर्णन करते हुए कहते हैं—'हे महर्षियो! प्रायः समस्त प्राणी भयसे आनन्दकी ही अभिलाषा करते हैं, परन्तु देवदर्शन श्रीनारदजी धन्य हैं—कृतार्थ हैं क्योंकि ये भगवत्प्रदत्ता दिव्य वीणाके तारोंको झङ्कृत करते शार्ङ्गपाणि श्रीहरिकी सुभद्रा कीर्तिका गान करके स्वयं तो श्रीकृष्णावेशके आनन्दसुधा सागरमें निमग्न होते ही हैं, साथ-साथ तापत्रयसे व्याकुल जगत्‌को भी अलौकिक आनन्द प्रदान करते रहते हैं।'

'**वाल्मीकिः**'—(१) अध्यात्मरामायण अयोध्याकाण्डमें श्रीवाल्मीकिजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे अपनी कथाका स्वयं वर्णन किया है। वे कहते हैं—हे लोकाभिराम श्रीराम! जिसके प्रभावसे मैंने ब्रह्मर्षिपद प्राप्त किया है, आपके उस महामहिम-नामकी महिमाका वर्णन कोई किस प्रकार कर सकता है—

राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम्।
यत्प्रभावादहं राम ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान्॥

(६।६४)

हे रघुनन्दन! पूर्वकालमें किरातोंके साथ रहकर मैं बड़ा हुआ था। मेरा ब्राह्मणत्व तो जन्ममात्रका था—मैंने केवल ब्राह्मणकुलमें जन्म ही लिया था, आचरण तो मेरा शूद्रोंका था। '**जन्ममात्रद्विजत्वं मे शूद्राचाररतः सदा**'। चोरोंका मेरा साथ था, अतः मैं भी चोर हो गया

और चोरी करने लगा—

ततश्चौरैश्च सङ्गम्य चौरोऽहमभवं पुरा।

(६।६६)

धनुष-बाण लेकर मैं कालकी तरह जीवहत्या करता था। लोग मेरे नामसे भयविह्वल हो जाते थे। एक बार भयङ्कर जंगलमें मैंने सप्तर्षियोंको जाते हुए देखा, वे अपनी आभा-प्रभाकान्तिसे अग्नि और सूर्यकी भाँति प्रकाशमान थे। '**ज्वलनार्कसमप्रभाः**'। मैं उनका वस्त्र आदि लूटनेके लिये उनके पीछे-पीछे दौड़ा और चिल्लाया, ठहरो-ठहरो। सप्तर्षियोंने मुझे देखकर पूछा—'हे ब्राह्मणाधम! तू मेरे पीछे क्यों आ रहा है?' मैंने उत्तर दिया—'हे मुनिश्रेष्ठो! मेरे परिवारमें अनेक लोग हैं, वे सब भूखे हैं, अतः आपके वस्त्र, धन आदि छीनने आ रहा हूँ।' सप्तर्षिगण मेरी बात सुनकर अव्यग्र होकर—निर्भयतापूर्वक बोले कि तू अपने घर जाकर अपने परिवारमें सबसे एक-एक करके पूछ कि मैं प्रतिदिन जो पाप सञ्चय करता हूँ उसके आपलोग भी भागी हैं अथवा नहीं हैं? मैंने ऐसा ही किया। मेरे परिवारके स्त्री-पुत्र आदि प्रत्येकने यही उत्तर दिया कि हम तुम्हारे पापके भागी नहीं हैं, वह पाप तो सब तुमको ही लगेगा, हमलोग तो केवल फलमें हिस्सा लेंगे, तुम्हारी लूटी हुई सम्पत्तिका उपभोग करेंगे। '**पापं तवैव तत्सर्वं वयं तु फलभागिनः**'। स्त्री-पुत्रादिका यह उत्तर सुनकर मेरे मनमें प्रबल निर्वेद उत्पन्न हो गया—अतिशय वैराग्य हुआ। मैं सद्यः करुणापूर्ण मनवाले मुनीश्वरोंके निकट आया, उन महामहिम मुनीश्वरोंके दर्शनमात्रसे मेरा अन्तःकरण विशुद्ध हो गया। '**मुनीनां दर्शनादेव शुद्धान्तःकरणोऽभवम्**'। मैं धनुष आदि अस्त्रोंको फेंककर रक्षाकी प्रार्थना करता हुआ उनके श्रीचरणोंमें गिर पड़ा। उन्होंने करुणा करके मेरा उद्धार करनेके लिये हे रामभद्रजी! आपके नामाक्षरोंको उलटा करके मुझसे कहा, 'तुम इसी स्थानपर निवास करके मनको समाहित करके—एकाग्र करके 'मरा मरा' जपा करो—

इत्युक्त्वा राम ते नाम व्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम्।
एकाग्रमनसात्रैव मरेति जप सर्वदा॥

(६।८०)

हे रघुनन्दन! मैं सप्तर्षियोंकी आज्ञानुसार साधना करने लगा। नाममें तदाकार हो गया। देहस्मृति विस्मृत हो गयी। दीमकने मिट्टीका ढेर देहपर लगा दिया, जिससे वह बाँबी हो गयी। हजार युग व्यतीत होनेपर वे सप्तर्षि मुझे कृतार्थ करनेके लिये पुनः पधारे और कहा कि बाँबीसे निकलो '**मामूचुर्निष्क्रमस्वेति**'। मैं वचन सुनते ही निकल आया। उस समय मुनि बोले कि आप वाल्मीकि नामके मुनीश्वर हैं; क्योंकि आपका यह जन्म वल्मीकसे हुआ है।

वल्मीकान्निर्गतश्चाहं नीहारादिव भास्करः।
मामप्याहुर्मुनिगणा वाल्मीकिस्त्वं मुनीश्वर॥

(६।८५)

इस प्रकार सप्तर्षियोंके द्वारा 'वाल्मीकि' नाम-संस्कार हुआ।

(२) श्रीवाल्मीकिजीको वरुणपुत्र भी कहा जाता है। '**वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्-रामायणात्मना**'। विष्णुपुराणमें इन्हें भृगुपुत्र भी कहा गया है। '**ऋक्षोऽभूद्भार्गवस्तस्माद्वाल्मीकि-र्योऽभिधीयते**'। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें श्रीब्रह्माजीने स्वयं इनका नाम 'वाल्मीकि' किया है—

अथाब्रवीन्महातेजा ब्रह्मालोकपितामहः।
वल्मीकप्रभवो यस्मात्तस्माद् वाल्मीकिरित्यसौ॥

श्रीगोविन्दराजजीने लिखा है कि जब भृगुपुत्र तपस्यामें इतने समाहितचित्त हुए कि उन्हें देहस्मृतिकी विस्मृति हो गयी तब उनका शरीर वल्मीकसे आच्छादित हो गया—वल्मीकमय हो गया। उस समय वरुणदेवने जलवृष्टि की, उस जलवृष्टिसे वल्मीक समाप्त हो गया और उसी वल्मीकसे

इनका प्रादुर्भाव हो गया। वरुणके द्वारा जलवृष्टिसे उत्पन्न होनेके कारण यह प्रचेतानन्दन कहलाये। वल्मीकसे उत्पन्न होनेके कारण '**वल्मीकस्याऽपत्यं वाल्मीकिः**' इस व्युत्पत्तिके अनुसार इनको वाल्मीकि शब्दसे अभिहित किया जाता है। '**निश्चलतर तपो विशेषेणास्य वल्मीकावृतौ जातायां प्रचेतसा वरुणेन कृत निरन्तरवर्षेण प्रादुर्भावोऽभूदिति भृगुपुत्रस्यैवास्य प्रचेतसोऽपत्यत्वं वल्मीकाऽपत्यत्वञ्च सङ्गच्छते। ननु कथं तत्प्रभवत्वमात्रेण तदपत्यत्वं मैवम्, गोणीपुत्रः कलशीसुत इत्यादि व्यवहारस्य तत् प्रभवेऽपि बहुलमुपलब्धेः। माऽस्त्वपत्यार्थत्वं तथापि वाल्मीकिशब्दः साधुरेव गहादिषु पठितत्वात्**'।

परिपप्रच्छ—(१) '**नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात्**' इस न्यायके अनुसार बिना प्रश्न किये उपदेश नहीं करना चाहिये। अतः श्रीवाल्मीकिने श्रीनारदजीसे पूछा। (२) "**परिः समन्ततो भावव्याप्तिदोषकथासु च। भाषाश्लेषे पूजने च वर्जने वचने शुभे॥**" इस शब्दकोषके अनुसार परिशब्दका प्रयोग पूजनके अर्थमें भी होता है। सुतराम् '**परिपप्रच्छ**' का अर्थ है '**नारदं सम्पूज्य पप्रच्छ**' अर्थात् श्रीवाल्मीकिजीने श्रीनारदजीका पूजन करके, अभिवादन करके, प्रणिपात करके प्रश्न किया। अन्यत्र शास्त्रोंमें इसी प्रकारका प्रश्न वर्णित है—

पराशरं मुनिवरं कृतपौर्वाह्णिकक्रियम्।
मैत्रेयः परिपप्रच्छ प्रणिपत्याभिवाद्य च॥

महर्षि श्रीवाल्मीकिजीने अत्यन्त भावपूर्ण शब्दोंमें पूछा—

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः॥
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे॥

(१।१।२—४)

यह प्रश्न श्रीरामजीके राज्यकालमें हुआ है। '**अस्मिन् काले**' अर्थात् वर्तमानकालमें, अतीत-कालमें और भविष्यकालमें नहीं। अतीतकालमें श्रीनृसिंह, श्रीवामन और श्रीपरशुरामादि अवतार हो गये हैं। भविष्यकालमें श्रीकृष्णादि अवतार होंगे, परन्तु श्रीवाल्मीकिजीका प्रश्न है '**कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके**' अर्थात् वर्तमानकालमें वक्ष्यमाण गुणोंसे सम्पन्न कौन है। साथ ही प्रश्न है '**अस्मिन् लोके**' अर्थात् भूलोकमें, वैकुण्ठादि लोकमें नहीं। आशय यह है कि महर्षि पूछते हैं 'वर्तमानकालमें इस भूतलपर सकल कल्याण-गुणसम्पन्न कौन है? सर्वप्रथम '**गुणवान् कः**' यह पूछ करके आगे उसीकी व्याख्या करते हैं। श्रीगोविन्दराजजी गुणवान्‌का अर्थ करते हैं सुशील स्वभाव। '**गुण्यते आवर्त्यते पुनः पुनः आश्रितैः अनुसन्धीयते इति गुणः सौशील्यम्**'। अर्थात् जिसका भक्तोंके द्वारा बार-बार अनुसन्धान हो। पुनः-पुनः संस्मरण हो उसे गुण कहते हैं। भक्तोंके द्वारा भगवान्‌के सौशील्यका—शील-स्वभावका '**नैरन्तर्येण मुहुर्मुहुः**' अनुशीलन होता रहता है। भगवान् श्रीरामके शीलस्वभावका श्रवण करके, मनन करके जिसका मन आनन्दविभोर न हो जाय, जिसका शरीर रोमाञ्च कण्टकित न हो जाय और जिसकी आँखें चूने न लगें, वह मन्दभाग्य है—

सुनि सीतापति-सील-सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल, सो नर खेहर खाउ॥

(विनयपत्रिका १००)

श्रीवाल्मीकिजीने सोलह गुणोंकी जिज्ञासा की है। वे पूछते हैं कि वर्तमानकालमें इस धरतीपर गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दृढप्रतिज्ञ, सत्य वक्ता, चरित्रवान्, विद्वान्, सामर्थ्यवान्, आत्मवान्, द्युतिमान्, प्राणिमात्रके हितमें तत्पर, क्रोधजयी, किसीकी निन्दा न करनेवाला, जिसके संग्राममें क्रुद्ध होनेपर देवता भी डरते हैं और अद्वितीय प्रियदर्शन विषयीभूत इन गुणग्रामोंसे

सम्पन्न कौन महापुरुष है? इन सोलह गुणोंमें समस्त श्रीरामचरित्र समाया हुआ है। इन्हींकी व्याख्या सम्पूर्ण रामायणमें है। इन्हीं गुणोंमें श्रीरामका जीवनदर्शन सन्निहित है। ये सोलह गुण मात्र गुण नहीं हैं अपितु पूर्णब्रह्म परमात्माकी षोडश कलाएँ हैं, इन गुणसमूहोंका आश्रय प्राकृतप्राणी नहीं हो सकता है। ये गुण तो मात्र भगवान् श्रीरामचन्द्र परमात्मामें ही सम्भव हैं।

इन प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिये जब श्रीनारद प्रस्तुत हुए तब उन्हें एक विशेषण दिया है '**श्रुत्वा चैतत्त्रिलोकज्ञः**'। 'त्रिलोकज्ञ' का अर्थ है जो भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक तीनों लोकोंकी गतिविधियोंको, प्राणियोंको, उनके व्यवहारको और उनके चरित्रोंको भलीभाँति जानता है। '**भूर्भुवः स्वर्लोक लक्षणान् त्र्यवयवलोकान् तत्रत्य वृत्तान्तं जानातीति त्रिलोकज्ञः**'। लल्लू, बुद्धू, जगधर, ऐरे-गैरे नत्थू खैरे, अल्पज्ञप्राणी इन प्रश्नोंका उत्तर नहीं दे सकते हैं। इन प्रश्नोंका उत्तर तो श्रीनारदजीकी ही तरह कोई महाभागवत महापुरुष ही दे सकता है। इन प्रश्नोंकी जिज्ञासा भी श्रीवाल्मीकिजीकी तरह किसी महान् तपस्वी परम श्रीवैष्णवके मनमें ही उत्पन्न हो सकती है। इन अनुपम श्रोता-वक्ताके श्रीचरणोंमें हमारी प्रणतिपूर्वक प्रार्थना है कि हमें भी किञ्चित् सामर्थ्य प्रदान करें, जिससे कि हमलोग भगवच्चरित्रकी छायाका स्पर्शमात्र करके स्वयंको कृतार्थ करें।

श्रीनारदजीने भावपूर्ण वाणीमें उत्तर दिया—

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।

(१।१।८)

महान् पवित्रवंश इक्ष्वाकुवंशमें आविर्भूत श्रीरामनामसे प्रख्यात महापुरुष हैं। हे महर्षे! आपके द्वारा पूछे हुए समस्त गुणग्राम उन्हीं श्रीराममें विद्यमान हैं और जिन गुणोंको आपने नहीं पूछा है वे भी समस्त गुणगण उन्हीं निखिल गुणगणनिलय श्रीरामजीमें ही विद्यमान हैं। राम शब्दपर थोड़ा विचार करें। (क) कर्मयोगी, भक्तियोगी और ज्ञानयोगीगण जिनमें रमण करें उन्हें राम कहते हैं। '**रमन्ते कर्मज्ञानभक्तियोगिनः यस्मिन् सः रामः**'। (ख) दान देनेमें ही जिनकी शोभा है, जिनके दरबारसे याचक कदापि निराश नहीं लौटता है उन्हें राम कहते हैं। '**राः दानमेव मा लक्ष्मीर्यस्य सः रामः, अनिवृत्तदातृत्ववानित्यर्थः**'। (ग) जो अपने आश्रितजनोंको आनन्द देते हैं वे रामशब्दसे अभिहित किये जाते हैं। '**रमयति स्वकान् इति रामः**'। (घ) जो अपने नामके रेफमात्रके उच्चारणसे ही अपने आश्रितोंके हृदयकमलमें निवास कर लेते हैं, उन्हें राम कहते हैं। '**रेण रामवाचक महामन्त्ररूप रकारोच्चारणेन अमति आश्रितहृदये प्राप्नोतीति रामः**'। '**जनैः श्रुतः**' का भाव यह है कि त्रैलोक्यमें श्रीरामके नामका सर्वाधिक प्रचार हुआ है। आज भी जीनेमें, मरनेमें, आनेमें, जानेमें, प्रणाम करनेमें रामनामका प्रचार दिखायी पड़ता है। नगरमें तथा ग्राममें सर्वत्र रामनामकी ध्वनि सुनायी पड़ती है। श्रीकृष्णभगवान्के व्रजक्षेत्रमें भी गाँवोंमें आप चले जायँ तो प्रणाम आदि करनेमें रामनाम ही सुनायी पड़ता है। वे व्रजवासी आपसमें राम-राम कहते हैं—

रामो रामश्च रामेति कर्णे कर्णे जपञ्जनः।

श्रीरामकथाविशारद श्रीनारदजीने सम्पूर्ण श्रीरामकथा बीजरूपमें श्रीवाल्मीकिजीको सुना दी। यह संक्षिप्त कथा श्रीरामायणजीके प्रथम सर्गमें ही है। इस सर्गमें सौ श्लोक हैं। भक्तलोग इस सर्गका नित्य पाठ करते हैं। इसीकी व्याख्या सात काण्डोंमें है। यही श्रीरामकथाका बीज है। यही बीज बढ़कर '**शतकोटिप्रविस्तरम्**' के रूपमें विशाल वटवृक्ष हो गया। जिसके नीचे—जिसकी शीतल छायामें सर्वत्र सर्वकालमें

भक्तोंको विश्राम मिलता है—

नारदस्य तु तद् वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविशारदः।
पूजयामास धर्मात्मा सहशिष्यो महामुनिम्॥

(१।२।१)

कथाविशारद श्रीनारदजीसे संक्षिप्त रामकथा श्रवण करके वाक्यविशारद धर्मात्मा श्रीवाल्मीकिने शिष्योंके सहित महामुनि श्रीनारदजीका पूजन किया। इस श्लोकमें श्रीवाल्मीकिके दो विशेषण हैं—वाक्यविशारद और धर्मात्मा। वाक्यविशारदका अर्थ है, जिसकी वाणी व्याकरण आदि संस्कारसे सम्पन्न है और विचित्र अर्थवाली है। '**विशारदो विशिष्टा व्याकरणसंस्कारादि विशेषवती विचित्रार्था च शारदा वाणी यस्य सः विशारदः**'। भाव कि श्रीवाल्मीकिने अपनी विशिष्ट वाणीके द्वारा श्रीनारदजीका स्तवन किया। धर्मात्माका अर्थ है, '**धर्मे आत्मा बुद्धिर्यस्यासौ धर्मात्मा**' अर्थात् श्रीरामकथा श्रवण करनेके पश्चात् श्रीवाल्मीकिजीकी बुद्धि, उनका मन और उनका शरीर सब कुछ धर्ममें—धर्मस्वरूप श्रीराममें लग गया। '**रामो विग्रहवान् धर्मः**'। भाव यह है कि श्रीरामकथा सुनकर वे श्रीराममय हो गये। कथा श्रवण करनेका यही चरम फल है। राममय श्रीवाल्मीकिजीका भावपूर्ण पूजन स्वीकार करके श्रीनारदजी आकाशमार्गसे चले गये।

श्रीवाल्मीकिजी कथा सुननेके पश्चात् अपने शिष्य श्रीभरद्वाजजीको साथमें ले करके तमसा नदीके तटपर गये। तमसा-तटके सन्निकट ही क्रौञ्च पक्षियोंका एक जोड़ा कामासक्त होकर विहार कर रहा था। उनकी वाणी मधुर थी। वे दोनों अनपायी थे अर्थात् एक-दूसरेका क्षणिक वियोग भी नहीं सहन कर सकते थे। उनका आपसमें बड़ा प्यार था।

उसी समय पापपूर्ण निश्चयवाले एक निषादने महर्षिके देखते-देखते उनमेंसे एकको—नर क्रौञ्चको बाणसे मार डाला। स्त्री पक्षी—क्रौञ्ची करुण स्वरमें विलाप करने लगी। उस करुण चीत्कारका श्रवण करके महर्षिका भावुक हृदय तड़प उठा, चीत्कार कर उठा, करुणासे द्रवित हो गया, शोकाभिभूत हो गया। हा हन्त! इस निरीह पक्षीको मार करके, इस अतृप्त पक्षीका वध करके तुझे क्या मिल गया। अरे निषाद! अरे क्रूर! अरे पाषाणहृदय! अरे निर्दय! तूने अनर्थ कर डाला। यह सोचते-सोचते महर्षिके करुणाविगलित हृदयसे एक श्लोक निकल गया—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

(१।२।१५)

अरे निषाद! तुझे अनन्तकालतक शान्ति न मिले; क्योंकि तूने इस क्रौञ्च युगलमेंसे एकको, जो काममोहित हो रहा था और अतृप्त था उसको निर्दयतापूर्वक मार डाला और एकको तड़पनेके लिये छोड़ दिया।

प्रत्यक्ष देखनेमें तो इस श्लोकमें शाप दीख रहा है। महर्षिकी करुणा छलक रही है, परन्तु सूक्ष्मदर्शी सन्तोंने, आचार्योंने इन बत्तीस अक्षरोंके अनुष्टुप् छन्दमें अनेक भावोंके दर्शन किये हैं। इसके कई प्रकारसे अर्थ किये हैं। कतिपय आचार्योंने इसे आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण माना है और कुछ आचार्योंने इन बत्तीस अक्षरोंमें सातों काण्डोंकी कथाका बीज है, इस प्रकार अनुसन्धान किया है। समयाभावके कारण सबके श्रीचरणोंमें प्रणाम करते हुए मात्र एक विशेष अर्थ करते हुए आगे बढ़ूँगा—

'**इन्दिरा लोकमाता मा क्षीरोदतनया रमा**' इस कोषके अनुसार '**मा**' का अर्थ लक्ष्मी है। वे श्रीलक्ष्मीजी—करुणामयी श्रीसीताजी जिनके वामभागमें सर्वदा निवास करती हैं उन श्रीरामजीका ही नाम '**मा निषाद**' है। हे मा निषाद! हे

लक्ष्मीरमण! हे सीतारमण! आपने क्रौञ्च युगलमेंसे एकका अर्थात् मन्दोदरी-रावणमेंसे एकका—काममोहित रावणका वध करके संसारका अनन्त उपकार किया है। सुतराम् आप अनेक सम्वत्सरपर्यन्त अनुपम प्रतिष्ठा अखण्ड ऐश्वर्यानन्द समुपलब्ध करें।

"क्रौञ्च हन्तृप्रत्यक्षदृश्यमान निषादशाप-रूपोऽर्थस्तु स्पष्ट एव। किञ्च मा लक्ष्मीर्निषीद-त्यस्मिंस्तत्सम्बोधनं मा निषाद! यद् यस्माद्धेतोः क्रौञ्चमिथुनान्मन्दोदरीरावणरूपादेकं काममोहितं रावणमवधीर्हतवानसि तस्मात्त्वं शाश्वतीः समा अनेकान् सम्वत्सरानद्वितीयां प्रतिष्ठामखण्डैश्वर्या-नन्दावाप्तिमगमः प्राप्नुहि।"

श्रीरामायणशिरोमणि टीकाकारने तथा श्रीगोविन्दराजजीने इस श्लोकमें सातों काण्डोंकी कथाका अनुसन्धान किया है। '**मा निषाद**' इस पदसे बालकाण्डकी कथाका उद्‌बोधन किया है। बालकाण्डकी कथाका पर्यवसान श्रीसीताजीके परिणयमें ही होता है। '**प्रतिष्ठां त्वमगमः**' से अयोध्याकाण्डकी कथा सूचित की है। '**शाश्वतीः समाः**' से अरण्यकाण्डकी कथा सूचित की है। '**यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्**' से बालि-वध प्रधानवाली किष्किन्धाकाण्डकी कथा अभिहित की गयी है। '**क्रौञ्च**' इस शब्दमें श्रीरामविरहके कारण कृश शरीरवाली श्रीसीताजीकी कथासे युक्त सुन्दरकाण्डकी कथा सन्निहित है। पुनः '**यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्**' से रावणवध-सम्बन्धिनी युद्धकाण्डकी कथाका उद्‌बोधन किया है। पुनः '**शाश्वतीः समाः**' से उत्तरकाण्डकी कथाका विचार किया है।

महर्षि श्रीवाल्मीकिके मुखारविन्दसे निकली हुई यह पहली कविता है। महर्षिने अपने प्रिय शिष्य श्रीभरद्वाज मुनिसे कहा कि हे वत्स! मेरे मुखसे सहसा जो वाक्य निकल गया है वह कितना विलक्षण है। यह चार चरणोंमें आबद्ध है। इस छन्दके प्रत्येक चरणमें आठ-आठ अक्षर हैं। यह छन्द वीणाकी लयपर भी भलीभाँति गाया जा सकता है—

पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः।

(१।२।१८)

श्रीवाल्मीकि स्नानादिसे निवृत्त होकर अपने आश्रममें आसनपर विराजमान थे, परन्तु उनका मन सोच रहा था, अहा! मेरे हृदयमें कैसी करुणा आ गयी, मेरे मुखसे सहसा यह सुन्दर छन्द कैसे निकल गया? वे सोच ही रहे थे कि उसी समय अचानक लोकनिर्माणकर्ता, परमसमर्थ, परमतेजस्वी, चतुर्मुख ब्रह्माजी मुनिश्रेष्ठसे मिलनेके लिये स्वयं कृपा करके उनके आसनपर पधारे—

आजगाम ततो ब्रह्मा लोककर्ता स्वयं प्रभुः।
चतुर्मुखो महातेजा द्रष्टुं तं मुनिपुङ्गवम्॥

(१।२।२३)

अचानक श्रीब्रह्माजीका दर्शन करके श्रीवाल्मीकिजी झटिति उठकर खड़े हो गये। अत्यन्त कौतूहलके कारण कुछ कालपर्यन्त तो वे कुछ बोल ही न सके। प्रकृतिस्थ होकर उन्होंने पाद्य, अर्घ्य, आसन और वन्दनके द्वारा श्रीब्रह्माजीका पूजन किया। श्रीब्रह्माको आसनपर बैठाया परन्तु स्वयं खड़े रहे। विनम्र शिष्य अथवा पुत्र आज्ञाके बिना आसन नहीं ग्रहण करते हैं। ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर वे भी आसनपर बैठ गये। '**ब्रह्मणा समनुज्ञातः सोऽप्युपाविशदासने**'। श्रीब्रह्माके सामने बैठकर भी श्रीवाल्मीकि क्रौञ्चीकी करुण चीत्कारका ही ध्यान करने लगे। अपने मुखसे निकले हुए अपूर्व छन्दका स्मरण करने लगे। उस समय ब्रह्माजीने कहा कि हे ब्रह्मन्! अर्थात् हे वेदतत्त्वार्थ-वेत्तः! इस छन्दके विषयमें अन्यथा विचार न करो। मेरे सङ्कल्प किं वा प्रेरणासे ही

तुम्हारे मुखसे ऐसी विलक्षण वाणी निकली है—

श्लोक एवास्त्वयं बद्धो नात्र कार्या विचारणा।
मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती॥

(१।२।३१)

'**मच्छन्दात्**' का अर्थ रामायणशिरोमणि टीकाकारने इस प्रकार किया है—'**मच्छन्दात् मह्यं मत्कल्याणार्थं छन्दः प्रादुर्भावे सङ्कल्पो यस्य सः मच्छन्दः रामः तस्मात्**' मेरे कल्याणके लिये ही जिन्होंने संसारमें प्रकट होनेका सङ्कल्प किया है, उन श्रीरामजीकी कृपासे ही तुम्हारे मुखसे '**मा निषाद**' आदि सरस्वती प्रवृत्त हुई है। इस अर्थमें श्रीब्रह्माजीकी रामभक्तिका दर्शन होता है।

सरस्वती तो भगवत्प्रेरणासे ही कार्य करती है। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—

सारद दारुनारि सम स्वामी।
रामु सूत्रधर अंतरजामी॥
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी।
कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥

श्रीब्रह्मा कहते हैं कि हे आदिकवे! भगवान् श्रीरामकी प्रेरणासे ही श्रीनारदजी भी आपके पास आये हैं। श्रीरामजीकी प्रेरणासे ही मैंने अपने पुत्र नारदको तथा पत्नी सरस्वतीको तुम्हारे सन्निकट भेजा है। एतावता हे ऋषिश्रेष्ठ! अब आप मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रके सम्पूर्ण चरित्रोंका विस्तारपूर्वक वर्णन करें। हे भगवन्! परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीराम संसारमें सबसे बड़े धर्मात्मा और धीर पुरुष हैं। 'धीर' का भाव कि '**धियः रावणादीनां अयोध्याप्रजानाञ्च ब्रह्मादीनाञ्च बुद्धीः ईरयति प्रेरयतीति धीरः**'। आपने श्रीनारदके मुखसे जैसा श्रवण किया है उसीके अनुसार वर्णन करिये। श्रीनारद एक अधिकारी गुरु हैं—

रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम।
धर्मात्मनो भगवतो लोके रामस्य धीमतः॥
वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम्।

(१।२।३२-३३)

भगवान् श्रीनारदकी कृपासे—गुरुकृपासे आपको श्रीरामजीके गुप्त एवं प्रकट सम्पूर्ण चरित्र अज्ञात होनेपर भी ज्ञात हो जायँगे—

तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति।

(१।२।३५)

सूझहिं राम चरित मनि मानिक।
गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥
जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मेरा आशीर्वाद है कि इस काव्यमें अङ्कित आपकी कोई भी बात अनृत—असत्य नहीं होगी, असम्भावित अर्थवाली नहीं होगी—

न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति।

(१।२।३५)

'आपकी बात अनृत नहीं होगी' का भाव यह है कि आप अपनी तपोपूत लेखनीके द्वारा जो कुछ भी लिख देंगे वह चरित्र करुणामय, भक्तवत्सल श्रीभगवान् रामचन्द्र परमात्माको करना ही पड़ेगा—

यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥

(श्रीमद्भागवत ३।९।११)

इस प्रकार आश्वस्त करके, आशीर्वाद दे करके, वरदान दे करके रामचरित्र रचनेकी आज्ञा देकर श्रीब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये—

उपस्पृश्योदकं सम्यङ्मुनिः स्थित्वा कृताञ्जलिः।
प्राचीनाग्रेषु दर्भेषु धर्मेणान्वेषते गतिम्॥

(१।३।२)

मुनिश्रेष्ठ श्रीवाल्मीकिजी पूर्वाग्र कुशोंके आसनपर आसीन हो गये। यथाविधि—यथाशास्त्र आचमन

किया। आचमनका अर्थ जल पीना नहीं होता है। आचमनकी विधि होती है। धार्मिक कृत्यसे पूर्व आचमनका बड़ा महत्त्व है। आचमन निःशब्द होना चाहिये, आचमनका जल अफेनिल होना चाहिये और भगवन्नामोच्चारणपूर्वक आचमन करना चाहिये। '**उपस्पृश्योदकं सम्यक्**'। महर्षि गद्गद होकर कृताञ्जलि हो गये—हाथ जोड़ लिये। हाथ जोड़कर भगवान्‌की करुणाका स्मरण करने लगे। उन प्रभुको मेरा प्रणाम है जिन्होंने मन, कर्म और वचनसे मुझपर कृपा की है। उन प्रभुको मेरा वन्दन है जिन्होंने करुणा करके अपना मन श्रीनारदजीके रूपमें मेरे पास भेजा है। उन प्रभुको मेरा नमस्कार है जिन्होंने करुणा करके अपना कर्म श्रीब्रह्माके रूपमें मेरे पास भेजा है। उन प्रभुको मेरा प्रणाम है जिन्होंने करुणा करके अपने वचनको सरस्वतीके रूपमें मेरे पास भेजा है।

भगवान्‌ने अपनी मङ्गलमयी करुणाको—श्रीसीताजीको श्रीवाल्मीकिजीके पास भेजा है। प्रभुने श्रीलक्ष्मणको अत्यन्त स्पष्ट आदेश दिया है—'हे सुमित्रानन्दन! दोहदावस्थासम्पन्ना श्रीसीताको परम कारुणिक वत्सलहृदय महात्मा श्रीवाल्मीकिजीके आश्रमके पास पहुँचाकर आना।' '**गङ्गायास्तु परे पारे वाल्मीकेस्तु महात्मनः**'। गोस्वामी श्रीतुलसी-दासजीने भी लिखा है—

जानि करुनासिंधु भाबी-बिबस सकल सहाइ।
धीर धरि रघुबीर भोरहि लिए लषन बोलाइ॥
'तात तुरतहि साजि स्यंदन सीय लेहु चढ़ाइ।
बालमीकि मुनीस आस्रम आइयहु पहुँचाइ'॥
'भलेहि नाथ', सुहाथ माथे राखि राम-रजाइ।
चले तुलसी पालि सेवक-धरम अवधि अघाइ॥

(गीतावली रामायण ७। २७)

जब मुनि-कुमारोंने भगवान् वाल्मीकिको यह समाचार दिया—'भगवन्! गङ्गातटपर कोई देवी रुदन कर रही हैं, हमने उन्हें अपनी आँखोंसे देखा है—'

दृष्टास्माभिः प्ररुदिता दृढं शोकपरायणा।
अनर्हा दुःखशोकाभ्यामेका दीना अनाथवत्॥

(७। ४९। ५)

यह संवाद सुनते ही महर्षि दौड़ पड़े। उन्हें सब कुछ ज्ञात हो गया था—

तेषां तु वचनं श्रुत्वा बुद्ध्या निश्चित्य धर्मवित्॥
तपसा लब्धचक्षुष्मान् प्राद्रवद् यत्र मैथिली।

(७। ४९। ७-८)

'तप' श्रीरामजीका नाम है। अभी-अभी मैंने '**तपःस्वाध्यायनिरतम्**' की व्याख्यामें बताया है। '**तपसा लब्धचक्षुष्मान्**' का अर्थ है कि श्रीरामजीकी करुणाके द्वारा करुणामयी श्रीसीताजीको समझनेकी दिव्य दृष्टि उन्हें प्राप्त हो गयी थी। समस्त अनागत—भविष्य उन्हें प्रत्यक्षकी भाँति दिखायी पड़ रहा था। मानो श्रीरामजी कह रहे हैं—'हे आदिकवे! मैं करुणा करके अपनी करुणाको करुणामयी श्रीजानकीके रूपमें आपके पास भेज रहा हूँ। यह मेरी करुणा आपको श्रीरामचरित्रकी प्रेरणा देती रहेगी। आपके हृदयको करुणापूर्ण बनाती रहेगी। श्रीरामकथा लिखनेयोग्य हृदयका भी यही निर्माण करेंगी।'

महर्षि वाल्मीकिने ठाकुरजीकी उस करुणाको प्रणाम किया। अपने गुरुदेव श्रीनारदजीको, श्रीब्रह्माजीको, वाग्देवता श्रीशारदाको और भगवती भास्वती करुणामयी, प्रेरणास्वरूपा, रामवल्लभा श्रीजानकीजीको प्रणाम किया। महर्षि समाधिके द्वारा सपरिकर श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रोंका अनुसन्धान करने लगे।

जब भावुक वक्ता अथवा कवि श्रीरामचरित्र कहनेके लिये किं वा लिखनेके लिये प्रस्तुत होता है तब उसी समय सम्पूर्ण रामचरित्र उस भक्तके हृदयमें कृपा करके पधार जाते हैं।

हर हियँ रामचरित सब आए।
प्रेम पुलक लोचन जल छाए॥

श्रीरघुनाथ रूप उर आवा।
परमानंद अमित सुख पावा॥
मगन ध्यानरस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥

(श्रीरामचरितमानस १।१११।७-८, दो० १११)

महर्षि वाल्मीकिजीके भी पावन मनमें श्रीरामजीके मङ्गलमय चरित्र नृत्य करने लगे—

ततः पश्यति धर्मात्मा तत्सर्वं योगमास्थितः।
पुरा यत् तत्र निर्वृत्तं पाणावामलकं यथा॥

(१।३।६)

धर्ममें अर्थात् श्रीराममें ही जिनकी आत्मा अर्थात् मन लगा हुआ है ऐसे धर्मात्मा श्रीवाल्मीकिजीने पूर्वकालमें जो-जो चरित्र हुए थे उन सबको वहाँ अपने हाथपर रखे हुए धात्रीफलकी तरह—आँवलेकी तरह प्रत्यक्ष देखा। सपरिकर श्रीरामजीका हँसना, बोलना, चलना और राज्यपालन आदि जितनी चेष्टाएँ हुईं उन सबका प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया। इस प्रकार श्रीवाल्मीकिजीने श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणका निर्माण किया। सम्पूर्ण ग्रन्थ पूर्ण हो गया—

रघुवंशस्य चरितं चकार भगवान् मुनिः॥

(१।३।९)

'**भगवान् सः ऋषिः रघुवंशस्य रघुवंशोद्भवस्य रामस्य चरितं पूर्वं नारदेन देवर्षिणा यथाकथितं येन प्रकारेणोक्तं तथा चकार**'। रघुवंशका अर्थात् रघुवंशमें समुत्पन्न श्रीरामका चरित्र, जिस प्रकार पहले श्रीनारदजीने वर्णन किया था उसीके अनुसार अपनी काव्यमयी भाषामें वर्णन किया। '**भगवान्**' कहनेका आशय यह है कि श्रीरामजीके चरित्रकी रचना साधारण कवि, विद्वान् अपनी बुद्धिमत्तासे और विद्वत्तासे नहीं कर सकता है। ठाकुरजीके चरित्रको तो कोई भाग्यवान् भगवान् ही कर सकता है। इसी प्रकारका वर्णन श्रीमद्भागवतमें भी है।

यह निर्माण कबका है इसका भी निर्देश कर रहे हैं—

प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत्॥
चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः।
तथा सर्गशतान् पञ्च षट्काण्डानि तथोत्तरम्॥

(१।४।१-२)

रावणका वध करके वनसे लौटकर जब श्रीरामजीने श्रीअयोध्याके राज्यका शासन अपने हाथमें ले लिया, तत्पश्चात् श्रीरामायणमहाकाव्यका निर्माण हुआ है। विलक्षण पदों और अर्थोंसे सम्पन्न इस श्रीरामायणमहाकाव्यमें आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने चौबीस हजार श्लोक, पाँच सौ सर्ग तथा सात काण्डोंका प्रतिपादन किया है।

एक सामान्य नियम है कि जब व्यक्ति कुछ सम्पत्ति अर्जित कर लेता है तब सोचता है कि इसका उत्तराधिकारी कौन होगा? इसका उपभोग कौन करेगा? बहुत लोग तो विवाह कर लेते हैं, पुत्र नहीं होता है तो दूसरा विवाह कर लेते हैं। उत्तराधिकारी आवश्यक है।

महर्षि श्रीवाल्मीकिकी अनन्तकालकी साधना फलवती हो गयी है। श्रीनारदजीकी शिक्षा सफल हो गयी है। श्रीरामचन्द्रका अपार चरित्र-सागर गागरमें समा गया है। अलौकिक महाकाव्य निर्मित हो गया है। श्रीजानकीजानिकी महती करुणा चौबीस हजारकी संहिताके रूपमें समुच्छलित हो गयी है। आज महर्षि स्वयंको कृतकृत्य अनुभव कर रहे हैं। परन्तु साथ ही चिन्ता हो गयी है। आदिकवि सोचते हैं, इसे कौन कण्ठ करेगा? महती सभाओंमें इसे कौन सुनायेगा?

चिन्तयामास को न्वेतत् प्रयुञ्जीयादिति प्रभुः॥

(१।४।३)

जबतक उत्तराधिकारी सुयोग्य शिष्य नहीं मिलता तबतक गुरुऋण समाप्त नहीं होता है।

यह चिन्ता भी साधारण गृहस्थकी चिन्ता नहीं है। साधारण साधुकी भी चिन्ता नहीं है अपितु महाप्राज्ञकी चिन्ता है। '**महती पूजनीया प्रज्ञा यस्य सः महाप्राज्ञः वाल्मीकिः**'। साधारण सम्पत्तिके अधिकारीकी चिन्ता नहीं है, अपितु विश्ववाङ्मयके अनोखे महाकाव्य श्रीमद्रामायणके अधिकारीकी चिन्ता है। '**कः पुरुषः प्रयुञ्जीयात्? वाग्विधेयं कुर्यात्?**'

जो महर्षि 'भावितात्मा' हैं, श्रीरामचरित्रके निर्माणसे जिनका अन्तःकरण परिशुद्ध हो गया है। '**भावितात्मनः**'—**श्रीरामचरितबन्धनेन शुद्धचित्तस्य**'। वे चिन्ता कर ही रहे थे कि उसी समय श्रीठाकुरजीकी करुणामयी करुणा उद्वेलित हो गयी और वह करुणा—करुणामय श्रीरामकी करुणा श्रीलवकुशके रूपमें आकर महर्षिके चरणोंमें लोट-पोट हो गयी—

तस्य चिन्तयमानस्य महर्षेर्भावितात्मनः।
अगृह्णीतां ततः पादौ मुनिवेषौ कुशीलवौ॥

(१।४।४)

मुनिके वेषमें श्रीलवकुशने आकर गुरुचरणोंमें प्रणाम किया। आदिकवि लवकुशको विस्फारित नेत्रोंसे देख रहे हैं। मानो आजके पूर्व यह अपूर्व दर्शन कभी नहीं हुआ। वे सोचने लगे—'अहो! इनसे बढ़कर अधिकारी पात्र कौन होगा? इनको तो मैंने ही पढ़ाया है। ये समस्त वेद-वेदाङ्गमें पारङ्गत हो गये हैं। इनमें कोई कमी भी नहीं है। एक कथाकारमें जितने गुण होने चाहिये वे सभी इनमें हैं। ये दोनों जानकीनन्दन धर्मज्ञ हैं—गुरु-शुश्रूषापरायण हैं, यशस्वी हैं, इनका स्वर अतिशय मधुर है, इनकी धारणाशक्ति भी—मेधा भी अप्रतिम है—'

कुशीलवौ तु धर्मज्ञौ राजपुत्रौ यशस्विनौ।
भ्रातरौ स्वरसम्पन्नौ ददर्शाश्रमवासिनौ॥
स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ।

(१।४।५-६)

'**तावाग्राहयत प्रभुः**' 'प्रभु'—दुर्बोध पदार्थज्ञान करानेमें समर्थ श्रीवाल्मीकिने श्रीलवकुशको श्रीरामायणजीका विधिवत् अध्ययन कराया। वे श्रीमद्रामायणके अधिकारी विद्वान् हो गये।

श्रीलवकुशने अपनी पहली कथाका शुद्धान्तः-करणवाले महात्माओंकी सभामें गान किया। अनेक स्थानोंसे, तीर्थोंसे, लीलाक्षेत्रोंसे अनेक प्रकारके साधु, संन्यासी, ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, हंस, परमहंस, श्रीपरमहंस, ऋषि, महर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, काण्डर्षि, परमर्षि पधारे। श्रीजनकनन्दिनी-नन्दन लवकुश जब कथा कहने लगे तब ऐसा ज्ञात होता था मानो श्रीरामजी स्वयं अपनी कथा कह रहे हैं। श्रीरामजीके मङ्गलमय दिव्यविग्रहसे समुत्पन्न दोनों मिथिलेश राजकिशोरी-किशोर दूसरे युगल श्रीराम ही प्रतीत होते थे। श्रीरामजीकी ही तरह सुन्दर स्वरूप और शुभ लक्षण उनकी सहज सम्पत्ति थी। वे दोनों भाई मिष्टभाषी थे—

रूपलक्षणसम्पन्नौ मधुरस्वरभाषिणौ।
बिम्बादिवोत्थितौ बिम्बौ रामदेहात्तथापरौ॥

(१।४।११)

लवकुशने सभाके मध्यमें मुनियोंके समीप बैठकर श्रीमद्रामायणमहाकाव्यका गान किया। अमलात्मा महात्माओंके नेत्रोंसे गङ्गा-यमुनाकी धारा बहने लगी, उनका शरीर रोमाञ्चकण्टकित हो गया, उनकी वाणी गद्गद हो गयी। चारों ओरसे—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिणसे साधु-साधुकी, धन्य-धन्यकी ध्वनि गूँजने लगी। धर्मवत्सल, मननशील महात्माओंका मन प्रसन्न हो गया। वे अत्यन्त विस्मय विमुग्ध हो गये—

मध्ये सभं समीपस्थाविदं काव्यमगायताम्।
तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे वाष्पपर्याकुलेक्षणाः॥
साधु साध्विति तावूचुः परं विस्मयमागताः।
ते प्रीतमनसः सर्वे मुनयो धर्मवत्सलाः॥

(१।४।१५-१६)

जिस कथाकी मुक्तकण्ठसे सन्तजन श्लाघा करें—सुप्रशंसा करें वही कथा सफल कथा है। कोई भावुक सन्त कहते थे, 'अहो! इन कुमारोंके गीतमें कितनी मिठास है (**'अहो गीतस्य माधुर्यम्'**)। कोई रसिक सन्त कहते थे, 'अहो! इनके प्रतिपादनकी—चरित्रवर्णनकी शैली कितनी विलक्षण है कि बहुत पहलेकी घटना भी प्रत्यक्ष-सी दृष्टिगोचर होती है। ऐसा ज्ञात होता है कि मानो यह चरित्र अभी सम्पन्न हो रहा है'—

चिरनिर्वृत्तमप्येतत् प्रत्यक्षमिव दर्शितम्।

(१।४।१८)

भावुक कथाकारकी यही विशेषता है कि वह कथाके पात्रको सामने खड़ा कर देता है—दर्शन करा देता है। समाधि लग जाती है। आज बड़े-बड़े सन्त प्रसन्न हो रहे हैं। एक संतने सन्तुष्ट होकर जल लानेके लिये कलश दे दिया। दूसरे मुनिने गानश्रवणजनित विशिष्ट प्रीतिसे वल्कल वस्त्र दे दिया। किसीने कृष्णमृगचर्म, किसीने यज्ञसूत्र—यज्ञोपवीत और किसीने कमण्डलु दे दिया। दूसरे महामुनिने मौञ्जी-मेखला भेंट कर दी। मैं कहाँतक कहूँ, एक विलक्षण भेंट है, किसीने कहा—हे रामकथा-गायक! यह लँगोटी ले लो—**'कौपीनमपरो मुनिः'**। एकने आसन दिया तो दूसरेने समिधा लानेके लिये कुठार दिया। इस प्रकार महात्माओंके बड़े विलक्षण उपहार हैं। संसारियोंके पास यह उपहार कहाँ मिल सकते हैं? एक ऐसे बैठे थे जिनके पास जटाबन्धन भी नहीं था, लँगोटी भी नहीं थी, संग्रह परिग्रहशून्य थे। वे निर्वसन और निर्व्यसन थे; परंतु कथाव्यसनी थे—

आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं।
रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं॥

उन्होंने आँखोंसे अश्रुवर्षण करते हुए स्खलिताक्षरोंमें कहा—'हे जानकीनन्दनो! हे रामकथाके मधुर गायको! श्रीरामरसामृतकी अपूर्व वृष्टि करनेवालो! रामरसास्वादनका विलक्षण आनन्द देनेवालो! आप दोनों बन्धुओंका सर्वविध कल्याण हो। श्रीरामकथाके उदात्त नायक कल्याणमय श्रीजानकीजानि श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे ऊपर करुणा करें।' इसी कोटिके दूसरे सन्तने कहा—'हे मुनिकुमारो! कथा तो हम भी सुनाते हैं; परंतु आज तो कुछ अश्रुतपूर्व ही सुना है। हे लवकुश! श्रीरघुनन्दन आपकी आयुका संवर्द्धन करें।' इस प्रकार सभी सत्यभाषी—ऋतभाषी मुनियोंने उन दोनोंको अनेक प्रकारके वरदान दिये।

ददुश्चैवं वरान् सर्वे मुनयः सत्यवादिनः।

(१।४।२६)

इस प्रकारकी विलक्षण प्रशंसा, विलक्षण अभिनन्दन और हृदयसे निकला हुआ आशीर्वचन सद्यः फलीभूत हो गया।

जानकीनन्दन श्रीलवकुश श्रीअयोध्याजीकी गलियोंमें, राजमार्गपर तन्त्रीके तारोंको झंकृत करते हुए—वीणा बजाते हुए मधुर स्वरमें श्रीरामकथाका गान कर रहे हैं। उन्हें गाते हुए साक्षात् श्रीरामजीने देखा। प्रभु उन्हें देखकर राजमहलसे निकलकर सड़कपर आ गये। रघुनन्दनका वात्सल्यरस छलक पड़ा था। हृदय स्नेहातिरेकसे परिपूर्ण हो गया था। प्रभुने आकर भाग्यवान् जानकीनन्दन श्रीकुश और लवकी भुजाएँ पकड़ लीं। धन्य हैं इनके भाग्य! आज इनकी बाहोंको पूर्णब्रह्म परमात्माने अपनी जानुपर्यन्त लम्बिनी भुजाओंसे पकड़ लिया है। प्रभु कहने लगे—'हे तपोधनो! हे महात्माओ! हे यशस्वी कथाकारो! हे मधुर गायको! आपलोग बहुत सुन्दर हैं। आपकी गानविद्या मनको वरवश आकृष्ट कर लेती है—चित्ताकर्षक है। आपकी वर्णन-शैली और वक्तृत्वकला विलक्षण है। आपकी कथा श्रवण करके मेरा मन मुग्ध हो गया है। आप

लोग हमारे घर चलें। हम अपने परिवारके साथ, अपने प्यारे छोटे भाइयोंके साथ, अपने मन्त्रियोंके साथ आपकी कथा सुनना चाहते हैं। उनकी स्वीकृति मिलनेपर प्रभुने सम्मान करनेयोग्य दोनों बन्धुओंको अपने घरमें लाकर—राजमहलमें लाकर उनका योग्य सम्मान किया—'

रथ्यासु राजमार्गेषु ददर्श भरताग्रजः।
स्ववेश्म चानीय ततो भ्रातरौ स कुशीलवौ॥
पूजयामास पूजार्हौ रामः शत्रुनिबर्हणः।

(१।४।२९-३०)

आप देख रहे हैं, महात्माओंके, मुनियोंके और सन्तोंके आशीर्वादका महत्त्व। ठाकुरजी स्वयं आये—राजमहलसे सड़कपर उतर आये और अपने घरमें ले जाकर उनका सम्मान किया। '**पूजयामास पूजार्हौ**' श्रीरामजीने उनका अभिनन्दन किया। हमें तो ऐसा ज्ञात होता है कि सर्वान्तर्यामी, सर्वान्तरात्मा, सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजीका हृदय वात्सल्यरससे ओतप्रोत हो गया है। लवकुशके दर्शनजन्य आनन्दसे प्रसन्नचित्त श्रीरघुनन्दनने कहा—हे भरत! हे लक्ष्मण! हे रिपुदमनलाल! सुनो, हे सुमन्तजी! आप भी सुनें। ये दोनों बालक देवताओंके समान आभा, प्रभा, कान्तिसे सम्पन्न हैं। ये दोनों विलक्षण प्रतिभा, अनुपम मेधा, चित्ताकर्षक स्वरसम्पत्ति और गम्भीर साहित्य-सम्पत्तिसे सम्पन्न हैं। आपलोग इनकी कथाका सुन्दर आयोजन करें। हमारे मन्त्रियोंको बुलाओ। विद्वानोंका आवाहन करो। श्रीअयोध्याके ऋषियों, वेदज्ञों, वेदार्थज्ञों, पौराणिकों, शास्त्रज्ञों और कथाकारोंको आदरपूर्वक बुलाओ। सबके बैठनेकी उचित व्यवस्था करो। ये तपस्वीकुमार विलक्षण, सुलक्षण और विचक्षण हैं। अपूर्व कथारसका समास्वादन कराते हैं—

उवाच लक्ष्मणं रामः शत्रुघ्नं भरतं तथा।
श्रूयतामेतदाख्यानमनयोर्देववर्चसोः ॥

(१।४।३२)

राजराजेश्वर अयोध्यानाथ श्रीरामजीकी आज्ञानुसार समस्त व्यवस्था हो गयी। सुन्दर व्यासपीठपर विराजमान श्रीलवकुशको कथा कहनेके लिये प्रभुने प्रेरित किया। '**गायकौ समचोदयत्—गायनाय प्रेरयामास**'।

श्रीरामचन्द्रजीकी प्रेरणासे प्रेरित होकर श्रीलवकुश मार्गविधानकी रीतिसे श्रीरामायणजीका गान करने लगे। गान दो प्रकारके होते हैं—मार्ग और देशी। भिन्न-भिन्न देशोंकी प्राकृत भाषामें गाये जानेवाले गानकी देशी संज्ञा होती है और समस्त राष्ट्रमें प्रसिद्ध भाषाका समाश्रयण करके गाये जानेवाले गानकी मार्ग संज्ञा होती है। श्रीकुश और लव संस्कृतभाषामें—मार्गपद्धतिसे गाने लगे।

'**ततस्तु तौ रामवचः प्रचोदितावगायतां मार्गविधानसम्पदा।**' (१।४।३६) उनका उच्चारण इतना स्पष्ट था कि सुनते ही अर्थका बोध हो जाता था '**विश्रुतार्थमगायताम्**'। उनका गान श्रवण करके सुननेवालोंके सम्पूर्ण अङ्गोंमें आनन्दजन्य रोमाञ्च हो आया और सबके मन तथा अन्तःकरणमें आनन्दकी तरङ्गें उठने लगीं। भगवत्कथाका रस समुच्छलित हो गया। समस्त श्रोतृसमुदाय आत्मविस्मृत हो गया—

ह्लादयत् सर्वगात्राणि मनांसि हृदयानि च।
श्रोत्राश्रयसुखं गेयं तद् बभौ जनसंसदि॥

(१।४।३४)

इस प्रसङ्गमें एक बहुत अच्छी बात सुनें। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रकी मर्यादाकी बात सुनें और शिक्षा ग्रहण करें। जिस समय श्रीकुश और लवकी कथा हो रही थी उस समय दो आसन लगे हुए थे। एकपर राजराजेन्द्र अयोध्या नरेश श्रीरामचन्द्रजी विराजमान थे और दूसरे आसनपर कथाकार बन्धु विराजमान होकर कथा कह रहे थे। श्रीरामजीको कथाका पूर्ण आनन्द

नहीं मिल रहा था। कथा कहनेवालेके मुखचन्द्रसे निर्झरित कथामृतका रसास्वादन करनेवालेके लिये उसका मुखचन्द्र दर्शन भी बहुत आवश्यक है। मुख देखे बिना कथा भले ही सुन ले, पुण्यलाभ भी कर ले, ज्ञानार्जन भी कर ले परन्तु रसास्वादन नहीं होता है। उच्चासनपर बैठकर भी कथाका विशेष आनन्द नहीं आता है। जबतक कथाकारके सामने न बैठे तबतक आनन्द कैसा?

अशोकवाटिकामें श्रीहनुमान्‌जी वृक्षपर बैठकर कथा कह रहे थे। *'रामचन्द्र गुन बरनै लागा'*। श्रीरामकथा-रसकी परमरसिका, मिथिलेशराज-किशोरी, श्रीसीताजीको श्रीहनुमान्‌जीको देखे बिना कथाका पूर्ण आनन्द नहीं आ रहा था। श्रीजानकीजीने संकोच छोड़कर कहा कि 'हे अमृतोपम कथा सुनानेवाले रामभक्त! आप मेरे सामने प्रकट क्यों नहीं हो रहे हैं?'

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई।
कही सो प्रगट होति किन भाई॥

प्रस्तुत प्रसङ्गमें जब कथाका आनन्द चरम सीमापर पहुँच गया, सब लोग आत्मविस्मृत हो गये; सब लोगोंको अपने आस-पास बैठे लोगोंका भी ध्यान न रहा, लोग कथारससे भीग गये, किसीको अपने-परायेका भान भी न रहा, उस समय श्रीरामचन्द्रजी अपने सिंहासनसे धीरेसे खिसक करके नीचे आ गये। किसीको किञ्चिन्मात्र भी ज्ञात नहीं हो सका। यह भाव मैं आचार्योंके श्रीचरणोंमें बैठकर निवेदन कर रहा हूँ। नीचे आकर श्रीरामजी कुश और लवके सामने बैठकर श्रीजानकीनन्दन कुश और लवकी सौन्दर्य-सुधाका समास्वादन करने लगे और कथामृतका भी पान करने लगे—

स चापि रामः परिषद्गतः शनै-
र्बुभूषयासक्तमना बभूव॥

(१।४।३६)

श्रीगोविन्दराजजीकी बड़ी सुन्दर भावाभिव्यक्ति है। श्रीरामजी धीरेसे सभामें आये, प्रभुने सोचा कि यदि मैं शीघ्रतासे सिंहासनसे उतरकर सभामें जाऊँगा तो श्रोताओंका मन कथासे हट जायगा। सब लोग उठकर खड़े हो जायँगे, कथाका रस भङ्ग हो जायगा; सुतराम् धीरे-धीरे सिंहासनसे उतरकर सभामें पहुँचकर दर्शनानन्द और कथानन्दका समास्वादन करने लगे। '**स रामोऽपि शनैः परिषद्गतः झटिति उत्थाय गमने परिषदोऽप्युत्थानाद् रसभङ्गो भविष्यतीति मन्दं मन्दं सिंहासनादवतीर्य परिषदं प्राप्तः।**' '**बुभूषया**' का अर्थ भी उन्होंने किया है, '**अनुबुभूषया श्रोत्रसुखानुभवेच्छया**' इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी '**आसक्तमना बभूव**' कथागान-श्रवणमें प्रभुका मन आसक्त हो गया '**गानश्रवणासक्तचित्तः बभूव**'।

इस प्रकार श्रोता-वक्ताका वर्णन करके अब कथाका वर्णन करते हैं। श्रीकुश और लव कहते हैं कि इक्ष्वाकुवंशमें महान् आशयवाले राजाओंकी कुलपरम्परामें श्रीमद्रामायण महाकाव्यकी अवतारणा हुई है। राजर्षि इक्ष्वाकु कर्मयोगी थे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने प्रिय शिष्य श्रीअर्जुनसे कहते हैं—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥

(गीता ४।१)

हे अर्जुन! कर्मयोगकी शिक्षा मैंने सबसे पहले सूर्यको दी है। मेरा पहला चेला सूर्य हैं। सूर्य कर्मयोगी हैं। एक क्षणके लिये भी उनकी गति-कर्ममें विराम नहीं है। सूर्य, चन्द्र और वायु यदि एक क्षणके लिये भी रुक जायँ तो हाहाकार मच जायगा। ये सब कर्मयोगी हैं। कर्मयोगी सूर्यने भगवान् नन्दनन्दन आनन्दकन्द यशोदानन्द-संवर्द्धन व्रजराजकुमार श्रीकृष्णचन्द्रसे कर्मयोगकी शिक्षा प्राप्त करके उसका उपदेश मनु महाराजको

किया है। उस परम्पराको आगे बढ़ाते हुए श्रीमनुने इक्ष्वाकुको कर्मयोगका आचार्य बनाया। इस प्रकार कर्मयोगके आचार्योंकी परम्परामें भगवान् श्रीराम आते हैं। मैं आपको साधारण व्यक्तित्ववाले व्यक्तिकी कथा नहीं सुनाऊँगा, उन्हीं कर्मयोगके आचार्य राजाधिराज महाराज श्रीरामचन्द्रकी कथा सुनाऊँगा।

कथाके आरम्भमें श्रीकुश और लव श्रोताओंके लिये बड़ा सुन्दर उपदेश देते हैं। '**श्रोतव्यमनुसूयता**' अर्थात् आपलोग असूया—दोषदृष्टिका परित्याग करके सुनें—श्रद्धापूर्वक सुनें। जो असूया-रहित होगा वही इस कथाके श्रवणका सच्चा अधिकारी है—

'**असूयाराहित्यमेवैतत् श्रवणाधिकारिविशेषणम्।**'

(तिलक टीका)

मानसनन्दिनी, वाशिष्ठी श्रीसरयूजीके पावन तटपर श्रीअयोध्या-नामकी नगरी है। यह नगरी समस्त लोकोंमें विख्यात है। 'अयोध्या' का अर्थ है कि जहाँ कोई लड़ाई-झगड़ा, बखेड़ा न हो। '**न योध्या इति अयोध्या**'। आज भी श्रीअयोध्याजी शान्त हैं। जितने साधु-संत श्रीअयोध्यामें रहते हैं उतने कहीं नहीं रहते हैं। श्रीअयोध्याको किसी ऐरे-गैरे नत्थू खैरे लल्लू जगधरने नहीं बसाया है। इस पुरीका निर्माण मानवेन्द्र मनुने स्वयं किया है—

अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम्॥

(१।५।६)

रामायणशिरोमणि टीकाकार लिखते हैं—'**लोकविश्रुता स्वर्गादिलोकप्रसिद्धा या अयोध्या नाम नगरी स्वयमासीत् स्वेच्छया प्रकटीभूता सा मानवेन्द्रेण मानवस्वामिना मनुना पुरी स्वराजधानी निर्मिता कृता। एतेनायोध्याया रामाभिन्नत्व नित्यत्व चेतनात्वानि व्यञ्जितानि**'।

अर्थात् स्वर्गादि लोकोंमें प्रसिद्ध श्रीअयोध्याजी अपनी इच्छासे ही प्रकट हुई हैं। मानवेन्द्र मनुने तो इस पुरीको अपनी राजधानी बनाया है। भाव कि श्रीअयोध्याजी श्रीरामजीसे अभिन्न हैं, नित्य हैं और जड़ नहीं हैं अपितु चेतनायुक्त हैं। भारतवर्षकी सात पावनपुरियोंमें श्रीअयोध्याजी मस्तकस्थानापन्ना—सर्वश्रेष्ठ हैं—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

श्रीअयोध्याजीके वैभवका बहुत सुन्दर वर्णन है श्रीमद्रामायणमें। उस वर्णनको प्रणाम करते हुए मैं एक बात कहूँगा, जहाँका दाना-पानी अच्छा हो वही स्थान सुन्दर माना जाता है। श्रीअयोध्याजीमें मह-मह महकता हुआ और चाँदीकी तरह चमाचम चमकता हुआ शालि-नामका धान प्रभूत मात्रामें होता था। '**शालयः श्वेततण्डुलाः**'। श्रीअयोध्याजीका जल तो इतना मधुर है मानो इक्षुरस—गन्नेका रस हो। इक्षुरस और श्वेत, सुगन्धित चावलका जोड़ा है। कभी बनाकर ठाकुरजीको भोग लगाना आनन्द आ जायगा। इसमें जलकी आवश्यकता नहीं है—

शालितण्डुलसम्पूर्णामिक्षुकाण्डरसोदकाम्॥

(१।५।१७)

ऐसी श्रीअयोध्याजीके राजा चक्रवर्ती श्रीदशरथजी थे—

तस्यां पुर्यामयोध्यायां वेदवित् सर्वसङ्ग्रहः।
दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः॥
इक्ष्वाकूणामतिरथो यज्वा धर्मपरो वशी।
महर्षिकल्पो राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥
बलवान् निहतामित्रो मित्रवान् विजितेन्द्रियः।
धनैश्च सञ्चयैश्चान्यैः शक्रवैश्रवणोपमः॥
यथा मनुर्महातेजा लोकस्य परिरक्षिता।
तथा दशरथो राजा लोकस्य परिरक्षिता॥

(१।६।१—४)

श्रीअवधमें रहकर प्रजावर्गका परिपालन करते थे श्रीदशरथजी। वे वेदवेत्ता थे अर्थात्

वेदों और वेदार्थोंके जानकार थे। '**सर्वसंग्रह**' थे, भाव कि धन आदि वस्तु समर्पित करके वीरों और विद्वानोंका संग्रह करते थे। '**शूराणां विदुषाञ्च सङ्ग्रहः सर्वसङ्ग्रहः**'। दीर्घदर्शी थे—भविष्यमें घटनेवाली घटनाके ज्ञाता थे—'**दीर्घं चिरकालभाविपदार्थं द्रष्टुं शीलमस्यास्तीति दीर्घदर्शी**'। महातेजस्वी—महापराक्रमी थे। वे अपने नगर-निवासियोंसे प्रेम करते थे और उनकी प्रजा—नागरिक उन्हें प्यार करते थे। अतिरथी वीर थे अर्थात् दस हजार वीरोंसे अकेले ही युद्ध करनेमें समर्थ थे। श्रीदशरथजीके रथकी अबाध गति थी। उनका रथ दसों दिशाओंमें जाता था। '**दशसु दिक्षु गतो रथो यस्य सः दशरथः**'। वे यज्वा थे—यज्ञ करनेवाले थे, धर्मपरायण और जितेन्द्रिय थे। वे राजर्षि होकर भी महर्षियोंके गुणोंसे सम्पन्न थे। वे '**त्रिषु लोकेषु विश्रुतः**' अर्थात् तीनों लोकोंमें वे प्रख्यातकीर्ति थे। वे बलवान्, शत्रुरहित, मित्रोंसे युक्त और इन्द्रियजित् थे। इन्द्र और कुबेरके तुल्य धन और अन्य पदार्थोंके संग्रही थे। महान् तेजस्वी राजर्षि मनुकी भाँति जगत्के रक्षक थे। श्रीदशरथजीकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे कौसल्यानन्द-संवर्द्धन रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीके पिता थे। उनके वत्सलस्नेहके कारण ही पूर्णब्रह्म परमात्मा उनके पुत्र हुए थे—

दसरथ गुन गन बरनि न जाहीं।
अधिकु कहा जेहि सम जग नाहीं॥
जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भए आइ।
जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने श्रीदशरथजीका वर्णन अत्यन्त संक्षेपमें परन्तु बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया है—

अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ।
बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ॥
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी।
हृदयँ भगति मति सारँगपानी॥

राज्यके सात अङ्ग प्रधान होते हैं। राजा, मन्त्री, मित्र, खजाना, राष्ट्र, किला और सेना। इनमें मन्त्री अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। '**स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषराष्ट्रदुर्गबलानि च**'। चक्रवर्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजीके सभी मन्त्री पवित्र आचार-विचारसे युक्त थे तथा राजकृत्यमें निरन्तर लगे रहते थे। आठ मन्त्री प्रधान थे—

धृष्टिर्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्द्धनः।
अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित्॥

(१।७।३)

इनके अतिरिक्त श्रीवसिष्ठजी और श्रीवामदेव—ये दो सर्वमान्य पुरोहित थे। ये राज्यके सर्वविध हितमें संलग्न रहते थे। इनका बड़ा प्रभाव था। ये पुरोहित भी थे और महामन्त्री भी थे। इनके किसी भी परामर्शका बड़ा सम्मान था। इनके अतिरिक्त राजेन्द्र श्रीदशरथजीके सात मन्त्री और थे, ये सभी ब्रह्मर्षि थे। ये अपनी-अपनी मन्त्रणा और तपस्यासे देशकी रक्षामें तत्पर रहते थे—

ऋत्विजौ द्वावभिमतौ तस्यास्तामृषिसत्तमौ।
वसिष्ठो वामदेवश्च मन्त्रिणश्च तथापरे॥
सुयज्ञोऽप्यथ जाबालिः काश्यपोऽप्यथ गौतमः।
मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुस्तथा कात्यायनो द्विजः॥

(१।७।४-५)

इन तेजस्वी मन्त्रियोंसे घिरे रहकर राजेन्द्र श्रीदशरथ उसी प्रकार अत्यन्त सुशोभित होते थे जिस प्रकार अपनी तेजोमयी किरणोंके साथ समुदित होकर भगवान् भुवनभास्कर सूर्य प्रकाशित होते हैं—

स पार्थिवो दीप्तिमवाप युक्त-
स्तेजोमयैर्गोभिरिवोदितोऽर्कः।

धर्मतत्त्वज्ञ चक्रवर्ती श्रीदशरथजी इतने प्रभावशाली होकर भी पुत्रके लिये सर्वदा

चिन्तित रहते थे—

तस्य चैवंप्रभावस्य धर्मज्ञस्य महात्मनः।
सुतार्थं तप्यमानस्य नासीद् वंशकरः सुतः॥

(१।८।१)

'**वंशकरः सुतः**' का भाव कि पुत्रका स्नेह देनेवाले, पुत्रकी तरह सेवा करनेवाले तो अनेक लोग थे परन्तु वंशप्रवर्तक कोई पुत्र नहीं था; अतः लिखा '**नासीद् वंशकरः सुतः**'। अथवा पुत्र कई प्रकारके होते हैं नादपुत्र, भावपुत्र और औरस पुत्र आदि। राजाके पास वंश चलानेवाला औरस पुत्र नहीं था। इसलिये महाराज अत्यन्त दुःखी रहते थे—

एक बार भूपति मन माहीं।
भै गलानि मोरें सुत नाहीं॥

महाराजने मन्त्रियोंसे परामर्श करके अश्वमेध-यज्ञ करनेका निश्चय किया। अपने निश्चयको पूर्ण करनेके लिये सुमन्त्रसे महर्षियोंको बुलवाया, सुमन्त्रके आदरपूर्वक निमन्त्रण देनेपर सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, काश्यप और श्रीवसिष्ठादि ऋषिगण पधारे। श्रीदशरथजी उन सभी समागत सन्तों, ब्राह्मणों और ऋषियोंका विधिपूर्वक पूजन करके धर्म और अर्थसे संयुक्त मधुर वचन बोले—

मम लालप्यमानस्य सुतार्थं नास्ति वै सुखम्।
तदर्थं हयमेधेन यक्ष्यामीति मतिर्मम॥

(१।८।८)

हे महर्षियो! मैं पुत्रके लिये सदा ही विलाप करता रहता हूँ। मुझे किसी वस्तु—पदार्थसे, किसी व्यक्तिसे किं बहुना किसी प्रकारसे सुख नहीं मिलता है, अतः मैं पुत्रप्राप्तिके लिये अश्वमेध-यज्ञके द्वारा भगवान् श्रीहरिको प्रसन्न करना चाहता हूँ। आपलोग कृपापूर्वक अनुमति दें कि मैं इस कार्यमें प्रवृत्त होऊँ। राजाकी प्रार्थना सुनकर उनके प्रस्तावका समस्त ब्राह्मणोंने 'साधु-साधु' कहकर समर्थन किया और यज्ञ करनेकी अनुमति प्रदान कर दी—

ततः साध्विति तद्वाक्यं ब्राह्मणाः प्रत्यपूजयन्।
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे पार्थिवस्य मुखेरितम्॥

(१।८।१०)

पुत्र-प्राप्तिके लिये अश्वमेध-यज्ञकी चर्चा सुनकर परम हितैषी मन्त्री सुमन्त्रजीने राजासे निपट एकान्तमें कहा—'हे नरेन्द्र! पूर्वकालमें—कृतयुगमें भगवान् सनत्कुमारने ऋषियोंकी सन्निधिमें एक कथा सुनायी थी, वह कथा आपकी पुत्र-प्राप्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली है। श्रीसनत्कुमारजीने कहा था कि महर्षि काश्यपके विभाण्डक नामके एक पुत्र हैं, उनके ऋष्यशृङ्ग नामके पुत्र होंगे। वे सदा वनमें रहेंगे, वनमें ही लालित-पालित होकर बड़े होंगे—'

एतच्छ्रुत्वा रहः सूतो राजानमिदमब्रवीत्।
श्रूयतां तत् पुरावृत्तं पुराणे च मया श्रुतम्॥
ऋत्विग्भिरुपदिष्टोऽयं पुरावृत्तो मया श्रुतः।
सनत्कुमारो भगवान् पूर्वं कथितवान् कथाम्॥
ऋषीणां संनिधौ राजंस्तव पुत्रागमं प्रति।
काश्यपस्य च पुत्रोऽस्ति विभाण्डक इति श्रुतः॥
ऋष्यशृङ्ग इति ख्यातस्तस्य पुत्रो भविष्यति।
स वने नित्यसंवृद्धो मुनिर्वनचरः सदा॥

(१।९।१—४)

वे ही ऋष्यशृङ्गऋषि समय पाकर आपके मित्र अङ्ग देशके राजा रोमपादके जामाता—दामाद होंगे। मित्रके नाते वे आपके भी जामाता ही हैं। वे ही आपकी पुत्र-प्राप्तिके लिये पुत्रेष्टि यज्ञकर्म सम्पादित करेंगे। यह श्रीसनत्कुमारजीकी भविष्यवाणी मैंने आपकी सेवामें निवेदन कर दी—

ऋष्यशृङ्गस्तु जामाता पुत्रांस्तव विधास्यति।
सनत्कुमारकथितमेतावद् व्याहृतं मया॥

(१।९।१९)

श्रीसुमन्त्रजीकी बात सुनकर श्रीदशरथजी परम प्रसन्न हुए। उन्होंने पूछा कि मुनिकुमार ऋष्यशृङ्ग अङ्ग देशमें राजा रोमपादके पास किस प्रकार आये, यह सब कथा हमें सुनाओ—

अथ हृष्टो दशरथः सुमन्त्रं प्रत्यभाषत।
यथर्ष्यशृङ्गस्त्वानीतो येनोपायेन सोच्यताम्॥

(१।९।२०)

सुमन्त्रजीने श्रीदशरथजीसे आगे कहा—हे नरेन्द्र! भगवान् सनत्कुमारने यह भविष्यवाणी भी कर दी थी कि जब राजा धर्मका उल्लङ्घन हो जानेके कारण सुदारुणा, लोकभयावहा और अत्यन्त घोर अनावृष्टिके कारण अतिशय दुःखी हो जायँगे तब ऋषि-मुनियोंकी शरणमें आयेंगे। महात्मा लोग उन्हें ऋष्यशृङ्गजीका परिचय देंगे। और यह भी बतायेंगे कि यदि वे आपके राज्यमें आ जायँ तो अनावृष्टि समाप्त हो जायगी। श्रीसनत्कुमारने कहा था कि जब राजा रोमपादके मन्त्री किं वा पुरोहित भयके कारण उनके पास जानेमें अपनी असमर्थता प्रकट कर देंगे तब राजा गणिकाओंको भेजेंगे। भोले-भाले ऋष्यशृङ्गऋषि जो स्त्री और पुरुषका भेद भी नहीं जानेंगे, जिन्होंने फलाहारके अतिरिक्त कभी अन्न भी नहीं पाया होगा वे सरल सन्त उन मुनिवेषधारिणी गणिकाओंके मायाजालमें फँसकर अङ्ग देश आ जायँगे। उन महात्मा ब्राह्मणके अङ्ग देशमें प्रवेश करते ही इन्द्रजी सम्पूर्ण जगत्को प्रसन्न करते हुए सहसा जल बरसाना आरम्भ कर देंगे—

तत्र चानीयमाने तु विप्रे तस्मिन् महात्मनि।
ववर्ष सहसा देवो जगत् प्रह्लादयंस्तदा॥

(१।१०।२९)

अवर्षण समाप्त हो जायगा, मूसलाधार वृष्टि होने लगेगी, धरा तृप्त हो जायगी, धारा प्रवाहित होने लगेगी। मानव तृप्त हो जायँगे, पशु तृप्त हो जायँगे, पक्षी तृप्त हो जायँगे, सब-के-सब सन्तृप्त हो जायँगे। इससे राजा रोमपादको अतिशय प्रसन्नता होगी और वे अपनी कन्या शान्ताका विवाह ऋषि ऋष्यशृङ्गसे कर देंगे। ऋषि अपनी भार्या शान्ताके साथ वहीं आनन्दपूर्वक रहने लगेंगे—

एवं स न्यवसत् तत्र सर्वकामैः सुपूजितः।
ऋष्यशृङ्गो महातेजाः शान्तया सह भार्यया॥

(१।१०।३३)

चक्रवर्ती नरेन्द्र श्रीदशरथको सुमन्त्रजीने भगवान् सनत्कुमारकी यह भी भविष्यवाणी सुना दी कि ऋष्यशृङ्गके अङ्ग देशमें आ जानेपर आप उनके पास जायँगे और उनसे पुत्रलाभके लिये अश्वमेध तथा पुत्रेष्टि-यज्ञ करानेकी प्रार्थना करेंगे। वे कृपालु सन्त आपकी प्रार्थना स्वीकार करके श्रीअयोध्याजी पधारेंगे और उनके आचार्यत्वमें सम्पन्न पुत्रेष्टि-यज्ञके द्वारा आपको चार पुत्रोंकी प्राप्ति होगी। वे चारों पुत्र अप्रमेय—अप्रतिम पराक्रमी होंगे, अतः मनुवंशकी प्रतिष्ठाकी अभिवृद्धि करनेवाले होंगे, इसलिये सर्वत्र—त्रैलोक्यमें प्रख्यात होंगे—

पुत्राश्चास्य भविष्यन्ति चत्वारोऽमितविक्रमाः।
वंशप्रतिष्ठानकराः सर्वभूतेषु विश्रुताः॥

(१।११।१०)

अब तो सुमन्त्रजीके मुखसे यह भविष्यकथा—भविष्यवाणी सुन करके श्रीदशरथजी परम प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने गुरुदेव श्रीवसिष्ठजीको सुमन्त्रजीकी बात सुनायी—भगवान् सनत्कुमारकी भविष्यवाणी सुनायी। त्रिकालज्ञ महात्मा वसिष्ठजीने ऋष्यशृङ्गको ले आनेकी सहर्ष अनुमति प्रदान कर दी—

अनुमान्य वसिष्ठं च सूतवाक्यं निशाम्य च॥

(१।११।१३)

इससे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि कोई भी नवीन अनुष्ठान अपने गुरुसे, पुरोहितसे पूछकर ही करना चाहिये। इससे उनका आदर भी होता है और उनका मूल्यवान् परामर्श भी प्राप्त होता है, उनका सहयोग भी बना रहता है।

श्रीदशरथजीने बड़े उत्साहसे, राजसी ठाठ-बाटसे अङ्ग देशकी यात्रा की। उनके साथ श्रीकौसल्या चलीं, कैकेयी चलीं, सुमित्रा चलीं और सब परिवार चला, साथमें सुमन्त्रजी तथा अन्य श्रेष्ठ मन्त्री और विश्वस्त सेवक भी चले—

सान्तःपुरः सहामात्यः प्रययौ यत्र स द्विजः।

(१।११।१४)

श्रीरोमपाद अपने मित्रके आगमनसे कृतार्थ हो गये—निहाल हो गये। श्रीदशरथजीने अङ्ग देशमें सात-आठ दिनतक निवास किया। तदनन्तर राजा रोमपादसे शान्ता और ऋष्यशृङ्गको साथमें श्रीअयोध्याजी ले जानेकी प्रार्थना की। अपने कार्यका भी निरूपण किया। सुन करके राजा रोमपादने प्रसन्नतापूर्वक 'तथास्तु' कहकर बुद्धिमान् महर्षिका जाना स्वीकार कर लिया और उन दोनोंको बुलाकर अनुमति प्रदान कर दी—

सप्ताष्टदिवसान् राजा राजानमिदमब्रवीत्।
शान्ता तव सुता राजन् सह भर्त्रा विशाम्पते॥
मदीयं नगरं यातु कार्यं हि महदुद्यतम्।
तथेति राजा संश्रुत्य गमनं तस्य धीमतः॥
उवाच वचनं विप्रं गच्छ त्वं सह भार्यया।
ऋषिपुत्रः प्रतिश्रुत्य तथेत्याह नृपं तदा॥

(१।११।१९—२१)

श्रीदशरथजी ऋष्यशृङ्ग और शान्ताके साथ श्रीअयोध्याजी लौट आये। श्रीअयोध्याजीमें सर्वत्र उत्साह छा गया। श्रीदशरथजी महर्षिको अपने अन्तःपुरमें ले जाकर शास्त्रविधिके अनुसार उनका समर्चन किया। राजा दशरथने महर्षि दम्पतिके आ जानेसे अपनेको कृतार्थ माना—

अन्तःपुरं प्रवेश्यैनं पूजां कृत्वा च शास्त्रतः।
कृतकृत्यं तदात्मानं मेने तस्योपवाहनात्॥

(१।११।२९)

ऋष्यशृङ्गजीको श्रीअवध पधारे हुए अनेक दिन व्यतीत हो गये। कोई शुभ मुहूर्त ही यज्ञ प्रारम्भके लिये नहीं मिल रहा था। बहुत दिनोंके अनन्तर सुमनोहर—शास्त्रोक्त दोषरहित—दोषोपद्रवादिरहित समय प्राप्त हो गया। उस समय वसन्त-ऋतुका आरम्भ हुआ था। चक्रवर्तीजीने उसी समय अश्वमेध-यज्ञका सङ्कल्प ले लिया; क्योंकि अश्वमेध-यज्ञसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। **'सर्वं पाप्मानं तरति तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजते' इति श्रुतिः।**

ततः काले बहुतिथे कस्मिंश्चित् सुमनोहरे।
वसन्ते समनुप्राप्ते राज्ञो यष्टुं मनोऽभवत्॥

(१।१२।१)

अश्वमेध-यज्ञका उत्साहपूर्वक आयोजन हुआ। श्रीवसिष्ठजीने आज्ञा दी कि सबको आदरपूर्वक दान-मानसे सन्तुष्ट करो। किसीको कुछ अनादरपूर्वक नहीं देना चाहिये; क्योंकि ऐसा दान दाताका विनाश कर देता है—

अवज्ञया न दातव्यं कस्यचिल्लीलयापि वा॥
अवज्ञया कृतं हन्याद् दातारं नात्र संशयः।

(१।१३।३३-३४)

यज्ञकार्यमें यद्यपि श्रीऋष्यशृङ्गकी प्रधानता अवश्य थी परंतु श्रीवसिष्ठ और ऋष्यशृङ्गजी दोनोंके आदेशसे कर्म होता था—

तथा वसिष्ठवचनादृष्यशृङ्गस्य चोभयोः।
दिवसे शुभनक्षत्रे निर्यातो जगतीपतिः॥
ततो वसिष्ठप्रमुखाः सर्व एव द्विजोत्तमाः।
ऋष्यशृङ्गं पुरस्कृत्य यज्ञकर्मारभंस्तदा॥

(१।१३।३९-४०)

एक वर्ष पूर्ण होनेपर यज्ञीय अश्व भूमण्डलमें परिभ्रमण करके लौट आया। तदनन्तर श्रीसरयूनदीके उत्तर तटपर अश्वमेध-यज्ञका आरम्भ हुआ—

अथ संवत्सरे पूर्णे तस्मिन् प्राप्ते तुरङ्गमे।
सरय्वाश्चोत्तरे तीरे राज्ञो यज्ञोऽभ्यवर्तत॥

(१।१४।१)

उस यज्ञका बहुत सुन्दर वर्णन है। अश्वमेध-

यज्ञ पूर्ण होनेपर राजाने दक्षिणाके रूपमें पृथ्वी ब्राह्मणोंको दानमें दे दी—

ऋत्विग्भ्यो हि ददौ राजा धरां तां कुलवर्द्धनः॥

(१।१४।४५)

परन्तु उदारचेता—महामना ब्राह्मणोंने कहा कि 'हे राजन्! इस समस्त भूमण्डलका रक्षण करनेमें अकेले आप ही समर्थ हैं, हममें इसके पालन करनेकी शक्ति नहीं है। हमलोग तो साधनामें, स्वाध्यायमें ही निरन्तर लगे रहते हैं—

भवानेव महीं कृत्स्नामेको रक्षितुमर्हति।
न भूम्या कार्यमस्माकं नहि शक्ताः स्म पालने॥
रताः स्वाध्यायकरणे वयं नित्यं हि भूमिप।
निष्क्रयं किञ्चिदेवेह प्रयच्छतु भवानिति॥

(१।१४।४७-४८)

इस अश्वमेध-यज्ञकी श्रीवाल्मीकिजीने तीन विशेषताएँ निरूपित की हैं— '**पापाऽपहं स्वर्नयनं दुस्तरं पार्थिवर्षभैः**' '**पापाऽपहम्**' पुत्रोत्पत्तिमें—श्रीरामप्राप्तिमें अन्तरायभूत प्रतिबन्धक पापोंका विनाश करनेवाला वह यज्ञ था। '**पापापहं पापं पुत्रोत्पत्ति प्रतिबन्धक दुरितमपहन्तीति पापापहम् किं वा स्वनित्यपुत्रवियोगहेतुभूतविघ्नध्वंसकम्**' '**स्वर्नयम्**' प्राकृत प्राणियोंको स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है किं वा पुत्रकी प्राप्ति कराकर स्वर्गतक पहुँचानेवाला है। '**प्राकृतजनानां स्वर्गप्रापकम् किं वा पुत्रप्रापणद्वारा स्वर्गप्रापकम्।**' '**पार्थिवर्षभैः दुस्तरम्**' श्रेष्ठ राजालोगोंके लिये भी अश्वमेध-यज्ञका आदिसे अन्ततक पूर्ण कर लेना सरल नहीं था। '**पार्थिवर्षभैः खण्डमण्डलेश्वरश्रेष्ठैः दुस्तरं दुष्प्रापम्।**' इस प्रकारके दुर्लभ महत्त्वपूर्ण पापनाशक अश्वमेध-यज्ञके पूर्ण होनेपर चक्रवर्ती श्रीदशरथजीने ऋषि ऋष्यशृङ्गसे पुत्रेष्टि-यज्ञकी प्रार्थना की। द्विजश्रेष्ठ ऋष्यशृङ्गने राजाकी प्रार्थना स्वीकार करके कहा—'हे चक्रवर्ती नरेन्द्र! आपके एक नहीं चार पुत्र होंगे और वे सब असाधारण होंगे—'

ततोऽब्रवीदृष्यशृङ्गं राजा दशरथस्तदा॥
कुलस्य वर्धनं तत् तु कर्तुमर्हसि सुव्रत।
तथेति च स राजानमुवाच द्विजसत्तमः।
भविष्यन्ति सुता राजंश्चत्वारस्ते कुलोद्वहाः॥

(१।१४।५८-५९)

मेधावी तु ततो ध्यात्वा स किञ्चिदिदमुत्तरम्।
लब्ध संज्ञस्ततस्तं तु वेदज्ञो नृपमब्रवीत्॥

(१।१५।१)

महात्मा ऋष्यशृङ्ग बड़े मेधावी थे। धारणाशक्तिको—धारण करनेकी क्षमतावाली बुद्धिको मेधा कहते हैं। वह मेधा जिसके पास हो उसे मेधावी कहते हैं— '**मेधा धारणक्षमा धीः तद्वान्**'। महर्षि अशेष वेदशाखा-धारणयोग्य बुद्धिसम्पन्न थे। वेदकी समस्त शाखाओंका उन्हें करतलस्थित आमलक-फलके समान ज्ञान था। वेदज्ञ थे—निखिल-वेदशब्दार्थतत्त्वज्ञाता थे। राजाको चार पुत्रोंका वरदान देकर वे सोचने लगे कि चार पुत्र किस उपायसे समुत्पन्न होंगे? अब मुझे कौन-सा अनुष्ठान श्रौतयज्ञ करना चाहिये? यह निश्चय करनेके लिये उन्होंने ध्यान किया—समाधि लगा ली। उन्हें समाधिमें अशेष प्रश्नोंका उत्तर मिल गया। '**लब्धसंज्ञः**' अर्थात् विचारके द्वारा—समाधिके द्वारा उन्हें पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका, लीलाका भलीभाँति परिज्ञान हो गया और यह भी निश्चय हो गया कि पुत्रेष्टि-यज्ञका अनुष्ठान करना चाहिये। निश्चय होनेपर श्रीदशरथजीसे बोले—'**लब्ध संज्ञः लब्धाविचारेण प्राप्ता संज्ञा रघुनाथ सम्यग्ज्ञानं येन अतएव ततः सकलयागविस्तारकर्ता स ऋष्यशृङ्गः उत्तरं रामप्राकट्यहेतुभूतकरिष्यमाण कृत्यं किञ्चित्कालं ध्यात्वा विचार्य इदं वचनं नृपमब्रवीत् तु शब्द एवार्थे**' (रामायणशिरोमणि टीका)। '**सः ऋष्यशृङ्गः प्रतिश्रुतार्थ निर्वाहाय किं कर्तव्यमिति निश्चेतुं**

किञ्चित्कालं ध्यात्वा समाधिं कृत्वेदमुत्तर-मिदमिहोत्तरानुष्ठेयकृत्यमिति निश्चित्य पश्चाल्लब्धसंज्ञः समाध्युत्त्थितस्तं नृपमब्रवीत्।' (तिलक टीका) ऋषि ऋष्यशृङ्गजीने कहा कि 'हे राजेन्द्र! आपकी पुत्रप्राप्तिके लिये मैं अथर्ववेदके मन्त्रोंसे पुत्रेष्टि नामक यज्ञ करूँगा—

इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्रकारणात्।
अथर्वशिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः॥

(१।१५।२)

श्रौतविधिके अनुसार पुत्रप्राप्तिके लिये पुत्रेष्टि-यज्ञका शुभारम्भ हो गया।

उस यज्ञमें देवता, सिद्ध, गन्धर्व और बड़े-बड़े ऋषिगण पधारे। वे लोग विधिके अनुसार अपना-अपना भाग स्वीकार करनेहेतु पधारे—

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
भागप्रतिग्रहार्थं वै समवेता यथाविधि॥

(१।१५।४)

जहाँ कुछ लोग एकत्रित होते हैं वहाँ सामयिकी चर्चाका आरम्भ हो ही जाता है। उस समयकी सबसे बड़ी समस्या रावण था, उसका अत्याचार था, उसका परपीडन था, उसका अन्याय था। आज पुत्रेष्टि-यज्ञमें पधारे हुए देवताओंने जब लोकपितामह ब्रह्माजीका दर्शन किया तब उनके सामने अपनी समस्या रख दी, अपना दुःख निवेदन कर दिया और यह भी कहा कि हमलोगोंके पास इस समस्याका समाधान नहीं है। हमलोग अपने बलसे रावणपर विजय प्राप्त करनेमें सर्वथा अक्षम हैं। देवताओंने मधुर स्वरमें आदरपूर्वक उपालम्भ—उलाहना भी दे दिया कि रावण आपकी कृपासे ही बढ़ गया है—

भगवंस्त्वत्प्रसादेन रावणो नाम राक्षसः।
सर्वान् नो बाधते वीर्याच्छासितुं तं न शक्नुमः॥

(१।१५।६)

अब तो यह रावण पूरा रावण हो गया है। रावणका अर्थ है—रुलानेवाला '**रावयतीति रावणः**' उसपर भी वह राक्षस है—क्रूर प्रकृतिका है। देवताओंने निवेदन किया कि हे लोकस्रष्टः! हम भी तो आपकी सन्तानें हैं, आपके बच्चे हैं। आपका कृपापात्र यह राक्षस तो हममेंसे किसीको नहीं छोड़ता है—'**सर्वान्नो बाधते**'।

नैनं सूर्यः प्रतपति पार्श्वे वाति न मारुतः।
चलोर्मिमाली तं दृष्ट्वा समुद्रोऽपि न कम्पते॥

(१।१५।१०)

भगवान् भुवनभास्कर सूर्य उसको ताप नहीं पहुँचा सकते, पवनदेव उसके निकट जोरसे नहीं चल सकते और उत्ताल तरङ्गोंवाला यह समुद्र भी रावणको देखकर स्तब्ध हो जाता है—उसका कम्पन समाप्त हो जाता है। देवताओंने कहा कि 'हे विधातः! यदि आप जानना चाहें तो हम सब लोग अपनी-अपनी विपत्तिका विज्ञापन करें—दुःख सुनावें। रावण हमपर क्या अत्याचार करता है, निवेदन करें।' स्वीकृति मिलनेपर चन्द्रमाने कहा—'रावणने मुझे तो अपना छत्रधारी—छत्र लगानेवाला सेवक बना लिया है। मैं उसका छत्र पकड़कर उसके पीछे खड़ा रहता हूँ। देवेन्द्र इन्द्रके दरबारमें तो हमारा अतिशय सम्मान है, वहाँका तो मैं मन्त्री हूँ। मन्त्रीकी प्रकृतिके अनुसार यदि कभी कुछ बोल दिया तो बड़ी कड़ी डाँट पड़ती है—' ***'न बोल चन्द्र मन्दबुद्धि इन्द्रकी सभा नहीं'***। इन्द्रने कहा—'हमें तो उसने मालीका काम सौंप रखा है, हमें उसके लिये रोज माला बनानी पड़ती है।' सूर्यने कहा—'हमें तो उसने द्वारपर वेत्रधारी प्रतीहार बना रखा है।' अग्निने कहा—'हमारी बड़ी दुर्दशा है, हम तो उसके पाचक—रसोइया हैं। बनाना ही हाथ लगता है, अवैष्णव भोजन बनाना पड़ता है।' वरुण और वायुने कहा—'हमें तो उसके पूरे राजमहलका प्रतिदिन सम्मार्जन करना पड़ता है।

वायुको झाड़ू लगानी पड़ती है और वरुणको धुलाई करनी पड़ती है।' श्रीपवनदेवने यह भी कहा कि 'हमारी तो भयङ्कर दुर्दशा है। मुझे झाड़ू लगानेके साथ रावणकी प्यारी अशोकवाटिकाकी भी रखवाली करनी पड़ती है। अशोकवाटिकाके वृक्षोंके पत्ते पतझड़के समय भी नहीं गिरने चाहिये। रावणकी इस कठोर आज्ञाका पालन करना पड़ता है—'

समय पुराने पात परत, डरत बातु,
पालत लालत रति-मारको बिहारु सो॥

(कवितावली रामायण ५। १)

रावण श्रीअङ्गदसे स्वयं कहता है, हनुमन्नाटकमें—

इन्द्रं माल्यकरं सहस्रकिरणं द्वारिप्रतीहारकम्,
चन्द्रं छत्रधरं समीरवरुणौ सम्मार्जयन्तौ गृहान्।
पाचक्ये परिनिष्ठितं हुतवहं किं मद् गृहे नेक्षसे,
रक्षो भक्ष्य मनुष्यमात्रवपुषं तं राघवं स्तौषि किम्॥

(८। २३)

इस प्रकार देवताओंकी बात सुनकर देवगुरु श्रीबृहस्पतिने कहा—'हे देवताओ! आपके यहाँ तो मैं गुरुपदपर प्रतिष्ठित हूँ, परन्तु रावणके यहाँ तो द्वारपाल भी जडमति—मूर्ख कहकर बुलाता है कि धीरेसे बोलो, यह इन्द्रकी सभा नहीं है।'

स्वल्पं जल्प बृहस्पते जडमते नैषा सभा वज्रिणः।

(हनुमन्नाटक ८। ४५)

इस प्रकार दारुण व्यथा श्रवण करके श्रीब्रह्माजीने कहा—'हे देवताओ! उसको वरदान देकर हम भी सुखी नहीं हैं, हमें तो उसके यहाँ नित्य वेदपाठ करने जाना पड़ता है'—***'बेद पढ़ें बिधि सम्भु सभीत पुजावन रावन सों नित आवैं'।*** कभी-कभी तो रावणका द्वारपाल कठोर शब्दोंमें मेरी प्रताड़ना करता है—अवमानना करता है और कहता है—अरे ब्रह्मा! यह वेदाध्ययनका समय नहीं है, द्वारके बाहर जाकर चुपचाप बैठो—**'ब्रह्मन्नध्ययनस्यनैष समयस्तूष्णीं बहिः स्थीयताम्'।**

श्रीब्रह्माजीने कहा—'हे देवताओ! हे लोकपालो! मैंने उस पापात्मा रावणको दुर्लभ वर तो अवश्य दिया है, परंतु वरदानके समय भगवत्-प्रेरणासे रावणने मनुष्य और वानरोंके हाथसे अवध्यता नहीं माँगी है—' ***'हम काहू के मरहिं न मारें। बानर मनुज जाति दुइ बारें'॥***

नाकीर्तयदवज्ञानात् तद् रक्षो मानुषांस्तदा।
तस्मात् स मानुषाद् वध्यो मृत्युर्नान्योऽस्य विद्यते॥

(१। १५। १४)

रावण मनुष्योंको अल्पबुद्धि, अल्पज्ञान और अल्पबल समझता था अतः, तुच्छ समझता था। सुतराम् उनसे अवध्य होनेका वरदान नहीं माँगा। अब तो उसका वध मनुष्यके हाथसे ही होगा। मनुष्यके अतिरिक्त दूसरा कोई उसको मृत्युका ग्रास नहीं बना सकता—मार नहीं सकता है। ब्रह्माजीकी बात सुनकर देवता और महर्षि अतिशय प्रसन्न हुए—

देवा महर्षयः सर्वे प्रहृष्टास्तेऽभवंस्तदा॥

(१। १५। १५)

रामायणशिरोमणि टीकाकार कहते हैं कि किसी प्रकार वधके उपायकी सम्भावना हो गयी अतः सब लोग अत्यन्त प्रसन्न हो गये—'**प्रहृष्टाः यथाकथञ्चिद् वधोपायसम्भावनयेति भावः।**'

अब एक समस्या है कि मनुष्योंमें रावणको कौन मारेगा? एक अत्यन्त बलवान् मनुष्य थे, जो समय-समयपर देवताओंकी भी सहायता करते थे, उनका नाम था अनरण्य। उनके बलकी बड़ी ख्याति थी, उनके सामने रणमें कोई ठहर नहीं सकता था। इस रावणसे भी उनका युद्ध हुआ था। राजर्षि अनरण्यने भयंकर संग्राम किया था। उन्होंने अपने प्रहारसे रावणके सैनिक, सेनापति और मन्त्रियोंको व्याकुल कर दिया। मारीच, प्रहस्त, शुक और सारणकी तरह रावणके प्रधान-प्रधान वीर उनका सामना नहीं कर सके, वे उसी तरह आहत होकर

भाग गये जैसे वनराज सिंहको देखकर मृग भाग जाता है—

अनरण्येन तेऽमात्या मारीचशुकसारणाः।
प्रहस्तसहिता भग्ना व्यद्रवन्त मृगा इव॥

(७।१९।१९)

कौन मनुष्य इसे मारेगा? इस समस्याके ऊपर सब लोग विचार कर ही रहे थे कि सबके सामने परमकारुणिक भगवान् श्रीहरि यज्ञके द्वारा आराधना करनेवाले अपने निज भक्त श्रीदशरथजीका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये, अपने पुत्र श्रीब्रह्माजीको निष्कलङ्क सिद्ध करनेके लिये, देवताओंका सङ्कट दूर करनेके लिये, साधुओंके परित्राणके लिये, दुष्टोंका संहार करनेके लिये, धर्मकी संस्थापना करनेके लिये और अनेक भक्तोंके अनेक प्रकारके मनोरथोंको परिपूर्ण करनेके लिये अवतार धारण करनेकी इच्छासे अपने निज आयुधों—शङ्ख, चक्र, गदा धारण किये हुए, तप्त स्वर्ण-निर्मित केयूर—बाजूबन्द आदि विविध आभूषणोंको धारण किये हुए, मन्द-मन्द हास्यच्छटा बिखेरते हुए, मङ्गलमय पीताम्बर फहराते हुए, अपनी काली-काली घुँघराली सुचिक्कण अलकावलियोंको अपने दिव्य मुखारविन्दसे पीछेकी ओर फटकारते हुए मेघके ऊपर स्थित भगवान् अंशुमाली सूर्यकी भाँति आभा, प्रभा, कान्ति बिखेरते हुए विनतानन्दसंवर्द्धन अपने नित्यवाहन भाग्यवान् गरुडके दिव्य श्रीअङ्गपर आसीन होकर उनके पंखोंसे समुच्चरित सामगानकी ध्वनि सुनते हुए सहसा वहाँ आ पहुँचे—

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः।
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः॥
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा।
तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः॥

(१।१५।१६-१७)

ठाकुरजी तो भक्तोंके बुलानेकी प्रतीक्षा करते रहते हैं। प्रभु तो अतिशय कृपालु हैं। वे चाहते हैं—मेरा भक्त कभी दुःखी न हो, यदि किसी प्रकारका दुःख आ ही जाय तो वह हमें बुलावे—रक्षा करनेके लिये मेरा आवाहन करे। मुझे अपना समझे, जिसको अपना समझा जाता है उसीको दुःखमें स्मरण किया जाता है; परन्तु यह जीव इतना कृतघ्न है, नीच है, नमकहरामी है कि स्वार्थियोंको अपना समझकर उन्हें तो बुलाता है, उनसे दुःखनिवृत्तिकी आशा भी करता है, परन्तु जो सर्वथा अपने हैं, अकारण कृपालु हैं उनके बुलानेकी बात तो दूर रही, उन्हें स्मरण भी नहीं करता है। किसी संतके कहनेसे स्मरण भी करता है तो ऊपरसे, हृदयसे नहीं। अविश्वासपूर्वक करता है; परंतु ठाकुरजी तो उस स्मरणसे ही दौड़े आते हैं। वे अपनी कृपालुताका परित्याग नहीं करते हैं, अवसर उपस्थित होते ही अपनी दयाका विस्तार कर देते हैं। परंतु परमकृपालु ठाकुरजीको सृष्टिकी लीला भी चलानी पड़ती है, यदि वे अपनी करुण प्रकृतिके अनुसार सर्वथा संरक्षण-ही-संरक्षण करें तो संसारका समस्त तन्त्र समाप्त हो जायगा और यदि संरक्षण न करें तो अनर्थ हो जायगा। इसलिये करुणामय श्रीहरिने एक मर्यादा बना दी है—जो कोई बद्धाञ्जलि होकर—हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना करता है—रक्षाकी अपेक्षा करता है, उसकी वे रक्षा करते हैं, उस प्रार्थीको वे गलेसे लगाते हैं।

भगवान् तो विश्वके अणु-अणुमें परिव्याप्त हैं, सर्वान्तर्दर्शी और सर्वान्तर्यामी हैं, अतः जहाँ रक्षाकी अपेक्षा होती है वहाँ वे आगे बढ़कर रक्षा करते हैं, यह उनका सहज स्वभाव है—

सर्वज्ञोऽपि हि देवेशः सदा कारुणिकोऽपि सन्।
संसारतन्त्रवाहित्वाद् रक्षाऽपेक्षां प्रतीक्षते॥

जब करुणामय ठाकुरजी जान गये कि अब ब्रह्माजीको, देवताओंको, गन्धर्वोंको, महर्षियोंको और

भक्तजनोंको मेरी आवश्यकता है, तब वे अविलम्ब रक्षा करनेके लिये उनके सामने प्रकट हो गये।

भगवान्‌के आनेपर सब प्रसन्न हो गये। सबने स्नेहसे उत्थापन दिया, वन्दना की और स्वागत किया। ठाकुरजी ब्रह्माजीसे मिलकर समाहित होकर—सावधान होकर सभामें सबके साथ बैठ गये। '**तत्र तस्थौ समाहितः**'। समाहित होकर बैठनेका भाव कि देवताओंके परिरक्षणके लिये सावधान होकर बैठे—'***बड़ी साहिबीमें नाथ बड़े सावधान हो***'। '**समाहितः करिष्यमाण-रक्षणकृत्ये एकाग्रः सन् तस्थौ**'। किं वा देवताओंकी प्रार्थना श्रवण करनेके लिये और उसके अनुसार कार्य करनेके लिये ठाकुरजीने स्वयंको सावधान कर लिया।

समस्त देवतागण श्रीब्रह्माजीके नेतृत्वमें अत्यन्त विनम्र होकर भगवान्‌की स्तुति की—'**तमब्रुवन् सुराः सर्वे समभिष्टूय सन्नताः**'। इस पदमें '**समभिष्टूय**' शब्द मननीय है। इसमें '**सम्**' और '**अभि**' ये दो उपसर्ग हैं। उपसर्गसे शब्दका अर्थ—धातुका अर्थ बलवान् हो जाता है। भाव यह है कि '**समभिष्टूय**' अर्थात् अश्रुवर्षण करते हुए, स्खलिताक्षरोंमें स्तवन किया। स्तुति करके अपनी बात कही—

त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया।

(१।१५।१९)

'**नियोक्ष्यामहे**' इस शब्दका अर्थ आपाततः देखनेमें यह प्रतीत होता है, 'तीनों लोकोंकी हितकामनासे हम आपको नियुक्त कर रहे हैं' परंतु इस अर्थमें विनम्रता नहीं है और स्पष्टरूपेण पूर्वापर विरोध भी है। सुतराम् '**नियोक्ष्यामहे**' का अर्थ '**प्रार्थयामहे**' होना चाहिये। अर्थात् हम आपसे प्रार्थना कर रहे हैं। श्रीगोविन्दराजजी कहते हैं कि जिस प्रकार भगवती भास्वती श्रीमैथिलीने अपने प्राणाराध्य प्रियतमसे कहा है '**स्मारये त्वां न शिक्षये**' इसी प्रकार देवतालोग भी ठाकुरजीसे कहते हैं 'त्रैलोक्यका हित करनेके लिये हम लोग आपकी प्रार्थना कर रहे हैं, आपका उत्साह-संवर्द्धन कर रहे हैं।' यदि नियोजनका अर्थ नियोजन ही लेंगे तो पूर्व श्लोकके '**समभिष्टूय सन्नताः**' का भाव नष्ट हो जायगा। इसलिये इस प्रसङ्गमें नियोजनका अर्थ प्रार्थना ही समीचीन है। प्रार्थनाके अर्थमें नियोजन शब्दका प्रयोग आगे भी है—

हे विष्णो! लोकानां हितकाम्यया हितेच्छया त्वां नियोक्ष्यामहे प्रार्थयामहे—उत्साहयिष्यामहे 'योगः संनहनोपायध्यानसंगतियुक्तिषु' इत्यमरः। स्मारये त्वां न शिक्षये इतिवत्, केवलं त्वां प्रोत्साहयिष्यामः। स्वयमेव स्वकीय रक्षणे प्रवृत्तत्वादिति भावः। यदि नियोजनमेवार्थः स्यात्तदा पूर्वश्लोकोक्तं 'समभिष्टूय सन्नताः' इत्येतद् विरुध्येत। किञ्च नियोजनमत्र प्रार्थनमेव एवमुत्तरत्र भगीरथवचने हरस्तत्र नियुज्यतामिति वक्ष्यति। (श्रीगोविन्दराजजी)

देवताओंकी प्रार्थनाका वर्णन आगे करते हैं—

'हे भगवन्! मुनियोंके सहित हम सब सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष तथा देवता रावणके वधके लिये आपकी शरणमें आये हैं। हे परन्तप! हे देव! हम सब लोगोंके एकमात्र आप ही गति हैं—आश्रय हैं। आपके अतिरिक्त हमारा और कोई सहारा नहीं है। हे स्वामी! देवद्रोहियोंका वध करनेके लिये आप मनुष्यलोकमें अवतार लेनेका निश्चय करें।'

वधार्थं वयमायातास्तस्य वै मुनिभिः सह॥
सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः।
त्वं गतिः परमा देव सर्वेषां नः परंतप॥
वधाय देवशत्रूणां नृणां लोके मनः कुरु।

(१।१५।२४—२६)

देवताओंकी भयविह्वल वाणी सुनकर कृपासागर

ठाकुरजी करुणाविह्वल हो गये और उन्होंने कहा—आपलोग भयका सर्वथा परित्याग कर दें, आपलोगोंका निश्चित ही सर्वविध कल्याण होगा। मैं आप लोगोंके कल्याणके लिये सपरिकर, सपरिच्छद, सपरिवार, सपुत्र, सपौत्र, सामात्य ज्ञातिबान्धव रावणका विनाश कर दूँगा—उसको समराङ्गणमें मार डालूँगा—'**भयं त्यजत भद्रं वः**'।

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा।
तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई।
निर्भय होहु देव समुदाई॥

परंतु रावणके वध करनेसे ही काम नहीं चलेगा। रावणने संसारको अव्यवस्थित कर दिया है, मर्यादाओंका नाश कर दिया है। उसको व्यवस्थित करनेमें पुनः मर्यादा स्थापित करनेमें पर्याप्त समय लगेगा, एतावता संसारका मङ्गल करनेके लिये मैं सपरिकर, सपरिच्छद ग्यारह हजार वर्षतक इस भूतलपर निवास करूँगा—'**वत्स्यामि मानुषे लोके**'। मनुष्यलोकमें रहनेवाले ठाकुर ही मनुष्यका कल्याण कर सकते हैं। मनुष्यलोकमें रहे बिना मनुष्यका आदर्श स्थापित नहीं किया जा सकता है। '**मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्**'।

ध्यान देनेयोग्य बात यह है कि अवतारकालसे लेकर इकतालीस वर्षकी अवधिमें ही—थोड़े समयमें ही रावणका विनाश हो गया। परंतु उसकी दुर्व्यवस्थाका, उसके द्वारा प्रचारित अमर्यादाका, रावणत्वका विनाश करनेके लिये उसके स्थानपर मर्यादाकी, व्यवस्थाकी और रामत्वकी संस्थापना करनेके लिये मर्यादापुरुषोत्तम करुणावरुणालय भगवान् श्रीरामचन्द्रको सपरिकर, सपरिच्छद ग्यारह हजार वर्षपर्यन्त इस भूतलपर निवास करना पड़ा। धन्य है श्रीरामभद्रकी करुणा! धन्य है उनका प्रशिक्षण! धन्य है उनका आदर्श!

देवताओं, महर्षियों, सिद्धों आदिको आश्वस्त करनेके अनन्तर भगवान्ने अविलम्ब मनुष्यरूपमें अवतार लेनेका सङ्कल्प कर लिया। यज्ञपुरुष श्रीहरिने यह भी सोच लिया कि सम्प्रति जो पुत्रेष्टि-यज्ञ हो रहा है इसको सफल करना भी आवश्यक है। महर्षि वसिष्ठ और ऋष्यशृङ्गके वचनोंको सत्य करना भी आवश्यक है, अतः पुत्रेष्टि-यज्ञको ही निमित्त बना करके राजा दशरथको ही मैं अपना पिता बनाऊँगा—

पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम्।
(१।१५।३२)

इस पंक्तिका श्रीवाल्मीकीयरामायणमें दो अध्यायोंमें, दो स्थलोंपर पाठ है। ठाकुरजीने जब दूसरी बार मन बनाया तब तत्काल ही अन्तर्धान हो गये—

स कृत्वा निश्चयं विष्णुरामन्त्र्य च पितामहम्।
अन्तर्धानं गतो देवैः पूज्यमानो महर्षिभिः॥
(१।१६।१०)

अत्यन्त ध्यान देनेयोग्य प्रसङ्ग है, श्रीहरिके अन्तर्धान होनेके पश्चात् तत्काल ही दिव्य पायसपात्र लेकर अग्निदेवका प्रादुर्भाव होता है। बीचमें एक श्लोकका भी अन्तर नहीं है। भाव यह है कि भगवान् विष्णुरूपसे अन्तर्धान होकर सद्यः पायसमें प्रविष्ट हो गये।

पुत्रेष्टि-यज्ञ अब सफलतापूर्वक, निर्विघ्न समाप्तिकी ओर अग्रसर है। ब्राह्मण लोग प्रसन्न होकर आशीर्वाद प्रदान कर रहे हैं। महर्षि ऋष्यशृङ्ग और ब्रह्मर्षि वसिष्ठका श्रम, साधन और उनकी तपस्या सफलताकी चरम सीमापर है। महर्षियोंके आशीर्वादकी, मन्त्रोंकी, हविष्यकी शक्तिसे परम पवित्र पायस हाथमें लेकर साक्षात् अग्निके अधिष्ठातृदेवता प्रकट हो गये। उनका बड़ा सजीव और सुन्दर वर्णन है। अग्निदेवके हस्तगत पायसपात्रमें पूर्ण ब्रह्म परमात्मा सद्यः

प्रविष्ट हो गये। उसमें उनको विलम्ब नहीं लगा। भक्तोंके कार्यमें भगवान् कदापि कथमपि विलम्ब नहीं करते हैं। आवश्यकता हो तो वे सुकुमार-शिरोमणि नंगे पाँव दौड़ पड़ते हैं। अपने भक्त, नित्यवाहन, निजजन गरुड़की भी परवाह नहीं करते हैं। कभी-कभी तो गरुड़की गति भी उन्हें मन्द प्रतीत होती है। जहाँ कोई जाना ही नहीं चाहता वहाँ वे भक्तका परिरक्षण करनेके लिये अविलम्ब पहुँच जाते हैं। जहाँ कोई प्रविष्ट नहीं हो सकता वहाँ वे भक्तकी पुकारपर अनायास प्रविष्ट हो जाते हैं। आज भगवान् अग्निदेवके हस्तगत पायसमें सद्यः प्रविष्ट हो गये।

अग्निदेवने राजेन्द्र दशरथजीसे कहा—'हे नृपशार्दूल! इस सन्तानोत्पादिका, देवनिर्मिता परम पवित्र खीरको ग्रहण करो। यह धन्य और आरोग्यवर्द्धन है—'

इदं तु नृपशार्दूल पायसं देवनिर्मितम्।
प्रजाकरं गृहाण त्वं धन्यमारोग्यवर्धनम्॥

(१।१६।१९)

अग्निदेवने कहा—'हे राजन्! इस पवित्र पायसको अपनी पत्नियोंमें वितरित कर दो। श्रीदशरथजीने अग्निदेवको प्रणाम करके प्रदक्षिणा की। तदनन्तर अपनी प्रिय पत्नियोंको—कौसल्यादिको यथायोग्य विभक्त करके पायस वितरित कर दिया। बड़ा भावपूर्ण और रहस्यपूर्ण पायस वितरणका प्रसङ्ग है।

कौसल्यादि माताओंने पायस पा लिया। परिणामस्वरूप तीनों रानियाँ सगर्भा हो गयीं। उनके गर्भ सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी थे—

ततस्तु ताः प्राश्य तमुत्तमस्त्रियो
महीपतेरुत्तमपायसं पृथक्।
हुताशनादित्यसमानतेजसो-
ऽचिरेण गर्भान् प्रतिपेदिरे तदा॥

(१।१६।३१)

एहि बिधि गर्भसहित सब नारी।
भईं हृदयँ हरषित सुख भारी॥
जा दिन तें हरि गर्भहिं आए।
सकल लोक सुख संपति छाए॥
मंदिर महँ सब राजहिं रानी।
सोभा सील तेज की खानीं॥

जब श्रीहरि परम भागवत, महात्मा—जिनका मन श्रीठाकुरजीके चरणारविन्दोंमें सतत संलग्न रहता है उन श्रीदशरथजीके पुत्रभावको प्राप्त हो गये। तदनन्तर भगवान्—नियोजनसमर्थ श्रीब्रह्माने समस्त देवताओंसे कहा—

पुत्रत्वं तु गते विष्णौ राज्ञस्तस्य महात्मनः।
उवाच देवताः सर्वाः स्वयम्भूर्भगवानिदम्॥

(१।१७।१)

श्रीब्रह्माजीने कहा—'हे देवताओ! हमलोगोंकी प्रार्थना स्वीकार करके हमलोगोंका दुःख निवृत्त करनेके लिये भगवान् भूतलपर मनुष्यरूपमें अवतार धारण करने जा रहे हैं। सम्प्रति हमलोगोंका भी कर्तव्य है कि उनकी सेवा करनेके लिये, उनकी शोभाके लिये, उनकी सहायता करनेके लिये वानररूपसे अपने-अपने अंशोंके रूपमें—पुत्रोंके रूपमें भूतलपर उत्पन्न हों—' '**सृजध्वं हरिरूपेण पुत्रांस्तुल्य पराक्रमान्।**'

निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ॥

(श्रीरामचरितमानस १।१८७)

वानरशरीर धारण करनेके लिये इसलिये कहा कि रावणने 'नर-वानर' इन दो जातियोंसे अवध्यताकी याचना नहीं की है। ठाकुरजी तो नरावतार धारण करनेके लिये प्रस्तुत ही हैं, हमलोग भी वानरशरीर धारण करके नररूप परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करेंगे।

उपदेश उसीका सफल होता है जो उपदेश देनेके पूर्व स्वयं अपने आचरणमें उसका प्रयोग

करता है। अन्यथा तो—'***पर उपदेस कुसल बहुतेरे***' किं वा '**परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्**' प्रसिद्ध ही है। पुत्रका निर्माण करनेके लिये पिताको सुन्दर बनना पड़ता है। शिष्यका भजनमय जीवन-निर्माण करनेके लिये गुरुको उसके पहले अपने जीवनको भजनमय बनाना चाहिये। कथनी, करनी और रहनीमें सामञ्जस्य होना चाहिये। मात्र कथनीसे कार्य नहीं चल सकता, परंतु केवल करनी और रहनीसे कार्य अच्छी तरह सम्पन्न हो सकता है। श्रीब्रह्माजीने कहा—'हे देवताओ! मैंने पहले ही अपने अंशसे ऋक्षराज जाम्बवान्‌की सृष्टि कर रखी है—'

पूर्वमेव मया सृष्टो जाम्बवानृक्षपुङ्गवः।

(१।१७।७)

देवताओंने भगवान् ब्रह्माकी आज्ञा बिना ननु-नच किये ही स्वीकार कर ली और वानरोंके रूपोंमें अनेकानेक पुत्र उत्पन्न किये—

ते तथोक्ता भगवता तत् प्रतिश्रुत्य शासनम्।
जनयामासुरेवं ते पुत्रान् वानररूपिणः॥

(१।१७।८)

देवेन्द्र इन्द्रने वानरराज वालीको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया। वाली महेन्द्र पर्वतके समान विशालकाय और बलवान् था। तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ तेजस्वी सूर्यभगवान्‌ने सुग्रीवको जन्म दिया—

वानरेन्द्रं महेन्द्राभमिन्द्रो वालिनमात्मजम्।
सुग्रीवं जनयामास तपनस्तपतां वरः॥

(१।१७।१०)

देवगुरु बृहस्पति तारके रूपमें आये, कुबेर गन्धमादन नामक वानरके रूपमें आये, विश्वकर्माजी नलके रूपमें आये, अग्निदेव नीलके रूपमें आये, दोनों अश्विनीकुमार द्विविद और मैन्दके रूपमें आये, वरुणजी सुषेणके रूपमें आये और महाबली पर्जन्यदेव शरभके रूपमें इस भूतलपर उत्पन्न हो गये।

महापराक्रमी, परम भागवत श्रीहनुमान्‌जी महाराज श्रीपवनदेवके औरस पुत्र थे। उनका शरीर वज्रके समान सुदृढ़ था—वज्रकी तरह अभेद्य था और उनका वेग श्रीगरुडके तुल्य था। श्रीहनुमान्‌जी समस्त मुख्य वानरोंमें सर्वाधिक बुद्धिमान् और बलवान् थे—

मारुतस्यौरसः श्रीमान् हनूमान् नाम वानरः।
वज्रसंहननोपेतो वैनतेयसमो जवे॥
सर्ववानरमुख्येषु बुद्धिमान् बलवानपि।

(१।१७।१६-१७)

इस प्रकार कई सहस्र वानरोंकी उत्पत्ति हुई। वे वानर असीम बलसम्पन्न थे, वीर थे, पराक्रमी थे और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले थे। वे मत्त गजेन्द्रों और पर्वतोंकी तरह विशाल शरीरवाले तथा महाबली थे—

ते सृष्टा बहुसाहस्रा दशग्रीववधोद्यताः॥
अप्रमेयबला वीरा विक्रान्ताः कामरूपिणः।
ते गजाचलसंकाशा वपुष्मन्तो महाबलाः॥

(१।१७।१७-१८)

वे वानर नखों और दाँतोंसे ही शस्त्रोंका कार्य लेते थे; परंतु उन्हें समस्त शस्त्रास्त्रोंका विशेष परिज्ञान था। वे बड़े-बड़े पर्वतोंको पकड़ कर हिला देते थे और स्थिरभावसे खड़े हुए वृक्षोंको तोड़ डालनेमें समर्थ थे। वे '**दशग्रीववधोद्यताः**' रावणादिका वध करनेके लिये सर्वदा प्रस्तुत रहते थे। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी इन वानरोंका बल-वर्णन करते हैं। रावणका गुप्तचर शुक कहता है—

सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला।
पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला॥
मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा।
ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका।
मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका॥
सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम।

रावन काल कोटि कहुँ जीति सकहिं संग्राम॥

इस प्रकार भगवान् श्रीरामकी सहायताके लिये प्रकट हुए उन भयङ्कर शरीर और रूपवाले वानर वीरोंसे समस्त भूमण्डल समावृत हो गया।

बभूव भूर्भीमशरीररूपैः
समावृता रामसहायहेतोः॥

(१।१७।३७)

जो कछु आयसु ब्रह्माँ दीन्हा।
हरषे देव बिलम्ब न कीन्हा॥
बनचर देह धरी छिति माहीं।
अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं॥
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा।
हरि मारग चितवहिं मतिधीरा॥
गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी।
रहे निज निज अनीक रुचि रूरी॥

चक्रवर्ती श्रीदशरथजीका पुत्रेष्टि-यज्ञ सानन्द, सोत्साह सम्पन्न हो गया। यज्ञके सद्यः फलीभूत होनेके कारण सम्पूर्ण अयोध्यानिलय लोग प्रसन्न हो गये। भिन्न-भिन्न देशोंके आमन्त्रित राजा लोग अपने-अपने स्थानोंपर चले गये। श्रीदशरथजीने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको आगे करके अपनी पुरीमें प्रवेश किया। श्रीदशरथजीके द्वारा अत्यन्त सम्मानित होकर महर्षि ऋष्यशृङ्ग भी अपनी पत्नी शान्ताके साथ अपने स्थानको चले गये—

शान्तया प्रययौ सार्धमृष्यशृङ्गः सुपूजितः।

(१।१८।६)

इस प्रकार समस्त समागत अतिथियोंको विदा करके सम्पूर्णमानस—सफलमनोरथ श्रीदशरथजी अपने नित्य पुत्रके प्रादुर्भावकी प्रतीक्षा करते हुए श्रीअयोध्याजीमें आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एवं विसृज्य तान् सर्वान् राजा सम्पूर्णमानसः।
उवास सुखितस्तत्र पुत्रोत्पत्तिं विचिन्तयन्॥

(१।१८।७)

चिन्तामें सुख नहीं है जलन है; परंतु यह तो चिन्ता नहीं है प्रतीक्षा है। पूर्णब्रह्म परमात्मा आनन्दकन्द श्रीरामचन्द्रके पुत्ररूपमें आगमनकी प्रतीक्षा है। अहो! वह दिन कब आवेगा जब मैं पूर्णब्रह्मको, विश्वात्माको नन्हें-से लालके रूपमें अपनी गोदमें खिलाऊँगा। अहो! वह दिन कब आवेगा जब असीम ससीम होकर नन्हें-से शिशुके रूपमें मधुर ध्वनिसे रुदन करेगा और उस अपूर्व रुदनको सुन करके मैं विभोर हो जाऊँगा। इस प्रकारकी प्रतीक्षामें आनन्दपूर्वक छः ऋतुएँ—बारह मास व्यतीत हो गये—

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः।

(१।१८।८)

'समत्ययुः' का अर्थ होता है **'सम्यक् प्रकारेण अत्ययुः व्यतीयुः'** अर्थात् अच्छी तरह व्यतीत हो गया। भाव यह है कि किसीको किसी प्रकारका कष्ट नहीं हुआ। जबसे यज्ञ पूर्ण हुआ है, माताओंने पायस पाया है, श्रीहरि गर्भमें आये हैं तबसे आनन्द-ही-आनन्द है—

जा दिन तें हरि गर्भहिं आए।
सकल लोक सुख सम्पति छाए॥

अब तो मङ्गलमय श्रीराम-जन्मकी कल्याणमयी, आनन्दमयी वेला आ गयी। श्रीरामजी राजकुमारके रूपमें अवतार ले रहे हैं एतावता ऋतुओंके राजा वसन्त-ऋतुमें—ऋतुराजमें उनका आविर्भाव हुआ। मानो ऋतुराज राजकुमारकी अगवानीके लिये—स्वागतके लिये पहलेसे पधार गये हैं। वसन्त-ऋतुमें दो मास होते हैं चैत्र और वैशाख—मधु और माधव। श्रीरामजीका जन्म मधुमासमें—चैत्रमासमें होता है। जिस मासकी पूर्णिमामें चित्रानक्षत्र हो उसे चैत्रमास कहते हैं। इस मासमें जन्म लेनेवाला बालक चित्र-विचित्र अनिर्वचनीय गुणोंसे सम्पन्न होता

है। चैत्रमासमें जन्म लेनेवाला बालक मधुरभाषी होता है—

चैत्रे मधुरभाषी स्यादहङ्कारसुखान्वितः।

चैत्रमासमें भी शुक्लपक्ष है। शुक्लका अर्थ है समुज्ज्वल। इस पक्षमें जन्म लेनेवाला बालक समुज्ज्वल—विशद चरित्रवाला होता है।

भगवान्‌की जन्मतिथि नवमी है। एक सन्त कहते थे कि एक बार साकेताधीश करुणामयी श्रीसीताजीके साथ विराजमान थे। उसी समय दीन-हीन एक देवी आ गयी। प्रभुने पूछा—'तुम कौन हो?' उसने कहा—'हे स्वामी! मैं नवमी तिथिकी अधिष्ठातृ देवी हूँ।' प्रभुने पूछा—'कैसे आयी हो?' उसने कहा—'हे सर्वान्तर्यामिन्! हे करुणासागर! हे अनाथनाथ! मेरी बड़ी दुर्दशा है। लोग रिक्ता कहकर मेरा अपमान करते हैं। मैं यात्रा आदि प्रशस्त कार्योंमें हटा दी जाती हूँ।' प्रभुने पूछा—'तुम वास्तवमें रिक्ता हो?' उसने कहा—'हे दयामय! सच कहनेसे डर लग रहा है, कहीं आपके दरबारसे भी न निकाल दी जाऊँ; वास्तवमें मैं रिक्ता ही हूँ। मेरे पास कोई आता नहीं और कोई मुझे पूछता भी नहीं, निषेध-प्रतिषेध सभी करते हैं।' प्रभु मन्द-मन्द मुसकरा पड़े और उसे आश्वस्त करते हुए बोले—'हे नवमी देवि! चिन्ता मत करो, अब तुम ठीक जगह आ गयी हो, यहाँसे निकाले जानेका भय नहीं है। यहाँ जो निष्कपटभावसे दीन होकर आता है उसे निकाला नहीं जाता है, अपनाया जाता है। जिसके पास कोई नहीं जाता है, जिसके पास कोई आनेकी इच्छा भी नहीं करता है उसके पास मैं जाता हूँ। जिसे कोई नहीं पूछता है, उसे मैं पूछता हूँ। जिसे कोई नहीं अपनाता, जिसे सब भगा देते हैं, जिसका सब अपमान करते हैं, उसे मैं अपनाता हूँ, अपने हृदयसे लगा लेता हूँ'। करुणामय श्रीरघुनाथजीने श्रीकिशोरीजीकी ओर अर्थपूर्ण दृष्टिसे निहारा। नित्यकिशोरी श्रीसीताजीने नेत्रोंकी भाषामें उत्तर दे दिया। दोनों ठाकुरने प्रिया-प्रियतमने सम्मिलित घोषणा कर दी 'हे नवमि! जो रिक्ता है, वही हम दोनोंको भाता है। जो समस्त आश्रयसे रिक्त है कामनाओंसे रिक्त है, कपटसे रिक्त है और छलसे रिक्त है वही हम दोनोंको प्यारा है। हे रिक्ते! हम रिक्तमें ही निवास करते हैं। जो आकण्ठ कपट-छलसे परिपूर्ण है उससे हम दूर रहते हैं। तुम रिक्ता हो, अतः मेरा आविर्भाव तुम्हींमें होगा। मैं नवमी तिथिमें ही जन्म लूँगा।' श्रीकिशोरीजीने कहा— 'मेरे नाथ! जिसे आपने अपना लिया है उसी नवमीमें मैं भी अवतार धारण करूँगी।' दोनों ठाकुरका जन्म रिक्ता तिथिमें—नवमीमें ही होता है। श्रीराम नवमी और श्रीजानकी नवमी। नवमी निहाल हो गयी। 'अब कौन कहेगा मुझे रिक्ता? कहते हैं तो कहें, मैं तो आज भर गयी हूँ—परिपूर्ण हो गयी हूँ। मैं तो पूर्णासे भी अपनेको सौभाग्यशालिनी मानती हूँ। श्रीराम-सीताने मुझे स्वीकार कर लिया है। मैं उनके नामसे जुड़ गयी हूँ'। निहाल हो गयी नवमी। ठाकुरजी आ गये नवमी तिथिमें।

नवमी तिथिमें जो बालक जन्म लेता है वह जगत्प्रसिद्ध होता है। सब प्राणियोंसे निर्भय रहता है, अतः अपने भक्तोंको सब प्राणियोंसे निर्भय कर देता है—'**निर्भयः सर्वभूतेभ्यो नवम्यां जायते नरः**'।

भगवान्‌का जन्मनक्षत्र 'पुनर्वसु' है। भगवान्‌का एक नाम भी पुनर्वसु है— '**अनघो विजयो जेता विश्वयोनिर्पुनर्वसुः**'। पुनर्वसुका यह अर्थ है— '**पुनः पुनः शरीरेषु वसतीति पुनर्वसुः श्रीहरिः**'। पुनर्वसुका यह भी अर्थ है कि जो लोगोंको पुनः बसावे अर्थात् उजड़े हुएको बसावे, अनाथको

सनाथ करे। मेरे रामजीमें यह सब गुण सहज ही विद्यमान हैं।

श्रीरामजी मध्याह्न-वेलामें अवतार लेते हैं। उस समय सूर्यका सर्वाधिक प्रकाश होता है, श्रीरामजीका प्रकाश त्रैलोक्यमें सर्वाधिक है। मध्याह्नका सूर्य सब प्रकाशोंका प्रकाशक है। श्रीरामजी सबको प्रकाशित करते हैं—

बिषय करन सुर जीव समेता।
सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई।
राम अनादि अवधपति सोई॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू।

इस प्रकार योग, लग्न, दिन, तिथि, नक्षत्र सब मङ्गलमय हो गये। सूर्य, मङ्गल, शनि, गुरु और शुक्र अपने-अपने उच्च स्थानमें विराजमान हो गये। शुभ लग्न—कर्क लग्न आ गयी। लग्नमें चन्द्रमाके साथ बृहस्पति विराजमान हो गये। उस कल्याणी-वेलामें श्रीकौसल्यारूपी पूर्व दिशामें सर्वलोकवन्द्य, जगदीश्वर श्रीरामरूप निर्मल, निष्कलङ्क चन्द्रमाका आविर्भाव हो गया—

बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची।
कीरति जासु सकल जग माची॥
प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू।
बिस्व सुखद खल कमल तुसारू॥

(१।१६।४-५)

ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ॥
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह॥
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम्।
कौसल्याजनयद् रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्॥

(१।१८।८—१०)

'**सर्वलोकनमस्कृतम्**' का अर्थ आचार्योंने किया है कि जिस प्रकार श्रीमद्भागवतमें गर्भस्थ ठाकुरकी स्तुति ब्रह्मादि देवतालोग करते हैं, श्रीरामचरितमानस किं वा अन्य ग्रन्थोंमें भी गर्भस्थ रामजीकी स्तुति देवतालोग करते हैं, उसी प्रकार महर्षि वाल्मीकिने, इस शब्दके द्वारा ब्रह्मादि देवताओंने स्तुति की—इस ओर इङ्गित किया है।

इसी प्रकार शुभ लग्नमें, शुभ मुहूर्तमें कैकेयीनन्दन श्रीभरतजीका जन्म हुआ। वे समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न थे—

भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः।

(१।१८।१३)

इसके अनन्तर वात्सल्यमयी माता श्रीसुमित्राजीके मङ्गलमय गर्भसे श्रीलक्ष्मण-शत्रुघ्नका प्रादुर्भाव हुआ—

अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राजनयत् सुतौ।

(१।१८।१४)

इस प्रकार चारों भाइयोंका आविर्भाव हो गया। श्रीअयोध्याजीके राजपथपर, गलियोंमें, वाटिकाओंमें, बागोंमें, महलोंमें, राजमहलोंमें, यत्र-तत्र—सर्वत्र आनन्दकी सरिता बह चली। गन्धर्व गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं, देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और आकाशसे कुसुमाञ्जलियाँ छूटने लगीं। नट और नर्तक अपनी-अपनी कलाएँ दिखाने लगे। अवर्णनीय आनन्द है। आनन्द-ही-आनन्द है—

जगुः कलं च गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात् पतत्॥
उत्सवश्च महानासीदयोध्यायां जनाकुलः।
रथ्याश्च जनसम्बाधा नटनर्तकसङ्कुलाः॥

(१।१८।१७-१८)

सूत, मागध और वन्दीजनोंको यथायोग्य पुरस्कार दिये गये। ब्राह्मणोंको धन एवं सहस्त्रों गोधन प्रदान किये गये। इस प्रकार श्रीरामजन्म-

प्राकट्य-महोत्सवका आनन्द अणु-अणुमें परिव्याप्त हो गया।

ठाकुरजीके प्राकट्यके ग्यारह दिनके पश्चात् नामकरण-संस्कार हुआ। आज राजमहलमें विशेष चहल-पहल है। एक ऊँचा-सा सुन्दर सिंहासन है। उसपर एक अत्यन्त सौम्य, तेजस्वी सिद्ध सन्त विराजमान हैं, उनका नाम है—श्रीवसिष्ठजी महाराज। उनके सामने सुन्दर चार आसनोंपर क्रमशः श्रीदशरथ, श्रीकौसल्या, कैकेयीजी और सुमित्राजी बैठी हैं। इन चारोंकी गोदमें चार समवयस्क नन्हें-नन्हें सुकुमार सहज सलोने बालक हैं। आज इन्हींका नामकरण-संस्कार है। चक्रवर्तीजीने प्रार्थना की—'गुरुदेव! कृपा करके मेरे लालोंका नामकरण-संस्कार करिये'। गुरुदेव निर्निमेष नेत्रोंसे अपने शिष्य-पुत्रको निहार रहे थे, आत्मविस्मृत हो रहे थे, राजाके वचनोंसे वे प्रकृतिस्थ हो गये। श्रीवसिष्ठ नामकरण-संस्कारमें प्रवृत्त हुए—

वसिष्ठः परमप्रीतो नामानि कुरुते तदा॥

(१।१८।२२)

'**परमप्रीतः**' का भाव यह है कि श्रीवसिष्ठजी आज अपनेको कृतकृत्य अनुभव कर रहे हैं। आज वे अपने सौभाग्यपर विभोर हैं। सोचते हैं कि आज मुझे वह सौभाग्य मिला जिसकी मैं वर्षोंसे नहीं युगोंसे प्रतीक्षा कर रहा था। उन्हें स्मरण आ रहा था अतीतका वह चिरस्मरणीय दिन।

श्रीब्रह्माने वसिष्ठसे—अपने पुत्रसे कहा—'वत्स! तुम सृष्टिका विस्तार करो।' उत्तरमें श्रीवसिष्ठने बद्धाञ्जलि होकर निवेदन किया—'हे पितः! मैं अपने अग्रजोंका—सनकादिकोंका अनुगमन करना चाहता हूँ। उन महापुरुषोंने पथप्रदर्शन कर दिया है, दिशानिर्देश कर दिया है, मेरे लिये चलना सुगम है।' श्रीब्रह्माने कहा—'हे वसिष्ठ! मैं तुम्हें भाग्यवान् बनाना चाहता हूँ, तुम सूर्यकुलका पौरोहित्य स्वीकार कर लो'। श्रीवसिष्ठजीने विनम्रतापूर्वक प्रत्युत्तर दिया—'हे वत्सलपितः! आपका वात्सल्य श्लाघ्य है, परंतु मेरा मन चरम लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये ललच रहा है। हे ब्रह्मन्! मैं आपके द्वारा प्रदत्त देवदुर्लभ देहका उपयोग भजन करके प्रभुप्राप्तिमें करना चाहता हूँ।' पुनः ब्रह्माने कहा—'हे पुत्र! इसी सूर्यकुलमें, भविष्यमें पूर्णब्रह्म परमात्मा साकेताधीश श्रीरामचन्द्रजीका प्राकट्य होगा। उस समय उस ब्रह्मको शिष्यके रूपमें पाकर तुम कृतकृत्य हो जाओगे। बड़ी-बड़ी साधना करके मन और इन्द्रियोंको विषयरससे नीरस करके जिस ब्रह्मकी एक झलक योगी कभी-कभी कर पाते हैं। जिनके दर्शनके लिये सनकादि सिद्ध सन्त ललचते रहते हैं, वही सच्चिदानन्दघन घनश्याम राम इस धराधामपर अवतीर्ण हो करके—सूर्यकुलमें जन्म ले करके तुम्हारे शिष्यके रूपमें, तुम्हारे सामने आसनपर बैठकर श्यामपट्टपर '**अइउण्, ऋॡक्, एओङ्, ऐऔच्**' लिखेंगे और तुम उनका हाथ पकड़कर लिखवाओगे। सम्भव है कभी यह भी सौभाग्य मिल जाय कि वह सर्वान्तरात्मा—नन्हा-सा शिशु तुम्हारे श्मश्रुओंसे—सफेद दाढ़ीसे खेले, तुम्हारे मुखमें, नाकमें अपनी नन्हीं-नन्हीं अँगुलियाँ डालकर क्रीडा करे और अपने सुकोमल अंगुलि-दलोंके स्पर्शसे तुम्हें निहाल कर दे। हे वसिष्ठ! अब तुम निर्णय करो कि तुम्हें सूर्यकुलका पौरोहित्य लेना है, किं वा अग्रजोंका—सनकादिकोंका अनुसरण करना।' श्रीवसिष्ठजीकी आँखोंसे अनवरत अश्रुवर्षण हो रहा है, मन गद्गद हो गया है, भविष्यके सौभाग्यकी कल्पना करके। उन्होंने रुँधे हुए स्वरमें कहा—'हे पितः! मुझे पौरोहित्य-कर्म स्वीकार है'। तबसे लेकर आजतक प्रतीक्षा कर रहे थे। आज वह सौभाग्य मिल गया तो वे परम प्रसन्न

हो गये। '**वसिष्ठः परमप्रीतः**'। '**प्रीञ् तर्पणे**' धातुसे '**प्रीतः**' शब्द निष्पन्न होता है, अतः धातुलभ्य अर्थ हुआ कि वसिष्ठजी अपने पौरोहित्य-कर्मके स्वीकार करनेसे आज परम सन्तुष्ट हैं।

श्रीदशरथजीके प्रेमाग्रहसे गुरुदेव श्रीवसिष्ठ नामकरण-संस्कार कर रहे हैं। श्रीरामका अनागत—भविष्य श्रीरामजीकी ही कृपासे महर्षिकी आँखोंके सामने प्रत्यक्षकी भाँति नर्तित हो उठा और वे कहने लगे—'हे राजन्! आपके अङ्कमें विद्यमान इस श्यामल शिशुका नाम 'राम' है। कर्मयोगी, ज्ञानयोगी और भक्तियोगी आदि सभी इनमें रमण करेंगे, अतः इनका नाम राम है। किं वा भविष्यमें ये माँ लक्ष्मीको—श्रीसीताजीको पत्नीत्वेन स्वीकार करेंगे इसलिये इनका नाम 'राम' है। '**रा गृहीता पत्नीत्वेन मा लक्ष्मीः—सीता ये न सः रामः।**' '**सीता साक्षात् स्वयं लक्ष्मीः**' **इत्युक्तेः।** हे नरेन्द्र! श्रीकौसल्याजीकी मङ्गलमयी क्रोडमें विद्यमान श्यामल शिशुका नाम 'भरत' है। यह अपने श्रीरामप्रेमके द्वारा संसारको भर देंगे—पूर्ण कर देंगे, अतः इनकी भरत संज्ञा है—'**भरं भरणं तनोतीति भरतः**'। **किं वा भरं ज्येष्ठ भ्रात्रानुरोधेन राज्यसम्बन्धि नाना दुःखसहन भारं तनोति निजाङ्ग इति भरतः।** हे महीपति मुकुटमणे! श्रीकैकेयीजीकी गोदमें विराजमान गौरवर्णके शिशुका नाम 'लक्ष्मण' है। इनकी नन्हीं-नन्हीं हथेलियोंकी रेखाएँ सूचित कर रही हैं कि ये अपने जीवनसर्वस्व श्रीरामचन्द्रकी सर्वविध सेवा करेंगे, अतः संसारमें ये 'लक्ष्मण' पद वाच्य होंगे। '**लक्ष्माणि परममङ्गल-श्रीरामसेवासूचकहस्तरेखादीनि यस्य सः लक्ष्मणः**'। हे दशरथजी! श्रीसुमित्राजीकी गोदमें विद्यमान कनीयान् बालकका नाम शत्रुघ्न है। यह भविष्यमें लवणासुर आदि प्रचण्ड शत्रुओंका नाश करेंगे अतः इनकी 'शत्रुघ्न' अभिधा है। '**शत्रून् लवणासुरादीन् प्रचण्डराक्षसान् हनिष्यतीति शत्रुघ्नः**'। इस प्रकार आनन्दके वातावरणमें उत्साहपूर्वक नामकरण-संस्कार सम्पन्न हुआ।

चारों भाई चन्द्रमाकी कलाकी तरह उत्तरोत्तर विवर्द्धमान होने लगे। श्रीवसिष्ठजीने राजा दशरथको आज्ञा देकर समय-समयपर जातकर्म आदि सब संस्कार सम्पन्न किये—

तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत्।

(१।१८।२४)

रामायणशिरोमणि टीकाकार लिखते हैं—'**जन्मक्रियादीनि तदादि उपनयनान्तानीत्यर्थः अकारयत् वसिष्ठो राज्ञा**'। अर्थात् श्रीवसिष्ठजीने जन्म-क्रियासे लेकर उपनयन—यज्ञोपवीत-संस्कारपर्यन्त सभी संस्कारोंसे बालकोंको सुसंस्कृत कराया।

चारों दशरथकुमार वेदवेत्ता थे, शूरवीर थे, लोकोपकारी थे, ज्ञानसम्पन्न थे और समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न थे; परंतु उन सबमें सत्यपराक्रमी श्रीरामभद्रजी महान् तेजस्वी थे और सब लोकोंको विशेष प्रिय थे। वे निर्मल, निष्कलङ्क चन्द्रमाके समान सबको आह्लादित करते थे, अतः सबको विशेष प्रिय थे—

सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे लोकहिते रताः॥
सर्वे ज्ञानोपसम्पन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः।
तेषामपि महातेजा रामः सत्यपराक्रमः॥
इष्टः सर्वस्य लोकस्य शशाङ्क इव निर्मलः।

(१।१८।२५—२७)

रामायणशिरोमणि टीकाकार लिखते हैं—'**निर्मलः, आश्रितमलनिवर्तनहेतुः किञ्च निर्गतो यो मः परिमाणं तल्लाति गृह्णाति इति निर्मलः, इयत्तारहितप्रभावविशिष्टः**' अर्थात् श्रीरामजी निर्मल थे—अपने आश्रितोंके समस्त मलोंका विनाश कर देते थे। किं वा ठाकुरजीके गुणोंमें 'ल'

अर्थात् परिमाण नहीं था, तात्पर्य कि इयत्तारहित प्रभाव-विशिष्ट थे—उनके अपरिमित गुणगण थे—

चारिउ सील रूप गुन धामा।
तदपि अधिक सुखसागर रामा॥

यद्यपि चारों भाइयोंका पारस्परिक स्नेह अपूर्व था। तथापि श्रीलक्ष्मणजीकी श्रीरामजीके प्रति और श्रीशत्रुघ्नकी श्रीभरतके प्रति विशेष अनुरक्ति—प्रीति थी और तीनों भाइयोंका श्रीरामके प्रति विलक्षण अनुराग था। सभी माताओंके प्रति चारों भाइयोंकी समान निष्ठा थी तथा सम्पूर्ण माताओंका चारों बालकोंके प्रति समान अनुराग था। सभी माताएँ जानती थीं—'हमारे चार पुत्र हैं'—

स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी।
निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी॥

श्रीराम-लक्ष्मणके स्नेहका आदिकविने चार श्लोकोंमें भावपूर्ण वर्णन किया है—

बाल्यात् प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्द्धनः॥
रामस्य लोकरामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः।
सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः॥
लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नो बहिःप्राण इवापरः।
न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः॥
मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं विना।
यदा हि हयमारूढो मृगयां याति राघवः॥
अथैनं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन्।
(१।१८।२८—३२)

श्रीलक्ष्मणको **'लक्ष्मिवर्द्धनः'** विशेषण दिया है, **'लक्ष्मीं वर्द्धयतीति लक्ष्मिवर्द्धनः'** श्रीलक्ष्मण भगवत्कैङ्कर्यरूपी सम्पत्तिका नित्य अभिनव अभिवर्द्धन करते हैं। **'श्रीरामकैङ्कर्य-सम्पत्तिवर्द्धकः।'** लक्ष्मिवर्द्धन श्रीलक्ष्मणजी बाल्यावस्थासे ही सुस्निग्ध थे—श्रीरामजीके प्रति असीम भक्तिसम्पन्न थे। समस्त लोकोंको आनन्द देनेवाले लोकाभिराम श्रीरामजीका सब प्रकारसे प्रिय करते थे। भाव कि श्रीरामजी संसारकी सँभाल रखते थे और श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामजीकी सँभाल रखते थे। यही लक्ष्मणजीका जीवनदर्शन है। शरीरसे भी श्रीरामजीकी सेवामें लगे रहते थे। **'शरीर इत्युपलक्षणं त्रिविधकरणैरपि रामस्य सर्वप्रियकरः'** मन, वचन, कर्मसे श्रीरामजीकी सर्वप्रकारेण सेवा करते थे। श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके लिये बाहर विचरनेवाले दूसरे प्राणके समान थे। यदि श्रीलक्ष्मणजीकी शय्या—पर्यङ्क श्रीरामजीकी शय्याके पास नहीं होती थी, अर्थात् अत्यन्त मिली हुई नहीं होती थी तो श्रीरामजी रात्रिमें पुनः-पुनः उठकर बैठ जाते थे। माताके पूछनेपर कहते थे—'हे माँ! मुझे मेरे प्यारे लक्ष्मणके बिना नींद नहीं आती है, उसके बिना मुझे कुछ नहीं अच्छा लगता है'। इसका भाव यह है कि श्रीलक्ष्मणजी तो श्रीरामजीके प्राण थे, प्राणके बिना निद्राका आना सम्भव ही नहीं है। माता श्रीकौसल्याजी अपने लालको—श्रीरामजीको भोजन करानेके लिये सुन्दर, सुस्वादु, षड्रसपरिपूर्ण भोजनका थाल सजाकर लातीं और कहतीं कि हे वत्स! हे लालजी! आरोगो—भोजन करो। परंतु भगवान् रुदन करते हुए कहते हैं—'हे माँ! लक्ष्मणके बिना मेरी भोजन करनेकी इच्छा नहीं होती है, उसके बिना मुझे किसी वस्तुमें स्वाद ही नहीं आता है। हे जननि! मैं अपने प्यारे लक्ष्मणके बिना भोजन नहीं कर सकता हूँ।' भाव यह है कि श्रीलक्ष्मण ठाकुरजीकी दक्षिण भुजा हैं, **'रामस्य दक्षिणो बाहुः'** दक्षिण भुजाके बिना कोई भोजन कर भी कैसे सकता है? **'तेन विना निद्रां न लभते, प्राणं विना कथं निद्रां लभेत् इत्यर्थः। किञ्च कौसल्ययानीतं मृष्टान्नं तं विना नाश्नाति दक्षिणबाहुं विना कथमश्नातीति भावः'**। (गोविन्दराजजी) जब श्रीरामजी घोड़ेपर

चढ़कर आखेट करनेके लिये जाते थे तब श्रीलक्ष्मणजी धनुष-बाण लेकर प्रभुके अत्यन्त सन्निकट रहकर उनकी सब प्रकारसे रक्षा करते थे, उनके पीछे-पीछे चलते थे। यह श्रीराम-लक्ष्मणका पारस्परिक प्रेम है। श्रीभरत और शत्रुघ्नका भी आपसमें अतिशय स्नेह था। इन चारों भाइयोंका भ्रातृत्व सर्वदा अनुकरणीय था, अनुकरणीय है और अनुकरणीय रहेगा।

चारों भाई विद्वान् हो गये। सर्वगुणसम्पन्न हो गये। शस्त्रविद्या और शास्त्रविद्यामें पारङ्गत हो गये। उपनयन तो हो ही गया था अब तो सबके मनमें—जन-जनके मनमें इनके विवाहकी अभिलाषा है।

चक्रवर्तीजी जब श्रीकौसल्याजीके महलमें जाते थे तब वे कहती थीं—पुत्रोंका विवाह कब करियेगा? अब तो यही एक अभिलाषा मनमें है। जब श्रीकैकेयीके कक्षमें जाते तो वे भी कहतीं—पुत्रवधूके मुखका दर्शन कब कराइयेगा? अब तो यही एक कामना है कि कुलवती, गुणवती, बुद्धिमती बहू आ जाय। श्रीसुमित्राके कक्षमें जाते तो वे कहतीं—हे प्राणेश्वर! मेरे चारों राजकुमार बहुत सुन्दर हैं। इतने सुन्दर कुमार तो सम्भवतः सृष्टिमें कहीं नहीं होंगे। इनके योग्य बहू देखकर विवाह करियेगा। मेरे मनमें तो शङ्का ही बनी रहती है कि इनके अनुरूप बहुएँ मिलेंगी क्या? इस प्रकार विवाह-सम्बन्धके लिये सब चिन्तित हैं। साढ़े तीन सौ माताएँ, जो श्रीरामजीको ही अपना पुत्र मानती हैं, उन सबकी कामना—पुत्रवधुओंके मुखदर्शनकी अभिलाषा दिनोत्तर बलवती हो रही है।

एक दिन चक्रवर्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजी अपने परम हितैषी, कुलपुरोहित श्रीवसिष्ठजी तथा अपने बन्धु-बान्धवोंके सहित बैठकर अपने पुत्रोंके विवाहके सम्बन्धमें विचार कर ही रहे थे कि उसी समय महाज्ञानी महर्षि विश्वामित्र पधारे—

अथ राजा दशरथस्तेषां दारक्रियां प्रति॥
चिन्तयामास धर्मात्मा सोपाध्यायः सबान्धवः।
तस्य चिन्तयमानस्य मन्त्रिमध्ये महात्मनः॥
अभ्यागच्छन् महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः।

(१।१८।३७—३९)

महर्षि विश्वामित्रका आगमन सुनकर राजाने समाहित होकर—सावधान होकर प्रसन्नतापूर्वक उनका स्वागत किया। श्रीविश्वामित्रको **'तापसं संशितव्रतम्'** कहा गया है। अर्थात् **'अत्युग्रनियमकर्तारं तापसम्'** वे कठोर नियम करनेवाले तपस्वी थे। श्रीदशरथजीने अर्घ्यादि विविध उपचारोंसे उनका पूजन, वन्दन किया। कुशल-प्रश्नके अनन्तर राजाने प्रहृष्ट होकर कहा—हे महामुने! जैसे म्रियमाण पुरुषको अमृत मिल जाय, पुत्रहीनको पुत्र मिल जाय, रङ्कको सहसा खोयी हुई निधि मिल जाय, जैसे जन्मान्धको प्रभुकृपासे नेत्र मिल जाय—देखनेकी शक्ति मिल जाय, गूँगेको भगवती शारदाका कृपाप्रसाद वाणी मिल जाय और निर्जल प्रदेशमें वृष्टि हो जाय, उसी प्रकारका, उतना ही आनन्द आज आपके शुभदर्शनसे मुझे हो रहा है। आप मुझे अपना सेवक समझकर आदेश दें कि मैं आपके किस कार्यको प्रसन्नतापूर्वक सम्पन्न करूँ? हे मानद! मेरा अहोभाग्य है, जो आप यहाँ कष्ट करके आये हैं। आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरा जीवन धन्य हो गया—

पात्रभूतोऽसि मे ब्रह्मन् दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मानद।
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्॥

(१।१८।५३)

'मानद' कहनेका भाव कि आप मुझे सेवा करनेका अवसर देकर भी मेरे सम्मानका ही वर्द्धन करेंगे। अन्यथा आपको किसी पदार्थकी

आकाङ्क्षा हो ही नहीं सकती है। आप तो स्वयं परम समर्थ हैं।

विश्वामित्रजी प्रसन्न हो गये। श्रीवाल्मीकिजीको प्रसन्न होना शब्द हलका लगा, अतः कहा—'**हृष्टरोमा महातेजा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत**' अर्थात् राजाका विनम्र वचन सुनकर महर्षिके रोम-रोम खिल उठे और वे बोले। '**हृष्टः**' और '**हृष्टरोमा**' इन दोनोंमें कितना अन्तर है, इसपर विचार करें। यहाँ तो वैयाकरणोंके—व्याकरणके विद्वानोंकी पंक्ति ही बैठी है।

श्रीविश्वामित्रजी कहते हैं—हे राजेन्द्र! मैं जानता हूँ कि ये सद्गुण आपमें कहाँसे आये हैं, किस स्रोतसे आये हैं। इन सद्गुणोंके आनेके दो उत्स हैं—एक तो वंशपरम्परा—किस पवित्र कुलमें उत्पन्न हुए हैं और दूसरी नादपरम्परा—किस आचार्यके चरणोंमें बैठकर आपने शिक्षा पायी है। इसलिये लल्लू, बुद्धू, जगधरको आचार्य—गुरु नहीं बनाना चाहिये। हे नरशार्दूल! आप राजर्षि इक्ष्वाकुके महान् कुलमें उत्पन्न हुए हैं और ब्रह्मर्षि वसिष्ठसे आपने शिक्षा पायी है।

सदृशं राजशार्दूल तवैवं भुवि नान्यतः।
महावंशप्रसूतस्य वसिष्ठव्यपदेशिनः॥

(१।१९।२)

हे राजन्! अब मेरे आनेका प्रयोजन सुनें। आपने मेरी इच्छा पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा की है, उस प्रतिज्ञाको पूर्ण करें, '**कुरुष्व राजशार्दूल भव सत्यप्रतिश्रवः**' हे राजन्! मेरी बात सुनकर विचलित न हों; क्योंकि मेरी याचना ऐसी होगी जो आपको विचलित कर सकती है, अतः पहले ही कहता हूँ—'**भव सत्यप्रतिश्रवः—सत्यप्रतिज्ञो भव**'। हे राजन्! मैं सिद्धिके लिये अनुष्ठान कर रहा हूँ—

अहं नियममातिष्ठे सिद्ध्यर्थं पुरुषर्षभ।

(१।१९।४)

मेरे यज्ञमें दो राक्षस अनेक प्रकारसे यज्ञविनाशक विघ्न करते हैं, वे दोनों बलवान् और सुशिक्षित हैं। याज्ञिक नियमोंके कारण मैं किसी प्रकारकी—कायिक या वाचिक शक्तिका प्रयोग नहीं कर सकता हूँ। हे राजन्! मैं बड़े धर्मसङ्कटमें हूँ। मुझे धर्मसङ्कटसे उबारनेके लिये अपने सत्यपराक्रम ज्येष्ठ पुत्र रामको दे दें। हे रामपितः! आप चिन्तित न हों। श्रीराम मेरे द्वारा सुरक्षित होकर उन राक्षसोंका विनाश करके मेरे यज्ञका परिरक्षण करनेमें सर्वथा समर्थ हैं। हे नरेन्द्र! मैं श्रीरामको अनेक प्रकारका श्रेय प्रदान करूँगा। हे पृथ्वीनाथ! आप पुत्रविषयक स्नेहसे भयभीत न हों। उन राक्षसोंको केवल श्रीराम ही मार सकते हैं। सत्यपराक्रम-सम्पन्न महात्मा श्रीरामका तात्त्विक स्वरूप मैं जानता हूँ; क्योंकि मैंने अनेक गुरुजनोंके श्रीचरणोंमें बैठकर आत्मा और परमात्माके यथार्थ तत्त्वका परिज्ञान किया है। आपके कुलाचार्य सरस्वतीवल्लभनन्दन महातेजस्वी श्रीवसिष्ठजी भी श्रीरामजीके तात्त्विक स्वरूपके पूर्ण ज्ञाता हैं, किं बहुना श्रीरामके तात्त्विक स्वरूपको आपके यहाँके अन्य तपस्वी, जो दैहिक कष्ट सहन करनेवाले हैं, किं वा ज्ञाननिष्ठ हैं वे भी श्रीरामका स्वरूप जानते हैं।

अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्॥
वसिष्ठोऽपि महातेजा ये चेमे तपसि स्थिताः।

(१।१९।१४-१५)

इस श्लोकका आचार्योंने, सन्तोंने अनेक प्रकारसे आस्वादन किया है। उसको कहनेका—आस्वादन करानेके सम्प्रति समय नहीं है और हृदय भी नहीं है। तथापि आचार्योंके श्रीचरणोंकी मङ्गलमयी छत्रछायामें बैठकर किञ्चित् आस्वादन करते हैं।

श्रीरामजीको महात्मा कहा है। (क) सब

लोगोंके द्वारा जिसका स्वरूप पूजनीय हो उसे महात्मा कहते हैं— **'महः सर्वपूजनीयः आत्मास्वरूपं यस्य सः महात्मा'** अतः श्रीराम महात्मा हैं। (ख) जो सर्वश्रेष्ठ लोग हैं, सर्वपूज्य लोग हैं उनके आत्माको भी जो नियन्त्रित करनेमें सक्षम हो उसे महात्मा कहते हैं— **'महानां सर्वपूज्यानां आत्मानं नियन्ता महात्मा'** अतः श्रीराम महात्मा हैं (रामायणशिरोमणि)। (ग) **'आत्मा जीवे धृतौ देहे'** इस कोषके अनुसार आत्मा शरीरको भी कहते हैं। भाव कि श्रीरामचन्द्रजीका श्रीविग्रह अप्राकृत है, दिव्य है, मङ्गलमय है, सुतराम् वे महात्मा पदवाच्य हैं। **'न तस्य प्राकृतामूर्तिः'**। (घ) **'महात्मानं महास्वभावं अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम इति वक्ष्यमाणत्वात्'** अर्थात् आत्मा स्वभावको भी कहते हैं। श्रीरामजी अपने आश्रितजनोंको सब प्रकारसे अभय प्रदान करते हैं। इस महास्वभावसे सम्पन्न श्रीरामजी महात्मा हैं। **'सत्यपराक्रमम्'**—श्रीरामजीका पराक्रम कपटपरिपूर्ण नहीं है, एतावता वे सत्यपराक्रम हैं— **'सत्यः कापट्यरहितः पराक्रमो यस्य सः तम् सत्यपराक्रमम्'**। किं वा श्रीरामजी अपने सत्यके द्वारा दूसरोंको अथवा शत्रुओंको आक्रान्त कर देते हैं, अतः वे सत्यपराक्रम हैं। **'सत्यान् परान् आक्रमतीति सत्यपराक्रमः तम् सत्यपराक्रमम्'**।

श्रीविश्वामित्रजीने कहा—हे राजन्! यदि श्रीवसिष्ठजी आदि, आपके सभी मन्त्री आपको अनुमति दें तो आप श्रीरामजीको मुझे दे दें। श्रीविश्वामित्रके इन हृदयविदारक वचनोंको सुनकर श्रीदशरथको बड़ी व्यथा हुई। वे अपने आसनसे विचलित होकर संज्ञाशून्य हो गये। दो घड़ीके पश्चात् सचेत होकर बोले—

तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलो विश्वामित्रस्य भाषितम्।
मुहूर्तमिव निःसंज्ञः संज्ञावानिदमब्रवीत्॥

(१।२०।१)

अत्यन्त करुणापूर्ण शब्दोंमें श्रीदशरथजीने कहा—

ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः।

(१।२०।२)

श्रीदशरथजीका आशय बड़ा स्नेहपरिपूर्ण है—यद्यपि आप श्रीरामतत्त्वके परिज्ञाता हैं तथापि मेरा राम तो अभी सोलह वर्षका भी नहीं हुआ है। भाव यह है कि यह अभी युद्धके योग्य नहीं है। श्रीमद्रामायणके प्राचीन टीकाकार 'कतक' का भाव है, सोलह वर्षका क्षत्रियकुमार ही कवच धारण करके युद्धयोग्य होता है, मेरा राम तो अभी सोलह वर्षका भी नहीं है, अतः युद्धके अयोग्य है। **'इदं च युद्धायोग्यत्वं प्रतिपादितम्, षोडशवर्षः क्षत्रियकुमार एव कवचधरो युद्धार्ह इति शास्त्राद् इति कतककृतः'**। **'मे रामः'** कहनेका आशय यह है कि अभी तो यह मेरी गोदमें रहता है, इसलिये मेरा वियोग मेरा राम भी नहीं सहन कर पावेगा। **'मे रामः सदा मदुत्सङ्गपरिवर्तितयामद्विरहासहिष्णुः'** किं वा **'मे रामः'** कहनेका यह भी आशय है कि—हे महर्षे! यह राम मेरा है, इसे मुझसे अधिक कौन जानेगा। राजा पुनः अतिशय वात्सल्यपूर्ण शब्दोंमें कहते हैं, **'राजीवलोचनः'** मेरा राम राजीवनयन है। राजीव मृगको भी कहते हैं और कमलको भी कहते हैं। भाव कि मेरा राम मृगनयन है। उन कठोर घोर राक्षसोंको देखकर समराङ्गणमें डर जायगा, अतः मेरे रामको आप न ले जाइये। दूसरा भाव श्रीगोविन्दराजजी कहते हैं—**'राजीव लोचन इति पद्मतुल्यनयनः, पद्मं हि रात्रौ मुकुली भवति तत्तुल्यतोक्तौ रात्रौ निद्रालसो रामो रात्रिञ्चरैः कथं योद्धुं शक्नोतीति भावः'**। अर्थात् कमल

रात्रिमें बन्द हो जाता है, इसी प्रकार रात्रि आरम्भ होते ही मेरे रामको नींद आने लगती है और निशाचर रात्रिमें अधिक युद्ध करते हैं, इसलिये मेरा राम राक्षसोंसे युद्ध नहीं कर सकता है, अतः मेरे रामको आप न ले जाइये। तीसरा भाव यह भी है कि हे महर्षे! यह सायङ्कालसे ही सोने लगता है, अभी बालक है; आप इसे ले जाकर कठिनाईमें पड़ जाइयेगा। इसे कैसे सुलाओगे, कैसे जगाओगे, कैसे खिलाओ-पिलाओगे। आप यह सब करेंगे अथवा तपस्या करेंगे। इसलिये आप मेरे रामको न ले जाइये। यद्यपि यह एक पंक्ति ही—सोलह अक्षर ही महर्षिके उत्तरके लिये पर्याप्त है। इस पंक्तिकी व्याख्या बहुत विस्तृत है। श्रीदशरथजी पुनः आगे कहते हैं—

हे महर्षे! मेरा राम राक्षसोंसे युद्ध करने-योग्य नहीं है। यद्यपि यह धनुर्विद्यामें पारंगत है; परंतु राक्षस कूटयुद्ध—कपटयुद्ध करते हैं, अतः आप रामको न ले जाइये— **'न चासौ रक्षसां योग्यः कूटयुद्धा हि राक्षसाः'** हे कुशिकनन्दन! साठ हजार वर्षकी अवस्थामें मैंने मेरे रामको पाया है, अतः आप मेरे रामको न ले जाइये—

षष्टिवर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक॥
कृच्छ्रेणोत्पादितश्चायं न रामं नेतुमर्हसि।

(१।२०।१०-११)

हे ब्रह्मर्षे! मैं अपने रामके बिना दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकूँगा। अतः आप मेरे रामको न ले जाइये—

विप्रयुक्तो हि रामेण मुहूर्तमपि नोत्सहे॥
जीवितुं मुनिशार्दूल न रामं नेतुमर्हसि।

(१।२०।८-९)

मैं अपनी समस्त सेनाके साथ चलकर राक्षसोंसे युद्ध करूँगा; अतः आप सेनाके साथ मुझे ले चलिये; परंतु मेरे रामको न ले जाइये।

मेरा राम मेरे चारों पुत्रोंमें ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है। इसपर मेरी प्रीति सर्वाधिक है। इसलिये हे करुणामय ब्रह्मर्षे! मेरे रामको न ले जाइये—

ज्येष्ठे धर्मप्रधाने च न रामं नेतुमर्हसि।

(१।२०।१२)

श्रीदशरथजी अन्तमें कहते हैं—

बालं मे तनयं ब्रह्मन् नैव दास्यामि पुत्रकम्।

(१।२०।२५)

अर्थात् हे ब्रह्मन्! मेरा राम अभी निपट बालक है; अतः मैं इसे नहीं दूँगा। इस श्लोकमें **'पुत्रकम्'** का बड़ा भावपूर्ण प्रयोग है। अनुकम्पाके अर्थमें **'कन्'** प्रत्यय हुआ है, अतः कहते हैं, **'नैव दास्यामि पुत्रकम्'**।

अन्तमें महर्षि वाल्मीकि श्रीदशरथजीके वचनोंको एक भावपूर्ण विशेषण देते हैं। उस विशेषणके द्वारा आदिकविने श्रीदशरथजीकी स्थिति, उनका स्नेह, उनका वात्सल्यपूर्ण हृदय और उनका मनोभाव सब कुछ व्यक्त कर दिया है। भावपूर्वक ध्यान दें—**'तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य स्नेहपर्याकुलाक्षरम्'**। **'स्नेहपर्याकुलाक्षर'** का अर्थ है **'स्नेहेन पुत्रप्रेम्णा पर्याकुलानि गद्गदाक्षराणि—स्खलन्ति अक्षराणि यस्मिन् तत्'** इसका भाव यह है कि राजा पहले तो कहते थे—**'न रामं नेतुमर्हसि', 'नैव दास्यामि पुत्रकम्'**। परंतु अन्तमें तो यह भी स्पष्ट नहीं कह पाये अपितु हिचकियोंमें—स्खलिताक्षरोंमें बड़ी कठिनतासे कह पाये कि मैं रामजीको नहीं दूँगा। महाकवि तुलसीदासजीने श्रीदशरथजीके वचनोंका अत्यन्त संक्षिप्त परंतु अतिभावपूर्ण चित्रण किया है—

सुनि राजा अति अप्रिय बानी।
हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी॥
चौथेंपन पायउँ सुत चारी।
बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी॥

मागहु भूमि धेनु धन कोसा।
सर्बस देउँ आजु सहरोसा॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं।
सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं॥
सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाईं।
राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥

(१।२०८।१—५)

श्रीदशरथजीका नकारात्मक उत्तर सुनकर महर्षि विश्वामित्र परम क्रुद्ध हो गये और कहा—हे राजन्! पहले देनेकी प्रतिज्ञा करके अब प्रतिज्ञाका परित्याग करना चाहते हो। मुझसे तो कह दिया—'**न रामं नेतुमर्हसि**' और तुम स्वयं '**प्रतिज्ञां हातुमिच्छसि?**' ठीक है, मैं तो जैसे आया था वैसे ही लौट जाऊँगा—श्रीरामके बिना ही लौट जाऊँगा। तुम अपनी प्रतिज्ञाको असत्य करके—मिथ्यावादीका कलङ्क लेकर संसारमें सुखपूर्वक रहो। श्रीविश्वामित्रजीके कुपित होते ही समस्त भूमण्डल प्रकम्पित हो गया। देवताओंने सोचा कि श्रीदशरथजी हमारे मित्र हैं, अतः हमारे ऊपर भी महर्षिका कोप सम्भाव्य है, सुतराम् उनके मनमें भी महान् भय समा गया—

चचाल वसुधा कृत्स्ना देवानां च भयं महत्॥

(१।२१।४)

मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि बाहरसे तो विश्वामित्रजी क्रोधाभिनय कर रहे हैं और भीतरसे प्रसन्न भी हो रहे हैं कि अहो! ये राजर्षि कितने भाग्यशाली हैं, साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा इनके पुत्र हैं और उनपर यह अपना एकाधिपत्य स्वीकार कर रहे हैं। '**मे रामः**' सनातन अनादिनिधन अजन्मा ब्रह्मको ये कहते हैं—'**ऊनषोडशवर्षः**'। धन्य है! संसारके लिये तो धर्मका, कर्मका, भजनका, व्रतका, नियमका, सत्यका, माता-पिता और गुरुका परित्याग तो बहुत लोग कर देते हैं; परंतु भगवान्‌के लिये कौन परित्याग करता है? इनके इस प्रेमका महत्त्व तो कोई स्नेही ही समझ सकता है। ऊपरसे क्रोधाभिनय करते हुए महात्मा अन्तःकरणमें प्रसन्न हो गये। श्रीरामचरितमानससे तो अतिशय स्पष्ट है—

सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी।
हृदयँ हरष माना मुनि ग्यानी॥

(१।२०८।७)

महर्षि सोचने लगे—यह राजर्षि तो प्राण दे देंगे पर राम न देंगे। इनको विचलित करना भी अशक्य है। श्रीरामके लिये सत्य-त्यागका इनको क्लेश नहीं है। स्वर्गकी इन्हें अपेक्षा नहीं और नरकसे भय भी नहीं है। शापका भी इन्हें तनिक भी डर नहीं प्रतीत होता है। फिर हमें प्रभुकी प्राप्ति कैसे हो। चारों ओरसे निराश मुनिके मनमें एक आशाकी किरण प्रकाशित हो गयी। उनकी आँखें छलछला आयीं, हृदय गद्गद हो गया। अब तो मेरी आशाके केन्द्रबिन्दु केवल ब्रह्मर्षि वसिष्ठ हैं। श्रीवसिष्ठ तो त्रिकालज्ञ हैं, मेरे कार्यकी महत्ताको भी समझते हैं। भावज्ञ हैं, मेरे हृदयके भावको भी समझते हैं, ईश्वरेश्वर हैं और पूज्य हैं; अतः मेरी सहायता ये अवश्य करेंगे। ये तो मेरे हृदयकी वाणी भी सुननेमें समर्थ हैं। बस, अब क्या था, राह मिल गयी, जहाँ चाह होती है वहाँ राह मिल ही जाती है। मन-ही-मन श्रीवसिष्ठशरणापन्न हो गये श्रीविश्वामित्र और मूकभाषामें प्रार्थना करने लगे—हे महात्मन्! जीवनके क्षेत्रमें मैंने अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं, आपसे लड़कर मैं ब्रह्मर्षिपदतक पहुँच गया और आपसे ब्रह्मर्षि कहला भी लिया; परंतु हे महात्मन्! हे रामगुरो! हे अप्रतिम भाग्यशालिन्! सब कुछ करनेके बाद भी मैं आपके चरणोंकी धूलितक भी नहीं पहुँच सका। ब्रह्मने—आराध्यने

पहले आपपर कृपा की है। हे सूर्यकुलके पुरोधा! अब आपकी कृपाके बिना मैं भाग्यवान् नहीं बन सकता। प्रभुकी कृपा नहीं पा सकता। हे परब्रह्मशिक्षक! जो सौभाग्य आपको सहज ही मिल गया है, वह कुछ दिनके लिये हमें भी दानमें दे दें। हे धर्मात्मन्! सुन्दर फलका उपभोग एकाकी नहीं करना चाहिये, वितरण करके पाना चाहिये। हे महर्षे! आपकी कृपासे ही मुझे राम मिलेंगे। मुझे आपकी सहायता अपेक्षित है। इस महाप्रेमी, परम भावुक राजाको डिगाना मेरे लिये कठिन कार्य है। इसे विचलित करना सरल नहीं है। इससे 'हाँ' कहलाना असम्भव है, यह जान दे देगा, मान दे देगा, आन-बान दे देगा, ईमान दे देगा पर राम नहीं देगा। संसारके अशेष सुकृतोंको दे देगा; राज्यवैभव दे देगा; परंतु हे महर्षे! मुझे ज्ञात है, यह रघुनन्दनको नहीं देगा। इस प्रेमी राजाके वाक्य ही प्रमाण हैं—**'नैव दास्यामि पुत्रकम्'**। यह कार्य आप—केवल आप कर सकते हैं। हे ब्रह्मर्षे! आज मैं अपना सब कुछ हारकर आपके श्रीचरणोंमें शरणागत हूँ— **'त्राहि माम्! पाहि माम्! रक्ष माम्!'** मुझे संसार नहीं चाहिये, उच्चतम पद भी नहीं चाहिये, मेरा सर्वस्व लेकर मुझे राम दे दो—बस केवल राम दे दो।

श्रीवसिष्ठका हृदय गद्गद हो गया, रोमाञ्च हो आया। उन्होंने नेत्रोंकी भाषामें कहा—हे विश्वामित्रजी! आज आप सचमुच विश्वके मित्र बन गये, आज आपका नाम सार्थक हो गया। 'विश्व' नाम तो श्रीरामजीका ही है, उनके मित्र बन गये—अपने बन गये। उस दिन तो मैंने संकोचमें ब्रह्मर्षि कहा था, परंतु आज हृदयसे कह रहा हूँ—'हे ब्रह्मर्षे! आज तुम ब्रह्मर्षि बन गये हो, सृष्टिके इतिहासमें अनुपम पुरुष बन गये हो।'

श्रीवसिष्ठ श्रीदशरथजीसे कहने लगे—हे राजन्! आप कह रहे थे—**'न रामं नेतुमर्हसि'** उसके उत्तरमें मैं कह रहा हूँ— **'न धर्मं हातुमर्हसि'**। **'रामो विग्रहवान् धर्मः'** यदि धर्म छोड़ दोगे तो श्रीरामजी भी नहीं रहेंगे। अभी आप कह रहे थे—रामजी राक्षसोंसे युद्ध नहीं कर सकेंगे, हे राजन्! श्रीराम अस्त्रविद्या जानते हों या न जानते हों परंतु राक्षस इनके सामने टिक नहीं सकते हैं; क्योंकि **'गुप्तं कुशिकपुत्रेण'** इनके रक्षक श्रीविश्वामित्र ऐसे समर्थ तपस्वी हैं। समस्त ब्रह्माण्डमें इनसे अधिक शस्त्रास्त्रोंका सङ्कलन किसीके पास नहीं है। इनसे बड़ा शस्त्रास्त्रोंका जानकार, उनका प्रयोग और संहार करनेवाला भी कोई नहीं है। इस रहस्यको मेरे अतिरिक्त कोई नहीं जानता है—

एषोऽस्त्रान् विविधान् वेत्ति त्रैलोक्ये सचराचरे।
नैनमन्यः पुमान् वेत्ति न च वेत्स्यन्ति केचन॥

(१।२१।११)

हे राजन्! श्रीविश्वामित्रजीके साथ श्रीरघुनन्दनको भेजनेमें आपको किसी प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये—

न रामगमने राजन् संशयं गन्तुमर्हसि॥

(१।२१।२०)

ब्रह्मर्षि वसिष्ठ अपने उपदेशका उपसंहार करते हुए अब वह उपदेश कर रहे हैं जिस उपदेशने श्रीदशरथजीका विचार ही पलट दिया। बड़ा भावपूर्ण उपदेश है। आइये, उस उपदेशका रसास्वादन करें—

तेषां निग्रहणे शक्तः स्वयं च कुशिकात्मजः।
तव पुत्रहितार्थाय त्वामुपेत्याभियाचते॥

(१।२१।२१)

हे राजेन्द्र! क्या आप समझते हैं कि मुनि मारीचके नाशके लिये आये हैं? ये कह तो यही रहे हैं। आप इनकी शक्तिको समझें। जितने भी

मारीचादि राक्षस हैं, मुनि उनका वध करनेमें स्वयं समर्थ हैं। फिर उनके यहाँ आनेका वास्तविक प्रयोजन क्या है? समर्थ होते हुए भी याचना क्यों कर रहे हैं? इसका उत्तर श्रीवसिष्ठजी देते हैं—श्रीविश्वामित्र कितने परोपकारी सन्त हैं कि अपना स्वाभिमान समाप्त करके **'त्वामुपेत्य'** आपके पास स्वयं आकर—बिना बुलाये आकर आपसे **'अभियाचते'** **'अभि'** उपसर्ग लगाकर सूचित किया कि आपके 'न' करनेपर भी याचना कर रहे हैं। दूसरा भाव यह है कि जिन्होंने कभी याचना की ही नहीं वह आपसे याचना कर रहे हैं। श्रीविश्वामित्रजीने कहा—हे परमहितैषी महर्षे! मैं जिस पदार्थकी याचना करने आया हूँ, उस पदार्थकी शोभा झोली फैलाकर माँगनेमें ही है। आज्ञा देकर प्राप्त करनेमें नहीं है। हे मुने! मैं संसार किं वा संसारी पदार्थ नहीं माँग रहा हूँ अपितु साक्षात् रामजीको माँग रहा हूँ। आपलोग उस धनके धनी हैं, सुतराम् मेरा झोली फैलाकर माँगना सर्वथा समीचीन है। श्रीवसिष्ठजीने कहा—हे राजन्! आपके पास स्वयं आकर आपके 'न' करनेपर भी झोली फैलाकर क्यों माँग रहे हैं? उत्तर है—**'तव पुत्रहितार्थाय'** आपके पुत्रका हित सम्पादन करनेके लिये। **'हितमतिरहस्यानन्यदुर्लभानेकविद्याप्रदानादिरूपम्'** अर्थात् दूसरोंके लिये अति दुर्लभ, अत्यन्त रहस्यमयी अनेक विद्याओंका प्रदानरूप हित करनेके लिये ही आपके पुत्रकी याचना कर रहे हैं। किं बहुना, हे राजन्! इनके आनेके पूर्व जिस कार्यके लिये हमलोग चिन्तित थे उस कार्यको भी सम्पन्न करके आपके पुत्रोंका हित करेंगे। आश्चर्यविस्फारितनेत्र राजाने पूछा—क्या ये विवाह करायेंगे? श्रीवसिष्ठने कहा—यही तो मैं कह रहा हूँ—**'तव पुत्रहितार्थाय'** अर्थात् यह तो वास्तवमें श्रीराम-सीताके सनातन सम्मिलनके—विवाहके परम पवित्र दिव्य माध्यम हैं। इन्होंने तो अपनी याचनाकी भूमिकामें ही कहा था—**'श्रेयश्चास्मै प्रदास्यामि बहुरूपं न संशयः'**। तिलक टीकाकारने लिखा है—**'अस्त्रदानविवाहादिरूपम् बहुरूपम्'**। अब तो महर्षिकी वाणी सुन करके राजाका मुखमण्डल प्रकाशित हो गया। उनकी अशेष आशंका आमूल नष्ट हो गयी। उनकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं है। उन्होंने सद्यः श्रीरामका आवाहन किया। वे यह जानते हैं कि लक्ष्मणके बिना श्रीरामकी कल्पना भी नहीं की जा सकती, एतावता श्रीलक्ष्मणजीको बुला करके दोनोंको मुनिके साथ जानेकी आज्ञा दी। माता, पिता, आचार्य सबने दोनों भाइयोंके समुन्नत ललाटपर हरिद्राक्षतका तिलक करके, स्वस्त्ययन करके, मङ्गलमन्त्रोंका पाठ करके **'सुप्रीतेनान्तरात्मना'** अर्थात् बिना सङ्कोचके, प्रसन्न होकर श्रीविश्वामित्रजीको समर्पण कर दिया—

ददौ कुशिकपुत्राय सुप्रीतेनान्तरात्मना॥

(१।२२।३)

श्रीदशरथने स्नेहिल स्वरमें कहा—'हे मुने! ये दोनों मेरे प्राण हैं। आजसे आप ही इनके पितृस्थानापन्न—रक्षक हैं।'

मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ।
तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥
सौंपे भूप रिषिहि सुत बहुबिधि देइ असीस।
जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस॥

(श्रीरामचरितमानस १।२०८।१०; दो० १० क)

एक प्रश्न होता है कि माताओंने किस प्रकार प्रसन्नतासे विदा कर दिया? उत्तर है कि माताओंको तो पहलेसे ही ज्ञात था कि श्रीविश्वामित्रजी विवाहके लिये आये हैं। लगभग चौदहवर्ष पूर्व

एक हस्तरेखाविद् योगी ज्योतिषीने भविष्यवाणी की थी—

जनम प्रसंग कह्यो कौसिक मिस सीय-स्वयंबर गायो।
राम, भरत, रिपुदवन, लखनको जय सुख सुजस सुनायो॥
तुलसिदास रनिवास रहसबस, भयो सबको मन भायो।
सनमान्यो महिदेव असीसत सानँद सदन सिधायो॥

(गीतावली बालकाण्ड १७)

महर्षि श्रीविश्वामित्रजी जब श्रीराम-लक्ष्मणको साथमें लेकर चले तो रजरहित सुखस्पर्शवायु बहने लगी, देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। शङ्खकी मङ्गलध्वनि होने लगी। आकाशसे महती पुष्पवृष्टि होने लगी—

ततो वायुः सुखस्पर्शो नीरजस्को ववौ तदा।
विश्वामित्रगतं रामं दृष्ट्वा राजीवलोचनम्॥
पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद् देवदुन्दुभिनिःस्वनैः।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः प्रयाते तु महात्मनि॥

(१।२२।४-५)

छः कोसकी यात्रा सम्पन्न हो गयी। महर्षिके मनमें श्रीरामसे सम्बन्ध स्थापित करनेकी कामना हो गयी। श्रीरामजीसे सम्बन्ध अवश्य ही बना लेना चाहिये। सम्बन्ध स्थापित करनेके बाद ममता भी बढ़ जाती है। आराधनाकी रीति भी निश्चित हो जाती है। सम्बन्ध अपने हृदयकी भावनानुसार होना चाहिये; परंतु होना अवश्य चाहिये। पिता बना लो, गुरु बना लो, माता बना लो, सखा बना लो, पुत्र बना लो, शिष्य बना लो, भाई बना लो, कुछ न बना सको तो शत्रु बना लो तब भी कल्याण हो जायगा। एक व्यक्तिने मुझसे कहा कि मैं तो आपके रामजीसे न दुश्मनी करता हूँ न दोस्ती करता हूँ। मैंने कहा—तुम अभागे हो, तुमसे अच्छा तो रावण था, कंस था, शत्रुतासे ही उनका कल्याण हो गया। कहनेका आशय यह है कि श्रीरामजीसे उदासीन नहीं रहना चाहिये। श्रीविश्वामित्रजीने आज सरकारको अपना प्रिय शिष्य बनानेका मनमें विचार किया।

महर्षिने आज्ञा दी—हे वत्स! अविलम्ब श्रीसरयूजलसे आचमन करो और मुझसे बला-अतिबला नामसे प्रसिद्ध मन्त्रसमुदायको ग्रहण करो—

रामेति मधुरां वाणीं विश्वामित्रोऽभ्यभाषत।
गृहाण वत्स सलिलं मा भूत् कालस्य पर्ययः॥
मन्त्रग्रामं गृहाण त्वं बलामतिबलां तथा।
न श्रमो न ज्वरो वा ते न रूपस्य विपर्ययः॥

(१।२२।१२-१३)

इस विद्याका महत्त्व बताकर विद्या प्रदान करके श्रीविश्वामित्रजी श्रीरामजीके गुरुपदसे सुशोभित हो गये—गुरु-शिष्यसम्बन्ध स्थापित हो गया।

श्रीविश्वामित्रजीने श्रीसरयूतटपर अपने शिष्योंके साथ—श्रीराम-लक्ष्मणके साथ रात्रिमें सुखपूर्वक विश्राम किया—

ऊषुस्तां रजनीं तत्र सरय्वां ससुखं त्रयः॥

(१।२२।२३)

रात्रि व्यतीत होनेके अनन्तर तिनकों और पत्तोंके बिछौनेपर सोये हुए दोनों राजकुमारोंको जगाते हुए मुनिने कहा। हे कौसल्यानन्दसंवर्द्धन! प्रातःकालकी सन्ध्याका समय हो रहा है; उठो और दैनन्दिन देवसम्बन्धी कार्योंको सम्पन्न करो—

कौसल्या सुप्रजा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्यं दैवमाह्निकम्॥

(१।२३।२)

श्रीगोविन्दराजजी अत्यन्त स्नेहिलभावकी अभिव्यक्ति करते हैं कि मुनि कहते हैं—'हे लालजी! उठो, आपकी निद्राके समयकी शोभाका तो मैंने दर्शन कर लिया, अब जागते समयकी भी शोभाका मैं दर्शन करना चाहता हूँ—'

'उत्तिष्ठ, निद्राश्रीरवलोकिता प्रबोधश्रियमप्यव-

लोकितुमिच्छामि'।

अद्य मे सफलं जन्म सुप्रभाता च मे निशा।
यदुन्निद्राब्जपत्राक्षं विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम्॥

'उत्तिष्ठ नरशार्दूल! आश्रितविरोधिनिरसन-शीलस्य किं निद्रावकाशोऽप्यस्ति नरशार्दूल मद्यज्ञनिर्वाहक'।

श्रीरामजीने महर्षिको अपूर्व वात्सल्य सुख प्रदान किया है, अन्यथा श्रीरामजीको उठानेकी आवश्यकता पड़ ही नहीं सकती है। इस अध्यायके आरम्भमें मातृस्थानापन्न होकर—जननीकी तरह किं वा पिताकी भाँति मुनि ठाकुरजीको नींदसे जगा रहे हैं और इस अध्यायके अन्तिम श्लोकमें भगवान्का मनोरंजन करते हुए, उन्हें कथा सुनाते हुए वात्सल्यमयी माँकी भाँति श्रीरामजीको शयन कराते हैं—

कथाभिरभिरामाभिरभिरामौ नृपात्मजौ।
रमयामास धर्मात्मा कौशिको मुनिपुङ्गवः॥

(१।२३।२२)

मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजीने परम मनोहर—चितचोर राजकुमारोंका, मनोहारिणी कथाओंके द्वारा मनोरञ्जन किया।

दूसरे दिन श्रीरामजीने नावपर बैठे हुए पूछा—'**किमियं तुमुलो ध्वनिः**' हे गुरुदेव! यह शब्द कैसा हो रहा है? महर्षिने कहा—हे रघुनन्दन! श्रीब्रह्माजीने अपने मानसिक सङ्कल्पसे कैलास पर्वतपर एक सरोवर प्रकट किया। मनसे प्रकट होनेके कारण उसकी 'मानससर' संज्ञा है। उसी सरसे एक नदी निकली है जो श्रीअयोध्याजीसे सटकर बहती है। सरसे निकलनेके कारण उस पुनीत नदीका नाम 'श्रीसरयू' है—

कैलासपर्वते राम मनसा निर्मितं परम्॥
ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेदं मानसं सरः।
तस्मात् सुस्राव सरसः सायोध्यामुपगूहते॥
सरःप्रवृत्ता सरयूः पुण्या ब्रह्मसरश्च्युता॥
तस्यायमतुलः शब्दो जाह्नवीमभिवर्तते॥

(१।२४।८—१०)

इस स्थानपर श्रीसरयू-गङ्गाका सङ्गम हो रहा है। दो नदियोंके जलोंके वेगपूर्वक मिलनेसे यह तुमुल ध्वनि हो रही है। हे राजकुमारो! आप दोनों इस पवित्र एवं श्रेष्ठ सङ्गमको प्रणाम करो। आगे चलकर एक भयङ्कर वन दिखायी पड़ा। उसके विषयमें ठाकुरजीके जिज्ञासा करनेपर मुनिने बताया। हे रघुनन्दन! इस स्थानपर दो नगर थे, 'मलद' और 'करुष'। दोनों नगर अत्यन्त समृद्ध थे; परंतु यहाँ सुकेतुपुत्री यक्षिणी ताटका आयी, वह सुन्द नामक दैत्यकी पत्नी तथा महापराक्रमी मारीचकी माता है। वह स्वयं एक हजार हाथियोंका बल धारण करती है। हे रामचन्द्र! उसने ही दोनों नगरोंको उजाड़ डाला—नगरको वीरान बना दिया। जङ्गलके रूपमें परिवर्तित कर दिया। वह दुष्टा छः कोसके मार्गको घेरकर इस वनमें रहती है—

मलदांश्च करूषांश्च ताटका दुष्टचारिणी।
सेयं पन्थानमावृत्य वसत्यत्यर्धयोजने॥

(१।२४।२९)

हे रघुनन्दन! इस ताटकाको—दुराचारिणीको अपने बाहुबलका आश्रय लेकर मार डालो और इस देशको निष्कण्टक—व्यथारहित कर दो। 'मैं स्त्रीकी हत्या कैसे करूँ? यह कार्य धर्मशास्त्रसे विरुद्ध है' इस विचारसे इस दुष्टापर दया न करना। सुना जाता है कि अतीतमें विरोचनकी पुत्री मन्थरा समस्त पृथ्वीका विनाश करना चाहती थी। उसके इस विचारको जानकर देवेन्द्र इन्द्रने उसे मार डाला। इसी तरह शुक्राचार्यकी माता और ब्रह्मर्षि भृगुकी पतिव्रता पत्नी जो त्रिभुवनको इन्द्रसे शून्य कर देना चाहती थी, किं वा त्रैलोक्यको निद्रानन्दसे रहित करना चाहती

थी। उसका यह अभिप्राय जानकर भगवान् विष्णुने उसका वध कर दिया—

श्रूयते हि पुरा शक्रो विरोचनसुतां नृप।
पृथिवीं हन्तुमिच्छन्तीं मन्थरामभ्यसूदयत्॥
विष्णुना च पुरा राम भृगुपत्नी पतिव्रता।
अनिन्द्रं लोकमिच्छन्ती काव्यमाता निषूदिता॥

(१।२५।२०-२१)

हे राजकुमार! तुम भी मेरी आज्ञासे, स्त्रीको नहीं मारना चाहिये इस प्रकारकी करुणाका परित्याग करके इस क्रूर राक्षसी ताटकाको मार डालो—

तस्मादेनां घृणां त्यक्त्वा जहि मच्छासनान्नृप॥

(१।२५।२२)

श्रीविश्वामित्रजीने प्रभुको पाँच बार आज्ञा दी कि ताटकाको मार डालो। प्रभुने मौन होकर स्वीकार कर लिया, परंतु मुनिको सन्देह हो गया कि सम्भवतः धर्मात्मा राम स्त्री समझकर मारना नहीं चाहते हैं, मेरी आज्ञाको महत्त्व नहीं दे रहे हैं। महर्षिका यह मनोभाव समझकर अन्तर्यामी श्रीरामने हाथ जोड़कर कहा—'**राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रत्युवाच दृढव्रतः**'। हाथ जोड़नेका भाव—बड़ोंसे हाथ जोड़कर ही बात करनी चाहिये। दूसरा भाव यह भी है कि मेरे उत्तर न देनेसे यदि आपके मनमें कष्ट हुआ हो तो क्षमा करें। तीसरा भाव यह भी है कि मैं आपकी आज्ञाका विनम्रतापूर्वक पालन करूँगा। चौथा भाव है कि मैं इस मायाविनी, नरसंहारिणी, बलवती दुष्टाको मारनेमें आपकी कृपासे समर्थ हो जाऊँगा।

श्रीरामने कहा—हे महात्मन्! मेरे पिताजीने मुझे उपदेश दिया था कि हे वत्स! कुशिकनन्दन महर्षि श्रीविश्वामित्रजीकी आज्ञाका शङ्कारहित होकर पालन करना और उनके वचनकी कभी अवज्ञा न करना। हे महात्मन्! ताटका-वधसम्बन्धी कार्यको उत्तम कार्य मानकर मैं उसको अवश्य मारूँगा। हे महर्षे! गो, ब्राह्मण तथा समस्त देशका हित सम्पादन करनेके लिये, आपका आदेश पालन करनेके लिये—ताटकावधके लिये मैं प्रस्तुत हूँ—

गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च।
तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः॥

(१।२६।५)

हे महर्षे! मैं पूज्य पिताके द्वारा उपदिष्ट हूँ और आपके द्वारा आदिष्ट हूँ, अतः एक शिष्ट सेवककी भाँति आज्ञापालन करनेके लिये प्रस्तुत हूँ। इतना कहकर श्रीरामचन्द्रने धनुषको सज्ज करके ज्याघोष किया—धनुषकी प्रत्यञ्चापर टङ्कार दी। उसे सुनकर ताटका अपना हाथ उठाकर गर्जना करती हुई प्रभुकी ओर झपटी। महर्षिका वात्सल्यपूर्ण हृदय चीत्कार कर उठा। मेरे लालको कहीं कुछ हो न जाय। एक क्षणके लिये मुनिका ब्रह्मभाव तिरोहित हो गया, वात्सल्यभाव सरस हो गया। महर्षिने हुङ्कार करके उसे डाँटा और अपने आराध्यसे प्रार्थना की, 'इन राघवोंका—श्रीराम-लक्ष्मणका—मेरे लालोंका मङ्गल हो, इनकी विजय हो—'

विश्वामित्रस्तु ब्रह्मर्षिर्हुङ्कारेणाभिभर्त्स्य ताम्।
स्वस्ति राघवयोरस्तु जयं चैवाभ्यभाषत॥

(१।२६।१४)

इस श्लोकमें महर्षिका अनुपम वात्सल्यरस छलक रहा है। महर्षिके हृदयको इस प्रकार करुणाने सम्भवतः कभी न उद्वेलित किया होगा। धन्य हैं महर्षि विश्वामित्र! धन्य है उनका निगूढ वत्सल स्नेह!

श्रीरामने उसके उठे हुए हाथोंको बाणोंसे काट डाला। '**करौ चिच्छेद पत्रिभिः**'। श्रीलक्ष्मणजी भी पीछे नहीं रहे, उन्होंने भी उसके नाक-कान काट डाले—

सौमित्रिरकरोत् क्रोधाद्धृतकर्णाग्रनासिकाम्॥

(१।२६।१८)

श्रीरामजीको ताटकाके वधमें विलम्ब करते देखकर महर्षिने एक बार फिर ऊँचे स्वरमें कहा—'हे रघुनन्दन! सन्ध्याके समय राक्षसोंका बल बढ़ जाता है, वे दुर्जय हो जाते हैं अतः इसे शीघ्र मारो, इसके ऊपर दया न करो'—

दृष्ट्वा गाधिसुतः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत्।
अलं ते घृणया राम पापैषा दुष्टचारिणी॥

(१।२६।२१)

श्रीरामजीने एक बाणसे उसका हृदय विदीर्ण कर दिया, वह पृथ्वीपर गिर कर मर गयी। उसका उद्धार हो गया और जगन्मङ्गल हो गया—

शरेणोरसि विव्याध सा पपात ममार च।

(१।२६।२६)

चारों ओरसे देवराज इन्द्र एवं समस्त देवता साधु-साधु कहकर श्रीरामचन्द्रकी सुप्रशंसा करने लगे—

साधु साध्विति काकुत्स्थं सुराश्चाप्यभिपूजयन्।

(१।२६।२७)

पूर्णब्रह्मके दो अवतार हैं, श्रीराम और श्रीकृष्ण। दोनोंने अपने-अपने भङ्गीसे—ढंगसे जगन्मङ्गल किया है। दोनोंके चरित्र अनूठे हैं। श्रीरामजीने भी सर्वप्रथम एक स्त्रीका ही उद्धार किया और श्रीकृष्णजीने भी। दोनोंका नाम तीन अक्षरका ही है। ताटका और पूतना—दोनोंका शरीर छः कोसका है—

सेयं पन्थानमावृत्य वसत्यत्यर्धयोजने॥

(श्रीवाल्मीकीय० १।२४।२९)

पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान्।

(श्रीमद्भागवत १०।६।१४)

आचार्योंने ताटका और पूतना—दोनोंको अविद्या कहा है। दोनोंमें किञ्चित् अन्तर भी है। श्रीरामजीने पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें मारा और श्रीकृष्णजीने छः दिनकी अवस्थामें मारा। श्रीरामजीने अपने ब्रह्मत्वका जीवनपर्यन्त सङ्गोपन किया है और श्रीकृष्णजीने आरम्भसे ही प्रकट कर दिया है। श्रीरामजीने ताटकाको आँखसे देखकर मारा है, परंतु श्रीकृष्णने आँखोंको बन्द करके मारा है। एक परब्रह्म महापुरुष है तो दूसरा परब्रह्म योगी है। महापुरुष आँखें खोलकर कार्य करते हैं और योगी आँखोंको सम्मीलित करके कार्य करता है। श्रीरामजीने किसीसे निर्दिष्ट और आदिष्ट होकर मारा है परंतु श्रीकृष्णने स्वेच्छासे मारा है। एक मर्यादापुरुषोत्तम हैं तो दूसरे लीलापुरुषोत्तम हैं। मर्यादापुरुषोत्तम तो किसीके निर्देशनमें ही कार्य करेंगे परंतु लीलाका क्षेत्र तो उससे भिन्न है। श्रीरामजी कहते हैं कि हमें तो परस्त्रीका दर्शन और स्पर्श करना नहीं है। महर्षिकी आज्ञासे ही ताटका और अहल्याका दर्शन अथवा स्पर्श करेंगे। श्रीकृष्णजी कहते हैं, हमें तो हजारों देवियोंकी कामना—अभिलाषा पूर्ण करनी हैं, हम कबतक आदिष्ट होते रहेंगे, हम तो प्रेमाविष्ट होकर जगत्का मङ्गल करेंगे।

ताटकावधसे अतिशय सन्तुष्ट मुनि विश्वामित्रजी अपने उमड़ते हुए वात्सल्यके वेगको सँभाल नहीं पाये। उन्होंने श्रीरामजीका मस्तक झुकाकर आघ्राण कर लिया—सूँघ लिया और कहा कि हे प्रियदर्शन! हे रघुनन्दन! आज रात्रिमें यहाँ विश्राम करके कल प्रातःकाल अपने आश्रमपर चलेंगे—

ततो मुनिवरः प्रीतस्ताटकावधतोषितः॥
मूर्ध्नि राममुपाघ्राय इदं वचनमब्रवीत्।
इहाद्य रजनीं राम वसाम शुभदर्शन॥
श्वः प्रभाते गमिष्यामस्तदाश्रमपदं मम।

(१।२६।३२—३४)

ताटकावनमें रात्रि व्यतीत करके, प्रातःकाल नित्यकर्मसे निवृत्त होकर महर्षि विश्वामित्रने श्रीरामजीको अनेक प्रकारके दिव्यास्त्र प्रदान किये। मुनिने कहा—हे रामभद्र! तुम्हारा कल्याण

हो। आज तुम्हें मैं अपने सम्पूर्ण दिव्यास्त्र प्रदान कर रहा हूँ—

तानि दिव्यानि भद्रं ते ददाम्यस्त्राणि सर्वशः।

(१।२७।४)

महर्षिने श्रीरामभद्रको महान् दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, वज्र, त्रिशूल, ब्रह्मास्त्र, ऐषिकास्त्र, धर्मपाश, कालपाश, वरुणपाश, तेज:प्रभ और मानवास्त्रशीतेषु आदि विविध महत्त्वपूर्ण अस्त्रग्रामोंको प्रदान किया। उन अस्त्रोंका प्रयोग बताया और संहारविधिका भी उपदेश दिया। वे सभी दिव्य अस्त्र चेतन थे। वे सब शस्त्रास्त्र सशरीर श्रीरामजीके पास आये और कहने लगे कि हमलोग आपके दास हैं—

ऊचुश्च मुदिता रामं सर्वे प्राञ्जलयस्तदा।
इमे च परमोदार किङ्करास्तव राघव॥

(१।२७।२५)

उदार चक्रचूडामणि श्रीरामजीने उनको स्वीकार करके अपने कल्याणमय करारविन्दोंसे उन दिव्यास्त्रोंका स्पर्श किया और कहा—आपलोग मेरे मनमें निवास करें—

प्रतिगृह्य च काकुत्स्थः समालभ्य च पाणिना।
मानसा मे भविष्यध्वमिति तान्यभ्यचोदयत्॥

(१।२७।२७)

ताटकावनसे प्रस्थान करके महर्षि विश्वामित्र श्रीराम-लक्ष्मणके साथ सिद्धाश्रमके निकट पहुँच गये—

आयुध सर्ब समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि।
कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि॥

(श्रीरामचरितमानस १।२०९)

श्रीविश्वामित्रने ठाकुरजीसे कहा—हे रामभद्र! अब हमलोग परमोत्तम सिद्धाश्रमके सन्निकट पहुँच गये हैं। हे वत्स! यह आश्रम जिस प्रकार मेरा है उसी प्रकार तुम्हारा भी है, अर्थात् मेरी समस्त वस्तुओंपर तुम्हारा अधिकार है—

अद्य गच्छामहे राम सिद्धाश्रममनुत्तमम्।
तदाश्रमपदं तात तवाप्येतद् यथा मम॥

(१।२९।२४)

सिद्धाश्रम पहुँचनेपर श्रीविश्वामित्रके शिष्योंमें, वहाँके तपस्वियोंमें आनन्दकी लहर दौड़ गयी। वे सरलचित्त तपस्वी प्रेमसे उछलने-कूदने लगे। सबने समवेत होकर महर्षिका—गुरुदेवका षोडशोपचार-विधिसे पूजन किया और श्रीरामचन्द्रजीका, श्रीलक्ष्मणका आतिथ्य-सत्कार किया—

तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे सिद्धाश्रमनिवासिनः।
उत्पत्योत्पत्य सहसा विश्वामित्रमपूजयन्॥
यथार्हं चक्रिरे पूजां विश्वामित्राय धीमते।
तथैव राजपुत्राभ्यामकुर्वन्नतिथिक्रियाम्॥

(१।२९।२६-२७)

केवल एक मुहूर्त—दो घड़ी विश्राम करके श्रीराम-लक्ष्मणने मुनिसे हाथ जोड़कर प्रार्थना की 'हे मुने! आप आज ही यज्ञकी दीक्षा स्वीकार करें। यह सिद्धाश्रम आज सिद्धाश्रम हो। हे मुने! हम यज्ञके बाधकोंका वध करनेके लिये कटिबद्ध हैं—'

अद्यैव दीक्षां प्रविश भद्रं ते मुनिपुङ्गव।
सिद्धाश्रमोऽयं सिद्धः स्यात् सत्यमस्तु वचस्तव॥

(१।२९।२९)

महर्षि विश्वामित्रने मौनव्रत लेकर यज्ञकी विधिवत् दीक्षा ले ली। श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाई यज्ञकी रक्षा करने लगे—

प्रात कहा मुनि सन रघुराई।
निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी।
आपु रहे मख कीं रखवारी॥

भारतीय संस्कृतिके सजग प्रहरी, यज्ञरक्षाके लिये कटिबद्ध यज्ञपुरुषकी बड़ी मनोरम झाँकी है। एक सुन्दर-सा यज्ञमण्डप है उसके द्वारपर श्रीराम-लक्ष्मणके रूपमें दो पहरेदार खड़े हैं, उनके हाथोंमें सज्ज धनुष हैं, उन धनुषोंपर बाण

हैं, कमरमें बाणोंसे परिपूर्ण निषङ्ग है, कमर कसकर बाँधे हुए हैं। उन दोनों रक्षकोंकी दृष्टि पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, नीचे सभी दिशाओंमें, विदिशाओंमें लगी है। वे समाहित होकर सावधान नेत्रोंसे यज्ञमें बाधा करनेवाले राक्षसोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। यज्ञमण्डपके भीतर मुनिलोग निर्भय होकर वैदिक मन्त्रोंसे आहुति दे रहे हैं।

इस प्रकार छः दिन और छः रात्रितक अनवरत सावधान होकर द्वारपर खड़े हैं। कितना मङ्गलमयस्वरूप है। उन्हें छः अहोरात्रपर्यन्त— एक सौ चौवालीस घंटेतक नींद भी नहीं आयी। धन्य है! इन यज्ञरक्षकोंके श्रीचरणोंमें प्रणाम है—

अनिद्रं षडहोरात्रं तपोवनमरक्षताम्॥

(१।३०।५)

पाँच दिन और पाँच रात्रि बीत गये हैं। आज छठा दिन है, भगवान्‌ने श्रीलक्ष्मणसे कहा— हे सुमित्रानन्दन! सावधान हो जाओ—

अथ काले गते तस्मिन् षष्ठेऽहनि तदागते।
सौमित्रिमब्रवीद् रामो यत्तो भव समाहितः॥

(१।३०।७)

उसी समय भयङ्कर राक्षसोंको साथमें लेकर अपनी माताका प्रतिशोध लेनेके लिये और श्रीविश्वामित्रके यज्ञका विनाश करनेके लिये मारीचने भयङ्कर आक्रमण कर दिया। युद्ध प्रारम्भ हो गया। श्रीरामजीने मनुके द्वारा प्रयुक्त 'शीतेषु' नामक अस्त्रका प्रयोग कर दिया। उस अस्त्रके प्रभावसे मारीच चक्कर काटता हुआ चला जा रहा है। प्रभुने कहा—हे लक्ष्मण! देखो, यह मानवास्त्र इस भयङ्कर राक्षस मारीचको मूर्च्छित करके दूर ले जा रहा है, मार नहीं रहा है—

पश्य लक्ष्मण शीतेषुं मानवं मनुसंहितम्।
मोहयित्वा नयत्येनं न च प्राणैर्वियुज्यते॥

(१।३०।२०)

इसके अनन्तर सुबाहुका उद्धार किया और श्रीलक्ष्मणने समस्त राक्षसीसेनाका संहार कर दिया। राक्षस मर गये, यज्ञ पूर्ण हो गया, श्रीरामजीका आज मन सफल हो गया। महर्षि विश्वामित्रने गद्‌गद होकर कहा—हे श्रीराम! तुम्हारे पिताने कहा था—'मेरा राम राजीवलोचन है' और मैं आज घोषणा कर रहा हूँ। 'मेरा राम महाबाहु है'। हे राघवेन्द्र! आपकी भुजाएँ बड़ी लम्बी हैं, इनसे कोई बच नहीं सकता है। साथ ही ये भुजाएँ अपने आश्रितजनोंको खींचकर, हृदयसे लगाकर उन्हें आश्लेषपाशमें निबद्ध कर लेती हैं। तुम्हारी भुजाओंसे रक्षित भक्तका कोई भी कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता है।

कृतार्थोऽस्मि महाबाहो कृतं गुरुवचस्त्वया।

(१।३०।२६)

हे महाबाहो! आज मैं कृतार्थ हो गया। आपने अपने गुरुका—मेरा किं वा अपने पिताका वचन पालन किया है। हे प्रशस्तकीर्ति राम! आपने इस सिद्धाश्रमका नाम सार्थक कर दिया है। इस प्रकार सुप्रशंसा करके श्रीविश्वामित्रजीने दोनों भाइयोंके साथ सन्ध्योपासना की।

उस दिन सबने रात्रिका विश्राम यज्ञशालामें ही किया। प्रातःकाल उठकर नित्यकर्मसे निवृत्त होकर दोनों भाइयोंने मुनिके श्रीचरणोंमें प्रणाम किया और बोले—'हम दोनों किङ्कर आपकी सेवामें उपस्थित हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! हमें आज्ञा दें कि हम अब आपकी क्या सेवा करें—'

इमौ स्म मुनिशार्दूल किंकरौ समुपागतौ।
आज्ञापय मुनिश्रेष्ठ शासनं करवाव किम्॥

(१।३१।४)

'**किङ्करौ**' का भाव कि आपने अपने

भक्तिभावसे हमें क्रीत कर लिया है—खरीद लिया है। हम आपके क्रीतदास हैं। हे स्वामी! हम आपके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते हैं, अत: आपकी सेवामें उपस्थित हैं— **'किङ्करौ' 'भक्तिक्रीतो जनार्दनः' इत्युक्तरीत्या त्वया क्रीतौ समुपस्थितौ भक्तं त्वां विना क्षणमपि स्थातुमक्षमौ 'शरतल्पगतो भीष्मः शाम्यन्निव हुताशनः। मांध्यातिपुरुषव्याघ्रस्ततो मे तद्गतं मनः' 'इतिवत् आज्ञापय यथेष्टं क्षामकाले अल्पद्रव्याय क्रीतो राजपुत्रः पुनर्निवर्तयितुं नार्हः किल शासनं करवाव किं कर्तव्ये न सङ्कोचः कार्यः इत्यर्थः'।**

(श्रीगोविन्दराजजी)

श्रीविश्वामित्रजीने कहा—हे रघुनन्दन! यह ब्राह्मणोंका यज्ञ तो तुम्हारी कृपासे पूर्ण हो गया। एक क्षत्रियोंका यज्ञ बहुत दिनोंसे चल रहा है अभी पूर्ण नहीं हुआ है, उसका नाम 'धनुषयज्ञ' है। यदि आप उसमें पधारें तो वह यज्ञ भी निश्चित पूर्ण हो जायगा और आपकी कीर्ति त्रिभुवनमें फैल जायगी तथा हे वत्स! आपके साथ मेरा भी नाम अमर हो जायगा।

धनुषजग्य सुनि रघुकुल नाथा।
हरषि चले मुनिबर के साथा॥

अनेक महर्षियोंके साथ श्रीराम-लक्ष्मणने श्रीजनकपुरके लिये प्रस्थान कर दिया। प्रभुके स्नेहसे आकर्षित होकर सिद्धाश्रमके मुनि, पशु-पक्षी सब उनके साथ चल पड़े। कुछ दूर चलनेके बाद श्रीविश्वामित्रजीने सबको प्रेमसे लौटा दिया—

निवर्तयामास ततः सर्षिसङ्घः स पक्षिणः।

(१।३१।१९)

श्रीविश्वामित्रजीने पहला विश्राम शोणभद्रके तटपर किया, रात्रिमें श्रीरामजीके पूछनेपर महर्षिने अपने वंशकी कथा सुनायी।

हे श्रीराम! पूर्वकालमें कुशनामसे विख्यात एक महातपस्वी राजा हो गये हैं। वे ब्रह्माजीके साक्षात् पुत्र थे—

ब्रह्मयोनिर्महानासीत् कुशो नाम महातपाः।

(१।३२।१)

कुशके पुत्र कुशनाभने पुत्रकी प्राप्तिके लिये पुत्रेष्टियज्ञ किया—

अपुत्रः पुत्रलाभाय पौत्रीमिष्टिमकल्पयत्।

(१।३४।१)

यज्ञके प्रभावसे गाधिका जन्म हुआ। श्रीविश्वामित्रने कहा—हे श्रीराम! परम धर्मात्मा गाधि राजा मेरे पिता थे। मैं कुशके वंशमें जन्म लेनेके कारण 'कौशिक' कहलाता हूँ—

स पिता मम काकुत्स्थ गाधिः परमधार्मिकः।
कुशवंशप्रसूतोऽस्मि कौशिको रघुनन्दन॥

(१।३४।६)

प्रात:काल उठकर मुनिने श्रीरामसे कहा—

सुप्रभाता निशा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते गमनायाभिरोचय॥

(१।३५।२)

हे श्रीरामभद्र! रात्रि व्यतीत हो गयी। प्रातर्वेला हो गयी। हे लालजी! तुम्हारा कल्याण हो। हे वत्स! उठो, उठो और **'गमनायाभिरोचय'** अर्थात् सान्ध्यकर्मको पूर्ण करके प्रस्थानकी इच्छा करो।

मध्याह्न-वेलामें सब लोगोंने श्रीगङ्गातटपर पहुँचकर श्रीगङ्गाजीका दर्शन किया और गङ्गातटपर ही डेरा डाल दिया। सभी लोगोंने विधिवत् स्नान करके देवता और पितरोंका तर्पण किया—

तस्यास्तीरे तदा सर्वे चक्रुर्वासपरिग्रहम्।
ततः स्नात्वा यथान्यायं सन्तर्प्य पितृदेवताः॥

(१।३५।९)

सबके यथास्थान बैठ जानेपर श्रीरामजीने

गङ्गाजीकी कथा सुननेकी इच्छा की। श्रीविश्वामित्रजीने कहा—हिमवान् नामका एक पर्वत है, वे पर्वतोंके राजा हैं। मेरु पर्वतकी पुत्री सुन्दरी मेना हिमवान्की प्रिया पत्नी है। उनकी दो कन्याएँ हैं, ज्येष्ठा गङ्गा और छोटी उमा—

तस्यां गङ्गेयमभवज्ज्येष्ठा हिमवतः सुता।
उमा नाम द्वितीयाभूत् कन्या तस्यैव राघव॥

(१।३५।१६)

हे श्रीराम! बहुत प्राचीन कथा है। अयोध्यामें सगर नामसे प्रसिद्ध चक्रवर्ती सम्राट् थे—

अयोध्याधिपतिर्वीर पूर्वमासीन्नराधिपः।
सगरो नाम धर्मात्मा प्रजाकामः स चाप्रजः॥

(१।३८।२)

उनकी दो पत्नियाँ थीं, वैदर्भी केशिनी और श्रीगरुडकी बहिन सुमति। केशिनीके एक पुत्र था असमञ्जस और सुमतिके साठ हजार पुत्र हुए। असमञ्जसके पुत्रका नाम अंशुमान् था। राजा सगरने अश्वमेध-यज्ञकी दीक्षा ली। उनके यज्ञीय अश्वको इन्द्रने राक्षसका रूप धारण करके हरण कर लिया—

राक्षसीं तनुमास्थाय यज्ञियाश्वमपाहरत्।

(१।३९।८)

राजा सगरकी आज्ञासे उनके साठ हजार पुत्र यज्ञीय अश्वको खोजते हुए भगवान् कपिलके आश्रमपर जा पहुँचे। इन्द्रने वहींपर घोड़ा छोड़ दिया था। सगरपुत्रोंने श्रीकपिलके पास अश्वको देखकर **'अयं वाजिहरश्चौरः'** कहकर उनका अपमान कर दिया। परिणामस्वरूप समस्त सगरपुत्र जलकर राख हो गये—

ततस्तेनाप्रमेयेण कपिलेन महात्मना।
भस्मराशीकृताः सर्वे काकुत्स्थ सगरात्मजाः॥

(१।४०।३०)

कुछ दिन प्रतीक्षा करके सगरने अपने पौत्र अंशुमान्को घोड़ा खोजनेके लिये भेजा और शिक्षा दी—**'अभिवाद्याभिवाद्यांस्त्वं हत्वा विघ्नकरानपि'** अर्थात् हे वत्स! प्रणम्योंको प्रणाम करना और विघ्नकर्ताओंको समाप्त कर देना। अंशुमान्ने खोज कर ली। घोड़ेका दर्शन किया और अपने चाचाओंकी दुर्दशा भी देखी। वे दुःखी हो रहे थे कि वहाँपर सहसा श्रीगरुडजी आ गये। उन्होंने कहा—हे अंशुमान्! इनके वधकी चिन्ता न करो। यह तो जगन्मङ्गलके लिये ही है **'वधोऽयं लोकसम्मतः'**। हे अंशुमान्! इनका उद्धार लोकपावनी श्रीगङ्गाजीके जलसे ही होगा। तुम अभी इस अश्वको ले जाकर पितामहके यज्ञको पूर्ण करो—

निर्गच्छाश्वं महाभाग सङ्गृह्य पुरुषर्षभ।
यज्ञं पैतामहं वीर निर्वर्तयितुमर्हसि॥

(१।४१।२१)

अश्वमेध-यज्ञ सम्पन्न हो गया। कुछ दिनके पश्चात् सगर स्वर्ग चले गये। अंशुमान् राजा हुए। उन्होंने अपने पुत्र दिलीपको राज्य देकर हिमालयके रमणीय शिखरपर जाकर श्रीगङ्गाजीको भूतलपर ले आनेकी कामनासे तपस्या की; परंतु असफल रहे। दिलीपको चिन्ता अवश्य थी; परंतु वे तपस्याके लिये नहीं जा सके। दिलीपके पुत्र परम धर्मात्मा भगीरथ हुए। श्रीभगीरथ गोकर्णतीर्थमें जाकर अत्यन्त कठिन तप करने लगे—

मन्त्रिष्वाधाय तद् राज्यं गङ्गावतरणे रतः।
तपो दीर्घं समातिष्ठद् गोकर्णे रघुनन्दन॥
ऊर्ध्वबाहुः पञ्चतपा मासाहारो जितेन्द्रियः।

(१।४२।१२-१३)

ये ऊर्ध्वबाहु नभोदृष्टि होकर पञ्चाग्निका सेवन करते थे और जितेन्द्रिय होकर एक महीनेपर आहार ग्रहण करते थे। इनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने कहा कि गङ्गाजी पृथ्वीपर

जायँगी तो उनका वेग पृथ्वी सहन न कर पावेगी। श्रीशङ्करके अतिरिक्त श्रीगङ्गाका वेग और कोई नहीं धारण कर सकता है—

गङ्गायाः पतनं राजन् पृथिवी न सहिष्यते।
तां वै धारयितुं राजन् नान्यं पश्यामि शूलिनः॥

(१।४२।२४)

श्रीभगीरथने पुनः आराधना करके भगवान् शङ्करको प्रसन्न कर लिया। श्रीशङ्करजीने आश्वासन दिया—

प्रीतस्तेऽहं नरश्रेष्ठ करिष्यामि तव प्रियम्।
शिरसा धारयिष्यामि शैलराजसुतामहम्॥

(१।४३।३)

हे नरश्रेष्ठ! मैं तुम्हारी आराधनासे प्रसन्न हूँ। मैं गङ्गाजीको अपने मस्तकपर धारण कर लूँगा। इस प्रकार श्रीगङ्गाजी आकाशसे श्रीशङ्करजीके मस्तकपर आयीं और वहाँसे भूतलपर आयीं—

गगनाच्छंकरशिरस्ततो धरणिमागता॥

(१।४३।१५)

श्रीभगीरथने भूतलपर श्रीगङ्गाजीकी धारा बहा दी। अपने पितरोंका तर्पण करके उनको तार दिया और स्वयं अमर हो गये।

श्रीविश्वामित्रजी कहते हैं—हे रामचन्द्र! मैंने तुम्हें गङ्गावतरणकी कथा सुना दी। तुम्हारा मङ्गल हो, अब तुम सन्ध्योपासना करो, समय व्यतीत हो रहा है—

एष ते राम गङ्गाया विस्तरोऽभिहितो मया।
स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते सन्ध्याकालोऽति वर्तते॥

(१।४४।२०)

रात्रिमें गङ्गातटपर विश्राम करके प्रातःकाल नित्यकर्मसे निवृत्त होकर ऋषियोंके सौजन्यसे—प्रयाससे नावके द्वारा सब लोग गङ्गापार करके विशाला नगरीके पास पहुँच गये। श्रीरामजीके पूछनेपर ऋषिने विशाला नगरीका इतिहास सुनाया।

देवता और दैत्योंने संविद् करके अर्थात् सन्धि करके समुद्रमन्थन करनेका निश्चय किया। वासुकी नागकी रस्सी और मन्दराचलकी मथानी बनाकर क्षीरसागरको मथना प्रारम्भ कर दिया—

ततो निश्चित्य मथनं योक्त्रं कृत्वा च वासुकिम्।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुरमितौजसः॥

(१।४५।१८)

समुद्रमन्थनसे सर्वप्रथम विष निकला। उसे देवताओंकी प्रार्थनासे एवं विष्णुभगवान्‌की आज्ञासे श्रीशङ्करजीने अमृतके समान पान कर लिया—

हालाहलं विषं घोरं संजग्राहामृतोपमम्।

(१।४५।२६)

और भी अनेक रत्न प्रादुर्भूत हुए। अन्तमें अमृतरत्न निकला। श्रीविष्णुभगवान्‌ने मोहिनीरूपके आश्रयसे देवताओंको अमृत पिला दिया। देवता प्रबल हो गये; उन्होंने दैत्योंको पराजित कर दिया।

दैत्योंके पराजित होनेपर दैत्यमाता दितिने इन्द्रका नाश करनेके लिये, अपने पति भगवान् कश्यपसे दुराग्रह करके पुंसवन व्रतकी दीक्षा ले ली। देवेन्द्र इन्द्र सब जानकर दितिकी सेवामें तत्पर हो गये—

गात्रसंवाहनैश्चैव श्रमापनयनैस्तथा।
शक्रः सर्वेषु कालेषु दितिं परिचचार ह॥

(१।४६।११)

इन्द्र तो समयकी खोजमें थे, समय मिल गया। अशौचावस्थामें उनके उदरमें प्रविष्ट हो गये और उनके गर्भके सात टुकड़े कर दिये। वे गर्भस्थ बालक रोने लगे तब इन्द्रने कहा, **'मा रुद, मा रुद'**—रोओ मत, रोओ मत, इसलिये उनका नाम मारुत हो गया। माता दितिकी आज्ञासे उनकी देवगणमें प्रतिष्ठा हो गयी—

विचरिष्यन्ति भद्रं ते देवरूपास्तवात्मजाः।

(१।४७।९)

श्रीविश्वामित्रने कहा—हे रघुनन्दन! यह वही देश है जहाँ इन्द्रने तप:सिद्ध दितिकी सेवा की थी—

एष देशः स काकुत्स्थ महेन्द्राध्युषितः पुरा॥
दितिं यत्र तपःसिद्धामेवं परिचचार सः।

(१।४७।१०-११)

हे पुरुषसिंह! पूर्वकालमें महाराज इक्ष्वाकुके पुत्र राजा विशालने इस नगरीको बसाया था, अत: इसका नाम विशाला है। सम्प्रति सुमति नामके इक्ष्वाकुवंशीय राजा राज्य करते हैं, वे महातेजस्वी और अजेय योद्धा हैं। हे नरशार्दूल श्रीराम! आज हमलोग यहीं आनन्दपूर्वक शयन करेंगे। प्रात:काल यहाँसे प्रस्थान करके मिथिलामें राजर्षि जनकका दर्शन करेंगे—

इहाद्य रजनीमेकां सुखं स्वप्स्यामहे वयम्।
श्वः प्रभाते नरश्रेष्ठ जनकं द्रष्टुमर्हसि॥

(१।४७।१९)

राजा सुमति भी महर्षिका आगमन सुनकर आये और राम-लक्ष्मणके साथ श्रीविश्वामित्रजीका आतिथ्य-सत्कार किये। प्रात:काल यहाँसे चलकर सब लोग मिथिला नगरीमें पहुँच गये। मिथिलाकी शोभा देख करके सब महात्मा साधु-साधु कहकर प्रशंसा करने लगे—

तां दृष्ट्वा मुनयः सर्वे जनकस्य पुरीं शुभाम्।
साधु साध्विति शंसन्तो मिथिलां समपूजयन्॥

(१।४८।१०)

मिथिलाके उपवनमें एक अत्यन्त उजाड़—वीरान आश्रम देखकर श्रीरामजीने जिज्ञासा की। श्रीविश्वामित्रने अहल्याकी कथा सुनायी और अहल्योद्धारकी प्रार्थना की—

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर॥

(श्रीरामचरितमानस १।२१०)

पतितपावन श्रीरामजीने अहल्याका उद्धार कर दिया। दुन्दुभिध्वनि, जयध्वनि, मङ्गलध्वनि, वेदध्वनि होने लगी, पुष्पवृष्टि होने लगी। महातेजस्वी महर्षि गौतम भी अपनी प्राणप्रिया पत्नी अहल्याको पाकर सुखी हो गये—

गौतमोऽपि महातेजा अहल्यासहितः सुखी।

(१।४९।२१)

महर्षि विश्वामित्रने एकान्त स्थानमें डेरा डाला, जहाँपर जलकी भी सुविधा थी—

निवासमकरोद् देशे विविक्ते सलिलान्विते।

(१।५०।५)

ब्रह्मर्षि विश्वामित्रका आगमन सुनकर राजर्षि जनक अपने कुलाचार्य शतानन्दजीके साथ स्वागतके लिये आये—

'शतानन्दं पुरस्कृत्य पुरोहितमनिन्दितः'

महर्षिको अर्घ्य समर्पण करके विधिवत् यथोपचार पूजन किया। कुशल प्रश्नके अनन्तर जब राजर्षि जनकने श्रीराम-लक्ष्मणकी अनिन्द्य मनोहारिणी जोड़ीको देखा, उनके अस्त्र-शस्त्र, बलिष्ठ व्यक्तित्व और अनुपम सौन्दर्य-माधुर्यका दर्शन किया तो विभोर हो गये। उनके जन्म-जन्मके संस्कार—स्नेहिल संस्कार जग गये। श्रीराम-लक्ष्मणके प्रति उनका सहज वात्सल्यभाव मुखरित हो गया—स्नेहोर्मिल हो गया। उन्होंने स्नेहविह्वल स्वरमें पूछा—हे महर्षे! देवतुल्य पराक्रमी ये दोनों कुमार कौन हैं? इनकी गति मत्त गजेन्द्रकी भाँति है, ये अपने मनोहर स्वरूपसे कोटि-कोटि कन्दर्प-दर्पको विखण्डित कर रहे हैं, ये किसके पुत्र हैं? आप बतावें; ये पैदल ही चलकर यहाँ किस उद्देश्यसे पधारे हैं? **'कथं पद्भ्यामिह प्राप्तौ'** हे महर्षे! मैं तत्त्वत: जानना और सुनना चाहता हूँ—

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक।
मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक॥

अमेयात्मा, महात्मा विश्वामित्रने कहा—हे राजर्षे! ये दोनों चक्रवर्ती नरेन्द्र अयोध्यानरेश

महाराज दशरथके पुत्र हैं। ये मेरे यज्ञकी रक्षाके लिये पधारे हैं। सम्प्रति ताटका-मारीचादिका संहार करके, मेरे यज्ञको सफल करके, अहल्योद्धार करके आपके धनुषके सम्बन्धमें जाननेके लिये यहाँ आये हैं—

अहल्यादर्शनं चैव गौतमेन समागमम्।
महाधनुषि जिज्ञासां कर्तुमागमनं तथा॥

(१।५०।२४)

रामु लखनु दोउ बंधुबर रूप सील बल धाम।
मख राखेउ सबु साखि जगु जिते असुर संग्राम॥

(श्रीरामचरितमानस १।२१६)

श्रीरामका पवित्र नाम सुनकर मुनि गौतमके ज्येष्ठ पुत्र अहल्यानन्दन शतानन्द अत्यन्त उत्सुकतासे पूछते हैं—हे महर्षे! क्या आपने श्रीरामजीको मेरी माताकी कथा सुना दी है? क्या इन्होंने उनका उद्धार किया है। हे कुशिकनन्दन! आपका कल्याण हो। क्या श्रीरामजीके मङ्गलमय दर्शन, स्पर्श आदिके प्रभावसे मेरी माता शापमुक्त होकर मेरे पिताजीसे मिल गयीं?

अपि कौशिक भद्रं ते गुरुणा मम सङ्गता।
मम माता मुनिश्रेष्ठ रामसन्दर्शनादितः॥

(१।५१।७)

श्रीविश्वामित्रजीने कहा—हे शतानन्दजी! मैंने अपने कर्तव्यका भलीभाँति निर्वाह किया है। तुम्हारे पिता गौतमजीसे तुम्हारी माता उसी प्रकार मिली हैं, जिस प्रकार भार्गव जमदग्निसे रेणुका मिली हैं। हे अहल्यानन्दन! श्रीरामचन्द्रजीकी अहैतुकी कृपासे आपके माता-पिताका—अहल्या-गौतमका अत्यन्त शुद्ध, रसमय, सुखमय, आनन्दमय, आह्लादमय गृहस्थ-जीवन पुनः आरम्भ हो गया है। हे शतानन्द! गौतमजी अपनी पत्नी अहल्याको उसी प्रकार ले गये जैसे दूल्हा गौनेकी—मुकलावेकी नयी-नवेली साध्वी दुलहनको ले जाता है—

'गौतम सिधारयो गृह गौनों सो लिवाय के'।
रामके प्रसाद गुर गौतम खसम भये,
रावरेहु सतानन्द पूत भये मायके॥

(गीतावली १।६७)

अब तो शतानन्दजीके आनन्दका पारावार न रहा। सम्पूर्ण कथा सुनकर उन्होंने सोचा कि यद्यपि मेरी माताका उद्धार श्रीरामकृपासे ही हुआ है; परंतु श्रीरामकृपा तो सन्तकृपासे—विश्वामित्रजीकी कृपासे ही हुई है। माध्यमका अपना महत्त्व है। शतानन्दने माध्यमस्वरूप श्रीविश्वामित्रका ही चरित्रवर्णन आरम्भ कर दिया। उन्होंने कहा—हे रघुनन्दन! आपसे बढ़कर धन्यातिधन्य कोई दूसरा नहीं है; क्योंकि महान् तपस्वी विश्वामित्रजी आपके संरक्षक हैं। आप इनके बल, स्वरूपका यथार्थ वर्णन सुनें—

नास्ति धन्यतरो राम त्वत्तोऽन्यो भुवि कश्चन।
गोप्ता कुशिकपुत्रस्ते येन तप्तं महत्तपः॥
श्रूयतां चाभिधास्यामि कौशिकस्य महात्मनः।

(१।५१।१५-१६)

गाधिनन्दन विश्वामित्र एक बार एक अक्षौहिणी सेना लेकर समस्त पृथ्वीपर विचरण करते हुए श्रीवसिष्ठके आश्रमपर पधारे। विश्वामित्रने विनयपूर्वक मुनिको प्रणाम किया। मुनिने उनका हृदयसे स्वागत किया और कहा—हे महाबलवान् राजन्! आपने मेरे आश्रमपर आकर मुझे सनाथ किया। मैं आपकी सेनाके साथ आपका स्वागत करना चाहता हूँ—

आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि बलस्यास्य महाबल।
तव चैवाप्रमेयस्य यथार्हं सम्प्रतीच्छ मे॥

(१।५२।१३)

राजाके स्वीकार करनेपर मुनिने अपनी होमधेनुसे प्रार्थना की—हे शबले! सरस पदार्थ, अन्न, पान, लेह्य, चोष्यसे संयुत अनेक अभीष्ट पदार्थोंकी वर्षा करके ढेर लगा दो, आज मैं ससैन्य विश्वामित्रका स्वागत करना चाहता हूँ—

रसेनान्नेन पानेन लेह्यचोष्येण संयुतम्।

अन्नानां निचयं सर्वं सृजस्व शबले त्वर॥

(१।५२।२३)

शबलाने सब प्रकारकी सामग्री प्रस्तुत कर दी। राजा स्वागतसे प्रसन्न हो गये और विस्मित हो गये। होमधेनुको लेनेके लिये उनके मनमें लोभ उत्पन्न हो गया। उन्होंने मुनिसे कहा—'हे ब्रह्मर्षे! आप एक लाख गौ लेकर शबला गौको मुझे दे दें; क्योंकि यह रत्न है और रत्नका अधिकारी राजा होता है—'

गवां शतसहस्रेण दीयतां शबला मम।
रत्नं हि भगवन्नेतद् रत्नहारी च पार्थिवः॥

(१।५३।९)

श्रीवसिष्ठने कहा—हे राजन्! यही होमधेनु शबला मेरा रत्न है, यही मेरा सर्वस्व है और यही मेरा जीवन है। अधिक प्रलाप करनेसे क्या लाभ है, मैं इस कामधेनुको कथमपि नहीं दे सकता हूँ; क्योंकि मेरे समस्त शुभ कर्मोंका मूल यही है। इसमें संशय नहीं है—

अतोमूलाः क्रियाः सर्वा मम राजन् न संशयः।
बहुना किं प्रलापेन न दास्ये कामदोहिनीम्॥

(१।५३।२५)

राजा उस धेनुको बलपूर्वक घसीट कर ले चले। गौ रुदन करती हुई, अश्रुवर्षण करती हुई, चीत्कार करती हुई, हम्बा रव करती हुई श्रीवसिष्ठके पास आकर बोली—हे ब्रह्मकुमार! आपने मेरा क्यों परित्याग कर दिया है? मुझसे क्या अपराध हो गया है? ये राजाके सैनिक मुझे आपके पाससे दूर लिये जा रहे हैं?

भगवन् किं परित्यक्ता त्वयाहं ब्रह्मणः सुत।
यस्माद् राजभटा मां हि नयन्ते त्वत्सकाशतः॥

(१।५४।८)

श्रीवसिष्ठने कहा—हे शबले! मैं तुम्हें कभी नहीं त्याग सकता हूँ, तुमने मेरा कोई अपराध भी नहीं किया है। यह महाबली राजा बलसे उन्मत्त होकर तुम्हें मुझसे छीनकर ले जा रहा है—

न त्वां त्यजामि शबले नापि मेऽपकृतं त्वया।
एष त्वां नयते राजा बलान्मत्तो महाबलः॥

(१।५४।१०)

शबलाने कहा—हे महर्षे! आप मुझे आज्ञा दें, मैं इस दुरात्मा राजाके बल, प्रयत्न और दर्पको नाश कर दूँगी—'**तस्य दर्पं बलं यत्नं नाशयामि दुरात्मनः**'। श्रीवसिष्ठजीकी आज्ञा प्राप्त करके शबलाने विश्वामित्रकी सारी सेना नष्ट कर दी। विश्वामित्रके सौ पुत्र श्रीवसिष्ठपर सम्मिलित आक्रमण किये, परंतु महर्षिने हुङ्कारमात्रसे सबको भस्म कर दिया— '**हुङ्कारेणैव तान् सर्वान् निर्ददाह महान् ऋषिः**' राजा विश्वामित्रका केवल एक पुत्र ही बचा था। वे उसे राज्यका भार सौंपकर स्वयं हिमालयके पार्श्वभागमें जाकर भगवान् शङ्करकी प्रसन्नताके लिये तपस्या करने लगे। भगवान् भोले बाबा प्रसन्न होकर राजाके याचना करनेपर अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये। विश्वामित्रने वसिष्ठाश्रममें प्रवेश करके आश्रमको उजाड़ दिया। सब महात्मा भाग गये। श्रीवसिष्ठ एक ब्रह्मदण्ड लेकर परम प्रतापी राजाका सामना करनेके लिये प्रस्तुत हो गये। राजाने अनेक अस्त्रोंका प्रयोग किया, सब व्यर्थ हो गया। अन्तमें ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया परंतु श्रीवसिष्ठने ब्रह्मतेजके प्रभावसे उस महाभयङ्कर ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मदण्डके द्वारा ही शान्त कर दिया—

तदप्यस्त्रं महाघोरं ब्राह्मं ब्राह्मेण तेजसा।
वसिष्ठो ग्रसते सर्वं ब्रह्मदण्डेन राघव॥

(१।५६।१६)

अन्तमें लम्बी साँस लेकर विश्वामित्रने कहा—क्षात्रबलको धिक्कार है, ब्रह्मतेजसे सम्प्राप्त होनेवाला बल वास्तविक बल है; क्योंकि आज एक ब्रह्मदण्डने मेरे सभी शस्त्रास्त्र नष्ट कर दिये।

धिग् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम्।

एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे॥

(१।५६।२३)

तदनन्तर विश्वामित्र मन-ही-मन सन्तप्त होने लगे। अपनी रानीके साथ विश्वामित्रजी दक्षिण दिशामें जाकर तपस्या करने लगे। एक हजार वर्षकी तपस्याके पश्चात् ब्रह्माजीने उन्हें राजर्षिकी उपाधि दी—

अनेन तपसा त्वां हि राजर्षिरिति विद्महे।
एवमुक्त्वा महातेजा जगाम सह दैवतैः॥

(१।५७।६)

श्रीविश्वामित्र राजर्षिमात्रसे असन्तुष्ट होकर पुनः तपस्या करने लगे।

इसी समय इक्ष्वाकुकुलके राजा त्रिशङ्कुके मनमें सशरीर स्वर्ग जानेकी अनुचित कामना उत्पन्न हो गयी— '**गच्छेयं स्वशरीरेण देवतानां पराङ्गतिम्**'। परंतु इस '**सशरीर स्वर्गकामयज्ञ**' करानेमें उनके पुरोहित वसिष्ठजी और उनके पुत्रोंने निषेध कर दिया। दुराग्रह करनेपर वसिष्ठपुत्रोंने चाण्डालत्वका श्राप दे दिया। तदनन्तर वे विश्वामित्रजीकी शरणमें गये और उनसे कहा—मुझे गुरु और गुरुपुत्रोंने ठुकरा दिया है। अब मैं आपकी शरणमें हूँ—

प्रत्याख्यातोऽस्मि गुरुणा गुरुपुत्रैस्तथैव च॥

(१।५८।१७)

श्रीविश्वामित्रजीने कहा—हे राजन्! तुम्हारा स्वागत है, डरो मत; मैं तुम्हें शरण—आश्रय दूँगा—

इक्ष्वाको स्वागतं वत्स जानामि त्वां सुधार्मिकम्।
शरणं ते प्रदास्यामि मा भैषीर्नृपपुङ्गव॥

(१।५९।२)

यद्यपि अनेक ऋषियोंने विरोध किया तथापि विश्वामित्रजीने कुछ मुनियोंको लेकर, त्रिशङ्कुको यजमान बनाकर यज्ञारम्भ कर दिया; परंतु देवता उसमें भाग लेने नहीं आये, इससे मुनिको क्रोध आ गया और उन्होंने त्रिशंकुसे कहा—मैं तुम्हें अपनी तपस्याके बलसे सशरीर स्वर्गलोक पहुँचाता हूँ—

पश्य मे तपसो वीर्यं स्वार्जितस्य नरेश्वर।
एष त्वां स्वशरीरेण नयामि स्वर्गमोजसा॥

(१।६०।१३)

त्रिशङ्कुके स्वर्ग पहुँचनेपर इन्द्रने कहा—मूर्ख! तू पुनः यहाँसे लौट जा, तेरे लिये स्वर्गमें स्थान नहीं है। तू गुरुके शापसे नष्ट हो चुका है एतावता नीचे सिर करके पुनः पृथ्वीपर गिर जा '**गुरुशापहतो मूढ पत भूमिमवाक्शिराः!**' त्रिशङ्कुने तपोधन विश्वामित्रको पुकारा, 'त्राहि-त्राहि' कहने लगा। सुनकर क्रुद्ध विश्वामित्रने कहा—'वहीं ठहर जा'। महर्षिने त्रिशंकुके लिये दूसरे स्वर्गकी रचनाकी इच्छा की। सप्तर्षियोंकी सृष्टि की, अभिनव नक्षत्रोंका भी निर्माण कर डाला। अभिनव देवताओंकी सृष्टि आरम्भ की ही थी कि उसी समय समस्त देवता, असुर और ऋषियोंके समूहने घबड़ाकर मुनिके पास आकर विनयपूर्वक स्तुति की—

विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा सर्वदेवैरभिष्टुतः।

(१।६०।३३)

श्रीविश्वामित्रजीने अभिनव सृष्टिका विचार त्याग दिया, परंतु यह वचन ले लिया कि त्रिशङ्कुको इसी स्थितिमें स्वर्गका सुख उपलब्ध हो और मेरे द्वारा सृष्ट सृष्टि—निर्मित रचना सदा बनी रहे।

इसके अनन्तर श्रीविश्वामित्रजीने ऋषियोंसे कहा—दक्षिण दिशामें रहनेसे मेरी तपस्यामें महान् विघ्न हुआ है; अतः अब हम दूसरी दिशामें जाकर तप करेंगे।

महाविघ्नः प्रवृत्तोऽयं दक्षिणामास्थितो दिशम्।

दिशमन्यां प्रपत्स्यामस्तत्र तप्स्यामहे तपः॥

(१।६१।२)

तदनन्तर राजर्षि विश्वामित्र पुष्करक्षेत्रमें जाकर उग्र और दुराधर्ष तप करने लगे। इसी समय ऋचीकपुत्र शुनःशेप उनकी शरणमें आ गया।

ऋचीकके तीन पुत्र थे। राजा अम्बरीषने यज्ञपशुके लिये उनसे प्रार्थना की—हे भार्गव! एक लाख गौ लेकर आप हमें एक पुत्र दे दें। पिताने कहा—ज्येष्ठपुत्र हमें प्रिय है, अतः मैं उसे नहीं दूँगा। माताने कहा—छोटा पुत्र हमें प्रिय है, अतः छोटेको मैं भी नहीं दूँगी। मध्यम पुत्र शुनःशेपने कहा—मध्यम पुत्र ही यदि बेचनेयोग्य है तो मुझे ले चलो—

पिता ज्येष्ठमविक्रेयं माता चाह कनीयसम्।
विक्रेयं मध्यमं मन्ये राजपुत्र नयस्व माम्॥

(१।६१।२१)

अम्बरीष रथपर बिठाकर शुनःशेपको ले चले। मध्याह्न-वेलामें राजा पुष्करक्षेत्रमें विश्राम करने लगे। उसी समय अवसर पाकर शुनःशेप तपस्वी विश्वामित्रकी शरणमें चले गये। विश्वामित्रकी गोदमें गिरकर बोले—हे सौम्य! मेरे माता-पिता नहीं हैं, फिर बान्धव कहाँसे हो सकते हैं? हे मुनिश्रेष्ठ! आप धर्मके द्वारा मेरी रक्षा करें—

पपाताङ्के मुने राम वाक्यं चेदमुवाच ह।
न मेऽस्ति माता न पिता ज्ञातयो बान्धवाः कुतः॥
त्रातुमर्हसि मां सौम्य धर्मेण मुनिपुङ्गव।

(१।६२।४-५)

श्रीविश्वामित्रने शुनःशेपको दो गाथाओंकी शिक्षा दी और कहा कि तुम जब यज्ञपशुके रूपमें पूजित होकर यूपमें—यज्ञीयस्तम्भमें बँधना तब इन दो गाथाओंका—वैदिकस्तुतियोंका गान करना। शुनःशेपने तदनुसार कार्य किया। उस रहस्यभूत स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर इन्द्र प्रसन्न हो गये और उन्होंने शुनःशेपको दीर्घायु प्रदान कर दी—

ततः प्रीतः सहस्राक्षो रहस्यस्तुतितोषितः।
दीर्घमायुस्तदा प्रादाच्छुनःशेपाय वासवः॥

(१।६२।२६)

राजा अम्बरीषको भी यज्ञका उत्तम फल प्राप्त हो गया।

राजर्षि विश्वामित्र पुनः तपस्या करने लगे। एक हजार वर्षकी तपस्याके पश्चात् श्रीब्रह्माने कहा—आपका मङ्गल हो। अब आप स्वार्जित शुभ-कर्मोंके प्रभावसे ऋषि हो गये— **'ऋषिस्त्वमसि भद्रं ते स्वार्जितैः कर्मभिः शुभैः।'** महर्षि पुनः तपस्यामें प्रवृत्त हो गये, परंतु एक दिन मेनका अप्सराको देखकर कामाधीन हो गये। दस वर्ष एक दिनके समान व्यतीत हो गये। अन्तमें मुनिको पश्चात्ताप हुआ और वे कौशिकी-तटपर जाकर दुर्धर्ष तप करने लगे। एक हजार वर्ष बीत गया—

कौशिकीतीरमासाद्य तपस्तेपे दुरासदम्।
तस्य वर्षसहस्राणि घोरं तप उपासतः॥

(१।६३।१५)

इनकी उग्र तपस्यासे भयभीत देवताओंकी प्रार्थनासे ब्रह्माजीने श्रीविश्वामित्रजीसे कहा—हे वत्स! हे कौशिक! हे महर्षे! तुम्हारा स्वागत है। तुम्हारी उग्र तपस्यासे सन्तुष्ट होकर मैं तुम्हें महर्षि पद प्रदान कर रहा हूँ—

महर्षे स्वागतं वत्स तपसोग्रेण तोषितः॥
महत्त्वमृषिमुख्यत्वं ददामि तव कौशिक।

(१।६३।१८-१९)

ब्रह्माके जानेके पश्चात् महर्षि अत्यन्त कठिन तपस्यामें प्रवृत्त हो गये। एक हजार वर्ष बीतनेपर इन्द्रादि सन्तप्त और भयभीत होकर मुनिकी तपस्या खण्डित करनेके लिये रम्भा नामकी अप्सराको भेजा। मधुर मुसकानवाली सुन्दरी

अप्सरा सज-धजकर विश्वामित्रको लुभाना आरम्भ कर दिया—

लोभयामास ललिता विश्वामित्रं शुचिस्मिता।

(१।६४।८)

देवराज इन्द्रका कुचक्र समझकर महर्षिने रम्भाको कठोर श्राप दिया। अरी दुष्टप्रयत्ने रम्भे! मैं काम और क्रोधपर विजय प्राप्त करना चाहता हूँ और तू मुझे प्रलुब्ध करना चाहती है। मैं तुझे शाप दे रहा हूँ—दस सहस्र वर्षपर्यन्त शैली—पाषाणप्रतिमा होकर खड़ी रहेगी—

यन्मां लोभयसे रम्भे कामक्रोधजयैषिणम्।
दशवर्षसहस्राणि शैली स्थास्यसि दुर्भगे॥

(१।६४।१२)

रम्भा तो पाषाणप्रतिमा हो गयी, परंतु क्रोध आनेसे मुनिकी तपस्या खण्डित हो गयी। मुनि अत्यन्त सन्तप्त हो गये और उन्होंने एक सहस्र वर्षकी तपस्या पुनः प्रारम्भ की। इस बार मुनिने जिस प्रकारकी प्रतिज्ञा की उस प्रकारकी प्रतिज्ञाकी संसारमें कहीं प्रतिमा—तुलना नहीं है—

चकाराप्रतिमां लोके प्रतिज्ञां रघुनन्दन॥

(१।६४।२०)

उनकी उस कठोर तपस्यासे समस्त त्रैलोक्य प्रकम्पित हो गया। अन्तमें समस्त देवता श्रीब्रह्माजीके साथ आये और ब्रह्माने मुनिसे कहा—हे ब्रह्मर्षे! आपका स्वागत है। आपने अपनी उग्र तपस्यासे ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया—

ब्रह्मर्षे स्वागतं तेऽस्तु तपसा स्म सुतोषिताः॥
ब्राह्मण्यं तपसोग्रेण प्राप्तवानसि कौशिक।

(१।६५।१९-२०)

देवताओंकी प्रार्थनापर ब्रह्मर्षि वसिष्ठने भी विश्वामित्रको ब्रह्मर्षि सम्बोधनसे सम्बोधित किया। श्रीशतानन्दजी कहते हैं—हे रघुनन्दन! इस प्रकार ब्रह्मर्षिपद प्राप्त करके श्रीविश्वामित्रजीने भी मन्त्र-जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि वसिष्ठका पूजन किया—

विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा लब्ध्वा ब्राह्मण्यमुत्तमम्।
पूजयामास ब्रह्मर्षिं वसिष्ठं जपतां वरम्॥

(१।६५।२७)

उस दिन महर्षि विश्वामित्रजीने श्रीराम-लक्ष्मणके साथ वहींपर विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातःकाल नित्यकर्मसे निवृत्त होकर राजर्षि जनकने श्रीराम-लक्ष्मणके साथ ब्रह्मर्षि विश्वामित्रका आवाहन किया और अपने स्थानपर शास्त्रीय विधिके अनुसार मुनिका और महामनस्वी राजकुमारोंका पूजन किया। पूजन करके श्रीजनकजीने कहा—हे भगवन्! आप आज्ञा दें कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ? वाक्यविशारद विश्वामित्रने कहा—'हे राजन्! ये दोनों दशरथराजकिशोर विश्वविश्रुत क्षत्रियवीर हैं। जो धनुष आपके यहाँ रखा है उसे ये देखना चाहते हैं—'

पुत्रौ दशरथस्येमौ क्षत्रियौ लोकविश्रुतौ।
द्रष्टुकामौ धनुश्रेष्ठं यदेतत्त्वयि तिष्ठति॥

(१।६६।५)

राजर्षि जनकने श्रीशङ्करजीके धनुषका इतिहास सुनाया और कहा कि वही श्रीशङ्करजीका विशाल प्रचण्ड कोदण्ड मेरे पूर्वज श्रीदेवरातजीके पास धरोहरके रूपमें रखा है। हे ब्रह्मर्षे! एक दिन मैं यज्ञसम्पादनार्थ भूमिशोधनके लिये खेतमें हल चला रहा था, उसी समय हलके अग्रभागसे—सीतासे जोती गयी भूमिसे एक कन्या प्रकट हो गयी। इसी कारण उसका नाम सीता रखा गया—

अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः॥
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता।

(१।६६।१३-१४)

पद्मपुराणमें भी श्रीसीताजीकी उत्पत्ति लगभग इसी प्रकार वर्णित है। लोकेश्वरी लक्ष्मी हलके अग्रभागसे जोती हुई भूमिमें भाग्यशाली जनकके पुरस्तात् उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें हाथमें कमल

लिये हुए सैकड़ों बालसूर्यकी भाँति आभा, प्रभा-कान्तिमण्डित कन्याभावसे प्रकट हो गयीं। सीता-मुखसे प्रकट होनेके कारण ही उनका 'सीता' ऐसा नामकरण-संस्कार हुआ। तदनन्तर राजर्षि जनककी एक औरसी पुत्री उत्पन्न हुई, जिसका नाम उर्मिला हुआ—

अथ लोकेश्वरी लक्ष्मीर्जनकस्य पुरे स्वतः।
शुभक्षेत्रे हलोत्खाते तारे चोत्तरफाल्गुने॥
अयोनिजा पद्मकरा बालार्कशतसन्निभा।
सीतामुखे समुत्पन्ना बालभावेन सुन्दरी।
सीतामुखोद्भवात्सीता इत्यस्यै नाम चाकरोत्।
ततोऽभूदौरसी तस्य उर्मिला नाम कन्यका॥

(पद्मपुराण)

जिस स्थलमें सीताजीका प्राकट्य हुआ है उसका नाम सीतामही है, आज भी वह स्थान (सीतामढ़ी) नामसे विख्यात है। वहाँसे अनेक लोग इस कथारसका समास्वादन करनेके लिये आये हैं।

श्रीजानकीजी सीतामुखसमुद्भूता हैं, अयोनिजा हैं, अतः जन्मसे तथा नामसे पवित्र हैं। योगिराज श्रीजनकके यहाँ रहती हैं, अतः आवाससे और सङ्गसे पवित्र हैं। वे वीर्यशुल्का हैं। **'वीर्यं धनुरारोपणं तदेव शुल्कं मूल्यं यस्याः सा वीर्यशुल्का'** अर्थात् राजर्षि जनकने प्रतिज्ञा कर ली कि मेरी पुत्री अप्राकृत है, अतः अप्राकृत बलशाली व्यक्तित्वका धनी ही इसका पाणिग्रहण करेगा। जो इस दिव्य धनुषको तोड़ेगा वही मेरी पुत्रीका वरण करेगा—

नृप भुजबलु बिधु सिवधनु राहू।
गरुअ कठोर बिदित सब काहू॥
रावनु बानु महाभट भारे।
देखि सरासन गवँहिं सिधारे॥
सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा।
राज समाज आजु जोइ तोरा॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही।
बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही॥

राजर्षि जनकने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! अनेक राजाओंने मुझसे जिज्ञासा की कि किस पराक्रमके द्वारा आपकी पुत्री मिल सकती है? मैंने उनके सामने यह शङ्कर-कोदण्ड रख दिया परंतु वे राजागण अत्यन्त परिश्रम करके भी धनुषको हिला भी नहीं सके, तिलमात्र भूमि भी छुड़ा न सके—

न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुषस्तोलनेऽपि वा।

(१।६६।१९)

रहउ चढ़ाउब तोरब भाई।
तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई॥

इस प्रकार असफल राजाओंने मिथिलापुरीको चारों ओरसे घेर लिया। एक वर्षपर्यन्त घेरा डाले रहे। इस मध्य मेरे युद्धके समस्त साधन समाप्त हो गये। मैं अत्यन्त दुःखी हो गया। मैंने तपस्या की, मेरी तपस्यासे प्रसन्न होकर देवताओंने चतुरङ्गिणी सेना प्रदान की। फिर तो हमारे देवप्रदत्त सैनिकोंकी मार खाकर पापी-अत्याचारी राजागण अपने मन्त्रियोंके साथ भागकर विभिन्न दिशाओंमें चले गये—**'ततो भग्ना नृपतयो हन्यमाना दिशो ययुः'**॥ हे मुने! यदि आपके शिष्य श्रीरामचन्द्र धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ा दें तो मैं स्वयंको अतिशय सौभाग्यशाली मानूँगा, कृतार्थ हो जाऊँगा—निहाल हो जाऊँगा। हे सुव्रत! मैं अपने व्रतको पूर्ण समझूँगा और अपनी अयोनिजा—परम पावन कन्या सीताको इन दशरथनन्दन रघुनन्दन श्रीरामके हाथोंमें समर्पण कर दूँगा—पाणिग्रहणसंस्कार कर दूँगा—

यद्यस्य धनुषो रामः कुर्यादारोपणं मुने।
सुतामयोनिजां सीतां दद्यां दाशरथेरहम्॥

(१।६६।२६)

राजर्षि जनककी बात सुनकर ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने कहा—हे राजन्! मैं आपसे तीन बार कह चुका

हूँ कि श्रीराघवेन्द्र धनुष देखना चाहते हैं, परंतु आप अनसुनी करके दूसरी चर्चा करने लगते हैं, धनुष नहीं दिखाते हैं।

मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि ठाकुरजी जनकके सामने अपने स्वरूपकी ऐसी माधुरी दिखाते हैं कि उनको यह विश्वास ही नहीं होता है कि यह सौन्दर्य माधुर्यसार-सर्वस्व परम सुकुमार श्रीदशरथराजकुमार इस कठिन कोदण्डके तोड़नेमें सक्षम भी हो सकेंगे? प्रभुको देखकर उनका अनुपम वात्सल्य जाग्रत् हो जाता है। यही तो श्रीरामचन्द्र सरकारकी अनुपम लीलामाधुरी है। श्रीगोस्वामीजीने बहुत सुन्दर लिखा है—

सहित बिदेह बिलोकहिं रानी।
सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥

अन्तमें श्रीविश्वामित्रने कहा—हे जनकजी! आप परम बलवान् भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको धनुष दिखावें—'**धनुर्दर्शय रामाय इति होवाच पार्थिवम्**' महर्षिके बार-बार कहनेपर राजाने धनुषको मँगवा लिया। धनुषको महाबलवान्, महामनस्वी, महाकाय पाँच हजार महावीर किसी तरह बड़े परिश्रमसे ठेलकर वहाँतक ले आये। धनुषके आनेपर भी श्रीजनक पुनः शङ्का अभिव्यक्त करते हैं—हे महर्षे! जनकवंशी राजाओंने इस धनुषका पूजन ही सर्वदा किया है; परंतु कभी उठानेमें समर्थ नहीं हो सके।

इदं धनुर्वरं ब्रह्मञ्जनकैरभिपूजितम्।
राजभिश्च महावीर्यैरशक्तैः पूरितं तदा॥

(१।६७।८)

अभिप्राय यह है कि जिसे इतने बड़े-बड़े वीर राजा भी नहीं उठा सके, उसे ये बालक कैसे उठा सकेंगे? वात्सल्यभावाविष्ट जनकने एक बार पुनः कहा—हे ब्रह्मन्! इस धनुषको सम्पूर्ण देवता, असुर, राक्षस, गन्धर्व बड़े-बड़े यक्ष, किन्नर और महानाग भी नहीं उठा सके हैं। फिर इस धनुषको खींचने, चढ़ाने, इसपर बाणसन्धान करने, इसकी प्रत्यञ्चापर टङ्कार देने तथा इसे उठाकर इधर-उधर हिलानेमें मनुष्योंकी कहाँ शक्ति है?

नैतत् सुरगणाः सर्वे सासुरा न च राक्षसाः।
गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिन्नरमहोरगाः॥
क्व गतिर्मानुषाणां च धनुषोऽस्य प्रपूरणे।
आरोपणे समायोगे वेपने तोलने तथा॥

(१।६७।९-१०)

अब तो स्पष्ट हो गया कि श्रीजनकजीको कथमपि विश्वास नहीं हो रहा है कि श्रीरामचन्द्रजी अपने सुकुमार करारविन्दोंसे, अपने सुकोमल अङ्गुलिदलोंसे इस वज्रादपि कठोर धनुषको हिला भी सकेंगे। यह श्रीजनकका दोष नहीं है, यह तो लोकाभिराम श्रीरामकी अनुपम रूपमाधुरीका, लीलामाधुरीका लीलामय, आनन्दमय विलास है।

विश्वामित्रः सरामस्तु श्रुत्वा जनकभाषितम्।
वत्स राम धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत्॥

(१।६७।१२)

महर्षि विश्वामित्रने श्रीरामचन्द्रसे कहा—'वत्स राम! इस धनुषको देखो'। यहाँ पश्य—देखो शब्द उपलक्षण है कि इसे देखो, समझो, उठाओ और सज्ज कर दो—चढ़ा दो तथा राजर्षि जनकके समस्त स्नेहिल अविश्वासको नष्ट करके इनके परितापका अपाकरण करके इन्हें सुखी कर दो—

उठहु राम भंजहु भवचापा।
मेटहु तात जनक परितापा॥

वीरेन्द्रमुकुटमणि श्रीरामने धनुषको देखकर कहा—अब मैं इस दिव्य धनुषको हाथोंसे संस्पर्श करूँगा। मैं इसे उठाने और चढ़ानेका भी प्रयास करूँगा। आशय यह है कि यदि चढ़ानेमें टूट जाय तो मेरा दोष न समझा जाय—

इदं धनुर्वरं दिव्यं संस्पृशामीह पाणिना।

यत्नवांश्च भविष्यामि तोलने पूरणेऽपि वा॥

(१।६७।१४)

राजर्षि जनक और ब्रह्मर्षि विश्वामित्र दोनोंने एक साथ समवेत स्वरमें कहा—'हाँ ऐसा ही करो'— '**बाढमित्यब्रवीद् राजा मुनिश्च समभाषत।**' श्रीरामजीने धनुषको अनायासेन उठा लिया। उस समय हजारों वीर तथा अनेक मिथिलावासी नर-नारी आश्चर्यसे नेत्रविस्फारित करके निःशब्द इस लीलाका दर्शन कर रहे थे। श्रीरामजीने सबके देखते-देखते धनुषको सज्ज करके जब उसे आकर्ण खींचा तब वह मध्यसे ही टूट गया।

पश्यतां नृसहस्त्राणां बहूनां रघुनन्दनः।
आरोपयत् स धर्मात्मा सलीलमिव तद्धनुः॥
आरोपयित्वा मौर्वीं च पूरयामास तद्धनुः।
तद् बभञ्ज धनुर्मध्ये नरश्रेष्ठो महायशाः॥

(१।६७।१६-१७)

तेहि छन राम मध्य धनु तोरा।
भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥

धनुषके टूटते समय वज्रपातके समान महान् शब्द हुआ। ऐसा ज्ञात होता था मानो पर्वत बीचसे विदीर्ण हो गया। उस समय भूकम्प आ गया—

तस्य शब्दो महानासीन्निर्घातसमनिःस्वनः।
भूमिकम्पश्च सुमहान् पर्वतस्येव दीर्यतः॥

(१।६७।१८)

भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड २६१)

जय-जयकी गगनभेदी ध्वनि चारों ओर होने लगी। सब लोग प्रसन्न होकर कहते हैं कि कोशलेश दशरथ राजकिशोर परम मनोहर श्रीरामचन्द्रजीने विशाल एवं कठोर शिवधनुषको बिना श्रमके ही स्पर्श करते ही तोड़ दिया—

रही भुवन भरि जय जय बानी।
धनुषभंग धुनि जात न जानी॥
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी।
भंजेउ राम संभुधनु भारी॥

इसके पश्चात् श्रीरामचरितमानसमें जयमाल-प्रसङ्गका अतिशय भावपूर्ण वर्णन किया गया है। परंतु मैं उस दिव्य प्रसङ्गका मनकी आँखोंसे दर्शन करते हुए प्रणाम कर रहा हूँ—'**गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सियँ जयमाल राम उर मेली॥**' इसके पश्चात् श्रीजनक कहते हैं—मेरी प्राणप्रिया वीर्यशुल्का अयोनिजा पुत्री सीता श्रीदशरथराजकिशोर श्रीरामको अपने पतिके रूपमें प्राप्त करके जनकवंशकी कीर्ति-वैजयन्तीका विस्तार करेगी—

जनकानां कुले कीर्तिमाहरिष्यति मे सुता।
सीता भर्तारमासाद्य रामं दशरथात्मजम्॥

(१।६७।२२)

इस श्लोककी व्याख्या करते हुए श्रीगोविन्दराजजी लिखते हैं— '**भर्तारं भरणदक्षम्' वित्तमिच्छन्ति मातरः' इत्युक्तधनवन्तमित्यर्थः। रामं 'रूपमिच्छति कन्यका' इत्युक्त रूपवन्तं दशरथात्मजम्'बान्धवाः कुलमिच्छन्ति''इत्युक्तरीत्या बन्धुकाङ्क्षितम् एवं सर्वसम्मतवरप्राप्त्या कीर्तिमाहरिष्यतीति भावः**'। अर्थात् माता विवाहमें धन चाहती है कि मेरी पुत्री धनी घरमें व्याही जाय। '**भर्तारम्**' का अर्थ होता है जो पालन-पोषणमें कुशल हो, अतः श्लोकगत भर्तार शब्दसे माताकी इच्छा पूर्ण हो गयी। बान्धवलोग कुल चाहते हैं '**दशरथात्मजम्**'से इनके कुलकी महिमा असन्दिग्ध है। कन्या रूपवान् पति चाहती है 'राम' शब्दका अर्थ है लोकोत्तर सौन्दर्यशाली,

अतः राम शब्दसे श्रीसीताकी इच्छा पूर्ण हो गयी। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी सर्वसम्मत वर हैं। ऐसे वरको प्राप्त करके कीर्तिकी प्राप्ति सुनिश्चित है।

धनुष टूटनेके अनन्तर श्रीजनकने बद्धाञ्जलि होकर श्रीविश्वामित्रसे प्रार्थना की—हे भगवन्! यदि आपकी आज्ञा हो तो मेरे कुशल मन्त्री श्रीअयोध्याजी जायँ और विनयपूर्ण प्रार्थना करके चक्रवर्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजीको शीघ्र यहाँ बुला लावें। श्रीविश्वामित्रजीने राजाके प्रस्तावका तथास्तु कहकर समर्थन कर दिया। तदनन्तर श्रीजनकजीके द्वारा समादिष्ट उनके दूत चौथे दिन श्रीअयोध्याजी पहुँच गये—

जनकेन समादिष्टा दूतास्ते क्लान्तवाहनाः।
त्रिरात्रमुषिता मार्गे तेऽयोध्यां प्राविशन् पुरीम्॥

(१।६८।१)

श्रीजनकजीके कुशल दूतोंने अयोध्यानरेशको विनम्रतापूर्वक सब समाचार सुनाया और उनसे श्रीजनकपुर पधारनेकी प्रार्थना की। इस मङ्गलमय समाचारसे श्रीअयोध्याजीमें आनन्दकी लहर दौड़ गयी। सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द छा गया। श्रीदशरथजीने आज्ञा दी कि अविलम्ब समस्त व्यवस्था होनी चाहिये। श्रीवसिष्ठादि महर्षिगण आगे-आगे चलें। मेरा भी रथ तैयार करो। श्रीजनकजीके दूत शीघ्र चलनेकी बात कर रहे हैं—

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ कश्यपः।
मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुर्ऋषिः कात्यायनस्तथा॥
एते द्विजाः प्रयान्त्वग्रे स्यन्दनं योजयस्व मे।
यथा कालात्ययो न स्याद् दूता हि त्वरयन्ति माम्॥

(१।६९।४-५)

इस प्रकार श्रीअयोध्याजीमें अपूर्व उत्साहका वातावरण है। कौशल्यादि माताएँ आनन्दपूर्वक कुलकी रीतिका सम्मान कर रही हैं। अनेक प्रकारके मङ्गलवाद्य सुवादित हो रहे हैं। घोड़े सज रहे हैं, रथ सज रहे हैं, हस्ती सज रहे हैं। वैवाहिक सामग्रियोंका संकलन हो रहा है और सब लोग अपनोंको तथा अपनेको सजा रहे हैं। श्रीदशरथजी अनेक साधन तथा नाना प्रकारकी रत्नराशि लेकर गुरु वसिष्ठके नेतृत्वमें मन्त्रियोंके साथ प्रस्थान कर रहे हैं। सबके मनमें बस एक ही अभिलाषा है कि वह मङ्गलमय क्षण कब आवेगा जब हमलोग श्रीजनकपुर पहुँचेंगे? अन्तरायभूत अवध और मिथिलाका मार्ग कब समाप्त होगा? हमलोग अपने सर्वस्व, परम प्रेमास्पद श्रीरामलक्ष्मणके दर्शन कब करेंगे?

सब कें उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरीर।
कबहिं देखिबे नयन भरि रामु लखनु दोउ बीर॥

(श्रीरामचरितमानस १।३००)

बस, यह अभिलाषा सबको शीघ्र चलनेकी प्रेरणा दे रही है। चार दिनमें ही सब लोग विदेह-नगर पहुँच गये। राजर्षि जनकने अनेक प्रकारसे स्वागत और सत्कार किया—

गत्वा चतुरहं मार्गं विदेहानभ्युपेयिवान्।
राजा च जनकः श्रीमान् श्रुत्वा पूजामकल्पयत्॥

(१।६९।७)

श्रीजनकने दशरथजीसे कहा—हे नरशार्दूल! आपका स्वागत है, आपके आगमनसे आज मिथिलाका कण-कण प्रमुदित है, आपके स्वागतके लिये सुसज्जित है। आपके पधारनेसे आज मेरा पूर्ण भाग्योदय हो गया है। हे भूपालमणे! अब आपसे प्रार्थना है कि विवाहकार्य सम्पन्न करें। श्रीदशरथजीने अत्यन्त संक्षिप्त, सारगर्भित, स्नेह-परिपूर्ण उत्तर दिया। महाराजका यह पहला शब्द था, उसने ही समस्त जनकपुरको प्रभावित कर लिया—मोह लिया। श्रीदशरथजीके लिये आदि कविने **'वाक्यविदां श्रेष्ठः'** विशेषण दिया है—

वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठः प्रत्युवाच महीपतिम्।

प्रतिग्रहो दातृवशः श्रुतमेतन्मया पुरा॥
यथा वक्ष्यसि धर्मज्ञ तत् करिष्यामहे वयम्।

(१।६९।१४-१५)

हे राजन्! मैंने पहले सुन रखा है कि प्रतिग्रह दाताके अधीन होता है, इसलिये आप जो कहेंगे हम वही करेंगे। इसके पश्चात् सब एक-दूसरेसे मिले। महापराक्रमी, अतिशय तेजसम्पन्न श्रीरामजी पितृस्थानापन्न श्रीविश्वामित्रजीको आगे करके श्रीलक्ष्मणके साथ अपने पिताके पास गये और उनके चरणोंका स्पर्श किया। श्रीदशरथको उस समय परमानन्दकी अनुभूति हुई—

अथ रामो महातेजा लक्ष्मणेन समं ययौ॥
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य पितुः पादावुपस्पृशन्।
राजा च राघवौ पुत्रौ निशाम्य परिहर्षितः॥

(१।६९।१७-१८)

सुत हियँ लाइ दुसह दुख मेटे।
मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे॥

सब लोगोंने रात्रिमें सुखपूर्वक जनवासामें विश्राम किया।

राजा जनकने साङ्काश्या नगरीसे अपने भाई कुशध्वजको बुलवाया। उन्होंने सपरिवार आकर श्रीजनकजीको प्रणाम किया। दोनों भाइयोंने अपने मन्त्री सुदामन्को कुछ कहकर जनवासेमें भेजा। सुदामन्ने जाकर श्रीदशरथजीसे प्रार्थना की—हे अयोध्यानाथ! श्रीजनकजी उपाध्याय और पुरोहितके साथ आपका दर्शन करना चाहते हैं—

अयोध्याधिपते वीर वैदेहो मिथिलाधिपः॥
स त्वां द्रष्टुं व्यवसितः सोपाध्यायपुरोहितम्।

(१।७०।१३-१४)

सब लोग श्रीजनकजीके पास पधारे। उस समय दोनों पक्षोंके द्वारा अपने-अपने कुलके परिचयका प्रसङ्ग आया। श्रीदशरथजीने कहा—हे विदेहराज! आपको तो विदित ही होगा कि इक्ष्वाकुकुलके देवता ब्रह्मर्षि वसिष्ठ हैं। सभी कार्योंमें इनकी ही आज्ञाका पालन होता है, अतः हमारी कुलपरम्पराका परिचय भगवान् वसिष्ठ ही देंगे। '**एष वक्ष्यति धर्मात्मा वसिष्ठो मे यथाक्रमम्**'। तत्पश्चात् श्रीवसिष्ठजीने श्रीब्रह्मासे लेकर श्रीरामपर्यन्त कुलका परिचय सत्ताईस श्लोकोंमें दिया है। तदनन्तर श्रीजनकजीने अपने कुलका परिचय स्वयं दिया है। निमिसे लेकर अपने भाई तकका तथा स्वयंका भी परिचय दिया है और अन्तमें श्रीजनकने कहा—मैं अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक आपको दो बहुएँ प्रदान करता हूँ। आपका कल्याण हो। सीताजीको रामके लिये और उर्मिलाको लक्ष्मणके लिये प्रदान करता हूँ—

ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते मुनिपुङ्गव॥
सीतां रामाय भद्रं ते ऊर्मिलां लक्ष्मणाय वै।

(१।७१।२०-२१)

उसके पश्चात् श्रीदशरथजीसे कहा कि अब आप अपने पुत्र श्रीराम-लक्ष्मणके कल्याणके लिये गोदान करवाइये और नान्दीमुख श्राद्ध सम्पन्न करके वैवाहिक कार्य आरम्भ करिये।

रामलक्ष्मणयो राजन् गोदानं कारयस्व ह।
पितृकार्यं च भद्रं ते ततो वैवाहिकं कुरु॥

(१।७१।२३)

हमारी शास्त्रीय वैवाहिक पद्धति बहुत सुन्दर है। बड़ी मनोवैज्ञानिक है। इस पद्धतिके अनुसार विवाह सम्पन्न करनेके लिये नान्दीमुख श्राद्ध और गोदान आदि माङ्गलिक कार्य करते हैं। विवाहमें किसी प्रकारका विघ्न न हो, एतावता पितरों और देवताओंकी आराधना होती है। पितरोंकी पूजासे वंशवृद्धि होती है। इसी तरह देवताओंकी पूजासे इन्द्रियोंकी शक्ति बढ़ती है।

राजा जनक जब अपनी बात पूर्ण कर चुके तब ब्रह्मर्षि श्रीवसिष्ठसहित महामुनि विश्वामित्रने एक प्रस्ताव किया—

तमुक्तवन्तं वैदेहं विश्वामित्रो महामुनिः।
उवाच वचनं वीरं वसिष्ठसहितो नृपम्॥

(१।७२।१)

हे राजन्! यह सम्बन्ध सर्वथा एक-दूसरेके योग्य है। रूप-सम्पत्तिकी दृष्टिसे भी समान योग्यताका है; क्योंकि उर्मिलासहित श्रीसीताजी श्रीराम और लक्ष्मणके अनुरूप है—

सदृशो धर्मसम्बन्धः सदृशो रूपसम्पदा।
रामलक्ष्मणयो राजन् सीता चोर्मिलया सह॥

(१।७२।३)

हे नरश्रेष्ठ! इसके अनन्तर हमें भी कुछ कहना है; आपलोग मेरी बात सुनें। आपके अनुज कुशध्वजकी दो कन्याएँ हैं, जो इस भूमण्डलमें अनुपम सुन्दरी हैं। हे राजन्! मैं आपकी उन दोनों कन्याओंका कुमार भरत और शत्रुघ्नके लिये पत्नीत्वेन वरण करता हूँ।

मुनियोंके इस आनन्दमय प्रस्तावसे सर्वत्र आनन्द छा गया। यह प्रस्ताव सभीको अच्छा लगा। जिसने सुना उसीने सराहा। श्रीजनकने गद्गद होकर बद्धाञ्जलि होकर दोनों मुनिवरोंसे कहा—'**जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच मुनिपुङ्गवौ**'॥ हे मुनिश्रेष्ठो! आपके इस सहृदयतापूर्ण प्रस्तावसे आज हमारा कुल धन्य हो गया। आपका कल्याण हो। आप जैसा कहते हैं, ऐसा ही हो। श्रीभरत और शत्रुघ्न इन दोनों कन्याओंको अपनी-अपनी धर्मपत्नीके रूपमें स्वीकार करें। हे महामुने! ये चारों महाबली राजकुमार एक ही दिन हमारी चारों राजकुमारियोंका पाणिग्रहण करें—

एकाह्ना राजपुत्रीणां चतसृणां महामुने।
पाणीन् गृह्णन्तु चत्वारो राजपुत्रा महाबलाः॥

(१।७२।१२)

इस प्रसङ्गसे यह सिद्ध होता है कि उस समय गुरुजनोंका कितना समादर था। उनकी आज्ञाको कोई टाल नहीं सकता था और गुरुजन अपना कितना अधिकार समझते थे। श्रीदशरथ और जनकसे पूछनेकी भी आवश्यकता नहीं अनुभव की। श्रीविश्वामित्र और वसिष्ठने आपसमें परामर्श किया और निश्चय कर लिया, घोषणा भी हो गयी। धन्य है! इसे गुरुमहिमा कहें या शिष्य-महिमा? गुरुओंका कितना महत्त्वपूर्ण हितचिन्तन है, साथ ही शिष्योंका कितना महत्त्वपूर्ण समर्पण है।

इसके पश्चात् श्रीदशरथजीने विश्राम-स्थानपर पहुँचकर—जनवासामें जाकर अपने चारों पुत्रोंके विवाहकी मङ्गलकामनाके लिये—सानन्द सम्पन्नताके लिये समस्त श्राद्धकर्म श्रद्धापूर्वक सम्पन्न किये और दूसरे दिन प्रातःकाल प्रत्येक पुत्रके निमित्त एक-एक लाख गौओंका दान किया। उसके पश्चात् जब वे अपने चारों पुत्रोंके साथ सभामें बैठे तब लोकपालोंसे घिरे हुए प्रजापति ब्रह्माकी भाँति सुशोभित हो रहे थे—

स सुतैः कृतगोदानैर्वृतः सन्नृपतिस्तदा।
लोकपालैरिवाभाति वृतः सौम्यः प्रजापतिः॥

(१।७२।२५)

गोदानके दिन ही श्रीभरतजीके मामा युधाजित् वहाँ आये। पूछनेपर उन्होंने बताया कि वे श्रीभरतजीको लेनेके लिये श्रीअयोध्याजी आये थे। वहाँ वैवाहिक समाचार श्रवण करके अपने भांजे भरतको देखनेकी लालसासे मिथिला चले आये—'**त्वरयाभ्युपयातोऽहं द्रष्टुकामः स्वसुः सुतम्**'। श्रीदशरथजीने उनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया। दूसरे दिन प्रातःकाल नित्यकर्मसे निवृत्त

होकर तत्त्वज्ञ नरेश ऋषि-मुनियोंके साथ श्रीजनकजीकी यज्ञशालामें पहुँच गये। तत्पश्चात् विवाहके योग्य 'विजय' नामक मुहूर्त आनेपर श्रीरामचन्द्रजी भी अपने भाइयोंके साथ वैवाहिक वेष-भूषासे अलङ्कृत होकर वहाँ आ गये। वे विवाहोचित मङ्गलाचार सम्पन्न कर चुके थे **'कृत-कौतुकमङ्गलः'**। **'कृतं कौतुकं मङ्गलं यस्य सः, कृतविवाहसूत्रबन्धनरूपमङ्गलाचारः'** अर्थात् वैवाहिक सूत्र बन्धनरूप—कङ्गन बन्धनरूप मङ्गलाचार कर चुके थे। उस समय वसिष्ठजीने विवाहमण्डपमें पहुँचकर जनकजीसे कहा—'हे राजन्! नरवरश्रेष्ठ श्रीदशरथजी अपने चारों पुत्रोंका वैवाहिक मङ्गलाचार सम्पन्न करके उनको अपने साथमें लेकर पधारे हैं। वे भीतर मण्डपमें आनेके लिये दाताके आदेशकी प्रतीक्षा कर रहे हैं—'

वसिष्ठो भगवानेत्य वैदेहमिदमब्रवीत्॥
राजा दशरथो राजन् कृतकौतुकमङ्गलैः।
पुत्रैर्नरवरश्रेष्ठो दातारमभिकाङ्क्षते॥

(१।७३।१०-११)

परम उदार, परम धर्मज्ञ और महा तेजस्वी जनकने बहुत सुन्दर उत्तर दिया—हे महामुने! महाराजके लिये यहाँ कौन प्रतीहार स्थित है? वे किसके आदेशकी प्रतीक्षा कर रहे हैं? यह तो जैसे मेरा घर है वैसे ही उनका भी है। जिस प्रकार उनके पुत्रोंका वैवाहिक मङ्गलाचार सम्पन्न हो चुका है, उसी तरह हमारी पुत्रियोंका भी वैवाहिक सूत्र-बन्धनरूप मङ्गलाचार सम्पन्न हो गया है। मैं तो आपलोगोंकी प्रतीक्षामें विवाहवेदीपर बैठा हूँ। कृपया अविलम्ब, निर्विघ्न सब कार्य पूर्ण कीजिये—

कः स्थितः प्रतिहारो मे कस्याज्ञां सम्प्रतीक्षते।
स्वगृहे को विचारोऽस्ति यथा राज्यमिदं तव॥
कृतकौतुकसर्वस्वा वेदिमूलमुपागताः।
मम कन्या मुनिश्रेष्ठ दीप्तावह्नेरिवार्चिषः॥
सद्योऽहं त्वत्प्रतीक्षोऽस्मि वेद्यामस्यां प्रतिष्ठितः।
अविघ्नं क्रियतां सर्वं किमर्थं हि विलम्ब्यते॥

(१।७३।१४—१६)

श्रीवसिष्ठके मुखसे जनकजीका आत्मीयतासे ओत-प्रोत स्नेहमय उत्तर सुनकर दशरथजी विभोर हो गये। अपने चारों पुत्रों और महर्षियोंके साथ विवाह-मण्डपमें गये। श्रीजनकने सबको अभिवादन किया और ससम्मान यथोचित आसन दिया। सबके बैठ जानेपर श्रीवसिष्ठसे प्रार्थना की—हे धर्मात्मा महर्षे! हे प्रभो! विवाहकी सम्पूर्ण क्रिया कराइये—

ततो राजा विदेहानां वसिष्ठमिदमब्रवीत्।
कारयस्व ऋषे सर्वानृषिभिः सह धार्मिक॥
रामस्य लोकरामस्य क्रियां वैवाहिकीं प्रभो।

(१।७३।१८-१९)

श्रीवसिष्ठने तथास्तु कहकर विश्वामित्रजी तथा शतानन्दजीको आगे करके वेदिकाका निर्माण किया, अग्निस्थापन किया और प्रज्वलित अग्निमें आहुति दी। तदनन्तर मुनिकी आज्ञासे राजर्षि श्रीजनकने सर्वाभरणभूषिता भगवती भास्वती अनिन्दिता मैथिली सीताको ले आकर अग्निके समक्ष श्रीराघवके सामने बिठा दिया। श्रीजनकने गद्गद होकर कहा—'हे कौसल्यानन्दसंवर्द्धन! हे दशरथनन्दन श्रीराम! आपका सर्वविध कल्याण हो। यह मेरी लाडिली पुत्री सीता तुम्हारी सहधर्मिणीके रूपमें उपस्थित है। इसे स्वीकार करो—इसका पाणिग्रहण करो। यह परम पतिव्रता और महान् सौभाग्यशालिनी है। हे रघुनन्दन! यह मेरी प्राणाधिका स्नेहमयी पुत्री छायाकी भाँति सदा तुम्हारे पीछे चलनेवाली होगी—'

ततः सीतां समानीय सर्वाभरणभूषिताम्।

समक्षमग्नेः संस्थाप्य राघवाभिमुखे तदा॥
अब्रवीज्जनको राजा कौसल्यानन्दवर्धनम्।
इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव॥
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना।
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा॥

(१।७३।२५—२७)

इस वैवाहिक मङ्गल-वेलामें मात्र एक वैवाहिक श्लोकपर आचार्योंके चरणोंकी छत्र-छायामें बैठकर किञ्चिद् विचार करते हैं।

इयं सीता—'हे दशरथनन्दन! जिस सीताके लिये सिद्धाश्रमसे लेकर मिथिलापर्यन्त आप कौतूहलसे युक्त थे कि सीता कैसी होगी? वह सीता। अथवा—हे रघुनन्दन! जिस सीताके लिये आप सिद्धाश्रमसे लेकर मिथिलापर्यन्त पैदल चलकर आये। वह आपकी तपस्याका फल प्रदान करनेवाली सीता। अथवा—हे अचिन्त्यस्वरूप श्रीरामजी! आपके सर्वदा साथ रहनेवाली, अभिन्न एवं अनपायिनी सीता, जो लीला-क्षेत्रमें अवतरित होकर मेरे पास रहकर मुझे भाग्यवान् बना रही थी, वही आपकी परब्रह्म महिषी सीता। हे अभिराम राम! जो सीता बड़े लाड़-प्यारसे पली है, जिसे यहाँके नर-नारीकी तो चर्चा ही क्या है पशु-पक्षी भी प्यार करते हैं, वही एक प्रियदर्शना, प्रियदर्शिनी, प्रियभाषिणी, महाभागा सुनैनाकी आँखोंकी पुत्तलिका सीता।'

मम सुता—आचारप्रधान जनक-कुलमें समुत्पन्न श्रीसीताके आभिजात्यके विषयमें आपको कुछ जानना नहीं है।

सहधर्मचरी—'**समानो धर्मः सहधर्मः तं चरतीति सहधर्मचरी**' अर्थात् हे धर्मविग्रह श्रीराम! हे शरणागतवत्सल! यह आपके अनुकूल शरणागत रक्षयित्री है। इसकी शरणमें जो भी आता है उसे यह निर्भय कर देती है, उसके अपराधोंको भूलकर भी स्मरण नहीं करती है। इस प्रकार आपके अनुकूल धर्माचरण करनेवाली है।

भद्रं ते—'हे! रामभद्र! मेरी सीता अतिशय शुभलक्षणवाली है, इससे विवाह होनेपर आपको सर्वविध मङ्गल प्राप्त होंगे तथा जीवनके हर क्षेत्रमें कल्याण होगा। अथवा वर-वधूका यथाशास्त्र, यथायोग्य जोड़ा बहुत कम मिल पाता है। हे सीतानाथ! सीताका और आपका यह युगल अनोखा युगल है। इसके पूर्व न कभी ऐसी अनुरूप वर-वधूकी जोड़ी किसीने देखी है और न आगे देखनेकी सम्भावना है। हे श्रीराम! इस अवसरपर इस अनोखी जोड़ीको देखकर कहीं किसीकी नज़र न लग जाय—टोना न लग जाय, इसलिये हम आशीर्वाद देते हैं कि आपका सर्वदा कल्याण हो— '**अनुरूपवधू-वरयोः संयोगे दृष्टिदोषो भविष्यतीति मङ्गलमाशास्ते भद्रं ते**'।' (भूषण-टीका)

इसी प्रकार जनकजीने उर्मिलाजीका हाथ लक्ष्मणजीके हाथमें, माण्डवीजीका हाथ भरतजीके हाथमें और श्रुतिकीर्तिजीका हाथ शत्रुघ्नजीके हाथमें समर्पित कर दिया। चारों राजकुमारोंने चारों राजकुमारियोंका कल्याणमय पाणिग्रहण कर लिया। तदनन्तर श्रीवसिष्ठजीकी आज्ञासे रघुकुल-रत्न राजकुमारोंने अपनी-अपनी पत्नीके साथ अग्नि, वेदी, श्रीदशरथ तथा ऋषि-मुनियोंकी परिक्रमा की और वेदोक्त विधिके अनुसार वैवाहिक कार्य पूर्ण किया।

चत्वारस्ते चतसॄणां वसिष्ठस्य मते स्थिताः।
अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा वेदिं राजानमेव च॥
ऋषींश्चापि महात्मानः सहभार्या रघूद्वहाः।
यथोक्तेन ततश्चक्रुर्विवाहं विधिपूर्वकम्॥

(१।७३।३५-३६)

चारों ओर आनन्द छा गया। दुन्दुभि-ध्वनि, शङ्खध्वनि, मङ्गलवाद्यध्वनि, मङ्गलध्वनि, कलगीतध्वनि, वेदध्वनि और जयध्वनि होने

लगी। अन्तरिक्षसे पुष्पवृष्टि बरसने लगी। श्रीसीता-रामचन्द्रकी जय, श्रीमाण्डवी-भरतलालजीकी जय, श्रीउर्मिला-लक्ष्मणकुमारजीकी जय, श्रीश्रुतिकीर्ति-शत्रुघ्नकुमारजीकी जय। इस प्रकार जयघोषके साथ वैवाहिक कार्य सम्पन्न हो गया। चारों भाई अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ उपकार्यामें—जनवासेमें चले गये। चक्रवर्ती श्रीदशरथजी भी ऋषियों और बन्धु-बान्धवोंके साथ पुत्रों और बहुओंको देखते हुए उनके पीछे-पीछे गये—

अथोपकार्यं जग्मुस्ते सभार्या रघुनन्दनाः।
राजाप्यनुययौ पश्यन् सर्षिसङ्घः सबान्धवः॥

(१।७३।४०)

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि॥

(श्रीरामचरितमानस १।३२५)

भगवान्का मङ्गलमय पाणिग्रहण-संस्कार पूर्ण हुआ। चारों भाइयोंका विवाह सम्पन्न हो गया। श्रीरामचरितमानसमें ठाकुरजीका, विवाहके बाद काफी दिन रहना लिखा है। मिथिलाके लोग तो यहाँतक कहते हैं कि विवाहके बाद हमारे पहुना—श्रीरामजी कहीं गये ही नहीं, मिथिलामें ही रह गये। जो भी हो, हम उनके स्नेहिल-भावको नमन करते हैं।

श्रीवाल्मीकिजी लिखते हैं कि विवाहके पश्चात् जो प्रातःकाल हुआ, उसमें सबसे प्रथम जानेवाले श्रीविश्वामित्रजी हैं—

अथ रात्र्यां व्यतीतायां विश्वामित्रो महामुनिः।
आपृष्ट्वा तौ च राजानौ जगामोत्तरपर्वतम्॥

(१।७४।१)

दोनों राजाओंसे—चक्रवर्ती श्रीदशरथजी और राजर्षि श्रीजनकसे श्रीविश्वामित्रने कहा—हमारा कार्य सम्पन्न हो गया, अब हम जाना चाहते हैं, हमें विदा कर दीजिये। दोनों राजा उपकृत थे। दोनोंका हृदय स्नेह-गद्गद था। परंतु जाना तो सबको ही है, अतः बड़े प्रेमसे विदा कर दिया। वे वहाँसे तपस्याके लिये उत्तरपर्वतपर चले गये। वास्तवमें इस बारातके—विवाहके प्रधानपात्र—प्रधान माध्यम ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ही थे। उनके जानेके पश्चात् सबका मन उदास हो गया।

राजेन्द्र श्रीदशरथजीने बड़े संकोचके साथ श्रीजनकजीसे कहा—'हे स्नेहमय राजर्षे! हे भावमय सम्बन्धिन्! आपने सब प्रकारसे हमें सुख दिया। एक नहीं चार-चार कन्या-रत्न दिये। हमारे घर भर दिये। हमलोग अत्यन्त प्रसन्न हैं; परंतु पर्याप्त दिन हो गये हैं, अतः हम सपरिकर जाना चाहते हैं, अतः हे विदेहराज! हमें प्रसन्नतापूर्वक जानेकी अनुमति प्रदान करें। बड़ा करुण वातावरण हो गया। मिथिलाके नर-नारी वियोग-व्यथासे व्याकुल हो गये। मिथिलाके पशु-पक्षी भी स्नेहसे रुदन करने लगे। इस प्रकार प्रेमाश्रुओंके बीच आज्ञा लेकर श्रीदशरथजी भी सपरिकर अपने नगरके लिये प्रस्थान कर गये—'

विश्वामित्रे गते राजा वैदेहं मिथिलाधिपम्।
आपृष्ट्वैव जगामाशु राजा दशरथः पुरीम्॥

(१।७४।२)

इस प्रसङ्गमें महर्षि वाल्मीकिने लिखा है कि श्रीजनकजीने पर्याप्त धन दिया है, और भी बहुत-सी सामग्रियाँ दी हैं। दहेज तो देना ही चाहिये। परंतु वरपक्षवालेको चूसकर—कष्ट देकर नहीं लेना चाहिये। दहेजका धन कन्या-धन होता है, उस धनपर कन्याका ही अधिकार होना चाहिये।

श्रीजनकजीसे विदा होकर राजा दशरथ चले जा रहे थे। मार्गमें कुछ ही दूरके बाद भयङ्कर आँधी आयी। श्रीवसिष्ठजी, दशरथजी एवं उनके पुत्र और अन्यान्य ऋषियोंको छोड़कर सब-के-सब संज्ञाशून्य हो गये। उसी समय श्रीपरशुरामजी आये। क्रोधसे उनका मुख लाल हो रहा था। मुनिके वेषमें मानो साक्षात् वीररस

ही उपस्थित हो गया था। श्रीवसिष्ठजीके नेतृत्वमें ऋषियोंने उनका विधिवत् पूजन किया। पूजा स्वीकार करके श्रीरामजीसे कहा—'**कहा राम सन राम**'। यहाँपर दो रामोंका सङ्गम है। श्रीवाल्मीकिजीने दोनोंका अलगाव किया। जामदग्न्य राम और दाशरथिराम—

रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्योऽभ्यभाषत॥

(१।७४।२४)

एक राम धनुष धारण करते हैं और एक परशु धारण करते हैं। परशुवाले परशुराम हो गये, परंतु धनुषवाले धनुषराम नहीं कहे जाते हैं। ठाकुरजीने अच्छा-सा व्यङ्ग किया है—'**राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा**'॥ आप तो परशुराम हैं, अतः बड़े हैं।

श्रीपरशुरामजीने कहा—'हे राघव राम! हम आपको जानते हैं, आपके पराक्रमको सुना है, आपने ताटका आदिका वध करके महर्षि कौशिकके यज्ञकी रक्षा की है। अहल्याका उद्धार किया है। इस प्रकार आपके सब कार्य अद्भुत हैं। आपके द्वारा शिव-धनुषके तोड़नेका समाचार भी मैंने सुन लिया है—'

राम दाशरथे वीर वीर्यं ते श्रूयतेऽद्भुतम्।
धनुषो भेदनं चैव निखिलेन मया श्रुतम्॥

(१।७५।१)

तुम्हारे अचिन्त्य और अद्भुत पराक्रमको सुन करके मैं दूसरा उत्तम धनुष लेकर आपके पास आया हूँ। हे वीर! इसे सज्ज करके और बाण-सन्धान करके अपना बल दिखाइये। तत्पश्चात् मैं आपसे द्वन्द्वयुद्ध करूँगा। परशुरामजीका कठोर वचन सुनकर पुत्रवत्सल राजा दशरथके मुखपर विषाद छा गया। वे हाथ जोड़कर दीन-भावसे बोले—

विषण्णवदनो दीनः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥

(१।७५।५)

हे ब्रह्मन्! मेरे पुत्रोंको अभय प्रदान करिये।

बालानां मम पुत्राणामभयं दातुमर्हसि॥

(१।७५।६)

श्रीदशरथकी बातको अनसुनी करके परशुरामजीने पुनः भगवान् रामसे कहा—'हे राघव राम! आपने जिस धनुषको तोड़ा वह शिवधनुष था और यह मेरे हाथमें विष्णुधनुष है। दोनोंको विश्वकर्माने बनाया है। एक बार देवताओंने श्रीविष्णु और शङ्करके बलाबलकी परीक्षाके लिये उन दोनोंमें युद्ध करा दिया। अन्तमें श्रीविष्णुभगवान्ने हुङ्कारमात्रसे धनुषके सहित शङ्करजीको शिथिल एवं स्तम्भित कर दिया। यह देखकर ऋषियोंके सहित देवताओंने श्रीविष्णु-भगवान्को श्रेष्ठ माना—'

जृम्भितं तद् धनुर्दृष्ट्वा शैवं विष्णुपराक्रमैः॥
अधिकं मेनिरे विष्णुं देवाः सर्षिगणास्तथा।

(१।७५।१९-२०)

श्रीपरशुरामने कहा—'हे राम! उसी वैष्णव धनुषको लेकर, सज्ज करके शर-सन्धान करिये।' श्रीरामने कहा—'हे भार्गव राम! मैं क्षत्रिय हूँ। फिर भी आप मुझे पराक्रमहीन और असमर्थ समझकर—मेरी ब्रह्मण्यताको कायरता समझकर मेरा तिरस्कार कर रहे हैं। अच्छा, अब मेरा तेज और पराक्रम देखिये। इतना कहकर लघुपराक्रम—शीघ्रपराक्रम श्रीराघवने परशुरामजीके हाथसे वह उत्तम धनुष-बाण ले लिया, साथ ही उनके अन्तरङ्गसे अपने अंशको—अपनी वैष्णवी शक्तिको भी वापस ले लिया—'

इत्युक्त्वा राघवः क्रुद्धो भार्गवस्य वरायुधम्।
शरं च प्रतिजग्राह हस्ताल्लघुपराक्रमः॥

(१।७६।४)

वैष्णव धनुषको—शार्ङ्ग धनुषको सज्ज करके, उसपर शर-सन्धान करके श्रीरामजीने कहा—हे भृगुनन्दन! आप ब्राह्मण होनेसे पूज्य हैं और मेरे गुरुदेवके—श्रीविश्वामित्रजीके सम्बन्धी हैं, अतः आपके शरीरपर मैं इस प्राणहर शरका प्रयोग

नहीं कर सकता हूँ। यह दिव्य वैष्णव बाण कभी मोघ—निष्फल नहीं होता है। मैं जानता हूँ, हे तपोधन! तपस्यासे दो शक्तियाँ आपको प्राप्त हैं। 'सर्वत्र शीघ्रतापूर्वक आने-जानेकी शक्ति और अनुपम पुण्यलोक' इन दोनोंमें किसे नष्ट करूँ? श्रीपरशुरामजीने कहा—हे राघवेन्द्र प्रभो! मैंने इस पृथ्वीको महर्षि कश्यपको दान दे दिया है, अतः मैं उनकी आज्ञानुसार रात्रिमें महेन्द्राचलपर चला जाता हूँ। हे दानिशिरोमणे! इस बाणसे आप मेरे अनुपम लोकोंको नष्ट करें, परंतु मेरी गति नष्ट न करें। मैं मनके समान वेगसे अभी महेन्द्राचल चला जाऊँगा—

तामिमां मद्‌गतिं वीर हन्तुं नार्हसि राघव।
मनोजवं गमिष्यामि महेन्द्रं पर्वतोत्तमम्॥

(१।७६।१५)

हे ककुत्स्थकुलभूषण! आपके वैष्णव धनुष चढ़ानेसे मुझे असन्दिग्ध निश्चय हो गया है कि आप मधुहन्ता माधव हैं। हे सीतानाथ! मैं अपनी हारपर लज्जित नहीं हूँ। मुझे किसी ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे पचकल्यानीने नहीं हराया है, अपितु त्रैलोक्याधीश्वर परमात्मा श्रीरामने मुझे पराजित किया है—

न चेयं तव काकुत्स्थ व्रीडा भवितुमर्हति।
त्वया त्रैलोक्यनाथेन यदहं विमुखी कृतः॥

(१।७६।१९)

हे रघुनन्दन राम! आपके द्वारा पराजित होनेमें तो जय छिपी हुई है। मैं हारकर भी जीत गया हूँ। मुझे अपनी पराजयपर गर्व है। हे वीरेन्द्र मुकुटमणे! आपकी जय हो! जय हो! जय हो! '**कहि जय जय जय रघुकुलकेतू**'। तदनन्तर श्रीठाकुरजीने श्रीपरशुरामजीका पूजन किया। पूजित परशुराम श्रीरामकी परिक्रमा करके महेन्द्राचलको चले गये—

रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्यः प्रपूजितः।
ततः प्रदक्षिणी कृत्य जगामात्मगतिं प्रभुः॥

(१।७६।२४)

यह परशुरामजीका प्रसङ्ग श्रीरामचरितमानसमें धनुष तोड़नेके अनन्तर तत्काल आ जाता है; परंतु श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें विवाहके पश्चात् मार्गमें आता है। दोनों ही ठीक हैं। श्रीरामके अनेक अवतार हुए हैं, किसी अवतारमें पहले आ गये और किसीमें बादमें आये, अतः शङ्का नहीं करनी चाहिये। एक बात और विशेष समझनेकी है, श्रीपरशुरामजीने अपनी तपस्याके द्वारा अर्जित लोकोंको श्रीरामजीसे नष्ट करा दिया। इसमें आशय यह है कि श्रीपरशुरामजीने कहा—हे राघवेन्द्र! जबतक आप नहीं मिलते तबतक तो अन्य लोकोंकी प्राप्तिकी कामना रहती है, परंतु आपकी प्राप्तिके अनन्तर अशेष कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं। फिर तो आपके दर्शनकी ही कामना शेष रह जाती है। सुतराम् मेरे समस्त लोकोंको नष्ट कर दो, जिससे कि मैं अकिञ्चन होकर आपकी भक्तिका रसास्वादन कर सकूँ। तीसरी बात यह भी विशेष समझनेकी है। श्रीपरशुरामजी भगवान्‌के मुख्य दस अवतारोंमें एक अवतार हैं। उनमें पूर्ण ब्रह्मका विशेष अंश विद्यमान था, अतः वे प्रभुके अंशावतार हैं। इस प्रसङ्गमें जब श्रीरामने उनसे वैष्णव धनुष लिया तो उसी समय वह विशेष अंश भी श्रीरामजीमें लीन हो गया। नृसिंहपुराणमें लिखा है कि सब देवताओंके देखते-देखते श्रीपरशुरामजीके शरीरसे वैष्णव तेज निकलकर श्रीरामजीमें प्रविलीन हो गया—

ततः परशुरामस्य देहान्निर्गत्य वैष्णवम्।
पश्यतां सर्वदेवानां तेजोराममुपागमत्॥

रेणुकानन्दन श्रीपरशुरामजीके चले जानेपर परम यशस्वी श्रीरामजीने उस वैष्णव धनुषको वरुणजीके हाथमें दे दिया—

गते रामे प्रशान्तात्मा रामो दाशरथिर्धनुः।
वरुणायाप्रमेयाय ददौ हस्ते महायशाः॥

(१।७७।१)

श्रीवसिष्ठ आदि गुरुजनोंको प्रणाम करके

अपने वत्सल पिता श्रीदशरथको व्याकुल देखकर श्रीरामजीने कहा—हे पितः! परशुरामजी चले गये। यह सुनकर श्रीदशरथजीने माना कि मेरे लालका पुनर्जन्म हुआ। वात्सल्यके आवेशमें उन्होंने श्रीरामजीको अपनी भुजाओंसे खींचकर हृदयसे लगा लिया और बार-बार उनका मस्तक सूँघने लगे—

बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य मूर्ध्न्युपाघ्राय राघवम्॥

(१।७७।४)

इसके पश्चात् राजाने प्रस्थान किया और शीघ्र ही श्रीअयोध्याजी पहुँच गये। पुरवासियोंने और ब्राह्मणोंने दूरतक आगे जाकर अगवानी की। इस प्रकार श्रीदशरथजीने श्रीअयोध्यापुरीमें प्रवेश किया।

श्रीकौसल्यादि माताओंने चारों बहुओंको उतारकर मङ्गल-गीत गाती हुईं अपने महलमें प्रवेश कराया—

कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च सुमध्यमा॥
वधूप्रतिग्रहे युक्ता याश्चान्या राजयोषितः।
ततः सीतां महाभागामूर्मिलां च यशस्विनीम्॥
कुशध्वजसुते चोभे जगृहुर्नृपयोषितः।

(१।७७।१०—१२)

जब श्रीसीता आदि बहुओंका मुख श्रीकौसल्यादि माताओंने देखा तो सबके प्रेमाश्रु छलक आये। श्रीकौसल्याने कहा—मेरी चारों बहुएँ बहुत सुन्दर हैं, सभी बहुओंको अनेक प्रकारके उपहार दिये। श्रीकैकेयी और सुमित्रा आदि माताओंने भी चारों बहुओंको विविध प्रकारकी मूल्यवान् वस्तुएँ मुखदिखाईमें दीं। परंतु श्रीसीताजीको कुछ अधिक मिला। श्रीकौसल्याने कहा—हे पुत्रि! जिस रामको मैंने बड़ी तपस्यासे, आराधनासे पाया है, बड़ी कठिनाईसे पाया है उस रामको ही मैं तुझे समर्पित कर रही हूँ। मेरे रामरत्नको सँभालकर रखना। श्रीकैकेयीने कहा—हे जनकनन्दिनि! मैं सोचती थी कि मेरे चारों पुत्र बहुत सुन्दर हैं, उनके योग्य बहुएँ मिलेंगी या नहीं? परंतु मेरा सौभाग्य है कि मेरी चारों बहुएँ अतिशय सुन्दर हैं। परंतु जिस प्रकार मेरा राम सर्वाधिक सुन्दर है उसी प्रकार तू भी सर्वाधिक सुन्दरी है। हे मैथिलि! तुम तो मेरे रामजीसे भी अधिक सुन्दर हो। मैंने अपने रामके लिये एक दिव्य भवनका निर्माण कराया है, वह अपूर्व महल है, सब प्रकारकी साज-सज्जासे परिपूर्ण है। हे सीते! मैं तुम्हारी मुखदिखाईमें वह अनोखा कनकभवन तुम्हें समर्पण कर रही हूँ। उसमें दोनों प्रियाप्रियतम विहार करो। श्रीसुमित्राने गद्गद कण्ठसे कहा—हे रामवल्लभे! तुम्हारे-जैसा सौन्दर्यपूर्ण मुख मैंने अद्यावधि नहीं देखा है। इस मुख-सन्दर्शनमें श्रीकौसल्याजीने अपना धर्मात्मा पुत्र तुम्हें दे दिया, श्रीकैकेयीजीने अनोखा कनकभवन दे दिया। हे लाडिलि! मैं तो अकिञ्चन हूँ तुम्हारे मुखके अनुरूप देनेके लिये मेरे पास कुछ नहीं है। सोचती हूँ मैं तुम्हें क्या दूँ? हे पुत्रि! बारह मास गर्भमें रखकर जिन बालकोंको जन्म दिया है, उन्हें मैंने श्रीराम और भरतके चरणोंमें पहले ही समर्पण कर दिया है। परंतु वे सेवक तो श्रीरामके थे लेकिन माँ उनकी मैं ही हूँ। हे जनकनन्दिनि! आज मैं लक्ष्मणपरसे मातृत्वका अधिकार समाप्त करती हूँ। लक्ष्मण-ऐसे सुयोग्य पुत्रको, बलिदानी पुत्रको हे पुत्रि! मैं आज तेरी गोदमें समर्पण कर रही हूँ। इसलिये माता सुमित्राने वनवासके प्रसङ्गमें कहा है—'**तात तुम्हारि मातु बैदेही**'। इस प्रकार आनन्द और उल्लासके वातावरणमें श्रीमद्रामायणी कथा अयोध्याकाण्डमें प्रवेश करना चाहती है।

राम-भरत-मिलन

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

कथा-सुधा-सागर

अयोध्याकाण्ड

मामा युधाजित्के प्रेमाग्रहके कारण, पूज्यपिता श्रीदशरथकी आज्ञासे श्रीभरत अपने नानाका दर्शन करनेके लिये केकय-देश चले गये। जाते समय वे अपने भक्त भ्राता शत्रुघ्नको भी साथमें ले गये—

गच्छता मातुलकुलं भरतेन तदानघः।
शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नो नीतः प्रीतिपुरस्कृतः॥

(२।१।१)

इस श्लोकमें श्रीशत्रुघ्नके लिये तीन विशेषण प्रयुक्त हैं। इन तीनों विशेषणोंमें श्रीशत्रुघ्नका जीवन-दर्शन सन्निहित है। इसको कभी विस्तारसे श्रवण करना चाहिये। '**अनघः**' अर्थात् ईर्ष्यारहित हैं, श्रीशत्रुघ्नने कभी यह नहीं सोचा कि श्रीरामजीकी सेवामें मैं क्यों न रहूँ? '**सोदरस्य लक्ष्मणस्य बलवद् रामाश्रयप्रयुक्तेर्ष्यारहितः नित्यशत्रुघ्नः**'। शत्रुघ्न तो और कोई भी हो सकता है; परंतु ये तो नित्य शत्रुघ्न हैं। राग, द्वेष, काम, मोह आदि नित्य शत्रु हैं। ये नित्य शत्रु इनमें नहीं हैं यह तो सामान्य बात है, श्रीशत्रुघ्न तो उनके निवारक हैं— '**नित्य शत्रवः राग द्वेषादयः तन्निवारकः**'। नित्य शत्रुघ्न हैं अर्थात् जितेन्द्रिय हैं। कौन-सा प्राणी होगा जिसे श्रीरामका स्वरूप आसक्त नहीं करता है— '**कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी**'॥ श्रीरामजी तो चितचोर हैं, मनचोर हैं और नेत्रचोर हैं। परंतु धन्य हैं श्रीशत्रुघ्न, श्रीराममें आसक्त अपनी नेत्रेन्द्रियको, अपने मनको वहाँसे बलात् हटाकर श्रीरामदास भरतकी सेवा करनेके लिये उनके साथ चले गये। इससे उनका नित्य शत्रुघ्नत्व—जितेन्द्रियत्व सिद्ध है— '**दृष्टि चित्तापहारिणि रामे आसक्तं चक्षुरिन्द्रियं निगृह्य भरतेन सह गतत्वात् जितेन्द्रियत्वं प्रसिद्धम्**'। (भूषण-टीका) इस 'दासानुदासत्व' की ही '**नित्य शत्रुघ्न**' संज्ञा है। तीसरा विशेषण भी महत्त्वपूर्ण है— '**प्रीतिपुरस्कृतः**', '**प्रीत्या स्नेहेन पुरस्कृतः युक्तः**'। अर्थात् श्रीशत्रुघ्नजी, श्रीराम, भरत और लक्ष्मण तीनोंके निरतिशय स्नेहसे युक्त हैं। स्मरण रहे, श्रीरामजीके साथ तो और भी लोग रह सकते हैं, परंतु श्रीभरतके साथ तो शत्रुघ्न ही रह सकते हैं। वास्तविक साधुके साथ रहना कठिन कार्य है और जो रह लेता है वह चमक जाता है। यह श्रीशत्रुघ्नका सूत्ररूपमें अत्यन्त संक्षिप्त परिचय है। अयोध्याकाण्डका प्रथम श्लोक श्रीशत्रुघ्नका चरित्र-निरूपण कर रहा है अर्थात् शत्रुघ्नचरित्रसे अयोध्याकाण्डका प्रारम्भ हो रहा है।

अयोध्याकाण्डमें ठाकुरजीके अनेक गुणोंका गुणगान भक्त-महाकविने किया है। पहली बात तो यह है कि प्रथम अध्यायमें भगवान्को भगवदवतार सिद्ध किया गया है— '**जज्ञे विष्णुः सनातनः**' सनातन विष्णु जो साकेताधीश हैं वे ही '**जज्ञे**' अर्थात् '**प्रादुर्बभूव**'। इस धराधामपर लोक-कल्याणके लिये प्रकट हो गये।

कृतज्ञता महान् सद्गुण है, कृतज्ञ व्यक्तिके द्वारा कभी माता-पिता, गुरुका तिरस्कार नहीं होता है। श्रीरामजीकी कृतज्ञताका निरूपण करते हुए महाकवि लिखते हैं—

ठाकुरजी एक भी उपकारसे सदा सन्तुष्ट रहते हैं और सैकड़ों अपकार करनेपर भी उन्हें स्मरण नहीं करते हैं; क्योंकि उनका मन उनके वशमें है।

कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥

(२।१।११)

यदि भूलसे भी कोई उपकार कर देता है तो श्रीरामजी उसे स्मरण करते हैं। किं वा अपने लाभके लिये भी कोई उपकार कर दिया जाय तो उसे भी स्मरण करते हैं। श्रीरामजीकी वाणी बहुत मधुर है, जो बोलते हैं वह मधुर ही बोलते हैं। पूर्वभाषी हैं—'**अतिनीचं प्रत्यपि स्वयमेव पूर्वभाषमाणः**'। अत्यन्त नीच भी कोई हो तो भी श्रीरामजी उससे पहले बोलकर उसका संकोच दूर कर देते हैं। '**बुद्धिमान् मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः**' श्रीरामजी अर्थ-विभागके जानकार हैं—'**विज्ञातार्थविभागवित्**'। प्राप्त अर्थके पाँच भाग करने चाहिये। धर्मके लिये, अर्थके लिये, कीर्तिके लिये, स्वजनोंके लिये और स्वयंके उपभोगके लिये—

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते॥

(श्रीमद्भागवत ८।१९।३७)

जैसे सूर्यभगवान् अपनी किरणोंसे सुशोभित होते हैं उसी प्रकार श्रीरामजी अपने सद्गुणोंसे सुशोभित होते हैं—

गुणैर्विरुरुचे रामो दीप्तः सूर्य इवांशुभिः॥

(२।१।३३)

ऐसे सर्व सद्गुणसम्पन्न लोकपालोंके समान पराक्रमी श्रीरामजीको भूदेवीने अपना स्वामी बनानेकी अभिलाषा की—

तमेवंवृत्तसम्पन्नमप्रधृष्यपराक्रमम्।
लोकनाथोपमं नाथमकामयत मेदिनी॥

(२।१।३४)

भाव यह है कि इस प्रकार सदाचारसम्पन्न, अजेय पराक्रमी और लोकपालोंके समान तेजस्वी श्रीरामजीको पृथ्वीके अधिष्ठातृ देवता और भूमण्डलकी समस्त प्रजाने राजा बनाना चाहा। किं वा सीतानाथ—रमानाथ श्रीरामजीको साक्षात् भूदेवीने अपना स्वामी बनाना चाहा अर्थात् स्वयंवरके द्वारा उनके कण्ठमें माला पहनानेकी इच्छा की—'**रामं मेदिन्यपि नाथमकामयत् स्वयं वरेण कण्ठे मालिका दातुमैच्छत्**' (गोविन्दराजजी)। इन गुणोंसे संयुक्त श्रीरामजीको चक्रवर्तीजीने राज्य देनेका विचार किया। उन्होंने सोचा कि मेरा राम मुझसे बढ़कर लोकप्रिय हो गया है—'**मत्तः प्रियतरो लोके**' तथा गुणोंमें भी मुझसे अधिक हो गया है '**मत्तश्च गुणवत्तरः**'। श्रीदशरथजीने रामराज्यके सम्बन्धमें विचार करनेके लिये एक बहुत बड़ी सभाका आयोजन किया। उसमें अनेक राजा, सामन्त और प्रजाओंके प्रतिनिधियोंको बुलवाया। शीघ्रताके कारण केकयनरेश और राजा जनकको नहीं बुलवाया। उन्होंने सोचा कि ये दोनों सम्बन्धी इस प्रिय समाचारको बादमें सुन लेंगे—

न तु केकयराजानं जनकं वा नराधिपः।
त्वरया चानयामास पश्चात्तौ श्रोष्यतः प्रियम्॥

(२।१।४८)

तिलक टीकाकारने लिखा है '**अत्र भरत-जनकयोरागमने विघ्नभिया देवास्तथा राज्ञे बुद्धिं दत्तवन्तः इति तात्पर्यम्**' अर्थात् श्रीभरत और जनकके आगमनसे वनयात्रामें विघ्न होनेके डरसे देवताओंने, राजाको इन सबको नहीं बुलानेकी बुद्धि दी। सब लोग राजाके द्वारा प्रदत्त अनेक आसनोंपर राजाकी ओर अभिमुख होकर बैठ गये—

अथ राजवितीर्णेषु विविधेष्वासनेषु च।
राजानमेवाभिमुखा निषेदुर्नियता नृपाः॥

(२।१।५०)

सभामें जब सब लोग यथास्थान बैठ गये तब श्रीदशरथने परिषद्को—अनेक प्रकारके राजा आदिके समूहको सम्बोधित करके कहा—

ततः परिषदं सर्वामामन्त्र्य वसुधाधिपः।

हितमुद्धर्षणं चैवमुवाच प्रथितं वचः॥

(२।२।१)

इस श्लोकमें श्रीदशरथजीके वचनोंको तीन विशेषण दिये गये हैं— '**हितम्, उद्धर्षणम्** और **प्रथितम्**'। भाव कि वचन सबका हित करनेवाला— कल्याण करनेवाला और परोपकारी था। 'उद्धर्षण' था अर्थात् सबको आनन्द देनेवाला था। 'प्रथित' था अर्थात् उन वचनोंका अर्थ सुनते ही समझमें आ जाता था और सबके सुनने योग्य था।

श्रीदशरथने कहा—'हे सभासदो! मैंने अपने पूर्वजोंके मार्गका अनुसरण करते हुए यथाशक्ति समस्त प्रजाजनोंकी रक्षा की है। अब मैं अपने जराजीर्ण शरीरको विश्राम देना चाहता हूँ। मेरे ज्येष्ठ पुत्र राम गुणोंमें मुझसे भी श्रेष्ठ हैं, उनके जैसे स्वामीसे त्रैलोक्य सनाथ हो सकता है। यदि मेरा वचन सबको अनुकूल लगे, यदि मैंने सुन्दर विचार किया हो तो आपलोग सहर्ष अनुमति दें अथवा यह बतावें कि मैं किस प्रकारसे कार्य करूँ?'

यदिदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम्।
भवन्तो मेऽनुमन्यन्तां कथं वा करवाण्यहम्॥

(२।२।१५)

श्रीचक्रवर्तीजीके वचनोंका वहाँ विराजमान राजाओंने, ऋषियोंने एवं सभी वर्गके लोगोंने उसी प्रकार अभिनन्दन किया जैसे मयूर केकारव करते हुए पंखको फैलाये हुए वर्षा करनेवाले महामेघका अभिनन्दन करते हैं—

इति ब्रुवन्तं मुदिताः प्रत्यनन्दन् नृपा नृपम्।
वृष्टिमन्तं महामेघं नर्दन्त इव बर्हिणः॥

(२।२।१७)

सभासदोंने कहा—'हे भूपालमौलिमणे! आपने बहुत सुन्दर विचार किया है, हमलोगोंकी भी यही हार्दिक अभिलाषा है। आपने अनेक हजार वर्षतक राज्य किया है, अब आप वृद्ध हो गये हैं—सबके द्वारा प्रणम्य हैं—महान् अनुभवी हैं, एतावता पार्थिव—पृथिवीके पालन करने योग्य श्रीरामचन्द्रको अवश्य ही युवराजपदपर अभिषिक्त करें—'

अनेकवर्षसाहस्रो वृद्धस्त्वमसि पार्थिव।
स रामं युवराजानमभिषिञ्चस्व पार्थिवम्॥

(२।२।२१)

हे नरेन्द्र! महाबलवान्, महाबाहु, पञ्चवीरतासम्पन्न श्रीरामजी शत्रुञ्जय नामक गजराजपर विराजमान होकर यात्रा करते हों और उनके ऊपर श्वेत छत्र लगा हो, इस रूपमें उनकी सवारी श्रीअयोध्याजीके राजपथपर निकले और आबालवृद्ध नर-नारी जयघोष करते हुए उनका मङ्गलमय दर्शन करें, यह हम सब लोगोंकी पवित्र अभिलाषा है—

इच्छामो हि महाबाहुं रघुवीरं महाबलम्।
गजेन महता यान्तं रामं छत्रावृताननम्॥

(२।२।२२)

सभासदोंके वचन राजाको अच्छे तो बहुत लगे परंतु उनके मनकी बात जाननेके लिये पुनः पूछा—'हे राजाओ! हे मन्त्रियो! हे पौरजनो! अपने ज्ञानमें मैंने प्रजापालनमें कभी कमी नहीं की। धर्मपूर्वक पुत्रकी भाँति प्रजाका पालन किया है। फिर आपलोग मेरे रहते हुए श्रीरामका यौवराज्य क्यों चाहते हैं?' महाराजके प्रश्नका सभासदोंने निर्भीकतापूर्वक उत्तर दिया—'हे धर्मात्मानरेश! हम आपकी प्रजा हैं, अनुशासित हैं, आपने हमें सत्य बोलना सिखाया है और निर्भीकताका पाठ पढ़ाया है। उसीके अनुसार हम आपके श्रीचरणोंमें विनम्रतापूर्वक निवेदन करते हैं—हे राजन्! केवल आपसे ही नहीं, इक्ष्वाकु महाराजसे लेकर आजतक आपकी परम्परामें

जितने राजा हुए हैं सब बहुत अच्छे हुए हैं, प्रजापालक हुए हैं, धर्मात्मा हुए हैं परंतु श्रीरामजीसे बढ़कर कोई नहीं हुआ है। सुतराम् हम श्रीरामको राजाके रूपमें देखना चाहते हैं—

इक्ष्वाकुभ्योऽपि सर्वेभ्यो ह्यतिरिक्तो विशाम्पते॥

(२।२।२८)

हे राजेन्द्र! श्रीरामजी सत्यपरायण, सत्यप्रतिज्ञ, सत्यसङ्कल्प, सत्पुरुष हैं। वे मृदुभाषी, मधुभाषी, शिष्टभाषी, अनुशिष्टभाषी, मिष्टभाषी, ऋतभाषी, मितभाषी, हितभाषी, सत्यभाषी, प्रियभाषी, पूर्वभाषी और अपूर्वभाषी हैं। वे बहुश्रुत विद्वानों, ज्ञानवृद्धों, साधनवृद्धों, तपवृद्धों, वयोवृद्धों और ब्राह्मणोंके उपासक हैं—

बहुश्रुतानां वृद्धानां ब्राह्मणानामुपासिता।

(२।२।३३)

हे चक्रवर्ती नरेन्द्र! इस पृथ्वीकी तो बात ही क्या है, आपके पुत्र श्रीराम सम्पूर्ण त्रैलोक्यकी रक्षा कर सकते हैं। उनका क्रोध और उनकी प्रसन्नता कभी व्यर्थ नहीं होती है—

शक्तस्त्रैलोक्यमप्येष भोक्तुं किं नु महीमिमाम्।
नास्य क्रोधः प्रसादश्च निरर्थोऽस्ति कदाचन॥

(२।२।४५)

हे नाथ! हमारी माताएँ, बहनें और पुत्रियाँ जब प्रातः, सायंकाल ईश्वराराधन करती हैं, तब हे स्वामिन्! अञ्चल पसारकर बस, एक प्रार्थना करती हैं कि श्रीरामजी हमारे शीघ्र राजा हों। हे रघुकुलतिलक! अब आप सबकी अभिलाषाओंको पूर्ण करें—

स्त्रियो वृद्धास्तरुण्यश्च सायं प्रातः समाहिताः।
सर्वा देवान् नमस्यन्ति रामस्यार्थे मनस्विनः।
तेषां तद् याचितं देव त्वत्प्रसादात्समृद्ध्यताम्॥

(२।२।५२)

हे प्रजापालक राजन्! जो समस्त शत्रुओंका—ऐहिकामुष्मिक शत्रुओंका विनाश करनेमें सर्वथा समर्थ हैं तथा जो नीलकमलके समान श्याम कान्तिसे सम्पन्न हैं, आपके उन ज्येष्ठ और श्रेष्ठ पुत्र श्रीरामका हम युवराजपदपर दर्शन करना चाहते हैं। इसीमें हम सबका परम कल्याण है—

राममिन्दीवरश्यामं सर्वशत्रुनिबर्हणम्।
पश्यामो यौवराज्यस्थं तव राजोत्तमात्मजम्॥

(२।२।५३)

चक्रवर्तीजीको इनकी बात बहुत अच्छी लगी। उन्होंने इनको आश्वस्त करके सादर विदा कर दिया। तत्पश्चात् राजाने श्रीरामयौवराज्य पदके लिये गुरुदेव श्रीवसिष्ठजीसे भी आज्ञा प्राप्त कर ली। सामग्रियोंके सङ्कलनकी व्यवस्था भी श्रीवसिष्ठकी आज्ञानुसार होने लगी। दशरथजीने सुमन्त्रजीसे श्रीरामको बुलवाया। प्रभुने आज्ञा सुनते ही तत्काल प्रस्थान कर दिया। श्रीदशरथजी अपनी अट्टालिकासे श्रीरामचन्द्रमुख-चन्द्रका दर्शन कर रहे हैं— '**चन्द्रकान्ताननं राममतीव प्रियदर्शनम्**'। परंतु उस अनूपरूपके दर्शनसे मन और नेत्र तृप्त नहीं हो रहे हैं—

'चितवहिं सादर रूप अनूपा।
तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा'॥
न ततर्प समायान्तं पश्यमानो नराधिपः।

(२।३।३०)

श्रीरामजी रथसे उतरकर वद्धाञ्जलि होकर प्रणतभावसे अपने पिताके सन्निकट गये और अपना नाम सुनाते हुए उनके युगल चरणोंमें अभिवादन किया—

स प्राञ्जलिरभिप्रेत्य प्रणतः पितुरन्तिके॥
नाम स्वं श्रावयन् रामो ववन्दे चरणौ पितुः।

(२।३।३२-३३)

श्रीरामजीके इस प्रणामसे संसारको प्रणाम करना सीखना चाहिये। गुरुजनोंके पास जितनी

बार आना-जाना हो हर बार प्रणाम करना चाहिये। श्रीदशरथजीने अपने लाड़ले पुत्रको भुजाओंसे खींचकर हृदयसे लगा लिया। आसनपर बिठाकर श्रीरामका स्वरूप टुकुर-टुकुर निहारने लगे। जैसे अपने ही अलङ्कृत वेषको दर्पणमें प्रतिबिम्बित देखकर व्यक्तिको सुख मिलता है, सन्तोष मिलता है उसी प्रकार अपने प्रिय पुत्रको देखकर राजा परम सन्तुष्ट हुए—

तं पश्यमानो नृपतिस्तुतोष प्रियमात्मजम्॥
अलङ्कृतमिवात्मानमादर्शतलसंस्थितम् ।

(२।३।३७-३८)

अत्यन्त भावपूर्ण श्लोक है। इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामजीके मुख, नासिका, चरण आदि सभी अङ्ग पिताके समान थे।— **'आदर्शतलसंस्थितमित्यनेन रामस्य मुखनासिका-चरणादि सर्वावयवेन पितृसमरूपत्वमावेदितम्'** (श्रीगोविन्दराजजी)। दूसरा भाव यह है कि राजा अपने पुत्रको बार-बार देखते हैं परंतु सन्तृप्त नहीं होते हैं। दर्पणको हम अपना हितैषी मानते हैं, हितैषी वह है जो चाटुकारिता न करे—मिथ्या श्लाघा न करे। गुण और अवगुण सब सच-सच बता दे। दर्पण सब बता देता है कि तुम काले हो, गोरे हो, काने हो, नाक टेढ़ी है, आँखें टेढ़ी हैं, नयन सुन्दर हैं, काजल मुखपर लगा है आदि, और हम उसकी बात मान लेते हैं, तुरंत आँख स्वच्छ कर लेते हैं आदि-आदि। श्रीचक्रवर्तीजी आज अपना परमहितैषी समझकर श्रीरामको अपना सर्वस्व समर्पण कर रहे हैं।

श्रीदशरथजीने श्रीरामसे कहा—'हे मेरे परम वात्सल्यभाजन रघुनन्दन! तुम मेरी ज्येष्ठा रानी कौसल्याके पुत्र हो। तुम ज्येष्ठ भी हो और श्रेष्ठ भी हो, सब प्रकारसे योग्य हो। अतः कल पुष्य-नक्षत्रके योगमें मेरे द्वारा प्रदत्त युवराजपदको स्वीकार करो।'

तस्मात् त्वं पुष्ययोगेन यौवराज्यमवाप्नुहि।

(२।३।४१)

इसके बाद वत्सल पिताने वात्सल्यपात्र पुत्रको मनोहर राजोचित शिक्षा दी। तदनन्तर अपने पिताको अभिवादन करके रथमें बैठकर जनसमूहसे सम्मान प्राप्त करते हुए श्रीरामजी अपने शोभाशाली भवनमें चले गये—

अथाभिवाद्य राजानं रथमारुह्य राघवः।
ययौ स्वं द्युतिमद् वेश्म जनौघैः प्रतिपूजितः॥

(२।३।४८)

श्रीरामभद्रके जानेके पश्चात् श्रीदशरथ सोचने लगे—मैंने राज्यका प्रस्ताव रखा परंतु श्रीरामने कुछ उत्तर नहीं दिया। राजा सोचते हैं कि मेरे रामकी राज्यमें तो रुचि कभी नहीं थी आज भी नहीं है, वे तो अनासक्त हैं। परंतु राज्य तो उन्हें लेना ही है। मैं उन्हें बता दूँ कि मैं राज्य क्यों देना चाहता हूँ, यह निश्चित है कि पितृवत्सल राम मेरी बात सुनकर स्वीकृति अवश्य दे देंगे।

श्रीदशरथजीने अन्तःपुरमें जाकर सुमन्त्रजीको बुलवाया और उन्हें आज्ञा दी—हे सखे! रामजीको एक बार पुनः यहाँ बुलाओ। सुमन्त्रजीने सद्यः आज्ञा पालन किया। श्रीरामजी पिताके महलमें प्रवेश करते ही उन्हें दूरसे देखकर हाथ जोड़कर उनके श्रीचरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणिपात किया—

प्रविशन्नेव च श्रीमान् राघवो भवनं पितुः।
ददर्श पितरं दूरात् प्रणिपत्य कृताञ्जलिः॥

(२।४।१०)

चक्रवर्तीजीने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया और अपने सन्निकट आसनपर बिठाकर उनसे कहने लगे। हे पुरुषोत्तम! मैं तुम्हें युवराज-पद क्यों देना चाहता हूँ इसे सुनो। मैं वृद्ध हो

गया हूँ, सब कुछ कर लिया है, तीनों ऋणोंसे उऋण हो गया हूँ। अतः तुम्हें युवराजपद देना चाहता हूँ। दूसरा कारण यह है—तुम्हें युवराज बनानेके अतिरिक्त मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है, अतः मैं तुमसे जो कुछ कहूँ मेरी उस आज्ञाका तुम्हें पालन करना चाहिये—

न किञ्चिन्मम कर्तव्यं तवान्यत्राभिषेचनात्।
अतो यत्त्वामहं ब्रूयां तन्मे त्वं कर्तुमर्हसि॥

(२।४।१५)

तीसरा कारण यह है—मेरी समस्त प्रकृतियाँ—मन्त्री, मित्र, पुरोहित और रानियाँ सब तुम्हें राजा बनाना चाहती हैं, इसलिये मैं तुम्हें युवराजपदपर अभिषिक्त करूँगा—

अद्य प्रकृतयः सर्वास्त्वामिच्छन्ति नराधिपम्।
अतस्त्वां युवराजानमभिषेक्ष्यामि पुत्रक॥

(२।४।१६)

चौथा कारण यह है और यही प्रधान कारण है कि आजकल मुझे अशुभ स्वप्न दीखते हैं, हे रामभद्र! नक्षत्रविद्याके ज्ञाता कहते हैं कि मेरे जन्म-नक्षत्रको सूर्य, मङ्गल और राहु नामक दारुण ग्रहोंने आक्रान्त कर लिया है—

अवष्टब्धं च मे राम नक्षत्रं दारुणग्रहैः।
आवेदयन्ति दैवज्ञाः सूर्याङ्गारक राहुभिः॥

(२।४।१८)

इस प्रकार मेरी मृत्यु भी सम्भाव्य है, इसलिये हे राघव! कल पुष्यनक्षत्रमें तुम अपना अभिषेक करा लो। मेरा मन इस कार्यमें बहुत शीघ्रता करनेको कहता है, अतः कल मैं तुम्हारा अभिषेक निश्चित कर दूँगा—

तत्र पुष्येऽभिषिञ्चस्व मनस्त्वरयतीव माम्।
श्वस्त्वाहमभिषेक्ष्यामि यौवराज्ये परंतप॥

(२।४।२२)

हे रघुनन्दन! तुम सीताके सहित उपवास करो, कुशकी शय्यापर शयन करो और सावधान होकर भगवान्‌की उपासना करो—

तस्मात् त्वयाद्यप्रभृति निशेयं नियतात्मना।
सह वध्वोपवस्तव्या दर्भप्रस्तरशायिना॥

(२।४।२३)

श्रीरामजी पिताको प्रणाम करके अपने भवनमें आ गये। श्रीसीताजीको पिताजीकी आज्ञा सुनाना था। उन्हें वहाँ न पाकर तत्काल वे माताजीके अन्तःपुरमें चले गये। वहाँपर श्रीरामजीने जाकर देखा कि माताजी देवाराधन कर रही हैं—आँख बन्द करके भगवान्‌का ध्यान कर रही हैं। श्रीसुमित्रा, सीता और लक्ष्मण उनकी सेवामें खड़े हैं—

तस्मिन् कालेऽपि कौसल्या तस्थावामीलितेक्षणा।
सुमित्रयान्वास्यमाना सीतया लक्ष्मणेन च॥

(२।४।३२)

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामजीने माताके श्रीचरणोंमें अभिवादन किया और अत्यन्त विनम्र शब्दोंमें यौवराज्यकी सूचना दी तथा यह भी निवेदन किया कि पिताजीकी आज्ञानुसार सीताजीको भी मेरे साथ उपवास एवं अन्य व्रत, नियम करने होंगे—

सीतयाप्युपवस्तव्या रजनीयं मया सह।

(२।४।३६)

माताने मुक्तकण्ठसे मङ्गलाशीष दिया और सीताजीको भी नियमके लिये आज्ञा दे दी।

श्रीरामने विनीतभावसे वद्धाञ्जलि लक्ष्मणको देखकर मुसकराते हुए—अपने अधरोष्ठोंपर किञ्चिद् हास्यच्छटा बिखेरते हुए कहा। हे सुमित्रानन्द-संवर्द्धन! तुम मेरे साथ रहकर इस भूमण्डलके राज्यका तथा मेरी अन्तरात्मा—मनका भी पालन करो। तुम तो मेरे दूसरे प्राण हो। यह राज्य-लक्ष्मी तुम्हींको प्राप्त हो रही है। हे वत्स लक्ष्मण!

तुम राज्यके उत्तम फलोंको—अत्यन्त दान देनेसे समुत्पन्न यश आदिको और अभिलषित पदार्थोंको प्राप्त करो। हे भ्रातः! तुम्हारे लिये ही मैं इस जीवन और राज्यकी अभिलाषा करता हूँ—

प्राञ्जलिं प्रह्वमासीनमभिवीक्ष्य स्मयन्निव॥
लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुन्धराम्।
द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता॥
सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च।
जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये॥

(२।४।४२—४४)

श्रीराघवेन्द्रके ये वचन श्रीलक्ष्मणके प्रति अतिशय स्नेहके द्योतक हैं। अनुजके प्रति किस प्रकारका हार्दिक व्यवहार होना चाहिये इसका आदर्श है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृतिमें श्रीरामलक्ष्मणकी जोड़ी आज भी प्राणकी तरह विराजमान है। श्रीरामलक्ष्मणका तो अनुपम प्रेम है— **'उपमा राम लखन की प्रीतिहिं क्यों दीजे क्षीरे नीरे'**।

श्रीदशरथजीकी प्रार्थनासे तपोधन महात्मा श्रीवसिष्ठजीने श्रीरामभवनमें स्वयं पधार कर श्रीराम-सीताको नियम-व्रतकी दीक्षा दी। श्रीगुरुदेवके जानेके पश्चात् नियत-मानस श्रीरामजी श्रीसीताजीके साथ श्रीनारायणकी उपासना करने लगे— **'नारायणमुपागमत्'**।

समस्त अयोध्यामें श्रीरामजीके अभिषेकका समाचार परिव्याप्त हो गया। आज अयोध्याके लोग महलों और घरोंमें नहीं थे। सड़कोंपर आ गये थे। श्रीअयोध्याके राजपथपर आनन्द-समुद्र उद्वेलित हो रहा था। जनसमूह एक-दूसरेसे टकरा रहे थे, वही आनन्द-समुद्रकी चञ्चल लहरें थीं। उनके मिलनेपर जो हर्षध्वनि हो रही थी—आनन्दोद्रेक हो रहा था वही समुद्रकी गम्भीर गर्जना थी—

जनवृन्दोर्मिसंघर्षहर्षस्वनवृतस्तदा।
बभूव राजमार्गस्य सागरस्येव निःस्वनः॥

(२।५।१७)

आबालवृद्ध अयोध्या-निलय—अयोध्यावासी-जनोंके मनमें इस समय सोनेकी इच्छा नहीं थी, खानेकी इच्छा नहीं थी, पीनेकी इच्छा नहीं थी, व्यवहारकी इच्छा नहीं थी, पढ़ने और पढ़ानेकी इच्छा नहीं थी और बात करनेकी भी इच्छा नहीं थी, उनके मनमें तो केवल दो अभिलाषाएँ थीं, वह मङ्गलमय सुप्रभात—सूर्योदय कब होगा और श्रीराम-राज्याभिषेक किस मुहूर्तमें होगा—

तदा ह्ययोध्यानिलयः सस्त्रीबालाकुलो जनः।
रामाभिषेकमाकाङ्क्षन्नाकाङ्क्षन्नुदयं रवेः॥

(२।५।१९)

नन्हे-नन्हे बालक आज क्रीडनकों—खिलौनोंकी बात नहीं कर रहे हैं। वे आपसमें कह रहे हैं, मेरे रामजी कल राजा होंगे। आनन्द आ जायगा—

बाला अपि क्रीडमाना गृहद्वारेषु सङ्घशः।
रामाभिषवसंयुक्ताश्चक्रुरेव कथा मिथः॥

(२।६।१६)

अयोध्यावासियोंने समस्त नगरको सजा दिया। पुरवासियोंने सोचा कि अभिषेक होनेके पश्चात् जब श्रीरामजीकी शोभायात्रा निकलेगी—सवारी निकलेगी उस समय निश्चित ही आनन्दोत्साहमें विलम्ब हो जायगा, सन्ध्या हो जायगी, थोड़ा अन्धकार हो जायगा। उस समय श्रीरामजीका मुखदर्शन सबको हो—शत्रुञ्जय गजारूढ श्रीरामकी बाँकी-झाँकी सबको हो, इसलिये राजपथके दोनों ओर दीपस्तम्भ खड़े कर दिये—

प्रकाशकरणार्थं च निशागमनशङ्कया।
दीपवृक्षांस्तथा चक्रुरनुरथ्यासु सर्वशः॥

(२।६।१८)

समस्त पुरवासी आनन्द-विभोर होकर अपने

सम्मान्य नरेन्द्रके प्रति कृतज्ञता अभिव्यक्त कर रहे हैं—

चिरं जीवतु धर्मात्मा राजा दशरथोऽनघः।
यत्प्रसादेनाभिषिक्तं रामं द्रक्ष्यामहे वयम्॥

(२।६।२४)

हाट बाट घर गलीं अथाईं। कहहिं परसपर लोग लोगाईं॥
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा॥
कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता॥
सकल कहहिं कब होइहि काली। ....॥

माता कैकेयीकी दासीका नाम मन्थरा था, वह सदा उनके साथ ही रहती थी, उनके पिताके यहाँसे आयी थी—

ज्ञातिदासी यतो जाता कैकेय्या तु सहोषिता।
प्रासादं चन्द्रसंकाशमारुरोह यदृच्छया॥

(२।७।१)

पद्मपुराणकी कथा है कि देवताओंने सोचा कि श्रीसीताजीके लंकामें गये बिना रावण-वध असम्भव है, इसलिये देवताओंने रावण-वध सम्पन्न करानेके लिये एक अप्सराको भेजा। वही अप्सरा कुब्जा मन्थरा है। उसीको केकय नरेशने अपनी पुत्री कैकेयीकी दासीत्वके लिये- दिया था—

मन्थरानामकार्यार्थमप्सरा प्रेषिता सुरैः।
दासी काचन कैकेय्यै दत्ता केकय भूभृता॥

(पद्मपुराण)

वह मन्थरा ज्ञातिदासी थी—अत्यन्त बुद्धिमती थी— **'ज्ञातिर्ज्ञानं तद्युक्ता दासी अतिज्ञानवत्यनुचरी किञ्च ज्ञातिः क्षत्रियजातिः सैव दासी अतः सहोषिता मन्थरा'** (रामायण-शिरोमणि-टीका) ज्ञाति दासी थी—क्षत्रिय जातिकी थी, अतः वह कैकेयीके साथ रहती थी। किं वा वह अज्ञातस्थलपर पैदा हुई थी, उसके माता-पिताका नाम भी नहीं ज्ञात था— **'यतो यत्र कुत्रचित् जाता अविज्ञातवेश्म-मातापितृकेत्यर्थः'** (तिलकटीका)। अभिषेकके एक दिन पूर्व मन्थरा यदृच्छया—अर्थात् किसीकी प्रेरणासे नहीं अपितु अपनी इच्छासे अथवा अदृष्टकी इच्छासे अथवा भगवान्‌की इच्छासे मन्थरा कैकेयीके महलकी छतपर जा चढ़ी। वहाँसे उसने देखा—श्रीअयोध्याजीके राजपथपर चन्दनमिश्रित जल और गुलाब-जल आदि सुगन्धित द्रव पदार्थका छिड़काव हो रहा है। जहाँ-तहाँ कमलके पुष्पकी पंखुड़ियाँ बिखेर दी गयी हैं और सब ओर नयी-नयी पताकाएँ फहर-फहर फहरा रही हैं। श्रीकौसल्याजीके महलके कोठेपर पीले रंगकी रेशमी साड़ी पहने सजी हुई श्रीरामधात्रीको प्रसन्न-मुद्रामें देखकर मन्थराने पूछा—

सा हर्षोत्फुल्लनयनां पाण्डुरक्षौमवासिनीम्।
अविदूरे स्थितां दृष्ट्वा धात्रीं पप्रच्छ मन्थरा॥

(२।७।७)

आज रामकी माता इतनी प्रसन्न क्यों हैं? लोगोंको धन क्यों बाँट रही हैं? **'राममाता धनं किं नु जनेभ्यः सम्प्रयच्छति?'** श्रीरामकी धात्रीने बड़ी प्रसन्नतासे कहा—कुब्जे! तुम्हें ज्ञात नहीं है, कल राजेन्द्र श्रीदशरथजी पुष्यनक्षत्रके योगमें श्रीरामचन्द्रको युवराजपदपर अभिषिक्त करेंगे?

श्वः पुष्येण जितक्रोधं यौवराज्येन चानघम्।
राजा दशरथो राममभिषेक्ता हि राघवम्॥

(२।७।११)

हे कुब्जे! श्रीरामजी तो वास्तवमें इस पदके योग्य हैं, वे अनघ हैं—अपने आश्रितोंके दोषोंको नष्ट कर देते हैं। अथवा श्रीरामजीमें अपने तीनों

भाइयोंके लिये ईर्ष्यारूप दोष, वैषम्यरूप दोष नहीं है।

अब तो जब मन्थराने सुना तो मनमें हाय-हाय करने लगी। किसी प्रकार गिरती-पड़ती श्रीकैकेयीके पास पहुँची और जाते ही उसने कहा—'अरी मूर्खे! अरी कार्याकार्यविवेकशून्ये! तेरे सोनेके दिन अब समाप्त हो गये। तुझे ज्ञात नहीं है, तेरे ऊपर विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा है। तुझे अपनी दुरवस्थाका ज्ञान नहीं है। हाय-हाय! तेरे चारों ओर भय-ही-भय है—'

उत्तिष्ठ मूढे किं शेषे भयं त्वामभिवर्तते।
उपप्लुतमघौघेन नात्मानमवबुध्यसे॥

(२।७।१४)

हे देवि! कल राजा दशरथ कौसल्याके पुत्र रामको यौवराज्य दे रहे हैं—

रामं दशरथो राजा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति॥

(२।७।२०)

श्रीकैकेयीजीने जब श्रीरामजीके यौवराज्यका समाचार सुना तब उनका हृदय आनन्दोद्रेकसे समुच्छलित हो गया। उन्होंने सद्यः अपने कण्ठसे महामूल्यवान् नौलखाहार निकालकर पुरस्कारके रूपमें मन्थराको दे दिया और कहा—'हे मन्थरे! तूने बड़ा प्यारा संवाद सुनाया है। तू बोल, आज मैं तेरा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ? राम और भरत दोनों मेरे प्यारे पुत्र हैं, दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। मेरे प्राणप्रिय महाराज श्रीरामजीका अभिषेक तो मेरा ही प्रिय करनेके लिये कर रहे हैं—'

इदं तु मन्थरे मह्यमाख्यातं परमं प्रियम्।
एतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूयः करोमि ते॥
रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।

(२।७।३४-३५)

कैकेयीने कहा—मन्थरे! तू नहीं जानती, मेरा राम तो मुझे अपनी उत्पादयित्री माता कौसल्यासे भी अधिक मानता है। मैं तो ब्रह्मासे याचना करती हूँ—हे विधातः! आगामी जन्ममें श्रीराम-सीता ही मेरे पुत्र-पुत्रवधू हों—

राम तिलकु जौं साँचेहुँ काली।
देउँ मागु मन भावत आली॥
कौसल्या सम सब महतारी।
रामहि सहज सुभायँ पिआरी॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी।
मैं करि प्रीति परीछा देखी॥
जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू।
होहुँ राम सिय पूत पुतोहू॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें।
तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरें॥

मन्थराने कैकेयीके द्वारा दिये हुए उपहारको फेंक दिया और बोली कि अरी कार्याकार्य विवेक शून्ये! तुम तो निपट अभागी हो। उसने पूछा यदि मैं अभागी हूँ तो भाग्यशालिनी कौन है? मन्थराने उत्तर दिया—सौभाग्यवती तो कौसल्या है, जिसका पुत्र कल राजा होगा—

सुभगा किल कौसल्या यस्याः पुत्रोऽभिषेक्ष्यते।
यौवराज्येन महता श्वः पुष्येण द्विजोत्तमैः॥

(२।८।९)

मन्थराने कहा—रानी! अब इस महलको आँख भरकर देख लो, अब इसमें रहने नहीं पाओगी। अब तो तुम्हें दासियोंके घरमें ही रहना पड़ेगा और अपने पुत्रके सहित नीच सेवा करनी पड़ेगी—

एवं च त्वं सहास्माभिस्तस्याः प्रेष्या भविष्यसि।
पुत्रश्च तव रामस्य प्रेष्यत्वं हि गमिष्यति॥

(२।८।११)

जौं सुत सहित करहु सेवकाई।
तौ घर रहहु न आन उपाई॥

इतना सुननेके बाद भी श्रीकैकेयीजी श्रीरघुनन्दन रामकी प्रशस्ति ही करती रहीं—

रामस्यैव गुणान् देवी कैकेयी प्रशशंस ह॥

(२।८।१३)

अब तो मन्थराने ऐसा अस्त्र छोड़ा कि कैकेयीजी परिवर्तित हो गयीं। मन्थराने कहा—हे केकयनन्दिनि! रामके राजा होनेके बाद रामका पुत्र राजा होगा। भरतको राजाके साथ बैठनेका भी भाग्य नहीं मिलेगा। वे तो राज्य-परम्परासे ही अलग हो जायँगे—

भविता राघवो राजा राघवस्य च यः सुतः।
राजवंशात्तु भरतः कैकेयि परिहास्यते॥

(२।८।२२)

हे कैकेयि! निष्कण्टक राज्य मिलनेके बाद राम कण्टकस्वरूप भरतको देशनिकाला दे देंगे, अथवा परलोकमें पहुँचा देंगे—वध करवा देंगे—

ध्रुवं तु भरतं रामः प्राप्य राज्यमकण्टकम्।
देशान्तरं नाययिता लोकान्तरमथापि वा॥

(२।८।२७)

अब तो मन्थराके मिथ्या वचनका—कपट-वचनका जादू काम कर गया, उसकी दुष्ट नीति सफल हो गयी, कैकेयीका मुख लाल हो गया; वह लम्बी-लम्बी श्वास लेने लगी। वह मन्थरासे बोली—'मन्थरे! मैं रामका राज्य नहीं होने दूँगी, उनको वन भेजूँगी और उसी मुहूर्तमें अपने भरतको राजा बनाऊँगी—'

एवमुक्ता तु कैकेयी क्रोधेन ज्वलितानना।
दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य मन्थरामिदमब्रवीत्॥
अद्य राममितः क्षिप्रं वनं प्रस्थापयाम्यहम्।
यौवराज्येन भरतं क्षिप्रमद्याभिषेचये॥

(२।९।१-२)

कैकेयीने पुनः कहा—हे मन्थरे! तू सोचकर अब यह बता कि किस उपायसे भरत राजा होंगे? यह सुनकर प्रसन्न होकर मन्थरा बोली—हे रानी! आपने ही हमें एक कथा सुनायी थी, वह हमें स्मरण है। देवासुर-संग्राममें आपने अपने पतिके प्राणोंकी रक्षा की थी। हे शुभदर्शने! इससे सन्तुष्ट होकर राजाने आपको दो वरदान माँगनेके लिये कहा था। हे देवि! उस समय आपने कहा था—हे प्राणनाथ! जब मेरी इच्छा होगी तब मैं इन वरोंको माँग लूँगी—

तुष्टेन तेन दत्तौ ते द्वौ वरौ शुभदर्शने।
स त्वयोक्तः पतिर्देवि यदेच्छेयं तदा वरम्॥
गृह्णीयां तु तदा भर्तस्तथेत्युक्तं महात्मना।

(२।९।१७-१८)

हे रानी! इस समय उन्हीं वरोंके प्रभावसे आप रामके अभिषेकके आयोजनको पलट दो। एक वरसे अपने पुत्र भरतका राज्य माँग लो और दूसरे वरसे रामका चौदह वर्षका वनवास माँग लो—

रामाभिषेकसम्भारान्निगृह्य विनिवर्तय॥
तौ च याचस्व भर्तारं भरतस्याभिषेचनम्।
प्रव्राजनं च रामस्य वर्षाणि च चतुर्दश॥

(२।९।१९-२०)

मन्थराने कहा—'हे केकयनन्दिनि! अब तुम क्रोधागारमें—कोपभवनमें चली जाओ। क्रोधका प्रचण्ड अभिनय करो। राजाओंके यहाँ जैसे पूजाका घर होता था, मिलनेका घर होता था उसी प्रकार कोपभवन भी होता था।' कुबरीने कहा—'हे रानी! मैला वस्त्र पहन लो और बिना विस्तरके भूमिपर ही सो जाओ—'**भूमौ मलिन-वासिनी**'। जब तुम्हारे पति दशरथजी आवें तो उनकी ओर न देखना और न उनसे कुछ बोलना। उनको देखते ही लम्बी-लम्बी श्वास लेकर, शोक-मग्न होकर खूब रोना—त्रिया-चरित्र करना और पृथ्वीपर लोटने लगना—'

मा स्मैनं प्रत्युदीक्षेथा मा चैनमभिभाषथाः।

रुदन्ती पार्थिवं दृष्ट्वा जगत्यां शोकलालसा॥

(२।९।२३)

हे रानी! राजा तो तुमको प्राणोंसे अधिक प्यार करते हैं, तुम्हारे ऊपर जान छिड़कते हैं। अत: वे तुम्हें मनानेके लिये अपना प्राण भी न्योछावर कर सकते हैं—

न त्वां क्रोधयितुं शक्तो न क्रुद्धां प्रत्युदीक्षितुम्।
तव प्रियार्थं राजा तु प्राणानपि परित्यजेत्॥

(२।९।२५)

लेकिन सावधान! वरदान तभी माँगना जब राजा अपने प्यारे पुत्र रामकी कसम खा लें, नहीं तो सब काम नष्ट हो जायगा—

भूपति राम सपथ जब करई।
तब मागेहु जेहिं बचनु न टरई॥
एवं प्रव्राजितश्चैव रामोऽरामो भविष्यति।
भरतश्च गतामित्रस्तव राजा भविष्यति॥

(२।९।३३)

कुबरी कहती है—इस प्रकार वनवासके वरदानसे राम राम नहीं रहेंगे, अराम हो जायँगे। जो अच्छा लगे उसे 'राम' कहते हैं। जो शत्रुको भी अच्छा लगे, अपरिचितको भी अच्छा लगे, जड़को भी अच्छा लगे और पशु-पक्षीको भी अच्छा लगे उसे राम कहते हैं। '**ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी**'। अर्थात् 'राम' का अर्थ है 'प्रिय' और 'अराम' का अर्थ है 'अप्रिय'। जब लोगोंको ज्ञात हो जायगा कि ये राजा नहीं होंगे तब वे अराम—अप्रिय हो जायँगे। किं वा राम 'राम' हो जायँगे अर्थात् वे अकेले रह जायँगे। उनका कोई साथी नहीं रहेगा— '**अरामो भविष्यति इदानीमेव प्रकृतिस्नेहपात्रं न भविष्यतीत्यर्थः। यद् वा रामो भविष्यति एक एव भविष्यति**'। (श्रीगोविन्दराजजी) और तुम्हारे लाड़ले भरत शत्रुरहित राजा हो जायँगे।

अब तो कैकेयीकी दृष्टिमें मन्थराके समान कोई हितैषी नहीं था। वह मुक्तकण्ठसे मन्थराकी सुप्रशस्ति करने लगी। उसकी हर वस्तु उसे अच्छी लगने लगी। उसके अङ्ग-अङ्ग उसे सुन्दर लगने लगे। उसने उसके सौन्दर्यकी भी अतिशय प्रशंसा की है। वह तो उसके कूबड़की भी प्रशंसा करने लगी। कैकेयीने कहा—'हे मन्थरे! यह तेरा कूबड़ नहीं है, यह तो अनेक प्रकारकी मायाका समूह है। इसमें तेरी मतियाँ, राजनीति तथा नाना प्रकारकी माया—शाम्बरीमाया आदि निवास करती हैं—'

मतयः क्षत्रविद्याश्च मायाश्चात्र वसन्ति ते।

(२।९।४७)

'**मतयः**' बहुवचन कहनेका भाव '**मतिस्मृति-बुद्धयः**' अर्थात् मतिशब्दसे स्मृति, मति, बुद्धि और प्रज्ञा सबका ग्रहण है। अतीतकी बातमें जो बुद्धिका प्रयोग है उसे स्मृति कहते हैं, भविष्यकी बातमें बुद्धिके प्रयोगको मति कहते हैं, तात्कालिक प्रयोगको बुद्धि कहते हैं और त्रैकालिकी बुद्धिको प्रज्ञा कहते हैं—

स्मृतिर्व्यतीतविषयामतिरागामिगोचरा।
बुद्धिस्तात्कालिकी ज्ञेया प्रज्ञा त्रैकालिकी मता॥

कैकेयी कहती हैं—'हे सुन्दरि! जब राम वन चले जायँगे और भरत राजा हो जायँगे तब मैं तेरे इस सुन्दर कूबड़की पूजा करूँगी। इसपर कपूर, केसर, कस्तूरी आदि अष्टगन्धसे सुगन्धित चन्दन लगाऊँगी और अग्निपरितप्त विशुद्ध स्वर्णकी माला धारण कराऊँगी।'

अभिषिक्ते च भरते राघवे च वनं गते।
जात्येन च सुवर्णेन सुनिष्टप्तेन सुन्दरि॥
लब्धार्था च प्रतीता च लेपयिष्यामि ते स्थगु।

(२।९।४८-४९)

इसके अनन्तर कुबरीने रानीको फिर समझाया, जिससे वह पतिके स्नेहिल भावनाके प्रवाहमें बह न जाय। उसने अतिशय कोमलको अतिशय

कठोर बना दिया। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने इस प्रसङ्गमें एक पंक्तिका उल्लेख किया है, जो मननीय है, उसपर विचार करना चाहिये—

को न कुसंगति पाइ नसाई।
रहइ न नीच मतें चतुराई॥

(२।२४)

कितनी शीघ्रतासे संक्रामक रोगकी तरह कुसंगका प्रभाव होता है। अभी-अभी तो वह श्रीरामको प्राणसे भी अधिक प्यार करती थी। '**प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें**' कहती थी, परंतु कठिन कुसंगके संक्रामक रोगसे—छूतके रोगसे वह सबसे विपरीत हो गयी। उसकी दृष्टिमें श्रीदशरथजी, श्रीरामजी, श्रीवसिष्ठजी, श्रीसुमन्त्रजी आदि किसीका महत्त्व नहीं रहा। फिर श्रीकौसल्याजी आदि तो सपत्नी ही हैं। इस प्रसङ्गसे शिक्षा मिलती है कि '**दुःसङ्गः सर्वथा त्याज्यः**'।

पापिनी कुबरीने कैकेयीको इतना उलटा पाठ पढ़ाया कि वह कोपभवनमें जाकर विषाक्त बाणसे विद्ध किन्नरीके समान भूतलपर लोटने लगी। आस-पास उसके समस्त वस्त्राभूषण बिखरे पड़े थे।

इधर श्रीदशरथजी मन्त्री आदिको श्रीरामके राज्याभिषेक-सम्बन्धी समस्त कार्योंकी आज्ञा देकर सबको यथासमय उपस्थित होनेके लिये कहकर रनिवासमें गये। चक्रवर्तीजीने सोचा—मैं भी किसी विशेष व्यक्तिको यह प्रिय समाचार स्वयं सुनाऊँ—

प्रियार्हां प्रियमाख्यातुं विवेशान्तःपुरं वशी।

(२।१०।११)

इस प्रसङ्गको ध्यानसे सुनें, राजा क्यों आये? '**प्रियार्हां प्रियमाख्यातुम्**' अर्थात् श्रीरामकी वात्सल्यमयी माता कैकेयीको श्रीरामका अभिषेक-सम्बन्धी प्रिय समाचार सुनाने आये। श्रीदशरथको यहाँ '**वशी**' शब्दसे अभिहित किया गया है। भाव कि यहाँपर कामकी गन्धबिन्दु भी नहीं ज्ञात होती है। आगे भी इसी भावको व्यक्त करेंगे—

अपापः पापसङ्कल्पां ददर्श धरणीतले।

(२।१०।२४)

जो सब प्रकारके पापसे रहित हैं उन दशरथजीने उस रानीको देखा जो पापसङ्कल्पा थी—श्रीरामवनगमनरूप पापकर्मका जिसने निश्चय कर लिया है। श्रीतुलसीदासजीने भी इस प्रसङ्गमें लिखा है—

साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकई गेहँ।
गवनु निठुरता निकट किय जनु धरि देह सनेहँ॥

इस दोहामें '**जनु धरि देह सनेह**' में उत्प्रेक्षालङ्कारसे जो कुछ कहा गया है उसका विशेष मनन करना चाहिये।

चक्रवर्तीजी प्रतीहारीसे सब समाचार सुनकर क्रोधागार—कोपभवनमें जाकर कैकेयीको विचित्र स्थितिमें देखकर कहते हैं—हे देवि! तुम्हारा किसने अपराध किया है? अथवा तुम्हें क्या रोग है? यहाँ बहुत अच्छे वैद्य हैं; अतः अपना रोग बताइये '**व्याधिमाचक्ष्व भामिनि**' हे भामिनि! अपने क्रोधका कारण बताओ? कैकेयीने कहा—यदि आप मेरी कामना पूर्ण करना चाहते हैं तो पहले प्रतिज्ञा करें, तदनन्तर मैं अपना अभिप्राय कहूँगी—

प्रतिज्ञां प्रतिजानीष्व यदि त्वं कर्तुमिच्छसि।
अथ ते व्याहरिष्यामि यथाभिप्रार्थितं मया॥

(२।११।३)

सुनकर श्रीचक्रवर्तीजीने कहा—अयि सौभाग्यगर्विते! क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है कि नर-शार्दूल रामके अतिरिक्त दूसरा कोई भी मुझे तुमसे अधिक प्यारा नहीं है—

अवलिप्ते न जानासि त्वत्तः प्रियतरो मम।

मनुजो मनुजव्याघ्राद् रामादन्यो न विद्यते॥

(२।११।५)

मैं उन रामकी शपथ करके कहता हूँ कि तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी। हे केकयनन्दिनि! जिन्हें दो घड़ी देखे बिना मैं जीवित नहीं रह सकता, उन अपने जीवनाधार जीवनसर्वस्व श्रीरामकी शपथ करके कहता हूँ कि तुम जो कहोगी उसे पूर्ण करूँगा—

यं मुहूर्तमपश्यंस्तु न जीवे तमहं ध्रुवम्।
तेन रामेण कैकेयि शपे ते वचनक्रियाम्॥

(२।११।७)

श्रीरामकी शपथ सुनकर कैकेयी मन-ही-मन प्रसन्न हो गयी और उसने अपने दोनों वरदान माँग लिये। कैकेयीने कहा—'हे महीपते! श्रीरामजीके लिये जो अभिषेक-सामग्री प्रस्तुत की गयी है—सजायी गयी है, उसी अभिषेकसे—अभिषेक-सामग्रीसे मेरे पुत्र भरतका अभिषेक किया जाय—'

अभिषेकसमारम्भो राघवस्योपकल्पितः॥
अनेनैवाभिषेकेण भरतो मेऽभिषिच्यताम्।

(२।११।२४-२५)

हे राजन्! परमधीर गम्भीर श्रीरामजी चतुर्दश वर्षपर्यन्त जंगलमें रहें, अयोध्याके पासके जंगलमें नहीं अपितु सीधे दक्षिण चले जायँ और दण्डकारण्यमें रहें। राजकुमारके वेषमें नहीं अपितु तपस्वी-वेषमें वल्कल तथा मृगचर्म धारण करें—

नव पञ्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः॥
चीराजिनधरो धीरो रामो भवतु तापसः।

(२।११।२६-२७)

हे महाराज! पहलेके दिये हुए दो वरोंकी भाँति नहीं, मेरी यह कामना है कि श्रीरामजी आज ही वन जायँ— '**अद्य चैव हि पश्येयं प्रयान्तं राघवं वने**'—

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका॥
मागउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥
तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड २९)

कैकेयीके दारुण वचन सुनकर श्रीदशरथजी महान् चिन्तासागरमें निमग्न हो गये— '**माथें हाथ मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन॥**' जैसे किसी व्याघ्रीको देखकर मृग भयभीत, व्यथित—पीड़ित एवं व्याकुल हो जाता है। उसी प्रकार श्रीदशरथकी स्थिति हो गयी—

व्यथितो विक्लवश्चैव व्याघ्रीं दृष्ट्वा यथा मृगः।

(२।१२।४)

राजाने कहा—'हे क्रूरहृदये! हे दुष्टव्यापारे! हे पापमते! तू इस कुलका विनाश करनेवाली डाइन है। बोल, मेरे निष्पाप रामने तेरा क्या अपराध किया है? हे कैकेयि! इस संसारका सूर्यके बिना टिकना सम्भव हो सकता है, पानीके बिना धान पैदा हो सकता है, परंतु अपने प्राणाधार रघुनन्दनके बिना मैं नहीं जी सकता हूँ। हे पापनिश्चये! तेरे चरणोंपर मैं अपना सिर रख रहा हूँ, तू अपने पापपूर्ण निश्चयका त्याग कर दे—'

तिष्ठेल्लोको विना सूर्यं सस्यं वा सलिलं विना॥
न तु रामं विना देहे तिष्ठेत्तु मम जीवितम्।
तदलं त्यज्यतामेष निश्चयः पापनिश्चये॥
अपि ते चरणौ मूर्ध्ना स्पृशाम्येष प्रसीद मे।

(२।१२।१३—१५)

संसारमें प्रायः घरकी निन्दा स्त्रियोंसे और उपजीवी नौकरोंसे ही फैलती है। यही दो वर्ग

झूठी-सच्ची निन्दा करते हैं। हे कैकेयि! मेरे यहाँ हजारों स्त्रियाँ और भृत्य सेवामें लगे हैं, परंतु आजतक किसीने श्रीरामका परिवाद या अपवाद नहीं किया है—

बहूनां स्त्रीसहस्त्राणां बहूनां चोपजीविनाम्।
परिवादोऽपवादो वा राघवे नोपपद्यते॥

(२। १२। २७)

आज स्नेहिल भावावेशमें श्रीदशरथजीके द्वारा श्रीरामजीके गुणोंका जो वर्णन हुआ है वह अभूतपूर्व है। इन्हीं गुणोंमें श्रीरामका रामत्व सन्निहित है। श्रीदशरथ कहते हैं—मेरे श्रीराम सत्यसे—परमार्थसे—प्राणीमात्रके हितचिन्तनके द्वारा स्वर्गसे लेकर वैकुण्ठपर्यन्त लोकोंको स्वाधीन कर लेते हैं। दीनोंको धनप्रदानके द्वारा वशमें कर लेते हैं। गुरुओंको अपनी सेवावृत्तिद्वारा हितोपदेश करनेके लिये विवश कर देते हैं। श्रीरामजी शत्रुओंको युद्धमें वश करते हैं, भाव कि कपटसे, छलसे, प्रवञ्चना-प्रपञ्चसे वशमें नहीं करते हैं। धनुषसे वशमें करते हैं का भाव यह है कि उन्हें बाण-प्रयोगकी आवश्यकता ही नहीं होती है, मात्र धनुष-प्रदर्शनसे ही किं वा टङ्कारमात्रसे ही वशमें कर लेते हैं—

सत्येन लोकाञ्जयति द्विजान् दानेन राघवः।
गुरूञ्छुश्रूषया वीरो धनुषा युधि शात्रवान्॥

(२। १२। २९)

यही श्रीरामजीका जीवनदर्शन है। ये गुण श्रीरामराज्यकी आधारभित्ति हैं। इनका गम्भीरतासे मनन आवश्यक है। इस दुःखके समय भी श्रीदशरथके मुखसे निकले हुए इन वचनोंमें श्रीरामजीके सब प्रकारके जीवनकी अनोखी झाँकी है, उसके दर्शन करनेका सत्प्रयास करना चाहिये। परंतु महाराजके इन वचनोंका कैकेयीपर कोई प्रभाव नहीं हुआ। उसने तो कहा—हे मानवेन्द्र! मैं अपने प्राणभूत भरतकी तथा अपनी शपथ करके कहती हूँ कि रामके निर्वासनके अतिरिक्त और किसी कार्यसे मैं सन्तुष्ट नहीं हो सकती हूँ—

भरतेनात्मना चाहं शपे ते मनुजाधिप।
यथा नान्येन तुष्येयमृते रामविवासनात्॥

(२। १२। ४९)

होत प्रातु मुनिबेष धरि जौं न रामु बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिय मन माहिं॥

(२। ३३)

इसके उत्तरमें चक्रवर्तीजीने भरत-चरित्रका अत्यन्त संक्षिप्त तथा सूक्ष्म चित्रण किया है। वे कहते हैं—'हे कैकेयि! अपने अग्रज रामके बिना भरत कथमपि राज्य स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि धर्म-पालनमें रामसे भरत बलवत्तर हैं। आशय यह है कि यदि तू चाहती है कि भरत राज्य करें तो इसके लिये भी रामकी आवश्यकता है। भरत राज्य करें और राम मुझ वृद्धके समीप रहकर मेरी सेवा करें। इससे तेरा मनोरथ सिद्ध हो जायगा, अन्यथा तेरा इष्ट साधन नहीं होगा—'

न कथञ्चिदृते रामाद् भरतो राज्यमावसेत्॥
रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम्।

(२। १२। ६१-६२)

श्रीदशरथने कहा—'हे कैकेयि! तुम जो कहती हो कि मैं रामको निर्वासित करूँ तो निर्वासित किसी दुर्गुणीको, अपराधीको किया जाता है। मेरा राम तो शूरवीर है, विद्वान् है, जितक्रोध है—उसने क्रोधमें भी कोई ऐसा कार्य नहीं किया कि उसे निकाला जा सके। क्षमापरायण है फिर उसको निर्वासित कैसे किया जा सकता है—'

शूरश्च कृतविद्यश्च जितक्रोधः क्षमापरः।

कथं कमलपत्राक्षो मया रामो विवास्यते॥

(२।१३।९)

इस प्रकार श्रीदशरथ-कैकेयीमें अनेक प्रकारके कथोपकथन हुए—संवाद हुए, परंतु कैकेयी श्रीरामके निर्वासनमें सुदृढ़ रही। अन्तमें धर्मात्मा श्रीदशरथजी कहते हैं—'मैं धर्मके कठिन बन्धनमें निबद्ध हो गया हूँ—इससे छूटनेका कोई मार्ग नहीं है। अपने प्राणप्रिय श्रीरामकी वियोग-कल्पनासे ही मेरी चेतना नष्ट होती जा रही है। इसलिये मैं अपने परम धर्मात्मा ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ पुत्र श्रीरघुनन्दनका मुख-सन्दर्शन करना चाहता हूँ—

धर्मबन्धेन बद्धोऽस्मि नष्टा च मम चेतना।
ज्येष्ठं पुत्रं प्रियं रामं द्रष्टुमिच्छामि धार्मिकम्॥

(२।१४।२४)

श्रीगोविन्दराजजी इस श्लोकपर लिखते हैं कि श्रीदशरथजीने रामवनगमनको हलके शब्दोंमें स्वीकार कर लिया है। '**धर्मबन्धेन धर्मपाशेन बद्धोऽस्मीत्यनेन रामविवासनं मनागनुज्ञातम्**'। रामायणशिरोमणि-टीकाकार कहते हैं—'**धर्मबन्धेन स्वकुलोचितसत्यप्रतिज्ञत्वधर्मरूपबन्धनेन बद्धः संयतोऽस्मि अतः मम चेतना बुद्धिः नष्टा कर्तव्य-निश्चयरहिता अतः धार्मिकं रामं द्रष्टुमिच्छामि उचितमेव सः करिष्यतीति तात्पर्यम्**'। अर्थात् मेरी बुद्धि कर्तव्यनिश्चयके विवेकसे रहित हो गयी है, अतः मेरे धर्मात्मा पुत्र राम जो उचित होगा वह करेंगे। इस प्रकार धर्मात्मा एवं पुत्रवत्सल श्रीदशरथजीने समस्त भार श्रीरामके ऊपर डाल दिया। इस प्रकार श्रीराम शरणागत हो गये।

जिस प्रातःकालकी अयोध्यावासी प्रतीक्षा कर रहे थे वह आया तो सही परंतु अच्छा संवाद लेकर नहीं आया। आइये इस द्रावक चरित्रका भी श्रवण करें।

प्रातःकाल हुआ, पुष्यनक्षत्रके योगमें अभिषेकका मुहूर्त आ गया। शिष्योंसे घिरे हुए ब्रह्मर्षि वसिष्ठ आये। उन्होंने चतुर मन्त्री सुमन्त्रको देखकर त्वरामें कहा—'**त्वरयस्व महाराजम्**' महाराजको शीघ्र बुलाओ। सुमन्त्रजी अद्वितीय व्यक्तित्वके धनी थे। श्रीअयोध्याजीमें उनका बहुत आदर था। वे अत्यन्त विश्वस्त माने जाते थे। वे श्रीदशरथके मन्त्री, मित्र और विशेष समयमें सारथी थे। महाराज कहीं हों, किसी भी समय सुमन्त्र उनके पास चले जाते थे। इनको कोइ रोकता नहीं था, कोई टोकता भी नहीं था। आज भी वे अपने नरेशके सन्निकट पहुँच गये। बड़े अनुभवी थे, वृद्ध थे परंतु आजकी स्थिति समझ नहीं पाये। कैकेयीने कहा—हे सुमन्त्रजी! आप श्रीरामको शीघ्र बुला लावें। सुमन्त्रजीने अत्यन्त निर्भीकतापूर्वक उत्तर दिया—हे भामिनि! मेरे जानेके लिये आपकी—केवल आपकी आज्ञा अपर्याप्त है। मैं अपने स्वामीकी आज्ञाके बिना नहीं जा सकता हूँ। निर्भीकता, स्वामीकी आज्ञाका पालन, कठिन समयमें सर्वस्व समर्पणकी भावना और मित्र तथा मन्त्रीके कर्तव्योंका पालन सुमन्त्रके चरित्रकी विशेषताएँ हैं।

अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि।

(२।१४।६४)

श्रीदशरथजीने सुनकर कहा—हे सुमन्त्र! मैं रामचन्द्रके दिव्य मुखचन्द्रका दर्शन करना चाहता हूँ—'**सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि**'।

सुमन्त्रजीने दशरथमहलसे चलकर सुमेरु पर्वतके शिखरके समान देदीप्यमान श्रीरामजीका महल देखा—

मेरुशृङ्गसमं सूतो रामवेश्म ददर्श ह।

उपस्थितैः समाकीर्णं जनैरञ्जलिकारिभिः॥

(२।१५।३७)

वह महल बद्धाञ्जलि होकर उपस्थित हुए अनेक मनुष्योंसे परिपूर्ण था। उस महलमें जाकर सुमन्त्रने कहा—हे कौसल्यानन्दसंवर्द्धन श्रीराम! आपके पिताजी आपको देखना चाहते हैं—

कौसल्या सुप्रजा राम पिता त्वां द्रष्टुमिच्छति।

(२।१६।१३)

पिताकी आज्ञा सुनकर जिस प्रकार मेघसे चन्द्रमा निकलता है उसी प्रकार श्रीरामचन्द्र अपने महलसे निकलकर रथपर बैठकर लोगोंको आह्लादित करते हुए चलने लगे। श्रीरामानुज लक्ष्मण हाथमें विचित्र चँवर लिये हुए रथपर विराजमान होकर चँवर डुलाने लगे—

निकेतान्निर्ययौ श्रीमान् महाभ्रादिव चन्द्रमाः।
चित्रचामरपाणिस्तु लक्ष्मणो राघवानुजः॥

(२।१६।३२)

श्रीरामजी रथसे पिताजीके पास चले जा रहे हैं। मार्गमें लोग अनेक प्रकारकी चर्चा कर रहे हैं और श्रीराम-लक्ष्मणकी झाँकीका दर्शन भी कर रहे हैं। श्रीरामजीके परम सुहृद् अयोध्यावासियोंने बहुत कुछ कहा है उसमेंसे मात्र दो श्लोक—चौंसठ अक्षर मैं आपको सुनाऊँगा। इसकी विशेष व्याख्या सुनानेके लिये तो यह सत्र मुझे आज्ञा नहीं दे रहा है परंतु मूल तो निवेदन कर ही सकता हूँ। श्रीवाल्मीकिजी लिखते हैं—जो भी व्यक्ति एक बार श्रीरामजीको देख लेता है वह अपना सर्वस्व विस्मृत करके उन्हें ही देखता रहता है। पुरुषोत्तम श्रीरामजीके दूर चले जानेपर भी कोई प्राणी उन सौन्दर्यसारसर्वस्व रघुनन्दनकी ओरसे अपना मन या दृष्टि हटा नहीं पाता है। श्रीरामजी अपने चित्ताकर्षक स्वरूपसे उसके नेत्र और मनका अपहरण करके अपने साथ ही ले जाते हैं—

न हि तस्मान्मनः कश्चिच्चक्षुषी वा नरोत्तमात्।
नरः शक्नोत्यपाक्रष्टुमतिक्रान्तेऽपि राघवे॥

(२।१७।१३)

भक्तपुरजन कहते हैं—'श्रीरामजी तो दर्शन करते ही, दर्शनकालमें ही परिपूर्णामृत सरोवरमें मनको निमग्न कर देते हैं। जो अत्यन्त विलक्षण गुणगणोंसे सम्पन्न होनेपर भी ठाकुरजीका दर्शन नहीं करते हैं अर्थात् अपने नेत्रोंका भोग्य श्रीरामजीको नहीं बनाते हैं, वे मन्दभाग्य हैं। इस बातको सुनकर यदि कोई जन्मान्ध भक्त यह कहे कि मैं तो नेत्रविहीन हूँ, अतः कैसे देख सकता हूँ? तो कहते हैं कि जिसको श्रीरामजी नहीं देखते हैं वह मन्दभाग्य है। अथवा—जो श्रीरामजीको देखेगा उसे श्रीरामजी भी देखेंगे, इस प्रकार जो श्रीरामजीको नहीं देखता है वह श्रीरामजीके नेत्रोंका अविषय होकर निन्दित हो जाता है। अथवा—जो व्यक्ति रामजीको नहीं देखता है अर्थात् ये मेरे स्वामी हैं—मेरे जीवनसारसर्वस्व हैं, इस भावसे प्रभुको नहीं जानता है, और जिसको श्रीरामजी नहीं देखते हैं अर्थात् यह मुझे ही स्वामित्वेन जानता है इस प्रकार नहीं जानते हैं वह सब लोकोंमें निन्दित है। इसलिये इस रामानुरागरहित प्राणीकी आत्मा भी—उसका मन भी उसको धिक्कृत करता है। इसका सारांश यह है कि भगवान्‌का दर्शन, भगवान्‌का स्वरूपज्ञान और उनकी भक्ति ही जीवनको धन्य बनाती है—

यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति।
निन्दितः सर्वलोकेषु स्वात्माप्येनं विगर्हते॥

(२।१७।१४)

धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र चारों वर्णोंके सभी व्यक्तियोंपर कृपा करते हैं सुतराम् चारों वर्णोंके

लोग श्रीरामजीके अनुव्रत—भक्त हैं—

सर्वेषु स हि धर्मात्मा वर्णानां कुरुते दयाम्।
चतुर्णां हि वयःस्थानां तेन ते तमनुव्रताः॥

(२।१७।१६)

श्रीरामजीने पिताके महलमें जाकर उनके श्रीचरणोंमें विनम्र अभिवादन किया तत्पश्चात् सुसमाहित होकर माताको भी प्रणाम किया। दीन-भावापन्न श्रीदशरथजी एक बार 'राम' कहकर आगे कुछ न बोल सके। उनका कण्ठावरोध हो गया, आँखोंमें आँसू भर आये, परिणामस्वरूप न वे श्रीरामजीको जी भरकर देख ही पाये और न ही उनसे कोई बात ही कर सके।

स पितुश्चरणौ पूर्वमभिवाद्य विनीतवत्।
ततो ववन्दे चरणौ कैकेय्याः सुसमाहितः॥
रामेत्युक्त्वा तु वचनं वाष्पपर्याकुलेक्षणः।
शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभाषितुम्॥

(२।१८।२-३)

श्रीरामजी पिताकी दीन-दशा देखकर स्वयं भी दीन-भावसे कैकेयी मातासे बोले—'हे मातः! मेरे पिताजी क्यों नहीं बोल रहे हैं? इनके मनमें कौन-सा दारुण दुःख है? क्या मुझसे कोई अक्षम्य अपराध हो गया है? किं वा आपने तो अभिमान और क्रोधके कारण कोई कठोर बात नहीं कही हैं, जिसके कारण इनका मन क्लेशाक्रान्त हो गया है। हे देवि! मेरे पिताजीके मनमें इतना सन्ताप क्यों है? इनको इस प्रकार मैंने पहले कभी नहीं देखा है—'

एतदाचक्ष्व मे देवि तत्त्वेन परिपृच्छतः।
किं निमित्तमपूर्वोऽयं विकारो मनुजाधिपे॥

(२।१८।१८)

कठोरताकी प्रतिमूर्ति कैकेयीने कहा—'हे राम! यदि तुम प्रतिज्ञा करो कि राजा शुभ या अशुभ जो कुछ कहना चाहते हैं उसे तुम पालन करोगे तो मैं सारी बात बता दूँगी—'

यदि तद् वक्ष्यते राजा शुभं वा यदि वाशुभम्।
करिष्यसि ततः सर्वमाख्याष्यामि पुनस्त्वहम्॥

(२।१८।२५)

इस बातको सुनकर श्रीरघुनन्दनको महान् क्लेश हुआ। उन्होंने कहा—'अहो! धिक्कार है! हे मातः! आपको मेरे प्रति इस प्रकार अविश्वासपूर्वक वचन नहीं कहना चाहिये। मैं अपने पिताकी आज्ञासे जलती हुई आगमें कूद सकता हूँ, तीक्ष्ण विषका भी सद्यः भक्षण कर सकता हूँ और समुद्रमें भी गिर सकता हूँ। श्रीमहाराज दशरथजी मेरे गुरु, पिता और हितैषी हैं। मैं उनकी आज्ञासे सब कुछ कर सकता हूँ। हे देवि! इनके सन्तापका कारण कुछ भी हो किं वा इनके मनमें जो कुछ हो वह सब मुझे बताओ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, उसे पूरा करूँगा। आपको यह ज्ञात है— **'रामो द्विर्नाभिभाषते'** अर्थात् रामने जो कह दिया वह कह दिया। उसके विपरीत पुनः कुछ नहीं कहना है—

अहो धिङ् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशं वचः।
अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च॥
तद् ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकाङ्क्षितम्।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते॥

(२।१८।२८—३०)

कैकेयीजीने कठोरतापूर्वक अपने वरप्राप्तिकी कथा, दोनों वरदान माँगनेकी बात और राजाके दुःखी होनेका कारण सुना दिया और यह भी कहा—'हे राम! तुम नरेन्द्रकी आज्ञा पालन करो और इनके सत्यकी रक्षा करके इनके सङ्कटको दूर करो—'

एतत् कुरु नरेन्द्रस्य वचनं रघुनन्दन।

सत्येन महता राम तारयस्व नरेश्वरम्॥

(२।१८।४०)

सुनहु राम सबु कारनु एहू।
राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू॥
देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना।
मागेउँ जो कछु मोहि सोहाना॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू।
छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू॥
सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु॥

श्रीरामजीने कहा—'हे मातः! मैं अपने पिताजीकी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये जटा और चीर धारण करके आपकी इच्छानुसार वनमें रहनेके लिये श्रीअयोध्याजीसे अविलम्ब चला जाऊँगा—'

एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तुमहं त्वितः।
जटाचीरधरो राज्ञः प्रतिज्ञामनुपालयन्॥

(२।१९।२)

श्रीरामने कहा—'हे मातः! मुझे दुःख है कि पिताजीने स्वयं मुझसे क्यों नहीं कहा और हे जननि! आपकी गोदमें मैं सत्ताईस वर्षपर्यन्त रहा परंतु आप अपने रामको नहीं समझ पायीं। आपने पिताजीको क्यों कष्ट दिया? यदि आप स्वयं कहतीं तो भी मैं अपने लाड़ले, दुलारे, भावते भाई भरतके लिये राज्यको, सीताको, अपने प्रिय प्राणोंको तथा अपने सर्वस्व—समस्त धनको हँसते-हँसते दे सकता था—'

अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान् धनानि च।
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरतायाप्रचोदितः॥

(२।१९।७)

अब मैं पूज्य माता श्रीकौसल्याजीके चरणोंमें आज्ञा लेने जाता हूँ उनसे आज्ञा लेकर सीताको आश्वस्त करके और पूज्य पिताजीको प्रणाम करके आज ही विशाल दण्डक काननकी यात्रा करूँगा—

यावन्मातरमापृच्छे सीतां चानुनयाम्यहम्।
ततोऽद्यैव गमिष्यामि दण्डकानां महद् वनम्॥

(२।१९।२५)

श्रीरघुनाथजीके वचनोंको सुनकर श्रीदशरथजी-को असीम दुःख हुआ, वे फूट-फूटकर रुदन करने लगे। श्रीरामजीसे उनकी स्थिति देखी नहीं गयी; अतः वे माता-पिताको प्रणाम एवं परिक्रमा करके भवनसे बाहर निकल गये।

वन जानेका निश्चय हो गया है, महर्षि श्रीवाल्मीकिजी लिखते हैं—श्रीरामचन्द्रजीके दिव्य निर्मल निष्कलङ्क मुखचन्द्रकी शोभामें राज्याभिषेकके नष्ट होनेसे अथवा वनगमनसे कोई अन्तर नहीं पड़ा। श्रीरामजी सहज कान्तिसे—अविनाशी कान्तिसे सुशोभित हैं—

न चास्य महतीं लक्ष्मीं राज्यनाशोऽपकर्षति।
लोककान्तस्य कान्तत्वाच्छीतरश्मेरिव क्षयः॥

(२।१९।३२)

श्रीरामायणशिरोमणि-टीकाकारने **'लोक-कान्तस्य कान्तवत्'** इस पदका अपूर्व रसास्वादन किया है 'लोकक' कहते हैं, लोकमें रहनेवालोंको उनका अन्त करनेवाला जो काल है उसके भी श्रीरामजी कान्त हैं, अतः कालजन्य कोई भी कारण उनकी मुखच्छविको मलिन नहीं कर सकता है। **'लोककान्तस्य लोककानाम्'''' भुवनजनानामन्तस्य कालस्य कान्तत्वात् स्वामित्वात्'** अथवा लोकोंके कान्त—नियामक जो ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर हैं, उनके भी कान्त—नियामक श्रीरामजी हैं, अतः इनकी मुखश्रीमें अन्तर नहीं आया। **'लोककान्तस्य ब्रह्मादित्रयस्य कान्तत्वान्नियामकत्वात्'** अथवा लोककान्त अर्थात्

समस्त शोभाओंके स्वामी श्रीरामजी हैं, भाव कि समस्त शोभाओंको भी सुशोभित करनेवाले हैं सुतराम् उनकी शोभामें कमी होनेका प्रश्न ही नहीं है। **'लोककान्तस्य सकलशोभायाः कान्तत्वात्-सकलशोभाहेतुत्वादित्यर्थः'** श्रीरामजीकी मुखश्री अम्लान है यह कहकर महर्षि कहते हैं कि ठाकुरजीके मनमें भी किसी प्रकारका विकार नहीं उत्पन्न हुआ—

न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया॥

(२।१९।३३)

श्रीरामजी वनगमनके लिये प्रस्तुत हैं और समस्त वसुन्धराका—पृथ्वीका प्राप्त राज्य त्याग रहे हैं फिर भी उनके मनमें, जिसको मानापमानमें कोई अन्तर ज्ञात नहीं होता है उस परम योगीश्वरकी भाँति कोई विकार नहीं हुआ। किं वा समस्त लोकोंके ऊर्ध्ववर्ती साकेतलोकमें नित्य विहार करनेवाले साकेताधीशके मनमें किसी भी प्रकारकी चित्त-विक्रिया—राज्यनाश, वनगमन, पिता-माता आदिके वियोगसे होनेवाली चित्तविकृति परिलक्षित नहीं हुई—

नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान॥

(श्रीरामचरितमानस २।५१)

भगवान् श्रीराम जब माता श्रीकौसल्याके भवनमें गये तो वहाँका स्नेहिल वातावरण देखकर, माँका उमँगता हुआ उत्साह देखकर सोचने लगे इन्हें वनगमनकी सूचना कैसे दूँ? माताने बैठनेके लिये सुन्दर आसन दिया और भोजन करनेका प्रेमभरा आमन्त्रण दिया—

दत्तमासनमालभ्य भोजनेन निमन्त्रितः।
मातरं राघवः किञ्चित् प्रसार्याञ्जलिमब्रवीत्॥

(२।२०।२५)

परंतु श्रीरामजीने हाथसे स्पर्श करके आसनका तो आदर कर दिया। श्रीरामजीके सामने—स्नेहाधीन रामजीके सामने आज बहुत बड़ी समस्या है। एक ओर वात्सल्यमयी जननीका प्रेमभरा निमन्त्रण और ठीक उसके विपरीत दूसरी ओर माता कैकेयीकी कठोर आज्ञा **'जटाचीरधरो भव'** श्रीरामजीकी इस ऊहापोहकी स्थितिका भावपूर्ण चित्रण गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी-ने किया है—

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू।
जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥
पितु समीप तब जाएहु भैआ।
भइ बड़ि बार जाइ बलि मैआ॥
मातु बचन सुनि अति अनुकूला।
जनु सनेह सुरतरु के फूला॥
सुख मकरंद भरे श्रियमूला।
निरखि राम मनु भवँरु न भूला॥

श्रीरामजीने कहा—हे वात्सल्यमयि जननि! मेरे पिताजी भाई भरतको युवराजपद दे रहे हैं और मुझे चौदह वर्षके लिये दण्डकारण्य भेज रहे हैं—

भरताय महाराजो यौवराज्यं प्रयच्छति।
मां पुनर्दण्डकारण्यं विवासयति तापसम्॥

(२।२०।३०)

भगवान्ने कहा—हे मातः! पूज्य पिताजीने बहुत उचित और मर्यादापूर्ण विभाजन किया है। जंगलका राज्य बड़ा होता है और नगरका राज्य छोटा। अतः मुझे बड़ा समझकर वनका राज्य दिया गया है—**'पिता दीन्ह मोहि कानन राजू'**। मेरे प्यारे भैया भरतको छोटा समझकर उसे नगरका छोटा राज्य दिया गया है। यद्यपि श्रीरामजीने बहुत मधुर बना करके कहा है फिर भी माता सुनकर कटी हुई कदलीकी भाँति

भूमिपर गिर पड़ीं। श्रीरामजीने अचेत माताको हाथका आश्रय देकर उठाया—

तामदुःखोचितां दृष्ट्वा पतितां कदलीमिव।
रामस्तूत्थापयामास मातरं गतचेतसम्॥

(२।२०।३३)

श्रीरामकी वात्सल्यमयी जननी उठकर अनेक प्रकारका विलाप करने लगीं। हे राम! यदि मैं वन्ध्या होती तो आज मुझे यह दुःख सुनने और देखनेका अवसर नहीं मिलता। केवल एक बार यही क्लेश होता कि मैं वन्ध्या हूँ—पुत्रहीना हूँ—

एक एव हि वन्ध्यायाः शोको भवति मानसः।
अप्रजास्मीति संतापो न ह्यन्यः पुत्र विद्यते॥

(२।२०।३७)

श्रीकौसल्याने कहा—हे लालजी! तुम वैकुण्ठके वैभव-सुखको छोड़कर इस मृत्युलोकमें क्यों आये? अर्थात् श्रीदशरथके भवनमें क्यों आये? यदि तुम्हें दशरथालयमें आना ही अभीष्ट था तो हे वत्स! केकयनरेशनन्दिनीको छोड़कर मुझ पापिनीको तुमने माँ क्यों बनाया? हे पुत्र! आज यदि तुम मेरे पुत्र न होते तो मेरे लाल! तुम्हें वन जाना न पड़ता—

वैकुण्ठवैभवसुखं परिहाय वत्स
स त्वं दशरथालयमागतोऽसि।
अत्रापि केकयनरेन्द्रसुतां विहाय
मां पापिनीं कथमहो जननीमकार्षीत्॥

हे पुत्र! जैसे गौ अत्यन्त दुर्बल होनेपर भी अपने वत्सके स्नेहसे उसके पीछे-पीछे चली जाती है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे साथ-साथ वनको चलूँगी—

अनुव्रजिष्यामि वनं त्वयैव गौः
सुदुर्बला वत्समिवाभिकाङ्क्षया ॥

(२।२०।५४)

इस प्रकार माता कौसल्याके विलापसे अत्यन्त दुःखी श्रीलक्ष्मणने कहा—'हे माँ! मेरे रामजीकी तो शत्रु भी प्रशंसा करते हैं। मैं लोकमें एक व्यक्तिको भी इस प्रकार नहीं देखता जो अत्यन्त शत्रु और अपमानित होनेपर भी प्रत्यक्ष नहीं परोक्षमें भी श्रीरामजीका दोष बता सके—'

न तं पश्याम्यहं लोके परोक्षमपि यो नरः।
स्वमित्रोऽपि निरस्तोऽपि योऽस्य दोषमुदाहरेत्॥

(२।२१।५)

श्रीलक्ष्मणजीने श्रीरामजीसे कहा—हे करुणासागर! जो कोमल और नम्र होता है उसका सभी अनादर करते हैं— '**मृदुर्हि परिभूयते**'। इसलिये यदि हमारे पिताजी कैकेयीका पक्ष लेकर हमारे शत्रु बन रहे हैं तो ममतारहित होकर उन्हें भी दण्ड देना चाहिये। श्रीरामसे कुछ प्रत्युत्तर न पाकर श्रीलक्ष्मणजी पुनः माँसे कहते हैं—'हे मातः! मैं सत्य, दान, धनुष तथा यज्ञ आदिकी शपथ लेकर तत्त्वतः कहता हूँ कि मेरा भगवान् श्रीराममें हार्दिक अनुराग है। हे जननि! आप विश्वास रखें यदि श्रीरामजी प्रज्वलित अग्निमें किं वा घोर जंगलमें प्रवेश करनेवाले होंगे तो मैं इनसे भी पहले उसमें प्रविष्ट हो जाऊँगा—'

अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्त्वतः।
सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे॥
दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय॥

(२।२१।१६-१७)

इसके पश्चात् माताने अनेक दुःखभरे वचन कहे हैं। श्रीरामजीने माताजी और श्रीलक्ष्मणको उत्तर दिया—हे जननि! मैं आपके श्रीचरणोंमें विनम्रतापूर्वक प्रणाम करके आपको प्रसन्न

करना चाहता हूँ। श्रीपिताजीकी आज्ञाकी अवज्ञा करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है, अतः मैं वन ही जाना चाहता हूँ—

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम्॥

(२।२१।३०)

श्रीलक्ष्मणजीको समझाकर प्रभुने मातासे पुनः कहा—'हे मातः! आपको, मुझको, सीताको, लक्ष्मणको और माता सुमित्राको पिताजीकी आज्ञामें ही रहना चाहिये। यही सनातन धर्म है—'

त्वया मया च वैदेह्या लक्ष्मणेन सुमित्रया।
पितुर्नियोगे स्थातव्यमेष धर्मः सनातनः॥

(२।२१।४९)

श्रीरामजीने अपने बलिदानी भ्राता लक्ष्मणको पूरे एक सर्गमें समझाया है और कहा है—'हे सौमित्रे! इस लक्ष्मीके विपर्ययमें—उलट-फेरमें तुम सन्ताप न करो। मेरे लिये राज्य और वनवास दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। एक राज्यलक्ष्मी है तो दूसरी वनवासलक्ष्मी। विशेष चिन्तन करनेपर मेरे लिये वनवास ही महोदय है—महाफल है; क्योंकि वनवास अतियश:सम्पादक है और उसमें राज्य-व्यापारका क्लेश भी नहीं है—'

मा च लक्ष्मण संतापं कार्षीर्लक्ष्म्या विपर्यये।
राज्यं वा वनवासो वा वनवासो महोदयः॥

(२।२२।२९)

श्रीरामके समझानेपर भी श्रीलक्ष्मण शान्त नहीं हुए, उन्होंने कहा—'हे रघुनन्दन! चाहे जितने राजा विरोधपक्षमें आ जायँ मैं अकेला ही उनको रोकनेमें पर्याप्त हूँ।' '**अहमेको महीपालानलं वारयितुं बलात्**'। हे स्वामी! मेरी ये दोनों भुजाएँ मात्र शोभाके लिये नहीं हैं, यह मेरा धनुष आभूषणके लिये नहीं है, यह तलवार केवल कमरमें बाँधे रखनेके लिये नहीं है तथा मेरे ये बाण स्तम्भहेतु नहीं हैं। हे रघुनन्दन! ये चारों शत्रुओंके नष्ट करनेके लिये हैं। जिसे मैं अपना शत्रु समझता हूँ, उसे कभी भी जीवित नहीं रहने देना चाहता—

न शोभार्थाविमौ बाहू न धनुर्भूषणाय मे।
नासिराबन्धनार्थाय न शराः स्तम्भहेतवः॥
अमित्रमथनार्थाय सर्वमेतच्चतुष्टयम्।
न चाहं कामयेऽत्यर्थं यः स्याच्छत्रुर्मतो मम॥

(२।२३।३०-३१)

भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणको पुनः समझाकर अपनी वात्सल्यहृदया जननी कौसल्याको समझाकर आश्वस्त कर दिया। माताने कहा—'हे पुत्र! तुम्हारे वन जानेके सुदृढ़ विचारको मैं परिवर्तित नहीं कर सकती। हे वीर! निश्चय ही कालकी आज्ञाका उल्लंघन करना अति कठिन है। हे परम समर्थ पुत्र! तुमको भगवान् वनके दु:खोंको सहन करनेकी सामर्थ्य प्रदान करें। तुम मेरी चिन्ता न करना। तुम समाहितमनसे वनके लिये प्रस्थान करो। तुम्हारा सर्वदा मङ्गल हो—'

कौसल्या पुत्रशोकार्ता रामं वचनमब्रवीत्।
गमने सुकृतां बुद्धिं न ते शक्नोमि पुत्रक॥
विनिवर्तयितुं वीर नूनं कालो दुरत्ययः।
गच्छ पुत्र त्वमेकाग्रो भद्रं तेऽस्तु सदा विभो॥

(२।२४।३२-३३)

हे रघुकुलसिंह! तुम जिस धर्मका सदा सहर्ष पालन करते हो, वह धर्म तुम्हारी रक्षा करे—

यं पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु॥

(२।२५।३)

हे लालजी! परम बुद्धिमान् ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने तुम्हारी सेवासे, भक्तिसे प्रसन्न होकर तुम्हें जो शस्त्रास्त्र प्रदान किये हैं, वे शस्त्र तुम्हारी रक्षा करें—तुम्हारे काम आवें और तुम सद्गुणोंसे प्रकाशित होओ—

यानि दत्तानि तेऽस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता।
तानि त्वामभिरक्षन्तु गुणैः समुदितं सदा॥

(२।२५।५)

हे रघुनन्दन! भयङ्कर जङ्गली हाथी, सिंह, व्याघ्र, रीछ और विशाल सींगवाले भैंसे आदि जंगली पशु तुम्हारे लिये रौद्र न होकर सौम्य हो जायँ यह मेरा आशीर्वाद है। हे श्रीराम! समस्त लोकोंके स्वामी चतुर्मुख ब्रह्माजी, संसारके कारण परब्रह्म और अनेकों देवर्षि, ब्रह्मर्षि, महर्षि तथा देवता वनवासके समय तुम्हारी रक्षा करें—

सर्वलोकप्रभुर्ब्रह्मा भूतकर्तृ तथर्षयः।
ये च शेषाः सुरास्ते तु रक्षन्तु वनवासिनम्॥

(२।२५।२५)

वात्सल्यमयी माताने ब्राह्मणोंको बुलाकर श्रीरामकी वनयात्राकी मङ्गल-कामनाके लिये हवन कराया— '**हावयामास विधिना राममङ्गल-कारणात्**'। इसके अनन्तर माताने अपने पुत्रका मङ्गलगान किया है। अमृतोत्पत्तिके समय इन्द्रके लिये माता अदितिने जो मङ्गलमय आशीर्वाद दिया था वही मङ्गल तुम्हारे लिये सुलभ हो—

अमृतोत्पादने दैत्यान् घ्नतो वज्रधरस्य यत्।
अदितिर्मङ्गलं प्रादात् तत् ते भवतु मङ्गलम्॥

(२।२५।३४)

हे रघुनन्दन! तीन चरणोंको बढ़ाते हुए अनुपम तेजस्वी भगवान् वामनके लिये जो मङ्गलाशंसा की गयी थी वही मङ्गल तुम्हारे लिये भी प्राप्त हो—

त्रिविक्रमान् प्रक्रमतो विष्णोरतुलतेजसः।
यदासीन्मङ्गलं राम तत् ते भवतु मङ्गलम्॥

(२।२५।३५)

हे महाबाहो! ऋषि, समुद्र, द्वीप, वेद, समस्त लोक और पूर्वादि दिशाएँ तुम्हारे लिये मङ्गलमय हों—

ऋषयः सागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ते।
मङ्गलानि महाबाहो दिशन्तु शुभमङ्गलम्॥

(२।२५।३६)

श्रीरामजीका श्रीविग्रह लम्बा है, अपेक्षाकृत माताजी छोटी हैं, अतः श्रीरामजीके मस्तकको झुकाकर यशस्विनी माता कौसल्याने उसे सूँघा और पुत्रको अपने हृदयमें लगाकर स्खलिताक्षरोंमें कहा—जाओ पुत्र, सुखपूर्वक वन जाओ, तुम्हारे समस्त मनोरथ सफल हों—

आनम्य मूर्ध्नि चाघ्राय परिष्वज्य यशस्विनी।
अवदत् पुत्रमिष्टार्थो गच्छ राम यथासुखम्॥

(२।२५।४०)

बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ हरषि निरखिहउँ गात॥

(२।६८)

हे लालजी! मैंने अनेक देवताओंकी आराधना की है। समय-समयपर मेरे द्वारा अनेक महर्षियोंका सम्मान हुआ है। मैंने साँपोंकी पूजा की है, उन्हें दूध पिलाया है। हे रघुनन्दन! मैंने आजतक जितने पुण्य-कर्म किये हैं, वे मेरे समस्त पुण्य-कर्म तुम्हारा अनुगमन करें और तुम्हारा मङ्गल करते रहें। इस तरह श्रीकौसल्या माताने अपने वात्सल्यभाजन श्रीरामका विशाल मङ्गल किया। महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी बारम्बार माताके श्रीचरणोंमें प्रणाम करके माताकी मङ्गल-कामनाजनित उत्कृष्ट शोभा-सम्पत्तिसे सम्पन्न होकर वहाँसे श्रीसीताजीके महलकी ओर प्रस्थित हो गये—

तया हि देव्या च कृतप्रदक्षिणो
निपीड्य मातुश्चरणौ पुनः पुनः।
जगाम सीतानिलयं महायशाः
स राघवः प्रज्वलितस्तया श्रिया॥

(२।२५।४७)

करुणामय श्रीरामजी श्रीजानकीजीको आश्वस्त करनेके लिये अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुए। अभी श्रीसीताजीको वनगमनका समाचार नहीं मिला था। वे अपने प्राणाराध्य, प्राणनाथ श्रीरघुनाथजीको देखकर सहसा खड़ी हो गयीं। उस समय श्रीरामजीका मुख विवर्ण हो गया—पीला पड़ गया। वे पसीने-पसीने हो गये। वे सोचने लगे—रातमें तो इनके साथ यौवराज्यके लिये नियम धारण किया था। इनके मनमें राजरानी बननेका सपना जगाया था। अब कैसे कहूँ कि मैं वन जा रहा हूँ? प्रभुकी स्थिति देखकर श्रीसीता दुःखसे सन्तप्त हो गयीं। उन्होंने पूछा—इस समय आप कैसे हो गये हैं? आपकी इस दशाका क्या कारण है?

विवर्णवदनं दृष्ट्वा तं प्रस्विन्नममर्षणम्।
आह दुःखाभिसन्तप्ता किमिदानीमिदं प्रभो॥

(२।२६।८)

श्रीरामजीने कहा—'हे मिथिलेशनन्दिनि! चाहिये तो यह था कि जो समाचार मैं तुम्हें सुनाने जा रहा हूँ, उसे धीरे-धीरे सुनाता, तुम्हें खूब आश्वस्त करके सुनाता; परंतु हे विदेहनन्दिनि! मेरे पास इतना समय नहीं है, अतः तुम्हें सीधे सुना रहा हूँ। हे जनकाधिराजतनये! पूज्य पिताजीकी आज्ञासे मैं आज ही वन जा रहा हूँ। तुम धैर्य धारण करके रहना—' '**वनमद्यैव यास्यामि स्थिरीभव मनस्विनि**'॥ प्रभुने अत्यन्त संक्षेपमें समस्त समाचार सुना दिया। प्रभुने कहा—'हे मनस्विनि! समय बहुत कम है। मैं तुम्हारा कर्तव्य निर्देश करना चाहता हूँ। तुमको क्या करना है, कैसे रहना है और किससे किस प्रकार व्यवहार करना है, इसी समय मुझे सब बताना है। हे धीरव्रते! तुम धैर्यपूर्वक सुनो। तुम नित्य प्रातःकाल उठती हो उसी प्रकार उठती रहना। देवताओंका पूजन करना, वियोगमें नास्तिक न बन जाना। पूजाके बाद मेरे पिताकी नित्य वन्दना करना—'

कल्यमुत्थाय देवानां कृत्वा पूजां यथाविधि।
वन्दितव्यो दशरथः पिता मम जनेश्वरः॥

(२।२६।३०)

हे सीते! मेरी माता वृद्ध हैं, इनकी सेवा करना। मेरी सभी माताओंका समादर करना। हे दशरथराजपुत्रवधू! भरत-शत्रुघ्नके प्रति भ्राता और पुत्रका भाव रखना। स्मरण रखना ये दोनों मुझे प्राणोंसे अधिक प्यारे हैं—

भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः।
त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम॥

(२।२६।३३)

इस प्रकार ठाकुरजी कह ही रहे थे कि श्रीरामप्रिया सीताजीके मुखपर प्रणयकोपकी लालिमा छा गयी। प्रियवादिनी श्रीसीताने कहा—'हे मेरे आराध्य! आपने मुझे इतना तुच्छ समझ लिया कि आप वनमें रहेंगे और मैं नगरमें रहकर सुखोपभोग करूँगी। हे मेरे परम सुकुमार राजकुमार! जब मैं आपका पाद-संवाहन करती हूँ तो उस समय आपके श्रीचरणकमलोंकी कोमलताका आस्वादन करती हूँ और अनुभव करती हूँ कि इन चरणोंकी कोमलताके सामने मेरे हाथ अति कठोर हैं। हे कोमलचरण रघुनन्दन! आप वनमें पैदल चलेंगे और मैं महलोंमें बैठकर अपने सौकुमार्यकी रक्षा करूँगी? यह असम्भव है। हे स्वामी! मैं आपके आगे-आगे चलूँगी। आपके मार्गमें आनेवाले कुश और कण्टकोंको रौंदती हुई आपके गन्तव्य पथका—

चलनेयोग्य मार्गका निर्माण करूँगी—'

यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान्॥

(२।२७।७)

हे रघुनन्दन! आपके भोजन कर लेनेपर जो कुछ बचेगा मैं वही प्रसाद सेवन करूँगी—'**भोक्ष्ये भुक्तवति त्वयि**' हे नाथ! यदि अनन्यभावा मुझको छोड़कर आप चले जायँगे तो मेरा मरण निश्चित ही समझें—

अनन्यभावामनुरक्तचेतसं
त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम्।

(२।२७।२३)

श्रीरामजी वनकी भयङ्करताका विस्तृत वर्णन करके कहते हैं—हे सीते! तुम्हारा वनगमन उचित नहीं है। वहाँ तुम कुशलपूर्वक न रह सकोगी—

तदलं ते वनं गत्वा क्षेमं नहि वनं तव।

(२।२८।२५)

श्रीसीताजीने कहा—'हे ककुत्स्थकुलभूषण! मैं आपकी भक्त हूँ और आप भक्तवत्सल हैं। मैं पतिव्रता हूँ—आप ही मेरे सर्वस्व हैं, मैं दीना हूँ और आप दीनदयालु हैं। मैं सुख-दुःखमें समान-भावसे रहूँगी और आपके सुख-दुःखमें साथ दूँगी। अतः आप मुझे अपने साथ ले चलें—'

भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयोः।
नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समानसुखदुःखिनीम्॥

(२।२९।२०)

हे स्वामी! आप सोचते होंगे कि स्त्रियोंको माँका घर—नैहर—मायका बड़ा प्यारा लगता है, माता-पिता स्त्रियोंको बहुत याद आते हैं, यह जंगलमें हा माता, हा पिता, हा मिथिला कहकर व्याकुल होगी तो मैं क्या करूँगा? हे प्राणनाथ! मैं आपके श्रीचरणोंमें निवेदन करती हूँ कि वनमें कभी भी अपने माता-पिताको अथवा राजमहलको नहीं स्मरण करूँगी—

न मातुर्न पितुस्तत्र स्मरिष्यामि न वेश्मनः।

(२।३०।१६)

इस प्रकार प्रार्थना करती-करती वे रोने लगीं। उनके दोनों नेत्रोंसे स्फटिकके समान निर्मल सन्तापसम्भव अश्रुजल झरने लगे, मानो दो कमलोंसे जलकी धारा गिर रही हो—

तस्याः स्फटिकसंकाशं वारि सन्तापसम्भवम्।
नेत्राभ्यां परिसुस्राव पङ्कजाभ्यामिवोदकम्॥

(२।३०।२४)

श्रीसीताजीके स्नेहिल प्रेमाग्रहसे श्रीरामजी उन्हें आज्ञा देनेके लिये विवश हो गये। प्रभुने कहा—हे भीरु! तुम मेरे साथ चलो और मेरे साथ रहकर मेरे वनवासीके धर्ममें सहयोग करो और स्वयं धर्माचरण करो—

अनुगच्छस्व मां भीरु सहधर्मचरी भव॥

(२।३०।४०)

भगवान्‌की आज्ञा पाकर कोसल राजपुत्रवधू श्रीसीता प्रमुदित हो गयीं और शीघ्रतापूर्वक समस्त वस्तुओंका दान करने लगीं—

क्षिप्रं प्रमुदिता देवी दातुमेव प्रचक्रमे॥

(२।३०।४६)

जब श्रीसीताजीके साथ श्रीरामजी भवनके बाहर निकले तो द्वारपर श्रीलक्ष्मण खड़े थे। उनका मुखमण्डल आँसुओंसे परिपूर्ण था। श्रीराम-वियोगकी कल्पना भी उनके लिये असह्य थी—'**वाष्पपर्याकुलमुखः शोकं सोढुमशक्नुवन्।**' श्रीलक्ष्मणने श्रीरामजीके दोनों चरणोंको दृढ़तासे पकड़ लिया और अति यशस्विनी सीताजी तथा महान् व्रतधारी श्रीरामको—श्रीसीतारामको सम्बोधित करके कहा—

स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः।

सीतामुवाचातियशां राघवं च महाव्रतम्॥

(२।३१।२)

यह श्लोक अत्यन्त भावपूर्ण है। इसमें श्रीसीता, श्रीराम और श्रीलक्ष्मण तीनोंके विशेष महत्त्वका प्रतिपादन है। मैं मात्र दिशानिर्देश करते हुए इस श्लोकको प्रणाम करके आगे बढ़ रहा हूँ। श्रीलक्ष्मणने कहा—'हे मेरे जीवनसार-सर्वस्व! हे मेरे आराध्य युगल! यदि आपने वन जानेका निश्चय कर ही लिया है तो यह लक्ष्मण अयोध्यामें नहीं रहेगा। हे नाथ! मैं भी आपका अनुगमन करूँगा। धनुष हाथमें लेकर आगे-आगे चलूँगा। भाव यह है कि परम सुकुमारी, भगवती भास्वती, सेवाधर्मकी आदर्श स्वरूपा, दयामयी मैथिलीने आगे चलनेके लिये कहा है, परंतु हे परम सुकुमार शिरोमणि मेरे आराध्य युगल! अब आप दोनों पीछे चलेंगे। मार्ग-निर्माणके लिये कुशकण्टकोंको रौंदता हुआ आगे-आगे मैं चलूँगा—'

यदि गन्तुं कृता बुद्धिर्वनं मृगगजायुतम्।
अहं त्वानुगमिष्यामि वनमग्रे धनुर्धरः॥

(२।३१।३)

श्रीरामजीने कहा—हे लक्ष्मण! माता कौसल्या और सुमित्राकी सेवा कौन करेगा?

को भजिष्यति कौसल्यां सुमित्रां वा यशस्विनीम्॥

(२।३१।११)

श्रीलक्ष्मणजीने कहा—'हे कौसल्यानन्द-संवर्द्धन! माता श्रीकौसल्याजी किसीके आश्रित नहीं हैं, उन्हें किसीकी सेवाकी भी आवश्यकता नहीं है। वे मेरी तरह हजारों सेवकोंका भरण-पोषण कर सकती हैं। वे अपना तथा मेरी जननी सुमित्राका पालन करनेमें स्वयं समर्थ हैं—'

तदात्मभरणे चैव मम मातुस्तथैव च।

पर्याप्ता मद्विधानां च भरणाय मनस्विनी॥

(२।३१।२३)

हे स्वामी! मुझे अपने साथ वनमें ले चलिये, मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। आप सर्वज्ञ-शिरोमणि हैं, आपको ज्ञात है कि लक्ष्मण मेरे बिना नहीं रह सकता है और हे स्वामी! मुझे भी ज्ञात है कि आप मेरे बिना नहीं रह सकते हैं। जो मुझ भाग्यवान्‌के बिना मखमली शय्यापर रातमें सो नहीं सकते हैं और भोजन नहीं कर सकते हैं, वह कृपालु स्वामी चौदह वर्षपर्यन्त मेरे बिना वनमें कैसे रह लेंगे? इसलिये हे कृपासागर! बहाना बनाकर मुझे रोकिये मत, स्वयं दुःख सहिये मत और मुझे प्राण देनेके लिये विवश करिये मत। श्रीरामके पास कोई प्रत्युत्तर नहीं था। कृपालु प्रभुने आज्ञा प्रदान कर दी। हे सुमित्राकुमार! जाओ, अपने सुहृज्जनोंसे, माता-पिता आदि सबसे पूछकर—आज्ञा लेकर आ जाओ—

व्रजापृच्छस्व सौमित्रे सर्वमेव सुहृज्जनम्॥

(२।३१।२८)

श्रीराम, लक्ष्मण, सीता तीनोंने अपने-अपने निजधन ब्राह्मणोंको दान दे दिये।

श्रीरामजीने अपनी करुणामयी आँखोंसे अपने निजसेवकोंको—आश्रितजनोंको देखा। वे कुछ बोल नहीं पा रहे हैं, क्योंकि प्रेमाविष्ट हैं। इन्होंने कभी आज्ञाकी अवज्ञा नहीं की है, क्योंकि अनुशिष्ट हैं। ज्यों-ज्यों ठाकुर आगे चल रहे हैं ये भी उन्हींके साथ समानान्तर-दूरीसे चल रहे हैं। इनकी आँखोंसे स्नेहिल झरने बह रहे हैं। प्रभुने सबको बुलाकर हृदयसे लगाकर आश्वस्त किया और चौदह वर्षके लिये जीविका प्रदान की। उन्हें कार्य सौंपा कि मेरा और लक्ष्मणका भवन कभी सूना न करना—

अथाब्रवीद् बाष्पगलांस्तिष्ठतश्चोपजीविनः।

स प्रदाय बहु द्रव्यमेकैकस्योपजीवनम्॥
लक्ष्मणस्य च यद् वेश्म गृहं च यदिदं मम।
अशून्यं कार्यमेकैकं यावदागमनं मम॥

(२।३२।२४-२५)

श्रीतुलसीदासजीने भी इस प्रसङ्गका बड़ा भावपूर्ण चित्रण किया है—

दासीं दास बोलाइ बहोरी।
गुरहि सौंपि बोले कर जोरी॥
सब कै सार सँभार गोसाईं।
करबि जनक जननी की नाईं॥

(२।८०।५-६)

इसके अनन्तर गर्गगोत्रीय त्रिजट नामक ब्राह्मणकी बड़ी रोचक कथा है। वे तो त्रेताके सुदामा ही थे। प्रभुने उन्हें श्रीसरयूजीके उस पारका राजा ही बना दिया। उनकी दीनता नष्ट हो गयी। वे सपरिवार प्रसन्न होकर भगवान्‌को आशीर्वादोंसे अलङ्कृत कर दिये। मेरे श्रीरामजी तो परम ब्रह्मण्य हैं। ब्राह्मणोंका आशीर्वाद ही उनका आभूषण है—

ततः सभार्यस्त्रिजटो महामुनि
गंवामनीकं प्रतिगृह्य मोदितः।
यशोबलप्रीतिसुखोपबृंहिणी-
स्तदाशिषः प्रत्यवदन्महात्मनः॥

(२।३२।४३)

इस प्रकार अपना धन आदि दान करके श्रीसीताजीके साथ श्रीराम-लक्ष्मण पिताजीके दर्शन करनेके लिये प्रस्थान किये—

दत्त्वा तु सह वैदेह्या ब्राह्मणेभ्यो धनं बहु।
जग्मतुः पितरं द्रष्टुं सीतया सह राघवौ॥

(२।३३।१)

उस समयतक श्रीअयोध्याजीमें चारों ओर वनगमनकी बात फैल गयी—

नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी।
छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥

श्रीअयोध्याका जनमानस क्षुब्ध हो गया। श्रीसीता-लक्ष्मणको पैदल जाते देखकर नर-नारी कहने लगे—हा हन्त! कलतक जिन जानकीको कोशलराजपुत्रवधूको आकाशके प्राणी भी नहीं देख पाते थे, आज वे ही श्रीरामवल्लभा सीता सड़कोंपर पैदल जा रही हैं—

या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि।
तामद्य सीतां पश्यन्ति राजमार्गगता जनाः॥

(२।३३।८)

हमलोग भी अपने उद्यानोंको, खेती-बारीको, घरोंको परित्याग करके, श्रीरामजीके दुःख-सुखके साथी बनके इनके पीछे-पीछे चलेंगे—

उद्यानानि परित्यज्य क्षेत्राणि च गृहाणि च।
एकदुःखसुखा राममनुगच्छाम धार्मिकम्॥

(२।३३।१७)

सर्वत्र हाय-हाय मच गया, लोग फूट-फूटकर रो पड़े, श्रीअयोध्याजीमें आँसुओंकी बाढ़ आ गयी। सब एक स्वरसे कहने लगे—हम रामजीके साथ रहेंगे। वन ही हमारा नगर बन जायगा और जिसे हम छोड़ देंगे वह वीरान जंगल बन जायगा। हमलोग राघवेन्द्रके साथ वनमें आनन्दपूर्वक रहेंगे—

राघवेण वयं सर्वे वने वत्स्याम निर्वृताः॥

(२।३३।२५)

श्रीरामजी इस प्रकार लोगोंका करुण क्रन्दन सुनते हुए चले जा रहे हैं, उनके मनमें कोई विकार नहीं उत्पन्न हुआ—**‘न विचक्रेऽस्य मानसम्’**। वे मतवाले गजराजकी भाँति चलते हुए माता कैकेयीके महलमें प्रविष्ट हुए—

अभिचक्राम धर्मात्मा मत्तमातङ्गविक्रमः॥

(२।३३।२७)

श्रीसुमन्त्रने राजासे कहा—हे अयोध्यानाथ! पुरुषसिंह श्रीरामजी अपना समस्त धन ब्राह्मणों और आश्रितजनोंको देकर द्वारपर खड़े हैं। हे पृथ्वीनाथ! अब ये महान् जंगलमें चले जायँगे। आप इन्हें जी भरकर देख लें—

गमिष्यति महारण्यं तं पश्य जगतीपते।

(२।३४।८)

सुनकर श्रीदशरथने कहा—हे मेरे विश्वस्त सखा! मेरी समस्त स्त्रियोंको बुलाओ। आज मैं उनके साथ अपने रामको देखना चाहता हूँ—

सुमन्त्रानय मे दारान् ये केचिदिह मामकाः।
दारैः परिवृतः सर्वैर्द्रष्टुमिच्छामि राघवम्॥

(२।३४।१०)

आचार्योंने कहा है कि श्रीदशरथ मानो कहना चाहते हैं—'हे मातृवत्सल राम! एक कैकेयीके कहनेसे तुम वन जा रहे हो, ये तुम्हारी समस्त माताएँ तुम्हारे वियोगकी कल्पनासे अतिशय व्याकुल हैं। हे लालजी! इनके तुम ही एकमात्र पुत्र हो। क्या तुम इन वत्सलहृदया माताओंको छोड़ दोगे? श्रीकौसल्याजीके साथ साढ़े तीन सौ माताएँ आ गयीं।' उनके आनेपर महाराजने कहा—'हे सुमन्त्र! मेरे लालको बुलाओ—' '**सुमन्त्रानय मे सुतम्**'। अपने वात्सल्यभाजन पुत्र श्रीरामको आते देखकर अपनी स्त्रियोंके साथ श्रीदशरथजी सहसा उठ खड़े हुए। उस समय वे नरेश आर्त थे—उनकी आँखोंसे गङ्गा-यमुना बह रही थीं, उनका हृदय वियोग-वेदनासे परिपूर्ण था। महाराज उठकर अपने बद्धाञ्जलि रामकी ओर बड़े वेगसे दौड़े। अपनी स्त्रियोंके साथ आगे-आगे चले। अहा! क्या ही अच्छा दृश्य होता, भले ही अत्यन्त करुण दृश्य होता, भले ही श्रीरामजी न रुक पाते; परंतु रानियोंके साथ स्नेहिल संवाद सुननेको मिल जाता, परन्तु श्रीरामके निकट पहुँचनेके पूर्व ही श्रीदशरथ पृथ्वीपर गिर पड़े और मूर्च्छित हो गये—

सोऽभिदुद्राव वेगेन रामं दृष्ट्वा विशाम्पतिः।
तमसम्प्राप्य दुःखार्तः पपात भुवि मूर्च्छितः॥

(२।३४।१७)

समस्त रानियाँ करुण क्रन्दन करने लगीं। सारे महलमें हा राम! हा राम! का आर्त्तनाद गूँज उठा। श्रीलक्ष्मण रो पड़े, श्रीसीता सिसक पड़ीं और श्रीरामजीके भी धैर्यका बाँध टूट गया वे भी फफक पड़े। श्रीराम, सीता, लक्ष्मण अपने आँसुओंसे चक्रवर्तीजीका अभिषेक करते हुए पलँगपर बिठा दिये—

तं परिष्वज्य बाहुभ्यां तावुभौ रामलक्ष्मणौ।
पर्यङ्के सीतया सार्द्धं रुदन्तः समवेशयन्॥

(२।३४।२०)

एक मुहूर्त्तके पश्चात् जब राजाकी चेतना लौटी तब शोकके आँसुओंके समुद्रमें आकण्ठ-निमग्न श्रीदशरथजीसे श्रीरामजीने कहा—'हे पितः! मुझे क्षमा करें। मैंने सीता और लक्ष्मणको अनेक प्रकारसे रोकनेका प्रयास किया; परंतु ये रुके नहीं। मुझे विवश होकर इन्हें वनगमनकी आज्ञा देनी पड़ी। हे राजन्! अब आप हमें आशीर्वाद प्रदान करें और वनयात्राके लिये आज्ञा प्रदान करें। श्रीदशरथजीने कहा—'हे राघव! मैं तो कैकेयीके वरदानके कारण मोहग्रस्त हो गया हूँ। यह ठीक है कि मैं सूर्यकुलमें कलङ्क नहीं बनना चाहता, यह भी ठीक है कि मैं प्रतिज्ञा करके तुमको बलात् रोकना भी नहीं चाहता, यह भी ठीक है कि मैं सूर्यकुलकी पीत पताकाको ऊँचा ले जाना चाहता हूँ, उसको धूलधूसरित नहीं देखना चाहता, परंतु यह भी ठीक है कि हे रघुनन्दन! तुम मुझे बन्धनमें

डालकर राज्यका उपभोग कर सकते हो। उस बन्धनमें मुझे सुख ही मिलेगा—'

अहं राघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः।
अयोध्यायां त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य माम्॥

(२।३४।२६)

श्रीरामने कहा—'हे वत्सल पितः! मैं राज्य नहीं चाहता हूँ, मैं तो वनमें ही निवास करूँगा—'

अहं त्वरण्ये वत्स्यामि न मे राज्यस्य काङ्क्षिता॥

(२।३४।२८)

हे नरश्रेष्ठ! मैं तो यह चाहता हूँ कि युग-युगान्तर कल्पकल्पान्तरमें लोग कहते रहें कि एक सत्यवादी राजा दशरथ थे, जिन्होंने अपने प्रियतम पुत्रको छोड़ दिया; परंतु सत्यको नहीं छोड़ा— '**त्वामहं सत्यमिच्छामि नानृतं पुरुषर्षभ**'। श्रीरामने बहुत प्रकारसे समझाया और यह कहा कि मैंने राष्ट्र, नगर सब कुछ छोड़ दिया। आप इसे भरतको दे दें—'**मया विसृष्टा भरताय दीयताम्**'। हे पिताजी! अब मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ सुदीर्घ कालपर्यन्त वनमें निवास करनेके लिये यहाँसे प्रस्थान कर रहा हूँ—

अहं निदेशं भवतोऽनुपालयन्
वनं गमिष्यामि चिराय सेवितुम्॥

(२।३४।५५)

श्रीरामजीका निश्चय श्रवण करके उन्हें अपने हृदयसे लगाकर मूर्च्छित होकर श्रीदशरथ भूमिपर गिर पड़े। उस समय कैकेयीको छोड़कर सभी देवियाँ रुदन करने लगीं। महाराजके सहायक, सखा, मन्त्री, सारथी, स्वामीकी छायाकी तरह अनुसरण करनेवाले सुमन्त्रजी भी रोते-रोते मूर्च्छित हो गये। चारों ओर हा-हाकार मच गया। अत्यन्त करुण दृश्य उपस्थित हो गया—

देव्यः समस्ता रुरुदुः समेता-
स्तां वर्जयित्वा नरदेवपत्नीम्।
रुदन् सुमन्त्रोऽपि जगाम मूर्च्छां
हाहाकृतं तत्र बभूव सर्वम्॥

(२।३४।६१)

चेतना लौटनेपर सुमन्त्रजी अपना सिर पीटने लगे, बार-बार लम्बी श्वास लेने लगे, हाथों-से-हाथ मलने लगे और दाँत कटकटाने लगे—

ततो निधूय सहसा शिरो निःश्वस्य चासकृत्।
पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य दन्तान् कटकटाय्य च॥

(२।३५।१)

वे आँखें लाल करके अपने तीक्ष्ण वाग्बाणसे कैकेयीके हृदयको कम्पित-सा करने लगे— '**कम्पयन्निव कैकेय्या हृदयं वाक्शरैः शितैः**'। हे देवि! संसारमें ऐसा कोई दुष्ट कर्म नहीं है जिसे तुम न कर सको। तुम पतिकी हत्यारिणी और कुलघातिनी हो— '**पतिघ्नीं त्वामहं मन्ये कुलघ्नीमपि चान्ततः**'। हे देवि! महाराज सत्यप्रतिज्ञ हैं, वे अपनी प्रतिज्ञा असत्य नहीं करेंगे। आप ज्येष्ठ और श्रेष्ठ पुत्र श्रीरामका अभिषेक होने दें, अन्यथा संसारमें महती निन्दा होगी—

परिवादो हि ते देवि महाँल्लोके चरिष्यति।

(२।३५।३३)

श्रीसुमन्त्रने अनेक प्रकारसे नीतिपूर्वक समझाया। परंतु हा हन्त! वे भी असफल रहे। श्रीदशरथजीने अपने सखा सुमन्त्रसे कहा—'रत्नोंसे भरी-पूरी चतुरङ्गिणी सेनाको रामके पीछे जानेकी आज्ञा दो। मेरा खजाना और अन्न-भण्डार रामके साथ जाय और भी राजोचित अन्य सामग्रियोंको श्रीरामजीके साथ जानेकी आज्ञा दी। कैकेयीने उसका मुखर विरोध किया। उसने कहा—आपके वंशमें राजा सगरने अपने पुत्र असमञ्जसको निर्वासित करके राज्यका दरवाजा सदाके लिये बन्द कर दिया था, उसी तरह रामको भी यहाँसे जाना चाहिये—

तवैव वंशे सगरो ज्येष्ठपुत्रमुपारुधत्।

असमञ्ज इति ख्यातं तथायं गन्तुमर्हति॥

(२।३६।१६)

कैकेयीके वचनोंको सुनकर श्रीदशरथजीने कहा—'धिक्कार है। वहाँके सब लोग लज्जासे गड़ गये। राजाके एक वयोवृद्ध सर्वमान्य मन्त्री थे सिद्धार्थ। उन्होंने कैकेयीका स्पष्ट विरोध किया और कहा—असमञ्जस अपराधी था, अतः उसे राजा सगरने निर्वासित किया। तुम रामजीमें दोषकी छाया भी बता सकती हो? जो सदा सन्मार्गमें स्थित है ऐसे रामका त्याग, धर्म और न्यायकी दृष्टिसे अनुचित है। सिद्धार्थकी बातका कैकेयीके पास कोई उत्तर नहीं था परंतु हा हन्त! वह अपने निश्चयपर दृढ़ रही।

उस समय श्रीरामने कहा—'हे पितः! जिस महादानीने गजराजका दान कर दिया और उसके रस्सेको नहीं देना चाहता वह अच्छा नहीं करता; क्योंकि गजराजका त्याग करनेवाले पुरुषको उसकी रज्जुमें आसक्त होनेकी क्या आवश्यकता है?'

यो हि दत्त्वा द्विपश्रेष्ठं कक्ष्यायां कुरुते मनः।
रज्जुस्नेहेन किं तस्य त्यजतः कुञ्जरोत्तमम्॥

(२।३७।३)

हे राजन्! मुझे सेनाकी क्या आवश्यकता है? मुझे तो खन्ती, पिटारी और चिपिया लाइये और पहननेके लिये चीर—चिथड़े या वल्कल वस्त्र ही पर्याप्त हैं। कैकेयीने स्वयं अपने हाथोंसे चीर लाकर दे दिया। श्रीराम और लक्ष्मणने अपने रेशमी वस्त्र उतारकर उन्हें धारण कर लिये। परंतु राजकुमारी परम सुकुमारी श्रीसीताजी इन चीरोंको हाथमें लेकर रुदन करने लगीं—'**अश्रुसम्पूर्णनेत्रा च धर्मज्ञा धर्मदर्शिनी**'। अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे श्रीमैथिलीने अपने प्राणेश्वरको देखकर नेत्रोंकी भाषामें कहा—मेरे नाथ! मुझे गलत न समझना, मैं इसलिये नहीं रो रही हूँ कि मुझे जंगल जाना है, इसलिये नहीं रो रही हूँ कि अब मुझे चिथड़ा या वल्कलवस्त्र पहनना होगा, इसलिये नहीं रो रही हूँ कि कौशेय साड़ी उतारनी होगी। हे मेरे जीवनसारसर्वस्व! आपके साथ रहकर मुझे किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। मैं तो केवल इसलिये रो रही हूँ कि मेरी माँने मुझे यह वस्त्र धारण करना नहीं सिखाया है। हे स्वामी! इसे किस प्रकार पहना जाता है आप बतावें— '**कथं नु चीरं बध्नन्ति**'। प्रभु श्रीरामजीने श्रीसीताजीकी साड़ीके ऊपरसे बाँधकर उसे बाँधना—धारण करना सिखाया—

चीरं बबन्ध सीतायाः कौशेयस्योपरि स्वयम्॥

(२।३७।१४)

इस दृश्यको देखकर सारा महल चीत्कार कर उठा। सबके नेत्रोंसे झरने झरने लगे—'**मुमुचुर्वारि नेत्रजम्**'। माता कौसल्याने जब श्रीसीताजीके हाथोंमें वल्कल देखा तो चीख पड़ीं—सीते! इनका स्पर्श मत करो। बहू! बहू! माँ चिल्लायीं, आँखें दूनी भर आयीं—

हाथ हटा ये वल्कल हैं मृदुतम तेरे करतल हैं।
यदि ये छू भी जावेंगे तो छाले पड़ जावेंगे।

(मैथिलीशरण गुप्त)

सब लोग रो पड़े। करुण-क्रन्दनसे सारा महल भर गया। मुझसे पूछोगे तो मैं कहूँगा कि दीवारें रो रही होंगी, ये साज-सज्जा रो रही हैं, ये झाड़-फानूस रो रहे हैं, ये सामग्रियाँ रो रही हैं, इसे अतिशयोक्ति न समझना और न मुझे पागल समझना, मैं ठीक कह रहा हूँ। श्रीसीताके चीर धारणको देखकर जड़ भी रो रहे हैं और चेतन भी करुण-क्रन्दन कर रहे हैं। मैं निवेदन करूँ, जो जीवनमें कभी नहीं रोया, जिसकी आँखोंमें शोकके आँसू कभी नहीं आये। श्रीरामका समस्त चरित्र जिसके लिये करतलस्थित आमलक-

फलके समान हैं। जो जानते हैं कि श्रीरामको वन जाना है, रावणादिका वध करना है और फिर लौटकर श्रीअयोध्यामें आकर राजा बनना है। परंतु वे त्रिकालज्ञ आथर्वणी महात्मा श्रीवशिष्ठ भी आज रो पड़े—

चीरे गृहीते तु तया सबाष्पो नृपतेर्गुरुः।

(२।३७।२१)

श्रीवसिष्ठके श्वेत श्मश्रुपर—दाढ़ीके बालोंपर उनके आँसू झर-झर झरने लगे। उनका धैर्य विचलित हो गया। उनका जन्म-जन्मका वात्सल्य जाग्रत् हो गया। वे भी चीख पड़े—सीते! पुत्रि! वल्कल मत पहनो, और कैकेयीसे कहने लगे—'अरी दुर्बुद्धे! अरी कुलपांसनि! अरी कैकेयि! अरी मर्यादाका उल्लंघन करनेवाली क्रूरे! तूने मेरे भोले-भाले शिष्य राजा दशरथको ठग लिया, अब भी तू सीमोल्लंघन करना चाहती है। हे शीलवर्जिते! हे दुःशीले! यह सुनैनाकी लाड़ली बेटी, कौसल्याकी आँखोंकी पुत्तलिका वन नहीं जायगी। अब राज्यपर न राम बैठेंगे न भरत। अब तो यही राज्य करेगी। श्रीरामचन्द्रकी आत्मा सीता ही पृथ्वीका पालन करेगी—'

न गन्तव्यं वनं देव्या सीतया शीलवर्जिते।
अनुष्ठास्यति रामस्य सीता प्रकृतमासनम्॥
आत्मा हि दाराः सर्वेषां दारसङ्ग्रहवर्तिनाम्।
आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनीम्॥

(२।३७।२३-२४)

यह तो वास्तवमें पुत्री होनेके नाते पृथ्वीकी वास्तविक उत्तराधिकारिणी है। इस प्रकार श्रीवसिष्ठका बड़ा भावपूर्ण प्रसङ्ग है, मैं उसको विवशताजन्य प्रणाम करके आगे बढ़ रहा हूँ। श्रीवसिष्ठने कहा—'अरी क्रूर हृदये! अरी कटुभाषिणि! श्रीरामचन्द्रके साथ पशु, सर्प, मृग और पक्षी भी चले जा रहे हैं। वृक्ष भी श्रीरामके साथ जानेको प्रस्तुत हैं—'

द्रक्ष्यस्यद्यैव कैकेयि पशु व्यालमृगद्विजान्।
गच्छतः सह रामेण पादपांश्च तदुन्मुखान्॥

(२।३७।३३)

इतना सब होनेपर भी श्रीसीताजीकी यही इच्छा थी कि मैं अपने प्रियतम पतिके समान वेशभूषा धारण करूँ और वे चीरधारण कर्मसे विरत नहीं हुईं—

नैव स्म सीता विनिवृत्तभावा
प्रियस्य भर्तुः प्रतिकारकामा॥

(२।३७।३७)

श्रीसीताने चीर धारण कर लिया। लोगोंके मध्यमें मुग्धाश्रमणी—तपस्विनीकी भाँति चीर धारण करके खड़ी हैं—

या चीरमासाद्य जनस्य मध्ये
स्थिता विसंज्ञा श्रमणीव काचित्॥

(२।३८।५)

श्रीरामजीको यात्राके लिये प्रस्तुत देखकर श्रीदशरथजीने श्रीसुमन्त्रको आज्ञा दी—हे सुमन्त्र! औपवाह्य रथमें—राजाके योग्य रथमें—सवारीके योग्य रथमें उत्तम घोड़े जोतकर ले आओ। श्रीरामको उसमें बिठाकर इस जनपदके बाहरतक पहुँचा आओ—

औपवाह्यं रथं युक्त्वा त्वमायाहि हयोत्तमैः।
प्रापयैनं महाभागमितो जनपदात् परम्॥

(२।३९।१०)

श्रीकौसल्याजीने श्रीसीताजीको दोनों भुजाओंसे कसकर हृदयमें लगा लिया और उन्होंने श्रीसीताजीको अनेक प्रकारकी व्यावहारिक, पारमार्थिक सेवा-सम्बन्धी अलौकिक शिक्षाएँ दीं।

श्रीरामजी, श्रीलक्ष्मणजी, श्रीसीताजीने बद्धाञ्जलि होकर विनम्रतापूर्वक श्रीदशरथजीको प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की—

अथ रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः।

उपसङ्गृह्य राजानं चक्रुर्दीनाः प्रदक्षिणम्॥

(२।४०।१)

वियोग-व्यथासे व्याकुल श्रीकौसल्याको देखकर श्रीरामजीने सीताजीके साथ उनके श्रीचरणोंमें अभिवादन किया। श्रीलक्ष्मणने भी पहले माता कौसल्याको, तदनन्तर माता सुमित्राके चरणोंको पकड़कर प्रणाम किया। तब माता सुमित्राने श्रीलक्ष्मणको भावपूर्ण उपदेश किया कि हे लक्ष्मण! तुम श्रीरामको ही अपना पिता दशरथ समझना और श्रीसीताको ही अपनी माता सुमित्रा मानना। हे लालजी! वनको ही श्रीअयोध्याजी जानना। इस भावनासे भावित होकर सुखपूर्वक वनके लिये गमन करो—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥

(२।४०।९)

सुमन्त्रजीकी प्रेरणासे श्रीराम, लक्ष्मण, सीता रथपर चढ़कर चौदह वर्षकी महान् अवधिके लिये, महान् वनके लिये जब जाने लगे तब श्रीअयोध्याके समस्त नर-नारी, सैनिक आदि मूर्च्छित हो गये—

प्रयाते तु महारण्यं चिररात्राय राघवे।
बभूव नगरे मूर्च्छा बलमूर्च्छा जनस्य च॥

(२।४०।१८)

उस समय समस्त नगरमें कोलाहल होने लगा। मतवाले हाथी श्रीरामके वियोगसे क्रुद्ध हो गये कि हमारे रामको न ले जाओ। घोड़े हिनहिनाने लगे कि हम अपने रामको नहीं जाने देंगे। श्रीअयोध्यापुरीके आबालवृद्ध नर-नारी श्रीरामके पीछे उसी प्रकार दौड़े जिस प्रकार आतपव्याकुल—घामसे संतप्त प्राणी पानीकी ओर भागता है।

तत् समाकुलसम्भ्रान्तं मत्तसंकुपितद्विपम्।
हयसिञ्जितनिर्घोषं पुरमासीन्महास्वनम्॥
ततः सबालवृद्धा सा पुरी परमपीडिता।
राममेवाभिदुद्राव घर्मार्तः सलिलं यथा॥

(२।४०।१९-२०)

कुछ लोग रथके पीछे लटक गये और कुछ लोग रथके पार्श्वभागमें—अगल-बगल लटक गये। पैदल चलनेवाले लोग आँसू बहाते हुए रथके पीछे दौड़ते हुए जोर-जोरसे चिल्लाकर कह रहे थे—'हे सुमन्त्रजी! रथको धीरे-धीरे ले चलो। अब इस मुखका दर्शन हमारे लिये दुर्लभ है, हमें जी भरकर देख लेने दो—'

पार्श्वतः पृष्ठतश्चापि लम्बमानास्तदुन्मुखाः।
बाष्पपूर्णमुखाः सर्वे तमूचुर्भृशनिःस्वनाः॥
संयच्छ वाजिनां रश्मीन् सूत याहि शनैः शनैः।
मुखं द्रक्ष्याम रामस्य दुर्दर्शं नो भविष्यति॥

(२।४०।२१-२२)

श्रीअयोध्यामें कितना महान् करुण-क्रन्दन हो रहा है, इसे आप सोचें। सब नहीं रो रहे हैं नगर रो रहा है, पुरी रो रही है। मात्र चेतन ही नहीं रो रहे हैं अपितु जड़ भी रो रहे हैं। केवल पशु नहीं रो रहे हैं पक्षी भी रो रहे हैं। श्रीअयोध्याके वियोगी नर-नारियोंको, पशु-पक्षियोंको, जड़-चेतनको और इनके वियोगको मैं प्रणाम करता हूँ।

अपनी रानियोंके साथ श्रीदशरथजी यह कहते हुए दौड़े— **'प्रियं पुत्रं द्रक्ष्यामि'**—मैं अपने प्रियतम पुत्रको देखूँगा। जिस प्रकार वत्सला धेनु अपने बछड़ेके स्नेहसे, उसको देखनेके लिये सान्ध्य वेलामें अपने स्तनोंसे वात्सल्यरस—दुग्धधारा बहाती हुई 'हम्बा' रव करती हुई दौड़ती है उसी प्रकार वात्सल्यमयी जननी कौसल्या हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण! इस प्रकार उच्चस्वरसे पुकारती हुई, फफक-फफककर रोती हुई—अश्रुवर्षण करती हुई इधर-उधर नाचती—चक्कर लगाती-सी डोल रही थीं—

प्रत्यागारमिवायान्ती सवत्सा वत्सकारणात्।
बद्धवत्सा यथा धेनू राममाताभ्यधावत॥
तथा रुदन्तीं कौसल्यां रथं तमनुधावतीम्।

क्रोशन्तीं राम रामेति हा सीते लक्ष्मणेति च॥
रामलक्ष्मणसीतार्थं स्त्रवन्तीं वारि नेत्रजम्।
असकृत् प्रैक्षत स तां नृत्यन्तीमिव मातरम्॥

(२।४०।४३—४५)

श्रीदशरथजी उच्चस्वरसे पुकार-पुकारकर कह रहे थे—'हे सुमन्त्र! ठहरो—रथको रोको।' श्रीराम कहते थे—'चलो चलो आगे चलो—'

तिष्ठेति राजा चुक्रोश याहि याहीति राघवः।

(२।४०।४६)

श्रीरामने कहा—सम्प्रति रुकनेका कोई औचित्य नहीं है। सुमन्त्रजीने रथको आगे चला दिया।

रथ दूर चला गया। महाराज तबतक वहाँ रुके रहे जबतक रथसे उड़ी हुई धूल दीखती थी। जब श्रीरामजी नहीं, रथ नहीं, रथकी धूल भी दीखनी बंद हो गयी तब श्रीदशरथ अतिशय आर्त्त होकर पृथ्वीपर गिर पड़े—

न पश्यति रजोऽप्यस्य यदा रामस्य भूमिपः।
तदार्तश्च निषण्णश्च पपात धरणीतले॥

(२।४२।३)

उन्हें उठानेके लिये दक्षिणभागमें कौसल्याजी और वामभागमें कैकेयीजी आ गयीं। कैकेयीको देखकर राजाका रोम-रोम जल उठा, उन्होंने चीखकर कहा—'अरी पापनिश्चये! तू मेरे अङ्गका स्पर्श न कर—'

कैकेयि मामकाङ्गानि मा स्प्राक्षीः पापनिश्चये।

(२।४२।६)

आजसे तेरा सम्बन्ध समाप्त हो गया। महाराजने कहा—मुझे शीघ्र ही राममाता कौसल्याके घरमें पहुँचा दो। धूल-धूसरित राजाको श्रीकौसल्याजी राजभवनमें ले आयीं। श्रीदशरथ कौसल्याके भवनमें आकर श्रीरामजीके वस्त्रोंको, उनके जूतोंको, उनसे सम्बन्धित अन्य वस्तुओंको देखकर रामवियोगसे अत्यन्त दुःखी हो गये और वे अपनी भुजाओंको उठाकर उच्चस्वरसे विलाप करते हुए बोले—हा राम! तुम हम दोनोंको त्याग दे रहे हो— '**उच्चैःस्वरेण प्राक्रोशद्धा राम विजहासि नौ॥**'

अर्द्धरात्रिके समय श्रीदशरथजीने कहा—'हे रामजननि! हे कौसल्ये! मेरी दृष्टि रामके साथ चली गयी, अभीतक नहीं लौटी है। मैं तुम्हें नहीं देख पा रहा हूँ। एक बार अपने हाथसे मेरा स्पर्श करो—'

न त्वां पश्यामि कौसल्ये साधु मां पाणिना स्पृश।
रामं मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते॥

(२।४२।३४)

इसके बाद श्रीकौसल्याके विलापका एक सर्गमें वर्णन है। वे कहती हैं—हे सुमित्रे! गजेन्द्रकी भाँति चलनेवाले मेरे राम, महाबाहु धनुर्धारी राम निश्चय ही सीता-लक्ष्मणके साथ वनमें प्रवेश कर रहे होंगे—

नागराजगतिर्वीरो महाबाहुर्धनुर्धरः।
वनमाविशते नूनं सभार्यः सहलक्ष्मणः॥

(२।४३।६)

माता सुमित्रा कौसल्याजीको सान्त्वना देती हैं—'हे राममातः! आपके पुत्र वरद हैं—लोगोंकी कामना पूर्ण करनेवाले हैं। वे आपकी भी कामनाको शीघ्र पूर्ण करेंगे। वे शीघ्र ही आकर अपनी मोटी-मोटी कोमल हथेलियोंसे स्नेहपूर्वक आपके युगल चरणारविन्दोंका संवाहन करेंगे—'

पुत्रस्ते वरदः क्षिप्रमयोध्यां पुनरागतः।
कराभ्यां मृदुपीनाभ्यां चरणौ पीडयिष्यति॥

(२।४४।२८)

हे देवि! आप धैर्य धारण करें, आप शीघ्र ही अपने शूरवीर पुत्रका आनन्दके अश्रुजलसे अभिषेक करोगी—'**मुदास्त्रैः प्रोक्षसे पुत्रम्**'। इस प्रकार सुमित्राजीके आश्वासनसे कौसल्याका समस्त शोक नष्ट हो गया। श्रीराम और श्रीलक्ष्मणकी माताओंकी वन्दना करते हुए हमलोग अब श्रीरामवनयात्राकी कारुण्य-परिपूर्ण लीलाका दर्शन

करनेके लिये अयोध्याके नर-नारियोंकी तरह रथके पीछे चलते हैं।

श्रीरामजीका रथ चला जा रहा है। श्रीरामके परमप्रिय अयोध्यावासी रथके पीछे दौड़ रहे हैं, दौड़ते हुए लौटनेकी प्रार्थना कर रहे हैं। सत्य-सङ्कल्प रघुनन्दन स्नेहपूर्ण दृष्टिसे उनको इस प्रकार देख रहे हैं मानो अपने विशाल नेत्रोंसे उनका समुच्छलित स्नेह-रसपान कर रहे हैं—

अवेक्षमाणः सस्नेहं चक्षुषा प्रपिबन्निव।

(२।४५।५)

समस्त पुरवासी अत्यन्त दीन होकर अश्रुवर्षण कर रहे हैं और रथके पीछे-पीछे भागते हुए चले जा रहे हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि श्रीरामजी अपने गुणरूपी गुणसे—रस्सीसे उन्हें खींचते चले जा रहे हैं।

चकर्षेव गुणैर्बद्धं जनं पुरनिवासिनम्॥

(२।४५।१२)

इसी समय एक अत्यन्त करुण और भावपूर्ण तथा विलक्षण प्रसंग है। कुछ वेदज्ञ ब्राह्मणोंका समूह भी दौड़ता हुआ आ रहा है। वे अवस्थामें वृद्ध हैं, तपमें वृद्ध हैं, भावमें वृद्ध हैं, भक्तिमें वृद्ध हैं और अनुरागमें वृद्ध हैं। परन्तु आज श्रीराम-वियोग सहन नहीं कर पा रहे हैं, चले आ रहे हैं। इनका सिर काँप रहा है, शरीर काँप रहा है, स्वर काँप रहा है। इनके श्मश्रु—दाढ़ी-मूछके बाल श्वेत हैं वे दूरहीसे श्रीरामजीके घोड़ोंको सम्बोधित करते हुए बोले—हे अतिगमनशील रामके अश्वो! लौट आओ—'**निवर्तध्वं न गन्तव्यम्**'। संसारमें जितने कानवाले प्राणी हैं, उनमें तुम्हारे कान सबसे लम्बे हैं, अतः हे घोड़ो! तुम्हें हमारी बात सुननी चाहिये। श्रीरामको लेकर अयोध्या लौट चलो—

कर्णवन्ति हि भूतानि विशेषेण तुरङ्गमाः।
यूयं तस्मान्निवर्तध्वं याचनां प्रतिवेदिताः॥

(२।४५।१५)

श्रीरामजी परम ब्रह्मण्य हैं। वे उनकी स्नेह-विगलित वाणी सुनकर उन्हें देखकर सहसा रथसे नीचे उतर आये। धन्य है! श्रीरामकी ब्रह्मण्यता और धन्य है! प्रभुकी मर्यादापालकता! उस समय प्रभुके चलनेका ढंग अति विलक्षण है— '**सन्निकृष्टपदन्यासो रामो वनपरायणः**'॥ '**सन्निकृष्टो ब्राह्मण-सङ्गमनेच्छया अल्पीभूतः पदन्यासो यस्य सः रामः**'। ब्राह्मणोंको दौड़ना न पड़े इसलिये श्रीरामजी बहुत छोटा पदविन्यास करने लगे। धन्य है! प्रभुकी गति! हे भगवन्! कभी तो आप त्रिविक्रम बन जाते हैं और कभी अल्पविक्रम अर्थात् लघुविक्रम। आपके श्रीचरणोंमें वन्दन है। श्रीरामजीकी इस कृपाका महर्षि वाल्मीकि वर्णन करते हैं। प्रभुके इस चरित्रमें वात्सल्य गुण मुख्य है। प्रभुको घृणाचक्षु—दयार्द्रचक्षु कहा गया है। इसीलिये वे पैदल चलनेवाले ब्राह्मणोंको पीछे छोड़नेका साहस न कर सके—

द्विजातीन् हि पदातींस्तान् रामश्चारित्रवत्सलः।
न शशाक घृणाचक्षुः परिमोक्तुं रथेन सः॥

(२।४५।१९)

इन ब्राह्मणोंकी बड़ी भावमयी प्रार्थना है, विनयपूर्ण भाव निवेदन है। हम उसे प्रणाम करते हुए आगे चलते हैं।

भगवान् श्रीरामका रातमें दर्शन करनेके लिये किंवा रात्रिमें कुछ संदेश देनेके लिये, किंवा श्रीअयोध्याजीकी सीमापर प्रभुका पूजन करनेके लिये, किंवा श्रीरामके पीछे दौड़नेवाले महान् प्रेमी पुरवासियोंको विश्राम देनेके लिये, श्रीरामजीकी गतिको विश्रान्ति देनेके लिये प्रभुकी यात्राको रोकती हुई तमसा नदी आ गयी—

ददृशे तमसा तत्र वारयन्तीव राघवम्॥

(२।४५।३२)

तमसा-तटपर श्रीरामजीने ऐकान्तिक क्षणोंमें श्रीलक्ष्मणसे कहा—'हे सुमित्रानन्दसंवर्द्धन! यदि तुम मेरे साथ न होते तो मुझे भगवती जानकीके लिये विश्वस्त रक्षक खोजना पड़ता—'

अन्वेष्टव्या हि वैदेह्या रक्षणार्थं सहायता॥

(२।४६।९)

तमसाके तटपर रात्रिके नीरव वातावरणमें सब लोग थककर सो रहे हैं। भक्तोंकी चिन्ता करनेवाले श्रीरामचन्द्र श्रीलक्ष्मणके साथ अपने प्यारे पुरवासियोंको देख रहे हैं। प्रभुने विह्वल वाणीमें कहा—'हे सुमित्राकुमार! इन पौरजनोंको देखो, ये वृक्षोंकी जड़ोंका उपधान—तकिया बना करके सो रहे हैं। इन्हें केवल मेरी चाह है, कोई भी बाधा इनकी राह नहीं रोक सकती है। ये अपने घर आदिका ममत्व समाप्त करके आ रहे हैं। हे लक्ष्मण! ये जान दे देंगे पर हमें न जाने देंगे—'

अपि प्राणान् न्यसिष्यन्ति न तु त्यक्ष्यन्ति निश्चयम्॥

(२।४६।२०)

श्रीरामजीने सुमन्त्रजीसे विनम्र शब्दोंमें कहा—'आप यह प्रयत्न करें कि मेरे इन प्रेमियोंको इस प्रकार पुनः न सोना पड़े। आप रथका इस तरह सञ्चालन करें कि जगनेपर रथकी पहियोंकी लीकके सहारे ये हमारा पता न लगा सकें।' '**खोज मारि रथु हाँकहु ताता**'। रथ चलानेकी कलामें परम प्रवीण सुमन्त्रजीने अपने स्वामीकी आज्ञाका यथावत् पालन किया। रथारूढ़ होकर श्रीरामने पुनः प्रस्थान किया।

प्रात:काल जगनेपर श्रीअयोध्यावासियोंने जब अपने जीवनसर्वस्व श्रीरामजीको नहीं देखा तब वे अचेत हो गये। वियोग-शोकसे व्याकुल होकर निश्चेष्ट हो गये—

प्रभातायां तु शर्वर्यां पौरास्ते राघवं विना।
शोकोपहतनिश्चेष्टा बभूवुर्हतचेतसः॥

(२।४७।१)

आँखोंमें आँसू बहाते हुए बहुत खोजा, परंतु खोजनेके लिये प्रभुने कोई आधार ही नहीं छोड़ा था— '**रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं॥**' सब स्नेहव्याकुल स्वरमें कहते हैं—'हा हन्त! हम सो गये, हमारे आराध्य चले गये। वैरिनि नींदने हमें धोखा दे दिया। इसे धिक्कार है। इस नींदने जीवनसर्वस्वसे बिछोह करा दिया। हम महाबाहु विशाल वक्ष:स्थलवाले अपने आराध्यके दर्शनसे वञ्चित हो गये—'

धिगस्तु खलु निद्रां तां ययापहतचेतसः।
नाद्य पश्यामहे रामं पृथूरस्कं महाभुजम्॥

(२।४७।४)

वे भुजाओंको उठाकर अनेक प्रकारसे विलाप करने लगे और रोते-कलपते श्रीअयोध्याजी आ गये।

जो सो जाता है उसे ठाकुरजी छोड़ देते हैं, जागनेवालोंको साथमें रखते हैं। श्रीलक्ष्मणजी और श्रीसीताजी साथमें हैं तथा अन्य लोगोंको छोड़कर चले गये। इस प्रसङ्गपर गम्भीरतासे विचार करना चाहिये। किसी जगनेवालेका साथ करके ये सोनेवाले भी पुनः श्रीरामजीके पास पहुँच जायँगे। जागनेवालेको प्रायः प्रभु छोड़ते नहीं हैं।

तमसा-तटसे आये हुए पुरवासियोंका श्रीअयोध्याजीमें किसीने स्वागत नहीं किया। उनकी स्त्रियाँ उन्हें कोसने लगीं। वे कहती हैं संसारमें एक लक्ष्मणजी ही सत्पुरुष हैं, जो श्रीसीतारामजीकी सेवाके लिये सर्वस्व त्याग करके श्रीरामजीके पीछे-पीछे वन चले गये—

एकः सत्पुरुषो लोके लक्ष्मणः सह सीतया।
योऽनुगच्छति काकुत्स्थं रामं परिचरन् वने॥

(२।४८।८)

श्रीअयोध्यामें लोगोंका उत्साह नष्ट हो गया है। नष्ट वस्तुके प्राप्त होनेपर भी किसीको खुशी

नहीं होती है। विपुल धनराशिके सहसा मिलनेपर भी किसीने उसका अभिनन्दन नहीं किया है। प्रथम बार पुत्ररत्नको उत्पन्न करके भी माताके मनमें उत्साह एवं आनन्दका सञ्चार नहीं हुआ।

नष्टं दृष्ट्वा नाभ्यनन्दन् विपुलं वा धनागमम्।
पुत्रं प्रथमजं लब्ध्वा जननी नाप्यनन्दत॥

(२।४८।५)

श्रीरामजी, श्रीलक्ष्मण और श्रीसीताके साथ बिना व्यवधानके यात्रा कर रहे हैं। वेदश्रुति नदीको पार करके समुद्रगामिनी गोमती नदीको पार किया। इसके बाद स्यन्दिका नदीका अतिक्रमण किया—सई नदीको पार किया— '**ततार स्यन्दिकां नदीम्**'।

श्रीरामचन्द्रजीने सुमन्त्रजीको सम्बोधित करके मदमत्त हंसके समान मधुर स्वरमें कहा—'हे सुमन्त्रजी! मैं अब कब पुनः लौटकर अपने माता-पितासे मिलूँगा और श्रीसरयूजीके समीपवर्ती पुष्पित वनमें आखेटके लिये पर्यटन करूँगा?'

हंसमत्तस्वरः श्रीमानुवाच पुरुषोत्तमः॥
कदाऽहं पुनरागम्य सरय्वाः पुष्पिते वने।
मृगयां पर्यटिष्यामि मात्रा पित्रा च सङ्गतः॥

(२।४९।१४-१५)

श्रीरामजीने सीमापर पहुँचकर श्रीअयोध्याकी ओर मुख करके बद्धाञ्जलि होकर भावपूर्वक श्रीअयोध्याजीको प्रणाम किया—

अयोध्यामुन्मुखो धीमान् प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥

(२।५०।१)

वहाँसे चलकर श्रीरामजी शृङ्गवेरपुर पहुँच गये। श्रीगङ्गाजीका मङ्गलमय दर्शन किया और कहा—'हे सुमन्त्रजी! गङ्गातटके समीप ही इङ्गुदी वृक्ष है, हमलोग आजकी रात्रि यहीं व्यतीत करेंगे—'

सुमहानिङ्गुदीवृक्षो वसामोऽत्रैव सारथे॥

(२।५०।२८)

सुमन्त्रजीने व्यवस्था की, प्रभु वहाँ विश्राम करने लगे, सुमन्त्रजी घोड़ोंकी सेवा करने लगे। शृङ्गवेरपुरमें गुह नामके राजा राज्य करते थे, वे निषाद-जातिके थे और श्रीरामजीके प्राणप्रिय सखा थे—

तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा।
निषादजात्यो बलवान् स्थपतिश्चेति विश्रुतः॥

(२।५०।३३)

उन्होंने जब श्रीरामजीका आगमन सुना तब दौड़कर आये। ठाकुरजीके वनवासी-वेषको देखकर और वनगमनका समाचार सुनकर उन्हें महान् क्लेश हुआ। उन्होंने श्रीरामजीको स्नेहपूर्वक अर्घ्य निवेदन करके कहा—'हे महाबाहो! आप वन नहीं जायँगे, आप राज्य करें। मेरे अधिकारकी समस्त भूमि आपकी है। हे स्वामी! आपका स्वागत है। हम सपरिवार आपके सेवक हैं और आप हमारे स्वामी हैं। हे प्रभो! इस राज्यपर आप भलीभाँति शासन करें—'

अर्घ्यं चोपानयच्छीघ्रं वाक्यं चेदमुवाच ह।
स्वागतं ते महाबाहो तवेयमखिला मही॥
वयं प्रेष्या भवान् भर्ता साधु राज्यं प्रशाधि नः।

(२।५०।३८-३९)

ठाकुरजीने स्नेहिल वाक्योंसे निषादको प्रसन्न करते हुए कहा—'हे सखे! ये घोड़े मेरे पिताजीको बहुत प्रिय हैं। इनकी खाने-पीनेकी व्यवस्था होनेसे मेरा भलीभाँति अर्चन सम्पन्न हो जायगा—'

एते हि दयिता राज्ञः पितुर्दशरथस्य मे।
एतैः सुविहितैरश्वैर्भविष्याम्यहमर्चितः॥

(२।५०।४६)

उस दिन सन्ध्या करके लक्ष्मणजीके द्वारा लाये हुए जलमात्रका ठाकुरजीने सेवन किया—

जलमेवाददे भोज्यं लक्ष्मणेनाहृतं स्वयम्॥

(२।५०।४८)

रात्रिमें निषादराज और लक्ष्मणजीका अति करुण संवाद हुआ है। श्रीनिषादराजने श्रीलक्ष्मणसे आग्रहपूर्वक शयन करनेके लिये कहा; परंतु

श्रीलक्ष्मणजीने शयन नहीं किया उन्होंने कहा—हे निषादराजजी! आज भगवान् श्रीरामजी और सीताजी भूमि-शयन कर रहे हैं। इस स्थितिको देखकर क्या मुझे नींद आ सकती है? किं वा जीवन धारण करनेके लिये स्वादिष्ट अन्न खा सकता हूँ? अथवा अन्य सुख भोग सकता हूँ?

कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सह सीतया।
शक्या निद्रा मया लब्धुं जीवितं वा सुखानि वा॥

(२।५१।९)

प्रात:काल हुआ, स्नान, सन्ध्या-कर्मसे निवृत्त होकर श्रीरामजीने निषादराजसे बरगदका दूध मँगाया—

जटाः कृत्वा गमिष्यामि न्यग्रोधक्षीरमानय।

(२।५२।६८)

निषादराजने सद्यः वटक्षीर लाकर श्रीरामजीको दे दिया। श्रीरामने वटक्षीरसे अपनी और लक्ष्मणजीकी जटाएँ बनायीं। महाबाहु नरशार्दूल रघुनन्दन देखते-देखते जटाधारी हो गये—

लक्ष्मणस्यात्मनश्चैव रामस्तेनाकरोज्जटाः।
दीर्घबाहुर्नरव्याघ्रो जटिलत्वमधारयत्॥

(२।५२।६९)

इस प्रसङ्गसे शिक्षा लेनी चाहिये कि वेषका भी महत्त्व होता है। जटाका भी महत्त्व होता है, कण्ठी, तिलकका भी महत्त्व होता है। भारतीय संस्कृतिके आराध्य श्रीराम-लक्ष्मणने आज स्वयं जटा बना करके वेषका महत्त्व बढ़ा दिया है।

श्रीराम-लक्ष्मणकी अलकावलियोंका स्थान जटामण्डलने ले लिया। वटके दूधका उपयोग देखकर श्रीसुमन्त्र, निषाद आदि सभी व्याकुल होकर रो पड़े—

अनुज सहित सिर जटा बनाए।
देखि सुमंत्र नयन जल छाए॥

समय पाकर सुमन्त्रजीने श्रीरामजीसे श्रीअवध लौट चलनेकी प्रार्थना की, परंतु सत्यसङ्कल्प श्रीरामने अस्वीकार कर दिया। सुमन्त्रने रोते-रोते कहा—'हे रघुनन्दन! हमलोग मारे गये। हे वत्स! तुमने हमें ठग लिया—'

वयं खलु हता राम ये त्वया ह्युपवञ्चिताः।

(२।५२।१९)

ऐसा कहकर बहुत देरतक रोते रहे—'**दुःखार्तो रुरुदे चिरम्**'। ठाकुरजीने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया, अनेक प्रकारसे प्रबोध किया। श्रीसुमन्त्रने कहा हे प्रभो! ये आपके भक्त घोड़े आपके बिना श्रीअयोध्या कैसे जायँगे? हे स्वामी! मैं आपके बिना अयोध्या लौटकर नहीं जाऊँगा। हमें भी अपने साथ वनमें चलनेकी अनुमति प्रदान करिये—

कथं रथं त्वया हीनं प्रवाहयन्ति हयोत्तमाः॥
तन्न शक्ष्याम्यहं गन्तुमयोध्यां त्वदृतेऽनघ।
वनवासानुयानाय मामनुज्ञातुमर्हसि॥

(२।५२।४७-४८)

हे भृत्यवत्सल! आप मेरे स्वामीके पुत्र हैं, आपका मार्ग ही मेरा उचित मार्ग है। मैं आपका भक्त हूँ, आपका सेवक हूँ, मैंने सेवककी मर्यादाका कभी परित्याग नहीं किया है, अतः आप मेरा परित्याग न करें—

भृत्यवत्सल तिष्ठन्तं भर्तृपुत्रगते पथि।
भक्तं भृत्यं स्थितं स्थित्या न मा त्वं हातुमर्हसि॥

(२।५२।५८)

श्रीरामजीने सुमन्त्रजीको पुनः समझाया और कहा—आप मेरा तथा महाराजका प्रिय करनेके लिये श्रीअवधपुरी पधारें—'**मम प्रियार्थं राज्ञश्च सुमन्त्र त्वं पुरीं व्रज।**' हे तात! आपके समान इक्ष्वाकुवंशियोंका सुहृद् और कोई नहीं हो सकता है। मेरे पिताजी जिस प्रकार मेरा शोक न करें, आप वही उपाय करें। मेरे माता-पिताके श्रीचरणोंमें श्रीसीता-लक्ष्मणसहित मेरा प्रणाम कहियेगा। और भी अनेक प्रकारके संदेश देकर विलपते हुए, कलपते हुए, अश्रुवर्षण करते हुए

सुमन्त्रको रघुनन्दनने विदा कर दिया। श्रीरामजी नावके द्वारा गङ्गाका अतिक्रमण करके पैदल ही चल पड़े। आगे-आगे श्रीलक्ष्मण चल रहे थे, उनके पीछे श्रीसीता चल रही थीं। दोनोंके पीछे श्रीरामजी दोनोंका परिरक्षण करते हुए चल रहे थे—

अग्रतो गच्छ सौमित्रे सीता त्वामनुगच्छतु॥
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि सीतां त्वां चानुपालयन्।

(२।५२।९५-९६)

इस चलनेके क्रममें भगवान्‌की भक्तवत्सलता उजागर हो रही है। गङ्गापार कर जाते हुए जबतक श्रीराम दिखायी दिये तबतक सुमन्त्र अपलक नेत्रोंसे उन्हें देखते रहे। प्रभुके दृष्टिसे ओझल होनेके बाद परम व्याकुल होकर परम तपस्वी सुमन्त्र रुदन करने लगे—

गतं तु गङ्गापरपारमाशु
रामं सुमन्त्रः सततं निरीक्ष्य।
अध्वप्रकर्षाद् विनिवृत्तदृष्टि-
र्मुमोच बाष्पं व्यथितस्तपस्वी॥

(२।५२।१००)

कुछ दूर जाकर श्रीसीता-लक्ष्मणके साथ श्रीरामजी एक वृक्षके नीचे विश्राम कर रहे थे। उसी समय प्रभुने श्रीलक्ष्मणके धैर्यकी और प्रेमकी परीक्षा लेनेके विचारसे श्रीकौसल्या, सुमित्राके अनिष्टका भय दिखाकर श्रीलक्ष्मणसे श्रीअयोध्या लौट जानेके लिये कहा। परंतु श्रीलक्ष्मणने उत्तर दिया—'हे राघवेन्द्र! आपको इस प्रकार नहीं कहना चाहिये। आपके बिना जलसे निकाली गयी मछलीकी तरह न श्रीसीता क्षणभर जीवित रह सकती हैं और न मैं। हे शत्रुदलन रघुनन्दन! आपके बिना मैं, पिताजी, शत्रुघ्न, माता सुमित्रा और स्वर्गलोकको भी नहीं देखना चाहता हूँ—'

न च सीता त्वया हीना न चाहमपि राघव।
मुहूर्तमपि जीवावो जलान्मत्स्याविवोद्धृतौ॥
नहि तातं न शत्रुघ्नं न सुमित्रां परन्तप।
द्रष्टुमिच्छेयमद्याहं स्वर्गं चापि त्वया विना॥

(२।५३।३१-३२)

रात्रिके व्यतीत होनेपर तीनों वहाँसे तीर्थराज प्रयागके लिये प्रस्थित हुए, जहाँ श्रीगङ्गा-यमुनाका पवित्र सङ्गम है। प्रयागमें पहुँचकर श्रीभरद्वाज मुनिके आश्रमपर गये। मुनिके श्रीचरणोंमें श्रीराम-लक्ष्मण, सीताने भावपूर्वक वन्दना की। मुनिने अर्घ्य देकर प्रभुका स्वागत किया और कहा—'हे ककुत्स्थ कुलनन्दन! मैं बहुत दिनोंसे तप करता हुआ आपके मङ्गलमय आगमनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आज मेरी अभिलाषा पूर्ण हो गयी—'

चिरस्य खलु काकुत्स्थ पश्याम्यहमुपागतम्।

(२।५४।२१)

भरद्वाजजीने स्नेहमय स्वागत-सत्कार किया। मुनिने प्रभुसे प्रार्थना की—'हे रघुनन्दन! श्रीगङ्गा-यमुनाके पवित्र सङ्गमके सन्निकट यह स्थान परम पवित्र और सुन्दर है, एकान्त है और साधना करने योग्य है। एतावता आपलोग सुखपूर्वक यहीं निवास करें— '**वसत्विह भवान् सुखम्**'।' प्रभुने कहा—'हे भगवन्! आपका आश्रम वास्तवमें बहुत सुन्दर है; परंतु अयोध्याके निकट होनेके कारण वहाँके लोग हमें देखनेके लिये आते ही रहेंगे। इससे आपकी तपस्यामें विघ्न होगा; सुतराम् आप सोचकर बतायें— 'हम कहाँ निवास करें'।' महर्षिने कहा—'यहाँसे दक्षिण दिशामें कुछ दूरपर चित्रकूट नामका पर्वत है, वह महर्षियोंके द्वारा सेवित और परम पवित्र पर्वत है, वहाँपर वानर, लङ्गूर और रीछ भी निवास करते हैं। उसका बड़ा महत्त्व है, जब मनुष्य चित्रकूटके शिखरोंका दर्शन कर लेता है, तब उसे अनेक कल्याणमय फल सहज ही प्राप्त हो जाते हैं और उसके मनकी प्रवृत्ति पापकर्ममें नहीं होती है।'

यावता चित्रकूटस्य नरः शृङ्गाण्यवेक्षते।
कल्याणानि समाधत्ते न पापे कुरुते मनः॥

(२।५४।३०)

प्रयागमें रात्रिविश्राम करके, प्रातःकालीन कृत्य सम्पन्न करके श्रीरामजीने श्रीभरद्वाज मुनिसे जानेकी अनुमति माँगी। परम भावुकहृदय महर्षि भरद्वाजने स्वस्तिवाचन करके श्रीरामको उसी प्रकार विदा किया, जिस प्रकार एक वत्सलपिता अपने औरस पुत्रको विदा करता है—

तेषां स्वस्त्ययनं चैव महर्षिः स चकार ह।
प्रस्थितान् प्रेक्ष्य तांश्चैव पिता पुत्रानिवौरसान्॥

(२।५५।२)

श्रीरामप्रेमके कारण मुनि बहुत दूरतक ठाकुरजीको पहुँचाने गये। रास्तेमें मार्गके विषयमें भी बताते गये। श्रीरामजीकी प्रार्थनापर विह्वल होकर लौट आये। मुनिके जानेके पश्चात् प्रभुने कहा—'हे सुमित्राकुमार! हमलोगोंने अनेक पुण्य-कर्म किये हैं, उन्हींके प्रभावसे ये महान् संत हमपर अनुकम्पा करते हैं—'

उपावृत्ते मुनौ तस्मिन् रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
कृतपुण्याः स्म भद्रं ते मुनिर्यन्नोऽनुकम्पते॥

(२।५५।११)

श्रीरामजीने यमुनातटपर पहुँचकर कई प्रकारकी लकड़ियोंसे एक बेड़ाका निर्माण किया। श्रीकिशोरीजीके बैठनेके लिये उस बेड़ेमें श्रीलक्ष्मणने सुखद आसनका निर्माण किया—

ततो वैतसशाखाश्च जम्बुशाखाश्च वीर्यवान्।
चकार लक्ष्मणश्छित्त्वा सीतायाः सुखमासनम्॥

(२।५५।१५)

श्रीसीताजी सकुचाती हुई बेड़ापर बैठ गयीं। दोनों भाई पैदल ही बेड़ेको पकड़कर खेने लगे। इस प्रकार तीनोंने तरङ्गमालिनी यमुनाका सन्तरण किया— '**सन्तेरुर्यमुनां नदीम्**'। यमुनातटसे प्रस्थान करके वे श्यामवटके निकट पहुँच गये '**श्यामं न्यग्रोधमासेदुः**'। रात्रिमें वहाँ विश्राम करके प्रातःकालीन सन्ध्यादिसे निवृत्त हो गये। श्रीसीताजीने श्यामवटकी प्रार्थना की। तत्पश्चात् प्रस्थान करके सबने रात्रिमें यमुनातटपर विश्राम किया। प्रातःकाल उठकर श्रीयमुनामें स्नान आदि करके चित्रकूटके लिये प्रस्थान किया। पैदल चलते हुए तीनों रमणीय और मनोरम पर्वत चित्रकूटपर पहुँच गये।

ततस्तौ पादचारेण गच्छन्तौ सह सीतया—
रम्यमासेदतुः शैलं चित्रकूटं मनोरमम्॥

(२।५६।१२)

चित्रकूट पहुँचकर महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें जाकर तीनोंने बद्धाञ्जलि होकर महर्षिके चरणोंमें अभिवादन किया—

इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः।
अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभिवादयन्॥

(२।५६।१६)

धर्मज्ञ महर्षि इनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए और उनका आदर-सत्कार किया।

भगवान्‌की आज्ञासे श्रीलक्ष्मणने बहुत सुन्दर पर्णकुटीका निर्माण किया। विधिवत् पूजन करके तीनोंने उस पर्णकुटीमें उसी प्रकार प्रवेश किया जिस प्रकार देवतालोग सुधर्मासभामें प्रवेश करते हैं—

वासाय सर्वे विविशुः समेताः
सभां यथा देवगणाः सुधर्माम्॥

(२।५६।३४)

इस प्रकार श्रीरामजी सीता और लक्ष्मणके साथ चित्रकूटमें आनन्द और उत्साहपूर्वक निवास करने लगे। उनके निवाससे बड़े-बड़े अमलात्मा महात्मा, वहाँके पशु-पक्षी और कोल, किरात, भील सब निहाल हो गये।

अब आइये हमलोग विरही सुमन्त्रके साथ अयोध्याजी चलें।

श्रीनिषादराज ठाकुरजीके महान् प्रेमी सखा

थे। जब श्रीरामजी निषादको वनमें साथ नहीं ले गये। तब उन्होंने अपने गुप्तचरोंको सब समाचार लेनेके लिये भेजा था। श्रीरामजीका भरद्वाज-आश्रमपर जाना, मुनिके द्वारा स्वागत-सत्कार, श्यामवट होते हुए यमुना पार करके चित्रकूट-निवासपर्यन्त समाचार गुप्तचरोंने आकर सुना दिया—

भरद्वाजाभिगमनं प्रयागे च सभाजनम्।
आगिरेर्गमनं तेषां तत्रस्थैरभिलक्षितम्॥

(२।५७।२)

इन सब बातोंको जानकर, गुहसे विदा लेकर श्रीसुमन्त्र अयोध्या आ गये। श्रीरामके बिना सुमन्त्रको आया देखकर श्रीअयोध्यामें पुनः हाहाकार मच गया। सुमन्त्रजीने अपना मुख ढक लिया था। सुमन्त्र अपनेको अपराधी अनुभव कर रहे थे। वे सोचते थे हा हन्त! मैं श्रीरामजीको वनमें छोड़कर वापस आ गया। अब कौन-सा मुख दिखाऊँ? वे रथ लेकर कौसल्याभवन गये। जहाँ महाराज थे—

स राजमार्गमध्येन सुमन्त्रः पिहिताननः।
यत्र राजा दशरथस्तदेवोपययौ गृहम्॥

(२।५७।१६)

सुमन्त्रसे समस्त समाचार सुनकर श्रीदशरथजी श्रीरामवियोगके शोकसे व्याकुल हो गये और मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े—

स तूष्णीमेव तच्छ्रुत्वा राजा विद्रुतमानसः।
मूर्च्छितो न्यपतद् भूमौ रामशोकाभिपीडितः॥

(२।५७।२६)

मूर्च्छा दूर होनेपर श्रीदशरथजीने अपने सामने धूल-धूसरित, आँसू बहाते हुए दीन भावापन्न सुमन्त्रको देखा—

राजा तु रजसा सूतं ध्वस्ताङ्गं समुपस्थितम्।
अश्रुपूर्णमुखं दीनमुवाच परमार्तवत्॥

(२।५८।४)

राजाने अत्यन्त आर्त्त होकर पूछा—'हे सुमन्त्र! सुकुमारी तपस्विनी सीता और दोनों राजकुमार रथसे उतरकर पैदल कैसे गये होंगे?'

सुकुमार्या तपस्विन्या सुमन्त्र सह सीतया।
राजपुत्रौ कथं पादैरवरुह्य रथाद् गतौ॥

(२।५८।९)

सुमन्त्रने कहा—हे नाथ! मेरी तो बात ही न पूछें, लौटते समय मेरे घोड़े भी गरम-गरम आँसू बहा रहे थे। वे श्रीरामके वियोगमें व्याकुल थे—

मम त्वश्वा निवृत्तस्य न प्रावर्तन्त वर्त्मनि।
उष्णमश्रु विमुञ्चन्तो रामे सम्प्रस्थिते वनम्॥

(२।५९।१)

इसके बाद श्रीसुमन्त्रजीने और सब समाचार निवेदन किये। जिन्हें सुनकर श्रीदशरथकी वियोग-व्यथा और बढ़ गयी। वे विलाप करने लगे—'हा राम! हा लक्ष्मण! हा विदेहराजतनये! तुम लोगोंको नहीं ज्ञात होगा कि मैं आज अनाथकी तरह मर रहा हूँ—'

हा राम रामानुज हा हा वैदेहि तपस्विनि।
न मां जानीत दुःखेन म्रियमाणमनाथवत्॥

(२।५९।२७)

श्रीरामके वियोगमें स्नेहमयी जननी कौसल्या विक्षिप्त-सी हो गयीं। उन्होंने उसी अवस्थामें कहा—'हे सुमन्त्रजी! जहाँ मेरा लाड़ला राम है, दुलारा लक्ष्मण है, मेरी आँखोंकी पुत्तलिका सीता है, मुझे भी वहीं पहुँचा दो। उन तीनोंको देखे बिना मैं एक क्षण भी जीवन-धारण नहीं कर सकती—'

नय मां यत्र काकुत्स्थः सीता यत्र च लक्ष्मणः।
तान् विना क्षणमप्यद्य जीवितुं नोत्सहे ह्यहम्॥

(२।६०।२)

यद्यपि सुमन्त्रने बहुत प्रकारसे समझाया फिर भी वे हा पुत्र! हा प्यारे! हा रघुनन्दन! इस प्रकार करुण क्रन्दन करती ही रहीं—

न चैव देवी विरराम कूजितात्
प्रियेति पुत्रेति च राघवेति च॥

(२।६०।२३)

रोती हुई श्रीकौसल्याने अपने पतिसे कहा—'हे महाराज! आपका यश तीनों लोकोंमें विख्यात है। सब यही जानते हैं कि आप कृपालु, उदार और प्रियवादी हैं—'

यद्यपि त्रिषु लोकेषु प्रथितं ते महद् यशः।
सानुक्रोशो वदान्यश्च प्रियवादी च राघवः॥

(२।६१।२)

परंतु आपने यह नहीं सोचा कि सुकुमार राम, लक्ष्मण, सीता—तीनों वनमें कैसे रहेंगे? राजा जनककी दुलारी मैथिली गर्मी, सर्दी कैसे सहन करेगी? हे राजन्! अब मैं अपने कमलनयन श्रीरामचन्द्रके मुखचन्द्रका दर्शन कब करूँगी? चौदह वर्षकी अवधि पूर्ण करके भी जब मेरा राम आयेगा तब भी क्या राज्य लेगा? हे महाराज! एक ब्रह्मभोजमें पहली पंक्तिमें ब्राह्मण भोजन करके उठ गये। यद्यपि वे सब ब्राह्मण ही थे तथापि जो उत्तम और ज्ञानी ब्राह्मण हैं; क्या वे भुक्तशेष अन्नको—दूसरी पंक्तिमें बैठकर भोजन करेंगे? कभी नहीं करेंगे। वे उसे अपना अपमान मानेंगे। जैसे अच्छी जातिके बैल अपने सींग कटानेको प्रस्तुत नहीं होते हैं—

ब्राह्मणेष्वपि वृत्तेषु भुक्तशेषं द्विजोत्तमाः।
नाभ्युपेतुमलं प्राज्ञाः शृङ्गच्छेदमिवर्षभाः॥

(२।६१।१४)

हे महीपते! इसी प्रकार ज्येष्ठ और वरिष्ठ भाई राम अपने छोटे भाई भरतके द्वारा उपभुक्त राज्यको किस प्रकार स्वीकार करेंगे? क्या वे उस राज्यका त्याग नहीं कर देंगे?

एवं कनीयसा भ्रात्रा भुक्तं राज्यं विशाम्पते।
भ्राता ज्येष्ठो वरिष्ठश्च किमर्थं नावमन्यते॥

(२।६१।१५)

हे नरेन्द्र! जिस प्रकार वनराज सिंह गीदड़ आदिके लाये हुए शिकारको नहीं खाना चाहता है, वह तो स्वयं शिकार करके खानेमें प्रसन्न रहता है। हे प्राणेश्वर! आपका पुत्र राम—पुरुष-शार्दूल राम दूसरोंके द्वारा उपभुक्त राज्यको क्या स्वीकार करेंगे?

न परेणाहृतं भक्ष्यं व्याघ्रः खादितुमिच्छति।
एवमेव नरव्याघ्रः परलीढं न मंस्यते॥

(२।६१।१६)

हे नरेन्द्र! स्त्रीके लिये तो तीन ही आश्रय होते हैं। पहला आश्रय पति होता है, दूसरा पुत्र और तीसरा पिता-भाई आदि। चौथा कोई आश्रय नहीं है। हे राजन्! इन आश्रयोंमें आप तो मेरे हैं ही नहीं, दूसरे आश्रय मेरे पुत्र श्रीरामको निर्वासित कर दिया गया। पिताके न रहनेसे तीसरा आश्रय भी समाप्त हो गया। धर्मके नाते आपकी सेवा छोड़कर मैं अपने पुत्र रामके पास वनमें जाना नहीं चाहती हूँ। हा हन्त! मैं तो आपके द्वारा सर्वथा मारी गयी—

गतिरेका पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः।
तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विद्यते॥
तत्र त्वं मम नैवासि रामश्च वनमाहितः।
न वनं गन्तुमिच्छामि सर्वथा हा हता त्वया॥

(२।६१।२४-२५)

हे राजन्! केवल मैं ही नहीं मारी गयी अपितु रामके निर्वासनसे अन्तरङ्ग राज्योंसहित राष्ट्रका भी नाश हो गया। मन्त्रियोंके सहित सारी प्रजा मारी गयी। पुत्रके सहित मैं मारी गयी और इस नगरके पौरजन भी मारे गये।

केवल आपके पुत्र भरत और कैकेयी दो ही प्रसन्न हुए हैं—

हतं त्वया राष्ट्रमिदं सराज्यं
हताः स्म सर्वाः सह मन्त्रिभिश्च।
हता सपुत्रास्मि हताश्च पौराः
सुतश्च भार्या च तव प्रहृष्टौ॥

(२।६१।२६)

ऐसा कहकर श्रीकौसल्याजी फूट-फूटकर रोने लगीं।

महाराज दशरथ विलज्जित होकर थर-थर काँपते हुए श्रीकौसल्याको प्रसन्न करनेके लिये हाथ जोड़कर बोले—'हे कौसल्ये! तुमने ठीक कहा है, मेरे द्वारा सबका नाश हो गया और मेरा भी सर्वनाश हो गया। हे रामजननि! हे क्षमाशीले! मेरे द्वारा तुम्हारा जितना आदर होना चाहिये वह मैंने नहीं किया। हे दयाशीले! हे मेरी प्राणसखि! तुमने पत्नीके रूपमें, सखीके रूपमें, हितकारिणीके रूपमें जब भी अपने-आपको प्रस्तुत किया, तुम्हारे उन स्वरूपोंका यथेष्ट सम्मान मैं कभी नहीं कर पाया। मैं मानता हूँ कि मैंने सबका नाश किया है, मानता हूँ कि मैंने सारी प्रकृतिका नाश किया है; परंतु हे क्षमाशीले! तुम सदा मुझे क्षमा ही करती आयी हो, अतः आज अन्तिम बार क्षमा कर दो—'

दह्यमानस्तु शोकाभ्यां कौसल्यामाह दुःखितः।
वेपमानोऽञ्जलिं कृत्वा प्रसादार्थमवाङ्मुखः॥
प्रसादये त्वां कौसल्ये रचितोऽयं मयाञ्जलिः।
वत्सला चानृशंसा च त्वं हि नित्यं परेष्वपि॥

(२।६२।६-७)

श्रीकौसल्याने रुदन करते हुए हिचकियोंमें कहा—'हे प्राणेश्वर! इस प्रकार मत कहिये। मैं भूमिष्ठा होकर, पृथ्वीपर नाक रगड़कर आपके श्रीचरणोंमें मस्तक रखकर याचना करती हूँ कि कटु वाक्योंके लिये आप मुझे क्षमा कर दें—'

प्रसीद शिरसा याचे भूमौ निपतितास्मि ते।
याचितास्मि हता देव क्षन्तव्याहं नहि त्वया॥

(२।६२।१२)

हे मेरे जीवनाराध्य! हे चक्रवर्त्ति नरेश! हे क्षमाशील! मैं भी धर्मको जानती हूँ, मैं धर्मका तत्त्व भी जानती हूँ, यह भी जानती हूँ कि आप धर्मके मर्मके विशेष जानकार हैं, यह भी जानती हूँ कि आप रामको मुझसे अधिक प्यार करते हैं, यह भी जानती हूँ कि आपका हृदय मेरी अपेक्षा अधिक वत्सल है और हे प्राणधन! यह भी जानती हूँ कि आपने स्वेच्छासे श्रीरामको निर्वासित नहीं किया है तथा हे प्राणनाथ! यह भी जानती हूँ कि आप सत्यप्रतिज्ञ हैं, सत्यसङ्कल्प हैं और सत्पुरुष हैं। यह मैं जानती हूँ कि आपने कैकेयीको प्रसन्न करनेके लिये रामको निर्वासित नहीं किया है फिर भी मैंने पुत्र-वियोगसे दुःखी होकर बहुत कुछ कह डाला है। हे क्षमाशील! मुझ पुत्र-वियोगिनी, विरहिणी, दीन-दुखिया अबलाको क्षमा कर दें—

जानामि धर्मं धर्मज्ञ त्वां जाने सत्यवादिनम्।
पुत्रशोकार्तया तत्तु मया किमपि भाषितम्॥

(२।६२।१४)

इस प्रकार कहते हुए माता कौसल्या अपने प्राणेश्वरके चरणोंमें गिरकर रोने लगीं। महाराजने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया। महाराजको प्रसन्नता हुई। उसी समय राजाको नींद आ गयी—

अथ प्रह्लादितो वाक्यैर्देव्या कौसल्यया नृपः।
शोकेन च समाक्रान्तो निद्राया वशमेयिवान्॥

(२।६२।२०)

हे कौसल्ये! आज मैं तुम्हें अपने दुष्कर्मकी कहानी सुना रहा हूँ। तुम्हारे विवाहके पहलेकी बात है। मेरी ख्याति थी कि मैं शब्दवेधी बाण चलाता हूँ— '**कुमारः शब्दवेधीति**'। एक दिन सरयू नदीके किनारे मुझे सहसा पानीमें घड़ा भरनेका गुड़-गुड़ शब्द सुनायी पड़ा। मैंने हाथीके जल पीनेकी आवाज समझकर शब्दवेधी बाणका प्रयोग कर दिया। बाणके लगते ही एक तपस्वी चीत्कार करके गिर पड़ा। जब मैं उसके पास पहुँचा तब उस म्रियमाण तपस्वीने कहा—'हे राजन्! आपने एक ही बाणसे तीनको मार डाला है। मेरा तो मर्म विदीर्ण कर ही दिया साथ ही मेरे असहाय अन्धे, वृद्ध, प्यासे माता-पिता भी प्यासे ही मर जायँगे। उन्हींके पीनेके लिये मैं जल भर रहा था—'

एकेन खलु बाणेन मर्मण्यभिहते मयि॥

द्वावन्धौ निहतौ वृद्धौ माता जनयिता च मे।
तौ नूनं दुर्बलावन्धौ मत्प्रतीक्षौ पिपासितौ॥

(२।६३।३९-४०)

हे कौसल्ये! उस तपस्वीकुमारने मेरी व्यथा कम कर दी, परंतु मैं उसकी व्यथा कम नहीं कर सका। मैं व्यथित था कि मुझसे ब्रह्महत्या हो गयी, परंतु उस मुनिकुमारने कहा—हे राजन्! मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, अतः आप दुःखी न हों—

ब्रह्महत्याकृतं तापं हृदयादपनीयताम्।
न द्विजातिरहं राजन् मा भूत् ते मनसो व्यथा॥

(२।६३।५०)

हे कौसल्ये! उसके माता-पिताने मुझे शाप दिया—हे राजन्! सम्प्रति पुत्रवियोगसे जैसे हम मर रहे हैं उसी प्रकार तुम भी पुत्रशोकसे ही कालके ग्रास बनोगे—

पुत्रव्यसनजं दुःखं यदेतन्मम साम्प्रतम्।
एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन् कालं करिष्यसि॥

(२।६४।५४)

मुझे शाप देकर वे दोनों पुत्रवियोगमें मर गये—

तापस अंध साप सुधि आई।
कौसल्यहि सब कथा सुनाई॥
भयउ बिकल बरनत इतिहासा।
राम रहित धिग जीवन आसा॥

श्रीदशरथजी अत्यन्त व्याकुल होकर कहने लगे—'हे कौसल्ये! अब मैं रामवियोगमें अपना प्राण छोड़ूँगा। हे देवि! मैं अपनी आँखोंसे तुम्हें नहीं देखता हूँ, तुम मेरे शरीरका स्पर्श करो—'

यदहं पुत्रशोकेन सन्त्यजिष्यामि जीवितम्।
चक्षुर्भ्यां त्वां न पश्यामि कौसल्ये त्वं हि मां स्पृश॥

(२।६४।६१)

हे राममातः! मैं अपने पुत्र रामके साथ जो व्यवहार किया वह पिताके अनुरूप नहीं था; परंतु मेरे लालका व्यवहार सर्वथा उनके अनुरूप था। इतना कहते-कहते महाराजके महाप्रयाणकी वेला आ गयी। अन्तमें श्रीदशरथजीने कहा—'हा महाबाहो! हा रघुनन्दन! हा ममायासनाशन! हा पिताके प्राणप्रिय पुत्र! हा मेरे अनाथनाथ! हा वत्स! तुम कहाँ चले गये?'

सो तनु राखि करब मैं काहा।
जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा॥
हा रघुनंदन प्रान पिरीते।
तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते॥
हा जानकी लखन हा रघुबर।
हा पितु हित चित चातक जलधर॥
राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम॥

(श्रीरामचरितमानस २।१५५।६—८; दो० १५५)

गतेऽर्धरात्रे भृशदुःखपीडित-
स्तदा जहौ प्राणमुदारदर्शनः॥

(२।६४।७८)

अंतिम पंक्तिमें चक्रवर्त्ती नरेन्द्र महाराज श्रीदशरथके मित्र आदिकवि महर्षि वाल्मीकि अपनी भावाञ्जलि—शब्दपुष्पाञ्जलि समर्पण कर रहे हैं। श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं—हे मेरे मित्र! हे रामके वात्सल्यमय पितः! हे भारतीय संस्कृतिके स्तम्भ! मैं आपके चरित्रको छः अक्षरोंमें गुम्फित कर रहा हूँ— **'उदारदर्शनः'** जिससे देखा जाय उसे दर्शन कहते हैं— **'दृश्यते अनेनेति दर्शनम्'**। महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं—जिस समय महाप्रेमी महाराज महाप्रयाण कर रहे थे, उस समय उनकी भावमयी आँखोंके सामने साक्षात् श्रीसीता, राम, लक्ष्मण उदारभावसे मन्द-मन्द मुसकराते हुए दर्शन दे रहे थे। एक साधारण भक्तकी भी कामना पूर्ण होती है फिर श्रीदशरथ तो महाभाग्यवान् महाभागवत हैं। जिन्होंने अपनी गोदमें पूर्णब्रह्म परमात्माको नन्हे-से शिशुके रूपमें खेलाया और खिलाया हो, उन्हें अन्तमें अपने आराध्यके—प्रेमास्पदके

दर्शन नहीं हुए हों यह असम्भव है। इसलिये वे 'उदारदर्शन हैं अर्थात् उदार आँखोंवाले हैं, किं वा उनकी आँखोंको उदारचक्रचूडामणि श्रीरामने कृतार्थ किया है। श्रीवाल्मीकि लिखते हैं—'हे उदारदर्शन! हम आपको 'उदारदर्शन' कहकर अपनी शब्द-कुसुमाञ्जलि समर्पण कर रहे हैं। दूसरा भाव यह है कि किसी अलभ्य वस्तुको प्राप्त करके अपनी इच्छा तो सभी पूर्ण कर लेते हैं। परंतु जो उदारतापूर्वक दूसरोंको भी उस पदार्थका वितरण करे वही उदार है। हे भाग्यवान् चक्रवर्त्ती नरेन्द्र! आपने पूर्णब्रह्मको अपने पुत्रके रूपमें पाया और उन्हें आपने संसारका मङ्गल करनेके लिये जङ्गलमें भेज दिया, अतः आप 'उदारदर्शन' हैं। तीसरा भाव यह है कि उदार कहते हैं— **'उत् ऊर्ध्वं आ समन्तात् राति ददातीति उदारः'** जो अपनी शक्तिसे ऊपर दे, देते-देते स्वयंकी चिन्ता न करे उसे उदार कहते हैं। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—हे मेरे मित्र! हे उदारदर्शन! आपने श्रीरामका दर्शन संसारको सुलभ कर दिया। संसारका मङ्गल करनेके लिये उन्हें जङ्गलमें भेज दिया और स्वयं अपना शरीर ही समाप्त कर दिया, एतावता मैं आपका मित्र वाल्मीकि आपके श्रीचरणोंमें शब्द-कुसुमाञ्जलि समर्पण कर रहा हूँ—' **'तदा जहौ प्राणमुदारदर्शनः'**।

महाराजके महाप्रयाणके बाद श्रीकौसल्या और सुमित्राने उनके शरीरका स्पर्श किया और उनको मृत जानकर— 'हा नाथ' कहकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं—

कौसल्या च सुमित्रा च दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च पार्थिवम्।
हा नाथेति परिक्रुश्य पेततुर्धरणीतले॥

(२।६५।२२)

समस्त महलमें हाहाकार मच गया। सभी रानियाँ एकत्रित होकर स्वर्गीय नरेन्द्रके गुणोंका वर्णन करके रुदन करने लगीं। मन्त्रियोंने रानियोंको वहाँसे हटाकर राजाके पार्थिव शरीरको तैल-परिपूर्ण कटाहमें रखा और श्रीवसिष्ठ आदिकी आज्ञानुसार शवकी रक्षा आदि करने लगे—

तैलद्रोण्यां तदामात्याः संवेश्य जगतीपतिम्।
राज्ञः सर्वाण्यथादिष्टाश्चक्रुः कर्माण्यनन्तरम्॥

(२।६६।१४)

इसके बाद मन्त्रीगण, प्रजाके प्रतिनिधिगण, बड़े-बड़े महर्षिगण एकत्रित होते हैं। प्रश्न है अब आगे क्या होना चाहिये? यह तो निश्चित है कि चारों पुत्रोंमें कोई पुत्र ही अन्तिम संस्कार करेगा। प्रश्न यह है कि राज्य रिक्त है इसके लिये क्या व्यवस्था हो? राज्यपर कौन बैठे? कई प्रस्ताव आये, पर मतैक्य नहीं हुआ। आज अयोध्यामें बड़े-बड़े मस्तिष्क एकत्रित हैं—

मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च कश्यपः।
कात्यायनो गौतमश्च जाबालिश्च महायशाः॥
एते द्विजाः सहामात्यैः पृथग्वाचमुदीरयन्।
वसिष्ठमेवाभिमुखाः श्रेष्ठं राजपुरोहितम्॥

(२।६७।३-४)

अन्तमें सब लोगोंने ब्रह्मर्षि वसिष्ठसे प्रार्थना की—'हे महामुने! हमलोग महाराज दशरथके जीवनकालमें भी आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन कभी नहीं किये; अतः आज भी आपका ही निर्णय सर्वमान्य होगा—'

जीवत्यपि महाराजे तवैव वचनं वयम्।
नातिक्रमामहे सर्वे वेलां प्राप्येव सागरः॥

(२।६७।३७)

श्रीवसिष्ठने अपनी सूझ-बूझसे सबको अनुकूल बनाकर कहा—केकयदेश दूत भेजे जायँ और दूतोंको बुलाकर उनको आज्ञा दी—हे सिद्धार्थ! हे विजय! हे अशोक! हे नन्दन! तुम लोग केकयदेश जाओ। वहाँ जाकर भरतसे कहना—आपलोग यहाँसे शीघ्र चलिये, श्रीअयोध्यामें आपसे अत्यन्त आवश्यक कार्य है। ध्यान रखना,

भरतजीको श्रीराम-वनवास और पिताजीकी मृत्युका समाचार नहीं बताना—

मा चास्मै प्रोषितं रामं मा चास्मै पितरं मृतम्।
भवन्तः शंसिषुर्गत्वा राघवाणामितः क्षयम्॥

(२।६८।८)

आज्ञा पाकर संदेश लेकर दूतलोग यथा-सम्भव शीघ्र ही केकयदेश पहुँच गये। वहाँपर श्रीभरतजीके कई दिनसे अशुभ अङ्ग फड़कते थे, अपशकुन होते थे तथा दुःस्वप्न भी दीखते थे। भरतजी अपने मित्रोंसे कह रहे थे कि आज मैंने अतिशय भयङ्कर स्वप्न देखा है। इसका फल यह होगा कि मैं, श्रीराम, पिताजी तथा लक्ष्मण इनमेंसे किसी एककी मृत्यु अवश्य होगी—

एवमेतन्मया दृष्टमिमां रात्रिं भयावहाम्।
अहं रामोऽथवा राजा लक्ष्मणो वा मरिष्यति॥

(२।६९।१७)

श्रीभरत अपने मित्रोंसे स्वप्नकी चर्चा कर ही रहे थे कि उसी समय श्रीअयोध्यासे दूत आ गये। दूतोंने केकयनरेश एवं उनके पुत्रकी वन्दना करके श्रीभरतका चरणस्पर्श करके कहा—'हे कुमार! श्रीवसिष्ठ तथा मन्त्रियोंने आपसे कुशल-मङ्गल कहा है, अब आप मेरी लायी हुई भेट-सामग्री अपने नाना तथा मामाको देकर यहाँसे शीघ्र चलिये। अयोध्याजीमें आपसे अत्यन्त आवश्यक कार्य है। श्रीभरतजीने अत्यन्त शीघ्रतासे अपने नानासे आज्ञा प्राप्त कर ली। उन्होंने भरतजीको अनेक प्रकारके बहुमूल्य उपहार दिये। परंतु श्रीभरतने जानेकी शीघ्रताके कारण उन उपहारोंका अभिनन्दन नहीं किया—'

स दत्तं केकयेन्द्रेण धनं तन्नाभ्यनन्दत।
भरतः केकयीपुत्रो गमनत्वरया तदा॥

(२।७०।२४)

श्रीभरत अपने नाना और मामासे आज्ञा लेकर शत्रुघ्नसहित रथारूढ़ होकर चल दिये—

स मातामहमापृच्छ्य मातुलं च युधाजितम्।
रथमारुह्य भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ॥

(२।७०।२८)

भरतजी बड़ी शीघ्रतासे चल रहे हैं। उनके घोड़े भी थक गये फिर भी वे सात रात्रि व्यतीत करके आठवें दिन श्रीअयोध्या पहुँच गये—

अयोध्यां मनुना राज्ञा निर्मितां स ददर्श ह।
तां पुरीं पुरुषव्याघ्रः सप्तरात्रोषितः पथि॥

(२।७१।१८)

श्रीभरतजीको नगरके बाहर ही अपशकुन होने लगे—

खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला।
सुनि सुनि होइ भरत मन सूला॥

कल-कल निनादिनी सरयूजीकी धारा म्लान है उसमें कोई गति नहीं थी। नगरके उद्यानोंके वृक्षोंकी श्री नष्ट हो गयी थी। जो वृक्ष असमयमें भी फूलों और फलोंके भारसे सदा झुके रहते थे, वे आज ठूँठकी भाँति खड़े थे। उनके नीचे ढेर सारी सूखी पत्तियाँ पड़ी थीं। मानो वे वृक्ष भी श्रीरामवियोगकी कथा कह करके करुण क्रन्दन कर रहे थे। जो श्रीअयोध्या नयी-नवेली दुलहिनकी तरह सोलह शृङ्गारोंसे सजी रहती थी वह आज भयावनी लग रही थी। नगरके सरोवर जनशून्य थे। महात्मा भरतने अपना मस्तक झुका लिया, आज वे प्रसन्न नहीं थे। वे महामना आज दीनमना होकर अपने पिताके भवनमें प्रविष्ट हुए—

अवाक्शिरा दीनमना न हृष्टः
पितुर्महात्मा प्रविवेश वेश्म॥

(२।७१।४६)

श्रीभरत अपने पिताके घरमें पिताको न देख करके माताको देखनेके लिये माताके महलमें गये—

अपश्यंस्तु ततस्तत्र पितरं पितुरालये।
जगाम भरतो द्रष्टुं मातरं मातुरालये॥

(२।७२।१)

श्रीभरतको देखकर कैकेयी प्रसन्न हो गयीं और वे सोनेके सिंहासनसे उछलकर खड़ी हो गयीं—'**उत्पपात तदा हृष्टा त्यक्त्वा सौवर्णमासनम्**' श्रीभरतने माताके चरणोंमें प्रणाम किया, माताने भरतको उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया और उनका सिर सूँघकर गोदमें बैठा लिया। श्रीभरतजीसे नैहर-सम्बन्धी कुशल-प्रश्न किया। श्रीभरतने अत्यन्त संक्षेपमें कुशल, समाचार सुनाकर पूछा—'हे माताजी! मेरे पिताजी आपके महलमें नहीं हैं, मैं उन्हींका दर्शन करनेके लिये यहाँ आया हूँ—'

राजा भवति भूयिष्ठमिहाम्बाया निवेशने।
तमहं नाद्य पश्यामि द्रष्टुमिच्छन्निहागतः॥

(२।७२।१२)

श्रीभरतके कहनेका आशय यह है कि मैं केवल आपका दर्शन करने यहाँ नहीं आया हूँ, न नानाजीकी भेंटसामग्री देने आया हूँ। आपके महलमें प्रायः श्रीरामजी रहते थे, उनके स्नेहवश पिताजी यहीं मिलते थे, जहाँ श्रीराम रहते हैं वहीं श्रीलक्ष्मणका रहना निश्चित है। दोनों बच्चोंके आनेपर प्रायः माताएँ भी अपनी लाड़ली पुत्रवधू सीताजीको लेकर यहीं चली आती थीं। भाव यह है कि मैं आपके महलमें सबके दर्शनकी अभिलाषा लेकर आया हूँ। इस आशयको गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने और स्पष्ट कहा है—

सकल कुसल कहि भरत सुनाई।
पूँछी निज कुल कुसल भलाई॥
कहु कहँ तात कहाँ सब माता।
कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता॥

इन पंक्तियोंके प्रश्नमें ही श्रीभरतका मनोभाव व्यक्त हो रहा है और उनके कैकेयीके महलमें आनेका कारण भी स्पष्ट हो रहा है।

कैकेयीजीने श्रीदशरथकी मृत्युका समाचार सुनाया। श्रीभरतजी सुनकर—'**हा पितः! हा हतोऽस्मि!**' आदि दीन वचन कहकर रुदन करने लगे। हा हन्त! मेरे अक्लिष्टकर्मा पिताका वह सुकोमल सुखस्पर्श हाथ कहाँ है? वे उसी हाथसे मेरे धूलधूसरित देहको बराबर पोंछते थे—

क्व स पाणिः सुखस्पर्शस्तातस्याक्लिष्टकर्मणः।
यो हि मां रजसा ध्वस्तमभीक्ष्णं परिमार्जति॥

(२।७२।३१)

अक्लिष्टकर्मा—सरल स्वभाव श्रीरामजीको मेरे आनेकी शीघ्र सूचना दो। वे मेरे भाई, पिता, बन्धु हैं और मैं उनका प्रियदास हूँ। धर्मज्ञ श्रेष्ठ पुरुषके लिये बड़ा भ्राता पितृतुल्य होता है। मैं उनके श्रीचरणोंको पकड़कर अभिवादन करूँगा। अब तो वे ही मेरे सहारा हैं—

यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि सम्मतः।
तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः॥
पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः।
तस्य पादौ ग्रहीष्यामि स हीदानीं गतिर्मम॥

(२।७२।३२-३३)

श्रीभरतने पूछा—'हे मातः! मेरे पिताने अन्तिम समयमें क्या कहा था?' श्रीकैकेयीने सब सत्य-सत्य बता दिया—'हे भरत! अन्तिम समयमें उनके सामने मैं नहीं थी, संसार नहीं था, राज्य नहीं था, तुम नहीं थे, राग नहीं था, द्वेष नहीं था, काम नहीं था, क्रोध नहीं था। अंतिम समयमें तो हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण! इस प्रकार विलाप करते हुए परलोककी यात्रा की—'

रामेति राजा विलपन् हा सीते लक्ष्मणेति च।
स महात्मा परं लोकं गतो मतिमतां वरः॥

(२।७२।३६)

इस श्लोकमें श्रीदशरथको '**मतिमतां वरः**' कहा है, भाव कि अन्त समयमें श्रीरामस्मरण करनेवाली बुद्धि ही श्रेष्ठ बुद्धि है। सुनकर श्रीभरतका मुख विषण्ण हो गया। उन्होंने पुनः

पूछा—हे मातः! कौसल्यानन्दसंवर्द्धन श्रीराम लक्ष्मण और श्रीसीताजीके साथ इस समय कहाँ हैं?

क्व चेदानीं स धर्मात्मा कौसल्यानन्दवर्धनः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च समागतः॥

(२।७२।४०)

कैकेयीने समस्त समाचार सुना दिया, श्रीभरत दुःखसे सन्तप्त हो गये। श्रीरामवनगमनका समाचार सुनकर श्रीभरतको पहला दुःख—पिताकी मृत्युका दुःख भूल-सा गया। वे आश्चर्य स्तम्भित रह गये। उनके मुखसे सहसा कोई शब्द ही नहीं निकला। संसारमें कई प्रकारके दुःख होते हैं, प्रायः सब दुःख ऐसे होते हैं कि जिनसे दुःखी होकर व्यक्ति रोता है, चिल्लाता है और अपने मनकी अभिव्यक्ति करता है। परंतु एक दुःख ऐसा होता है जिसे सुनकर व्यक्ति स्तम्भित हो जाता है। उसे रोना, कलपना कुछ याद नहीं रहता, वह किसी भावकी अभिव्यक्ति भी नहीं करता है। परंतु यही दुःख भयंकर है, असाध्य है। श्रीभरतजीने जब रामवनगमन सुना तो रोना भी भूल गये। उनकी माता कैकेयीने सोचा—कि भरतको पिताकी मृत्युका ही दुःख है और वह भरतको समझाने लगीं। उस समय महर्षि वाल्मीकिने कैकेयीको वृथापण्डितमानिनी कहा है—

एवमुक्ता तु कैकेयी भरतेन महात्मना।
उवाच वचनं हृष्टा वृथापण्डितमानिनी॥

(२।७२।४७)

कुछ देरके पश्चात् श्रीभरतने कहा—'अरी पापदर्शिनि! मेरे पिता धर्मको उतना ही प्यार करते थे जितना सद्यःप्रसूता धेनु अपने बछड़ेको प्यार करती है। उनकी धर्मवत्सलताका तूने अनुचित लाभ लिया। तूने उन्हें धर्मके नामसे ठग लिया—मार डाला—' '**विनाशितो महाराजः पिता मे धर्मवत्सलः**'। मेरी माता कौसल्या दीर्घदर्शिनी है। जो भविष्यमें होनेवाले अनर्थको जान ले उसे दीर्घदृष्टि कहते हैं— '**दूरानर्थस्य सन्दर्शी दीर्घदृष्टिः प्रकीर्तितः**'। वे धर्मको समझकर तुझसे भगिनीकी तरह व्यवहार करती हैं। अरी पापे! उनके महात्मा पुत्रको चीर और वल्कलवस्त्र धारण कराकर तूने निर्वासित कर दिया—

तथा ज्येष्ठा हि मे माता कौसल्या दीर्घदर्शिनी।
त्वयि धर्मं समास्थाय भगिन्यामिव वर्तते॥
तस्याः पुत्रं महात्मानं चीरवल्कलवाससम्।
प्रस्थाप्य वनवासाय कथं पापे न शोचसे॥

(२।७३।१०-११)

श्रीरामजीको 'महात्मा' कहनेका भाव यह है कि वे उदारहृदय हैं, वे मेरा नाम सुनकर ही प्रसन्नतापूर्वक वन चले गये होंगे—

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू।
बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा।
प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा॥

अरी ओ कुलकलङ्किनि! तुझको यह मालूम नहीं था कि जो सबसे बड़ा होता है, उसीका राज्याभिषेक होता है और दूसरे भाई उसके अधीन होकर कार्य करते हैं। तेरा विचार पापपूर्ण है। मैं तेरी इच्छा पूरी नहीं होने दूँगा—

सकामां न करिष्यामि त्वामहं पुत्रगर्द्धिनीम्॥

(२।७३।१७)

भरतजी अनेक प्रकारकी अप्रिय बातें कह-कहकर कैकेयीको जोर-जोरसे फटकारने लगे। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे मन्दराचलकी कन्दरामें बैठकर सिंह गरज रहा हो—

इत्येवमुक्त्वा भरतो महात्मा
प्रियेतरैर्वाक्यगणैस्तुदंस्ताम्।
शोकार्दितश्चापि ननाद भूयः
सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः॥

(२।७३।२८)

श्रीभरतजीने अनेक भाँतिसे अपनी माता कैकेयीको दुर्वचन कहे हैं। सम्भवतः सभ्य संसारमें शायद ही कोई माता हो जिसको भरत-

सदृश योग्य पुत्रसे, शीलवान् पुत्रसे इतना और इस प्रकारका कटुवचन सुनना पड़ा हो। परंतु स्मरण रहे, श्रीभरतके ये दुर्वचन भक्तिके क्षेत्रमें दूषण नहीं हैं अपितु भूषण हैं, आदर्श हैं और श्लाघ्य हैं—स्तुत्य हैं। इसके पश्चात् श्रीभरतने पुनः कहा—अरी क्रूरे! सती साध्वी एकपुत्रा माता कौसल्याको तूने विवत्सा—पुत्रसे वियुक्त कर दिया। अतः तुम सदा ही लोक और परलोक दोनोंमें दुःख पाओगी—

एकपुत्रा च साध्वी च विवत्सेयं त्वया कृता।
तस्मात् त्वं सततं दुःखं प्रेत्य चेह च लप्स्यसे॥

(२।७४।२९)

अरी कुलघातिके! महाबाहु, महाबली कोसलाधीश श्रीरामको अयोध्या लौटाकर मैं स्वयं मुनिजनसेवित जङ्गलमें चला जाऊँगा—

आनाय्य च महाबाहुं कोसलेन्द्रं महाबलम्।
स्वयमेव प्रवेक्ष्यामि वनं मुनिनिषेवितम्॥

(२।७४।३१)

अरी पापसङ्कल्पे! सम्प्रति तू जाज्वल्यमान अग्निमें प्रवेश कर जा, अथवा स्वयं दण्डकारण्यमें चली जा, किं वा गलेमें फाँसी लगाकर—रस्सी गलेमें बाँधकर प्राण दे दे, इसके अतिरिक्त तेरे लिये दूसरी कोई गति नहीं है—

सा त्वमग्निं प्रविश वा स्वयं वा विश दण्डकान्।
रज्जुं बध्वाऽथवा कण्ठे नहि तेऽन्यत् परायणम्॥

(२।७४।३३)

श्रीभरतजी और भी बहुत कुछ कहकर क्रोधमें भरकर फुफकारते हुए साँपकी भाँति लम्बी साँस लेने लगे और इन्द्रध्वजाकी भाँति पृथ्वीपर संज्ञाशून्य होकर गिर पड़े, उनके वस्त्र ढीले पड़ गये और सारे आभूषण टूटकर बिखर गये। बहुत देरके बाद जब श्रीभरतकी चेतना लौटी—होश हुआ तब उनके मनमें अभिलाषा हुई कि इस समय मुझे कोई प्यारभरी गोद मिल जाय, जिस गोदमें सर रखकर आँसू बहाकर मैं अपने मनकी व्यथा कह सकूँ। परंतु हा हन्त! अब मुझे वह गोद कहाँ मिलेगी? यह मेरी जननी तो डायन है। इस डायन जननीकी गोद अब आश्रय लेने योग्य नहीं रही। मेरे पिताजी जो अपनी गोदमें बिठाकर मेरा सिर सूँघा करते थे, मेरे शरीरमें धूल लगी होती तो अपने स्नेह-परिपूर्ण हाथोंसे धूल साफ करते थे। मेरे बालोंमें अँगुलियाँ डालकर मेरे सिरको सहलाया करते थे। मेरा मुखड़ा झुकाकर अपने सामने लाकर मुझे प्यार करते थे। कभी प्रसन्न होकर कहते थे कि भरत! तू बहुत अच्छा है। हा हन्त! वह पिताजीकी गोद अब केवल स्मरण करनेके लिये ही रह गयी है। एक गोद और है जो सबसे अधिक वात्सल्य परिपूर्ण है, परंतु हा हन्त! वह मेरे आराध्य श्रीरामचन्द्रजी इस समय वनमें हैं। अब तो एक ही गोदका सहारा है, यह सोचकर श्रीभरत वात्सल्यमयी माता कौसल्याके दर्शन करनेके लिये शत्रुघ्नके साथ चल पड़े।

इधर माता कौसल्याने कहा—'हे सुमित्रे! मेरा भरत आ गया है।' सुनकर सुमित्राजी मौन हैं। श्रीकौसल्याने कहा—'मेरे मनमें भरतकी दिदृक्षा है—देखनेकी इच्छा है— '**तमहं द्रष्टुमिच्छामि**'। फिर भी सुमित्राजी मौन ही रहीं। श्रीकौसल्याने सोचा कि सम्भवतः यह मुझे दुर्बल देखकर जाने नहीं देना चाहती। श्रीकौसल्याने कहा—'हे सुमित्रे! मेरा भरत आया है, मेरा लाड़ला लाल आया है। भरत कभी कैकेयीका पुत्र नहीं हो सकता है, वह तो मेरा पुत्र है। मेरा दूध पीकर बड़ा हुआ है। मैं उसे देखने जाऊँगी। चल पड़ीं, चला नहीं जा रहा है। जबसे श्रीचक्रवर्त्तीजी गये हैं, मुखमें जल भी नहीं डाला है, लगभग एक पक्ष व्यतीत हो रहा है। उनका पार्थिव शरीर घरमें है। श्रीकौसल्याकी चेतना समाप्त होती जा रही है,

फिर भी चली जा रही हैं, शरीर अत्यन्त कृश है, अतः काँप भी रहा है फिर भी चल पड़ी हैं। भरतको, अपने लाड़ले लालको प्यार करने। हे सुमित्रे! मेरे भरतको एक साथ दो दुःखद समाचार मिलेंगे। पिताकी मृत्युका और श्रीरामके वन-गमनका। मेरा भावुक भरत कैसे सँभल पायेगा। मेरे भरतको कुछ हो न जाय, अतः मैं जाऊँगी। उसे मैं अपने आँचलके नीचे छिपा लूँगी, उसको कोई हवा लगने नहीं दूँगी। हे सुमित्रे! मेरे प्राणेश्वरने—श्रीचक्रवर्त्तीजीने अन्त-समयमें मुझसे कहा था—'हे कौसल्ये! मैं जा रहा हूँ अपने पुत्र भरतको सँभालना। कहीं मेरी-सी गति उसकी भी न हो जाय। हे रामजननि! हे अपूर्व वात्सल्य हृदये! मैं झोली फैलाकर याचना कर रहा हूँ कि अपने लाल भरतको बचा लेना, रामवियोगमें मरने न देना, वह मेरे कुलका दीपक है—' '**जानउँ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा॥**' हे सुमित्रे! मैं अवश्य जाऊँगी, मेरा भरत मुझे याद कर रहा है, उसे मेरी आवश्यकता है—

आगतः क्रूरकार्यायाः कैकेय्या भरतः सुतः।
तमहं द्रष्टुमिच्छामि भरतं दीर्घदर्शिनम्॥
एवमुक्त्वा सुमित्रां तां विवर्णवदना कृशा।
प्रतस्थे भरतो यत्र वेपमाना विचेतना॥

(२।७५।६-७)

एक ओर दीर्घदर्शिनी माता कौसल्या आ रही थीं, दूसरी ओरसे दीर्घदर्शी पुत्र श्रीभरत आ रहे थे। दोनोंकी मार्गमें ही भेंट हो गयी। श्रीभरतने देखा—माता मलिन वस्त्रोंमें लिपटी हुई हैं, मुख पीला पड़ गया है, व्याकुलता रोम-रोमसे टपक रही है, शरीर अत्यधिक दुर्बल हो गया है—

मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीर दुख भार।
कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसार॥

(श्रीरामचरितमानस २।१६३)

अपने स्नेहभाजन भरतको आते देखकर माता पृथ्वीपर गिरकर चेतनाशून्य हो गयीं—'**मुरुछित अवनि परी झइँ आई**'। श्रीभरत दौड़कर माताको उठाकर माताकी गोदीसे लगकर फूट-फूटकर रोने लगे, माँ भी रोने लगी, माँ-पुत्र दोनों रोने लगे। दास-दासियाँ भी रोने लगीं, सिसकियोंकी ध्वनिसे समस्त वातावरण अतिशय करुण हो गया। श्रीकौसल्याने स्नेहके आवेशमें श्रीभरतसे कुछ कहा—श्रीभरतने कहा—'मेरी माँ! मुझे नहीं ज्ञात था कि अयोध्यामें महान् अनर्थ हो रहा है। हे मातः! मैं शपथ करके कहता हूँ कि इस समस्त कार्यको मैं मन, वचन, कर्मसे नहीं जानता हूँ। श्रीभरतकी अनेक प्रकारकी शपथोंको सुनकर श्रीकौसल्याने कहा—'हे पुत्र! रामवियोगके कारण मेरी बुद्धि विकृत हो गयी है, विक्षिप्त-सी हो गयी है। हे तात! मैंने तुम्हारे पिताके प्रति भी कुवाच्यका प्रयोग किया था और आज तुम्हें भी कुछ कह डाला। परंतु हे भरत! मैं जानती हूँ कि श्रीराम तुम्हें प्राणोंसे अधिक प्रिय हैं और रामको तुम प्राणोंसे अधिक प्रिय हो।'

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे।
तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥

हे पुत्र! इस प्रकार अनेक प्रकारकी शपथ करके मेरे प्राणोंको क्यों व्यथित कर रहे हो? हे वत्स! इन शपथोंसे मेरा दुःख कम नहीं हो रहा है अपितु बढ़ रहा है—

मम दुःखमिदं पुत्र भूयः समुपजायते।
शपथैः शपमानो हि प्राणानुपरुणत्सि मे॥

(२।७५।६१)

ऐसा कहकर रामजननी कौसल्या भ्रातृवत्सल भरतको गोदमें बिठाकर, गलेसे लगाकर रोने लगीं। उनके स्तनोंसे दुग्धधारा बहने लगी। इस प्रकार माताकी आँखोंसे स्नेहकी धारा और हृदयसे—स्तनोंसे वात्सल्य रसकी धारा बहने

लगी— '**अस कहि मातु भरतु हियँ लाए। थन पय स्त्रवहिं नयन जल छाए॥**'

इस प्रकार शोकमें ही सारी रात व्यतीत हो गयी—'**सा तस्य शोकेन जगाम रात्रिः**'।

प्रातःकाल श्रीवसिष्ठजी आये। उन्होंने उत्तम वाणीमें कहा—'हे यशस्वी राजकुमार! तुम्हारा कल्याण हो। अब शोक समाप्त करो, अपने पिताका उत्तम संयान करो—'

अलं शोकेन भद्रं ते राजपुत्र महायशः।
प्राप्तकालं नरपतेः कुरु संयानमुत्तमम्॥

(२।७६।२)

संयान कहते हैं—बहिर्निर्गमनको, भाव कि चिता-भूमिमें ले जानेकी व्यवस्था करो। '**किं वा संयानम् सम्यग् यानम् स्वर्गप्रापकं क्रियाजातमित्यर्थः**' अर्थात् हे भरत! महाराजके स्वर्गप्रापक कर्म करनेकी व्यवस्था करो। गुरुदेवकी आज्ञाके अनुसार 'संयानकर्म' आरम्भ हो गया। तैल कटाहसे राजाका पार्थिव शरीर निकाला गया। उस समय श्रीभरतजीका बड़ा हृदयद्रावक विलाप है। श्रीभरतने कहा—'हे पितः! नरश्रेष्ठ श्रीरामसे रहित इस दुःखी भरतको छोड़कर आप कहाँ जा रहे हैं?'

क्व यास्यसि महाराज हित्वेमं दुःखितं जनम्।
हीनं पुरुषसिंहेन रामेणाक्लिष्टकर्मणा॥

(२।७६।७)

हे राजन्! यह भूमि विधवाकी तरह शोभाहीन हो गयी है। श्रीवसिष्ठके पुनः समझानेपर आगेका कार्य आरम्भ हुआ। सरयूके तटपर चिता सजायी गयी। चन्दन, अगर, गुग्गुल, सरल, पद्मक, देवदारु आदि तरह-तरहके सुगन्धित पदार्थोंसे चिता महकने लगी। दाह-कर्मके पश्चात् श्रीभरतके साथ रानियों, मन्त्रियों और पुरोहितोंने भी अपने मृत राजाके लिये तिलाञ्जलि दी—

कृत्वोदकं ते भरतेन सार्धं
नृपाङ्गना मन्त्रिपुरोहिताश्च।

(२।७६।२३)

द्वादशाह श्राद्ध सम्पन्न करके भरत, शत्रुघ्न दोनों भाई हा पितः! हा राम! हा लक्ष्मण! हा सीते! आदि कहते हुए पिताके गुणोंका स्मरण करते हुए रोते-रोते विषण्ण और श्रान्त होकर टूटी सींगोंवाले वृषभकी भाँति भूमिपर लोटने लगे।

ततो विषण्णौ श्रान्तौ च शत्रुघ्नभरतावुभौ।
धरायां स्म व्यचेष्टेतां भग्नशृङ्गाविवर्षभौ॥

(२।७७।२०)

फिर एक हितैषी, मिष्टभाषी वैद्य आ गये—श्रीवसिष्ठजी आ गये। उन्होंने उपदेश देकर शान्त किया—

ततः प्रकृतिमान् वैद्यः पितुरेषां पुरोहितः।
वसिष्ठो भरतं वाक्यमुत्थाप्य तमुवाच ह॥

(२।७७।२१)

तेरहवें दिनका कार्यक्रम समाप्त होनेके पश्चात् बहुत कम बोलनेवाले अल्पभाषी शत्रुघ्नजी भी बड़ी ओजस्वी वाणीमें बोले—हा हन्त! जो प्राणीमात्रके आश्रय हैं, वे सत्त्वगुणसम्पन्न श्रीरामजी एक स्त्रीके द्वारा वनमें भेज दिये गये। इस अन्यायको बल और पराक्रमसे सम्पन्न लक्ष्मण नामके शूरवीरने कैसे सहन कर लिया? उन्हें तो पिताको बन्दी बना करके श्रीरामको इस संकटसे छुड़ा लेना चाहिये था—

गतिर्यः सर्वभूतानां दुःखे किं पुनरात्मनः।
स रामः सत्त्वसम्पन्नः स्त्रिया प्रव्राजितो वनम्॥
बलवान् वीर्यसम्पन्नो लक्ष्मणो नाम योऽप्यसौ।
किं न मोचयते रामं कृत्वापि पितृनिग्रहम्॥

(२।७८।२, ३)

श्रीशत्रुघ्न इस प्रकार कह ही रहे थे कि उसी समय समस्त अनर्थोंकी मूलभूत मन्थरा सेवकोंके द्वारा घसीटकर लायी गयी। उस समय वह सर्वाभरण भूषिता थी, उसके अङ्ग-अङ्गमें सुन्दर

सुवासित चन्दनका लेप हुआ था। वह राजरानियोंके वस्त्रोंको धारण किये थी। कई लड़ोंकी करधनी पहने थी, वह बहुत सुन्दर लग रही थी—ऐसी लग रही थी मानो कई रस्सियोंसे बँधी हुई वानरी प्रत्यक्ष आ गयी हो—

प्राग्द्वारेऽभूत् तदा कुब्जा सर्वाभरणभूषिता॥
लिप्ता चन्दनसारेण राजवस्त्राणि बिभ्रती।
विविधं विविधैस्तैस्तैर्भूषणैश्च विभूषिता॥
मेखलादामभिश्चित्रैरन्यैश्च वरभूषणैः।
बभासे बहुभिर्बद्धा रज्जुबद्धेव वानरी॥

(२।७८।५—७)

उसे देखकर दुःखी और क्रुद्ध शत्रुघ्नका क्रोध अत्यन्त विवर्द्धमान हो गया—‘**बरत अनल घृत आहुति पाई**’ हो गया। अब तो श्रीशत्रुघ्नने कहा—‘मेरे भाइयों तथा पिताको इस पापिनीने महान् कष्ट दिया है, आज मैं इसे उसका फल दूँगा—’

तीव्रमुत्पादितं दुःखं भ्रातॄणां मे तथा पितुः।
यथा सेयं नृशंसस्य कर्मणः फलमश्नुताम्॥

(२।७८।११)

शत्रुशासन शत्रुघ्नजी रोषमें भरकर वानरी कुबरीको भूमिपर घसीटने लगे—

स च रोषेण संवीतः शत्रुघ्नः शत्रुशासनः।
विचकर्ष तदा कुब्जां क्रोशन्तीं पृथिवीतले॥

(२।७८।१६)

जिस समय मन्थरा घसीटी जा रही थी उस समय वह जोर-जोरसे चीत्कार कर रही थी और उसके चित्र-विचित्र भाण्ड—आभूषण टूट-टूटकर पृथ्वीपर इधर-उधर बिखर रहे थे—

तस्यां ह्याकृष्यमाणायां मन्थरायां ततस्ततः।
चित्रं बहुविधं भाण्डं पृथिव्यां तद्व्यशीर्यत॥

(२।७८।१७)

हुमगि लात तकि कूबर मारा।
परि मुह भर महि करत पुकारा॥
कूबर टूटेउ फूट कपारू।
दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू॥
आह दइअ मैं काह नसावा।
करत नीक फलु अनइस पावा॥
सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी।
लगे घसीटन धरि धरि झोंटी॥

जिस समय श्रीशत्रुघ्न उसे घसीट रहे थे उस समय उसे छुड़ानेके लिये कैकेयी उनके पास आयीं। तब श्रीशत्रुघ्नने कैकेयीको धिक्कारते हुए अत्यन्त कठोर बात कहकर रोषपूर्वक फटकारा ‘**बभासे परुषं वचः**’। श्रीभरतने कहा—‘हे सुमित्रा-कुमार! नारी सब प्राणियोंके लिये अवध्य होती है; एतावता इसे क्षमा कर दो। हे शत्रुघ्न! इस दासीको, टुकड़खोरको मारनेसे क्या लाभ? मेरा मन तो यह था कि मैं इसकी स्वामिनी राजरानी कैकेयीको मार डालूँ; परंतु हे लक्ष्मणानुज! धर्मात्मा रघुनन्दन मुझे मातृहत्यारा समझकर घृणा करने लगेंगे, इस भयके कारण मैं उसे नहीं मार सका। हे भ्रातः! यदि श्रीरामजी इस कुबरीके मारे जानेके समाचारसे अवगत हो जायँ तो यह निश्चित है कि प्रभु तुमसे और मुझसे बात करना त्याग देंगे—’

तं प्रेक्ष्य भरतः क्रुद्धं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत्।
अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति॥
हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम्।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम्॥
इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः।
त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम्॥

(२।७८।२१—२३)

श्रीभरतके वचन सुनकर शत्रुघ्नने मन्थराके वधका विचार त्याग दिया।

मन्त्री आदि सभी राजकर्मचारियोंने श्रीभरतसे राज्य करनेके लिये प्रार्थना की, परंतु श्रीभरतने स्पष्ट कह दिया—श्रीरामचन्द्र हमारे अग्रज हैं, वंश-

परम्पराके अनुसार वे ही राज्य करेंगे, उनके बदले चौदह वर्षतक मैं वनमें निवास करूँगा—

रामः पूर्वो हि नो भ्राता भविष्यति महीपतिः।
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि वर्षाणि नव पञ्च च॥

(२।७९।८)

आपलोग वन-यात्राकी तैयारी करें। सभाके सभी सदस्यों और मन्त्रियोंके सहित समस्त राजकर्मचारी श्रीभरतकी बात सुनकर खुशीसे झूम उठे, उनके समस्त शोक नष्ट हो गये—'**सामात्याः सपरिषदो वियातशोकाः**'। श्रीअयोध्यासे गङ्गातटपर्यन्त सुन्दर, सुखद मार्गका निर्माण आरम्भ हो गया। रास्तेमें कुओं और विशाल गड्ढोंको मिट्टी डालकर पाट दिया गया। जो स्थान नीचे थे उन्हें सब ओरसे मिट्टी डालकर चौरस कर दिया गया—

अपरेऽपूरयन् कूपान् पांसुभिः श्वभ्रमायतम्।
निम्नभागांस्तथैवाशु समांश्चक्रुः समन्ततः॥

(२।८०।९)

निर्जल प्रदेशमें अच्छे-अच्छे कुँए और बावड़ी आदि खनवा दिये गये—

निर्जलेषु च देशेषु खानयामासुरुत्तमान्।
उदपानान् बहुविधान् वेदिकापरिमण्डितान्॥

(२।८०।१२)

इसके अनन्तर श्रीवसिष्ठजीने एक बहुत बड़ी सभाका आयोजन करनेके लिये श्रीदशरथके सभाभवनमें प्रवेश किया—

तथा तस्मिन् विलपति वसिष्ठो राजधर्मवित्।
सभामिक्ष्वाकुनाथस्य प्रविवेश महायशाः॥

(२।८१।९)

श्रीवसिष्ठजीकी आज्ञासे उस सभामें समस्त मन्त्री आदि राज्यके अङ्ग उपस्थित हो गये। तब श्रीवसिष्ठजीने सभाको सम्बोधित करके श्रीभरतके राज्यका प्रस्ताव किया और श्रीभरतसे कहा—'हे भरत! आपके पिता और ज्येष्ठ भ्राता दोनोंने आपको राज्य प्रदान किया है एतावता यह राज्य सब प्रकार कण्टकरहित—विघ्न-बाधारहित हो गया है। इसलिये आप मन्त्रियोंको प्रसन्न करते हुए राज्यका उपभोग करिये और शीघ्र ही अपना अभिषेक करा लीजिये—'

पित्रा भ्रात्रा च ते दत्तं राज्यं निहतकण्टकम्।
तद्भुङ्क्ष्व मुदितामात्यः क्षिप्रमेवाभिषेचय॥

(२।८२।७)

श्रीभरतके सामने बड़ी समस्या थी। गुरुकी आज्ञाका पालन करना चाहिये परंतु गुरुकी आज्ञा दोषपूर्ण है। उसका प्रत्याख्यान कैसे किया जाय? इस समस्याका समाधान प्राप्त करनेके लिये धर्मज्ञ श्रीभरतने—कुलक्रमागत ज्येष्ठाभिषेचनरूप धर्मके जाननेवाले श्रीभरतने धर्मपालनकी इच्छासे—श्रीरामसेवारूप धर्मकी अभिलाषासे मनके द्वारा श्रीरामकी शरणमें गये कि हे प्रभो! हमें सद्बुद्धि दो जिससे हम गुरुदेवको उत्तर दे सकें—

तच्छ्रुत्वा भरतो वाक्यं शोकेनाभिपरिप्लुतः।
जगाम मनसा रामं धर्मज्ञो धर्मकाङ्क्षया॥

(२।८२।९)

श्रीभरत धर्मज्ञ हैं—धर्मको जानते हैं कि श्रीरामके रहते राज्य करना हमारा धर्म नहीं है। अथवा, धर्मज्ञ हैं—धर्मको जानते हैं कि मेरा उच्छिष्ट राज्य—उपभुक्त राज्य श्रीरामको उपभोग नहीं करना चाहिये। अथवा, धर्मज्ञ हैं—धर्मको जानते हैं कि अपना उच्छिष्ठ—उपभुक्त राज्य श्रीरामको—अपने स्वामीको नहीं देना चाहिये। अथवा, धर्मज्ञ हैं—धर्मको जानते हैं कि पिता, माता एवं गुरुकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। अथवा, धर्मज्ञ हैं—यह जानते हैं कि यदि गुरुदेवकी इस आज्ञाका पालन करूँगा तो सारा भूमण्डल अधर्ममय हो जायगा। अथवा, धर्मज्ञ हैं—अतः जानते हैं कि गुरुदेवके प्रति कभी कटु वचनका प्रयोग नहीं करना चाहिये, उनके वचनका प्रत्याख्यान नहीं करना चाहिये, परंतु इस प्रसङ्गमें मुझे दोनों ही कार्य करने पड़ेंगे। मुझे

अपने गुरुदेवको उपालम्भ देना होगा, अतः परम शरण्य, धर्मविग्रह श्रीरामकी शरणमें गये कि हे मेरे परम आदर्श! मुझे ऐसी सद्बुद्धि प्रदान करें कि मैं धर्मपूर्वक गुरुदेवके वचनोंका उत्तर दे सकूँ। अथवा इसलिये शरणमें गये कि हे स्वामी! आपकी भक्तिमें कभी किसी भी परिस्थितिमें कमी न आने पावे। श्रीभरतने आँसू बहाते हुए प्रेमार्द्र वाणीमें कलहंसकी तरह मधुर स्वरमें सभाके मध्यमें श्रीवसिष्ठजीको उपालम्भ दिया—आप सर्वज्ञ होते हुए भी इस प्रकार अनुचित कर्मके लिये मुझे क्यों प्रेरित कर रहे हैं?

गुर बिबेक सागर जगु जाना।
जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना॥
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ।
भएँ बिधि बिमुख बिमुख सबु कोऊ॥
स बाष्पकलया वाचा कलहंसस्वरो युवा।
विललाप सभामध्ये जगर्हे च पुरोहितम्॥

(२।८२।१०)

हे गुरुदेव! पुण्यात्मा श्रीदशरथजीका कोई पुत्र बड़े भाईका राज्य कैसे हड़प सकता है? यह राज्य भी श्रीरामका है और मैं भी उन्हींका हूँ; यह समझकर आपको इस सभामें धर्मकी बात अर्थात् श्रीरामजीका राज्य कैसे हो? यह बात करनी चाहिये न कि मेरे राज्य करनेकी—

कथं दशरथाज्जातो भवेद् राज्यापहारकः।
राज्यं चाहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिहार्हसि॥

(२।८२।१२)

हे ब्रह्मर्षे! यदि मैं राज्य स्वीकाररूपी पाप-कर्म करूँ तो संसारमें इक्ष्वाकुकुलका कलङ्क ही समझा जाऊँगा। श्रीभरतने कहा—हे गुरुदेव! यदि मैं राज्य स्वीकार कर लूँ तो संसारमें अनादर्शकी स्थापना हो जायगी। मातृ-भक्ति, भ्रातृ-भक्ति, भगवद्भक्ति और सौहार्दका नाश हो जायगा और यह पृथ्वी रसातलमें चली जायगी—

मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं।
रसा रसातल जाइहि तबहीं॥

श्रीभरतजीने कहा—मेरे जीवनके आदर्श श्रीरामजी ही हैं, अतः मैं उन्हींका अनुसरण करूँगा। मनुष्योंमें श्रेष्ठ श्रीरामजी ही इस राज्यके राजा हैं। वे तीनों लोकोंके राजा होने योग्य हैं—

राममेवानुगच्छामि स राजा द्विपदां वरः।
त्रयाणामपि लोकानां राघवो राज्यमर्हति॥

(२।८२।१६)

इस सभामें जितने लोग आये थे, वे सब श्रीवसिष्ठजीके बुलानेसे आये थे और उनके मतका समर्थन करने आये थे; परंतु जब श्रीभरतने कहा कि मैं राज्य नहीं लूँगा। श्रीअयोध्याके राजा तो श्रीरामजी ही हैं। मैं वन जाकर उन्हें ले आऊँगा। अब तो सभी सभासदोंकी आँखोंमें प्रसन्नताके आँसू छलक आये। सब अयोध्यावासी श्रीरामविरहके शोकसमुद्रमें डूब रहे थे, श्रीभरतने उन डूबते हुए लोगोंके आगे नाव लाकर खड़ी कर दी और वे उस अवलम्बसे—सहारासे डूबनेसे बच गये—

अवसि चलिअ बन रामु जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह।
सोक सिंधु बूड़त सबहि तुम्ह अवलंबनु दीन्ह॥

सब डूब रहे थे परंतु श्रीभरतकी घोषणाने सबको बचा लिया। श्रीभरतकी घोषणा धर्म-संयुक्त थी अर्थात् श्रीरामराज्यसम्बन्धी थी, भक्ति-संयुक्त थी और पुरवासी—'**रामे निहितचेतसः**' अर्थात् उनकी चित्तवृत्ति श्रीराममें थी—श्रीरामराज्यमें थी। तात्पर्य यह है कि भरतराज्यमें नहीं थी।

तद्वाक्यं धर्मसंयुक्तं श्रुत्वा सर्वे सभासदः।
हर्षान्मुमुचुरश्रूणि रामे निहितचेतसः॥

(२।८२।१७)

रामभक्तोंके आनन्दातिरेकका दर्शन करके श्रीभरतने एक घोषणा और भी कर दी—यदि मैं अपने आराध्य श्रीरघुनन्दनको वनसे लौटानेमें

असमर्थ रहूँगा तो मैं स्वयं भी लक्ष्मणकी तरह वहीं निवास करूँगा—

यदि त्वार्यं न शक्ष्यामि विनिवर्तयितुं वनात्।
वने तत्रैव वत्स्यामि यथार्यो लक्ष्मणस्तथा॥

(२।८२।१८)

उसके पश्चात् श्रीभरतने गुरुदेव वसिष्ठके सामने ही श्रीसुमन्त्रजीसे कहा—'हे मन्त्रियो! हे सेनापतियो! हे सुहृदो! और प्रजावर्गके वरिष्ठ लोगोंको हमारे साथ चलनेके लिये सूचित कर दें।'

बहुत दिनोंके बाद आज श्रीअयोध्याके लोगोंमें उत्साह दृष्टिगोचर हो रहा है। बहुत दिनोंके बाद आज लोगोंको पारस्परिक वार्तामें रस मिल रहा है। बहुत दिनोंके बाद आज लोगोंकी भोजनमें रुचि हुई है। बहुत दिनोंके बाद आज लोगोंके मनमें पानी पीनेकी इच्छा हुई है। बहुत दिनोंके बाद किसी पुत्रवती माँने अपने लाड़ले पुत्रको अपनी गोदमें लेकर लाल कहकर दूध पिलाया है। बहुत दिनोंके बाद किसी प्रेयसी पत्नीने अपनी मधुरवाणीमें अपने प्रियतम पतिसे बातें की है। बहुत दिनोंके बाद लोगोंकी आज श्रीसरयूमें स्नान करनेकी इच्छा हुई है। प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी है। चारों ओर आनन्द-ही-आनन्द है। लोगोंकी आँखोंमें आँसू तो पहले भी रहते थे और आज भी हैं। परंतु आजके आँसू मीठे हैं—आनन्दके आँसू हैं। चारों ओर एक ही शब्द सुनायी पड़ रहा है कि शीघ्र चलो, जल्दी चलो, अविलम्ब तैयारी करो, विलम्ब होगा तो हमें छोड़कर चले जायँगे— '**त्वरयन्ति स्म हर्षिताः**'। चारों ओर भरत धन्य हैं! भरत धन्य हैं! यही ध्वनि सुनायी पड़ रही है। आज समस्त अयोध्यावासी श्रीभरत-गुणगान कर रहे हैं। श्रीभरत सबके प्राणप्रिय हो गये हैं—

चलत प्रात लखि निरनउ नीके।
भरतु प्रानप्रिय भे सबही के॥

× × ×

धन्य भरत जीवनु जग माहीं।
सीलु सनेहु सराहत जाहीं॥

अरुन्धती देवीका वात्सल्य भी छलक उठा। उन्होंने श्रीवसिष्ठसे कहा—'हे स्वामी! अपने शिष्य पुत्र रघुनन्दनके मुखारविन्दका दर्शन करनेके लिये मैं भी चलूँगी। आज्ञा तुरंत मिल गयी—'

अरुंधती अरु अगिनि समाऊ।
रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ॥

'**ततः**'—सब तैयारी होनेके बाद, सबके चलनेकी व्यवस्था होनेके बाद नगरकी पूर्ण सुरक्षा करनेके अनन्तर प्रातःकाल उठकर श्रीभरत उत्तम रथपर आरूढ़ होकर श्रीरामदर्शनकी लालसासे शीघ्रतापूर्वक चल पड़े—

ततः समुत्थितः कल्यमास्थाय स्यन्दनोत्तमम्।
प्रययौ भरतः शीघ्रं रामदर्शनकाम्यया॥

(२।८३।१)

'**रामदर्शनकाम्यया**' का भाव कि वनसे आना न आना तो स्वामीकी इच्छापर अवलम्बित है, हम तो सेवक हैं। विशेष हठ करना—दुराग्रह करना हमारा धर्म नहीं है—'**जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू**'। परंतु श्रीरामपद्मोंका दर्शन तो हो ही जायगा—

आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ॥

(श्रीरामचरितमानस २। दो० १८२)

निष्ठावान् भक्त प्रेमाग्रह तो करता है परंतु दुराग्रह नहीं करता है, हठ नहीं करता है। जिस क्रियाके द्वारा आराध्यको, स्वामीको, प्रियतमको सङ्कोच हो, किं वा कष्ट हो उसका आचरण नहीं करता है—'**रामदर्शनकाम्यया**' में यही सब भाव सन्निहित हैं। यह श्रीभरतजीकी यात्रा सर्वमान्य यात्रा है। इस यात्राका किसीने विरोध नहीं किया है। यह यात्रा बहुमतसे नहीं सर्वसम्मतसे हो रही है। श्रीभरतके राज्यका प्रस्ताव करनेवाले गुरुदेव वसिष्ठ सर्वप्रथम अपनी पत्नीके साथ उत्साहपूर्वक

चल रहे हैं और श्रीरामको वन देनेवाली और श्रीभरतके राज्यकी कामना करनेवाली कैकेयी भी '**रामानयनसन्तुष्टा**' होकर माताओंमें सर्वप्रथम चल रही हैं।

जो महिमामण्डित होता है, सम्भ्रान्त होता है, कीर्तिमन्त होता है, उसके जीवनमें यदि किञ्चिन्मात्र भी कलङ्क लग जाय तो वह अपनी मृत्यु ही समझता है—

संभावित कहुँ अपजस लाहू।
मरन कोटि सम दारुन दाहू॥
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते॥

(गीता २। ३४)

इस न्यायसे श्रीकैकेयीसे बढ़कर सम्भ्रान्त कौन होगा? जिनका एक इङ्गित—इशारा राजाज्ञाके समान समादृत होता था परंतु उनके समान कलङ्क भी किसको लगेगा? आज उन्हें छोटे, बड़े, विद्वान्, मूर्ख, नागरिक, ग्रामीण तथा वनवासी सभी प्रायः संदिग्ध दृष्टिसे देख रहे हैं। घृणाकी नजरसे देख रहे हैं। सब कहते हैं—

मिलेहि माझ बिधि बात बेगारी।
जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी॥
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ।
छाइ भवन पर पावकु धरेऊ॥
निज कर नयन काढ़ि चह दीखा।
डारि सुधा बिषु चाहत चीखा॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी।
भइ रघुबंस बेनु बन आगी॥

वनवासी लोग भी कहते हैं—

रानी मैं जानी अयानी महा,
पबि-पाहनहू तें कठोर हियो है।
राजहुँ काजु अकाजु न जान्यो,
कह्यो तियको जेहिं कान कियो है॥
ऐसो मनोहर मूरति ए,
बिछुरें कैसे प्रीतम लोगु जियो है।
आँखिनमें सखि! राखिबे जोगु,
इन्हैं किमि कै बनबासु दियो है॥

(कवितावली अयोध्याकाण्ड २०)

परंतु वे कैकेयीजी भी चल रही हैं। उन्होंने सोचा कि लोगोंकी उठी हुई अँगुलियोंको बर्दाश्त कर लूँगी, लोगोंकी गाली सह लूँगी, लोगोंकी घृणापूर्ण नजरोंका सामना कर लूँगी, लोगोंके तीखे व्यंग-बाण भी सह लूँगी, लेकिन श्रीरामके पास चित्रकूट अवश्य जाऊँगी। वहाँ जाकर अपने वात्सल्यभाजन रामललाका मुख देखूँगी। संसार मुझे बुरा कहता है और कहेगा परंतु मेरा दृढ़-विश्वास है कि मेरे रामने मुझे कभी बुरा समझा नहीं, कहा नहीं और समझेंगे भी नहीं, कहेंगे भी नहीं। मैं अवश्य जाऊँगी। इस प्रकार श्रीमाता कैकेयी चल रही हैं। महर्षि वाल्मीकिने जानेवाली माताओंमें सबसे पहले उन्हींका नाम लिया है—

कैकेयी च सुमित्रा च कौसल्या च यशस्विनी।
रामानयनसन्तुष्टा ययुर्यानेन भास्वता॥

(२।८३।६)

श्रीभरतजीके नेतृत्वमें सभी वर्गके लोग जा रहे हैं। ब्राह्मण चले, क्षत्रिय चले, वैश्य चले और श्रीरामसम्बन्धी विचित्र कथा कहते-सुनते लोग चले। मणिकार चले, स्वर्णकार चले, कुम्भकार चले, कम्बलकार चले, शस्त्रकार चले, रजक चले, वायक चले, गाय चरानेवाले चले, सस्त्रीक नट चले, केवट चले और सदाचारी वेदज्ञ ब्राह्मण चले। सब-के-सब भ्रातृवत्सल भरतके पीछे-पीछे चले जो श्रीभरत अपने भाईको श्रीअयोध्यामें पुनः लानेके लिये जा रहे हैं—

प्रहृष्टमुदिता सेना सान्वयात् कैकयीसुतम्।
भ्रातुरानयने यातं भरतं भ्रातृवत्सलम्॥

(२।८३।१८)

सब लोगोंके मनमें एकमात्र कामना है कि अखिल संसारके निखिल शोकोंका अपनोदन

करनेवाले, स्थितप्रज्ञ, दृढव्रत, महाबाहु, मेघश्याम श्रीरामका हमलोग कब दर्शन करेंगे? जिस प्रकार भुवन-भास्कर सूर्य उदयाचलपर उदय होते ही समस्त लोकोंका अन्धकार निवृत्त कर देते हैं। उसी प्रकार राघवेन्द्रसरकार आँखोंके सामने पड़ते ही हमारे समस्त शोकोंको निवृत्त करके निर्वृत—आनन्दित कर देंगे—

मेघश्यामं महाबाहुं स्थिरसत्त्वं दृढव्रतम्।
कदा द्रक्ष्यामहे रामं जगतः शोकनाशनम्॥
दृष्ट एव हि नः शोकमपनेष्यति राघवः।
तमः सर्वस्य लोकस्य समुद्यन्निव भास्करः॥

(२।८३।८-९)

'दृष्ट एव' कहनेका भाव यह है कि वे मन्द-मन्द मुसकरायें नहीं, कृपादृष्टिसे देखते हुए प्रिय वचन भी न कहें, हमलोग कुछ यत्न भी न करें किंतु दूरसे दर्शनमात्रसे हमारे समस्त शोक नष्ट हो जायँगे—

'दृष्ट एव रामः सन्निहितश्चेत् स मन्दस्मितो मा भूत् कटाक्षपूर्वकं किञ्चित् प्रियवचनञ्च मावोचत् अस्माभिश्च न यत्नः कार्यः किन्तु दूरे दर्शनमात्रेणास्मच्छोकाः सर्वे नश्येयुः।'

(श्रीगोविन्दराजजी)

इस प्रकार अभिलाषा करते हुए सब लोग शृङ्गवेरपुर पहुँच गये। शृङ्गवेरपुर तो निषादराजका पर्याय बन गया है।

श्रीवाल्मीकिजी लिखते हैं कि उस शृङ्गवेरपुरमें पहुँच गये, जहाँ उस देशका अप्रमत्त होकर पालन करते हुए, अपने जातिगणोंके साथ श्रीराम-सखा गुह रहते थे—

यत्र रामसखा वीरो गुहो ज्ञातिगणैर्वृतः।
निवसत्यप्रमादेन देशं तं परिपालयन्॥

(२।८३।२०)

इस एक श्लोकमें गुहका पूरा परिचय है। उनका सबसे महान् परिचय यह है कि वे राम-सखा हैं। दूसरी विशेषता है कि उनके जीवनमें प्रमाद नहीं है—आलस्य नहीं है। सर्वदा सावधान रहते हैं। तीसरी विशेषता यह है कि अपनी जातिवालोंके साथ उनका महान् स्नेह है। इनके ये सद्गुण इस प्रसङ्गसे सम्बन्धित हैं। व्याख्या सम्भव नहीं है, मैंने केवल सूत्ररूपमें निवेदन किया है, विद्वान् श्रोता स्वयं व्याख्या कर लेंगे। श्रीभरतजीकी शृङ्गवेरपुरमें रात्रि निवास करनेकी इच्छा है, इसके दो कारण हैं। एक तो श्रीरामसखाके दर्शन होंगे, प्रभुने यहाँ रात्रि निवास किया है, कुछ अवशेष दर्शनके लिये मिल सकते हैं और दूसरा कारण यह है कि पिताजीके लिये गङ्गाजलमें उतरकर जलाञ्जलि देनेका विचार है—

दातुं च तावदिच्छामि स्वर्गतस्य महीपतेः।
और्ध्वदेहनिमित्तार्थमवतीर्योदकं नदीम्॥

(२।८३।२४)

श्रीभरतकी विशाल सेनाको देखकर निषादराजने अपने ज्ञातिगणोंसे कहा—'हे बन्धुओ! इस विशालवाहिनीको लेकर श्रीभरतजी मेरे प्रियतम श्रीरामचन्द्रको मारने जा रहे हैं। यह पहले हमें बाँध करके अथवा मार करके ही आगे जायँगे। हे भाइयो! श्रीरामजी हमारे स्वामी हैं और सखा हैं, अतः आपलोग श्रीरामकी मङ्गल-कामनासे अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर गङ्गातटपर उपस्थित रहें—'

भर्ता चैव सखा चैव रामो दाशरथिर्मम।
तस्यार्थकामाः संनद्धा गङ्गानूपेऽत्र तिष्ठत॥

(२।८४।६)

हे भाइयो! हमारे पास पाँच सौ नावें हैं एक-एक नावपर सौ व्यक्ति अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर, सन्नद्ध होकर बैठें। इस प्रकार पचास हजार सैनिक तैयार रहें—

नावां शतानां पञ्चानां कैवर्तानां शतं शतम्।
संनद्धानां तथा यूनां तिष्ठन्त्वित्यभ्यचोदयत्॥

(२।८४।८)

हे भाइयो! यदि भरतजीका पवित्र भाव है तो हम तन-मन-धनसे इनकी सेवा करेंगे; परंतु यदि इनके मनमें कपट भाव है तो सबलोग मरनेके लिये तैयार हो जाओ। मेरे जीवनमें इससे बड़ा कार्य न कभी आया है और न कभी आयेगा—'**आजु काज बड़ मोहि।**' सबलोग घाटको रोक लो कोई जाने न पावे।

होहु सँजोइल रोकहु घाटा।
ठाटहु सकल मरै के ठाटा॥

इस प्रकार कहकर निषादराज भेंट-सामग्री लेकर श्रीभरतजीसे मिलने गये। कुशल-संवादके अनन्तर निषादराजने सेनाके सहित श्रीभरतके स्वागत करनेके लिये प्रार्थना की। श्रीभरतने बड़ी मधुरवाणीमें कहा—'हे राम सखे! आपका मनोरथ बहुत ऊँचा है आपकी श्रद्धासे ही हम लोगोंका सत्कार हो गया—'

ऊर्जितः खलु ते कामः कृतो मम गुरोः सखे।
यो मे त्वमीदृशीं सेनामभ्यर्चयितुमिच्छसि॥

(२।८५।२)

श्रीभरतजीने मार्गके विषयमें जिज्ञासा की कि हे रामसखे! हम इस गहन प्रदेशसे अपरिचित हैं। श्रीरामजीको हमें खोजना है। हे भैय्या! आप ऐसी व्यवस्था करें कि हम जङ्गलमें भटकने न पावें। हमारे साथ अनेक प्रकारके लोग हैं, वृद्ध भी हैं, बालक भी हैं और स्त्रियाँ भी हैं। श्रीनिषादराजने कहा—'हे महाबलवान् दशरथ-राजकुमार! आपके साथ अनेक मल्लाह जायँगे। जो इस देशके चप्पे-चप्पेसे परिचित हैं और सावधान रहकर सेवा करते हैं। इसके अतिरिक्त मैं भी आपकी सेवा करनेके लिये साथमें चलूँगा—'

दाशास्त्वनुगमिष्यन्ति देशज्ञाः सुसमाहिताः।
अहं चानुगमिष्यामि राजपुत्र महाबल॥

(२।८५।६)

परंतु आपकी यह महती सेना मेरे मनमें शङ्का उत्पन्न कर रही है, कहीं आपके मनमें मेरे जीवनाराध्य श्रीरामके प्रति दुर्भाव तो नहीं है। हमारा मन आपके प्रति शुद्ध नहीं है। हमें आप विश्वास दिला दें कि आपका मन पवित्र है। हे स्वामी! हम आपसे युद्ध करने योग्य नहीं हैं; परंतु अपने जीवित रहते हुए किसी रामविरोधीको गङ्गापार नहीं होने देंगे। श्रीभरतने कहा—'हे रामसखे! आपको मुझपर संदेह नहीं करना चाहिये। राघवेन्द्र श्रीरामजी मेरे बड़े भ्राता हैं, मैं उन्हें पिताके समान मानता हूँ—'

मा भूत् स कालो यत् कष्टं न मां शङ्कितुमर्हसि।
राघवः स हि मे भ्राता ज्येष्ठः पितृसमो मतः॥

(२।८५।९)

मैं अपने स्वामीको लौटा लानेके लिये जा रहा हूँ। श्रीभरतजीकी अनुकूल वाणी सुनकर निषादराज प्रसन्न हो गये। श्रीभरतके शुद्ध भावको उन्हें समझनेमें विलम्ब नहीं लगा। उन्होंने कहा—'हे भरतजी! आप अपनी उदारतासे हमें क्षमा कर दें। आपकी तरह पवित्र मनवाला भाई मुझे इस वसुन्धरामें कोई दिखायी नहीं देता जो बिना किसी प्रयासके सम्प्राप्त राज्यलक्ष्मीका परित्याग कर दे, आप धन्य हैं—'

धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले।
अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि॥

(२।८५।१२)

चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहि भरत सरिस को आजु॥

श्रीभरतने पूछा—'हे रामसखे! श्रीरामजी यहाँसे किस प्रकार गये थे? किस वेषमें गये थे?' सहसा श्रीनिषादराज कुछ बोल न सके, उनकी वाणी आर्द्र हो गयी, स्खलिताक्षरोंमें उन्होंने कहा—'हे श्रीभरतजी! मेरे इन हाथोंसे बड़ा अनर्थ हुआ है। मेरे सखाने मुझे बरगदका दूध लानेकी आज्ञा दी। मैंने तत्काल लाकर दे दिया और प्रभुने उस वटक्षीरसे लक्ष्मणके साथ

अपनी जटा बना ली। जटा धारण करके वल्कलवस्त्र पहन करके महाबली, शत्रुदलन श्रीराम, लक्ष्मण श्रेष्ठ तरकस और धनुष धारण किये हुए गजयूथपतियोंके समान मन्द गतिसे सावधान होकर श्रीसीताजीके साथ चले गये—'

जटाधरौ तौ द्रुमचीरवाससौ महाबलौ कुञ्जरयूथपोपमौ।
वरेषुधीचापधरौ परन्तपौ व्यपेक्षमाणौ सह सीतया गतौ॥

(२।८६।२५)

जटाधारण करनेका समाचार सुनकर श्रीभरत मूर्च्छित हो गये। निषादको महान् व्यथा हुई, श्रीशत्रुघ्न तो श्रीभरतको हृदयसे लगाकर उच्च स्वरसे रुदन करने लगे और शोकसे व्यथित होकर संज्ञाशून्य हो गये—

तदवस्थं तु भरतं शत्रुघ्नोऽनन्तरस्थितः।
परिष्वज्य रुरोदोच्चैर्विसंज्ञः शोककर्षितः॥

(२।८७।५)

माता कौसल्याने श्रीभरतको संज्ञाशून्य देखकर करुण विलाप किया। होशमें आनेपर श्रीभरतने सबको आश्वस्त कर दिया और निषादराजसे पूछा—'हे रामसखे! मेरे रामजी रात्रिमें कहाँ निवास किये? श्रीसीता और लक्ष्मण कहाँ रहे? उन्होंने क्या भोजन किया? किस बिस्तरपर सोये? मुझे सब बताओ—'

भ्राता मे क्वावसद् रात्रौ क्व सीता क्व च लक्ष्मणः।
अस्वपच्छयने कस्मिन् किं भुक्त्वा गुह शंस मे॥

(२।८७।१३)

पूँछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ।
नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ॥
जहँ सिय रामु लखनु निसि सोए।
कहत भरे जल लोचन कोए॥

श्रीगुहराजने कहा—'हे भैया श्रीभरतलालजी! उस दिन मेरी व्यवस्थाको मेरे आराध्यने स्वीकार नहीं किया। श्रीलक्ष्मणजी जल लाये, ठाकुरजीने वही जल पिया, श्रीसीताजीने जलका ही प्रसाद लिया; पीतावशेष जल प्रसादके रूपमें श्रीलक्ष्मणने ले लिया। तदनन्तर उन तीनोंने मौन होकर—वाक् संयम करके, समाहित हो करके सन्ध्योपासना की—'

ततस्तु जलशेषेण लक्ष्मणोऽप्यकरोत् तदा।
वाग्यतास्ते त्रयः सन्ध्यां समुपासन्त संहिताः॥

(२।८७।१९)

तत्पश्चात् श्रीलक्ष्मणने कुश लाकर इङ्गुदी वृक्षके नीचे श्रीरामजीके लिये बिछौना बिछाया। प्रभुने और श्रीसीताजीने उसीपर शयन किया। हे भैया! श्रीलक्ष्मण रात्रिभर धनुष-बाण लेकर चारों ओर घूमकर पहरा देते रहे। निषादने कहा—'हे श्रीरामभक्त! मैंने उस स्थानको सुरक्षित रखा है। इस प्रसङ्गमें निषादराजकी निष्ठा मनन करने योग्य है। नगरके बाहर वृक्षके तले श्रीरामने शयन किया था। वे तृण, वे पत्ते क्या सुरक्षित रह सकते हैं? ऋतु भी गर्मीकी है, हवाएँ भी चलती ही होंगी। क्या वे तृण उड़ नहीं गये होंगे? श्रीनिषादराजने अपने पारिवारिक जनोंको बुलाकर कहा—यह इङ्गुदीका वृक्ष और इसके नीचेका भूखण्ड मेरा 'आराध्यस्थल' है। यहाँका एक तृण भी इधर-उधर नहीं होना चाहिये। मैं इस 'आराध्यस्थल' की नित्य पूजा करूँगा और परिक्रमा करूँगा। मेरे लिये यह स्थल श्रीअयोध्याजीके समान है। श्रीअयोध्याजीसे भी महत्त्वपूर्ण है। यहाँ मेरे जीवनाराध्यने रात्रि व्यतीत की है। यहाँकी कोई सामग्री तिलमात्र भी इधर-उधर न होने पावे। यथास्थिति बनी रहे—'जैसी है वैसी ही स्थिति बनी रहे। अब मेरे जीवनसार सर्वस्व कभी शृङ्गवेरपुरमें रात्रि व्यतीत करें या न करें। श्रीरामके भावुक सखाने श्रीरामजीके भावुक भाईको वह 'आराध्यस्थल' दिखाया—यही वह इङ्गुदीवृक्षकी जड़ है जिसका श्रीरामने उपधान बनाया है, यही वे कुश और तृण

हैं जिसपर श्रीराम और सीताने रात्रिमें शयन किया था—

एतत् तदिङ्गुदीमूलमिदमेव च तत् तृणम्।
यस्मिन् रामश्च सीता च रात्रिं तां शयितावुभौ॥

(२।८७।२२)

श्रीभरतने श्रीराम-शय्याका दर्शन किया और माताओंको भी दर्शन कराया। सबने एक साथ एक ही प्रश्न किया— **'कथं शेते महीतले?'** सुकुमारी मैथिली और सुकुमार अवधेशराजकुमारने पृथ्वीपर, इन तृणोंपर कैसे शयन किया होगा? उन्हें नींद कैसे आयी होगी? श्रीभरतजी कहते हैं—'यह मेरे भाईकी शय्या है **'इयं शय्या मम भ्रातुः'**। मेरे प्रभु यहाँ सोये थे। यह देखो, यहाँपर ठाकुरजीने करवट बदली है, यहाँपर तृण कुछ अधिक दब गया है। यह देखो, यहाँ श्रीसीताजीका उत्तरीय वस्त्र फँस गया था। वह सूत्र—कौशेय सूत्र अभी भी तृणमें चमक रहा है—'

उत्तरीयमिहासक्तं सुव्यक्तं सीतया तदा।
तथा ह्येते प्रकाशन्ते सक्ताः कौशेयतन्तवः॥

(२।८८।१५)

इन सबका श्रीभरतजी दर्शन कर रहे हैं। इसमें श्रीभरतजीके रामभक्तिपूर्ण भावुक हृदयका तो महत्त्व है ही परंतु निषादराजकी भावना भी श्लाघ्य है—स्तुत्य है। एक खुले हुए वृक्षके नीचे गर्मीके महीनेमें इन अवशेषोंको कैसे सँजोया होगा? सँजोया है, सँजोये हैं और जीवनपर्यन्त सँजोये रहेंगे अपने 'आराध्य मन्दिर' को। यह श्रीगुहराजकी वैष्णवता है, इसका रहस्य शुष्कहृदय व्यक्ति नहीं जान सकता। इस रहस्यको तो वह जानेगा जिसका मन श्रीरामस्नेहसे सरस है। श्रीभरतजीने कुशोंमें लिपटे हुए स्वर्णखण्डोंको देखा—सलमा-सितारे देखे, जो श्रीसीताजीके वस्त्रोंके थे—

कनक बिंदु दुइ चारिक देखे।
राखे सीस सीय सम लेखे॥
तत्र तत्र हि दृश्यन्ते सक्ताः कनकबिन्दवः॥

(२।८८।१४)

श्रीभरत इन अवशेषोंको देखकर शोकके कारण रुदन करते हुए कहने लगे—'हा हन्त! हा हतोऽस्मि! मेरा जीवन व्यर्थ हो गया। मेरे ही कारण अनाथकी तरह श्रीसीतारामजीको इस प्रकारकी शय्यापर शयन करना पड़ता है—'

हा हतोऽस्मि नृशंसोऽस्मि यत् सभार्यः कृते मम।
ईदृशीं राघवः शय्यामधिशेते ह्यनाथवत्॥

(२।८८।१७)

शुभ लक्षण श्रीलक्ष्मणजी ही धन्य हैं और महाभाग्यशाली हैं जो इस कठिन परिस्थितिमें श्रीरामके साथ रहकर उनकी सेवा करते हैं—

धन्यः खलु महाभागो लक्ष्मणः शुभलक्षणः।
भ्रातरं विषमे काले यो राममनुवर्तते॥

(२।८८।२०)

आज श्रीभरतने एक नियम लिया—आजसे मैं तृणकी शय्या बिछाकर भूमिपर शयन करूँगा, फल-मूलका भोजन करूँगा और नित्य वल्कल धारण तथा जटा धारण करूँगा—

अद्यप्रभृति भूमौ तु शयिष्येऽहं तृणेषु वा।
फलमूलाशनो नित्यं जटाचीराणि धारयन्॥

(२।८८।२६)

रात्रि व्यतीत होनेपर प्रातःकाल श्रीनिषादराजकी व्यवस्थामें पाँच सौ नावें आ गयीं और सबलोग गङ्गापार हो गये। कुछ लोग नावसे पार हुए, कुछ लोग बेड़ोंसे पार हुए, कुछ लोग बड़े-बड़े कलशोंसे पार हुए, कुछ लोग छोटे-छोटे घड़ोंसे पार हुए और कुछ लोग अपनी भुजाओंसे तैरकर पार हो गये—

नावश्चारुरुहुस्त्वन्ये प्लवैस्तेरुस्तथाऽपरे।
अन्ये कुम्भघटैस्तेरुरन्ये तेरुश्च बाहुभिः॥

(२।८९।२०)

गङ्गापार करके 'मैत्र' नामक मुहूर्त्तमें प्रयागके

लिये सब लोगोंने प्रस्थान किया। प्रयाग पहुँचकर श्रीभरद्वाज मुनिके आश्रमसे एक कोस दूर ही सब सेनाको ठहरा दिया और श्रीवसिष्ठजीको आगे करके पैदल ही प्रस्थान किया—'**पुरोधाय पुरोहितम्**'।

श्रीवसिष्ठका दर्शन करते ही महान् तपस्वी भरद्वाज मुनिने आसनसे उठकर शिष्योंसे अर्घ्य लानेके लिये कहा—

वसिष्ठमथ दृष्ट्वैव भरद्वाजो महातपाः।
संचचालासनात् तूर्णं शिष्यानर्घ्यमिति ब्रुवन्॥

(२।९०।४)

श्रीवसिष्ठको यथाविधि पाद्यादि निवेदन करके कुशल-प्रश्न किया। तदनन्तर श्रीभरतसे कहा—'हे भरत! तुम्हारे प्रति मेरा मन शुद्ध नहीं है। राज्य छोड़कर यहाँ आनेका क्या कारण है? कहीं तुम अकण्टक राज्यके लोभसे धर्मात्मा श्रीरामका अनिष्ट तो नहीं करना चाहते हो? महर्षिका श्रीरामके प्रति अत्यन्त स्नेह था एतावता उन्होंने इस प्रकार कहा है—'**भरतं प्रत्युवाचेदं राघवस्नेहबन्धनात्**'। मुनिकी वाणी सुनकर श्रीभरतकी आँखोंमें आँसू छलछला आये, वे हतप्रभ हो गये और सहसा कुछ बोल भी न सके फिर धैर्य धारण करके स्खलिताक्षरोंमें—लड़खड़ाती वाणीमें बोले—यदि आपकी तरह भगवान् भी—अतीत अनागत वर्तमानके जानकार त्रिकालज्ञ मुझे इतनी नीच वृत्तिका जान रहे हैं तब तो मैं निश्चित ही हर प्रकारसे मारा गया। मेरा जीवन ही व्यर्थ हो गया। हे त्रिकालज्ञ महात्मन्! श्रीरामके वनवासमें मेरी ओरसे कोई अपराध नहीं हुआ है, इसलिये आपको मुझसे इस प्रकारकी कर्ण कठोर बात नहीं कहनी चाहिये—

एवमुक्तो भरद्वाजं भरतः प्रत्युवाच ह।
पर्यश्रुनयनो दुःखाद् वाचा संसज्जमानया॥
हतोऽस्मि यदि मामेवं भगवानपि मन्यते।
मत्तो न दोषमाशङ्के मैवं मामनुशाधि हि॥

(२।९०।१४-१५)

हे महर्षे! मैं तो अपने आराध्यको—नरशार्दूल श्रीरामको प्रसन्न करके श्रीअयोध्या लौटा लानेके लिये और उनके मङ्गलमय पादारविन्दोंमें अपना भावपूर्ण प्रणाम निवेदन करनेके लिये श्रीरामके पास चित्रकूट जा रहा हूँ—

अहं तु तं नरव्याघ्रमुपयातः प्रसादकः।
प्रतिनेतुमयोध्यायां पादौ चास्याभिवन्दितुम्॥

(२।९०।१७)

श्रीवसिष्ठ आदि ब्रह्मर्षियोंने भी श्रीभरतजीकी वाणीका एवं उनके भावका समर्थन किया। श्रीभरद्वाजजीने कहा—'हे भरत! मैं तुम्हारे रामानुकूल व्यवहारको अपने योगप्रभावसे जानता हूँ। '**स्थूणानिखननः**' न्यायसे उसी भावको और दृढ़ करनेके लिये मैंने इस प्रकार प्रश्न किया है। मेरे इस प्रश्नसे तुम्हारी कीर्तिका और अधिक विस्तार होगा—'

जाने चैतन्मनःस्थं ते दृढीकरणमस्त्विति।
अपृच्छं त्वां तवात्यर्थं कीर्तिं समभिवर्धयन्॥

(२।९०।२१)

जो चरित्र परीक्षाकी कसौटीसे खरा उतरकर सामने आता है वह अधिक प्रकाशमान—समुज्ज्वल और आदर्श होता है। जब तुम्हारा चरित्र भविष्यमें लिखा जायगा, किं वा भक्त लोग गान करेंगे तब मेरी यह परीक्षा तुम्हारे चरित्रको उजागर करेगी। इसके पश्चात् अत्यन्त स्नेहिल वातावरण हो गया। चारों ओर भरत धन्य हैं! भरत धन्य हैं! की ध्वनि फैल गयी। श्रीभरद्वाजजीसे श्रीभरतने कहा—'हे महामुने! हमें श्रीरामका पता बता दें और जानेकी आज्ञा प्रदान करें।' श्रीभरद्वाजने कहा—'हे भरत! श्रीसीता, लक्ष्मण-समेत धर्मात्मा श्रीरामका पता मैं जानता हूँ, सम्प्रति वे महापर्वत चित्रकूटपर निवास करते हैं। हे महाप्राज्ञ! मेरी इच्छा है कि आज तुम सपरिकर इसी आश्रममें निवास करो—मेरा आतिथ्य स्वीकार करो, कल चित्रकूट चले जाना। हे वाञ्छितार्थप्रदानसमर्थ!

मेरी इस अभिलाषाको पूर्ण करो—'

जाने च रामं धर्मज्ञं ससीतं सहलक्ष्मणम्।
अयं वसति ते भ्राता चित्रकूटे महागिरौ॥
श्वस्तु गन्तासि तं देशं वसाद्य सह मन्त्रिभिः।
एतं मे कुरु सुप्राज्ञ कामं कामार्थकोविद॥

(२।९०।२२-२३)

श्रीभरतजीने नम्रतापूर्वक महर्षिकी आज्ञा स्वीकार कर ली। महर्षिकी आज्ञासे श्रीभरतने अपनी सेना, मन्त्री आदि सबको वहाँ बुलवा लिया—

आनीयतामितः सेनेत्याज्ञप्तः परमर्षिणा।
तथानुचक्रे भरतः सेनायाः समुपागमम्॥

(२।९१।१०)

श्रीभरद्वाज मुनि अग्निशालामें प्रवेश करके, आचमन करके अपने ओठोंको पोंछे—

अग्निशालां प्रविश्याथ पीत्वापः परिमृज्य च।

(२।९१।११)

इस पंक्तिमें आचमन कैसे की जाती है यह बताया। जल कैसे पीना चाहिये, ओठ कैसे पोंछना चाहिये, दोनों क्रियाओंको समझना चाहिये। आचमन करना प्रत्येक कर्ममें आवश्यक है। श्रीभरद्वाजने विश्वकर्माजीका आवाहन करके सुन्दर-सुन्दर भवनोंका, अश्वशाला, गजशाला आदिका निर्माण करवाया। यम, वरुण और कुबेरका आवाहन किया और उनसे कहा—मैं श्रीभरतका आतिथ्य करना चाहता हूँ, अतः आपलोग आवश्यक व्यवस्था करें—

आह्वये लोकपालांस्त्रीन् देवाञ्शक्रपुरोगमान्।
आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि तत्र मे संविधीयताम्॥

(२।९१।१३)

नदियोंका, तालाबोंका, गन्धर्वोंका, अप्सराओंका, चैत्ररथ आदि वनोंका आवाहन किया। भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य आदिकी पर्याप्त व्यवस्थाके लिये चन्द्रमाभगवान्‌का आवाहन किया—

इह मे भगवान् सोमो विधत्तामन्नमुत्तमम्।
भक्ष्यं भोज्यं च चोष्यं च लेह्यं च विविधं बहु॥

(२।९१।२०)

इस प्रकार महर्षिके अलौकिक प्रभावसे अलौकिक स्वागत हुआ। सबलोग उसी स्वागत सामग्रीमें मुग्ध हो गये। महर्षिने एक विशाल मनोहर सम्पूर्ण सुविधाओंसे युक्त राजभवनका श्रीभरतके लिये निर्माण कराया। उस सुसज्जित राजभवनमें महर्षिकी आज्ञासे श्रीभरतने प्रवेश करके उस महलमें एक सिंहासन देखा। सिंहासनपर श्रीरामजी विराजमान हैं, इस प्रकारकी भावना करके श्रीभरतने प्रदक्षिणा की और श्रीरामजीको प्रणाम किया, सिंहासनकी पूजा की। अपने हाथमें चँवर लेकर सचिवके आसनपर स्वयं बैठ गये—

आसनं पूजयामास रामायाभिप्रणम्य च।
बालव्यजनमादाय न्यषीदत् सचिवासने॥

(२।९१।३९)

इस प्रकार बैठे-बैठे सारी रात व्यतीत हो गयी। यह भी महर्षिकी एक परीक्षा ही थी—

संपति चकई भरतु चक मुनि आयस खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजराँ राखे भा भिनुसार॥

(श्रीरामचरितमानस २।२१५)

इस प्रकार महर्षि भरद्वाज श्रीभरतजीके मन, वचन और कर्मकी परीक्षा ले करके परम सन्तुष्ट हो गये।

प्रातःकालीन नित्य-कर्मसे निवृत्त होकर श्रीभरतने मुनिको प्रणाम करके पूछा—हे धर्मज्ञ! महात्मा श्रीरामका आश्रम कहाँ है? वहाँ जानेका कौन-सा मार्ग है? यहाँसे कितनी दूर है? यह आप बतावें—

आश्रमं तस्य धर्मज्ञ धार्मिकस्य महात्मनः।
आचक्ष्व कतमो मार्गः कियानिति च शंस मे॥

(२।९२।८)

उसी समय श्रीभरतकी तीनों माताओंने आकर मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया। मुनिने श्रीभरतसे माताओंका परिचय विशेष प्रकारसे पूछा—

तत्र पप्रच्छ भरतं भरद्वाजो महामुनिः॥
विशेषं ज्ञातुमिच्छामि मातॄणां तव राघव।

(२।९२।१८-१९)

श्रीभरतने सात श्लोकोंमें माताओंका परिचय दिया। अन्तमें कैकेयीका परिचय देते हुए कहा—'हे भगवन्! जिसके कठोर वरदानके कारण किंवा राज्यके लोभके कारण पुरुषश्रेष्ठ श्रीराम, लक्ष्मण प्रजाका पालन छोड़कर—यौवराज्य पद छोड़कर वन चले गये—**'जीवस्य प्रजापालनस्य नाशमभावं गतौ प्राप्तौ'** चक्रवर्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजी अपने ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ पुत्र श्रीरामसे वियुक्त होकर स्वर्ग चले गये—'

यस्याः कृते नरव्याघ्रौ जीवनाशमितो गतौ।
राजा पुत्रविहीनश्च स्वर्गं दशरथो गतः॥

(२।९२।२५)

इतना कहते-कहते श्रीभरतजीकी करुणा मूर्ति गायब हो गयी। उनकी वाणी अश्रुगद्गद हो गयी, नेत्र रक्त हो गये, वे क्रुद्ध सर्पकी भाँति लम्बी-लम्बी साँस खींचने लगे। रामावतारका कारण जाननेवाले महाबुद्धिमान् महामुनिने कहा—'हे भरत! माता कैकेयीके प्रति दोषदृष्टि न करो। श्रीरामका यह वनवास सुखोदर्क होगा—परिणाममें आनन्दप्रद होगा—'

न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत त्वया।
रामप्रव्राजनं ह्येतत् सुखोदर्कं भविष्यति॥

(२।९२।३०)

श्रीभरद्वाजजीसे प्रेमपूर्वक विदा होकर श्रीभरतजी यात्रा करते हुए चित्रकूटके पास पहुँच गये। श्रीभरतजीकी आज्ञासे अनेक लोग वनमें श्रीरामको खोज रहे थे। किसीने श्रीभरतसे आकर कहा—'हे स्वामी! उधर देखिये, वहाँ धुआँ दिखायी पड़ रहा है। जहाँ कोई मनुष्य नहीं होता है वहाँ अग्नि भी नहीं होती और जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ धुआँ भी नहीं होता है। इस न्यायसे वहाँ श्रीराम, लक्ष्मणका होना सम्भाव्य है।'

ते समालोक्य धूमाग्रमूचुर्भरतमागताः।
नामनुष्ये भवत्यग्निर्व्यक्तमत्रैव राघवौ॥

(२।९३।२२)

श्रीभरत सबको वहीं रोककर स्वयं सुमन्त्र और धृतिको साथमें लेकर जहाँ धुआँ उठ रहा था उसी दिशामें अपनी दृष्टि स्थिर की—

भरतो यत्र धूमाग्रं तत्र दृष्टिं समादधत्॥

(२।९३।२६)

इधर श्रीरामचन्द्रजी श्रीसीताजीको चित्रकूटकी रमणीयच्छटा दिखाकर उनका मन लगाते हैं। एक दिन श्रीरामजीने कहा—'हे मिथिलेशनन्दिनि! इस वनवाससे मुझे दो महान् फल प्राप्त हुए हैं। एक तो पूज्य पिताकी आनृण्यता अर्थात् पिताजी माता कैकेयीके ऋणसे उऋण हो गये किंवा आज्ञापालन करके मैं पितृऋणसे उऋण हो गया। दूसरा फल यह मिला कि भरतका प्रिय हुआ अर्थात् श्रीभरतको राज्य प्राप्त हुआ, किंवा श्रीभरतकी महान् प्रीतिका संसारमें प्राकट्य हुआ है—'

अनेन वनवासेन मम प्राप्तं फलद्वयम्।
पितुश्चानृण्यता धर्मे भरतस्य प्रियं तथा॥

(२।९४।१७)

पेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर॥

(श्रीरामचरितमानस २।२३८)

भगवान् श्रीराम भगवती भास्वती श्रीसीताजीसे कहते हैं—'हे विदेहराजतनये! सेवक-धर्मके परम आदर्श, धर्मात्मा लक्ष्मण सदा मेरी आज्ञामें रहते हैं और तुम भी मेरे मनके अनुकूल ही अपना समस्त कार्य करती हो। इससे मेरे मनमें बड़ा

सन्तोष रहता है। हे प्राणप्रिये! तुम्हारे साथ मैं तीनों समय श्रीमन्दाकिनीमें स्नान करता हूँ, स्वादिष्ट और मधुर मूलफलका आहार करता हूँ। मैं अपने इस जीवनसे इतना सन्तुष्ट हूँ कि न मेरी श्रीअयोध्या जानेकी इच्छा होती है और न ही मेरे मनमें राज्य पानेकी ही अभिलाषा है—'

लक्ष्मणश्चैव धर्मात्मा मन्निदेशे व्यवस्थितः।
त्वं चानुकूला वैदेहि प्रीतिं जनयती मम॥
उपस्पृशंस्त्रिषवणं मधुमूलफलाशनः।
नायोध्यायै न राज्याय स्पृहये च त्वया सह॥

(२।९५।१६-१७)

इस प्रकार बात करते हुए श्रीरामजी उस पर्वतीय प्रदेशमें बैठे हुए ही थे कि श्रीभरतकी सेनाकी धूल और गगनभेदी ध्वनि दोनों युगपत्—एक साथ प्रकट हो गये—

सैन्यरेणुश्च शब्दश्च प्रादुरास्तां नभस्पृशौ॥

(२।९६।३)

हाथियोंके समूह भागने लगे, मृगोंके समूह भी भागने लगे, पक्षियोंके शब्द भी सुनायी पड़ने लगे। इस प्रकार चारों तरफ भगदड़ मच गयी।

भगवान् श्रीरामने कहा—'हे सुमित्रानन्द-संवर्द्धन! पता लगाओ कि इस कोलाहलका—खलबलीका क्या कारण है—'

हन्त लक्ष्मण पश्येह सुमित्रा सुप्रजास्त्वया।

(२।९६।७)

श्रीलक्ष्मणने एक शालवृक्षपर चढ़कर चारों ओर दृष्टिपात किया। उन्हें उत्तरकी ओरसे एक विशाल चतुरङ्गिणी सेना आती हुई दिखायी दी। श्रीलक्ष्मणने फहराते हुए कोविदार ध्वजसे पहचान लिया कि श्रीअयोध्याजीसे श्रीभरतकी सेना आ रही है। उन्होंने आकर श्रीरामजीसे कहा—'हे नरश्रेष्ठ! अग्नि बुझवा दें, अन्यथा लोग धूम देखकर सहसा आ जायँगे। हमें आज्ञा दें कि माता सीताजीको हम पर्वतकी कन्दरामें बैठा आवें। आप भी धनुषको सज्ज करके बाण और कवच धारण कर लें। मैं तो पहलेसे ही सन्नद्ध हूँ—'

अग्निं संशमयत्वार्यः सीता च भजतां गुहाम्।
सज्यं कुरुष्व चापं च शरांश्च कवचं तथा॥

(२।९६।१४)

प्रभुने पुनः पूछा—'हे वत्स! ध्यानसे देखो यह किसकी सेना है?' श्रीलक्ष्मणने सद्यः उत्तर दिया—'हे स्वामी! मैंने सब समझ लिया है। हम लोगोंको मारकर राज्यको निष्कण्टक करनेके लिये कैकेयीके पुत्र भरत आ रहे हैं—'

आवां हन्तुं समभ्येति कैकेय्या भरतः सुतः॥

(२।९६।१७)

'हे स्वामी! आज मैं ससैन्य सानुज भरतको मार डालूँगा और धनुष तथा बाणके ऋणसे उऋण हो जाऊँगा—'

शराणां धनुषश्चाहमनृणोऽस्मिन् महावने।
ससैन्यं भरतं हत्वा भविष्यामि न संशयः॥

(२।९६।३०)

जिमि करि निकर दलइ मृगराजू।
लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहिं भरतहि सेन समेता।
सानुज निदरि निपातउँ खेता॥
जौं सहाय कर संकरु आई।
तौ मारउँ रन राम दोहाई॥

श्रीरामजीने कहा—हे लक्ष्मण! जो द्रव्य, जो पदार्थ, जो राज्य, जो धन बन्धु-बान्धवोंका वध करके मिलता हो उसे उसी प्रकार त्याग देना चाहिये जिस प्रकार विषसे मिले हुए सुन्दर सुस्वादु भोजनको त्यागा जाता है—

यद् द्रव्यं बान्धवानां वा मित्राणां वा क्षये भवेत्।
नाहं तत् प्रतिगृह्णीयां भक्ष्यान् विषकृतानिव॥

(२।९७।४)

हे लक्ष्मण! तुम भरतसे नाराज हो गये, परंतु हमें यह बताओ कि श्रीभरतने जीवनमें

कभी भी तुमसे अप्रिय व्यवहार किया है, जिससे आज तुम्हें उनसे भय लग रहा है और उनको तुम इस प्रकार सशङ्कित दृष्टिसे देख रहे हो?

विप्रियं कृतपूर्वं ते भरतेन कदा नु किम्।
ईदृशं वा भयं तेऽद्य भरतं यद् विशङ्कसे॥

(२।९७।१४)

हे लक्ष्मण! मैं समझ ही नहीं पा रहा हूँ कि तुमने श्रीभरतके हृदयको गलत क्यों समझा है? क्या तुम्हारे मनमें राज्यकी कामना है? क्या तुम राज्यके लिये भरतवध-ऐसी कठोर बात कहते हो? भरतके आनेपर मैं कह दूँगा कि तुम राज्य लक्ष्मणको दे दो। हे लक्ष्मण! मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरी बात सुनकर भरत 'जो आज्ञा' कहकर मेरी बातको मान लेंगे—

यदि राज्यस्य हेतोस्त्वमिमां वाचं प्रभाषसे।
वक्ष्यामि भरतं दृष्ट्वा राज्यमस्मै प्रदीयताम्॥
उच्यमानो हि भरतो मया लक्ष्मण तद् वचः।
राज्यमस्मै प्रयच्छेति बाढमित्येव मंस्यते॥

(२।९७।१७-१८)

हे लक्ष्मण! मेरा पूरा विश्वास है कि भरतके आगमनमें उनकी समूर्ज्जित भक्ति ही प्रधान कारण है। वे केकय प्रदेशसे आकर माता कैकेयीको फटकारके पूज्य पिताजीसे आज्ञा लेकर मुझे वनसे श्रीअयोध्याजी ले चलनेके लिये आ रहे हैं।

श्रीरामजीकी बात सुनकर श्रीलक्ष्मण लज्जातिशयके कारण अत्यन्त सङ्कुचित हो गये—

तथोक्तो धर्मशीलेन भ्रात्रा तस्य हिते रतः।
लक्ष्मणः प्रविवेशेव स्वानि गात्राणि लज्जया॥

(२।९७।१९)

श्रीवाल्मीकिजीने इस श्लोकमें श्रीलक्ष्मणका चरित्र-चित्रण किया है। '**तस्य हिते रतः**' भाव कि श्रीलक्ष्मणने जो कुछ भी कहा है वह श्रीरामजीके हितको दृष्टिमें रखकर कहा है, अर्थात् अपने स्वार्थके लिये वे भरतजीको नहीं मारना चाहते थे। यद्यपि यह ठीक है कि वे श्रीभरतभावको नहीं समझ पाये। इसके ठीक विपरीत श्रीभरतजी सोचते हैं कि जबतक मैं श्रीराम, सीता, लक्ष्मणका दर्शन नहीं कर लूँगा तबतक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी—

यावन्न रामं द्रक्ष्यामि लक्ष्मणं वा महाबलम्।
वैदेहीं वा महाभागां न मे शान्तिर्भविष्यति॥

(२।९८।६)

श्रीभरतजी सोचते हैं, अहा! मेरे लक्ष्मण निश्चित ही सिद्धार्थ हो गये, उन्होंने जीवनका फल प्राप्त कर लिया है—वे कृतार्थ हो गये हैं; क्योंकि वे कमलनयन महाद्युति श्रीरामचन्द्रके निर्मल निष्कलङ्क मुखचन्द्रका निरन्तर दर्शन करते रहते हैं—

सिद्धार्थः खलु सौमित्रिर्यश्चन्द्रविमलोपमम्।
मुखं पश्यति रामस्य राजीवाक्षं महाद्युतिम्॥

(२।९८।८)

जबतक श्रीसीतारामजीको मैं समस्त तीर्थोंके जलसे अभिषेकके समय जलक्लिन्न—भीगा हुआ नहीं देखूँगा तबतक मेरा मन भी भाव-क्लिन्न नहीं होगा, अर्थात् शान्त नहीं होगा—

अभिषिक्तो जलक्लिन्नो न मे शान्तिर्भविष्यति॥

(२।९८।१०)

श्रीभरतजी श्रीरामजीके आश्रमका दर्शन करके सेनाको वहीं ठहरनेकी आज्ञा दे करके निषादराजके साथ शीघ्रतासे श्रीरामजीके आश्रमकी ओर चल दिये—

गुहेन सार्धं त्वरितो जगाम
पुनर्निवेश्यैव चमूं महात्मा॥

(२।९८।१८)

श्रीभरतने—गुरुवत्सल भरतने माताओंको श्रीगुरुदेवके संरक्षणमें करके श्रीरामजीके दर्शनके लिये चले—

ऋषिं वसिष्ठं संदिश्य मातॄर्मे शीघ्रमानय।

इति त्वरितमग्रे स जगाम गुरुवत्सलः॥

(२।९९।२)

श्रीभरतजीने ठाकुरजीकी पर्णकुटीका दर्शन किया—

भ्रातुः पर्णकुटीं श्रीमानुटजं च ददर्श ह॥

(२।९९।४)

इस श्लोकमें भरतजीको 'श्रीमान्' कहा है। सबसे महान् श्रीमान् वही है जिसके पास श्रीरामधन हो। भक्तिमती मीराजी कहती हैं—

पायो जी म्हे तो राम रतन धन पायो।
बस्तु अमोलक दी म्हारे सतगुरु, किरपा कर अपनायो॥

आज श्रीभरतने अपनी भक्तिभावनाके कारण अयोध्याकी राज्यश्रीको छोड़कर श्रीरामरूपी सम्पत्तिकी—श्रीकी प्राप्ति कर ली है, अतः महर्षि वाल्मीकिने गद्‌गद होकर इन्हें 'श्रीमान्' कहा है। किं बहुना अनन्तानन्त श्रीकी—सम्पन्नताकी—ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री देवी नित्य किशोरी श्रीमैथिलीके पादपद्मोंकी प्राप्ति हो गयी है, अतः श्रीभरत 'श्रीमान्' हैं।

श्रीभरतजी सोचते हैं—'हा हन्त! मेरे आराध्यके वनमें निवास करनेका कारण मैं ही हूँ। महाद्युति लोकनाथ श्रीरघुनाथजी आज वनमें निवास करके महान् सङ्कट सह रहे हैं इसका भी कारण तो मैं ही हूँ—'

मत्कृते व्यसनं प्राप्तो लोकनाथो महाद्युतिः।
सर्वान् कामान् परित्यज्य वने वसति राघवः॥

(२।९९।१६)

श्रीभरतजीने देखा कि मेरे स्वामी पर्णकुटीके पास ही एक वेदीपर श्रीसीता, लक्ष्मणके साथ विराजमान हैं। वे महाबाहु श्रीराम सनातन ब्रह्माकी भाँति सुशोभित हो रहे हैं—

उपविष्टं महाबाहुं ब्रह्माणमिव शाश्वतम्।
स्थण्डिले दर्भसंस्तीर्णे सीतया लक्ष्मणेन च॥

(२।९९।२८)

'महाबाहु' का भाव कि इन्हीं अभय प्रदान करनेवाली भुजाओंसे अभी श्रीभरतजीको उठाकर हृदयसे लगाकर निर्भय करेंगे। श्रीभरतजी प्रभुका दर्शन करके अतिशय प्रेममयी त्वराके कारण अत्यन्त वेगसे दौड़कर श्रीरामकी ओर चले—

अभ्यधावत धर्मात्मा भरतः केकयीसुतः॥

(२।९९।२९)

श्रीभरतजी श्रीरामके चरणोंमें पहुँचनेके पूर्व ही बड़ी कठिनतासे 'हे आर्य! इतना कहकर रोते हुए भूमिपर गिर पड़े—'

पादावप्राप्य रामस्य पपात भरतो रुदन्॥

(२।९९।३७)

श्रीशत्रुघ्नने भी रोते हुए श्रीरामचरणोंमें प्रणाम किया। रोते हुए करुणासागर श्रीरामजीने भी श्रीभरत, शत्रुघ्न दोनोंको उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया—

शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन्।
तावुभौ च समालिङ्ग्य रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत्॥

(२।९९।४०)

श्रीरामजीने भरतको उठाकर जब अपने हृदयसे लगाया तब उनका वात्सल्यरस समुच्छलित हो गया। वे श्रीभरतका मस्तक सूँघ करके उन्हें अपनी गोदमें बिठा करके कुशल पूछने लगे—

आघ्राय रामस्तं मूर्ध्नि परिष्वज्य च राघवम्।
अङ्के भरतमारोप्य पर्यपृच्छत सादरम्॥

(२।१००।३)

भगवान् श्रीरामने इस प्रसङ्गमें कुशल, प्रश्न करनेके व्याजसे श्रीभरतको राजनीतिका, व्यवहारनीतिका बड़ा महत्त्वपूर्ण उपदेश किया है। इसका मनन करना चाहिये। आगे श्रीरामजीने पूछा—'हे भरत! तुम प्राप्त राज्यका परित्याग करके, कृष्णमृगचर्म और जटाधारण करके इस वनमें किस कारणसे आये हो, यह मैं तुमसे सुनना चाहता हूँ—'

यन्निमित्तमिमं देशं कृष्णाजिनजटाधरः।

हित्वा राज्यं प्रविष्टस्त्वं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि॥

(२।१०१।३)

श्रीभरतने कहा—'हे नरश्रेष्ठ! मैं राज्यधर्मका अधिकारी नहीं हूँ, अतः राजधर्मका उपदेश मेरे लिये व्यर्थ है।—'

रामस्य वचनं श्रुत्वा भरतः प्रत्युवाच ह।
किं मे धर्माद् विहीनस्य राजधर्मः करिष्यति॥

(२।१०२।१)

हे रघुनन्दन! आप वनमें चले आये और मैं नानाके यहाँ केकय-देशमें था। उसी समय हम लोगोंके पिताजी स्वर्गलोक चले गये—

केकयस्थे च मयि तु त्वयि चारण्यमाश्रिते।
धीमान् स्वर्गं गतो राजा यायजूकः सतां मतः॥

(२।१०२।५)

श्रीभरतजी अपने पिताके लिये तीन विशेषणोंका प्रयोग करते हैं— '**धीमान्, यायजूकः** और **सतां मतः**'। इन तीन विशेषणोंके द्वारा श्रीदशरथजीके चरित्रकी अभिव्यक्ति कर रहे हैं। '**धीमान्**' अर्थात् जिनकी बुद्धि आपमें निरन्तर लगी रहती है, जिनकी बुद्धिके विषय केवल आप—श्रीराम रहते हैं वे ही श्रीदशरथ '**धीमान्**' पद वाच्य हैं। वे '**यायजूक**' थे—अनेकों अश्वमेधादि यज्ञोंके कर्त्ता थे। प्रस्तुत प्रसङ्गमें 'यायजूक' कहनेका भाव यह है कि श्रीरामप्रेम सिद्ध करनेके लिये महान् प्रेमी श्रीदशरथने श्रीरामप्रेमके लिये अपने प्रिय प्राणोंकी भी आहुति दे दी—

सो तनु राखि करब मैं काहा।
जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा॥

'**सतां मतः**' अर्थात् सज्जन उसीका आदर करते हैं जो श्रीरामका होता है। श्रीदशरथजीको युग-युग, कल्प-कल्पमें सज्जन लोग स्मरण करते रहेंगे।

हे रघुनन्दन! आपके पिताको आपसे अलग होते ही एक रोग लग गया। उस रोगका नाम था आपका विरह। उसी विरह-शोकके कारण वे रोगी हो गये। वे आपको ही सोचते थे। उनके मनमें केवल आपके ही दर्शनकी लालसा थी, उनकी बुद्धि आपमें ही लगी हुई थी, वे भाग्यवान् आपमें लगी हुई बुद्धिको अन्यत्र नहीं लगा पाये। आपमें ही अपनी बुद्धिको, चित्तको, चित्तवृत्तिको लगाकर आपका ही स्मरण करते हुए वे स्वर्ग चले गये—

त्वामेव शोचंस्तव दर्शनेप्सु-
स्त्वय्येव सक्तामनिवर्त्य बुद्धिम्।
त्वया विहीनस्तव शोकरुग्ण-
स्त्वां संस्मरन्नेव गतः पिता ते॥

(२।१०२।९)

पिताकी मृत्युका समाचार श्रवण करके श्रीरामजी दुःखके कारण चेतनाशून्य हो गये—

तां श्रुत्वा करुणां वाचं पितुर्मरणसंहिताम्।
राघवो भरतेनोक्तां बभूव गतचेतनः॥

(२।१०३।१)

श्रीरामजी वनमें कुल्हाड़ीसे कटे हुए पुष्पित शाखावाले वृक्षकी भाँति दोनों भुजाओंको उठाकर हा पितः! हा पितः! कहकर रुदन करते हुए भूमिपर गिर पड़े—

प्रगृह्य रामो बाहू वै पुष्पिताङ्ग इव द्रुमः।
वने परशुना कृत्तस्तथा भुवि पपात ह॥

(२।१०३।३)

तिलकटीकाकार कहते हैं कि अभी-अभी श्रीभरत-शत्रुघ्नके दर्शनसे श्रीरामजी अति प्रसन्न हुए थे, अतः '**पुष्पिताङ्ग इव द्रुमः**' लिखा है। '**भरतादिदर्शनेन हर्षात् पुष्पिताङ्गं द्रुमसादृश्यम्**'। श्रीराम रुदन करते हुए कहने लगे—'हा हन्त! जो मेरे पिता शोकमें भी मुझे ही स्मरण करते हुए चले गये। मैं उनका—अपने वत्सल पिताका अन्तिम संस्कार भी नहीं कर सका।'

यो मृतो मम शोकेन स मया न च संस्कृतः॥

(२।१०३।९)

हे भरत! हे शत्रुघ्न! तुमलोगोंका जन्म लेना सफल हो गया, तुम दोनों कृतार्थ हो गये; क्योंकि तुमलोगोंने अपने पिताकी अन्त्येष्टि करके उनका महान् सम्मान किया है—

अहो भरत सिद्धार्थो येन राजा त्वयाऽनघ।
शत्रुघ्नेन च सर्वेषु प्रेतकृत्येषु सत्कृतः॥

(२।१०३।१०)

उसी समय श्रीरामजीने रोते हुए कहा—'हे सीते! तुमको पिताकी तरह प्यार करनेवाले तुम्हारे श्वशुर संसारसे चले गये। हे लक्ष्मण! तुमको तो पिताजी अधिक ही प्यार करते थे। हा हन्त! अब तुम भी पितृहीन हो गये—

सीते मृतस्तेश्वशुरः पितृहीनोऽसि लक्ष्मण।

(२।१०३।१५)

श्रीलक्ष्मण सुनकर विह्वल हो गये। रुदन करनेके कारण श्रीसीताकी आँखोंमें इतने आँसू भर गये कि वे अपने प्राणप्रियतम श्रीरामकी ओर निहार नहीं सकीं—

सा सीता स्वर्गतं श्रुत्वा श्वशुरं तं महानृपम्।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां न शशाकेक्षितुं प्रियम्॥

(२।१०३।१८)

सब भाइयोंने श्रीरामको बहुत प्रकारसे समझाया और सान्त्वना देकर कहा—'हे दशरथनन्दन! अब आप स्वर्गीय पिताजीके लिये जलाञ्जलि प्रदान करें—'

ततस्ते भ्रातरः सर्वे भृशमाश्वास्य दुःखितम्।
अब्रुवञ्जगतीभर्तुः क्रियतामुदकं पितुः॥

(२।१०३।१७)

श्रीरामजीने कहा—'हे लक्ष्मण! पिण्डदानकी तैयारी करो। इङ्गुदीका पिसा हुआ फल, चीर और उत्तरीय ले आओ। मैं अपने उदार अन्तःकरणवाले पूज्य पिताको जलदान देनेके लिये मन्दाकिनी-तटपर चलूँगा—

आनयेङ्गुदिपिण्याकं चीरमाहर चोत्तरम्।
जलक्रियार्थं तातस्य गमिष्यामि महात्मनः॥

(२।१०३।२०)

हे लक्ष्मण! श्रीसीता आगे-आगे चलें, इनके पीछे तुम चलो और तुम्हारे पीछे मैं चलूँगा। तदनन्तर मन्दाकिनी-तटपर जाकर स्नान करके जलाञ्जलि देते हुए श्रीरामने दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके रोते हुए जलाञ्जलि दी। तदनन्तर इङ्गुदीके गूदेमें बेरका चूर्ण मिलाकर उसका पिण्ड बनाया और वेदीपर बिछे हुए कुशोंपर पिण्डोंको रखकर अत्यन्त दुःखसे आर्त्त होकर रोते हुए कहा—हे श्रद्धेय पितः! श्राद्धमें श्रद्धापूर्वक दिये हुए इस भोजनको आप प्रीतिपूर्वक भोग लगावें। हे महाराज! उचित तो यह था कि आपको हम खीरका पिण्डदान करते परंतु आजकल हमलोग आपकी आज्ञानुसार यही आहार करते हैं। मनुष्य स्वयं जो अन्न खाता है, वही अन्न उसके देवता भी स्वीकार करते हैं—

ऐङ्गुदं बदरैर्मिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे।
न्यस्य रामः सुदुःखार्तो रुदन् वचनमब्रवीत्॥
इदं भुङ्क्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम्।
यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः॥

(२।१०३।२९-३०)

इसलिये आराधना करनेवालेको कभी ऐसा पदार्थ नहीं खाना चाहिये जो वह अपने आराध्यको समर्पण न कर सके।

'दर्भसंस्तरे' का भाव कि कुशास्तरणपर ही पिण्डदान करना चाहिये। एक बड़ी भावपूर्ण कथा मैंने गयामें सुनी है कि देवव्रत भीष्मजी अपने पिता शन्तनुका गया-श्राद्ध करनेके लिये गया गये। जब पिताको पिण्ड देनेके लिये पातित वाम जानु होकर हाथमें पिण्ड लेकर पितृतीर्थसे कुशपर पिण्ड देनेके लिये प्रस्तुत हुए तब उनके पिता शन्तनुका हाथ पिण्ड लेनेके लिये प्रत्यक्ष आ गया। परंतु भीष्मजीने उनके हाथमें पिण्डदान

नहीं किया। तीसरी बार पिताने कहा—'हे भीष्म! तुम मुझे पिण्डदान क्यों नहीं करते हो?' भीष्मने कहा—'हे पितः! आपके इन हस्तकमलोंका दर्शन करके मैं कृतकृत्य हो रहा हूँ और मुझे स्मरण आ रहा है कि इन्हीं हाथोंसे प्यार करते हुए आपने मुझे शिक्षा दी थी कि शास्त्रकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। जो व्यक्ति शास्त्रके—वेदके अनुशासनका त्याग करके मनमाना आचरण करता है वह लौकिक किंवा पारलौकिक सिद्धिको प्राप्त नहीं हो सकता है। तथा इस लोकके किञ्चित् भोग-सुखको भी नहीं पा सकता है फिर परमगतिको तो पा ही कैसे सकता है?'

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

(गीता १६।२३)

'हे पितः! शास्त्रविधिके अनुसार आपके हाथमें पिण्डदान मैं नहीं करूँगा, कुशास्तरणपर ही करूँगा। शन्तनु प्रसन्न हो गये। भीष्मने कुशास्तरणपर ही पिण्डदान किया। कुछ लोग कहते हैं, 'भाव शुद्ध होना चाहिये', '**मन चंगा तो कठौतीमें गंगा**', हम तो ऐसा ही करते हैं, हमारा तो यही सिद्धान्त है।' वास्तवमें वे उचित नहीं कहते हैं। आपके सिद्धान्तकी कौड़ी कीमत नहीं है। सिद्धान्त तो वैदिक सिद्धान्त होना चाहिये। सन्तशास्त्रानुमोदित सिद्धान्त होना चाहिये। केवल पैसा खर्च करनेसे देवता प्रसन्न नहीं होते हैं। देवता प्रसन्न होते हैं तो पैसेकी बरसात हो जाती है। तात्पर्य यह है कि श्रीरामजीके चरित्रके अनुसार जीवन बनाना चाहिये। इसीलिये प्रभुने मानव-शरीर धारण किया है। श्रीरामजीने कुशास्तरणपर ही पिण्डदान किया है। मन्दाकिनी-तटपर पिण्डदान करके श्रीरामजी, श्रीसीताजी और तीनों भाइयोंके साथ अपनी पर्णकुटीपर, जो चित्रकूट पर्वतपर थी, चले गये। वहाँ जाकर पिताका स्मरण करते हुए वे पाँचों बड़े उच्चस्वरसे रुदन करने लगे। उस समय उनके रुदनकी सम्मिलित ध्वनिकी प्रतिध्वनि ऐसी ज्ञात होती थी मानो कई सिंह गर्जन कर रहे हों—

तेषां तु रुदतां शब्दात् प्रतिशब्दोऽभवद् गिरौ।
भ्रातॄणां सह वैदेह्या सिंहानां नर्दतामिव॥

(२।१०३।३३)

इसके अनन्तर बड़े-बड़े संत शोकसे क्षुब्ध होकर श्रीरामजीके पास आकर रुदन करने लगे। उन महात्माओंके रुदनकी ध्वनि मृदङ्गकी ध्वनिके समान सुनायी पड़ती थी— '**मृदङ्गघोषप्रतिमो विशुश्रुवे**'।

उधर श्रीवसिष्ठजीके नेतृत्वमें अयोध्यावासी श्रीरामदर्शनकी कामनासे शीघ्रतापूर्वक चले आ रहे हैं। माताएँ चली आ रही हैं, सचिव चले आ रहे हैं, ब्राह्मण चले आ रहे हैं, जो भी आये हैं सब नर-नारी चले आ रहे हैं। इनके आगे-आगे पुरोधा श्रीवसिष्ठ आ रहे हैं। उनका विशेषण बड़ा विलक्षण है, वे व्यवहारसे नहीं आ रहे हैं अपितु श्रीरामदर्शनकी प्रबल अभिलाषा मनमें सँजोये हुए चले आ रहे हैं। '**रामदर्शनतर्षितः**' अर्थात् '**श्रीरामदर्शने सञ्जाताभिलाषः**'।

वसिष्ठः पुरतः कृत्वा दारान् दशरथस्य च।
अभिचक्राम तं देशं रामदर्शनतर्षितः॥

(२।१०४।१)

इसके अनन्तर माताओंका—श्रीकौसल्या, सुमित्राका बहुत करुण संवाद है, मैं उसे प्रणाम करके आगे चलता हूँ। माताओंने वल्कलाम्बर पहने हुए जटामण्डल धारण किये हुए तपस्वी श्रीरामको जब देखा तब आर्त्त होकर उच्चस्वरसे रुदन करती हुई आँसू बहाने लगीं—

आर्ता मुमुचुरश्रूणि सस्वरं शोककर्षिताः॥

(२।१०४।१७)

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रने जब माताओंका दर्शन किया तब तत्काल खड़े हो गये और सत्यप्रतिज्ञ नरशार्दूल श्रीरामने माताओंके चरणोंमें क्रमशः प्रणाम किया। माताओंने अपने कोमल अङ्गुलिदलवाले सुखस्पर्श हाथोंसे श्रीरामकी पीठमें लगी हुई धूलको परिमार्जित किया—

तासां रामः समुत्थाय जग्राह चरणाम्बुजान्।
मातॄणां मनुजव्याघ्रः सर्वासां सत्यसङ्गरः॥
ताः पाणिभिः सुखस्पर्शैर्मृद्वङ्गुलितलैः शुभैः।
प्रममार्जू रजः पृष्ठाद् रामस्यायतलोचनाः॥

(२।१०४।१८-१९)

'आयतलोचनाः' का भाव यह है कि जिन आँखोंसे श्रीरामकी पीठमें लगी हुई धूल दीख जाय वही नेत्र विशाल नेत्र हैं। श्रीलक्ष्मणजीने भी सभी माताओंको प्रणाम किया। इसके पश्चात् दुःखिता श्रीसीताने आँखोंमें आँसू भरकर अपनी सासुओंके चरणोंमें प्रणाम करके उनके आगे खड़ी हो गयीं—

सीतापि चरणांस्तासामुपसङ्गृह्य दुःखिता।
श्वश्रूणामश्रुपूर्णाक्षी सम्बभूवाग्रतः स्थिता॥

(२।१०४।२२)

श्रीकौसल्याजीने श्रीसीताको उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया और रोते हुए कहने लगीं—हा हन्त! मिथिलेशराजकिशोरी, श्रीदशरथजीकी पुत्रवधू और श्रीरामकी प्राणप्रिया प्रेयसी पत्नी इस निर्जन वनमें इस प्रकार दुःख क्यों पा रही हैं—

वैदेहराजन्यसुता स्नुषा दशरथस्य च।
रामपत्नी कथं दुःखं सम्प्राप्ता विजने वने॥

(२।१०४।२४)

श्रीगोस्वामीजीने इस प्रसङ्गका अत्यन्त भावनापूर्ण और करुण चित्रण किया है—

सासु सकल जब सीयँ निहारीं।
मूदे नयन सहमि सुकुमारीं॥
परीं बधिक बस मनहुँ मरालीं।
काह कीन्ह करतार कुचालीं॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुखु पावा।
सो सबु सहिअ जो दैउ सहावा॥
जनकसुता तब उर धरि धीरा।
नील नलिन लोयन भरि नीरा॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई।
तेहि अवसर करुना महि छाई॥
लागि लागि पग सबनि सिय भेंटति अति अनुराग।
हृदयँ असीसहिं पेम बस रहिअहु भरी सोहाग॥

(श्रीरामचरितमानस २।२४६)

इसी समय श्रीरामजीने गुरुदेव श्रीवसिष्ठके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणिपात किया—

पादावासाद्य जग्राह वसिष्ठस्य च राघवः॥

(२।१०४।२७)

इस प्रकार यह मिलनकी रात्रि—करुणामयी रात्रि—सिसकियोंसे भरी हुई रात्रि व्यतीत हो गयी। प्रातःकाल श्रीमन्दाकिनीमें स्नान करके सन्ध्या, हवन, जप आदि कृत्य सम्पन्न करके सब लोग श्रीरामके पास आकर अर्थभरी दृष्टिसे देखते हुए बैठ गये। सब मौन हैं, कोई किसीसे कुछ बोल नहीं रहा है, नीरव वातावरण है। उस समय वातावरणको मुखर बनाते हुए श्रीभरतने कहा—'हे करुणासागर! पूज्य पिताजीने मेरी माताको वर प्रदान करके सन्तुष्ट कर दिया। मेरी माताने श्रीअयोध्याका राज्य मुझे दे दिया। अब मैं वह अकण्टक, अनुच्छिष्ट, अखण्ड राज्य आपकी सेवामें समर्पण कर रहा हूँ। हे मेरे आराध्य! उस राज्यको स्वीकार करके प्रजापालन करें—'

सान्त्विता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम।
तद् ददामि तवैवाहं भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम्॥

(२।१०५।४)

यदि आप यह कहें कि तुममें योग्यता है,

तुम बुद्धिमान् हो अतः राज्यकी रक्षा तुम्हीं करो तो हे सर्वसमर्थ रघुनन्दन! भार वहन तो गधा भी करता है और अश्व भी करता है, परंतु घोड़ेका कार्य गधा कभी नहीं कर सकता है। हे महीपते! पक्षी संज्ञा तो गरुड़की भी है और साधारण पक्षियोंकी भी है परंतु क्या सामान्य पक्षी गरुड़की तुलना कर सकता है। हे नरेन्द्र! जिस प्रकार गधा अश्वका कार्य नहीं कर सकता, सामान्य पक्षी गरुड़की चाल नहीं चल सकता उसी प्रकार मुझमें आपकी गतिका अनुगमन करनेकी शक्ति नहीं है, अतः हे स्वामी! अयोध्याजी पधारकर राज्यका सञ्चालन करें—

गतिं खर इवाश्वस्य तार्क्ष्यस्येव पतत्त्रिणः।
अनुगन्तुं न शक्तिर्मे गतिं तव महीपते॥

(२। १०५। ६)

श्रीअयोध्यासे आये हुए समस्त लोग एक स्वरसे श्रीभरतजीके प्रस्तावका समर्थन करते हुए 'साधु-साधु' कहने लगे—

तस्य साध्वनुमन्यन्त नागरा विविधा जनाः।

(२। १०५। १३)

श्रीरामचन्द्रजीने श्रीभरतको अनेक प्रकारसे समझाकर कहा—हे भरत! तुम यहाँसे जाकर श्रीअयोध्यामें निवास करो। पिताजीकी तुम्हारे लिये यही आज्ञा है। जिस वनवासरूप कर्ममें पिताजीने मुझे नियुक्त किया है, उसी कर्मको करता हुआ—वनमें रहता हुआ मैं पूज्य पिताश्रीके आदेशका पालन करूँगा—

यत्राहमपि तेनैव नियुक्तः पुण्यकर्मणा।
तत्रैवाहं करिष्यामि पितुरार्यस्य शासनम्॥

(२। १०५। ४१)

श्रीरामजीकी बात सुनकर श्रीभरतजीने कहा—हे शत्रुदलन श्रीरामजी! जिस तरह आप अखिल गुणगण संयुक्त हैं, उस तरह दूसरा कौन हो सकता है? आपकी सबसे बड़ी विशेषता है कि भयङ्कर-से-भयङ्कर दुःख आपको कष्ट नहीं दे सकता है। आपत्तियोंके झंझावातमें भी स्थिर रहनेवाले आप महाशैल हिमालय हैं। कितना भी प्रिय समाचार क्यों न हो; वह आपको प्रसन्नताकी सीमाके बाहर नहीं कर सकता है। हे रघुनन्दन! आपको बड़े-बड़े वृद्ध मानते हैं। ज्ञानवृद्ध मानते हैं, वयोवृद्ध मानते हैं, तपवृद्ध मानते हैं। इन त्रिविध वृद्धोंने धर्मके विषयमें श्रीरामकी तरह आचरण करना चाहिये यह मर्यादा स्थापित कर दी है। फिर भी संशयास्पद स्थितिके उत्पन्न होनेपर लोक-मर्यादाका परिरक्षण करनेके लिये आप उन्हींसे समाधान पूछते हैं—

को हि स्यादीदृशो लोके यादृशस्त्वमरिन्दम॥
न त्वां प्रव्यथयेद् दुःखं प्रीतिर्वा न प्रहर्षयेत्।
सम्मतश्चापि वृद्धानां तांश्च पृच्छसि संशयान्॥

(२। १०६। २, ३)

लोग अपने बुद्धि-वैभवका घमण्ड करके कहते हैं कि अमुक विद्वान् हमें क्या बतायेगा? हम उससे क्या पूछें? हम तो स्वयं अभिनव वाचस्पति हैं, बड़े-बड़े विद्वान् भी हमारी आज्ञा मानते हैं, हमसे बड़ा कौन है?

ऐसे नीच और दम्भी प्राणियोंको आपसे शिक्षा लेनी चाहिये।

श्रीभरतने कहा—हे अनाथनाथ! मैं तो सब प्रकारसे बालक हूँ, शास्त्रज्ञान और जन्मजात अवस्था दोनों ही दृष्टियोंसे मैं बालक हूँ। फिर आपके रहते इस वसुन्धराका पालन मैं कैसे कर सकूँगा?

श्रुतेन बालः स्थानेन जन्मना भवतो ह्यहम्।
स कथं पालयिष्यामि भूमिं भवति तिष्ठति॥

(२। १०६। २३)

हे स्वामी! आपके साथ रहकर आप जो कुछ कहेंगे वह मैं अवश्य करूँगा। आज्ञा पालन भी करूँगा; परन्तु आपके बिना मैं जीवन धारण

नहीं कर सकता, फिर राज्यपालन करनेकी तो चर्चा ही व्यर्थ है—

भवता च विनाभूतो न वर्तयितुमुत्सहे॥

(२। १०६। २४)

हे करुणापाथनाथ! हे अयोध्यानाथ! हे मेरे नाथ! आपके मङ्गलमय श्रीचरणारविन्दोंमें मैं अपना मस्तक रखकर याचना करता हूँ कि आप मुझ अनाथपर कृपा करिये—श्रीअयोध्या लौट चलिये—

शिरसा त्वाभियाचेऽहं कुरुष्व करुणां मयि।
बान्धवेषु च सर्वेषु भूतेष्विव महेश्वरः॥

(२। १०६। ३१)

यदि आप मेरी विनतीको अमान्य करके—तिरस्कृत करके यहाँसे वनको ही जाना चाहते हैं तो हे स्वामी! मैं भी आपके साथ वनमें ही चलूँगा—

अथवा पृष्ठतः कृत्वा वनमेव भवानितः।
गमिष्यति गमिष्यामि भवता सार्धमप्यहम्॥

(२। १०६। ३२)

भरतजीके विनम्र वचनोंको सुनकर श्रीरामजीने कहा—हे भ्रातः! आजसे बहुत पहलेकी बात है, हम लोगोंके जन्मके पहलेकी बात है, हम लोगोंके पिताजीका जब तुम्हारी जननी कैकेयीसे विवाह हुआ था, उसी समय पिताजीने तुम्हारे नानासे कैकेयीपुत्रको राज्य देनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी—

पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्।
मातामहे समाश्रौषीद् राज्यशुल्कमनुत्तमम्॥

(२। १०७। ३)

हे भरत! 'पुत्' नरकका नाम है। उस नरकसे जो पिताका उद्धार करता है वही पुत्र 'पुत्र' पदवाच्य है। यदि पिता ऋणी मर जाता है तो उसे नरक मिलता है। अतः पिताको जो पुत्र अनृण—ऋणरहित करके सब प्रकारसे पिताकी रक्षा करता है वही सच्चा पुत्र है—

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः पितॄन् यः पाति सर्वतः॥

(२। १०७। १२)

इसलिये हे रघुनन्दनभरत! हे नरश्रेष्ठ! मैं भी श्रीपिताजीको नरकसे बचानेका प्रयास करूँ और तुम भी उनका नरकसे उद्धार करो—

तस्मात् त्राहि नरश्रेष्ठ पितरं नरकात् प्रभो॥

(२। १०७। १४)

आगे श्रीरामजी बहुत सुन्दर कहते हैं कि हे भरत! मैं और तुम दोनों सुखपूर्वक राज्य करते हुए पिताजीके सत्यकी रक्षा करके उन्हें ऋणरहित करके उनकी नरकसे रक्षा करें।

प्रभु यह कहते हैं कि हे भावुक भरत! तुम श्रीअयोध्याजी जाकर मनुष्योंके राजा बनो और मैं जङ्गली पशुओंका सम्राट् बनूँगा। इसलिये सम्प्रति तुम सम्प्रहृष्ट होकर श्रीअवधको प्रस्थान करो और मैं भी आनन्दपूर्वक दण्डक काननमें प्रवेश करूँगा। हे भरत! भगवान् भुवन भास्करकी आभा, प्रभा, कान्तिको पराभूत करनेवाला छत्र तुम्हारे मस्तकपर अपनी छायासे शैतल्य प्रदान करे। अब मैं भी शनैःशनैः इन काननद्रुमोंकी घनी छायाका आश्रय स्वीकार करूँगा। जो घनी होनेके कारण हमें समस्त ऋतुओंमें सुख प्रदान करेगी। अप्रतिम मेधा, सम्पन्न शत्रुघ्न कुमार तुम्हारी सहायतामें रहेंगे और जो अपनी सेवाके लिये सुप्रसिद्ध हैं, जिन्हें माता सुमित्राने मेरी सेवाके लिये ही मेरे साथ भेजा है। वे लक्ष्मण मेरे प्रधान मित्र होंगे। इस प्रकार हम चारों पुत्र अपने आदर्श पिता चक्रवर्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजीकी प्रतिज्ञाकी, सत्यकी रक्षा करें। हे भरत! तुम मेरे विषयमें किंवा अपने विषयमें विषाद न करो—

त्वं राजा भरत भव स्वयं नराणां
वन्यानामहमपि राजराण्मृगाणाम्

गच्छ त्वं पुरवरमद्य सम्प्रहृष्टः
संहृष्टस्त्वहमपि दण्डकान् प्रवेक्ष्ये
छायां ते दिनकरभाः प्रबाधमानं
वर्षत्रं भरत करोतु मूर्ध्नि शीताम्
एतेषामहमपि काननद्रुमाणां
छायां तामतिशयिनीं शनैः श्रयिष्ये
शत्रुघ्नस्त्वतुलमतिस्तु ते सहायः
सौमित्रिर्मम विदितः प्रधानमित्रम्
चत्वारस्तनयवरा वयं नरेन्द्रं
सत्यस्थं भरत चराम मा विषीद।

(२। १०७। १७—१९)

इस प्रकार श्रीचित्रकूटमें श्रीभरतके समक्ष श्रीरामचन्द्रने अपनेको मात्र राजा ही नहीं सम्राट् घोषित किया है। '**राजराण्मृगाणाम्**' का भाष्य करते हुए श्रीगोविन्दराजजी लिखते हैं—'**मृगाणां राजराट् भवामि, मृगाणां रञ्जकः शिक्षकश्च भवामीत्यर्थः। अत्र मृगशब्देन तत् तुल्या मुनयो लक्ष्यन्ते, यद् वा भाविसुग्रीवरञ्जनबालिवधादीनां बीजन्यासोऽयम्**'। अर्थात् श्रीठाकुरजी कहते हैं कि मैं मृगोंका सम्राट् बनूँगा, मृगोंको आनन्द दूँगा और उन्हें शिक्षा भी दूँगा। 'मृग' शब्दका शब्दशास्त्रके अनुसार अर्थ होगा—'**मृगयते अन्वेषयतीति मृगः**' '**तृणादिकं मृग्यते**' मृग पशु अपने खानेके लिये तृण आदि खोजता है और अमलात्मा मुनीन्द्रजन तपस्या करके किं वा किन्हीं भी साधनोंसे परमात्माको खोजते हैं इस प्रकार 'मृग' शब्दसे मुनियोंका भी ग्रहण सम्भव है।'अथवा **राजराण्मृगाणाम्**' यह पद श्रीसुग्रीवरञ्जन और वालिवधकी भविष्यकी कथाकी ओर इङ्गित कर रहा है। भाव कि प्रभु कहते हैं कि निग्रह-अनुग्रह दोनोंका अधिकार सामान्य व्यक्तिको नहीं है। भविष्यमें वालीको दण्ड और सुग्रीवको न्याय देना होगा उसके लिये ठाकुरजी अभी कह रहे हैं कि मैं मृगोंका सम्राट् बनूँगा। सम्राट्को निग्रह-अनुग्रह दोनोंका अधिकार है। इस प्रकार धर्मतत्त्ववेत्ता श्रीरामजी भरतको आश्वस्त कर ही रहे थे कि उसी समय ब्राह्मणश्रेष्ठ जाबालिने धर्मापेत—धर्ममार्गके विरुद्ध वचन बोले—

आश्वासयन्तं भरतं जाबालिर्ब्राह्मणोत्तमः।
उवाच रामं धर्मज्ञं धर्मापेतमिदं वचः॥

(२। १०८। १)

'**ब्राह्मणोत्तमः**' कहनेका भाव यह है कि वास्तवमें जाबालि ऋषिका हृदय अधार्मिक नहीं था। श्रीरामके श्रेष्ठ वचनोंका जब श्रीभरत समुचित उत्तर न दे सके—निरुत्तर हो गये तब महर्षिको दया आ गयी और वे अधार्मिककी-सी बात करने लगे। जाबालिने कहा—हे श्रीरामचन्द्र! आपको प्राकृत मनुष्यकी भाँति बात नहीं करनी चाहिये। संसारमें कौन किसका पिता है और कौन किसकी माता है? जीव अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही नष्ट हो जाता है—

एको हि जायते जन्तुरेक एव विनश्यति।

(२। १०८। ३)

यह जीवन तो सुखपूर्वक व्यतीत करनेके लिये है। अतः छोड़ो धर्म-कर्म और प्रतिज्ञा-पालनकी बातें, भरतके अनुरोधसे आप अयोध्याका राज्य स्वीकार कीजिये—

राज्यं स त्वं निगृह्णीष्व भरतेन प्रसादितः॥

(२। १०८। १८।)

अब तो जाबालिकी बातें सुनकर श्रीरामजीने संशयरहित बुद्धिके द्वारा उत्तर दिया—हे विप्रवर! आपकी बात कर्तव्य-सी दिखायी देती है किन्तु अकरणीय है, पथ्य-सी ज्ञात होनेपर भी अपथ्य है—

अकार्यं कार्यसंकाशमपथ्यं पथ्य सन्निभम्॥

(२। १०९। २)

आपके कथनानुसार चलनेपर तो समस्त लोगोंकी परलोक हानि हो जायगी। आपकी बात माननेसे

पहले तो मैं ही यथेष्टाचारी हो जाऊँगा फिर समस्त लोग यथेच्छाचारी हो जायँगे; क्योंकि राजाओंके आचरण जिस प्रकार होते हैं प्रजा भी उसी प्रकारका आचरण करने लगती है—

कामवृत्तोऽन्वयं लोकः कृत्स्नः समुपवर्तते।
यद्वृत्ताः सन्ति राजानस्तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः॥

(२। १०९। ९)

आपकी बुद्धि विषम मार्गमें स्थित है, आप घोर नास्तिक और पाखण्डी हैं। आपको मेरे पिताजीने जो अपना याजक बना लिया, उनके इस कर्मकी मैं निन्दा करता हूँ—

निन्दाम्यहं कर्म कृतं पितुस्तद्
यस्त्वामगृह्णाद् विषमस्थबुद्धिम्।
बुद्ध्यानयैवंविधया चरन्तं
सुनास्तिकं धर्मपथादपेतम्॥

(२। १०९। ३३)

श्रीरामकी रोषपूर्ण वाणी सुनकर श्रीजाबालिने करुण स्वरमें कहा—हे श्रीरामचन्द्र! मैं नास्तिक नहीं हूँ, मैं तुमसे बहुत स्नेह करता हूँ, अतः मेरा उद्देश्य यही था कि किसी भी प्रकार मैं आपको श्रीअयोध्या लौटनेके लिये तैयार कर लूँ—

निवर्तनार्थं तव राम कारणात्
प्रसादनार्थं च मयैतदीरितम्।

(२। १०९। ३९)

श्रीरामको क्रुद्ध जानकर ब्रह्मर्षि श्रीवसिष्ठने भी कहा—हे श्रीराम! महर्षि जाबालि तत्त्वज्ञानी हैं वे जीवलोकके गमनागमनको जानते हैं—उन्हें पता है कि जीव इस लोकसे परलोक जाता है और पुनः इस लोकमें आता है—

क्रुद्धमाज्ञाय रामं तु वसिष्ठः प्रत्युवाच ह।
जाबालिरपि जानीते लोकस्यास्य गतागतिम्॥

(२। ११०। १)

हे रघुनन्दन! इस समय जाबालिमुनिने जो नास्तिकोंकी-सी बात कही है, इसका कारण तुम्हारे प्रति इनका प्रेमातिशय ही है। यह तुम्हारे वनवाससे अतिशय दुःखी हैं, यह चाहते हैं कि तुम श्रीअयोध्या लौट चलो।

इसके अनन्तर श्रीवसिष्ठने इक्ष्वाकुवंशका इतिहास और कुलपरम्परा बताते हुए कहा कि इस वंशमें ज्येष्ठ पुत्र ही राजा होता आया है। ज्येष्ठ पुत्रके होते छोटा पुत्र राजा नहीं होता है अतः कुलपरम्पराके अनुसार तुम्हें अयोध्याका राजा बनना चाहिये—

इक्ष्वाकूणां हि सर्वेषां राजा भवति पूर्वजः।
पूर्वजे नावरः पुत्रो ज्येष्ठो राजाभिषिच्यते॥

(२। ११०। ३६)

श्रीवसिष्ठने श्रीरामसे पुनः दूसरी धर्मयुक्त बात कही—हे पुरुषसिंह! संसारमें तीन गुरु प्रधान होते हैं, पिता, माता और आचार्य। पिता पुरुषके शरीरको उत्पन्न करता है, अतः गुरु है और आचार्य उसे ज्ञान देता है एतावता गुरु पदवाच्य है। हे परन्तप! मैं तुम्हारे पिताका आचार्य—गुरु हूँ और तुम्हारा भी गुरु हूँ, इसलिये मेरी आज्ञाका पालन करनेसे तुम सत्पुरुषोंके मार्गका अतिक्रमण नहीं करोगे—

पिता ह्येनं जनयति पुरुषं पुरुषर्षभ।
प्रज्ञां ददाति चाचार्यस्तस्मात् स गुरुरुच्यते॥
स तेऽहं पितुराचार्यस्तव चैव परन्तप।
मम त्वं वचनं कुर्वन् नातिवर्तेः सतां गतिम्॥

(२। १११। ३-४)

हे रघुनन्दन! अपनी धर्मशीला, वृद्धा, वात्सल्यमयी माता कौसल्याकी आज्ञा भी तुम्हें नहीं टालनी चाहिये। हे भ्रातृवत्सल राम! यह तुम्हारा लाड़ला, दुलारा, प्यारा, भावभरा भरत तुम्हारे सामने आँसू बहाता हुआ करुणाभरे स्वरमें दीनतासे ओतप्रोत प्रार्थना कर रहा है। इसकी प्रार्थना मानकर श्रीअयोध्या लौट चलो, इसमें मर्यादाका अतिक्रमण नहीं होगा।

वसिष्ठजीके इतना कहनेपर भी सत्य सङ्कल्प श्रीराम अपने वचनपर अडिग रहे और उन्होंने

कहा—हे गुरुदेव! माता-पिताके अनन्त उपकार पुत्रपर होते हैं, वे पुत्रके प्रति सदा स्नेहिल व्यवहार करते हैं, उत्तमोत्तम खाद्य पदार्थ देते हैं, सुन्दर सुकोमल शय्यापर सुलाते हैं, सदा मीठी-मीठी बातोंसे मनोरञ्जन करते हैं और विविध भाँतिसे पालन-पोषण करते हैं। हे गुरुदेव! उनके ऋणसे सहज ही उऋण नहीं हुआ जा सकता इसलिये मेरे जनयिता पिता श्रीदशरथजीने मुझे जो आज्ञा दी है वह मिथ्या नहीं होगी—

स हि राजा दशरथः पिता जनयिता मम।
आज्ञापयन्मां यत् तस्य न तन्मिथ्या भविष्यति॥

(२।१११।११)

अचानक श्रीभरतजी सभामें उठकर खड़े हो गये और जलका स्पर्श करके बोले—हे मेरे सभासदो! हे मेरे मित्रो! हे मन्त्रियो! सबलोग मेरी बातको सावधान होकर सुनिये। मैंने अपने पिताजीसे कभी भी राज्यकी याचना नहीं की थी। मातासे भी कभी राज्य-सम्बन्धी चर्चा नहीं की थी, साथ ही परम धर्मात्मा श्रीरामजीके वनवासमें भी मेरी कोई सम्मति नहीं थी और न मैं इसके विषयमें कुछ जानता ही था। अतः मेरे ऊपर यदि यह राज्य थोपा जा रहा है तो कहाँतक न्याय है?

अथोत्थाय जलं स्पृष्ट्वा भरतो वाक्यमब्रवीत्।
शृण्वन्तु मे परिषदो मन्त्रिणः शृणुयुस्तथा॥
न याचे पितरं राज्यं नानुशासामि मातरम्।
एवं परमधर्मज्ञं नानुजानामि राघवम्॥

(२।१११।२४-२५)

फिर भी यदि श्रीरामजीके लिये पिताकी आज्ञाका पालन करना और वनमें रहना आवश्यक है तो श्रीरामजीके बदले मैं ही चौदह वर्षतक वनमें निवास करूँगा—

यदि त्ववश्यं वस्तव्यं कर्तव्यं च पितुर्वचः।
अहमेव निवत्स्यामि चतुर्दश वने समाः॥

(२।१११।२६)

श्रीरामजीने तुरन्त उत्तर दिया—हे भरत! तुम मेरे प्रतिनिधिके रूपमें जङ्गल जाना चाहते हो, परन्तु जब शरीर अशक्त हो जाय तब प्रतिनिधि बनाया जाता है। सहसा रोगी हो गया, चलनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी है, यज्ञारम्भ हो गया है, अतः उस समय प्रतिनिधि बनाया जा सकता है। परन्तु यजमान कहे कि मुझे तो नींद आ रही है, मैं तो सोऊँगा, आचार्यजी आप प्रतिनिधिके रूपमें मेरा सब काम कर लें, यह अनुचित है। प्रतिनिधि किस अवस्थामें बनाया जाता है, किसको-किसको बनाना चाहिये सबके लिये नियम हैं। धर्मशास्त्रके आदेश हैं, उनके अनुसार प्रतिनिधि बनाया जा सकता है। श्रीरामने कहा—हे भरत! मुझे वनवासके लिये किसीको प्रतिनिधि नहीं बनाना चाहिये; क्योंकि सामर्थ्य रहते हुए प्रतिनिधिसे काम लेना लोकमें गर्हित है—

उपाधिर्न मया कार्यो वनवासे जुगुप्सितः।

(२।१११।२९)

मैं सशक्त हूँ, समर्थ हूँ, जङ्गलमें वास कर सकता हूँ। पिताजीकी आज्ञाका स्वयं पालन करना है; अतः हे भरत! मैं तुम्हारा प्रतिनिधित्व अस्वीकार करता हूँ।

उन अनुपम तेजस्वी भाइयोंका—श्रीराम और भरतका वह रोमाञ्चकारी समागम देखनेके लिये वहाँ अच्छे-अच्छे महर्षि आ गये। उन्हें उनकी प्रत्येक क्रिया देखकर, उनकी वाणीको सुनकर, उनका पारस्परिक त्याग और स्नेह देख करके महान् विस्मय हुआ—

तमप्रतिमतेजोभ्यां भ्रातृभ्यां रोमहर्षणम्।
विस्मिताः सङ्गमं प्रेक्ष्य समुपेता महर्षयः॥

(२।११२।१)

वहाँपर आये हुए गन्धर्व, महर्षि, राजर्षि लोग दोनों भाइयोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे—हमने ऐसा त्यागमय, स्नेहमय संवाद कभी नहीं सुना। आप लोगोंका यह संवाद सुनकर हमारे मन और प्राण तृप्त नहीं हो रहे हैं। बार-बार सुनते रहनेकी इच्छा होती है— '**श्रुत्वा वयं हि सम्भाषामुभयोः स्पृहयामहे**'॥ श्रीभरतने कहा—हे मेरे जीवनसारसर्वस्व! जैसे खेती करनेवाला कर्षक-किसान जलभरे जलदकी प्रतीक्षा करते रहते हैं उसी तरह हमारे बन्धु-बान्धव, योद्धा, मित्र और सुहृद् सब लोग आपके श्रीअयोध्या आगमनकी प्रतीक्षा करते रहते हैं—

ज्ञातयश्चापि योधाश्च मित्राणि सुहृदश्च नः।
त्वामेव हि प्रतीक्षन्ते पर्जन्यमिव कर्षकाः।

(२।११२।१२)

ऐसा कहकर और कोई आशा न देखकर, कोई आश्रय न देखकर, कोई सहारा न देखकर श्रीभरतजी श्रीरामजीके चरणोंमें गिर पड़े। अर्थात् जब चारों ओरसे व्यक्ति निराश हो जाता है तब भगवच्चरणोंका आश्रय ग्रहण करता है। हे भक्तवत्सल! हे अनाथनाथ! हमारे समस्त बल समाप्त हो गये हैं, हमारी युक्तियाँ समाप्त हो गयी हैं, हमारी सूक्ति अवशिष्ट नहीं है, अशेष आश्रय निःशेष हो गये हैं। एतावता हम आपके श्रीचरणोंका आश्रय ग्रहण करते हैं—

एवमुक्त्वापतद् भ्रातुः पादयोर्भरतस्तदा।

(२।११२।१४)

श्रीरामचन्द्रजीने अपने करकमलोंसे कमलदल-नयन श्यामविग्रह भावमूर्ति भाग्यवान् भरतजीको उठाकर अपनी स्नेहमयी गोदमें बिठा लिया और मत्त हंसस्वरमें स्वयं यह कहा—

तमङ्के भ्रातरं कृत्वा रामो वचनमब्रवीत्।
श्यामं नलिनपत्राक्षं मत्तहंसस्वरः स्वयम्।

(२।११२।१५)

हे तात! तुम श्रीअयोध्या लौट जाओ। तुम अपनी विनयशील बुद्धिके द्वारा समस्त भूमण्डलकी रक्षा करनेमें समर्थ हो। इसके बाद सत्यसङ्कल्प श्रीरामने कहा—हे तात! चन्द्रमाकी प्रभा चन्द्रमासे अलग हो सकती है, हिमालयमें बर्फ न मिले यह भी सम्भव है, समुद्र अपनी मर्यादाका अतिक्रमण करके सारे नगरोंको डुबो दे यह भी सम्भव है, परन्तु मैं पिताकी प्रतिज्ञा नहीं समाप्त कर सकता हूँ—

लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत्।
अतीयात् सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः॥

(२।११२।१८)

अब तो समस्त उपाय समाप्त हो गये, सारी युक्तियाँ व्यर्थ हो गयीं और सबकी प्रार्थनाएँ अमान्य कर दी गयीं। सत्यसङ्कल्प और सत्यप्रतिज्ञ श्रीरामचन्द्रजीकी अन्तिम घोषणाने तो कुछ प्रार्थना करनेका अवसर ही समाप्त कर दिया।

श्रीभरतजीने रोते हुए अपना प्रस्ताव रखा—

हे रघुनन्दन! मैं श्रीअयोध्याजी जा रहा हूँ। श्रीअयोध्याजीके ठाकुर बड़े कोमल हृदयके हैं, वे मेरी हर बात रख लेते हैं, वे मेरे ऊपर बड़ी कृपा रखते हैं। वे मुझे खेलमें भी जिता देते हैं, हारे हुएको भी जिता देते हैं। हे अवधविहारी! मैं वही भरोसा लेकर चित्रकूट आ गया था, परन्तु हे चित्रकूटाद्रिविहारी! चित्रकूटके ठाकुर बड़े कठोर हैं, उन्होंने तो मेरी एक भी नहीं सुनी। हे स्वामी! अब ये चरणपादुकाएँ आपके श्रीचरणोंमें समर्पित हैं। आप इनपर अपने मङ्गलमय श्रीचरणोंको स्थापित करके इन्हें श्रीसीताराममय बना दीजिये। आप इस विग्रहसे भले ही श्रीअवध न चलें परन्तु हे अनुग्रहविग्रह! इन पादुकाओंके रूपमें आप श्रीअयोध्याजी पधारें। अब ये पादुका सरकार ही सम्पूर्ण जगत्का योगक्षेम निर्वाह करेंगी—

अधिरोहार्य पादाभ्यां पादुके हेमभूषिते।

एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः॥

(२। ११२। २१)

भगवान्‌ने चरण-पादुकाओंपर अपने श्रीचरण-कमल स्थापित करके, पादुकाके रूपमें कोमलहृदय श्रीरामजीने अपनेको ही श्रीभरतके हाथोंमें सौंप दिया—'**प्रायच्छत् सुमहातेजा भरताय महात्मने**'। श्रीमहात्मा भरतने पादुकाओंको लेकर अपने सिरपर रखकर प्रणाम किया और रोते हुए कहा—हे मेरे आराध्य! अब हमें आज्ञा दें। हमने चित्रकूट आकर आपको सङ्कोचमें डालकर आपको महान् कष्ट दिया है। हे क्षमासागर! आप हमें क्षमा करें। अब हम श्रीअयोध्याजीमें ही आपके दर्शन करेंगे—

प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥
चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के॥
कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के॥
भरत मुदित अवलंब लहे तें। अस सुख जस सिय रामु रहे तें॥
मागेउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ।

(श्रीरामचरितमानस २। दो० ३१६। ४—८)

पादुकाओंको प्रणाम करके श्रीभरतने श्रीरामजीसे कहा—हे करुणासागर! जानेके पूर्व मैं एक विनम्र निवेदन करता हूँ उसे सुनें। हे सत्य-प्रतिज्ञ वीर! मेरे बार-बार प्रार्थना करनेपर भी आपने मुझे अपने साथ वनमें रहनेकी आज्ञा नहीं दी। हे स्वामी! अब मैं श्रीअयोध्याजीमें पहुँचकर नगरसे बाहर रहूँगा, उसे वन समझकर ही वहाँ निवास करूँगा। चौदह वर्षोंतक वल्कलवस्त्र धारण करूँगा। मेरे सरपर भी अलकावलियाँ नहीं रहेंगी अपितु जटामण्डल ही रहेगा। कन्दमूल-फलका ही भोजन करता हुआ अनुपल-अनुक्षण परिगणन करता हुआ आपके मङ्गलमय आगमनकी प्रतीक्षा करूँगा। इतने दिनोंतक राज्यका समस्त भार आपकी इन चिन्मयी पादुकाओंको सौंपकर सेवा करता रहूँगा। हे चित्रकूटाद्रिविहारी! आप प्रतिज्ञापालन करनेमें अति कठोर हैं एतावता आपके श्रीचरणोंमें कठोरतापूर्वक प्रतिज्ञापालन करनेके लिये शपथ ले रहा हूँ। हे रघुकुलश्रेष्ठ! चौदह वर्ष पूर्ण होनेपर पन्द्रहवें वर्षका मङ्गलमय सुप्रभात आपका श्रीअयोध्याकी धरामें हो ताकि वहाँ आनन्दकी धारा प्रवाहित हो यही प्रार्थना है। हे भक्तवत्सल! यदि पन्द्रहवें वर्षके प्रथम सूर्योदयकी वेलामें मुझे अपने परम प्रेमास्पद, प्राणधन, प्राणेश्वरका—आपका दर्शन नहीं मिलेगा तो मैं जलती हुई अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। हे भक्तवाञ्छाकल्पतरो! आपके पुरस्तात् प्रतिज्ञा इसलिये कर रहा हूँ कि आपका कोई भक्त यदि प्रतिज्ञा कर लेता है तो आप उस भक्तकी प्रतिज्ञाको पूर्ण कर देते हैं—

स पादुके सम्प्रणम्य रामं वचनमब्रवीत्।
चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम्॥
फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन।
तवागमनमाकाङ्क्षन् वसन् वै नगराद् बहिः॥
तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परन्तप।
चतुर्दशे हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम॥
न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्।
तथेति च प्रतिज्ञाय तं परिष्वज्य सादरम्॥

(२। ११२। २३—२६)

यों कहि सीय-राम-पाँयनि परि लषन लाइ उर लीन्हें।
पुलक सरीर, नीर भरि लोचन, कहत प्रेम-पन-कीन्हें॥
तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जो रघुबीर न ऐहौ।
तौ प्रभु-चरन-सरोज-सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ॥

(श्रीगीतावलीरामायण, अयोध्याकाण्ड ७६)

श्रीरामजीने श्रीभरतलालजीको हृदयसे लगाकर बड़े प्रेमसे कहा—हे सत्यप्रतिज्ञ वीर! तुम्हारी प्रतिज्ञाकी स्मृति मुझे सदा बनी रहेगी। हे भरत! मैं भी अनुपल, अनुक्षण तुम्हें और तुम्हारी प्रतिज्ञाको स्मरण करता रहूँगा। हे महान् प्रेमी! मैं यथासमय श्रीअयोध्याजी अवश्य आ जाऊँगा।

श्रीशत्रुघ्नजीको करुणामय श्रीरामजीने अपने सन्निकट बुलाया और उनको अपने हृदयसे लगाकर कहा—हे रिपुदमनलाल! मैं तुम्हें एक विशेष कार्य सौंपना चाहता हूँ। उस कार्यको केवल तुम्हीं कर सकते हो। श्रीशत्रुघ्नने कहा—हे स्वामी! आज्ञा दें। भक्तवत्सल प्रभुने कहा— हे भ्रातः! इस कार्यको करनेके लिये मैं तुम्हें शपथ देता हूँ। हे वत्स! तुम सीताको माँ कहते हो न! श्रीशत्रुघ्नने कहा—हे स्वामी! वे तो सर्वदा हम तीनों भाइयोंकी मातृस्थानापन्ना हैं, विशेष करके मुझपर तो उनका अनुपम वात्सल्य है। प्रभुने कहा—हे सीताके लाड़ले पुत्र! मैं इस कार्यको सम्पन्न करनेके लिये तुम्हें अपनी और तुम्हारी माँ सीताकी शपथ देता हूँ—सीतारामकी सौगन्ध दे रहा हूँ। अब तो तुम मेरा कहा हुआ कार्य अवश्य करोगे। श्रीशत्रुघ्न आज अपने स्वामीकी भाषा समझ नहीं पा रहे थे। वे प्रश्नसूचक और स्वीकृतिसूचक दृष्टिसे श्रीरामजीकी ओर निर्निमेष निहार रहे हैं। प्रभुने कहा—हे रिपुदमनलाल! मैं अपनी माँकी सेवाका भार तुम्हें—केवल तुम्हें सौंप रहा हूँ। प्रभुने तत्काल पुनः कहा—परन्तु हे शत्रुसूदन! वह मेरी माँ जिनकी सेवा तुम्हें सौंप रहा हूँ श्रीकौसल्या माता अथवा सुमित्रा माता नहीं हैं। उनके पास तो अनन्त सेवक हैं, उनकी हमें चिन्ता भी नहीं है। हे सुमित्राकुमार! मैं तो तुम्हें अपनी माता श्रीकैकेयीकी सेवा सौंप रहा हूँ। हे शत्रुघ्न! उनको ही तुम्हारी सेवाकी आवश्यकता है। वे महान् मानिनी हैं, वे किसीसे सेवा लेंगी भी नहीं और उनके पास कोई सेवा करनेके लिये जायगा भी नहीं। हे सुमित्राकुमार! कैकेयीके पुत्र भरत उनसे बात भी नहीं करते हैं, मैं उनसे कुछ कहना भी नहीं चाहता हूँ। हे शत्रुघ्न! यदि मेरे वनगमनके पश्चात् श्रीअयोध्यामें सबसे अधिक कोई दु:खी है तो वे श्रीकैकेयी मैया हैं। अत: हे मेरे लाल! तुम्हें हम दोनोंकी शपथ है कि लोककी दृष्टिमें विगर्हिता पुत्र और पतिके द्वारा परित्यक्ता, समाजके द्वारा बहिष्कृता, सबकी उपेक्षिता परन्तु मेरी अपेक्षिता—मेरी स्नेहमयी जननी श्रीकैकेयी मैयाकी सेवामें हे भैया! कभी चूक मत करना। हे रिपुदमनलाल! श्रीअयोध्याकी प्रजा मुझे प्राणसे अधिक प्यार करती है। सब मुझे वनवासी वेषमें देख कर जा रहे हैं। कहीं किसीका प्रेम अन्धा हो जाय, मेरा वियोग न सह सके, ऐसे प्राणीके द्वारा मेरी माँकी रक्षा भी करनी है। उनकी हर प्रकारसे रक्षा करनी है। बस, यही मेरी सेवा है। इतना कहकर श्रीरामजीने श्रीशत्रुघ्नको उठाकर हृदयसे लगा लिया। करुणासागरकी आँखोंमें आँसू भर आये। उन्होंने व्यथित मनसे श्रीशत्रुघ्नको विदा कर दिया—

शत्रुघ्नं च परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत्।
मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति॥
मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन।
इत्युक्त्वाश्रुपरीताक्षो भ्रातरं विससर्ज ह॥

(२। ११२। २७-२८)

श्रीभरतजीने पुनः श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करके लक्ष्मणको हृदयमें लगा करके प्रदक्षिणा की और श्रीपादुकाको उत्तम हाथीके मस्तकपर विराजमान करके भीगे हुए हृदयसे वहाँसे प्रस्थान किया—

प्रदक्षिणं चैव चकार राघवं
चकार चैवोत्तमनागमूर्धनि।

(२। ११२। २९)

राघववंशवर्द्धन रघुनन्दनने गुरु, मन्त्री, प्रजा सबका यथायोग्य सत्कार करके विदा कर दिया। विदाईकी उस करुण वेलामें श्रीकौसल्यादि समस्त माताओंका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वे आज चाहकर भी श्रीरामलालको 'मेरे लाल' भी न कह पायीं। आँखोंके आँसुओंके कारण अपने ललनका मुखचन्द्र भी स्पष्ट न देख पायीं। श्रीरामके मुखचन्द्रके दर्शनमें आज इनके आँसुओंने मेघखण्डका काम कर दिया। इस प्रकार सब

रुदन करते हुए चल पड़े। गुरुजन अन्यमनस्क होकर चल पड़े, प्रजाजन दुःखी-हृदयसे चल पड़े, मंत्री सविषाद चल पड़े, रोती हुई सिसकती हुई माताएँ चल पड़ीं, आँसू बहाते हुए श्रीभरत और शत्रुघ्न चल पड़े। माताओंके श्रीचरणोंमें प्रणाम करके रोते हुए, कलपते हुए, विसूरते हुए श्रीरामजी अपनी पर्णकुटीमें चले गये—

तं मातरो बाष्पगृहीतकण्ठ्यो
दुःखेन नामन्त्रयितुं हि शेकुः।
स चैव मातॄरभिवाद्य सर्वा
रुदन् कुटीं स्वां प्रविवेश रामः॥

(२। ११२। ३१)

चित्रकूट तेहि समय सबनिकी बुद्धि बिषाद हई है।
तुलसी राम-भरतके बिछुरत सिला सप्रेम भई है॥

(गीतावली २। ७८)

प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं॥
भरत सनेह सुभाउ सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी॥
प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेम बस बरनी॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना॥

(श्रीरामचरितमानस अयोध्याकाण्ड ३२१। ३—६)

सब लोगोंने प्रभुसे विदा होकर महान् पर्वत चित्रकूटकी—कामद गिरिकी परिक्रमा करके मन्दाकिनी नदीको पार करके प्रस्थान किया—

मन्दाकिनीं नदीं रम्यां प्राङ्मुखास्ते ययुस्तदा।
प्रदक्षिणं च कुर्वाणाश्चित्रकूटं महागिरिम्॥

(२। ११३। ३)

बीचमें महर्षि श्रीभरद्वाजजीके चरणोंमें प्रणाम करके, उन्हें चित्रकूटका समस्त वृत्तान्त सुना करके सब लोग श्रीअयोध्याजी आ गये—

प्रभु गुन ग्राम गनत मन माहीं। सब चुपचाप चले मग जाहीं॥
जमुना उतरि पार सबु भयऊ। सो बासरु बिनु भोजन गयऊ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू। रामसखाँ सब कीन्ह सुपासू॥
सई उतरि गोमतीं नहाए। चौथें दिवस अवधपुर आए॥

(श्रीरामचरितमानस अयोध्याकाण्ड ३२२। २—५)

श्रीभरतजीसे श्रीअयोध्याजी अब निहारी नहीं जाती हैं। वे कहते हैं जिस अयोध्यामें नित्य ही कोई-न-कोई उत्सव होता रहता था, आज वह नगरी उत्सवशून्य हो गयी है। श्रीअयोध्याजी श्रीरामके वियोगशोकसे व्यथित हैं। मेरे आराध्य श्रीरामचन्द्रके साथ ही श्रीअयोध्याजीकी समस्त शोभा चली गयी है। अब तो यह पुरी उनके आनेपर ही सुशोभित होगी—

नोत्सवाः सम्प्रवर्तन्ते रामशोकार्दिते पुरे।
सा हि नूनं मम भ्रात्रा पुरस्यास्य द्युतिर्गता॥

(२। ११४। २४)

श्रीभरतजीने गुरुदेवके चरणोंमें निवेदन किया—हे त्रिकालज्ञ महात्मन्! मेरा मन श्रीअयोध्याजीमें नहीं लगता है, यहाँपर प्रत्येक स्थानोंमें श्रीरामजीकी स्मृति लिपटी हुई है। श्रीकनकभवन, मणिपर्वत, विद्याकुण्ड, वसिष्ठ आश्रम, रामघाट, सरयूतट सबको देख-देखकर मेरे जीवनधनकी प्रगाढ़ स्मृति होती है। एतावता मेरा मन व्याकुल हो जाता है। हे गुरुदेव! मुझे आज्ञा दें कि मैं नन्दिग्राममें चतुर्दश वर्षपर्यन्त निवास करूँ—

नन्दिग्रामं गमिष्यामि सर्वानामन्त्रयेऽत्र वः।

(२। ११५। २)

श्रीवसिष्ठने कहा—हे भरत! तुम्हारा प्रस्ताव अत्यन्त प्रशंसाके योग्य है और तुम्हारी भ्रातृभक्तिके अनुरूप है, मैं सहर्ष अनुमति प्रदान करता हूँ—

सुभृशं श्लाघनीयं च यदुक्तं भरत त्वया।
वचनं भ्रातृवात्सल्यादनुरूपं तवैव तत्॥

(२। ११५। ५)

सानुज गे गुर गेहँ बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी॥
आयसु होइ त रहौं सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सपेमा॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई॥

(श्रीरामचरितमानस अयोध्याकाण्ड ३२३। ६—८)

श्रीअयोध्याजीसे रथपर बैठकर अपने मस्तकपर

श्रीरामजीकी पादुकाओंको रख करके शीघ्रतापूर्वक नन्दिग्रामके लिये श्रीभरतजीने प्रस्थान किया—

नन्दिग्रामं ययौ तूर्णं शिरस्यादाय पादुके॥

(२। ११५। १२)

श्रीभरतजीके साथ सारी अयोध्या ही नन्दिग्राममें आ गयी। अति उत्साहपूर्वक सिंहासनपर श्रीरामजीकी पादुकाएँ पधरायी गयीं। श्रीभरतजीने समस्त राज्यका भार श्रीपादुकाजीको समर्पित कर दिया। नन्दिग्राममें ही राज्यसञ्चालन करनेके लिये राजधानी सुप्रतिष्ठित हो गयी। इस प्रकार श्रीभरतजी श्रीरामजीके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए मन्त्रियोंके सहित राज्यकार्य-सञ्चालन करते हुए नन्दिग्राममें निवास करने लगे—

नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति॥

(श्रीरामचरितमानस २। ३२५)

श्रीभरतजीके साथ श्रीरामजीकी पादुकाओंको श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हुए अब हमलोग श्रीरामजीके लोकमङ्गल चरित्रोंको श्रवण करनेके लिये चित्रकूट चलते हैं।

इधर श्रीभरतजीके जानेके पश्चात् चित्रकूटमें अशान्ति बढ़ गयी। रावणके द्वारा नियुक्त खर-दूषणादि राक्षस एवं उनके सेवक श्रीरामजीका भेद लेनेके लिये आने लगे। वे आकर महर्षियोंको भी कष्ट देने लगे। यज्ञमें भी विघ्न करने लगे। तब कुलपति महर्षि श्रीरामजीका अभिनन्दन करके उनसे पूछ करके उन्हें सान्त्वना दे करके ऋषियोंके साथ दूसरे वनमें चले गये—

अभिनन्द्य समापृच्छ्य समाधाय च राघवम्।
स जगामाश्रमं त्यक्त्वा कुलैः कुलपतिः सह॥

(२। ११६। २४)

आजकल प्रभु बहुत दुःखी हो जाते हैं। उनको भरतजीकी स्मृति हो आती है, चित्रकूटके समस्त स्थलोंको देखते हैं तब सोचते हैं। इस स्थलमें भरतसे मेरा पहला मिलन हुआ था, यहाँपर मैंने माताओंकी चरणसेवा की थी, यहाँपर मैंने सर्वप्रथम गुरुदेवको प्रणाम किया था। इस पर्वतकी कन्दरामें हम चारों भाइयोंने पितृशोकमें रुदन किया था, इस मन्दाकिनी तटपर मैंने पूज्य पिताश्रीको पिण्डदान किया था, इस स्थलपर रोते हुए, प्रार्थना करते हुए अपने भरतकी बातको मैंने अस्वीकार कर दिया था। इस प्रकार चित्रकूटमें भरतकी लिपटी हुई स्मृतिसे प्रभुका मन उद्विग्न हो जाता है। अतः हमलोग अब दूसरे वनमें चलें यह निश्चय करके श्रीसीताजी और लक्ष्मणके साथ श्रीरामजीने प्रस्थान कर दिया—

तस्मादन्यत्र गच्छाम इति सञ्चिन्त्य राघवः।
प्रातिष्ठत स वैदेह्या लक्ष्मणेन च सङ्गतः॥

(२। ११७। ४)

चित्रकूटसे प्रस्थान करके प्रभु सबसे पहले महर्षि अत्रिके आश्रमपर पधारे। प्रभुने महर्षिको श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। श्रीअत्रिजीने भी श्रीरामजीको अपने औरस पुत्रकी तरह स्नेहपूर्वक अपनाया—

सोऽत्रेराश्रममासाद्य तं ववन्दे महायशाः।
तं चापि भगवानत्रिः पुत्रवत् प्रत्यपद्यत॥

(२। ११७। ५)

श्रीअत्रिजीने तीनोंका आतिथ्यसत्कार करके धर्मचारिणी तापसी श्रीअनसूयाकी कथा सुनायी कि एक बार दस वर्षोंतक वृष्टि न होनेके कारण जब सब प्राणी जलने लगे तब श्रीअनसूयाने अपने तपोबलसे वृष्टिकी सृष्टि करके श्रीमन्दाकिनीकी पवित्र धाराको प्रवाहित किया था। हे रघुनन्दन! ये अनसूया देवी आपके लिये मातृवत् वन्दनीया हैं। सीता भी उनके पास जायँ।

इसके पश्चात् श्रीराम, लक्ष्मणजी तो श्रीमहर्षि

अत्रिका सत्सङ्ग करने लगे और श्रीसीताजी तपस्विनी अनसूयाजीका सत्सङ्ग प्राप्त करनेके लिये उनके साथ उनकी पर्णकुटीके भीतर चली गयीं। श्रीअनसूयाजीने प्रसन्न होकर श्रीसीताजीको दिव्य हार, वस्त्र, आभूषण, अङ्गराग, अनुलेपन दिया और यह भी कहा कि ये वस्तुएँ उपयोगमें लायी जानेपर भी निर्दोष एवं निर्विकार रहेंगी—

इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्रमाभरणानि च।
अङ्गरागं च वैदेहि महार्हमनुलेपनम्॥
मया दत्तमिदं सीते तव गात्राणि शोभयेत्।
अनुरूपमसंक्लिष्टं नित्यमेव भविष्यति॥

(२।११८।१८-१९)

दिब्य बसन भूषन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए॥

श्रीअनसूयाजीने श्रीसीताजीसे उनके स्वयंवरकी कथा बड़े प्रेमसे पूछीं—हे मैथिलि! तुम्हारे स्वयंवरकी कथा मैं विस्तारसे सुनना चाहती हूँ। अत: जो कुछ भी हुआ सब हमें पूर्ण रूपसे सुनाओ—

तां कथां श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण च मैथिलि।
यथाभूतं च कार्त्स्न्येन तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि॥

(२।११८।२५)

श्रीसीताजीने स्वयंवरकी सब कथा बड़े प्रेमसे सुनायी। उस कथाको सुनकर श्रीअनसूया बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने श्रीसीतासे कहा—हे मिथिलेशनन्दिनि! तुम मेरे सामने दिव्य वस्त्राभूषणोंसे अपनेको अलङ्कृत करो और मुझे प्रसन्न करो—

अलंकुरु च तावत् त्वं प्रत्यक्षं मम मैथिलि।
प्रीतिं जनय मे वत्से दिव्यालङ्कारशोभिनी॥

(२।११९।११)

'मैथिलि' कहनेका भाव यह है कि जिस प्रकार तुम मिथिलामें अपनी माता सुनैनाकी आज्ञा मानती थी उसी प्रकार हे पुत्रि! मेरी आज्ञा मानकर मुझे सन्तुष्ट करो। श्रीसीताजीने अनसूयाजीकी आज्ञानुसार अपनेको अलङ्कृत करके उन्हें प्रणाम करके जब श्रीरामके सम्मुख गयीं तब श्रीरामजी परम तपस्विनी सतीशिरोमणि श्रीअनसूयाजीके प्रेमोपहारसे बहुत प्रसन्न हुए—

राघवः प्रीतिदानेन तपस्विन्या जहर्ष च॥

(२।११९।१३)

इस प्रकार श्रीअत्रि अनसूयाके आश्रममें रात्रि निवास करके प्रात:काल प्रात:कालीन कृत्यसे निवृत्त हो करके, मुनियोंसे आज्ञा ले करके श्रीसीता और श्रीलक्ष्मणके साथ श्रीरामने गहन वनमें प्रवेश किया, मानो सूर्यदेव मेघोंकी घटाके अन्दर प्रविष्ट हो गये हों—

वनं सभार्यः प्रविवेश राघवः
सलक्ष्मणः सूर्य इवाभ्रमण्डलम्॥

(२।११९।२२)

श्रीसीता और श्रीलक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजी दण्डकारण्यमें प्रवेश कर रहे हैं। उसी तरह हम भी अब आप सब भावुक श्रोताओंके साथ अरण्यकाण्डकी कथामें प्रवेश करेंगे। अब यह कथा भी श्रीअयोध्याकाण्डसे निकलकर श्रीअरण्यकाण्डमें प्रवेश कर रही है।

अत्रिके अतिथि

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
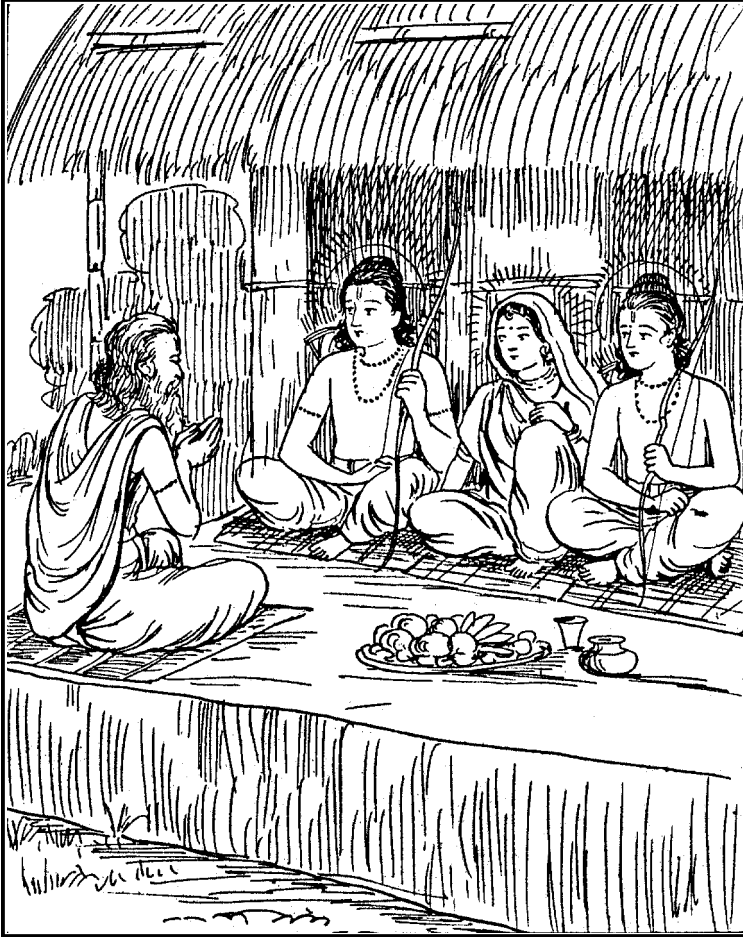
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

कथा-सुधा-सागर

अरण्यकाण्ड

प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान्॥
रामो ददर्श दुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम्॥

(३।१।१)

आत्मवान् और दुर्धर्ष श्रीरामजीने दण्डकारण्य नामक महान् वनमें प्रवेश करके तपस्वियोंके आश्रमसमूहका दर्शन किया। यह अरण्यकाण्डका पहला श्लोक है। इस श्लोकमें श्रीरामजीके दो विशेषण दिये गये हैं। '**आत्मवान्**' और '**दुर्धर्ष**'। इन दोनों विशेषणोंपर विचार करें। जहाँपर चप्पे-चप्पेपर विकराल राक्षसोंका निवास है, मायावियोंका निवास है, हिंस्र पशुओंकी बहुतायत है। उस दण्डकारण्यमें सुकुमारी श्रीसीताजीके साथ जाना और रहना सामान्य व्यक्तियोंका कार्य नहीं है। ऐरे-गैरे, नत्थू-खैरेका काम नहीं है; इसलिये दण्डकारण्यमें प्रवेशके समय—अरण्यकाण्डके आरम्भमें—आरम्भके श्लोकमें इन दोनों विशेषणोंका अत्यन्त समीचीन प्रयोग है। '**आत्मवान्**' का अर्थ है '**स्वायत्तचित्तः**' अथवा '**धैर्यवान्**'। भाव कि इस दुष्प्रवेश्य महागहन जङ्गलमें श्रीरघुनन्दन प्रवेश कर रहे हैं परन्तु उनका धैर्य नष्ट नहीं हुआ है, उन्हें किसी प्रकारका लेशमात्र भी भय नहीं है। निर्जन वनकी भयङ्कर विभीषिकासे डरकर नहीं अपितु उसका स्वागत करके प्रसन्नतापूर्वक श्रीरामजी आगे बढ़ रहे हैं। अथवा, '**आत्मवान्**' हैं अर्थात् उनकी समस्त इन्द्रियाँ और उनके अन्तःकरण उनके वशमें हैं। भाव कि किसी प्रकारकी माया और किसीकी माया उनको डिगा नहीं सकती है। दूसरा विशेषण है '**दुर्धर्षः**' इसका अर्थ है '**द्विषद्भिरप्रधृष्यः**' अर्थात् बड़ा-से-बड़ा शत्रु उन्हें भयभीत नहीं कर सकता है। इस काण्डमें रावणकी तरह बलवान् प्रचण्ड पराक्रमी खर-दूषण-त्रिशिरा आदि राक्षस भी श्रीरामको धर्षित नहीं कर सकेंगे। विराध और कबन्ध ऐसे विचित्र मायावी राक्षस भी इनको भयाक्रान्त नहीं कर सकेंगे। किं वा दण्डकारण्यमें बड़े-बड़े हिंसक प्राणी रहते हैं। उन हिंसक प्राणियोंकी चिन्ता किये बिना प्रभु आगे बढ़ते ही जायँगे, अतः दुर्धर्ष हैं '**हिंस्रादिभिरप्रधर्ष्यः दुर्धर्षः**।' आत्मवान् और दुर्धर्ष श्रीरामजीने आश्रमसमूहको देखा—

तद् दृष्ट्वा राघवः श्रीमांस्तापसाश्रममण्डलम्॥
अभ्यगच्छन् महातेजा विज्यं कृत्वा महद् धनुः।

(३।१।९-१०)

इस पंक्तिमें श्रीरामजीको 'श्रीमान्' कहनेका भाव यह है कि यहाँपर अच्छे-अच्छे श्रीमान्—सम्पत्तिमान् हैं। कोई वैराग्यश्रीसम्पन्न है, कोई ज्ञानश्रीसम्पन्न है, कोई तपःश्रीसम्पन्न है, कोई योगश्रीसम्पन्न है, इनके मध्यमें मेरे रामजी प्रत्येक श्रीसे सम्पन्न हैं अथवा बड़े-बड़े अमलात्मा योगीन्द्र, मुनीन्द्र भगवान्के दर्शनकी कामना मनमें सँजोये हुए उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जिसकी जिस रूपमें दर्शनकी अभिलाषा है उसको उसी रूपमें प्रभु दर्शन देंगे अतः 'श्रीमान्' कहा है अथवा वाल्मीकिजी लिखते हैं कि यद्यपि इस अरण्यकाण्डमें श्रीसीताजीका लीलाकी दृष्टिसे वियोग है परन्तु मेरे रामका और श्रीसीताका कभी वियोग होता ही नहीं है, अतः नित्य

श्रीमान् कहा है। श्रीरामजीने जब तपस्वियोंके आश्रमसमूहको देखा तब अपने सज्य धनुषको विज्य कर दिया। **'विज्यं कृत्वा महद् धनुः'** अर्थात् अपने धनुषकी प्रत्यञ्चा—डोरी उतार दी। सज्य धनुष ही भयावह होता है। श्रीरामजीने धनुषको विज्य करके सन्तोंका, महात्माओंका सम्मान किया है। धनुषका विज्य करना विनम्रताका सूचक है। अथवा मुनियोंके आश्रमोंमें मृग आदि पशु और शुक आदि पक्षी होते हैं। श्रीरामजीने सोचा कि कहीं मेरे आगमनसे उन पशु-पक्षियोंको भय न हो, वे सन्तप्त न हों, उद्विग्न न हों, अतः प्रभुने अपने धनुषको विज्य कर दिया।

वनमें निवास करनेवाले सभी मुनि और मृग आदि श्रीराम-सीता और लक्ष्मणजीको देख रहे हैं। आश्चर्यभूत, अदृष्टपूर्व, दिव्यरूप दर्शनजन्य आनन्दमें बाधा न हो जाय, व्यवधान न हो जाय, इस भयसे आश्चर्यविस्फारित नेत्रोंसे अपलक दर्शनानन्द ले रहे हैं। भगवान्‌को देखते ही उनके जन्म-जन्मके भक्तिपूर्ण संस्कार जागृत हो गये और वे श्रीरामजीका अतृप्त नेत्रोंसे दर्शन करने लगे। निर्बाध और निर्व्यवधान दर्शन करने लगे—

वैदेहीं लक्ष्मणं रामं नेत्रैरनिमिषैरिव।
आश्चर्यभूतान् ददृशुः सर्वे ते वनवासिनः॥

(३। १। १४)

महर्षिलोग अपने प्रिय अतिथियोंको अपनी पर्णशालामें ले जाकर ठहराये। कन्दमूलफल-जलद्वारा आतिथ्य सत्कार करके मुनिलोग अपना आत्मनिवेदन करते हैं। हे श्रीरामजी! हमारा आपका सनातन सम्बन्ध है। प्रभुने कहा—हम तो अभी आ रहे हैं तब सनातन सम्बन्ध कैसे बनाया आपने? मुनियोंने कहा—हम आपके विषय—देश—राज्यके वासी हैं। एतावता हम सदा आपके द्वारा रक्ष्य हैं; क्योंकि दण्डकारण्यकी समस्त भूमि चक्रवर्तीजी—श्रीदशरथजीके ही अधिकार सीमामें है। हे रघुनन्दन! आप चाहे नगरमें रहें अथवा वनमें हमारे तो राजा आप ही हैं। हे प्रभो! आप केवल हमारे ही नहीं प्राणीमात्रके ईश्वर हैं—जनेश्वर हैं—

ते वयं भवता रक्ष्या भवद् विषयवासिनः।
नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः॥

(३। १। २०)

इसके बाद मुनियोंने एक बड़ी विलक्षण बात कही है। हे प्रभो! आप शाश्वत—निरन्तर हमारा परिरक्षण करें और स्वयं करें, मेरी रक्षा किसीसे करायें नहीं। प्रभुने कहा मैं तो अपने भक्तोंकी रक्षा माँकी तरह सदा ही करता हूँ—**'करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी'॥** मुनियोंने कहा—हे भक्तवत्सल प्रभो! माता तो कभी-कभी अपना दायित्व धात्रीके ऊपर किं वा पिताके ऊपर डाल देती है, अतः हमें यह माता-पुत्रका भी सम्बन्ध स्वीकार नहीं है। आप तो हमारी रक्षा उस प्रकार करें जिस प्रकार माता अपने गर्भकी रक्षा करती है। गर्भकी रक्षा तो माता ही करती है। मुनिलोग कहते हैं—हे अशरणशरण! हम तपोधन—तपस्वी लोग आपके गर्भ स्थानापन्न हैं। अतः जैसे माता गर्भस्थ अर्भककी रक्षा स्वयं करती है उसी तरह आपको निरन्तर हमारी रक्षा स्वयं करनी चाहिये—

रक्षणीयास्त्वया शश्वद् गर्भभूतास्तपोधनाः॥

(३। १। २१)

मुनियोंका प्रेमपूर्ण आतिथ्य स्वीकार करके सूर्योदय होनेपर सब मुनियोंसे आज्ञा लेकर श्रीरामजी वनमें आगे चलने लगे—

कृतातिथ्योऽथ रामस्तु सूर्यस्योदयनं प्रति।
आमन्त्र्य स मुनीन् सर्वान् वनमेवान्वगाहत॥

(३। २। १)

प्रभुने देखा कि सामने एक भयङ्कर नरभक्षी राक्षस है, वह जोर-जोरसे गर्ज रहा है और पर्वतके शिखरकी तरह लम्बा-चौड़ा है—

ददर्श गिरिशृङ्गाभं पुरुषादं महास्वनम्॥

(३। २। ४)

उस विकराल राक्षसने अचानक श्रीसीताजीको उठा लिया। उस राक्षसने कहा—मेरा परिचय यह है कि मैं जव नामक राक्षसका पुत्र हूँ, मेरी माताका नाम शतह्रदा है और मेरा नाम विराध है। इसी नामसे मैं भूमण्डलके राक्षसोंमें प्रसिद्ध हूँ—

पुत्रः किल जवस्याहं माता मम शतह्रदा।
विराध इति मामाहुः पृथिव्यां सर्वराक्षसाः॥

(३। ३। ५)

'विराध' का अर्थ है जो संसारको सब प्रकारसे पीड़ा दे—कष्ट दे। '**विराधयतिलोकान् पीडयतीति विराधः**' अथवा '**विगतः राधः**' जो आराधनासे रहित हो उसे विराध कहते हैं। जो आराधना करता है उसका हृदय सरल हो जाता है परन्तु यह आराधनासे सर्वथा दूर रहता है अतः यह निर्दय और कठोर है। किं वा, जिसे अस्त्र-शस्त्रसे मारना कठिन हो उसे भी विराध कहते हैं। राक्षसने कहा—मेरा नाम विराध है अर्थात् संसारको कष्ट देना ही मेरा काम है। मैं निर्दय हूँ, आराधना मेरे जीवनमें नहीं है। किसी अस्त्र-शस्त्रसे मुझे भय नहीं है इसलिये तुम दोनों इस स्त्रीको छोड़कर भाग जाओ, मैं तुम्हें नहीं मारूँगा—

उत्सृज्य प्रमदामेनामनपेक्षौ यथागतम्।
त्वरमाणौ पलायेथां न वां जीवितमाददे॥

(३। ३। ७)

श्रीरामजीने क्रोधसे आँखें लाल करके उस पापी विराधसे कहा—अरे नीच! तुझे धिक्कार है। तेरा प्रयोजन नीच है, क्योंकि तू श्रीसीताको प्राप्त करना चाहता है; परन्तु तेरा यह प्रयोजन सफल नहीं होगा। हाँ, तेरा एक दूसरा भी अभिप्राय है कि तू अपनी मृत्यु खोज रहा है वह तुझे अवश्य मिल जायगी। अर्थात् मैं तुझे अवश्य मारूँगा—

क्षुद्र धिक् त्वां तु हीनार्थं मृत्युमन्वेषसे ध्रुवम्।
रणे प्राप्स्यसि सन्तिष्ठ न मे जीवन् विमोक्ष्यसे॥

(३। ३। ९)

अब तो उसने श्रीरामके तीखे बाणोंके द्वारा घायल हो जानेपर श्रीवैदेहीको छोड़ दिया और श्रीराम-लक्ष्मणको कंधोंपर लेकर भयङ्कर गर्जना करता हुआ जंगलकी ओर भागा—

तावारोप्य ततः स्कन्धं राघवौ रजनीचरः।
विराधो विनदन् घोरं जगामाभिमुखो वनम्॥

(३। ३। २५)

श्रीराम-लक्ष्मणको राक्षस लिये जा रहा है यह देखकर करुणामयी श्रीजानकीजी अपनी भुजाओंको उठाकर ऊँचे स्वरसे रोने लगीं—

ह्रियमाणौ तु काकुत्स्थौ दृष्ट्वा सीता रघूत्तमौ।
उच्चैः स्वरेण चुक्रोश प्रगृह्य सुमहाभुजौ॥

(३। ४। १)

श्रीगोविन्दराजजी लिखते हैं—'**रामस्यातिमानुषं चरित्रमवगच्छन्त्यपि स्नेहातिशयेन व्याकुला रुरोद**'। अर्थात् श्रीकिशोरीजी भगवान् श्रीरामजीके अलौकिक दिव्य चरित्रको भलीभाँति जानती हैं, आचार्यस्वरूपा हैं फिर भी स्नेहातिशयके कारण व्याकुल होकर दीनकी भाँति जोर-जोरसे रोने लगीं। रोते हुए श्रीकिशोरीजीने कहा—हे राक्षसोत्तम! मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ। इन दोनों सुकुमार भाइयोंको छोड़ दो, तुम मुझे ही ले चलो—

मां हरोत्सृज काकुत्स्थौ नमस्ते राक्षसोत्तम॥

(३। ४। ३)

भगवती भास्वती श्रीसीताकी इस आर्त्तवाणीको सुनकर श्रीराम-लक्ष्मण उस दुरात्मा विराधके

वधमें जल्दी करने लगे। श्रीलक्ष्मणने उसकी बायीं भुजा और श्रीरामने दायीं भुजा बड़े वेगसे भग्न कर दी—तोड़ डाली—

तस्य रौद्रस्य सौमित्रिः सव्यं बाहुं बभञ्ज ह।
रामस्तु दक्षिणं बाहुं तरसा तस्य रक्षसः॥

(३।४।५)

विराधने कहा—हे कौसल्यानन्दन! मैं जान गया कि आप श्रीराम हैं और यह महाभागा श्रीसीता हैं और ये आपके अनुज महायशस्वी लक्ष्मण हैं—

कौसल्या सुप्रजास्तात रामस्त्वं विदितो मया।
वैदेही च महाभागा लक्ष्मणश्च महायशाः॥

(३।४।१५)

मैं भी पहले तुम्बुरु नामका गन्धर्व था। कुबेरके शापसे राक्षस हो गया। आपके ही हाथसे मेरा उद्धार है। हे रघुनन्दन! अब आप मेरे शरीरको गड्ढेमें डालकर सकुशल आगे जाइये। मरे हुए राक्षसोंके शरीरको गड्ढेमें गाड़ना उनके लिये सनातन धर्म है—

अवटे चापि मां राम निक्षिप्य कुशली व्रज।
रक्षसां गतसत्त्वानामेष धर्मः सनातनः॥

(३।४।२२)

इसके अनन्तर श्रीलक्ष्मणजीने गड्ढा खोदा तबतक श्रीरामजी विराधके कण्ठको एक पैरसे दबाकर खड़े हो गये— **'तस्थौ विराधमाक्रम्य कण्ठे पादेन वीर्यवान्'॥** गड्ढा तैयार होनेपर उसके शरीरको गड्ढेमें डाल दिया। उस समय वह भयानक गर्जना कर रहा था। उस गड्ढेमें मिट्टी डालकर खूब कचरकर पाट दिया।

इस राक्षसको मारना आसान नहीं था इसीलिये श्रीतुलसीदासजीने लिखा है—**'खर दूषन बिराध बध पंडित'**, इस प्रकार भयङ्कर राक्षस विराधका वध करके महाबलशाली श्रीरामजीने श्रीसीताको हृदयमें लगाकर आश्वस्त किया।

हत्वा तु तं भीमबलं विराधं राक्षसं वने।
ततः सीतां परिष्वज्य समाश्वास्य च वीर्यवान्॥

(३।५।१)

यहाँसे श्रीरामजी शरभङ्ग ऋषिके आश्रमपर गये। जिस समय श्रीरामजी शरभङ्ग ऋषिके आश्रमपर पहुँचे उस समय वहाँ अपने दिव्य रथपर हरे रंगके घोड़ोंवाले रथपर श्रीइन्द्रभगवान् विराजमान थे। प्रभुको आते देखकर शचीपति इन्द्र वहाँसे चले गये। तब श्रीसीता और लक्ष्मणके साथ ठाकुरजी शरभङ्ग ऋषिके निकट गये और उनका प्रेमसे दिया हुआ आसन एवं आतिथ्य स्वीकार करके इन्द्रके आनेका कारण पूछा—**'ततः शक्रोपयानं तु पर्यपृच्छत राघवः'**। तब शरभङ्ग ऋषिने बताया—वे मुझे ब्रह्मलोकमें ले जानेके लिये आये थे परन्तु हे नरशार्दूल! जब मुझे ज्ञात हो गया कि आप मेरे आश्रमके सन्निकट आ गये हैं तब मैंने निश्चय किया कि जब मेरे यहाँ स्वयं पूर्णब्रह्म परमात्मा आ रहे हैं—प्रिय अतिथिके रूपमें आ रहे हैं तब उनका दर्शनानन्द समास्वादन किये बिना मैं ब्रह्मलोक नहीं जाऊँगा—

अहं ज्ञात्वा नरव्याघ्र वर्तमानमदूरतः।
ब्रह्मलोकं न गच्छामि त्वामदृष्ट्वा प्रियातिथिम्॥

(३।५।२९)

'आवा नाग न पूजे बाँवी पूजन जाय' घरमें आये हुए नागदेवताको तो लगुड-प्रहारसे मारे और भुशुण्डी—बन्दूकके द्वारा लक्ष्य बनावे और दूध-लावा थालीमें लेकर बाँवी पूजनेवालेको कोई बुद्धिमान् नहीं कहता है। हे रघुनन्दन! मैंने आजतक जितने भी कर्म किये हैं और उन कर्मोंके द्वारा ब्रह्मलोक, स्वर्गलोक आदि जितने लोकोंपर विजय प्राप्त की है, मेरे उन सभी लोकोंको अतिथिपूजाके रूपमें आप स्वीकार करें—

अक्षया नरशार्दूल जिता लोका मया शुभाः।

ब्राह्म्याश्च नाकपृष्ठ्याश्च प्रतिगृह्णीष्व मामकान्॥

(३। ५। ३१)

ठाकुरजीके पूछनेपर श्रीशरभङ्गजीने सुतीक्ष्णके आश्रममें जानेकी सलाह दी। श्रीशरभङ्गने कहा—हे नरशार्दूल! अभी आप एक मुहूर्त्तपर्यन्त यहाँ ठहरें और खड़े होकर मेरी ओर देखते रहें—'**मुहूर्त्तं पश्य तात माम्**'। तदनन्तर मुनिने योगाग्निसे अपना शरीर भस्म कर दिया। दिव्य तेजस्वी कुमारके रूपमें ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे। ब्रह्माजी तो उनकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—हे महर्षे! आपका सुस्वागत है। 'सुस्वागत' का भाव कि यदि आप मेरे बुलानेपर तत्काल आ जाते तो स्वागत होता, परन्तु आप श्रीरामदर्शन करके आ रहे हैं अतः सुस्वागत है। अथवा, दूसरा भाव यह भी है कि यह आप अपने कर्मोंके द्वारा सीधे यहाँ आते तो स्वागत होता अब तो आपने अपने समस्त कर्मोंको एवं कर्मोंके फलोंको भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको समर्पण कर दिया है और उनकी कृपाके द्वारा यहाँ आये हैं अतः, सुस्वागत है—

पितामहश्चापि समीक्ष्य तं द्विजं
ननन्द सुस्वागतमित्युवाच ह॥

(३। ५। ४३)

शरभङ्ग ऋषिके महाप्रयाणके पश्चात् उसी आश्रममें अनेक प्रकारके अनेक सन्त श्रीरामजीके शरणागत हुए। उन लोगोंकी वेष-भूषा अलग-अलग थी। उनके सम्प्रदाय भी अलग थे। उनके तिलक भी अलग थे। उनकी साधनाएँ भी अलग-अलग थीं परन्तु इन सब विषमताओंके बाद भी उनमें एक बहुत सुन्दर साम्य था कि वे सब श्रीरामजीके भक्त थे और श्रीरामजीको अपना रक्षक मानकर उनकी शरणागति स्वीकार करनेके लिये पधारे हैं—

वैखानसा वालखिल्याः सम्प्रक्षाला मरीचिपाः।
अश्मकुट्टाश्च बहवः पत्राहाराश्च तापसाः॥
दन्तोलूखलिनश्चैव तथैवोन्मज्जकाः परे।
गात्रशय्या अशय्याश्च तथैवानवकाशिकाः॥
मुनयः सलिलाहारा वायुभक्षास्तथापरे।
आकाशनिलयाश्चैव तथा स्थण्डिलशायिनः॥
तथोर्ध्ववासिनो दान्तास्तथाऽऽर्द्रपटवाससः।
सजपाश्च तपोनिष्ठास्तथा पञ्चतपोऽन्विताः॥
सर्वे ब्राह्म्या श्रिया युक्ता दृढयोगसमाहिताः।
शरभङ्गाश्रमे राममभिजग्मुश्च तापसाः॥

(३। ६। २—६)

हमारे देशमें कितने प्रकारके त्यागी और तपस्वी सन्त हैं इसका थोड़ा-सा ज्ञान इन चार श्लोकोंके मूलार्थमात्रसे हो जाता है।

१. '**वैखानस**' जो ऋषियोंका समुदाय प्रजापतिके नखसे समुत्पन्न हुआ है उन्हें वैखानस कहते हैं।

२. '**वाल खिल्य**' जो प्रजापतिके रोमसे—बालसे उत्पन्न हैं उनकी वालखिल्य संज्ञा है।

३. '**सम्प्रक्षाल**' जो मुनिगण भगवान्के पादप्रक्षालनसे समुत्पन्न हुए उन्हें सम्प्रक्षाल कहते हैं। '**परमात्मनश्चरण प्रक्षालनाज्जाः**'। किं वा, जो सदा अपने शरीरको प्रक्षालन ही करते रहते हैं उन्हें सम्प्रक्षाल कहते हैं। अथवा, जो भोजनके पश्चात् अपने बर्तनको अमनिया करके—शुद्ध करके रख देते हैं, दूसरे समयके लिये कुछ भी अवशिष्ट नहीं रखते हैं उन्हें सम्प्रक्षाल कहते हैं।

४. '**मरीचिप**' जो चन्द्र, सूर्य आदिकी किरणोंको ही सदा पीते रहते हैं उन्हें मरीचिप कहते हैं।

५. '**अश्मकुट्ट**' कच्चे अन्नको पत्थरसे कूटकर खानेवालोंको अश्मकुट्ट कहते हैं। अथवा, जो अश्मसे अपने शरीरको भी कूटते हैं उन्हें अश्मकुट्ट कहते हैं—'**अश्मभिरात्मशरीराणि कुट्टन्तीति अश्मकुट्टाः**'।

६. **'पत्राहार'** जो केवल वृक्षके पत्तोंको खाकर ही रह जाते हैं उन तपस्वियोंकी पत्राहार संज्ञा है।

७. **'दन्तोलूखली'** जो दाँतोंसे ही ऊखलका कार्य भी लेते हैं। दाँतोंसे धान, यव आदि अन्नकी भूसी समाप्त करके पा लेते हैं—**'दन्ता एवोलूखलं तदेषामस्तीति दन्तोलूखलिनः, दन्तैरेव ब्रीह्यादि तुषनिर्मोकं कृत्वा भक्षयन्त इत्यर्थः'**। (गोविन्दराजजी)

८. **'उन्मज्जक'** आकण्ठ जलमें डूबकर तपस्या करनेवाले साधकोंका नाम उन्मज्जक है।

९. **'गात्रशय्य'** जो तपस्वी शरीरको ही शय्या बना लेते हैं अर्थात् बिस्तरके बिना भुजा आदिको तकिया बनाकर सो लेते हैं उन्हें गात्रशय्य कहते हैं। किं वा, व्याघ्रचर्म आदिको ही बिस्तर बनानेवाले गात्रशय्य कहलाते हैं—**'गात्रावयवानि व्याघ्रचर्मादीनि शय्या येषां ते गात्रशय्याः'**। (रामायणशिरोमणि)

१०. **'अशय्य'** शय्याके साधनोंसे रहित अथवा जो निद्राहीन हैं—सोते ही नहीं हैं उन्हें अशय्य कहते हैं।

११. **'अनवकाशिक'** निरन्तर सत्कर्ममें लगे रहनेके कारण जिन्हें व्यर्थके प्रपञ्चके लिये अवकाश ही नहीं मिल पाता है उन्हें अनवकाशिक कहते हैं।

१२. **'सलिलाहार'** जो तपस्वी केवल जल पीकर रह जाते हैं उन्हें सलिलाहार कहते हैं।

१३. **'वायुभक्ष'** जो तपस्वी केवल हवा पीकर रह जाते हैं उनकी वायुभक्ष संज्ञा है।

१४. **'आकाशनिलय'** जो तपस्वी अनावृत्त स्थानमें रहते हैं उनकी आकाशनिलय संज्ञा है। अथवा, **'आकाशे वृक्षाग्रादौ निलीयन्ते इत्याकाशनिलयाः'**। अर्थात् वृक्षके अग्रभागमें पत्तोंमें अपनेको छिपाकर रखनेवाले ऋषि आकाशनिलय कहलाते हैं।

१५. **'स्थण्डिलशायी'** भूमिपर सोनेवाले।

१६. **'ऊर्ध्ववासी'** पर्वतशिखर आदि ऊँचे स्थानमें रहनेवाले।

१७. **'दान्त'** मन और इन्द्रियोंको अपने वशमें करनेवाले साधकको दान्त कहते हैं।

१८. **'आर्द्रपटवासा'** **'आर्द्रपटवसनशीलाः'** जिन तपस्वियोंका भीगा वस्त्र पहनना स्वभाव बन गया है। अथवा, दिन-रात जलमें रहनेके कारण भीगा वस्त्र ही जो पहनते हैं। **'अहर्दिवं जले स्थितत्वात् आर्द्रवस्त्रमात्रवसाना'**।

१९. **'सजप'** सदा जप करनेवालोंको अर्थात् जो जपके बिना रह ही नहीं सकते हैं उन तपस्वियोंकी सजप संज्ञा है।

२०. **'तपोनिष्ठ'** सदा स्वाध्यायाध्ययनशील सन्त तपोनिष्ठ कहलाते हैं। अथवा तपका अर्थ परमात्मा है अर्थात् जो तपस्वी परमात्माका सदा चिन्तन करते रहते हैं और परमात्मामें अत्यधिक जिनकी निष्ठा है उनको तपोनिष्ठ कहते हैं।

२१. **'पञ्चाग्निसेवी'** ग्रीष्म-ऋतुमें पाँच अग्नियोंको तापनेवाले तपस्वियोंको पञ्चाग्निसेवी कहते हैं। ऐसे तपस्वी मध्याह्नके समय ग्रीष्म-ऋतुमें खुलेमें बैठकर अपने चारों ओर अग्नि जला लेते हैं और ऊपरसे सूर्यदेवकी गर्मी रहती है। इस प्रकार पञ्चाग्नि तापनेवाले तपस्वियोंको पञ्चाग्निसेवी कहते हैं। बहुत-से सन्त तो चौरासी अग्नि भी तापते हैं, उनकी ऐसी मान्यता है कि कुछ दिनोंतक चौरासी अग्नि तापनेकी तपस्या करके जो जाते हैं उन्हें चौरासी लाख योनियोंसे मुक्ति मिल जाती है। इस प्रकार इन समस्त ऋषियोंने प्रभुसे प्रार्थना की—हे श्रीरामजी! हम सब लोग श्रीमान्की शरणमें आये हैं, आप कृपा करके हमारी शरणागति स्वीकार करें— **'राममभिजग्मुरित्यत्र अभिजग्मुरित्यनेन शरणागतिरुक्ता'**। (श्रीगोविन्दराज)। सन्त लोग कहते हैं—हे अशरणशरण! इस वनमें

रहनेवाले महात्मा, वानप्रस्थ ब्राह्मण जो '**त्वन्नाथ**' है, '**त्वन्नाथो रक्षको यस्य सः त्वन्नाथः**' जिनके एकमात्र रक्षक आप ही हैं उनका अनाथकी तरह बहुत मात्रामें संहार हो रहा है—

'त्वन्नाथोऽनाथवद् राम राक्षसैर्हन्यते भृशम्'॥

(३।६।१५)

हे शत्रुसूदन! इन घोर राक्षसोंके द्वारा बार-बार अनेक प्रकारसे मारे गये। मुनियोंकी अस्थियोंका समूह आप स्वयं आकर अपनी आँखोंसे देखें—

एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम्।
हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूनां बहुधा वने॥

(३।६।१६)

भगवान्‌ने भावितात्मा—शुद्धान्तःकरणवाले सन्तोंकी अस्थियोंका समूह जब देखा तब उनकी आँखोंमें आँसू छलछला आये। श्रीरामजीने तत्काल ही उन मुनिद्रोही राक्षसोंके मारनेकी प्रतिज्ञा कर ली—हे तपोधनो! मैं तपस्वी मुनियोंके शत्रु उन राक्षसोंको युद्धमें मारना चाहता हूँ। हे महर्षियो! आपलोग लक्ष्मणके साथ मेरा पराक्रम देखें—

तपस्विनां रणे शत्रून् हन्तुमिच्छामि राक्षसान्।
पश्यन्तु वीर्यमृषयः सभ्रातुर्मे तपोधनाः॥

(३।६।२५)

इस प्रसङ्गका बड़ा संक्षिप्त और भावपूर्ण वर्णन श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसमें किया है—

पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिबर बृंद बिपुल सँग लागे॥
अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया॥
जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी। सबदरसी तुम्ह अंतरजामी॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए॥
निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

(अरण्यकाण्ड दो० ९।५—८)

इसके अनन्तर श्रीरामजी सुतीक्ष्णके आश्रममें गये। वहाँपर उन्हें ध्यानमग्न देखकर प्रभुने कहा—हे भगवन्! मैं यहाँ आपका दर्शन करनेके लिये आया हूँ। मेरा नाम राम है—'**रामोऽहमस्मि भगवन् भवन्तं द्रष्टुमागतः**'। श्रीसुतीक्ष्णने ठाकुरजीका दर्शन करके उनको अपनी दोनों भुजाओंसे आश्लिष्ट करके कहा—हे राघवश्रेष्ठ! आपका स्वागत है। आपके पधारनेसे यह आश्रम सनाथ हो गया है। हे महनीय कीर्ते! मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आपके दर्शनके लिये ही मैं शरीर त्यागकर ब्रह्मलोक नहीं गया—

स्वागतं ते रघुश्रेष्ठ राम सत्यभृतां वर।
आश्रमोऽयं त्वयाऽऽक्रान्तः सनाथ इव साम्प्रतम्॥
प्रतीक्षमाणस्त्वामेव नारोहेऽहं महायशः।
देवलोकमितो वीर देहं त्यक्त्वा महीतले॥

(३।७।८-९)

श्रीसुतीक्ष्ण ऋषिने प्रभुसे कहा—हे श्रीरामजी! यह आश्रम सब प्रकारसे सुविधायुक्त है, आप यहाँ निवास करें। श्रीरामजीने सायंकालीन सन्ध्या करके श्रीसीता-लक्ष्मणके साथ सुतीक्ष्णजीके सुन्दर आश्रममें रात्रि निवास किया—

अन्वास्य पश्चिमां सन्ध्यां तत्र वासमकल्पयत्।
सुतीक्ष्णस्याश्रमे रम्ये सीतया लक्ष्मणेन च॥

(३।७।२३)

सन्ध्याका समय व्यतीत होनेपर सुतीक्ष्ण मुनिने तपस्वियोंके ग्रहण करनेयोग्य सुन्दर अन्नसे ठाकुरजीका सत्कार किया। प्रातःकालीन कृत्यसे निवृत्त होकर श्रीरामने मुनिसे आज्ञा लेकर आगे बढ़नेका मन बनाया। श्रीसुतीक्ष्णजीने कहा—हे रघुनन्दन! आप पधारें। हे सुमित्राकुमार! आप भी पधारें। दण्डकारण्यके आश्रमोंका दर्शन करके आपलोग पुनः इसी आश्रममें आ जाइयेगा।

गम्यतां वत्स सौमित्रे भवानपि च गच्छतु।

आगन्तव्यं च ते दृष्ट्वा पुनरेवाश्रमं प्रति॥

(३।८।१६)

सुतीक्ष्ण-आश्रमसे चलनेके बाद कुछ दूर जाकर एक सुन्दर स्थानमें बैठकर श्रीसीतारामजी आपसमें बात करने लगे। श्रीसीताजीने कहा—हे आर्यपुत्र! संसारमें कामसे उत्पन्न तीन दोष हैं। मिथ्याभाषण, परदाराभिगमन और दूसरोंके प्रति अकारण क्रूरतापूर्ण व्यवहार। इनमें पहला दोष असत्यभाषण न आपमें कभी था, न है और न भविष्यमें होगा—

मिथ्यावाक्यं न ते भूतं न भविष्यति राघव॥

(३।९।४)

पर-स्त्रीकी ओर आप कभी आँख उठाकर नहीं देखते फिर यह दोष आपमें आ ही नहीं सकता। परन्तु दूसरोंके प्राणोंकी हिंसारूप जो तीसरा भयानक दोष है वह इस समय आपमें विद्यमान है। आपने अभी कुछ दिन पूर्व दण्डकारण्यनिवासी मुनियोंकी रक्षाके लिये राक्षसवधकी प्रतिज्ञा की है उसको लेकर मेरा चित्त व्याकुल है। आपका शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर चलना भी मुझे भला नहीं प्रतीत होता है। इसके बाद श्रीसीताजीने एक कथा सुनायी। एक तपस्वीकी तपस्या भंग करनेके लिये भगवान् इन्द्रने उसे धरोहरके रूपमें एक खड्ग दिया। उस खड्गके सम्पर्कके कारण तपस्वी परम उग्र हो गया और उस शस्त्रके सम्पर्कसे ही उसे नरकमें जाना पड़ा— **'तस्य शस्त्रस्य संवासाज्जगाम नरकं मुनिः'**॥ हे रघुनन्दन! मैं आपसे बहुत स्नेह करती हूँ और आपके प्रति मेरे मनमें विशेष आदर है। अतः मैंने इस घटनाका आपको स्मरण करा दिया और यह प्रार्थना भी है कि आप धनुष लेकर राक्षसोंका वध न करें—

स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां तु शिक्षये।
न कथञ्चन सा कार्या गृहीतधनुषा त्वया॥

(३।९।२४)

भगवान्ने कहा—हे सीते! इन क्रूरकर्मा राक्षसोंके कारण कन्द, मूल, फल खानेवाले इन महात्माओंको महान् कष्ट है। ये भयानक राक्षस इन्हें मारकर खा जाते हैं। उनकी प्रार्थनापर मैंने उनकी रक्षाकी प्रतिज्ञा की है। हे विदेहनन्दिनि! वे ऋषिलोग महान् तपस्वी हैं, उन्होंने अनेक वर्षोंसे अन्न नहीं खाया है, वे केवल कन्द, मूल, फलसे ही निर्वाह करते हैं। वे निद्राका परित्याग करके किसीपर क्रोध भी नहीं करते हैं। वे चाहें तो हुङ्कारमात्रसे राक्षसोंका विनाश कर सकते हैं, परन्तु तपस्या नष्ट होनेके डरसे वे ऐसा नहीं करते हैं। एतावता इन तपोधन महात्माओंकी रक्षा मैं अवश्य करूँगा। हे सीते! मनुष्यको अपनी प्रतिज्ञा कभी नहीं छोड़नी चाहिये। जो एक प्रतिज्ञा छोड़ देता है वह दूसरी प्रतिज्ञाके त्यागमें सङ्कोच नहीं करता है। उसका मनोबल समाप्त हो जाता है। हे सीते! मैं अपना प्राण परित्याग कर सकता हूँ। मुझे सुमित्राकुमार लक्ष्मण अतिशय प्रिय हैं। हे मिथिलेशराजकिशोरी! आप मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, परन्तु मैं आप दोनोंको भी छोड़ सकता हूँ। परन्तु भक्तोंकी रक्षाके लिये की गयी राक्षसवधकी प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ सकता हूँ। विशेषतः ब्राह्मणोंके लिये की गयी प्रतिज्ञाको तो कभी नहीं छोड़ सकता हूँ। हे भगवति मैथिलि! ऋषियोंकी रक्षा करना मेरा आवश्यक कर्तव्य है—

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्॥
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः।
तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम्॥

(३।१०।१८-१९)

श्रीरामकी दृढ़ताको देखकर श्रीसीताजी प्रसन्न हो गयीं। यहाँसे श्रीरामजी आगे-आगे चले उसके पीछे श्रीसीताजी चलीं तदनन्तर हाथमें धनुष लेकर श्रीलक्ष्मणजी चले—

अग्रतः प्रययौ रामः सीता मध्ये सुशोभना।

पृष्ठतस्तु धनुष्पाणिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह॥

(३।११।१)

आगें राम अनुज पुनि पाछें। मुनि बर बेष बने अति काछें॥
उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥

(३।७।२-३)

तीनों अनेक वनोंको देखते हुए चले जा रहे थे। एक बहुत सुन्दर सरोवर दिखायी पड़ा। उसमेंसे संगीतकी मधुरध्वनि सुनायी पड़ रही थी। नाना प्रकारके वाद्य सुवादित हो रहे थे। गाने और नाचनेकी अव्यक्त मधुरध्वनि भी सुनायी पड़ रही थी। श्रीरामजीने साथमें चलनेवाले धर्मभृत नामक मुनिसे पूछा—हे महामुने! यहाँ कोई दिखायी नहीं पड़ता है फिर यह संगीतकी मधुरध्वनि कैसी है? मुनिने कहा—हे श्रीराम! एक महात्मा थे, उनका नाम था माण्डकर्णि, वे उच्चकोटिके तपस्वी थे। उनकी तपस्यासे इन्द्र घबरा गये, उन्होंने मुनिकी तपस्या खण्डित करनेके लिये पाँच अप्सराएँ भेजीं। संयोगवश मुनिकी तपस्या खण्डित हो गयी। मुनिने कहा—तपस्या तो चली गयी अब तुम्हीं रहो। तपस्याके प्रभावसे मुनिने युवावस्था वरण कर ली। तपस्याके प्रभावसे ही जलस्तम्भन करके इस सरोवरमें सुन्दर महल बनाया। अब मुनि उन्हीं पाँच अप्सराओंके साथ इसमें रहते हैं। नाचना, गाना, बजाना होता रहता है। इस तालाबका नाम पञ्चाप्सर नामक सरोवर है—

इदं पञ्चाप्सरो नाम तटाकं सार्वकालिकम्।
निर्मितं तपसा राम मुनिना माण्डकर्णिना॥

(३।११।११)

इस प्रकार श्रीरामजी अनेक महात्माओंके यहाँ गये और सब जगह निवास किये। कहीं दस मास, कहीं एक वर्ष, कहीं चार मास, कहीं पाँच या छः मास, कहीं सात मास, कहीं आठ मास, कहीं अर्द्धमास, कहीं साढ़े आठ मास, कहीं तीन मास और कहीं ग्यारह मास प्रभुने सुखपूर्वक निवास किया—

क्वचित् परिदशान् मासानेकसंवत्सरं क्वचित्॥
क्वचिच्च चतुरो मासान् पञ्च षट् च परान्क्वचित्।
अपरत्राधिकान् मासानध्यर्धमधिकं क्वचित्॥
त्रीन् मासानष्टमासांश्च राघवो न्यवसत्सुखम्।
तत्र संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै॥
रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश।

(३।११।२४—२७)

इस प्रकार मुनियोंके आश्रमोंपर रहते और अनुकूलता पाकर आनन्दका अनुभव करते हुए श्रीरामजीके दस वर्ष व्यतीत हो गये। सब जगह घूम-फिरकर पुनः श्रीसुतीक्ष्णके आश्रममें आ गये। कुछ दिन श्रीसीता-लक्ष्मणके साथ सुतीक्ष्ण-आश्रममें रहकर एक दिन उनसे स्नेहपूर्वक अगस्त्य ऋषिके यहाँ जानेके मार्गका परिज्ञान करके श्रीरामजीने श्रीअगस्त्यजीके दर्शनके लिये प्रस्थान किया—

प्रतस्थेऽगस्त्यमुद्दिश्य सानुगः सह सीतया॥

(३।११।४४)

चलते-चलते श्रीरामचन्द्रजी, सीता और लक्ष्मणको मार्गके सब दृश्य दिखाते जाते थे। श्रीरामजीने श्रीअगस्त्यजीके जीवनकी कुछ मुख्य घटनाओंका संक्षिप्त परिचय दिया। आतापि और वातापि नामके दो असुर थे, वे सहोदर थे—सगे भाई थे। आतापिका नाम इल्वल भी था। वातापि ऋषियोंके भोजनमें शाक आदिके रूपमें प्रविष्ट हो जाता था और जब ऋषि भरपेट भोजन कर लेते तब इल्वल पुकारता कि हे वातापे! बाहर आ जाओ—निकलो—'**वातापे निष्क्रमस्वेतिस्वरेण महता वदन्**' यह सुनते ही वातापि ऋषिका पेट

विदीर्ण करके बाहर निकल आता था और ऋषि मर जाते थे—

इहैकदा किल क्रूरो वातापिरपि चेल्वलः।
भ्रातरौ सहितावास्तां ब्राह्मणघ्नौ महासुरौ॥

(३।११।५५)

आतापि-इल्वल संस्कृत भाषा बहुत सुन्दर बोलता था। वह ब्राह्मणोंको निमन्त्रण संस्कृत भाषामें ही देता था। भोले-भाले ब्राह्मण लच्छेदार संस्कृत भाषाको सुनकर फँस जाते और निमन्त्रण स्वीकार कर लेते थे। तब वे दोनों उपरोक्त विधिसे ब्राह्मणोंको मार डालते थे। लोगोंकी प्रार्थनापर एक बार ब्राह्मणोंका उद्धार करनेके लिये अगस्त्यजीने उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। वातापि अगस्त्यजीके पेटमें भी घुस गया और महर्षिने उसे पचा लिया। जब इल्वलने उसको कहा निकलो तब बुद्धिमान् मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने हँसकर कहा—अब उसमें निकलनेकी शक्ति कहाँ है? मैंने उसे खाकर पचा लिया—**'कुतो निष्क्रमितुं शक्तिर्मया जीर्णस्य रक्षसः'।** इस प्रकार वातापिको मारकर अपनी आग्नेय दृष्टिसे आतापिको भी भस्म कर दिया—

चक्षुषानलकल्पेन निर्दग्धो निधनं गतः॥

(३।११।६६)

इसके बाद श्रीरामजी अगस्त्यके भ्राता सुदर्शन मुनिके आश्रममें सायंकाल पहुँचे। वहाँ रात्रि विश्राम करके प्रातःकाल उनसे आज्ञा ले करके उनके चरणोंमें प्रणाम कर आगे चले। मार्गमें चलते-चलते श्रीरामजीने पुनः कहा—हे लक्ष्मण! श्रीअगस्त्यजी बड़े सिद्ध सन्त हैं। एक बार विन्ध्यगिरि सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये प्रस्तुत हुआ। हे भाई! अभिमान बहुत दुष्ट होता है। अभिमानको सभी जानते हैं, जो नहीं जानते हैं उन्हींका कल्याण है। यह अभिमान किसीको छोड़ता नहीं है। राजाको, धनीको न छोड़े तो कोई बात नहीं, यह तो मुनियोंको भी नहीं छोड़ता है, पर्वतको भी नहीं छोड़ता है। विन्ध्य-पर्वतको अभिमान आ गया वह बढ़ने लगा। भगवान् सूर्यका मार्ग ही अवरुद्ध हो गया। हाहाकार मच गया। सब लोग श्रीअगस्त्यजीके पास पहुँचे। विन्ध्यपर्वत महर्षिका शिष्य है, महर्षि जब उसके पास पहुँचे तो उसने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। गुरुदेवने कहा—ऐसे ही पड़े रहो पुनः लौटकर आवेंगे तब आगे बात होगी। वह विन्ध्यपर्वत आजतक पड़ा है। विन्ध्यपर्वत गुरुभक्त है। इसकी गुरुभक्तिका ही प्रताप है कि इसकी शाखा चित्रकूटपर श्रीरामजीने निवास किया—

उदय अस्त गिरि अरु कैलासू। मंदर मेरु सकल सुरबासू॥
सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहिं तेते॥
बिंधि मुदित मन सुखु न समाई। श्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई॥

(श्रीरामचरितमानस २।१३८।६—८)

सम्भवतः इसीलिये मुनिको अगस्त्य कहते हैं। अगस्त्य शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है। **'अगं विन्ध्याख्यं गिरिं स्त्यायति स्तभ्नाति वा इति अगस्त्यः'।** श्रीरामने कहा—हे लक्ष्मण! देवता, सिद्ध, गन्धर्व और परमर्षिगण यहाँ संयमित आहार करते हुए अगस्त्य मुनिकी सदा प्रेमसे उपासना करते हैं—

अत्र देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
अगस्त्यं नियताहाराः सततं पर्युपासते॥

(३।११।८९)

महात्माओंका आश्रम देखकर मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामजी श्रीसीताके साथ आश्रमके द्वारपर ही रुककर श्रीलक्ष्मणके द्वारा अगस्त्यजीके शिष्यके पास अपने आगमनकी सूचना दी। शिष्यने अगस्त्यजीको सूचित किया। श्रीअगस्त्यने ज्यों ही सुना प्रसन्नतासे ओतप्रोत हो गये। उन्होंने कहा—आज मेरा बहुत सौभाग्य है कि श्रीरामजी मुझे देखने—मुझसे मिलने आये हैं। मेरी बहुत

दिनोंकी अभिलाषा आज पूरी हो गयी है। अरे! तुमलोग खड़े क्यों हो? तुमलोग अबतक उन्हें ले क्यों नहीं आये? जाओ, श्रीसीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रको आदरपूर्वक ले आओ। सुनो, फिर पूछने नहीं आना, सीधे मेरे समीप ले आओ—

दिष्ट्या रामश्चिरस्याद्य द्रष्टुं मां समुपागतः॥
मनसा काङ्क्षितं ह्यस्य मयाप्यागमनं प्रति।
गम्यतां सत्कृतो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः॥
प्रवेश्यतां समीपं मे किमसौ न प्रवेशितः।

(३।१२।१०—१२)

इतना कहकर महर्षि अपने शिष्योंके साथ आनन्दोल्लसित हृदयसे श्रीरामजीकी अगवानी करनेके लिये अग्निशालासे बाहर निकले। धर्मात्मा श्रीराम श्रीसीता और लक्ष्मणके साथ मुनिके चरणोंमें प्रणाम करके बद्धाञ्जलि होकर खड़े हो गये—

अभिवाद्य तु धर्मात्मा तस्थौ रामः कृताञ्जलिः।
सीतया सह वैदेह्या तदा रामः सलक्ष्मणः॥

(३।१२।२५)

श्रीअगस्त्यजीने गद्‌गद होकर श्रीरामजीको हृदयसे लगा लिया और पाद्य, मधुपर्क आदिसे आतिथ्य-सत्कार करके कुशल समाचार पूछकर कहा—आपलोग स्वस्थ होकर विराजिये—'**आस्यतामिति सोऽब्रवीत्**'। महर्षिने कहा—हे ककुत्स्थकुलनन्दन! तपस्वीको चाहिये कि पहले अग्निमें आहुति दे, तत्पश्चात् अर्घ्य देकर अतिथिका पूजन करे। अन्यथा उस तपस्वीको दुःसाक्षी—मिथ्या गवाहकी तरह परलोकमें अपने शरीरका मांस खाना पड़ता है—

दुःसाक्षीव परे लोके स्वानि मांसानि भक्षयेत्॥

(३।१२।२९)

ऐसा कहकर श्रीअगस्त्यने फल, मूल, पुष्प तथा अन्य विविध सामग्रियोंसे श्रीरामका आतिथ्य सत्कार किया। मुनिने कहा—हे मानद! आप यह ब्रह्माके द्वारा प्रदत्त, विश्वकर्माके द्वारा निर्मित, स्वर्णहीरकजटित धनुष, इन्द्रके द्वारा दिये हुए अक्षय बाणवाले दो तरकस, उत्तम और अमोघ बाण एवं खड्ग विजय पानेके लिये स्वीकार करें—

तद्धनुस्तौ च तूणी च शरं खड्गं च मानद।
जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा॥

(३।१२।३६)

इसके पश्चात् श्रीरामजीने अगस्त्यजीसे अपने लिये निवास करनेयोग्य स्थान पूछा। श्रीअगस्त्यने कहा—हे वीरचक्रचूडामणे! हे रघुनन्दन! यद्यपि आपकी इच्छा मेरे पास रहनेकी थी, परन्तु यहाँ मेरे भयसे कोई राक्षस आता ही नहीं है। अतः आप यहाँसे कुछ दूरपर गोदावरी नदीके तटपर पञ्चवटी जाइये। वहाँकी वनस्थली सुरम्य है। वहाँपर मिथिलेशनन्दिनीका मन विशेष लगेगा—

अतश्च त्वामहं ब्रूमि गच्छ पञ्चवटीमिति।
स हि रम्यो वनोद्देशो मैथिली तत्र रंस्यते॥

(३।१३।१७)

और हे रघुनन्दन! आपकी आवश्यकता पञ्चवटी क्षेत्रमें है अतः आप पञ्चवटी पधारें। दोनों भाई महर्षिके द्वारा उपदिष्ट एवं निर्दिष्ट मार्गसे अत्यन्त समाहित होकर पञ्चवटीकी ओर चले—'**यथोपदिष्टेन पथा महर्षिणा प्रजग्मतुः पञ्चवटीं समाहितौ**'।

पञ्चवटी जाते समय मार्गमें श्रीरघुनन्दनको एक विशालकाय और भीमपराक्रम गृध्र अचानक मिल गया। श्रीरामजीने उससे पूछा '**को भवान्?**' आप कौन हैं? आपका परिचय क्या है? उत्तरमें श्रीरामजीको अति मधुर वाणी सुननेको मिली। गृध्रने बड़ी कोमल और मधुर वाणीमें कहा—हे वत्स! मुझे अपने पिताका मित्र समझो। इस

वाक्यने ठाकुरजीको प्रसन्न कर दिया—सन्तुष्ट कर दिया—

ततो मधुरया वाचा सौम्यया प्रीणयन्निव।
उवाच वत्स मां विद्धि वयस्यं पितुरात्मनः॥

(३। १४। ३)

अब तो श्रीरामजीको अपना कर्तव्य निर्णय करनेमें विलम्ब नहीं लगा। यह मेरे पिताके मित्र हैं तो मेरे लिये पिताकी तरह पूज्य हैं। इनका आदर करनेके लिये पितृवत्सल श्रीरामजीको और कुछ पूछनेकी अथवा सुननेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई—

स तं पितृसखं मत्वा पूजयामास राघवः।

(३। १४। ४)

इसके अनन्तर श्रीजटायुने सृष्टिका इतिहास ही वर्णन कर दिया और अन्तमें कहते हैं—हे दशरथनन्दन! मैं विनतानन्दन गरुड़के अनुज अरुणका पुत्र हूँ। मेरा नाम जटायु है। हे तात! यदि आप चाहें तो मैं आपकी सहायता कर सकता हूँ। हे दशरथनन्दन! इस वनमें मृग और राक्षस बहुत हैं, वे आते-जाते रहते हैं। यदि कभी आप लक्ष्मणके सहित कहीं चले जायँगे तो उस समय मैं पुत्री सीताकी रक्षा करूँगा—

इदं दुर्गं हि कान्तारं मृगराक्षससेवितम्।
सीतां च तात रक्षिष्ये त्वयि याते सलक्ष्मणे॥

(३। १४। ३४)

रामायणशिरोमणि टीकाकार लिखते हैं कि इन वचनोंसे श्रीजटायुकी त्रिकालज्ञता सूचित होती है— **'स लक्ष्मणे त्वयि याते कन्द मूलाद्यर्थं क्वचिद् गते सति सीतां रक्षिष्ये एतेन जटायुषः त्रिकालज्ञत्वं सूचितम्'।** श्रीगुरुचरणोंके आश्रयमें बैठकर मैं तो यह कहूँगा कि धन्य हैं श्रीजटायुजी, जिन्होंने आज अपने आराध्य श्रीरामजीसे मिलनेकी प्रथम वेलामें जो प्रतिज्ञा की उसका निर्वाह उन्होंने अपना प्राणार्पण करके किया है। श्रीजटायु इसके पश्चात्—**'सीतां च तात रक्षिष्ये'** इसी प्रतिज्ञाके लिये जिये और इसीके लिये मरे। तदनन्तर श्रीजटायुको श्रीरामजीने अपने कण्ठसे लगाकर उनका बहुत सम्मान किया और पुत्रकी तरह उनके सामने नतमस्तक हो गये। किं वा, नतमस्तक होकर पिताकी मित्रताकी कथा सुनानेके लिये प्रार्थना की। श्रीजटायुने अपनी और श्रीदशरथजीकी मित्रताकी कथा सुनायी। वे कहते हैं—मैं साठ हजार वर्षसे यहाँ रहता हूँ। पक्षियोंका सम्राट् हूँ। हे श्रीराम! तुम्हारे पिताकी और मेरी अवस्था एक है हम तुम्हारे पिताके मित्र हैं। एक बार महाराज श्रीदशरथ आकाशमें युद्ध कर रहे थे, वहाँसे आहत होकर गिर पड़े। मैंने बीचमें ही अपने पंखोंपर रोक लिया। उन्हें पंखोंपर लेकर पृथ्वीपर आया। यहाँपर उनकी औषधि की, सेवा की। मेरी सेवासे वे स्वस्थ हो गये। उन्होंने मुझे अपना मित्र बना लिया। हे दशरथनन्दन! मुझ मांसाहारी अधम पक्षीको तुम्हारे कृपालु पिताने अपने सखाका स्थान दे दिया। परन्तु हा हन्त। मैं इतना मन्दभाग्य हूँ कि उसके बाद अपने मित्रका दर्शन नहीं कर सका, उनके किसी काम नहीं आ सका। हे लालजी! मैं तुम्हारी प्रतीक्षा बहुत दिनोंसे कर रहा हूँ। जबसे तुम दण्डकारण्य आये हो तबसे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। हे मेरे वात्सल्यभाजन! मैं तुम्हारे सामने नहीं आ सकता था; क्योंकि गीधोंका अचानक मँडराना और सामने आना अपशकुन माना जाता है। हे लालजी! मैंने सोचा कि कहीं मुझ अभागे अशुभ पक्षीके जानेसे तुम्हारा अमङ्गल न हो जाय। तुम्हारे मिलनेकी कामनाको मनमें सँजोये हुए तुम्हारे पास नहीं आया। बहुत दूरसे तुम्हें देख रहा हूँ, बहुत दिनसे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि अब आ रहे हैं मेरे लालजी, अब आ रहे हैं मेरे रामजी। हे मेरे मित्रपुत्र! आज तुम्हें देखकर मैं निहाल

हो गया। आज मेरा जीवन सफल हो गया। हे रघुनन्दन! अब मैं अपने जीवनमें तुम्हें नहीं छोड़ना चाहता, इतना कहते-कहते श्रीजटायु आर्द्रकण्ठ हो गये। इस कथाको सुनकर श्रीरामजी इतने भावप्रवण हो गये कि बार-बार प्रार्थना करने लगे कि हे तात! फिर कहिये, हे तात! फिर कहिये। इस प्रकार पितृवत्सल श्रीरामजीने उस कथाको बार-बार सुना—

जटायुषं तु प्रतिपूज्य राघवो
मुदा परिष्वज्य च सन्नतोऽभवत्।
पितुर्हि शुश्राव सखित्वमात्मवा-
ञ्जटायुषा संकथितं पुनः पुनः॥

(३। १४। ३५)

इस श्लोकमें 'संकथितः' का भाव यह है कि कहते तो सभी हैं परन्तु श्रीजटायुने अपने मित्रकी कथा रो-रोकर स्खलिताक्षरोंमें कही। इसीलिये लिखा है—'**संकथितः सम्यक् प्रकारेण कथितः पुनः पुनः—मुहुः मुहुः कथितः**' अर्थात् बार-बार कहना पड़ा किं वा, इसीलिये श्रीरामजीने बार-बार आग्रह करके कथा सुनी।

तदनन्तर प्रभुने श्रीसीताजीको जटायुके संरक्षणमें सौंप दिया। फिर श्रीसीता, जटायु और लक्ष्मणजीके साथ चारोंने पञ्चवटीके लिये प्रस्थान किया—

स तत्र सीतां परिदाय मैथिलीं
सहैव तेनातिबलेन पक्षिणा।
जगाम तां पञ्चवटीं सलक्ष्मणो
रिपून् दिधक्षञ्शलभानिवानलः॥

(३। १४। ३६)

इस श्लोकमें तीन बातें विशेष समझनेकी हैं। पहली बात यह है—जटायुको सौंपनेमें श्रीसीताजीके लिये मैथिली नामका प्रयोग किया है—'**परिदाय मैथिलीम्**'। भाव यह है कि पिताके हाथमें पुत्रीको देखकर निश्चिन्त हो गये। दूसरी बात यह है कि श्रीरामजी श्रीजटायुको यहाँसे अपने साथ ही ले गये। इसका भाव यह ज्ञात होता है कि श्रीरामजीने जटायुकी शरणागति स्वीकार करके उनके जीवनके समस्त दायित्वका, योगक्षेमका भार स्वयं स्वीकार कर लिया। तीसरी बात यह है कि इस श्लोकसे यह स्पष्ट है कि श्रीरामजीके पञ्चवटी आनेका लक्ष्य ही शत्रुदलन है। '**शलभानिवानलः इत्यनेन लीलया विरोध्युन्मूलनमभिमप्रायोऽवगम्यते**' (श्रीगोविन्दराज)।

पञ्चवटी पहुँचकर श्रीरामजीने श्रीलक्ष्मणसे कहा—हे सुमित्रानन्दन! अब तुम चारों ओर देखकर जहाँ तुम्हें अच्छा लगे वहाँ आश्रमनिर्माणकी व्यवस्था करो। यह सुनकर श्रीलक्ष्मण हाथ जोड़कर श्रीरामजीसे बड़ी दैन्यभरी वाणीमें बोले—हे ककुत्स्थकुलभूषण! आपके रहते मैं सदा परतन्त्र हूँ। हे स्वामी! मैं अनन्त वर्षोंतक परतन्त्र ही रहना चाहता हूँ। इसलिये कृपा करके स्थानका चयन आप करें और हमें आज्ञा दें कि लक्ष्मण अमुक स्थानपर आश्रम-निर्माण करो—

परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते।
स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद॥

(३। १५। ७)

यह श्लोक दास्यभावका अपूर्व उदाहरण है। इसमें श्रीलक्ष्मणका अनोखा भाव यह है कि हम अपने पारतन्त्र्यपर अनेक स्वातन्त्र्यको न्योछावर करते हैं। पारतन्त्र्य ही मेरा परमधन है और भगवत् पारतन्त्र्य ही मेरा सच्चा स्वरूप है। श्रीलक्ष्मणजीकी भावपूर्णवाणी सुनकर भगवान् श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए और स्थानका निर्देश करके आश्रम-निर्माणकी आज्ञा दी—

अयं देशः समः श्रीमान् पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः।
इहाश्रमपदं रम्यं यथावत् कर्तुमर्हसि॥

(३। १५। १०)

'अयं देशः समः श्रीमान्' का भाव यह है कि ठाकुरजी स्वयं तो सम और श्रीमान् हैं ही उनका स्थान भी सम और श्रीमान् है। मैंने सूत्ररूपमें निर्देश किया है, विद्वान् श्रोता इसका आनन्द मनन करके लें।

श्रीरामजीकी आज्ञा प्राप्त करके श्रीलक्ष्मणने बहुत जल्दी आश्रम बनाकर तैयार कर दिया—

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः परवीरहा।
अचिरेणाश्रमं भ्रातुश्चकार सुमहाबलः॥

(३। १५। २०)

उस पर्णकुटीको देखकर ठाकुरजी बहुत प्रसन्न हुए और गद्गद होकर कहे—हे परम समर्थ लक्ष्मण! तुमने बहुत सुन्दर पर्णकुटी बनायी है। इस पर्णकुटीमें उच्चकोटिकी शिल्पकलाका तुमने प्रयोग किया है। इससे ज्ञात होता है कि तुम स्थापत्यकलामें परमनिष्णात हो। हे लक्ष्मण! आज मैं अति प्रसन्न हूँ। हे वत्स! तुम्हारी सेवाके बदले देनेके लिये न मेरे पास वस्तु है और न शब्द है। अतः तुम्हें मैं अपने हृदयसे लगाकर अपना हृदय ही समर्पित कर रहा हूँ—

प्रीतोऽस्मि ते महत् कर्म त्वया कृतमिदं प्रभो।
प्रदेयो यन्निमित्तं ते परिष्वङ्गो मया कृतः॥

(३। १५। २८)

हे सुमित्राकुमार! इस पर्णकुटीके निर्माणमें तुमने मेरे हृदयके भावोंको बिना कहे ही समझ लिया है। एतावता तुम भावज्ञ हो। हे सेवाव्रती! मैं तुमको अपने साथ वनमें लाया इसका ऋण तुमने अनेक प्रकारकी सेवा करके उतार दिया, क्योंकि तुम कृतज्ञ हो, सेवकधर्मके परम आदर्श हो, इसलिये अपने लिये सुविधापूर्ण स्थान न बनाकर मेरे लिये हर तरहसे सुन्दर स्थान बनाया है। हे लक्ष्मण! तुम्हारी तरह धर्मात्मा पुत्रके कारण मेरे धर्मात्मा पिता अभी मरे नहीं हैं तुम्हारे रूपमें वे अब भी जीवित हैं—

भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण।
त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृत्तः पिता मम॥

(३। १५। २९)

श्रीरामजीकी उस आश्रममें शरद्-ऋतु बीत गयी। हेमन्त-ऋतु प्रारम्भ हो गयी। एक दिन प्रभु गोदावरी स्नान करनेके लिये ब्रह्मवेलामें गये। विनयी और पराक्रमी श्रीलक्ष्मण हाथमें घड़ा लिये हुए श्रीसीताजीके पीछे-पीछे गये। श्रीलक्ष्मणने कहा—हे प्रियंवद रघुनन्दन! इस समय हेमन्त-ऋतुका पदार्पण हो गया है। यह ऋतु आपको बहुत प्रिय है—

अयं स कालः सम्प्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियंवद।

(३। १६। ४)

हेमन्त-ऋतुका वर्णन करते हुए श्रीलक्ष्मणने कहा—हे भरताग्रज! इस समय निश्चय ही भैया भरतजी श्रीसरयूमें स्नान करते होंगे। अहा! मेरे भैया भरतजी कितने त्यागी, तपस्वी और तितिक्षु हैं? वे राज्यका, मानका और अनेक प्रकारके भोगोंका परित्याग करके तपस्या कर रहे हैं। वे रात्रिमें एक बार कुछ पा लेते हैं, महान् तपस्वी श्रीभरत शीतल भूमिमें बिना बिछौनेके ही शयन करते हैं—

त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगांश्च विविधान् बहून्।
तपस्वी नियताहारः शेते शीते महीतले॥

(३। १६। २८)

हे कौसल्यानन्दसंवर्धन! मेरे श्रीभरतलाल-जी अत्यन्त सुकुमार हैं, अत्यन्त सुखसंवृद्ध हैं। श्रीदशरथजीके द्वारा उपलालित हैं। अतः 'सुखसंवृद्ध हैं और आपने भी वात्सल्यभावसे ही उनको अतिशय दुलार दिया है। एतावता श्रीभरतजी अत्यन्त सुखसंवृद्ध हैं—अत्यन्त सुखमें पले हुए हैं। वे भरतजी हिमार्दित हो करके

रात्रिके अन्तिम प्रहरमें श्रीसरयूजीमें डुबकी कैसे लगाते होंगे—'

अत्यन्तसुखसंवृद्धः सुकुमारो हिमार्दितः।
कथं त्वपररात्रेषु सरयूमवगाहते॥

(३। १६। ३०)

'**अपररात्रेषु**' अपर रात्रेषु इस पदमें श्रीगोविन्द-राजजीने बड़ा भावपूर्ण समास्वादन किया है। 'जैसे कोई नवयुवती विधवा हो जाय तो वह मनुष्योंके समुदायसे अपनेको बचाती है कि कोई यह न कह दे कि इसने आकर नवयुवक पतिको समाप्त कर दिया—खा लिया। यह अभागिनी है। उसी प्रकार परम भावुकहृदय श्रीभरतलालजी रात्रिके अन्तिम प्रहरमें सरयू स्नान करने जाते हैं, जनसञ्चरणके पूर्व ही स्नान कर लेते हैं। श्रीभरत सोचते हैं कि कोई मेरा मुख देख करके कहीं यह न कह दे कि यह वही भरत है जिसके कारण श्रीरामवनगमन हुआ है। इसीके कारण श्रीरामजी श्रीसीता-लक्ष्मणके साथ वनमें अनेक प्रकारके क्लेश सहन कर रहे हैं। इसीके कारण चक्रवर्तीजीका देहावसान हो गया है। इसीके कारण समस्त अयोध्या अनाथ हो गयी। श्रीभरत सोचते हैं कि मेरे रामके पुरवासी मेरा मुख देखकर जब इस प्रकार सोचेंगे तो उनके मनमें अपार कष्ट होगा। इसलिये मैं रात्रिके पिछले प्रहरमें जाऊँगा तो मेरा कोई मुख न देखेगा—

'**अपररात्रेषु यथा नव वैधव्याः स्त्रियः मनुष्य सञ्चारात् पूर्वमेव मनुष्यमुखमनवलोकयन्त्यो गच्छन्ति तथाऽयमपि कैकेयी पुत्रोऽयं एतन्निमित्त एवानर्थ इतिजना वक्ष्यन्तीति भीत्या अपररात्रेष्वेव गच्छति सरयूमवगाहते**' इस श्लोकमें श्रीगोविन्दराजने एक अत्यन्त सुन्दर भावका भक्तजनोंके हितार्थ परिवेषण किया है। श्रीलक्ष्मणजी भावविह्वल होकर कहते हैं—हे दशरथराजकुमार! भरतकुमार परम सुकुमार हैं, वे हिमार्दित हो करके—जाड़ेका कष्ट सहन करते हुए श्रीसरयूके शीतल जलमें कैसे स्नान करते होंगे? इसका भाव श्रीगोविन्दराज कहते हैं—श्रीलक्ष्मणजीको श्रीरामविरहका अभाव है अतः श्रीगोदावरीका जल उन्हें शीतल प्रतीत होता है इसलिये वे अपनी ही तरह मानते हैं कि श्रीभरतजीको भी सरयूजल शीतल लगता होगा; परन्तु स्थिति इसके ठीक विपरीत है, रामविरहके तापसे नदियोंका जल तप गया है और श्रीभरत स्वयं श्रीरामविरहके तापसे सन्तप्त हैं अतः नदियोंके भी श्रीरामविरहके तापसे सन्तप्त होनेके कारण शैतल्यके अनुभव होनेका—ठंड लगनेका प्रश्न ही नहीं है— '**कथं नु आत्मौपम्येन मन्यते स्वस्य रामविरहाभावेन शैत्यानुभवः तस्य रामतापात् उपतप्तोदका नद्य इत्युक्तरीत्या नदीनामपि रामविरहेणोष्णत्वाच्च शैत्यप्रसक्तिरेव नास्ति**'।

श्रीभरतजीकी गुणावलियोंका वर्णन करते हुए श्रीलक्ष्मणजी माता कैकेयीकी निन्दा करने लगे। परन्तु श्रीरामजीसे माताकी निन्दा नहीं सही गयी। उन्होंने सद्यः वारण करते हुए कहा—हे लक्ष्मण! तुम्हें माताजीकी निन्दा नहीं करनी चाहिये, तुम तो अयोध्यानाथ श्रीभरतचरित्रका ही वर्णन करो—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु॥

(३। १६। ३७)

इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी भरतभावमें विह्वल होकर कहने लगे—हे लक्ष्मण! मैंने अपने लाड़ले भरतकी प्रार्थना ठुकरा दी थी, चौदह वर्षपर्यन्त वनमें रहनेके लिये मैं कृतसङ्कल्प हूँ, सङ्कल्प पूर्ण भी करूँगा; परन्तु भरतके स्नेहसे सन्तप्त हो जाता हूँ। मेरा भरत मुझे बहुत याद आता है। उसकी मधुर-स्मृतिसे कभी-कभी मेरी बुद्धि

बालबुद्धिकी तरह हो जाती है। श्रीभरतके वियोगको न सह पानेके कारण चञ्चल हो जाती है— '**बालिशीक्रियते गुणाश्रयस्य भरतस्य वियोगमसहमाना चाञ्चल्यं प्राप्नोति**'। (तिलकटीका)

हे लक्ष्मण! इस समय मुझे अपने भरतकी सब बातें स्मरण आ रही हैं—मेरे स्मृतिपटलपर नाच रही हैं। उनकी वाणी प्रिय थी, प्रिय वाणी तो कभी-कभी कर्णकठोर भी होती है; परन्तु भरतवाणी तो मधुरातिमधुर थी। अमृतकी तरह उस वाणीमें सञ्जीवनीशक्ति थी और हे सुमित्रानन्दन! मेरे भरतकी वाणी मन्त्रकी भाँति हृदयको बाँधनेवाली थी—

निश्चितैव हि मे बुद्धिर्वनवासे दृढव्रता।
भरतस्नेहसन्तप्ता बालिशीक्रियते पुनः॥
संस्मराम्यस्य वाक्यानि प्रियाणि मधुराणि च।
हृद्यान्यमृतकल्पानि मनःप्रह्लादनानि च॥

(३। १६। ३८-३९)

अहा! वह दिन कब आवेगा जब मैं तुम्हारे साथ श्रीअयोध्याजी चलकर महात्मा भरतको और शत्रुघ्नको देखूँगा। इस प्रकार विलाप करते हुए श्रीरामने गोदावरी तटपर जाकर स्नान किया। सन्ध्या, देवर्षि-पितृतर्पण, सूर्योपस्थान करके देवस्तुति की—

तर्पयित्वाथ सलिलैस्तैः पितृन् दैवतानपि।
स्तुवन्ति स्मोदितं सूर्यं देवताश्च तथानघाः॥

(३। १६। ४२)

इस प्रकार श्रीरामजी पञ्चवटीकी पर्णकुटीमें सुखपूर्वक निवास करते थे। एक दिन श्रीरघुनन्दन श्रीसीता-लक्ष्मणको कोई कथा सुना रहे थे—तीनोंका मन कथा कहने-सुननेमें लगा हुआ था कि उसी समय अचानक एक राक्षसी आ गयी।—

तदासीनस्य रामस्य कथासंसक्तचेतसः।
तं देशं राक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया॥

(३। १७। ५)

उसका नाम शूर्पणखा था। शूर्पणखाका अर्थ है, जिसके नख शूर्प—सूपकी तरह लम्बे-लम्बे हों '**शूर्पवत् नखानि यस्याः सा शूर्पणखा**' नखके भी अच्छे या बुरे अनेक प्रकारके गुण शास्त्रोंमें कहे गये हैं। इनमें शूर्पणखाका वर्णन तो खराब ही है। प्रायः शूर्पणखाएँ तो राक्षसी ही होती हैं। इसका तो नाम ही शूर्पणखा था। यह दशग्रीव रावणकी बहन थी। इसने जब कोटि-कोटि कन्दर्पदर्पदलन पटीयान् भुवनमोहन श्रीरामचन्द्रको देखा तब देखते ही काममोहित हो गयी। शूर्पणखाकी श्रीरामजीमें कामानुरक्ति देखकर उसकी मनःप्रवृत्तिका श्रीवाल्मीकि मुनि अपनी काव्यमयी भाषामें उपहास करते हैं। वे कहते हैं कि इस दारुण बुढ़ियामें और श्रीरामजीमें कितना वैषम्य है। शूर्पणखा और श्रीराममें कितना महान् अन्तर है। श्रीरामजीका सुशोभन मुखमण्डल है और वह राक्षसी दुर्मुखी है, श्रीरामजीका कटिप्रदेश अत्यन्त क्षीण है, पेट तो मानो है ही नहीं और वह राक्षसी महोदरी है, नगाड़ेकी तरह उसका पेट है। उसका कटिप्रदेश तो पेटमें ही विलीन हो गया है। श्रीरामजीकी कमलकी तरह बड़ी-बड़ी आह्लादित करनेवाली आँखें हैं और उस विकट नेत्री राक्षसीकी आँखें बिल्लीकी तरह हैं। श्रीरामजीके केश सुचिक्कण, कुञ्चित, स्निग्ध और पतले हैं। उसके बाल ताँबेकी तरह रक्तवर्णके और लोहेके तारकी तरह कड़े थे। श्रीरामजी प्रियरूप थे—प्रियदर्शन थे जबकि उस राक्षसीका रूप वीभत्स और विकराल था। श्रीरामजीका स्वर स्निग्ध और गम्भीर था और वह राक्षसी भैरवस्वना थी, फटे बाँसकी तरह बोलती थी। श्रीरामजी नित्यतरुण हैं और शूर्पणखा हजारों वर्षकी बुढ़िया थी।

श्रीरामजी ऋजुभाषी थे, शोभन एवं सरल भाषण कुशल थे और वह दुष्टा मिथ्याभाषिणी और कुटिलभाषिणी थी। श्रीरामजी सदाचार-सम्पन्न थे और वह महान् दुराचारिणी थी। श्रीरामजी परस्त्रीको देखते भी नहीं थे और वह सारे संसारके सुन्दर पुरुषोंको पतिके रूपमें ही देखती थी। श्रीरामजीको देखकर मनमें प्यार उमड़ता है और उसे देखकर मनमें घृणा उत्पन्न होती थी—

सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी॥
विशालाक्षं विरूपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्धजा।
प्रियरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वना॥
तरुणं दारुणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी।
न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता प्रियमप्रियदर्शना॥

(३।१७।९—११)

इस प्रकार बुढ़िया शूर्पणखा कामभावसे आविष्ट होकर सुन्दर बनावटी रूप धारण करके श्रीरामजीके पास जाकर बोली—हे परम सुन्दर! तुम जटी होकर—जटा धारण करके स्त्रीको साथमें लेकर इस राक्षससेवित देशमें कैसे आ गये? तुम्हारे आनेका क्या कारण है? श्रीरामजीने अपना यथार्थ परिचय देकर पूछा—तुम्हारा परिचय क्या है? तुम किसकी पुत्री और पत्नी हो? तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारे अङ्गकी मनोज्ञता—सौन्दर्य देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि तुम राक्षसी हो और यह तुम्हारा बनावटी रूप धोखा देनेके लिये है। तुम ठीक-ठीक बताओ कि तुम यहाँ क्यों आयी हो?

त्वां तु वेदितुमिच्छामि कस्य त्वं कासि कस्य वा।
त्वं हि तावन्मनोज्ञाङ्गी राक्षसी प्रतिभासि मे॥
इह वा किंनिमित्तं त्वमागता ब्रूहि तत्त्वतः।

(३।१७।१८-१९)

अब तो शूर्पणखाको ज्ञात हो गया कि मेरी माया इनके सामने नहीं चली। तब उसने स्पष्ट कह दिया कि मैं महाबलवान् रावण, कुम्भकर्ण और विभीषणकी बहन हूँ। मेरा नाम शूर्पणखा है। मैं जब जैसा चाहूँ वैसा ही रूप बना सकती हूँ। कामरूपिणी हूँ। भाव कि सुन्दर भी बन सकती हूँ और भयङ्कर भी बन सकती हूँ। वैसे तत्त्वतः तो मैं शूर्पणखा ही हूँ—

श्रूयतां राम तत्त्वार्थं वक्ष्यामि वचनं मम।
अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी॥

(३।१७।२०)

शूर्पणखाने श्रीरामजीके सामने वैवाहिक प्रस्ताव किया—हे अपूर्व सुन्दर श्रीरामजी! मैं अपने भाइयोंके वशमें नहीं हूँ, क्योंकि मैं उनसे अधिक बलवान् हूँ। आपके ऐसा रूप मैंने आजतक किसीका नहीं देखा, आपका सौन्दर्य अपूर्व है, मैंने त्रैलोक्यमें खोजकर देखा है; परन्तु आपकी तरह सुन्दर पुरुष आजतक नहीं देखा—***'देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं'।*** हे श्रीराम! आपको देखते ही मेरा मन आपमें आसक्त हो गया है। आप पुरुषोत्तम हैं, अतः मैं आपके प्रति पतिकी भावना रखकर अत्यन्त अनुरक्त होकर आपके पास आयी हूँ—

तानहं समतिक्रान्ता राम त्वापूर्वदर्शनात्।
समुपेतास्मि भावेन भर्तारं पुरुषोत्तमम्॥

(३।१७।२४)

हे श्रीराम! मैं अत्यन्त प्रभावशालिनी हूँ। मैं अपनी इच्छानुसार अपनी ही शक्तिसे जहाँ चाहूँ वहाँ जा सकती हूँ। मैं अपना काम निकालकर आपको छोड़ूँगी नहीं। आप बहुत समयतकके लिये मेरे पति बन जाओ। इस मानुषी सीताको छोड़ दो। यह तुम्हारे अनुरूप भी नहीं है—**'विकृता च विरूपा च न सेयं सदृशी तव'।** आपके अनुरूप तो मैं ही हूँ। अतः अपनी भार्याके रूपमें मुझको देखो। आप अपने भाई

और पत्नीका संकोच मत करो। इनको तो मैं अभी तुम्हारे देखते-देखते खा जाऊँगी—

अनेन सह ते भ्रात्रा भक्षयिष्यामि मानुषीम्॥

(३। १७। २७)

राक्षसी शूर्पणखाकी बात सुनकर श्रीराम बहुत जोरसे हँसने लगे। हँसनेका भाव यह है कि अरी नीच राक्षसी! मेरे जो प्राण हैं, उन्हींको तू खाना चाहती है तो मैं जीवित कैसे रहूँगा। अथवा, तूने श्रीसीताके स्वरूपको नेत्र भरकर देखा नहीं है, इसीलिये अपनेको रूपवती और श्रीसीताको विरूपा कह रही है। अथवा प्रभु इसलिये हँसे कि जिन लक्ष्मणको तू खानेको कह रही है उन्हींके द्वारा तेरी दुर्दशा होनेवाली है। प्रभुने कहा—तुम देख रही हो, मैं विवाह कर चुका हूँ। मेरी पत्नी मेरे पास हैं और ये मुझे बहुत प्यारी हैं—

कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयिता मम।

(३। १८। २)

मेरे भाई श्रीलक्ष्मण अत्यन्त शीलवान् और प्रियदर्शन हैं। तुम उनके पास जाओ इस समय उनकी स्त्री भी उनके पास नहीं है। इतना सुनकर काममोहिता राक्षसी श्रीरामजीको छोड़कर सहसा श्रीलक्ष्मणके पास जाकर बोली—

इति रामेण सा प्रोक्ता राक्षसी काममोहिता।
विसृज्य रामं सहसा ततो लक्ष्मणमब्रवीत्॥

(३। १८। ६)

इससे यह ज्ञात होता है कि उसके मनमें जो काम था वह भी परिनिष्ठित नहीं था, केवल कामाभास था। कामाभासका यह अर्थ होता है कि किसीसे भी अपनी कामनाकी पूर्ति कर लो।

श्रीलक्ष्मणसे कहने लगी—हे लक्ष्मण! मेरी ऐसी पत्नी कहीं मिलेगी नहीं। अतः तुम मुझसे विवाह कर लो। श्रीलक्ष्मणने कहा—हे सुन्दरि! मुझसे विवाह करके तुम अपनी दुर्दशा क्यों कराना चाहती हो। तुम नित्य स्वच्छन्दचारिणी हो और मैं नित्यदास हूँ। अनन्त वर्षोंतक मैं दास ही रहूँगा। मुझे दास बनकर रहनेमें ही सुख है मेरे यही संस्कार हैं। तुम मेरी पत्नी बनकर दासी क्यों बनना चाहती हो?

कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि।
सोऽहमार्येण परवान् भ्रात्रा कमलवर्णिनि॥

(३। १८। ९)

तुम तो श्रीरामजीके ही पास जाओ, वे मेरे स्वामी हैं और सर्वसमर्थ हैं—

सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा॥
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहि सब छाजा॥

श्रीलक्ष्मणने कहा—

एतां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम्।
भार्यां वृद्धां परित्यज्य त्वामेवैष भजिष्यति॥

(३। १८। ११)

यह श्लोक इस प्रसङ्गमें तीन बार आया है। दो बार शूर्पणखाने श्रीसीताजीके लिये प्रयोग किया है और एक बार श्रीलक्ष्मणजीने श्रीकिशोरीजीके लिये प्रयोग किया है। शूर्पणखाके प्रयोगमें शङ्का नहीं है, वह काममोहिता है, राक्षसी है, मदोन्मत्ता है। साथ ही कामने उसकी दृष्टि हर ली है अतः वह कामान्धा है— **'इन्ह कर कहा करिअ नहिं काना'**। परन्तु श्रीलक्ष्मणके प्रयोगपर विचार आवश्यक है। श्रीलक्ष्मणजीने कुछ इस प्रकारके शब्दोंका प्रयोग किया है, जो इस कामान्धाकी समझमें तो आवे नहीं और मैं अपनी माताकी स्तुति कर लूँ। अब आइये स्तुतिकी दृष्टिसे श्लोकका अर्थ समझें। श्रीसीताजी 'विरूपा' हैं अर्थात् त्रैलोक्यमें इनसे अच्छा रूप किसीका नहीं है, भाव कि श्रीसीताजी त्रैलोक्य सुन्दरी हैं। 'असती' हैं अर्थात् जिनसे बढ़कर कोई दूसरी सती न हो, भाव कि सतीशिरोमणि हैं। 'कराला'

हैं अर्थात् उन्नत हैं। जिनका चरित्र बहुत ऊँचा है। किं वा, जो शरीरकी गठनके अनुसार ऊँचे-नीचे अङ्गोंवाली हैं। 'निर्णतोदरी' हैं, क्षीण कटिप्रदेश-वाली हैं। 'वृद्धा' हैं अर्थात् ज्ञानमें वृद्ध हैं, साधनमें वृद्ध हैं और जगन्मातृत्वेन वृद्धा हैं। आगे श्रीलक्ष्मणजी कहते हैं कि ऐसी अनिन्द्यस्वरूप और गुणोंवाली श्रीसीताजीका श्रीराम कभी परित्याग नहीं कर सकते हैं। तुम चाहे जितनी सुन्दर बनकर जाओ श्रीरामजी तुम्हारी ओर देखेंगे भी नहीं। वे तो अपनी प्राणप्रिया श्रीसीताजीका ही भजन करेंगे—उन्हींका सम्मान करेंगे। '**विशिष्टरूपां विरूपां त्रैलोक्यसुन्दरीम्**'। '**असतीं' न विद्यते अन्या सती यस्यास्ताम्। 'करालाम्' अवयव सन्निवेशैर्युक्तैः निम्नोन्नताम्। 'निर्णतोदरीम्' तनुमध्यमाम्। 'वृद्धाम्' ज्ञानवृद्धामनादिं च।** (तिलक-टीका) वह फिर श्रीरामजीके पास आयी। उसने पुनः श्रीरामजीसे विवाहका प्रस्ताव किया और अपने विवाहमें बाधक समझकर श्रीसीताजीको खानेका विचार करके मृगनैनी श्रीसीताजीकी ओर जाज्वल्यमान काष्ठाग्निके अङ्गारोंके समान नेत्रवाली राक्षसी अत्यन्त क्रुद्ध होकर वेगसे दौड़ी मानो रोहिणीनक्षत्रपर महान् उल्कापात हो गया हो—

इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा।
अभ्यगच्छत् सुसंक्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव॥

(३। १८। १७)

इस श्लोकमें श्रीसीताजीको 'मृगशावाक्षी' पद देकर महर्षिने श्रीसीताके भावोंको सुप्रकाशित कर दिया है। इसके अनेक भाव सम्भव हैं। एक भाव यह है कि श्रीसीता हरिणीकी तरह भयभीत हो गयीं। तत्काल उनके जीवनाधार श्रीरामजीने हुङ्कार करके राक्षसीको रोका और श्रीलक्ष्मणसे कहा—ऐसी दुष्टा स्त्रियोंसे कभी हँसीमें भी बात नहीं करनी चाहिये किं वा, परिहास नहीं करना चाहिये। हे पुरुष सिंह! इस कुरूपा, पुंश्चली, अत्यन्त मतवाली और नगाड़ेकी तरह मोटे और लम्बे पेटवाली राक्षसीको रूपहीन कर दो—इसकी नाक काट लो।

इमां विरूपामसतीमतिमत्तां महोदरीम्।
राक्षसीं पुरुषव्याघ्र विरूपयितुमर्हसि॥

(३। १८। २०)

हे लक्ष्मण! विरूप तो यह पहलेसे ही थी, हमने तुम्हारे पास भेजा था कि सम्भव है तुम्हारी दास्यभक्तिके उपदेशको सुनकर यह सुधर जाय; परन्तु यह तो स्वामिनीको ही मारकर स्वामिनी बनना चाहती है। अब इसके लिये दण्ड ही एक उपाय है। प्रभुके आज्ञापालक श्रीलक्ष्मणने उसको तत्काल नाक-कानसे रहित कर दिया—

इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धो रामस्य पश्यतः।
उद्धृत्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासे महाबलः॥

(३। १८। २१)

तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूप भयंकर प्रगटत भई॥
सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई॥
लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि॥

(श्रीरामचरितमानस ३। १७। १९-२०; दो० १७)

शूर्पणखाके नाक-कानसे रक्तकी धार बह रही थी, वह देखनेमें बड़ी डरावनी लग रही थी, दोनों हाथोंको उठाकर चीत्कार करती हुई वह राक्षसी एक विशाल वनमें घुस गयी—

सा विक्षरन्ती रुधिरं बहुधा घोरदर्शना।
प्रगृह्य बाहू गर्जन्ती प्रविवेश महावनम्॥

(३। १८। २४)

और वहाँसे भागती हुई जाकर अपने भाई खरके आगे भूमिपर धड़ामसे गिर गयी। उस

खरकी बहन राक्षसीने समस्त वृत्तान्त अपने भाई खरको सुना दिया।

शशंस सर्वं भगिनी खरस्य सा॥

(३। १८। २६)

खरको अपनी बहनकी स्थिति देखकर कष्ट हुआ। उसने पूछा—स्पष्ट कहो, वह कौन है जिसने तुम्हें इस प्रकार नाक-कान काटकर कुरूप कर दिया?

व्यक्तमाख्याहि केन त्वमेवंरूपा विरूपिता॥

(३। १९। २)

भाईके वचन सुनकर आँखोंसे आँसू ढारती हुई शूर्पणखा बोली—हे भैया! जंगलमें दो पुरुष आये हैं, जो तरुण हैं, रूपसम्पन्न हैं, सुकुमार हैं, महाबलवान् हैं, पुण्डरीकके समान—श्वेतकमलके समान उनकी विशाल आँखें हैं, वल्कलवस्त्र और कृष्ण मृगचर्म धारण किये हैं। फल-मूलका आहार करते हैं, वे दोनों जितेन्द्रिय, तपस्वी और ब्रह्मचारी हैं। वे दोनों चक्रवर्ती नरेन्द्र अयोध्यानरेश श्रीदशरथके पुत्र हैं। उनके नाम राम और लक्ष्मण हैं—

तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ।
पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ॥
फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ।
पुत्रौ दशरथस्यास्तां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥

(३। १९। १४-१५)

कामिनी स्त्री पुरुषकी युवावस्थाको अधिक महत्त्व देती है। अत: कामिनी शूर्पणखाने सबसे पहले '**तरुणौ**' कहा है। दोनोंसे परस्पर परिहास करनेके कारण राक्षसीका दोनोंके प्रति आकर्षण है। एतावता द्विवचनका प्रयोग कर रही है। **'तरुणौ कामिनीनां प्रथमाकर्षकं वय एव हि अतस्तदुच्यते परस्पर परिहास करणेनोभयत्र भाव बन्धा विशेषाद् द्विवचनम्'**। (श्रीगोविन्दराज)

इस प्रसङ्गमें एक बड़ा कुतूहलात्मक भावपूर्ण प्रश्न है—खरने पूछा था कि साफ-साफ बताओ कि तुमको इस प्रकार नाक-कान काटकर कुरूप किसने कर दिया? खरके इस प्रश्नका इतना ही उत्तर पर्याप्त था कि वे दोनों भाई दशरथके पुत्र हैं, उनका नाम राम-लक्ष्मण है। परन्तु उसने तो श्रीरामजीके सौन्दर्यका और उनके अनेक गुणोंका वर्णन करना आरम्भ कर दिया—वे तरुण हैं, स्वरूपवान् हैं, पुष्पहास सुकुमार हैं इत्यादि। इसका क्या कारण है? इसका उत्तर देते हुए श्रीगोविन्दराजजी लिखते हैं—यद्यपि शूर्पणखाकी नाक-कान काटकर श्रीरामजीने उसे विरूप करवा दिया है; परन्तु नाक-कान कटानेपर भी शूर्पणखाके मनमें श्रीरामजीके प्रति वैराग्य नहीं उत्पन्न हुआ है, उनसे राग समाप्त नहीं हुआ है। उसका मन अब भी काममोहातिशयसे परिपूर्ण है इसलिये अपने भाई, सचिव आदिकी उपस्थितिमें भी उसने अपने हृदयकी सच्ची बात ही कही है। उसे लज्जाका अनुभव भी नहीं हुआ है—'**कामातुराणां न भयं न लज्जा**'। किं वा, श्रीरामजीके प्रति अनुकूलभाव हो या प्रतिकूल भाव हो जो एक बार उनका दर्शन कर लेता है उसका यह स्वभाव ही हो जाता है कि वह उनकी निन्दा नहीं कर सकता है। निन्दा भी करेगा तो उसमें प्रशंसा छिपी रहेगी।

'ननु व्यक्तमाख्याहि केन त्वमेवं रूपा विरूपितेति पृच्छन्तं खरं प्रति पुत्रौ दशरथस्यास्तां भ्रातरौ रामलक्ष्मणावित्येव वक्तव्ये तरुणा वित्यादिना रामादि सौन्दर्यादिकं किमर्थं कथयतीतिचेत्, अस्या वैरूप्ये जातेऽपि वैराग्याजननात् काममोहातिशयेन भ्रात्रादि सन्निधानेऽपि हृद्गतमेवोक्तवती अनुकूलानां प्रतिकूलानाञ्च रामं दृष्टवतामयमेव स्वभावः'। (श्रीगोविन्दराजजी)। श्रीरामजी और लक्ष्मणजीका

परिचय देकर उसने श्रीसीताजीका भी परिचय दिया—उनके मध्यमें एक युवती स्त्रीको भी मैंने देखा है। वह भी रूपसम्पन्ना, क्षीणकटिप्रदेशा और सर्वालङ्कारालङ्कृता है।

तरुणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता।
दृष्टा तत्र मया नारी तयोर्मध्ये सुमध्यमा॥

(३। १९। १७)

शूर्पणखा कहती है—हे भ्रातः! उन तीनोंके मरनेपर मैं उन तीनोंका फेनसहित खून रणमें पीना चाहती हूँ—

तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्च हतयोरहम् ।
सफेनं पातुमिच्छामि रुधिरं रणमूर्धनि॥

(३। १९। १९)

शूर्पणखाकी बात सुनकर खरने यमराजके समान भयङ्कर चौदह राक्षसोंको श्रीरामका वध करनेके लिये भेजा। शूर्पणखाने साथ जाकर पञ्चवटीमें श्रीराम-लक्ष्मणको दिखा दिया। उन राक्षसोंने श्रीरामजीसे कहा—हम अनेक हैं, तू एक है। हमारे सामने युद्धमें खड़े रहनेकी भी शक्ति तुम्हारी नहीं है, फिर रणभूमिमें युद्ध करनेकी तो चर्चा ही व्यर्थ है—

का हि ते शक्तिरेकस्य बहूनां रणमूर्धनि।
अस्माकमग्रतः स्थातुं किं पुनर्योद्धुमाहवे॥

(३। २०। १४)

ऐसा कहकर वे चौदह राक्षस अनेक तरहके अस्त्र-शस्त्र लेकर, तलवारें लेकर श्रीरामजीकी ओर बड़े वेगसे दौड़े—

इत्येवमुक्त्वा संरब्धा राक्षसास्ते चतुर्दश।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा राममेवाभिदुद्रुवुः॥

(३। २०। १६)

श्रीरामजीने उनके ऊपर बाणोंका प्रहार किया। श्रीरामजीके तीखे बाणोंसे उनका वक्षःस्थल टूट गया—हृदय विदीर्ण हो गया। वे छिन्नमूल वृक्षोंकी तरह भूमिपर गिर पड़े और प्राणरहित हो गये—

तैर्भग्नहृदया भूमौ छिन्नमूला इव द्रुमाः॥
निपेतुः शोणितस्नाता विकृता विगतासवः।

(३। २०। २१-२२)

उनको मरा हुआ देखकर शूर्पणखा रोती हुई, वहाँसे भागती हुई—'**प्रधाविता शूर्पणखा पुनस्ततः**' खरके पास आकर सब समाचार सुना दिया। शूर्पणखा जमीनपर लेट गयी और त्रियाचरित्र करती हुई अनेक प्रकारसे विलाप करने लगी। खरने उसे आश्वासन दिया—मेरे ऐसे संरक्षकके रहते हुए तुम अनाथकी तरह क्यों विलाप कर रही हो? उठो! उठो!! इस तरह मत रोओ, अपनी व्याकुलताका परित्याग करो—

अनाथवद् विलपसि किं नु नाथो मयि स्थिते।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा मैवं वैक्लव्यं त्यज्यतामिति॥

(३। २१। ५)

शूर्पणखाने कहा—दण्डकारण्यमें आश्रम निर्माण करके निवास करनेवाले राम राक्षसोंके लिये कण्टक हैं। यदि तुम आज ही शत्रुघाती रामको नहीं मार डालोगे तो मैं तुम्हारे देखते-देखते अपना प्राण परित्याग कर दूँगी; क्योंकि मेरी लाज लुट चुकी है—

दण्डकारण्यनिलयं जहि राक्षसकण्टकम्।
यदि राममित्रघ्नं न त्वमद्य वधिष्यसि॥
तव चैवाग्रतः प्राणांस्त्यक्ष्यामि निरपत्रपा।

(३। २१। १५-१६)

शूर्पणखाद्वारा उत्तेजित होकर खरने अपने सेनानायक दूषणसे कहा—हे सौम्य! मेरे मनके अनुसार कार्य करनेवाले, युद्धमें कभी पीठ न दिखानेवाले भयङ्कर वेगशाली काले-काले बादलोंकी तरह काले और भयङ्कर शरीरवाले, लोगोंकी हिंसासे खेलनेवाले, युद्धमें उत्साहपूर्वक आगे

बढ़नेवाले चौदह हजार राक्षसोंको समरभूमिमें लड़नेके लिये भेजनेकी व्यवस्था करो—

अब्रवीद् दूषणं नाम खरः सेनापतिं तदा॥
चतुर्दश सहस्राणि मम चित्तानुवर्तिनाम्।
रक्षसां भीमवेगानां समरेष्वनिवर्तिनाम्॥
नीलजीमूतवर्णानां लोकहिंसाविहारिणाम्।
सर्वोद्योगमुदीर्णानां रक्षसां सौम्य कारय॥

(३। २२। ७—९)

इस प्रकार उत्तेजित होकर जब खरने युद्धके लिये प्रस्थान किया तब अनेक प्रकारके अपशकुन होने लगे। खरके रथमें जुते महावेगशाली घोड़े चौरस भूमिमें सड़कपर चलते-चलते सहसा गिर पड़े—

निपेतुस्तुरगास्तस्य रथयुक्ता महाजवाः।
समे पुष्पचिते देशे राजमार्गे यदृच्छया॥

(३। २३। २)

खरके ललाटमें व्यथा होने लगी फिर भी वह युद्धसे निवृत्त नहीं हुआ—

ललाटे च रुजो जाता न च मोहान्न्यवर्तत।

(३। २३। १८)

धाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा॥
नाना बाहन नानाकारा। नानायुध धर घोर अपारा॥
सूपनखा आगें करि लीनी। असुभ रूप श्रुति नासा हीनी॥
असगुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी॥

(३। १८। ४—७)

खरने कहा—मैं इन उत्पातोंकी चिन्ता नहीं करता हूँ। यदि मैं युद्धमें संक्रुद्ध हो जाऊँ तो मृत्युको भी मार सकता हूँ। आज अपने बलका अभिमान करनेवाले राम और उसके भाई लक्ष्मणको तीक्ष्ण बाणोंसे मारे बिना मैं पीछे नहीं लौटूँगा— '**अहत्वा सायकैस्तीक्ष्णैर्नोपावर्तितुमुत्सहे**'। उन दोनोंका रक्तपान करके मेरी बहन शूर्पणखा आज अपनी कामना पूर्ण कर लेगी। आजतक जितने भी युद्ध हुए हैं उनमें किसीमें भी मेरी कभी पराजय नहीं हुई है—

सकामा भगिनीमेऽस्तु पीत्वा तु रुधिरं तयोः।
न क्वचित् प्राप्तपूर्वो मे संयुगेषु पराजयः॥

(३। २३। २३)

राक्षसोंकी दारुण सेना युद्धकी अभिलाषासे श्रीरामजीके पास पहुँच गयी। इधर श्रीरामजी समझ गये कि अब राक्षसोंसे छेड़-छाड़ शुरू हो गयी है तो वे और भी बड़ी संख्यामें आयेंगे और उनसे युद्ध करना पड़ेगा। एतावता हमें अपनी सुरक्षाका प्रबन्ध कर लेना चाहिये। देखो, यदि शत्रु बलवान् हो तो अपनी सुरक्षाका प्रबन्ध करके ही उससे भिड़ना चाहिये। श्रीराम कहते हैं—हे लक्ष्मण! अपना मङ्गल चाहनेवाले विद्वान् पुरुषका कर्तव्य है कि आपत्तिकी आशंका होनेपर पहलेसे ही उससे बचनेकी युक्ति कर ले। हे सुमित्राकुमार! तुम हाथोंमें धनुष-बाण लेकर विदेहनन्दिनीको साथमें लेकर पर्वतकी कन्दरामें आश्रय ले लो—

अनागतविधानं तु कर्तव्यं शुभमिच्छता।
आपदं शङ्कमानेन पुरुषेण विपश्चिता॥
तस्माद् गृहीत्वा वैदेहीं शरपाणिर्धनुर्धरः।
गुहामाश्रय शैलस्य दुर्गां पादपसङ्कुलाम्॥

(३। २४। ११-१२)

धूरि पूरि नभ मंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा॥
लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर धनु पानी॥

(३। १८। १०—१२)

श्रीलक्ष्मणकुमारकी हार्दिक इच्छा थी कि श्रीसीतारामजी पर्वतकन्दरामें निश्चिन्त होकर चले जायँ, राक्षसोंसे मैं युद्ध कर लूँगा; परन्तु श्रीरामजीने कहा—हे लक्ष्मण! मैं नहीं चाहता कि तुम मेरे इस वचनका प्रत्याख्यान करो। हे वत्स! मैं अपने

चरणोंकी शपथ देकर कहता हूँ कि तुम शीघ्र सीताको लेकर पर्वतकी कन्दरामें जाओ। हे तात! तुम्हारी शूरता और बलवत्ता असंदिग्ध है; परन्तु मैं इन राक्षसोंको स्वयं एकाकी ही मारना चाहता हूँ—

प्रतिकूलितुमिच्छामि न हि वाक्यमिदं त्वया।
शापितो मम पादाभ्यां गम्यतां वत्स मा चिरम्॥
त्वं हि शूरश्च बलवान् हन्या एतान् न संशयः।
स्वयं निहन्तुमिच्छामि सर्वानेव निशाचरान्॥

(३। २४। १३, १४)

श्रीलक्ष्मणजीने श्रीरामजीकी आज्ञाका पालन किया। महान् बलवान् श्रीराम धनुर्वाण लेकर युद्धके लिये प्रस्तुत होकर खड़े हो गये। वीरेन्द्र मुकुटमणि श्रीराम धनुषकी प्रत्यञ्चाकी टङ्कारसे दिशाओंको आपूरित करने लगे—चारों ओर वही टङ्कारकी ध्वनि सुनायी पड़ने लगी—

स चापमुद्यम्य महच्छरानादाय वीर्यवान्।
सम्बभूवास्थितस्तत्र ज्यास्वनैः पूरयन् दिशः॥

(३। २४। १८)

देखि राम रिपुदल चलि आवा। बिहसि कठिन कोदंड चढ़ावा॥
कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बाँधत सोह क्यों।
मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों॥
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै॥

(३।१८।१३, छं०१८)

प्रभु कीन्हि धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा॥

(३। १९ छं०)

इस महान् युद्धका दर्शन करनेके लिये देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण अनेक प्रकारके ऋषि, ब्रह्मर्षि आदि सभी एकत्रित हो गये और श्रीरामजीकी मङ्गलाशंसा करने लगे। चौदह सहस्र राक्षस दूषणके सेनापतित्वमें चारों ओरसे श्रीरामपर प्रहार करने लगे—'**लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहुभाँति**'। श्रीरघुनाथजीके अङ्ग-अङ्गमें शस्त्रास्त्रोंकी चोटसे घाव हो गया। उनका शरीर रक्तसे भर गया—

स विद्धः क्षतजादिग्धः सर्वगात्रेषु राघवः॥

(३। २५। १४)

उस समय चौदह हजार राक्षसोंसे घिरे हुए अकेले श्रीरामको देखकर देवता, सिद्ध, गन्धर्व और महर्षि विषादग्रस्त हो गये। इसके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने संक्रुद्ध होकर समराङ्गणमें धनुषको आकर्षित करके मण्डलाकार कर लिया और उस धनुषसे सैकड़ों, सहस्रों तीखे बाणोंका प्रहार करने लगे। वे कालपाशके समान बाण राक्षसोंसे न सहे जाते थे और न वे उसे रोक ही पाते थे—

विषेदुर्देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः॥
एकं सहस्रैर्बहुभिस्तदा दृष्ट्वा समावृतम्।
ततो रामस्तु संक्रुद्धो मण्डलीकृतकार्मुकः॥
ससर्ज निशितान् बाणाञ्छतशोऽथ सहस्रशः।
दुरावारान् दुर्विषहान् कालपाशोपमान् रणे॥

(३। २५। १५—१७)

उस भयावह युद्धमें खरका सेनापति दूषण मारा गया। उसको भूमिमें पड़ा हुआ देखकर समस्त प्राणियोंने 'साधु-साधु' कहकर भगवान् श्रीरामका सम्मान किया—

दृष्ट्वा तं पतितं भूमौ दूषणं निहतं रणे।
साधु साध्विति काकुत्स्थं सर्वभूतान्यपूजयन्॥

(३। २६। १६)

यद्यपि श्रीरामजी पैदल थे, अकेले थे और मनुष्यरूपमें थे तथापि उन्होंने चौदह हजार भीमकर्मा राक्षसोंका वध कर दिया। केवल त्रिशिरा और खर दो ही महारथी वीर बच गये।

चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।
हतान्येकेन रामेण मानुषेण पदातिना॥

तस्य सैन्यस्य सर्वस्य खरः शेषो महारथः।
राक्षसस्त्रिशिराश्चैव रामश्च रिपुसूदनः॥

(३।२६।३५-३६)

इसके अनन्तर खर युद्ध करनेके लिये चला; परन्तु त्रिशिराने उसे प्रार्थनापूर्वक रोक दिया और श्रीरामके सामने आकर युद्ध करने लगा। परन्तु युद्धमें श्रीरामने तीन वेगशाली बाणोंके द्वारा त्रिशिराके सिरोंका उन्मूलन कर दिया—

शिरांस्यपातयत् त्रीणि वेगवद्भिस्त्रिभिः शरैः।

(३।२७।१८)

दूषण और त्रिशिराके मरनेके पश्चात् खर भयभीत तो हुआ; परन्तु उसने भयङ्कर समर किया। वीर चक्रचूडामणि श्रीरामचन्द्रजीने उसके धनुषको खण्डित कर दिया, रथको तोड़ दिया, घोड़ोंको मार गिराया और सारथीको भी समाप्त कर दिया। तदनन्तर खर हाथमें गदा लेकर रथसे कूदकर भूमिपर खड़ा हो गया—

प्रभग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
गदापाणिरवप्लुत्य तस्थौ भूमौ खरस्तदा॥

(३।२८।३२)

श्रीरामजीने कहा—हे राक्षस! जैसे विष मिला अन्न खानेसे उसका परिणाम सद्यः प्राप्त होता है, उसी प्रकार संसारमें किये गये पाप कर्मोंका फल भी जल्दी मिलता है।

नचिरात्प्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम्।
सविषाणामिवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचर॥

(३।२९।९)

श्रीरामजीकी नीतिकी बातोंको अनसुनी करके खरने भयङ्कर गदाको श्रीरामजीपर चलाया। श्रीरामने बाणोंके द्वारा उस गदाको आकाशमें ही टुकड़े-टुकड़े कर दिया। इसके पश्चात् श्रीरामने कहा—हे खर! अपनी बहनको सफेन खून पिलानेकी तुम्हारी प्रतिज्ञा तो सफल नहीं हुई, परन्तु मैं अपने बाणोंसे तेरे शरीरको विदीर्ण करके तेरा कण्ठ काट डालूँगा, फिर यह पृथ्वी फेन और बुद्बुदोंके सहित तुम्हारे रक्तका पान करेगी—

अद्य ते भिन्नकण्ठस्य फेनबुद्बुदभूषितम्।
विदारितस्य मद्बाणैर्मही पास्यति शोणितम्॥

(३।३०।६)

तदनन्तर श्रीरामजीने युद्धभूमिमें खरका वध करनेके लिये अग्निकी तरह बाण हाथमें लिया। जो दूसरे ब्रह्मदण्डकी तरह भयङ्कर था—

ततः पावकसंकाशं वधाय समरे शरम्।
खरस्य रामो जग्राह ब्रह्मदण्डमिवापरम्॥

(३।३०।२४)

उस बाणको धनुषपर चढ़ाकर छोड़ दिया। वह बाण खरके हृदयमें लगा। परिणामस्वरूप श्रीरामके उस बाणकी अग्निमें विनिर्दग्ध खर भूमिपर गिर पड़ा—

स पपात खरो भूमौ दह्यमानः शराग्निना।

(३।३०।२७)

खरकी मृत्युके बाद देवता चारणोंके साथ आये और हर्षमें भरकर दुन्दुभि बजाने लगे। श्रीरामके ऊपर चारों ओरसे पुष्पवर्षण करने लगे। चारों ओर प्रसन्नताका वातावरण हो गया—

एतस्मिन्नन्तरे देवाश्चारणैः सह सङ्गताः।
रामस्योपरि संहृष्टा ववर्षुर्विस्मितास्तदा।

(३।३०।२९-३०)

तदनन्तर राक्षससंघका जिन्होंने मर्दन कर डाला था, अमलात्मा महात्मा जिनकी महिमाका गान कर रहे थे, उन अपने प्राणधन, जीवनधन, प्राणवल्लभ श्रीरामको बारम्बार अपने हृदयसे लगा करके भगवती भास्वती श्रीसीताजीके मनमें अतिशय प्रसन्नता हुई। उनका कमलोपम मुखमण्डल आनन्दसे विकसित हो गया—

ततस्तु तं राक्षससंघमर्दनं सम्पूज्यमानं मुदितैर्महात्मभिः।

पुनः परिष्वज्य मुदान्वितानना बभूव हृष्टा जनकात्मजा तदा॥

(३। ३०। ४१)

तब लछिमन सीतहि लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए॥
सीता चितव स्याम मृदु गाता। परम प्रेम लोचन न अघाता॥

खर-दूषण-त्रिशिरा आदिके संहारके अनन्तर अकम्पन नामक राक्षसने रावणके पास आकर सब समाचार दिया—हे राजन्! जनस्थानमें—दण्डकारण्यमें जो अनेक राक्षस रहते थे, वे सब मारे गये। खर भी युद्धमें मारा गया। मैं किसी प्रकार जान बचाकर यहाँ आया हूँ—

जनस्थानस्थिता राजन् राक्षसा बहवो हताः।
खरश्च निहतः संख्ये कथञ्चिदहमागतः॥

(३। ३१। २)

'कथञ्चित्' का अर्थ श्रीगोविन्दराज लिखते हैं—**'कथञ्चिदिति स्त्रीवेष धारणेनेति भावः'**। अर्थात् मैंने स्त्रीवेष धारण कर लिया था। अतः बच गया। खर-दूषणादिका वध सुनकर रावण बौखला गया। वास्तवमें उसका एक प्रधान किला ही टूट गया था। उसने पूछा किसने मारा? क्रुद्ध रावणको देखकर, उसकी क्रुद्ध वाणी सुनकर अकम्पन प्रकम्पित हो गया। उसने कहा—मुझे अभयदान दें तो मैं सत्य-सत्य बात कहूँगा— **'भयात्संदिग्धया वाचा रावणं याचतेऽभयम्'** रावणसे अभयदान पानेपर अकम्पनने कहा—अयोध्यानरेश दशरथके पुत्र बड़े बलवान् हैं। उन्होंने ही खर-दूषणको मारा है—

हतस्तेन जनस्थाने खरश्च सहदूषणः॥

(३। ३१। ११)

हे राक्षसराज! रामबाणभयपीडित राक्षस जिस-जिस रास्तेसे भागते थे, वहाँ-वहाँ वे श्रीरामजीको ही अपने सामने खड़ा देखते थे, इस प्रकार श्रीरामजीने बिना किसीकी सहायताके ही जनस्थानका विनाश कर दिया—

सर्पाः पञ्चानना भूत्वा भक्षयन्ति स्म राक्षसान्।
येन येन च गच्छन्ति राक्षसा भयकर्षिताः॥
तेन तेन स्म पश्यन्ति राममेवाग्रतः स्थितम्।
इत्थं विनाशितं तेन जनस्थानं तवानघ॥

(३। ३१। १९-२०)

सुनकर रावणने राम-लक्ष्मणके मारनेका विचार किया—

अकम्पनवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत्।
गमिष्यामि जनस्थानं रामं हन्तुं सलक्ष्मणम्॥

(३। ३१। २१)

तब अकम्पनने कहा—हे दशग्रीव! आप समस्त राक्षसोंके समूहके साथ भी श्रीरामजीको जीतनेमें—स्वाधीन करनेमें समर्थ नहीं हैं। जैसे पापी प्राणी स्वर्गपर आधिपत्य प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकते हैं—

नहि रामो दशग्रीव शक्यो जेतुं रणे त्वया।
रक्षसां वापि लोकेन स्वर्गः पापजनैरिव॥

(३। ३१। २७)

हे रावण! रामके वधका एक ही उपाय है कि उनकी पत्नी सीताका तुम किसी उपायसे अपहरण कर लो। सीतासे वियुक्त होनेपर राम कभी भी जीवित नहीं रहेंगे—

तस्यापहर भार्यां त्वं तं प्रमथ्य महावने।
सीतया रहितो रामो न चैव हि भविष्यति॥

(३। ३१। ३१)

यह सुनकर रावण गधोंसे जुते रथपर चढ़कर मारीचके पास गया। मारीचने भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे उसका स्वागत किया—

मारीचेनार्चितो राजा भक्ष्यभोज्यैरमानुषैः॥

(३। ३१। ३६)

रावणने जनस्थानके विनाशकी कथा सुना करके कहा—हे मारीच! रामकी सुन्दरी स्त्रीका मैं अपहरण करना चाहता हूँ। आप मेरा इस

हरणमें साचिव्य—सहायता करें—

तस्य मे कुरु साचिव्यं तस्य भार्यापहारणे।

(३। ३१। ४१)

मारीचने कहा—हे रावण! हस्ती कई प्रकारके होते हैं। जिसकी गन्धको सूँघकर दूसरे हाथी और व्याघ्र आदि भाग जाते हैं, उसे गन्धहस्ती कहते हैं— **'यस्य गन्धं समाघ्रायान्ये गजा व्याघ्रादयः पलायन्ते स गन्धहस्ती'**। श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि गन्धहस्तीकी गन्धमात्रसे सिंह, हाथी, व्याघ्र, गेंड़े, सर्पाकार मृग, नाग, शरभ और चमरी आदि डरकर भाग जाते हैं—

यद् गन्धमात्राद्धरयो गजेन्द्रा
व्याघ्रादयो व्यालमृगाः सखड्गाः।
महोरगाश्चापि भयाद् द्रवन्ति
सगौरकृष्णाः शरभाश्चमर्यः॥

(श्रीमद्भागवत ८। २। २१)

मारीचने कहा—श्रीरामजी गन्धहस्ती हैं। विशुद्ध वंशमें जन्म ही राघवगन्धहस्तीका अग्रहस्त—श्रेष्ठ शुण्डादण्ड है, उनका तेज ही मद है और सुडौल भुजदण्ड ही दोनों दाँत हैं। हे रावण! युद्धमें उनकी ओर देखना भी युक्तियुक्त नहीं है फिर उनसे लड़नेकी तो चर्चा ही व्यर्थ है—

विशुद्धवंशाभिजनाग्रहस्त
तेजोमदः संस्थितदोर्विषाणः।
उदीक्षितुं रावण नेह युक्तः
स संयुगे राघवगन्धहस्ती॥

(३। ३१। ४६)

पुनः श्रीरामजीके पराक्रमका वर्णन करते हुए मारीच कहता है—श्रीरामजी मनुष्यके रूपमें सिंह हैं। वे विदग्धराक्षस—रणचतुर राक्षसरूप मृगोंका वध करनेवाले हैं। हे रावण! तुम उन सोते हुए सिंहको जगाकर अपना प्राण मत गँवाओ। श्रीरामजी महासागरकी भाँति हैं। हे राक्षसराज! उस बाणतरङ्गमाली राघवमहासमुद्रमें कूदना उचित नहीं है। मारीचकी युक्तियुक्त यथा न्यायवार्ताका रावणपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि सीताहरणका विचार छोड़कर लंका लौट गया— **'न्यवर्तत पुरीं लङ्कां विवेश च गृहोत्तमम्'॥**

इधर शूर्पणखाने जब देखा कि भीमकर्मा चतुर्दश सहस्र राक्षसोंको खर-दूषण और त्रिशिराको श्रीरामने बिना किसीकी सहायताके अपने पराक्रमसे मार गिराया तब वह मेघगर्जनाकी भाँति बड़े जोरसे क्रन्दन करने लगी—

ततः शूर्पणखा दृष्ट्वा सहस्राणि चतुर्दश।
हतान्येकेन रामेण रक्षसां भीमकर्मणाम्॥
दूषणं च खरं चैव हतं त्रिशिरसं रणे।
दृष्ट्वा पुनर्महानादान् ननाद जलदोपमा॥

(३। ३२। १-२)

अत्यन्त दीना—अपमानिता शूर्पणखा मन्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए लोकरावण रावणसे संक्रुद्ध होकर कठोर वाणीमें बोली—

ततः शूर्पणखा दीना रावणं लोकरावणम्।
अमात्यमध्ये संक्रुद्धा परुषं वाक्यमब्रवीत्॥

(३। ३३। १)

हे रावण! तुम्हारे देशमें क्या हो रहा है इसका तुमको परिज्ञान नहीं है, राजालोग अपने दूतोंके द्वारा दूर-दूरके समस्त कार्योंको जानते रहते हैं—देखते रहते हैं, इसीलिये उन्हें दीर्घ-चक्षुष्—दीर्घदर्शी कहते हैं—

यस्मात्पश्यन्ति दूरस्थान् सर्वानर्थान् नराधिपाः।
चारेण तस्मादुच्यन्ते राजानो दीर्घचक्षुषः॥

(३। ३३। १०)

हे रावण! तुमने राजमदमें अन्धे होकर देशकोषकी खबर लेनी ही छोड़ दी। तुम मदिरा पीकर दिन-रात सोते रहते हो। तुम्हें यह भी परिज्ञान नहीं है कि तुम्हारे मस्तकपर भयङ्कर शत्रुने आक्रमण कर दिया है—

बोली बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी॥

करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती॥

इसके बाद उसने खर-दूषणादिके वधका वृत्तान्त सुनाया और कहा—हे राक्षसराज! जो स्थूल आँखोंसे सोता है और नीतिके नयनोंसे सदा जाग्रत् रहता है। जिसका क्रोध और प्रसाद अव्यर्थ होता है—उसका फल प्रत्यक्ष ज्ञात होता है, उसी राजाका लोगोंके द्वारा सम्मान होता है—

नयनाभ्यां प्रसुप्तो वा जागर्ति नयचक्षुषा।
व्यक्तक्रोधप्रसादश्च स राजा पूज्यते जनैः॥

(३। ३३। २१)

शूर्पणखाकी बात सुनकर रावणने सङ्क्रुद्ध होकर पूछा—राम कौन है? उसका बल कैसा है? उसका रूप कैसा है? पराक्रम कैसा है? सुदुस्तर दण्डककाननमें उसने किस लिये प्रवेश किया? रामके पास ऐसा कौन-सा अस्त्र है जिसके द्वारा समस्त राक्षस मारे गये? हे मनोज्ञाङ्गि—हे सुन्दर अङ्गोंवाली शूर्पणखे! सही-सही बताओ, किसने तुम्हें कुरूप किया?—किसने तुम्हारी नाक और कान काट डाले हैं?

तत्त्वं ब्रूहि मनोज्ञाङ्गि केन त्वं च विरूपिता।

(३। ३४। ४)

तदनन्तर शूर्पणखाने श्रीरामका यथान्याय—यथार्थतः—तत्त्वतः परिचय देना आरम्भ किया। हे भ्रातः! श्रीरामजीकी जानुपर्यन्त लम्बिनी भुजाएँ हैं, उनकी बड़ी-बड़ी कमलकी तरह आँखें हैं, वे वल्कल और कृष्णमृगचर्म धारण करते हैं, उनका सौन्दर्य कन्दर्पके समान है और वे अयोध्यानरेश दशरथके पुत्र हैं—

ततो रामं यथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे।
दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः॥
कन्दर्पसमरूपश्च रामो दशरथात्मजः।

(३। ३४। ५-६)

हे रावण! खरके साथ युद्धभूमिमें मैं भी गयी थी। श्रीराम युद्धमें धनुषकी प्रत्यञ्चा कब खींचते हैं, घोर बाणोंको कब हाथमें लेते हैं और कब उन्हें छोड़ देते हैं, यह मैं नहीं देख पायी। हाँ, इतना तो मैंने अवश्य देखा कि उनके बाणोंकी वृष्टिसे राक्षसोंकी सेना मर रही है—

नाददानं शरान् घोरान् विमुञ्चन्तं महाबलम्॥
न कार्मुकं विकर्षन्तं रामं पश्यामि संयुगे।
हन्यमानं तु तत्सैन्यं पश्यामि शरवृष्टिभिः॥

(३। ३४। ७-८)

हे भैया! उनके भाई भी महान् तेजस्वी हैं। वे गुण और पराक्रममें रामके ही समान हैं। उनका नाम लक्ष्मण है। वे अपने भाईके प्रति अनुरागवान् हैं और भक्त हैं—उनकी सेवामें लगे रहते हैं। अमर्षी हैं—अपने बड़े भाई रामके अपराध करनेवालोंको क्षमा नहीं करते हैं—रामापराधाऽसहनशील हैं। दुर्जय और विजयी हैं, बुद्धिमान् और बलशाली हैं। श्रीरामजीके वे दक्षिणभुजा हैं तथा बहिश्चर प्राण हैं—

भ्राता चास्य महातेजा गुणतस्तुल्यविक्रमः।
अनुरक्तश्च भक्तश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान्॥
अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तो बुद्धिमान् बली।
रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिश्चरः॥

(३। ३४। १३-१४)

तदनन्तर शूर्पणखाने श्रीजनकनन्दिनीके परिचयमें उनके सुन्दर रूप, स्वभाव, गुण आदिका विस्तृत और यथार्थ वर्णन किया—

अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष सिंघ बन खेलन आए॥
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी॥
जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन। अभय भए बिचरत मुनि कानन॥
देखत बालक काल समाना। परम धीर धन्वी गुन नाना॥
अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता। खल बध रत सुर मुनि सुखदाता॥
सोभा धाम राम अस नामा। तिन्ह के संग नारि एक स्यामा॥
रूप रासि बिधि नारि सँवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी॥

(श्रीरामचरितमानस, अरण्यकाण्ड २२। ३—९)

श्रीसीताजीके स्वरूपका वर्णन करते हुए

उसने मिथ्या भाषण भी किया कि मैं उस सुन्दरीको जब तुम्हारी पत्नी बनानेके लिये प्रयत्नशील हुई तब क्रूर लक्ष्मणने मुझे विरूपा कर दिया—

तां तु विस्तीर्णजघनां पीनोत्तुङ्गपयोधराम्।
भार्यार्थे तु तवानेतुमुद्यताहं वराननाम्॥
विरूपितास्मि क्रूरेण लक्ष्मणेन महाभुज।

(३। ३४। २१-२२)

शूर्पणखाने यह भी कहा कि यदि तुम सीताको अपनी पत्नी बनाना चाहते हो तो शीघ्र ही रामको जीतनेके लिये अपना दक्षिण चरण आगे बढ़ाओ—

यदि तस्यामभिप्रायो भार्यात्वे तव जायते।
शीघ्रमुद्ध्रियतां पादो जयार्थमिह दक्षिणः॥

(३। ३४। २३)

शूर्पणखाकी उत्तेजित बात सुनकर श्रीसीताजीके सौन्दर्यकी चर्चा सुनकर रावणने विचार करके सीताहरणका निश्चय करके सारथिको आज्ञा दी कि रथ तैयार करो। रथपर चढ़कर मारीचके पास गया। मारीच शरीरपर कृष्णमृगचर्म धारण करता था, मस्तकपर जटामण्डल धारण करता था और संयमित आहार करता था—

तत्र कृष्णाजिनधरं जटामण्डलधारिणम्।
ददर्श नियताहारं मारीचं नाम राक्षसम्॥

(३। ३५। ३८)

मारीचने रावणका यथाविधि आतिथ्य-सत्कार करके पूछा—हे राजन्! किस कार्यके लिये इतनी जल्दी यहाँ पुनः आये हो?

करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन ब्यग्र अति अकसर आयहु तात॥

(श्रीरामचरितमानस ३। २४)

रावणने कहा—हे तात मारीच! मेरी बात ध्यानसे सुनो। मैं इस समय आर्त्त हूँ—दुःखी हूँ और मुझ आर्त्तके तुम ही एक परम आश्रय हो—

मारीच श्रूयतां तात वचनं मम भाषतः।
आर्तोऽस्मि मम चार्तस्य भवान् हि परमा गतिः॥

(३। ३६। १)

रावणने पुनः कहा—जनस्थानके खर आदि सभी राक्षसोंको रामने बड़ी गम्भीरतासे समाप्त कर दिया। राम मुखसे कुछ कठोर शब्द नहीं बोलते थे। वे केवल धनुषके साथ बाणोंका व्यापार करते थे—

अनुक्त्वा परुषं किञ्चिच्छरैर्व्यापारितं धनुः।

(३। ३६। ८)

अब मैं प्रतिशोध लेनेके लिये उनकी पत्नीका अपहरण करना चाहता हूँ। तुम सौवर्णमृग बनकर मेरा कार्य सम्पन्न करो। मारीचने कहा—हे राजन्! स्वामीके हिताहितकी चिन्ता न करके तत्काल उसके सन्तोषके लिये मधुर बोलनेवाले सर्वत्र मिलते हैं। परन्तु तत्काल भले ही अप्रिय लगे कालान्तरमें मङ्गलोदर्क हो इस प्रकारकी वाणी बोलनेवाले दुर्लभ हैं, यदि ऐसे वक्ता मिल भी जायँ तो श्रोता दुर्लभ हैं—

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥

(३। ३७। २)

हे रावण! श्रीराम तो धर्मके साक्षात् विग्रह हैं। साधु हैं—सर्वोपकारनिरत हैं और सत्य-पराक्रम हैं—

रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः।

(३। ३७। १३)

हे रावण! श्रीराम तो जाज्वल्यमान अग्निके समान हैं। उनका बाण ही अग्निकी ज्वाला है। धनुष और खड्ग ही उसके लिये ईंधनका काम करते हैं। तुम्हें युद्धके लिये सहसा उस अग्निमें प्रवेश नहीं करना चाहिये—

शरार्चिषमनाधृष्यं चापखड्गेन्धनं रणे।

रामाग्निं सहसा दीप्तं न प्रवेष्टुं त्वमर्हसि॥

(३। ३७। १५)

हे रावण! यदि तुम अपने जीवनका, सुखका और सुदुर्लभ राज्यका बहुत दिवसतक भोग करना चाहते हो तो श्रीरामका अपराध न करो—

जीवितं च सुखं चैव राज्यं चैव सुदुर्लभम्।
यदीच्छसि चिरं भोक्तुं मा कृथा रामविप्रियम्॥

(३। ३७। २२)

हे राक्षसराज! मैं मुनि विश्वामित्रके यज्ञमें विघ्न करता था। मुनि श्रीदशरथसे याचना करके श्रीरामको ले आये। उस समय श्रीरामकी किशोरावस्था थी। मैं उनके पराक्रमको नहीं जानता था। मैंने सोचा कि यह बालक मेरा क्या कर लेगा। हे रावण! मैं रामजीकी परवाह न करके शीघ्रतासे विश्वामित्रके यज्ञकी वेदीकी ओर दौड़ा। श्रीरामने शत्रुसंहारक तीखा बाण छोड़ा, परन्तु उस बाणसे मैं मरा नहीं, सौ योजन दूर समुद्रमें आकर गिर पड़ा—

अवजानन्नहं मोहाद् बालोऽयमिति राघवम्।
विश्वामित्रस्य तां वेदिमभ्यधावं कृतत्वरः॥
तेन मुक्तस्ततो बाणः शितः शत्रुनिबर्हणः।
तेनाहं ताडितः क्षिप्तः समुद्रे शतयोजने॥

(३। ३८। १८-१९)

मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा॥
सत जोजन आयउँ छन माहीं। तिन्ह सन बयरु किएँ भल नाहीं॥

हे रावण! यहाँ आनेके पश्चात् भी मैं श्रीरामके प्रति विरोधी भावना रखता था। एक दिन मैं दो मृगरूपधारी राक्षसोंके साथ श्रीरामसे प्रतिशोध लेनेके लिये—श्रीरामको मारनेके लिये दण्डकारण्यमें गया। श्रीरामने तीन बाण छोड़े, मैं तो किसी प्रकार भागकर बच गया; परन्तु मेरे साथी वे दोनों राक्षस मारे गये। इस बार श्रीरामके बाणसे छुटकारा पाकर मुझे नवजीवन मिल गया तबसे मैं समस्त दुष्कर्मोंका परित्याग करके समाहितचित्त होकर योगाभ्यास और तपस्या—कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतमें ही लगा रहता हूँ—

शरेण मुक्तो रामस्य कथंचित् प्राप्य जीवितम्।
इह प्रव्राजितो युक्तस्तापसोऽहं समाहितः॥

(३। ३९। १४)

हे रावण! अब तो मैं एक-एक वृक्षमें अर्थात् कण-कणमें वल्कल वस्त्र और कृष्ण मृगचर्म धारण किये हुए, हाथमें धनुष-बाण लिये हुए श्रीरामका ही दर्शन करता हूँ—

वृक्षे वृक्षे हि पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम्।
गृहीतधनुषं रामं पाशहस्तमिवान्तकम्॥

(३। ३९। १५)

भइ मम कीट भृंग की नाई। जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई॥

मारीचका उपदेश यद्यपि बहुत सुन्दर था, मननीय था; परन्तु जैसे मुमूर्षु पुरुष औषधि-सेवन नहीं करता उसी प्रकार रावणने उसकी बात नहीं मानी—

मारीचस्य तु तद् वाक्यं क्षमं युक्तं च रावणः।
उक्तो न प्रतिजग्राह मर्तुकाम इवौषधम्॥

(३। ४०। १)

रावणने कहा—अरे राक्षस! मैं तो तुम्हारा अभ्यागत हूँ परन्तु तुम अपने दौरात्म्यके कारण ऐसी कठोर बातें कह रहे हो। मैं तुमसे अपने चिन्तित कार्यका गुण-दोष नहीं पूछ रहा हूँ और न आत्मकल्याणकी बात जानना चाहता हूँ—

अभ्यागतं तु दौरात्म्यात् परुषं वदसीदृशम्।
गुणदोषौ न पृच्छामि क्षेमं चात्मनि राक्षस॥

(३। ४०। १५)

यदि तुम मेरे कथनानुसार कार्य नहीं करोगे—सौवर्णमृगका रूप धारण करके रामकी प्रवञ्चना नहीं करोगे तो मैं तुम्हें अभी मार डालूँगा—

नो चेत् करोषि मारीच हन्मि त्वामहमद्य वै।

(३। ४०। २६)

गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा॥

इसके बाद भी मारीचने रावणको एक सर्गमें—बीस श्लोकोंमें कल्याणी, शिक्षा दी है। हे राक्षसराज! श्रीरामचन्द्रजी मुझे मारकर तुम्हारा भी जल्दी ही वध कर देंगे। श्रीरामजीके हाथसे मरकर मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा—

मां निहत्य तु रामोऽसावचिरात् त्वां वधिष्यति।
अनेन कृतकृत्योऽस्मि म्रिये चाप्यरिणा हतः॥

(३।४१।१७)

श्रीविश्वामित्रके यज्ञसंरक्षण प्रसङ्गसे लेकर चौदह सहस्र राक्षसों और खर-दूषण-त्रिशिरावधपर्यन्त श्रीरामजीके दिव्य अतिमानुष चरित्रका पुनः-पुनः अनुसन्धान करनेसे श्रीरामजीकी महती महिमाकी स्फूर्ति—अभिव्यक्ति मारीचके मन, बुद्धि और प्राणमें हो गयी। एतावता उसने श्रीरामजीको परमपुरुष निश्चय कर लिया और यह भी सोच लिया कि श्रीरामजीके हाथसे मरना ही परम पुरुषार्थ है। श्रीनृसिंहपुराणमें कहा गया है कि मारीच सोचता है कि श्रीरामसे भी मरना है और रावणसे भी मरना है परन्तु दोनों प्रकारकी मृत्युमें श्रीरामसे ही मरना श्रेष्ठ है। '**तवारिणा रामेण हतो म्रिये इति यत् अनेन हेतुना कृतकृत्योऽस्मि विश्वामित्रयागसंरक्षणप्रभृति खरादिवधान्तातिमानुषचारित्रानुस्मृतिकृताऽसाधारण-महिमस्फूर्त्या राघवं परमपुरुषं निश्चितवतो मम तत् करप्रापितमरणस्य परमपुरुषार्थत्वादिति भावः**'। तथोक्तं नृसिंहपुराणे—

'रामादपि हि मर्त्तव्यं मर्तव्यं रावणादपि।
उभयोरपि मर्तव्ये वरं रामान्नरावणात्॥'

इति (श्रीगोविन्दराज)

इस प्रकार मारीचने रावणको अनेक प्रकार-से समझाया, परन्तु जब वह नहीं माना क्योंकि वह कालके द्वारा प्रेरित था—'**रावणः काल-चोदितः**'। तब मारीचने कहा—मैं कर ही क्या सकता हूँ? लो, यह मैं चलता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो—

किं नु कर्तुं मया शक्यमेवं त्वयि दुरात्मनि।
एष गच्छाम्यहं तात स्वस्ति तेऽस्तु निशाचर॥

(३।४२।४)

अब तो मारीचकी विवशताजन्य स्वीकृतिको सुनकर रावण प्रसन्न हो गया। उसने उसको हृदयसे लगा लिया। रावणने कहा—इस समय तुम असली मारीच हो। इसके पूर्व तुममें किसी अन्य राक्षसका प्रवेश हो गया था—

इदानीमसि मारीचः पूर्वमन्यो हि राक्षसः॥

(३।४२।६)

रावणने कहा—हे मारीच! तुम्हारा बस, एक ही कार्य है, तुम किसी प्रकार सीताको प्रलुब्ध कर दो बस, उसके बाद तुम चले जाना। जब वे दोनों तपस्वी आश्रमसे चले जायँगे तब सूने आश्रमसे मैं सीताको हठात् ले आऊँगा—

प्रलोभयित्वा वैदेहीं यथेष्टं गन्तुमर्हसि।
तां शून्ये प्रसभं सीतामानयिष्यामि मैथिलीम्॥

(३।४२।८)

इस प्रकार बात करके मारीच रावणके साथ चला।

इस प्रसङ्गपर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीका श्रीरामचरितमानसमें अनुपम और भावपूर्ण शब्दचित्र है। श्रीरामजीके बाणोंसे अपना मरना निश्चय करके जब मारीच चला तब भावुक महाकविने मारीचका एक लम्बा—नौ अक्षरोंका अभिनव नामकरण कर दिया—'**रामपदप्रेम अभंगा**'। इसी नामकरणके अनुसार मारीचकी अभिलाषा भी है—

मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही॥

निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं॥
निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति अबसहि बसकरी।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी॥
मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन॥

(श्रीरामचरितमानस ३।२६।३, छं० २६ दो० २६)

श्रीरामचरणोंका अभङ्ग प्रेम—मारीच अपने परमप्रियतम श्रीरामका दर्शन किस प्रकार करना चाहता है, वह सोचता है—श्रीरामजी मेरा पीछा पकड़कर मुझे पकड़नेके लिये हाथोंमें धनुष-बाण लेकर दौड़े। मैं मुड़-मुड़कर उनके लोकविमोहन स्वरूपकी झाँकी करूँगा। दौड़नेके परिश्रमके कारण मेरे प्रियतमके मस्तकपर श्रमसीकर—स्वेद-बिन्दु होंगे। हाथोंमें सज्जधनुष और बाण होगा। मैं मुड़-मुड़कर इस अनोखी बाँकी-झाँकीका दर्शनानन्द लूँगा। आज मेरा भाग्य त्रैलोक्यमें सबसे बढ़ गया है— '**धन्य न मो सम आन**', क्योंकि सब लोग दौड़ते हैं श्रीरामके पीछे और श्रीराम दौड़ेंगे मेरे पीछे। श्रीगोस्वामीजीने श्रीगीतावली रामायणमें भी लगभग तीन पदोंमें भावपूर्ण चित्रण किया है। उनमें केवल चार पंक्तियाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ—

प्रिया-बचन सुनि बिहँसि प्रेमबस गवहिं चाप-सर लीन्हें।
चल्यो भाजि, फिरि फिरि चितवत मुनिमख-रखवारे चीन्हें॥
सोहति मधुर मनोहर मूरति हेम-हरिनके पाछे।
धावनि, नवनि, बिलोकनि, बिथकनि बसै तुलसी उर आछे॥

(३।३)

रावणकी प्रेरणासे मारीच मृग बनकर श्रीरामके आश्रमके द्वारपर विचरण करने लगा—

मृगो भूत्वाऽऽश्रमद्वारि रामस्य विचचार ह।

(३।४२।१५)

मृगरूप धारण करनेवाले मारीचके मनमें केवल एक इच्छा थी कि किसी तरह श्रीसीताकी दृष्टि मुझपर पड़े— '**सीतादर्शनमाकाङ्क्षन् राक्षसो मृगतां गतः**'। वनमें विचरनेवाले अन्य वास्तविक वनमृगोंको बड़ा आश्चर्य था कि ऐसा मृग तो हमने कभी देखा नहीं। वे सब वनमृग कौतूहलवश उस मायामृगके पास आते थे और उसे सूँघ करके जान जाते थे कि यह वास्तविक मृग नहीं है—मायामृग है। इस बनावटी मृगके द्वारा हमारा अनहित भी हो सकता है, अतः वे सब वनमृग दसों दिशाओंमें भाग जाते थे—

समुद्वीक्ष्य च सर्वे तं मृगा येऽन्ये वनेचराः॥
उपगम्य समाघ्राय विद्रवन्ति दिशो दश।

(३।४२।२८-२९)

विशुद्ध स्वर्णकी तरह कान्तिमती, अनिन्दिताङ्गी श्रीसीताजी उस सुवर्णमृगको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं। वे अत्यन्त कुतूहलसे श्रीरामजीको और श्रीलक्ष्मणजीको बुलाने लगीं। वे बार-बार दोनों भाइयोंको बुलातीं और उस मृगको भली-भाँति देखने लगतीं। फिर कहतीं—हे आर्यपुत्र! अपने छोटे भाईके साथ आयुध लेकर शीघ्र पधारिये—

प्रहृष्टा चानवद्याङ्गी मृष्टहाटकवर्णिनी।
भर्तारमपि चक्रन्द लक्ष्मणं चैव सायुधम्॥
आहूयाहूय च पुनस्तं मृगं साधु वीक्षते।
आगच्छागच्छ शीघ्रं वै आर्यपुत्र सहानुज॥

(३।४३।२-३)

श्रीराम-लक्ष्मणने आकर उस मृगको देखा। उसको देखकर ही श्रीलखनने लख लिया। उनका मन शङ्कमान हो गया। उन्होंने कहा—हे स्वामी! मेरी दृष्टिमें तो यह मारीच राक्षस मृगका रूप धारण करके आया है; क्योंकि हे राघवेन्द्र! इस जगतीतलपर कहीं भी ऐसा विचित्र रत्नजटित-मृग आजतक उत्पन्न नहीं हुआ है।

एतावता हे जगतीनाथ! यह राक्षसीमाया है, इसमें संशय नहीं है—

मृगो ह्येवंविधो रत्नविचित्रो नास्ति राघव।
जगत्यां जगतीनाथ मायैषा हि न संशयः॥

(३। ४३। ८)

श्रीसीताजीकी चेतनाशक्तिको राक्षसके छलने हरण कर लिया था, अतः वे श्रीलक्ष्मणको रोककर बोलीं—हे आर्यपुत्र! इस अभिराम मृगने मेरा मन हरण कर लिया है; अतः हे महाबाहो! इसे ले आइये। यह हमलोगोंकी क्रीड़ाका—मन बहलानेका साधन होगा—

आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः।
आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति॥

(३। ४३। १०)

हे स्वामी! आजके पूर्व मैंने ऐसा कान्तिमान्, सौम्य, श्रेष्ठ मृग कभी नहीं देखा है। हे प्राणप्रियतम! इसका रूप अद्‌भुत है। इसके अङ्गकी शोभा भी अपूर्व है। इसकी स्वरसम्पत्ति—वाणी भी अति मधुर है। हे स्वामी! यह अनोखा मृग सर्वाङ्ग विचित्र है। यह मेरे मनको बरबस मोह रहा है।—

अहो रूपमहो लक्ष्मीः स्वरसम्पच्च शोभना।
मृगोऽद्‌भुतो विचित्राङ्गो हृदयं हरतीव मे॥

(३। ४३। १५)

हे प्रभो! अब कुछ दिनोंके पश्चात् हमारे वनवासका समय पूर्ण हो जायगा। हमलोग श्रीअयोध्याजी चलेंगे। इस मृगको भी ले चलेंगे। यह हमारे वनवासकी सौगातके रूपमें होगा। इसे देखकर मेरी सास माता कौसल्याजी और मेरे भावुक देवर भरतजी अवश्य प्रसन्न होंगे। इन लोगोंके भी मनमें इस विचित्र रत्नमय मृगको देखकर अवश्य विस्मय होगा। हे नरशार्दूल! यदि यह मृग जीवित न पकड़ा जा सके तो इसका मृगचर्म भी बहुत सुन्दर होगा—

समाप्तवनवासानां राज्यस्थानां च नः पुनः।
अन्तःपुरे विभूषार्थो मृग एष भविष्यति॥
भरतस्यार्यपुत्रस्य श्वश्रूणां मम च प्रभो।
मृगरूपमिदं दिव्यं विस्मयं जनयिष्यति॥
जीवन्न यदि तेऽभ्येति ग्रहणं मृगसत्तमः।
अजिनं नरशार्दूल रुचिरं तु भविष्यति॥

(३। ४३। १७—१९)

हे प्राणेश्वर! यद्यपि अपने स्वार्थसे प्रेरित होकर अपने पतिको किसी भी कार्यके लिये आज्ञा देना घोर स्वेच्छाचार है। यह आज्ञा देना पतिव्रता स्त्रियोंके लिये असदृश—अनुचित है तथापि इस मृगकी सौन्दर्यसम्पत्तिने मेरे हृदयमें विस्मय उत्पन्न कर दिया है। इसलिये मैंने इसके लिये आपको प्रेरित किया है। हे क्षमासागर! मेरे इस अनुचित कार्यके लिये मुझे क्षमा कर दें।—**'अनेन पूर्वमानयेति प्रमादादुक्तस्य क्षमापणं कृतम्। आनयेति वक्तुमपि अयुक्तं अतः तवापि कुतूहलमस्ति चेत् तथा क्रियतामिति भावः'** (श्रीगोविन्दराज)।

सर्वान्तर्यामी, सर्वान्तदर्शी, सर्वज्ञ श्रीरघुनन्दनने श्रीलक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण! जैसा तुम कह रहे हो कि यह मारीच राक्षस है, मृग नहीं है, राक्षसीमाया है, तो भी उसका वध करना मेरा कर्तव्य है—

यदि वायं तथा यन्मां भवेद् वदसि लक्ष्मण।
मायैषा राक्षसस्येति कर्तव्योऽस्य वधो मया॥

(३। ४३। ३८)

हे सुमित्रानन्दन! मैं जा रहा हूँ इस मृगको पकड़कर लाऊँगा अथवा मारकर ही आऊँगा। तुम सन्नद्ध हो जाओ—तैयार हो जाओ। किं वा, कवच आदिसे अपनेको सुसज्जित कर लो और यन्त्रित होकर—प्रयत्नपूर्वक मिथिलेशनन्दिनीकी रक्षा करो—

इह त्वं भव संनद्धो यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम्॥

(३। ४३। ४६)

प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई॥
सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥

श्रीरामजीको देखकर मायामृग भाग चला और प्रभु उसका पीछा पकड़कर दौड़ने लगे। वह मृग कभी प्रकट हो जाता था और कभी छिप जाता था। इस प्रकार छल करता हुआ वह मारीच—मायामृग श्रीरामजीको आश्रमसे बहुत दूर खींच ले गया—

दर्शनाऽदर्शनेनैव सोऽपाकर्षत राघवम्।
स दूरमाश्रमस्यास्य मारीचो मृगतां गतः॥

(३। ४४। ८)

श्रीरामजीके मायामृगके पीछे दौड़नेकी झाँकीका भक्तोंने बड़ा आस्वादन किया है। भगवान् श्रीवेदव्यासजी श्रीमद्भागवतमें भी इस दौड़नेकी झाँकीका स्मरण करते हैं—

'मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्'।

भावुक महाकवि श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसमें लिखा है—

प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी॥
निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछें सो धावा॥
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छपाई॥
प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी॥

श्रीरामजीने सर्पकी तरह फुफकारते हुए विशिष्ट बाणसे मायामृगके शरीरको चीरकर उसके हृदयको विदीर्ण कर दिया—

शरीरं मृगरूपस्य विनिर्भिद्य शरोत्तमः॥
मारीचस्यैव हृदयं बिभेदाशनिसन्निभः।

(३। ४४। १५-१६)

मरते समय मारीचने मृगशरीरका परित्याग कर दिया।

म्रियमाणस्तु मारीचो जहौ तां कृत्रिमां तनुम्॥

(३। ४४। १७)

मरते समय मारीचने श्रीरामजीके समान-स्वरमें—'हा सीते! हा लक्ष्मण!' कहकर पुकारा।

सदृशं राघवस्येव हा सीते लक्ष्मणेति च।

(३। ४४। १९)

मरते समय मारीचका शरीर बहुत बड़ा एवं भयङ्कर हो गया था। उसको देखकर श्रीरामने सोचा—मेरे लक्ष्मणने ठीक ही कहा था। यह तो वास्तवमें मारीचकी माया ही थी। आज मेरे द्वारा यह मारीच राक्षस मारा गया—

मारीचस्य तु मायैषा पूर्वोक्तं लक्ष्मणेन तु।
तत् तथा ह्यभवच्चाद्य मारीचोऽयं मया हतः॥

(३। ४४। २३)

प्रभु सोचने लगे—इसके मुखसे जो अन्तमें मेरी ही आवाजमें 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' यह शब्द निकला है, उसे सुनकर उन दोनोंकी—सीता, लक्ष्मणकी क्या स्थिति होगी? वहाँसे रामजी अत्यन्त आतुर होकर अपने आश्रमकी ओर चल पड़े—

त्वरमाणो जनस्थानं ससाराभिमुखं तदा॥

(३। ४४। २७)

श्रीसीताजी आर्त्तस्वरको श्रीरामजीका आर्त्तनाद समझकर श्रीलक्ष्मणसे बोलीं—हे लक्ष्मण! जल्दी जाकर मेरे प्रभु कैसे हैं? यह ज्ञात करो—

आर्तस्वरं तु तं भर्तुर्विज्ञाय सदृशं वने।
उवाच लक्ष्मणं सीता गच्छ जानीहि राघवम्॥

(३। ४५। १)

श्रीरामजीकी आज्ञाको महत्त्वपूर्ण मानकर श्रीलक्ष्मणजी नहीं गये— **'न जगाम तथोक्तस्तु भ्रातुराज्ञाय शासनम्'** इसपर श्रीसीता क्षुब्ध हो गयीं और उन्होंने कहा—हे सौमित्रे! तुम तो मित्रके रूपमें अपने भ्राताके शत्रु ही ज्ञात होते हो।

तमुवाच ततस्तत्र क्षुभिता जनकात्मजा।

सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत्॥

(३। ४५। ५)

श्रीलक्ष्मणने विनयपूर्वक उत्तर दिया—हे देवि! देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पक्षी, राक्षस, पिशाच, किन्नर, मृग और दानव इनमें इस प्रकारका कोई वीर नहीं है जो श्रीरामसे युद्ध कर सके। हे मातः! भगवान् श्रीराम युद्धमें सर्वथा अवध्य हैं अतः आपको इस प्रकार अशुभ बात नहीं कहनी चाहिये—

अवध्यः समरे रामो नैवं त्वं वक्तुमर्हसि॥

(३। ४५। १३)

आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता॥
जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहसि कहा सुनु माता॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई॥

श्रीरामजीके न रहनेपर इस वनमें मैं आपको असहाय नहीं छोड़ सकता। श्रीरामजी उस मृगका वध करके शीघ्र ही आ जायँगे। हे देवि! यह आर्त्तनाद तो उस राक्षसकी माया है, श्रीरामजीकी वाणी नहीं है। इतना समझानेके पश्चात् भी श्रीसीताजी शान्त तो हुईं नहीं अपितु वे तो आगबबूला हो गयीं। उनके नेत्र रक्त हो गये। उन्होंने श्रीलक्ष्मणके प्रति ऐसी वाणीका प्रयोग किया है कि उसका वर्णन करनेमें हमें सङ्कोच होता है। भक्तकवि श्रीतुलसीदासजी तो श्रीरामचरितमानसमें केवल—'**मरम बचन जब सीता बोला**' कहकर आगे बढ़ गये। श्रीजानकीजीने अतिशय कठोर कहा है। उनका सम्बोधन सुन लो—'**अनार्याकरुणारम्भ नृशंस कुलपांसन**' इन कठोर वचनोंको सुनकर श्रीलक्ष्मणके रोंगटे खड़े हो गये। परन्तु धन्य हैं श्रीलक्ष्मण! उन्होंने अपना धैर्य नहीं खोया। श्रीवाल्मीकिजीने गद्गद होकर उन्हें '**जितेन्द्रियः**' विशेषण दिया है। श्रीलक्ष्मणने बद्धाञ्जलि होकर कहा—हे देवि! मैं आपकी बातका उत्तर नहीं दे सकता, क्योंकि आप मेरी स्वामिनी हैं—

अब्रवील्लक्ष्मणः सीतां प्राञ्जलिः स जितेन्द्रियः।
उत्तरं नोत्सहे वक्तुं दैवतं भवती मम॥

(३। ४५। २८)

श्रीलक्ष्मणने कहा—हे सुमुखि! अब मैं आपकी इच्छाके अनुसार वहीं जाता हूँ, जहाँ ककुत्स्थकुलके आभूषणस्वरूप श्रीरामजी गये हैं। आपका मङ्गल हो। इस वनके समस्त देवता आपकी रक्षा करें—

गच्छामि यत्र काकुत्स्थः स्वस्ति तेऽस्तु वरानने॥
रक्षन्तु त्वां विशालाक्षि समग्रा वनदेवताः।

(३। ४५। ३३-३४)

इस श्लोकमें 'वरानने' का भाव यह है कि यद्यपि आपने मेरे प्रति दुर्वचनोंका प्रयोग किया है परन्तु आप मेरी माता हैं, इसलिये मेरी उन वचनोंके प्रति अन्यथा भावना नहीं है। मैं तो यह समझता हूँ कि आप जो कुछ कहेंगी वह मेरे कल्याणके लिये ही कहेंगी। इसी प्रकार 'विशालाक्षि' का भाव है कि हे मातः! आप मेरे ऊपर कृपादृष्टि बनाये रखें। श्रीलक्ष्मणने कहा—हे देवि! इस समय मेरे सामने भयावह अपशकुन व्यक्त हो रहे हैं, उन घोर अपशकुनोंने मेरे मनमें शङ्का उत्पन्न कर दी है कि जब मैं श्रीरामके साथ लौटकर आऊँगा तब इस आश्रममें आपके दर्शन कर सकूँगा?

निमित्तानि हि घोराणि यानि प्रादुर्भवन्ति मे।
अपि त्वां सह रामेण पश्येयं पुनरागतः॥

(३। ४५। ३४)

श्रीसीताजीने कहा—हे लक्ष्मण! मैं श्रीरामजीसे वियुक्त हो जानेपर गोदावरी नदीमें प्रवेश कर जाऊँगी अथवा कण्ठमें बन्धन लगाकर फाँसी लगा लूँगी किं वा, दुर्गम पर्वतशिखरपर चढ़कर

वहाँसे कूद पड़ूँगी किं वा, अत्यन्त तीक्ष्ण विषका पान कर लूँगी अथवा, अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगी, परन्तु श्रीरामके अतिरिक्त किसी अन्य पुरुषका स्पर्श भी न करूँगी—

गोदावरीं प्रवेक्ष्यामि हीना रामेण लक्ष्मण।
आबन्धिष्येऽथवा त्यक्ष्ये विषमे देहमात्मनः॥
पिबामि वा विषं तीक्ष्णं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्।
न त्वहं राघवादन्यं कदापि पुरुषं स्पृशे॥

(३। ४५। ३६-३७)

'प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्' इस पदका आधार लेकर तिलकटीकाकारने कूर्मपुराणके अनुसार भाव स्पष्ट किया है। **'सर्वथा कर्तव्यमर्थमाह—प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्। अतएवात्र वा शब्दानुक्तिः। अनेन साक्षाद् रावणगृहं न गमिष्यामि किन्तु अहं स्वरूपेणाग्नौ स्थित्वा माययैव तद्धस्तं गमिष्यामीति ध्वनितम्। तदुक्तं कूर्मपुराणे—रामस्य सुभगां भार्यां रावणो राक्षसेश्वरः। सीतां विशालनयनां चकमे कालनोदितः॥ गृहीत्वा मायया वेषं चरन्तीं विजने वने। समाहर्तुं मनश्चक्रे तापसः किल कामिनीम्॥ विज्ञाय स च तद् भावं स्मृत्वा दाशरथिं पतिम्।' तद् भावम् लङ्कायामेव हृदि कृतं तापसो भूत्वा हरिष्यामीति भावमित्यर्थः। 'जगाम शरणं वह्निमावसथ्यं शुचिस्मिता॥ प्रपद्ये पावकं देवं साक्षिणं विश्वतोमुखम्। आत्मानं दीप्तवपुषं सर्वभूतहृदिस्थितम्॥'** इत्यादि **अष्ट श्लोकानुक्त्वा 'इति वह्न्यष्टकं जप्त्वा रामपत्नी यशस्विनी। ध्यायन्ती मनसा तस्थौ राममुन्मीलितेक्षणा॥ अथावसथ्याद् भगवान् हव्यवाहो महेश्वरः। आविरासीत् सुदीप्तात्मा तेजसा निर्दहन्निव॥ सृष्ट्वा मायामयीं सीतां स रावणवधेच्छया। सीतामादाय रामेष्टां पावकोऽन्तरधीयत॥'** अर्थात् **'प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्'** का भाव यह है कि श्रीसीता सोचती हैं—साक्षात् अपने रूपमें रावणके घर—लङ्कामें नहीं जाऊँगी; परन्तु मैं अपने वास्तविक स्वरूपसे अग्निमें रह करके मायाके स्वरूपसे ही उसके हाथ पड़ूँगी। इसीलिये इस पदके साथ 'वा' शब्द नहीं कहा गया है। कूर्मपुराणमें कहा गया है—कालसे प्रेरित होकर राक्षसराज रावणने श्रीरामचन्द्रजीकी भाग्यशालिनी, विशालनेत्री, प्राणप्रिया, धर्मपत्नी श्रीसीताजीकी कामना की। मायाके द्वारा संन्यासीका वेष धारण करके निर्जन वनसे श्रीसीताजीका अपहरण कर लूँगा। इस प्रकार रावणने मन बनाया। रावणका मनोभाव जानकर—रावणने लङ्कामें ही मनमें सोच लिया था कि संन्यासी बनकर सीताका अपहरण करूँगा। उसके इस मनोभावको जानकर श्रीसीताजीने अपने स्वामी दशरथनन्दन श्रीरामका स्मरण करके अग्निदेवकी प्रार्थना करने लगीं। 'जो संसारके साक्षी हैं, जिनके अनन्त मुख हैं, जो सब प्राणियोंके हृदयमें विराजमान हैं, ऐसे सुदीप्तविग्रह अग्निकी मैं शरण स्वीकार करती हूँ।' इस प्रकार वह्न्यष्टकका जप करके यशस्विनी रामवल्लभा नित्यकिशोरी श्रीसीताजी आँखोंको बन्द करके श्रीरामजीका मनसे ध्यान करने लगीं। तदनन्तर हव्यवाह, सुदीप्तात्मा, भगवान् अग्निदेव अपने तेजसे सुप्रकाशित होते हुए प्रकट हो गये। रावणवधकी इच्छासे मायामयी सीताकी सृष्टि करके श्रीरामप्राणवल्लभा जानकीजीको लेकर अग्निदेव अन्तर्धान हो गये।

आगेकी कथा श्रीसीताजीकी अग्निपरीक्षाके समय लङ्काकाण्डमें बतायेंगे। यदि न बता सकें तो क्षमा करेंगे। हाँ, इतना निश्चय समझ लें कि अग्निपरीक्षाके समय इन्हीं श्रीसीताजीको अग्निदेव पुनः श्रीरामजीको समर्पित करेंगे।

इस प्रकार श्रीजानकीजीकी इस प्रतिज्ञाकी रक्षा हो गयी कि मैं इस शरीरसे रावणके गात्रका

स्पर्श नहीं करूँगी—'**न त्वहं राघवादन्यं कदापि पुरुषं स्पृशे**'॥

इसके बाद श्रीसीताजी अपने दोनों हाथोंसे अपना पेट पीटने लगीं—

पाणिभ्यां रुदती दुःखादुदरं प्रजघान ह॥

(३। ४५। ३८)

'**उदरं प्रजघान ह**' का भाव आचार्योंने किया है—यद्यपि शोकमें छाती पीटी जाती है। संसारमें स्त्रियोंका छाती पीटना ही देखा जाता है परन्तु पेट पीटनेका भाव यह है कि जबतक सब राक्षसोंका मरण नहीं सम्पन्न होगा तबतक मेरी उदरपूर्ति नहीं होगी, यह श्रीसीताने सूचित किया है—'**उदरं प्रजघानेत्यनेन सर्वरक्षोमरणं विना न मे उदरपूर्तिरिति सूचितम्। अन्यथा शोके वक्ष आघातस्यैव स्त्रीषु प्रसिद्ध्या सङ्गतिः स्यात्**' (तिलकटीका)। परम धैर्यवान् श्रीलक्ष्मणने कुछ झुककर हाथ जोड़कर श्रीसीताजीके चरणोंमें अभिवादन किया और बार-बार उनका दर्शन करते हुए श्रीरामजीके पास चल दिये—

ततस्तु सीतामभिवाद्य लक्ष्मणः
कृताञ्जलिः किञ्चिदभिप्रणम्य।
अवेक्षमाणो बहुशः स मैथिलीं
जगाम रामस्य समीपमात्मवान्॥

(३। ४५। ४०)

'**बहुशः अवेक्षमाणः**' का भाव कि अकेली इनको छोड़कर कैसे जाऊँ? इस आशयसे बार-बार देख रहे हैं। '**कथमेनामेकाकिनीं त्यक्त्वा गमिष्यामीत्यनुशयेन बहुशः अन्वीक्षणम्**'। (श्रीगोविन्दराज)। इस प्रकार परम धैर्यवान् भी अधीरतापूर्वक प्रस्थान कर रहे हैं। चलते-चलते श्रीलक्ष्मण करुण एवं विनम्र शब्दोंमें बद्धाञ्जलि होकर कहते हैं—हे वनके देवताओ! हे दिशाओंके देवताओ! मैं आज मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताको, चक्रवर्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजीकी पुत्रवधूको, माता कौसल्याकी आँखोंकी पुत्तलिकाको श्रीमद्राघवेन्द्र रामचन्द्रकी प्राणप्रिया, पतिव्रता पत्नीको, परब्रह्म महिषीको, अपनी माताको परिस्थितियोंसे विवश होकर अकेली—असहाय इस घोर जंगलमें छोड़कर आप सबके हाथोंमें सौंपकर जा रहा हूँ। आप लोग मेरी माताकी रक्षा करना—

बन दिसि देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन ससि राहू॥

श्रीराम, लक्ष्मणके न रहनेपर प्रवञ्चनाका अवसर पाकर त्रिदण्डी संन्यासीका वेष धारण करके रावण श्रीसीताजीकी पर्णकुटीके द्वारपर आया। वह भगवे रंगका वस्त्र लपेटे था। उसके सिरपर शिखा, हाथोंमें छाता और पैरोंमें जूता था। उसने बाँयें कंधेपर डंडा रखकर उसीमें कमण्डलु लटका लिया था। जैसे सूर्य-चन्द्रसे रहित सन्ध्याके पास महान् अन्धकार उपस्थित होता है, उसी तरह रावण श्रीजानकीके पास आ गया।

रहितां सूर्यचन्द्राभ्यां सन्ध्यामिव महत्तमः।
तामपश्यत् ततो बालां राजपुत्रीं यशस्विनीम्॥

(३। ४६। ५)

रावण सीताके सामने आ गया मानो शनिग्रह चित्राके सामने आ गया हो—

अभ्यवर्तत वैदेहीं चित्रामिव शनैश्चरः।

(३। ४६। १०)

श्रीसीताजीने उसका वेष देखकर वेषका सम्मान करनेके लिये उसको आसन, जल, फल, मूल अर्पण कर दिया—

इयं बृसी ब्राह्मण काममास्यतामिदं
च पाद्यं प्रतिगृह्यतामिति।

(३। ४६। ३६)

श्रीसीताजी व्याकुलहृदयसे श्रीरामजीकी प्रतीक्षा कर रही हैं। प्रतीक्षामें उन्होंने चारों दिशाओंमें दृष्टि दौड़ायी परन्तु उन्हें प्रत्येक दिशामें हरा-

भरा वन ही दृष्टिगोचर हुआ, श्रीराम, लक्ष्मण नहीं दृष्टिगोचर हुए—

ततः सुवेषं मृगयागतं पतिं
प्रतीक्षमाणा सहलक्ष्मणं तदा।
निरीक्षमाणा हरितं ददर्श त-
न्महद् वनं नैव तु रामलक्ष्मणौ॥

(३। ४६। ३८)

रावणके पूछनेपर श्रीसीताने सोचा—यदि मैं इसके प्रश्नका उत्तर नहीं दूँगी तो यह मुझे शाप दे देगा—'**अनुक्तो हि शपेत माम्**' यह ब्राह्मण है, अतिथि है; अतः श्रीसीताने उसको अपना परिचय दिया। श्रीसीताने कहा—हे ब्रह्मन्! मेरे आराध्य पतिदेव श्रीरामचन्द्रजी केवल देते हैं, किसीके द्वारा कुछ ग्रहण नहीं करते हैं। वे सदा सत्यभाषण ही करते हैं, मिथ्याभाषण नहीं करते। यह श्रीरामजीका सर्वश्रेष्ठ व्रत है—

दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयान्न चानृतम्॥
एतद् ब्राह्मण रामस्य व्रतं धृतमनुत्तमम्।

(३। ४७। १७-१८)

हे ब्राह्मण! अभी मेरे स्वामी फल-मूल लेकर आते होंगे। वे आकर आपका आतिथ्य करेंगे। हे ब्रह्मन्! आप भी अपने नाम, गोत्र और कुलका परिचय तत्त्वतः दीजिये—

स त्वं नाम च गोत्रं च कुलमाचक्ष्व तत्त्वतः।

(३। ४७। २४)

रावणने अत्यन्त कठोर शब्दोंमें उत्तर दिया—हे सीते! जिसके नामसे देवता, असुर और मनुष्यों-सहित तीनों लोक त्रस्त हो जाते हैं, मैं वही राक्षसराज रावण हूँ—

येन वित्रासिता लोकाः सदेवासुरमानुषाः।
अहं स रावणो नाम सीते रक्षोगणेश्वरः॥

(३। ४७। २६)

हे सीते! बहुत-सी सुन्दर स्त्रियोंका अपहरण करके मैं लाया हूँ उन सबमें तुम सर्वश्रेष्ठ मेरी महिषी—राजरानी बन जाओ—

बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः।
सर्वासामेव भद्रं ते ममाग्रमहिषी भव॥

(३। ४७। २८)

रावणने कहा—समुद्रके मध्यमें एक पर्वतके शिखरपर बसी हुई महानगरी लङ्का है, वही मेरी राजधानी है। वह चारों ओरसे समुद्रसे घिरी हुई है—

लङ्का नाम समुद्रस्य मध्ये मम महापुरी।
सागरेण परिक्षिप्ता निविष्टा गिरिमूर्धनि॥

(३। ४७। २९)

रावणकी ओछी बात सुनकर श्रीसीता क्रुद्ध होकर रावणका अपमान करती हुई बोलीं—मेरे पतिदेव महान् पर्वतके समान अविचल हैं। महासागरके समान प्रशान्त हैं। मैं उन्हींकी अनुव्रता—अनुरागिणी हूँ। जो समस्त शुभलक्षणोंसे सम्पन्न हैं, वटच्छायाकी तरह सबको सर्वकालमें सुख देनेवाले हैं। ऐसे सत्यप्रतिज्ञ महाभाग श्रीरामजीकी मैं हृदयसे अनुरागिणी हूँ—

प्रत्युवाचानवद्याङ्गी तमनादृत्य राक्षसम्॥
महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता॥
सर्वलक्षणसम्पन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम्।
सत्यसंधं महाभागमहं राममनुव्रता॥

(३। ४७। ३२—३४)

हे पापी राक्षस! जैसे सूर्यकी प्रभाका कोई स्पर्श नहीं कर सकता उसी प्रकार तू भी मुझे स्पर्श नहीं कर सकता है। जैसे जम्बुक—सियारके लिये सिंहिनी दुर्लभ है उसी प्रकार तुम सियार—गीदड़ हो। मैं सिंहिनीके समान तुम्हारे लिये दुर्लभ हूँ—

त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम्।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा॥

(३। ४७। ३७)

श्रीसीताजीने कहा—अरे राक्षस! जो अन्तर

सिंह और शृगालमें है, जो अन्तर समुद्र और स्यन्दिका—छोटी नदीमें है, जो अन्तर अमृत और काँजीमें है, जो अन्तर स्वर्ण और काँचमें है, जो अन्तर चन्दनके सुवासित जल और दुर्गन्धभरे कीचड़में है, जो अन्तर हाथी और बिलावमें है, वही अन्तर दशरथनन्दन श्रीराम और तुममें है—

यदन्तरं सिंहसृगालयोर्वने
यदन्तरं स्यन्दनिकासमुद्रयोः।
सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदन्तरं
तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च॥
यदन्तरं काञ्चनसीसलोहयो-
र्यदन्तरं चन्दनवारिपङ्कयोः।
यदन्तरं हस्तिबिडालयोर्वने
तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च॥

(३। ४७। ४५-४६)

अरे रावण! जो अन्तर गरुड़ और काकमें है, जो अन्तर मयूर और जलकाकमें है, जो अन्तर हंस और गीधमें है वही अन्तर श्रीदशरथनन्दन राममें और तुझमें है—

यदन्तरं वायसवैनतेययोर्यदन्तरं मद्गुमयूरयोरपि।
यदन्तरं हंसक गृध्रयोर्वने तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च॥

(३। ४७। ४७)

अरे रावण! तू मेरा अपहरण करके भी मुझे पचा नहीं सकेगा जैसे मक्खी घृत पीकर उसे नहीं पचा सकती।

सीताजीकी बात सुनकर रावण परम क्रुद्ध हुआ और बोला—तुम मेरा परिचय नहीं जानती हो, मैं महर्षि विश्रवाके पुत्र धनाध्यक्ष कुबेरका सपत्न—सौतेला भाई हूँ। मैं परमप्रतापी दशग्रीव रावण हूँ—

भ्राता वैश्रवणस्याहं सापत्नो वरवर्णिनि।
रावणो नाम भद्रं ते दशग्रीवः प्रतापवान्॥

(३। ४८। २)

श्रीसीताजीने कहा—अरे रावण! तुम्हें अपना परिचय देनेमें लज्जाकी अनुभूति नहीं हुई। सम्पूर्ण देवताओंसे सम्मानित वैश्रवण कुबेर हैं। तुम उनको अपना भाई कहकर इस प्रकारके पापकर्ममें कैसे प्रवृत्त हो रहे हो? तुमने तो अपने पिता और ज्येष्ठभ्राता दोनोंको कलङ्कित कर दिया है—

कथं वैश्रवणं देवं सर्वदेवनमस्कृतम्।
भ्रातरं व्यपदिश्य त्वमशुभं कर्तुमिच्छसि॥

(३। ४८। २१)

श्रीसीताजीकी बात सुनकर रावणने अपने हाथ-पर-हाथ मारकर अर्थात् हाथोंको मिलाकर क्रोध करके शरीरको विशाल बना लिया—

सीताया वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान्।
हस्ते हस्तं समाहत्य चकार सुमहद् वपुः॥

(३। ४९। १)

उसने श्रीसीताजीसे कहा—तुमने मेरे बल और पराक्रमकी बातोंको ध्यानसे नहीं सुना है। मैं आकाशमें स्थित होकर अपनी भुजाओंसे समस्त भूमण्डलको उठा सकता हूँ। समुद्रका पान कर सकता हूँ और समराङ्गणमें मृत्युका भी वध कर सकता हूँ—

उद्वहेयं भुजाभ्यां तु मेदिनीमम्बरे स्थितः।
आपिबेयं समुद्रं च मृत्युं हन्यां रणे स्थितः॥

(३। ४९। ३)

अपने पराक्रमका वर्णन करके रावणने श्रीसीताजीको उसी प्रकार पकड़ लिया जैसे बुध अपनी माता रोहिणीको आकाशमें पकड़ ले। इससे यह सूचित किया कि रावणने यह जघन्य-कर्म किया है—निन्द्य कर्म किया है। माताके प्रति कुदृष्टि की है—

जग्राह रावणः सीतां बुधः खे रोहिणीमिव।

(३। ४९। १६)

उसी समय रावणका मायामय रथ आ गया—उसमें गधे जुते हुए थे और उसकी ध्वनि भी गधेके स्वरके समान कर्कश थी। रावणने सीताजीको हठात् रथपर बैठा लिया। सीताजी

वनमें दूर गये अपने प्राणप्रियतमको 'हे राम' कहकर उच्चस्वरसे पुकारने लगीं।

सा गृहीतातिचुक्रोश रावणेन यशस्विनी।
रामेति सीता दुःखार्ता रामं दूरं गतं वने॥

(३। ४९। २१)

हे महाबाहो लक्ष्मण! हे रामचित्तप्रसादनतत्पर! यह कामरूप राक्षस मेरा हरण करके ले जा रहा है, परन्तु हा हन्त! आप दोनों भाइयोंको इसका परिज्ञान नहीं है—

हा जग एक बीर रघुराया। केहिं अपराध बिसारेहु दाया॥
आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिननायक॥
हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोसा॥
बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही॥

करुणापूर्ण वाणीमें विलाप करती हुई श्रीसीताजीने एक वृक्षपर विराजमान गृध्रराज जटायुको देखा—

सा तदा करुणा वाचो विलपन्ती सुदुःखिता।
वनस्पतिगतं गृध्रं ददर्शायतलोचना॥

(३। ४९। ३६)

हे पितृकल्प! हे जटायो! यह पापकर्मा राक्षस अनाथकी भाँति क्रूरतापूर्वक मेरा अपहरण करके मुझे ले जा रहा है। ते तात! यह राक्षस अत्यन्त क्रूर है, इसे आप रोक नहीं पायेंगे; क्योंकि यह बलवान् है, अनेक युद्धोंमें विजयी होनेके कारण इसका दुस्साहस भी बढ़ा हुआ है फिर इसके हाथोंमें अस्त्र भी हैं और इसका मन भी शुद्ध नहीं है दुष्ट है। इसकी बुद्धि भी दुष्ट है। हे आर्य! मेरे अपहरणका समस्त वृत्तान्त आप श्रीराम और लक्ष्मणसे ठीक-ठीक बता दीजियेगा—

जटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत्।
अनेन राक्षसेन्द्रेणाकरुणं पापकर्मणा॥
नैष वारयितुं शक्यस्त्वया क्रूरो निशाचरः।
सत्ववाञ्जितकाशी च सायुधश्चैव दुर्मतिः॥
रामाय तु यथातत्त्वं जटायो हरणं मम।
लक्ष्मणाय च तत् सर्वमाख्यातव्यमशेषतः॥

(३। ४९। ३८—४०)

श्रीजटायुने रावणसे कहा—हे दशग्रीव! मैं महाबलवान् गृध्रराज जटायु हूँ। इन्द्र और वरुणकी तरह शक्तिसम्पन्न दशरथनन्दन श्रीराम सर्वजनहितैषी और सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी हैं। तुम जिनका हरण करना चाहते हो यह उन्हीं जगदीश्वरकी धर्मपत्नी हैं—

जटायुर्नाम नाम्नाहं गृध्रराजो महाबलः।
राजा सर्वस्य लोकस्य महेन्द्रवरुणोपमः॥
लोकानां च हिते युक्तो रामो दशरथात्मजः।
तस्यैषा लोकनाथस्य धर्मपत्नी यशस्विनी॥
सीता नाम वरारोहा यां त्वं हर्तुमिहेच्छसि।

(३। ५०। ४—६)

हे रावण! इसके पहले कि श्रीराम अपनी आग्नेय दृष्टिसे तुम्हें जलाकर भस्म कर डालें उसके पहले तुम श्रीसीताको शीघ्र छोड़ दो—

क्षिप्रं विसृज वैदेहीं मा त्वा घोरेण चक्षुषा।
दहेद् दहनभूतेन वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा॥

(३। ५०। १६)

हे रावण! तुमने अपने वस्त्रमें विषधर सर्पको बाँध लिया है, परन्तु समझ नहीं पा रहे हो। तुमने अपने कण्ठमें मौतकी फाँसी डाल ली है; परन्तु उस कालपाशको तुम देख नहीं पा रहे हो—

सर्पमाशीविषं बद्ध्वा वस्त्रान्ते नावबुध्यसे।
ग्रीवायां प्रतिमुक्तं च कालपाशं न पश्यसि॥

(३। ५०। १७)

हे रावण! किसी भी व्यक्तिको उतना ही भार द्रव्य उठाना चाहिये जो उसे व्यथित न कर दे और वही अन्न खाना चाहिये जो सरलतासे पच जाय तथा रोग न उत्पन्न करे—

स भारः सौम्य भर्तव्यो यो नरं नावसादयेत्।
तदन्नमपि भोक्तव्यं जीर्यते यदनामयम्॥

(३। ५०। १८)

जब रावणने श्रीजटायुकी सामनीतिका आदर नहीं किया, समझानेका कुछ उत्तर नहीं दिया तब युद्धनीतिविशारद जटायुने कहा—हे दशग्रीव! मैं साठ हजार वर्षका वृद्ध हूँ और तुम मेरी अपेक्षा युवक हो। मैं धनुष आदि उपकरणोंसे रहित हूँ जबकि तुम धनुष, कवच, बाण तथा रथ सब उपकरणोंसे सम्पन्न हो। फिर भी मेरी पुत्रीको—मेरी पुत्रवधूको—दशरथ मित्रत्वात् मेरी स्नुषाको लेकर कुशलपूर्वक नहीं जा सकते हो—

वृद्धोऽहं त्वं युवा धन्वी सरथः कवची शरी।
न चाप्यादाय कुशली वैदेहीं मे गमिष्यसि॥

(३।५०।२१)

हे रावण! यदि तुम वीरत्वाभिमानी हो तो मुझसे लड़ो। मेरे सामने केवल दो घड़ी ठहर जाओ; युद्धसे भगो मत। परिणामस्वरूप मेरे द्वारा मरकर तुम पहले श्रीरामके द्वारा मारे गये खरकी तरह रणभूमिमें शयन करोगे। अथवा यदि वीर हो तो मेरे साथ युद्ध करो। अथवा श्रीराम जबतक नहीं आ जाते तबतक एक मुहूर्त रुको; उनके द्वारा मरकर रणभूमिमें चिरकालके लिये विश्राम करोगे। इस प्रकार ललकारनेके पश्चात् भी रावण नहीं रुका, वह तो भागा ही जा रहा था तब श्रीजटायुने उच्चस्वरसे ललकारकर कहा—अरे दशग्रीव! अरे रावण! ठहर, ठहर मात्र दो घड़ी ठहर, रुक जा, फिर देख, जैसे डंठलसे फल गिरता है, उसी प्रकार तुम्हें तुम्हारे उत्तम रथसे गिराये देता हूँ। अरे राक्षस! युद्धमें यथाप्राण—यथाशक्ति मैं तुम्हारा आतिथ्य करूँगा, तुम्हारी भेंट-पूजा करूँगा—

तिष्ठ तिष्ठ दशग्रीव मुहूर्तं पश्य रावण।
वृन्तादिव फलं त्वां तु पातयेयं रथोत्तमात्॥
युद्धातिथ्यं प्रदास्यामि यथाप्राणं निशाचर।

(३।५०।२८)

अरे रावण! यदि तुम शूरवीर हो, तुममें दम है, तुम स्वाभिमानी हो, तुममें तनिक भी लज्जा है तो कुछ देर रुक जाओ। मेरा महावीर पुत्र आ रहा है, मेरा लाड़ला रणबाँकुरा लाल आ रहा है। मेरा लाल आकर तुम्हारे प्राण ले लेगा, जैसे खरको निष्प्राण किया था। मेरे रामजी अब आ ही रहे होंगे। हे रावण! यदि तुम नहीं प्रतीक्षा करते तो भी मैं अपने प्राण देकर भी महात्मा श्रीराम तथा चक्रवर्ती नरेन्द्र दशरथका—अपने मित्रका प्रिय कार्य अवश्य करूँगा। हे रावण! रामचन्द्रकी परम प्रियतमा, कमलनयनी श्रीसीताको तुम मेरे जीते-जी नहीं ले जा सकोगे।

इस प्रकार श्रीजटायुने युद्ध आरम्भ कर दिया। गृध्र और राक्षसमें—जटायु और रावणमें अत्यन्त लोमहर्षक युद्ध हुआ—अद्भुत युद्ध हुआ। ऐसा ज्ञात होता था कि मानो दो सपक्ष माल्यवान्पर्वत एक-दूसरेसे युद्ध कर रहे हैं—

तद् बभूवाद्भुतं युद्धं गृध्रराक्षसयोस्तदा।
सपक्षयोर्माल्यवतोर्महापर्वतयोरिव ॥

(३।५१।३)

रावणने अनेक तीखे बाणोंका प्रयोग करके जटायुको क्षत-विक्षत कर दिया। पक्षिश्रेष्ठ श्रीजटायुने भी अपने तीक्ष्ण नख, चरणोंसे मार-मारकर रावणके शरीरमें अनेक घाव कर दिये—

तस्य तीक्ष्णनखाभ्यां तु चरणाभ्यां महाबलः।
चकार बहुधा गात्रे व्रणान् पतगसत्तमः॥

(३।५१।६)

श्रीवाल्मीकिजीने एक अत्यन्त मनोवैज्ञानिक प्रसङ्ग लिखा है। श्रीजटायुका सबसे महान् शक्तिका स्रोत कहाँ है? उनको इस वृद्धावस्थामें भी इतना भयङ्कर युद्ध करनेके लिये ऊर्जा कहाँसे मिल रही है? उनकी अपरिमित शक्तिका केन्द्र-बिन्दु कहाँ है? इसका उत्तर है कि जटायुको रावणके रथपर भगवती भास्वती आदिशक्ति समस्त शक्तियोंकी एकमात्र अधिष्ठात्री देवी श्रीजानकीजीकी करुणापूर्ण दृष्टिसे ऊर्जा मिल रही है। ऐश्वर्य पक्षमें तो भाव स्पष्ट है कि

महाशक्ति श्रीसीताजी मात्र दृष्टिनिक्षेप करके श्रीजटायुमें शक्तिका सञ्चार कर रही हैं परन्तु माधुर्यपक्षका भाव अतिशय मधुर है। कमललोचना श्रीसीताजीकी आँखोंमें जब बहते हुए आँसुओंको श्रीजटायु देखते हैं तब लड़नेके लिये—मर मिटनेके लिये अपूर्व उत्तेजना होती है। किसीकी प्यारी पुत्रीका कोई राक्षस अपहरण करे और वह पुत्री रो-रोकर अपने रक्षकको खोजे उस समय एक वत्सल पिताको बेटीके आँसुओंसे कितनी शक्ति मिलेगी इसकी कल्पना कीजिये। क्या वह दुर्बल पिता भी—वृद्ध पिता भी भयङ्कर कालके समान नहीं हो जायगा? क्या वह अपने प्राण देकर भी अपनी पुत्रीका संरक्षण नहीं करेगा? शत्रु कितना भी प्रबल हो क्या वह उसको नष्ट नहीं करना चाहेगा? आज दुहितृवत्सल श्रीजटायुकी यही स्थिति है। वे सोचते हैं मेरी पुत्री रो रही है। पुत्रीके आँसुओंको कोई क्रूर, निर्दय और पाषाण-हृदय पिता ही देखनेमें सक्षम होगा। श्रीजटायुने देखा कि मेरी बेटी राक्षस रावणके रथमें है और उसके नेत्रोंसे अनवरत अश्रुवर्षण हो रहा है और वह मेरी ओर आशाभरी दृष्टिसे देख रही है। श्रीमिथिलेशनन्दिनीकी इस स्थितिको देखकर श्रीजटायु अपने शरीरमें लगते हुए रावणके कठोर बाणोंकी चिन्ता न करके सहसा उस क्रूर राक्षसपर टूट पड़े—

स राक्षसरथे पश्यञ्जानकीं बाष्पलोचनाम्।
अचिन्तयित्वा बाणांस्तान् राक्षसं समभिद्रवत्॥

(३।५१।९)

श्रीजटायुने रावणके मुक्तामणिविभूषित बाणसहित धनुषको अपने चरणोंसे तोड़ डाला। उसने दूसरा धनुष लेकर हजारों बाणोंकी झड़ी लगा दी। उस समय श्रीजटायु ऐसे प्रतीत होते थे मानो बाणोंके घोंसलेमें कोई पक्षी बैठा है—

शरैरावारितस्तस्य संयुगे पतगेश्वरः।
कुलायमभिसम्प्राप्तः पक्षिवच्च बभौ तदा॥

(३।५१।१२)

महातेजस्वी जटायुने अपने दोनों पंखोंसे उन बाणोंको उड़ा दिया और चरणोंके प्रहारसे उसके दूसरे धनुषके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले—

स तानि शरजालानि पक्षाभ्यां तु विधूय ह।
चरणाभ्यां महातेजा बभञ्जास्य महद् धनुः॥

(३।५१।१३)

पराक्रमी वृद्ध जटायुने उसके रथके गधोंको मारकर विशाल रथको भी भग्न कर दिया—'**बभञ्ज च महारथम्**'। चोंचसे मारकर उसके सारथिका भी मस्तक धड़से अलग कर दिया। इस प्रकार जब धनुष टूट गया, रथ टूट गया, घोड़े मारे गये, सारथि भी मर गया तब रावण सीताको लिये हुए भूमिपर गिर पड़ा। रथके टूट जानेसे रावण-ऐसे पराक्रमीको भूमिपर पड़ा हुआ देखकर अन्तरिक्षमें या भूमिपर रहनेवाले समस्त प्राणी 'साधु-साधु' कहकर श्रीजटायुके अलौकिक पराक्रमकी प्रशंसा करने लगे—

स भग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
अङ्केनादाय वैदेहीं पपात भुवि रावणः॥
दृष्ट्वा निपतितं भूमौ रावणं भग्नवाहनम्।
साधु साध्विति भूतानि गृध्रराजमपूजयन्॥

(३।५१।१९-२०)

वृद्धावस्थाके कारण श्रीजटायुको थका हुआ देखकर रावणको प्रसन्नता हुई। वह श्रीसीताजीको लेकर आकाशमार्गसे आगे चला। महातेजस्वी श्रीजटायु भी उड़कर रावणकी ओर दौड़े, उसको पुनः समझाया और उसके ध्यान न देनेपर उसकी पीठपर जा बैठे तथा अपने तीक्ष्ण नखोंके द्वारा चारों ओरसे विदारण करने लगे। नखपक्ष-मुखायुध श्रीजटायु नखोंसे चीरते थे, चोंचसे पृष्ठपर प्रहार करते थे और उसके केश पकड़कर उखाड़ लेते थे—

विददार नखैरस्य तुण्डं पृष्ठे समर्पयन्।
केशांश्चोत्पाटयामास नखपक्षमुखायुधः॥

(३।५१।३५)

अपनी चोंचके प्रहारसे रावणकी दसों बायीं भुजाओंको उखाड़ लिया परन्तु वे भुजाएँ कट जानेपर बाँबीसे सर्पोंकी भाँति पुनः निकल आयीं—

जटायुस्तमतिक्रम्य तुण्डेनास्य खगाधिपः।
वामबाहून् दश तदा व्यपाहरदरिंदमः॥
संछिन्नबाहोः सद्यो वै बाहवः सहसाभवन्।
विषज्वालावलीयुक्ता वल्मीकादिव पन्नगाः॥

(३।५१।३८-३९)

रावण श्रीसीताजीको छोड़कर क्रोधपूर्वक श्रीजटायुको मुक्कों और लातोंसे मारने लगा—

ततः क्रोधाद् दशग्रीवः सीतामुत्सृज्य वीर्यवान्।
मुष्टिभ्यां चरणाभ्यां च गृध्रराजमपोथयत्॥

(३।५१।४०)

दो घड़ीतक राक्षसराज और पक्षीराजमें घोर संग्राम हुआ। तदनन्तर रावणने श्रीरामके लिये घोर युद्ध करनेवाले जटायुके पंख, पैर तथा पार्श्वभागको तलवारसे काट डाला—

ततो मुहूर्तं संग्रामो बभूवातुलवीर्ययोः।
राक्षसानां च मुख्यस्य पक्षिणां प्रवरस्य च॥
तस्य व्यायच्छमानस्य रामस्यार्थे स रावणः।
पक्षौ पादौ च पार्श्वौ च खड्गमुद्धृत्य सोऽच्छिनत्॥

(३।५१।४१-४२)

महागृध्र श्रीजटायुजी रावणके द्वारा पक्ष काट दिये जानेपर पृथ्वीपर गिर पड़े—

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना॥
काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अद्भुत करनी॥

रावणके वेगसे मर्दित होकर भूमिपर पड़े हुए अल्पजीवित—मरणासन्न श्रीजटायुको अपने करकमलोंसे पकड़कर करुणामयी शशिप्रभानना श्रीजानकीजी फफक-फफक कर हा पितः! हा पितः!! कहकर रुदन करने लगीं—

ततस्तु तं पत्ररथं महीतले
निपातितं रावणवेगमर्दितम्।
पुनश्च सङ्गृह्य शशिप्रभानना
रुरोद सीता जनकात्मजा तदा॥

(३।५१।४६)

‘**शशिप्रभानना**’ कहनेका भाव यह है कि आचार्यस्वरूपा श्रीमज्जनकनन्दिनीने इसी समय श्रीजटायुको श्रीराममन्त्रका, साधनाका उपदेश कर दिया और उपास्य अङ्गका भी निर्देश कर दिया। श्रीजटायुको उनके अपूर्व त्यागका, बलिदानका स्नेहिल भावका अनुपम फल मिल गया। इसीलिये श्रीसीतामुखारविन्दको शशि कहा है। शशिसे अमृतस्राव होता है। श्रीसीताके मुखचन्द्रसे श्रीरामनामामृत निर्झरित हुआ है जिससे महाभाग जटायु कृतकृत्य हो गये। ‘**शशिप्रभानना**’ कहनेका दूसरा भाव यह भी है कि जैसे चन्द्रमाके दर्शनसे आह्लाद एवं शीतलताका अनुभव होता है। उसी प्रकार छिन्नपक्ष श्रीजटायु श्रीसीतामुख-सन्दर्शनसे—अपनी पुत्रीके मुख सन्दर्शनसे आह्लादित हो गये तथा उनका सन्ताप निवृत्त हो गया, उन्हें मृत्यु मधुर लगने लगी।

तदनन्तर विलाप करती हुई श्रीसीताको पकड़नेके लिये रावण दौड़ा। श्रीसीताजी लिपटी हुई लताकी तरह महान् वृक्षोंसे लिपट जातीं और पुनः-पुनः कहतीं कि हे वृक्षदेवता! मेरा संकट हरण कर लो। मेरी दृष्टिमें ये वृक्ष निःसन्देह नित्यलीला वृक्ष हैं और साकेतसे श्रीजीकी सेवाके लिये पधारे हैं। किं बहुना, यह भी सम्भव है कि ये बहुत बड़े तपस्वी, योगीन्द्र, मुनीन्द्र हैं। अपनी तपस्याका फल इस रूपमें प्राप्त

कर रहे हैं। करुणामयी श्रीमैथिलीका दर्शन करके, उनका स्पर्श पा करके कृतार्थ हो रहे हैं। इसी समय राक्षसराज रावण वहाँ आ गया—

तां लतामिव वेष्टन्तीमालिङ्गन्तीं महाद्रुमान्।
मुञ्च मुञ्चेति बहुशः प्राप तां राक्षसाधिपः॥

(३।५२।७)

श्रीरामसे रहित सीताको वनमें 'राम राम' पुकारते देखकर कालके समान विकराल राक्षसने अपने ही सर्वनाशके लिये—मृत्युके लिये उनके केश पकड़ लिये। श्रीसीताजीके इस प्रकार प्रधर्षित होनेपर—तिरस्कृत होनेपर समस्त चराचर जगत् मर्यादारहित हो गया और चारों ओर अन्धकार फैल गया—

क्रोशन्तीं राम रामेति रामेण रहितां वने।
जीवितान्ताय केशेषु जग्राहान्तकसन्निभः॥
प्रधर्षितायां वैदेह्यां बभूव सचराचरम्।
जगत् सर्वममर्यादं तमसान्धेन संवृतम्॥

(३।५२।८-९)

उस समय, श्रीसीताजीके तिरस्कारके समय वायुकी गति रुक गयी और सूर्य भी निष्प्रभ हो गये—

न वाति मारुतस्तत्र निष्प्रभोऽभूद् दिवाकरः।

(३।५२।१०)

उस समय रावणपर क्रोध करके श्रीसीताजीकी छायाका अनुसरण करते हुए सिंह, व्याघ्र, मृग और पक्षी सब दौड़ रहे थे। पर्वत झरनोंके रूपमें अश्रुवर्षण करते हुए, समुन्नत शिखरोंके रूपमें ऊर्ध्वबाहु होकर उच्च स्वरसे मानो श्रीसीताकी व्यथासे व्यथित होकर करुणक्रन्दन कर रहे थे—

समन्तादभिसम्पत्य सिंहव्याघ्रमृगद्विजाः।
अन्वधावंस्तदा रोषाद् सीताच्छायानुगामिनः॥
जलप्रपातास्रमुखाः शृङ्गैरुच्छ्रितबाहुभिः।
सीतायां ह्रियमाणायां विक्रोशन्तीव पर्वताः॥

(३।५२।३६-३७)

मृगोंके बच्चे भयभीत होकर दीनमुखसे रुदन कर रहे थे—

वित्रस्तका दीनमुखा रुरुदुर्मृगपोतकाः॥

(३।५२।४०)

रोषरोदनताम्राक्षी—क्रोध और रुदनके कारण जिनकी आँखें लाल हो गयी थीं वे श्रीसीताजी भयङ्कर आँखोंवाले रावणसे बोलीं—अरे नीच रावण! क्या तुझे अपने इस निन्दित कर्मसे लज्जा नहीं आती है जो मुझे अपने स्वामीसे रहित, अकेली और असहाय अबला जानकर चुरा करके भाग रहा है—

न व्यपत्रपसे नीच कर्मणानेन रावण।
ज्ञात्वा विरहितां यो मां चोरयित्वा पलायसे॥

(३।५३।३)

सठ सूनें हरि आनेहि मोही।
अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

श्रीसीताजी निर्भय होकर कहती हैं—अरे निर्लज्ज रावण! तू चाहे जितना भाग ले परन्तु मेरे महात्मा स्वामीसे बचकर कहीं भी जाकर तेरा कल्याण नहीं हो सकेगा। जो वीरशिरोमणि मेरे प्राणेश्वर श्रीरामचन्द्रजी अपने छोटे भाई श्रीलक्ष्मणकी भी सहायताके बिना ही समराङ्गणमें चतुर्दश सहस्त्र राक्षसोंका संहार कुछ ही देरमें कर डाले, वे सर्वास्त्र सम्प्रयोगकुशल महाबलवान् श्रीराघवेन्द्र अपनी प्राणप्रिया भार्याका अपहरण करनेवाले तेरे-जैसे पापाचारीको क्या तीक्ष्ण बाणोंसे मार नहीं डालेंगे। स्मरण रख, अब तू बच नहीं सकता है—

क्व गतो लप्स्यसे शर्म मम भर्तुर्महात्मनः।
निमेषान्तरमात्रेण विना भ्रातरमाहवे॥
राक्षसा निहता येन सहस्राणि चतुर्दश।
कथं स राघवो वीरः सर्वास्त्रकुशलो बली॥
न त्वां हन्याच्छरैस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम्।

(३।५३।२३—२५)

इस प्रकार श्रीसीताजीको अपहरण करके रावण ले जा रहा था। उस समय श्रीसीताजीको कोई अपना नहीं दीख रहा था। कोई नाथ नहीं दीख रहा था—कोई आश्रय नहीं दीख रहा था उसी समय मार्गमें किष्किन्धा पर्वतके उत्तुङ्ग शिखरपर पाँच वानरश्रेष्ठोंको बैठे हुए देखा—

ह्रियमाणा तु वैदेही कंचिन्नाथमपश्यती।
ददर्श गिरिशृङ्गस्थान् पञ्च वानरपुङ्गवान्॥

(३। ५४। १)

उन वानरोंको देखकर विशाललोचना श्रीसीताजीने अपने सुनहरे रंगके उत्तरीयमें वस्त्राभूषण रखकर उन वानरोंके बीचमें डाल दिया कि सम्भवतः ये मेरे आराध्यसे कुछ समाचार कह सकें—

तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम्।
उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च॥
मुमोच यदि रामाय शंसेयुरिति भामिनी।
वस्त्रमुत्सृज्य तन्मध्ये निक्षिप्तं सहभूषणम्॥

(३। ५४। २-३)

श्रीसीताके इस कार्यको रावण नहीं जान सका क्योंकि वह बड़ी उतावलीमें था। **सम्भ्रमात्तु दशग्रीवस्तत्कर्म च न बुद्धवान्। 'विशालाक्षी'** कहनेका यह भाव है कि श्रीसीताने इन वानरोंके हृदयकी रामभक्तिका देखते ही परिज्ञान कर लिया। दूसरा भाव यह भी है कि इतनी दूरसे देखकर जान लिया कि कोई बैठा है, यह भी असाधारण नेत्रका ही कार्य है। तीसरा भाव यह भी है कि करुणामयी श्रीकिशोरीजीने इन्हें देखकर इनके ऊपर अपनी कृपा कर दी। अब इनका सर्वविध कल्याण ही होगा। चौथा भाव यह है कि श्रीसीता कृपाकटाक्ष निपातनसे भगवत् पद प्राप्तिकी योग्यता हो जाती है। अब ये वानर-समूह भगवान्‌की प्राप्तिके योग्य हो गये हैं। इस परिस्थितिमें भी करुणामयी श्रीकिशोरीजी श्रीजटायुको कृतार्थ करके श्रीसुग्रीवादि पाँच वानरोंको कृतार्थ कर रही हैं। धन्य हैं!

जन्म-जन्मके संस्कार सहसा जाग्रत् हो जाते हैं। श्रीजानकीजीने तो अपनी सहज करुणासे इनपर कृपा की ही है; इन वानरोंने भी उच्च स्वरसे विलाप करती हुई विशालाक्षी श्रीसीताजीको निमेषोन्मेषवर्जित अपलक नेत्रोंसे निहारकर अपनी भक्तिका संवर्द्धन किया है। इसको कहते हैं स्नेहिल संस्कार, श्रीसीता नभमार्गसे जा रही हैं और ये वानर भूविकार भूधरपर बैठे हैं, वे शीघ्रतामें ले जायी जा रही हैं और ये स्थिर बैठे हैं, वे नर-जातिकी हैं—नारी हैं, ये वानर हैं। फिर भी संस्कार प्रबल हैं; अतः किशोरीजीने कृपा करके इन्हें देखा और ये अपनी स्वामिनीके दुःखको निहारकर दुःखी हो रहे हैं—

पिङ्गाक्षास्तां विशालाक्षीं नेत्रैरनिमिषैरिव॥
विक्रोशन्तीं तदा सीतां ददृशुर्वानरोत्तमाः।

(३। ५४। ४-५)

इस प्रकार चलता हुआ रावण श्रीसीताजीको लेकर लङ्काके अपने अन्तःपुरमें प्रवेश किया। श्रीसीताजी उस समय शोक-मोहपरायणा थीं। रावणने उन्हें अपने अन्तःपुरमें रख दिया, मानो मयासुरने आसुरी मायाको स्थापित कर दिया हो—

तत्र तामसितापाङ्गीं शोकमोहसमन्विताम्॥
निदधे रावणः सीतां मयो मायामिवासुरीम्।

(३। ५४। १३-१४)

'मायामिवासुरीमित्यनेन माया रूपैवैषा सीताया लङ्कामागतेति ध्वनितम्। मुख्यसीता तु अग्निं प्रविष्टेति पूर्वमेव ध्वनितम्, अतएव रावणस्य वहनीयैषा जाता। मायात्वादेव रावणस्य तदज्ञानम्' (तिलकटीका) अर्थात् **'मायामिवासुरीम्'** का अभिप्राय यह है कि जो सीताजी लङ्कामें आयी हैं वह मायामयी हैं। मुख्य सीता तो अग्निमें प्रविष्ट हो चुकी हैं, यह पहले ही कहा गया है।

इसीलिये रावण इन्हें ले आनेमें समर्थ हो सका, मुख्य सीताको तो यह ला ही नहीं सकता था। मायारूपिणी होनेके कारण ही रावणको इनके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान नहीं हो सका। रावणने अनेक प्रकारसे श्रीसीताको प्रलुब्ध करनेका प्रयास किया। वह कहता है—हे सीते! अब तुम रामके दर्शनका विचार मत करो—यहाँपर रामका दर्शन दुर्लभ है। यदि तुम सोचती हो कि वह आकर तुमको यहाँसे ले जायँगे तो यह तुम्हारा भ्रम है। श्रीराम यहाँ आनेका मनोरथ भी नहीं कर सकते हैं; तो फिर कायिक व्यापारसे—शरीरसे आनेकी तो चर्चा ही व्यर्थ है—

दर्शने मा कृथा बुद्धिं राघवस्य वरानने।
कास्य शक्तिरिहागन्तुमपि सीते मनोरथैः॥

(३।५५।२३)

इस प्रकार अनेक प्रकारकी दुष्टतापूर्ण बातें रावणने कीं। श्रीसीताजी दुःखी अवश्य थीं—शोककर्षिता थीं; परन्तु निर्भय थीं। श्रीविदेहनन्दिनी तृणको बीचमें रखकर बोलीं—

सा तथोक्ता तु वैदेही निर्भया शोककर्शिता।
तृणमन्तरतः कृत्वा रावणं प्रत्यभाषत॥

(३।५६।१)

श्रीसीताजीके निर्भय होनेमें कारण बताते हैं कि श्रीसीता सोचती हैं—रावणको अप्सराका शाप है कि यदि यह बलपूर्वक किसी स्त्रीसे उपभोग करेगा तो इसका मस्तक फट जायगा। यह जानकर श्रीसीता निर्भय हैं। अथवा, श्रीसीता सोचती हैं कि यदि यह दुष्ट बलात्कार करेगा तो मैं योगबलसे अदृश्य और अस्पृश्य हो जाऊँगी यह विचार करके निर्भय हैं। '**निर्भया स्त्रियो बलादुपभोगे मूर्धा ते विपतिष्यतीति अप्सरसो रावणं प्रति शापं चित्ते विज्ञाय निर्भया। बलात्कारे योग वशाददृश्याऽस्पृश्या च भविष्यामीति धिया निर्भयावा**'। (तिलकटीका) तृणके बीचमें रखनेका भाव अनेक आचार्योंने, सन्तोंने अनेक प्रकारसे कहा है। पापात्मा परपुरुषसे साक्षात् सम्भाषणरूप दोषसे बचनेके लिये तृणको बीचमें कर लिया। '**तृणमन्तरतः कृत्वा, साक्षात्पापात्मक परपुरुष सम्भाषणजदोषपरिहारायेति**'। (तिलक-टीका) किं वा, रामविरोधी होनेके कारण रावणसे साक्षात् बात करना उचित नहीं है; अतः तृणको बीचमें कर लिया। '**तृणं कृत्वा इत्यनेन रामविरोधित्वाद् रावणस्य साक्षात् प्रति भाषणाऽनर्हत्वं ध्वनितम्**'। (रामायणशिरोमणि-टीका) अथवा, श्रीसीताने कहा—अरे नीच रावण! तेरी अर्पित समस्त सम्पत्तिको मैं तिनकेकी तरह समझती हूँ; अतः तृणमन्तरतः कृत्वा। अथवा, यदि तू मेरी आशा करता है तो तू उस आशाका परित्याग कर दे, मैं तृणकी तरह जल जाऊँगी; परन्तु तेरे हाथ नहीं आऊँगी। किं वा, हे रावण! मैं जिस दिन समझ लूँगी कि मेरे प्रेमास्पद, प्राणाराध्य वीरशिरोमणि श्रीरामचन्द्र यहाँतक नहीं आ सकेंगे उस दिन मैं तृणवत् इस देहका परित्याग कर दूँगी; अतः तृणमन्तरतः कृत्वा।

श्रीसीताजीने कहा—अरे रावण! इक्ष्वाकु-कुलसम्भूत दशरथनन्दन श्रीरघुनन्दन यदि अपनी रोषपूर्ण दृष्टिसे तुझे केवल ताक लेंगे तो भी तू स्वाहा हो जायगा। जैसे शङ्करजीकी दृष्टि-निक्षेपमात्रसे मन्मथ—कामदेव भस्म हो गया था—

यदि पश्येत् स रामस्त्वां रोषदीप्तेन चक्षुषा।
रक्षस्त्वमद्य निर्दग्धो यथा रुद्रेण मन्मथः॥

(३।५६।१०)

अरे रावण! तू समझ ले कि अब तू मर गया, तेरी राज्यलक्ष्मी नष्ट हो गयी, तेरे बल और इन्द्रियोंका भी नाश हो गया और हे राक्षस! तेरे

पापके कारण ही तेरी लङ्का भी वैधव्यसंयुक्ता हो जायगी—

गतासुस्त्वं गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः।
लङ्का वैधव्यसंयुक्ता त्वत्कृतेन भविष्यति॥

(३।५६।१२)

अन्तमें विवश होकर रावणने राक्षसियोंको आदेश दिया—तुमलोग सीताको अशोकवाटिकामें ले जाओ। वहाँ चारों ओरसे घेरकर गूढ़भावसे इसकी रक्षा करती रहो—

अशोकवनिकामध्ये मैथिली नीयतामिति।
तत्रेयं रक्ष्यतां गूढं युष्माभिः परिवारिता॥

(३।५६।३०)

हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ।
तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ॥

(श्रीरामचरितमानस ३। २९ (क))

इसके अनन्तर ब्रह्माजीकी आज्ञासे इन्द्र अपने हाथसे दिव्य पायस लेकर आये। इन्द्रने श्रीसीतासे कहा—आप इसे स्वीकार करें, इसके प्रभावसे आपको भूख-प्यास नहीं लगेगी तथा निद्रा भी नहीं आयगी। श्रीसीताने कहा—हे देवेन्द्र! हमें कैसे ज्ञात हो कि आप वास्तवमें देवेन्द्र हैं? यदि आप साक्षात् देवराज हैं तो देवताओंके लक्षणोंको दिखाइये। श्रीसीताकी बात सुनकर शचीपति इन्द्रने वैसा ही किया। उन्होंने अपने चरणोंसे भू-देवीका स्पर्श नहीं किया। वे आकाशमें निराधार खड़े रहे। उनकी आँखोंकी पलकें नहीं गिरती थीं। उनके वस्त्रोंपर रजस्पर्श नहीं होता था। उनके कण्ठोंकी पुष्पमाला अम्लान रहती थी—कुम्हलाती नहीं थी—विकसित रहती थी—

सीताया वचनं श्रुत्वा तथा चक्रे शचीपतिः।
पृथिवीं नास्पृशत् पद्भ्यामनिमेषेक्षणानि च॥
अरजोऽम्बरधारी च नम्लानकुसुमस्तथा।
तं ज्ञात्वा लक्षणैः सीता वासवं परिहर्षिता॥

(३।५६ (प्रक्षिप्तसर्ग)।१८-१९)

इसके पश्चात् आश्वस्त होकर श्रीसीताने कहा—हे देवेन्द्र! आप मेरे श्वशुर श्रीदशरथजी, मेरे पिता श्रीजनककी भाँति हैं। उसी रूपमें मैं आपको देख रही हूँ। मेरे पति आपके द्वारा सनाथ हैं—

यथा मे श्वशुरो राजा यथा च मिथिलाधिपः।
तथा त्वामद्य पश्यामि सनाथो मे पतिस्त्वया॥

(३।५६ (प्रक्षिप्तसर्ग)।२१)

श्रीसीताने इन्द्रप्रदत्त पायस लेकर श्रीराम-लक्ष्मणको निवेदन किया और स्वयं भी भोग लगाया।

मारीचका वध करके श्रीरामजी लौट रहे थे, उन्हें भयानक अपशकुन हो रहे थे, वे बहुत चिन्तित थे। उसी समय सामनेसे आते हुए श्रीलक्ष्मण दिखायी दिये। उनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी—

ततो लक्ष्मणमायान्तं ददर्श विगतप्रभम्।

(३।५७।१४)

श्रीरामके पास जब श्रीलक्ष्मण आये तब प्रभुने कहा—अहो सौम्य लक्ष्मण! तुम सीताको असहाय छोड़कर चले आये, यह कार्य अच्छा नहीं किया। क्या वहाँ सीता सकुशल होंगी?

अहो लक्ष्मण गर्ह्यं ते कृतं यत् त्वं विहाय ताम्॥
सीतामिहागतः सौम्य कच्चित् स्वस्ति भवेदिति।

(३।५७।१७-१८)

हे लक्ष्मण! जब मैंने श्रीअयोध्यासे दण्डकारण्यके लिये प्रस्थान किया तब सीता मेरे पीछे-पीछे चली आयीं, आज जिसको तुम अकेली छोड़कर यहाँ चले आये, वह मिथिलेशकिशोरी सीता इस समय कहाँ हैं—

प्रस्थितं दण्डकारण्यं या मामनुजगाम ह।
क्व सा लक्ष्मण वैदेही यां हित्वा त्वमिहागतः॥

(३।५८।२)

श्रीरामचन्द्रजीके बार-बार इस प्रकार कहनेपर शुभलक्षण सुमित्राकुमार श्रीलक्ष्मण अतिशय दुःखी

होकर अपने दु:खित भ्राता श्रीरामसे बोले—हे अनाथनाथ! मैं माता श्रीसीताको छोड़कर स्वयं अपनी इच्छासे नहीं आया हूँ। उन्हींके कठोर वचनोंसे प्रेरित होकर मुझे विवश होकर आपके पास आना पड़ा है—

एवमुक्तस्तु सौमित्रिर्लक्ष्मणः शुभलक्षणः।
भूयो दुःखसमाविष्टो दुःखितं राममब्रवीत्॥
न स्वयं कामकारेण तां त्यक्त्वाहमिहागतः।
प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥

(३। ५९। ५-६)

श्रीसीताजीके देखनेकी कामनासे अत्यन्त उत्कण्ठित होकर अत्यन्त त्वरासे श्रीरामजी आश्रमपर गये। पर्णकुटीको श्रीसीतासे शून्य देखकर उनका मन उद्विग्न हो गया—

त्वरमाणो जगामाथ सीतादर्शनलालसः।
शून्यमावसथं दृष्ट्वा बभूवोद्विग्नमानसः॥

(३। ६०। ३)

श्रीरामजी बारम्बार विलाप करने लगे—

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ। गोदावरि तट आश्रम जहवाँ॥
आश्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना॥
हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता॥

श्रीरामजी वृक्षोंसे पूछने लगे। हे कदम्ब! मेरी प्राणप्रिया सीता तुम्हारे पुष्पोंसे बहुत स्नेह करती थी। क्या तुमने उन्हें देखा है? क्या वह यहाँ हैं? यदि जानते हो तो उनका पता बताओ—

कदम्ब यदि जानीषे शंस सीतां शुभाननाम्॥

(३। ६०। १२)

हे बिल्ववृक्ष! हे अर्जुन वृक्ष! तुम बताओ। हे अशोक! शोकसे मेरी चेतना नष्ट हो गयी है। मेरा शोकापनोदन करो। हे तालवृक्ष! हे जामुन! हे कर्णिकार! हे आम्र! हे पनस! हे धव! हे अनार! हे बकुल! हे पुन्नाग! हे चन्दन! तुम बताओ मेरी सीता कहाँ है? हे मृग! तुम मृगनैनी सीताका पता बताओ—

अथवा मृगशावाक्षीं मृग जानासि मैथिलीम्।

(३। ६०। २३)

हे गजराज! हे शार्दूल! तुम बताओ मेरी सीता कहाँ हैं?

श्रीलक्ष्मणजीने श्रीरामजीसे कहा—हे महाप्राज्ञ! जैसे भगवान् विष्णुने राजा बलिको बाँधकर यह पृथ्वी प्राप्त कर ली थी उसी प्रकार आप भी श्रीसीताजीको अवश्य प्राप्त कर लेंगे—

प्राप्स्यसे त्वं महाप्राज्ञ मैथिलीं जनकात्मजाम्।
यथा विष्णुर्महाबाहुर्बलिं बद्ध्वा महीमिमाम्॥

(३। ६१। २४)

श्रीलक्ष्मणजीके ओष्ठपुटोंसे निकली हुई वाणीका सम्मान न करके श्रीरामजी अपनी प्राणप्रिया श्रीसीताको न देखनेके कारण उन्हें पुनः-पुनः रो-रोकर पुकारने लगे—

अनादृत्य तु तद् वाक्यं लक्ष्मणोष्ठपुटच्युतम्।
अपश्यंस्तां प्रियां सीतां प्राक्रोशत् स पुनः पुनः॥

(३। ६१। ३१)

श्रीरामजी व्याकुल होकर कहने लगे—हे लक्ष्मण! राक्षसोंने सीताका भक्षण कर लिया है। ये मृगवरूथ आँखोंमें आँसू भरकर मानो यह कह रहे हैं कि राक्षसोंने देवी सीताका भक्षण कर लिया है—

एतानि मृगयूथानि साश्रुनेत्राणि लक्ष्मण॥
शंसन्तीव हि मे देवीं भक्षितां रजनीचरैः॥

(३। ६२। ८-९)

विह्वल वाणीमें श्रीरामजी कहते हैं—हे भुवनभास्करदेव! आप तो संसारके कृताऽकृतके ज्ञाता है। लोगोंके सत्याऽसत्य कर्मोंके आप साक्षी हैं। सम्प्रति मैं शोकसे व्यथित हूँ। आप कृपापूर्वक बतायें कि मेरी प्राणप्रिया सीता कहाँ गयी? उसका किसने हरण कर लिया?

आदित्य भो लोककृताकृतज्ञ
लोकस्य सत्यानृतकर्मसाक्षिन्।

मम प्रिया सा क्वगता हृता वा
शंसस्व मे शोकहतस्य सर्वम्॥

(३। ६३। १६)

श्रीरामजीने देखा कि महामृग अर्थात् संस्कारीमृग एवं जन्म-जन्मान्तरके भक्त मृग मेरी ओर देखकर मुझसे कुछ कहना चाहते हैं। हे लक्ष्मण! मैं इनकी चेष्टाओंसे—हाव-भावसे समझ रहा हूँ—

एते महामृगा वीर मामीक्षन्ते पुनः पुनः॥
वक्तुकामा इह हि मे इङ्गितान्युपलक्षये।

(३। ६४। १५-१६)

तब प्रभुने आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद वाणीमें पूछा—हे मृगो! बताओ, मेरी सीता कहाँ है? तब वे मृग सहसा उठकर खड़े हो गये और आकाशमें देखकर यह सूचित किया कि इसी मार्गसे ले जायी गयी हैं। सब-के-सब भक्त और भाग्यशाली मृग दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके दौड़े। भाव कि इसी दिशामें गयी हैं। दक्षिणकी ओर जाते हुए वे मृग बार-बार मुड़-मुड़कर श्रीरामजीको निहारते जाते थे अर्थात् वे कह रहे थे कि आप मेरे साथ आयें अथवा, वे देख रहे थे कि ये मेरे दिशा-निर्देशको महत्त्व दे रहे हैं कि नहीं अथवा, इसलिये देख रहे हैं कि जी भरकर देख लें फिर ये अब यहाँ क्यों आयेंगे। श्रीरामजीकी ओर बार-बार देखकर फिर आकाशमार्ग और पृथ्वीको बार-बार देखते थे कि इसी मार्गसे सीताको ले गया है—

क्व सीतेति निरीक्षन् वै वाष्पसंरुद्धया गिरा।
एवमुक्ता नरेन्द्रेण ते मृगाः सहसोत्थिताः॥
दक्षिणाभिमुखाः सर्वे दर्शयन्तो नभःस्थलम्।
मैथिली ह्रियमाणा सा दिशं यामभ्यपद्यत॥
तेन मार्गेण गच्छन्तो निरीक्षन्ते नराधिपम्।
येन मार्गं च भूमिं च निरीक्षन्ते स्म ते मृगाः॥

(३। ६४। १७—१९)

अब तो परामर्श करके श्रीराम-लक्ष्मण श्रीजानकीजीको खोजते हुए दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये। स्मरण रहे, श्रीरामजीने जिस-जिससे समाचार पूछा है, उनमें प्रायः सबने किसी-न-किसी तरह समाचार बताया है। इस प्रसङ्गमें मृगोंका समाचार बताना कहा गया है। दोनों भाई ऐसे मार्गपर जा पहुँचे जहाँपर कुछ फूल दृष्टिगोचर हुए। उन फूलोंको देखकर श्रीरामने दुःखी होकर दुःखपूर्ण वचन श्रीलक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण! इन पुष्पोंको मैं पहचान गया। ये वही पुष्प हैं, जिन्हें मैंने श्रीसीताको दिया था और उन्होंने अपने केशोंमें धारण कर लिया था। मैं ऐसा मानता हूँ कि सूर्य, वायु और यशस्विनी भूमिने मेरा प्रिय करनेके लिये—मुझे समाचार देनेके लिये इन पुष्पोंको सुरक्षित रखा है—अम्लान रखा है। ये पुष्प धूलिधूसरित नहीं होने पाये, इधर-उधर उड़कर नहीं गये और सूखे भी नहीं।

उवाच लक्ष्मणं वीरो दुःखितो दुःखितं वचः।
अभिजानामि पुष्पाणि तानीमानीह लक्ष्मण॥
अपिनद्धानि वैदेह्या मया दत्तानि कानने।
मन्ये सूर्यश्च वायुश्च मेदिनी च यशस्विनी॥
अभिरक्षन्ति पुष्पाणि प्रकुर्वन्तो मम प्रियम्।

(३। ६४। २६—२८)

इस प्रकार श्रीसीताजीकी खोज करते हुए श्रीरामने कहा—मैं श्रीसीताके लिये त्रैलोक्यका संहार कर दूँगा। तब श्रीलक्ष्मणने श्रीरामजीसे कहा—हे प्रभो! चन्द्रमामें शोभा, सूर्यमें प्रभा, वायुमें गति और पृथ्वीमें क्षमा जिस प्रकार नित्य निवास करती है, उसी प्रकार आपमें सर्वोत्तम यश सदा निवास करता है—

चन्द्रे लक्ष्मीः प्रभा सूर्ये गतिर्वायौ भुवि क्षमा।
एतच्च नियतं नित्यं त्वयि चानुत्तमं यशः॥

(३। ६५। ५)

अतः हे प्रभो! उस कीर्तिका आप परिरक्षण करें। एकके अपराधके लिये सबका नाश न करें।

हे ककुत्स्थकुलनन्दन! यदि आप अपने ऊपर आये हुए इस दु:खको धैर्यपूर्वक नहीं सहन करेंगे तो दूसरा कौन सामान्य प्राणी—अल्पशक्ति प्राणी सहन कर सकेगा?

यदि दुःखमिदं प्राप्तं काकुत्स्थ न सहिष्यसे।
प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्च इतरः कः सहिष्यति॥

(३। ६६। ५)

हे वीरशिरोमणे! पहले आप ही अनेक बार इस प्रकारका उपदेश करके मुझे प्रबोधित किये हैं, आपका प्रशिक्षण कौन कर सकता है? साक्षात् बृहस्पतिमें भी आपको उपदेश देनेकी क्षमता नहीं है—

मामेवं हि पुरा वीर त्वमेव बहुशोक्तवान्।
अनुशिष्याद्धि को नु त्वामपि साक्षाद् बृहस्पतिः॥

(३। ६६। १८)

थोड़ा ही आगे जानेपर श्रीरामने श्रीजटायुको देखा। वे पर्वतशिखरकी भाँति प्रतीत हो रहे थे। वे रक्तसे लथपथ होकर भूमिपर पड़े थे। उन्हें देखकर श्रीरामने श्रीलक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण! ऐसा ज्ञात होता है कि यह कोई नरभक्षी राक्षस है, अवश्य इसने श्रीजानकीजीको खा लिया है। इसलिये मैं इसका वध करूँगा। उसी समय अपने मुखसे फेनयुक्त रक्त वमन करते हुए अत्यन्त दीन वाणीमें जटायु बोले—हे आयुष्मन्! इस महान् वनमें जिसे औषधिकी भाँति खोज रहे हो उस देवी सीताको और मेरे प्राणोंको रावणने अपहरण कर लिया—

तं दीनदीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन्।
अभ्यभाषत पक्षी स रामं दशरथात्मजम्॥
यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसि महावने।
सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम्॥

(३। ६७। १४-१५)

श्रीजटायुने श्रीरामके समक्ष समस्त वृत्तान्त निवेदन करके कहा—हे श्रीराम! राक्षसने मुझे पहले ही मार डाला है, अब तुम मुझे न मारो—

रक्षसा निहतं पूर्वं मां न हन्तुं त्वमर्हसि॥

(३। ६७। २०)

श्रीरामजी अपना महान् धनुष छोड़ करके श्रीजटायुको गलेसे लगाकर शोकावेशसे विवश होकर भूमिपर गिर पड़े और लक्ष्मणके साथ रोने लगे—

गृध्रराजं परिष्वज्य परित्यज्य महद् धनुः॥
निपपातावशो भूमौ रुरोद सहलक्ष्मणः।
द्विगुणीकृततापार्तो रामो धीरतरोऽपि सन्।

(३। ६७। २१-२२)

भगवान्ने अनेक प्रकारसे विलाप किया। श्रीलक्ष्मणके सहित जटायुके शरीरपर हाथ फेरा और पिताके प्रति जैसा स्नेह होना चाहिये वैसा ही प्रदर्शित किया।

इत्येवमुक्त्वा बहुशो राघवः सहलक्ष्मणः।
जटायुषं च पस्पर्श पितृस्नेहं निदर्शयन्॥

(३। ६७। २८)

आगें परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा॥
कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर॥
तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भंजन भव भीरा॥
नाथ दसानन यह गति कीन्ही। तेहिं खल जनकसुता हरि लीन्ही॥
लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं॥
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना॥

श्रीगोस्वामीजीने श्रीगीतावलीरामायणमें भी जटायुके उत्तरचरित्रका भावपूर्ण वर्णन किया है। उसकी व्याख्या तो सम्भव नहीं है केवल मूलकी कुछ पंक्तियाँ कह रहा हूँ। भावुक कविके शब्दोंमें ही उसका आस्वादन करें—

मेरे एकौ हाथ न लागी।
गयो बपु बीति बादि कानन ज्यों कलपलता दव दागी॥
दसरथसों न प्रेम प्रतिपाल्यौ, हुतो जो सकल जग साखी।
बरबस हरत निसाचर पतिसों हठि न जानकी राखी॥

मरत न मैं रघुबीर बिलोके तापस बेष बनाए।
चाहत चलन प्रान पाँवर बिनु सिय-सुधि प्रभुहि सुनाए॥
बार-बार कर मींजि, सीस धुनि गीधराज पछिताई।
तुलसी प्रभु कृपालु तेहि औसर आइ गए दोउ भाई॥ १२॥
राघौ गीध गोद करि लीन्हों।
नयन-सरोज सनेह-सलिल सुचि मनहु अरघजल दीन्हों॥
सुनहु लषन! खगपतिहि मिले बन मैं पितु-मरन न जान्यौ।
सहि न सक्यौ सो कठिन बिधाता, बड़ो पछु आजुहि भान्यौ॥
बहु बिधि राम कह्यो तनु राखन, परम धीर नहि डोल्यौ।
रोकि, प्रेम, अवलोकि बदन-बिधु, बचन मनोहर बोल्यौ॥
तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं।
जाको नाम मरत मुनिदुरलभ तुमहि कहाँ पुनि पैहौं॥ १३॥

श्रीगृध्रराजके महाप्रयाणके पश्चात् श्रीरामजीने कहा—हे सुमित्रानन्दन! शूरवीर, शरण्य, धर्माचरण करनेवाले, साधुपुरुष सर्वत्र देखे जाते हैं। यहाँ-तक कि तिर्यग्योनिमें—पशु-पक्षीकी योनिमें भी देखे जाते हैं—

सर्वत्र खलु दृश्यन्ते साधवो धर्मचारिणः।
शूराः शरण्याः सौमित्रे तिर्यग्योनिगतेष्वपि॥

(३। ६८। २४)

हे सौम्य! हे परन्तप! इस समय मुझे सीताहरणका क्लेश उतना नहीं है, जितना कि मेरे निमित्त प्राण देनेवाले श्रीजटायुकी मृत्युसे हो रहा है—

सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम्।
यथा विनाशो गृध्रस्य मत्कृते च परन्तप॥

(३। ६८। २५)

रटनि अकनि पहिचानि गीध फिरे करुनामय रघुराई।
तुलसी रामहि प्रिया बिसरि गई, सुमिरि सनेह-सगाई॥

(गीतावली ३। ११)

हे लक्ष्मण! महनीय कीर्ति श्रीमान् राजा दशरथजी जैसे मेरे मान्य और पूज्य थे, वैसे ही ये पक्षिराज जटायु भी हैं—

राजा दशरथः श्रीमान् यथा मम महायशाः।
पूजनीयश्च मान्यश्च तथायं पतगेश्वरः॥

(३। ६८। २६)

मेरे जान तात! कछू दिन जीजै।
देखिअ आप सुवन-सेवासुख, मोहि पितुको सुख दीजै॥
दिब्य-देह, इच्छा-जीवन जग बिधि मनाइ मँगि लीजै।
हरि-हर-सुजस सुनाइ, दरस दै, लोग कृतारथ कीजै॥
देखि बदन, सुनि बचन-अमिय, तन रामनयन-जल भीजै।
बोल्यो बिहग बिहँसि रघुबर! बलि, कहाँ सुभाय पतीजै॥
मेरे मरिबे सम न चारि फल होंहि तौ, क्यों न कहीजै?
तुलसी प्रभु दियो उतरु मौन हीं, परी मानो प्रेम सहीजै॥

(गीतावली ३। १५)

श्रीरामजीने कहा—हे सुमित्रानन्दन! तुम लकड़ी लाओ, मैं मन्थन करके अग्नि प्रकट करूँगा। मेरे निमित्त प्राण त्याग करनेवाले पितृकल्प श्रीजटायुका दाह-संस्कार करूँगा—

सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम्।
गृध्रराजं दिधक्ष्यामि मत्कृते निधनं गतम्॥

(३। ६८। २७)

इस प्रकार श्रीरामने अपने हाथसे चिता तैयार करके, जटायुके शरीरको चितापर रखकर दाह-संस्कार किया— **'ददाह रामो धर्मात्मा'**। उनको सर्वोत्तम लोककी प्राप्ति करायी। तत्पश्चात् श्रीराम-लक्ष्मणने गोदावरीतटपर जाकर स्नान करके जटायुजीको तिलाञ्जलि दी—

ततो गोदावरीं गत्वा नदीं नरवरात्मजौ।
उदकं चक्रतुस्तस्मै गृध्रराजाय तावुभौ॥

(३। ६८। ३५)

जटायुका अन्तिम संस्कार करके श्रीरामजी दण्डकारण्यसे क्रौञ्चारण्यके नामसे प्रसिद्ध गहन वनमें चले गये। वहाँसे श्रीसीताजीको खोजते हुए मतङ्ग मुनिके आश्रमके पास पहुँच गये—

क्रौञ्चारण्यमतिक्रम्य मतङ्गाश्रममन्तरे॥

(३। ६९। ८)

वहाँ एक बड़ी भयङ्कर विशालकाय राक्षसी

रहती थी। उसका नाम अयोमुखी था। उसने श्रीलक्ष्मणजीको अपनी भुजाओंमें कस लिया और कहा—आप तो मेरे प्यारे पति हैं। आप मुझको मिल गये यह बड़ा लाभ हो गया। मेरा नाम अयोमुखी है—

उवाच चैनं वचनं सौमित्रिमुपगुह्य च।
अहं त्वयोमुखी नाम लाभस्ते त्वमसि प्रियः॥

(३। ६९। १५)

राक्षसीके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मणजीको बहुत क्रोध हुआ, उन्होंने खड्ग निकालकर उसके कान, नाक और स्तन काट डाले—

एवमुक्तस्तु कुपितः खड्गमुद्धृत्य लक्ष्मणः।
कर्णनासस्तनं तस्या निचकर्तारिसूदनः॥

(३। ६९। १७)

वह राक्षसी चीत्कार करती हुई जिधरसे आयी थी उधर ही भाग गयी। तदनन्तर दोनों भाई एक गहन वनमें पहुँचे। वहाँपर उन्होंने एक चौड़ी छातीवाले राक्षसको देखा। वह देखनेमें तो विशालकाय था परन्तु वह कण्ठ और मस्तकसे विहीन था। केवल कबन्ध—धड़मात्र ही उसका स्वरूप था और उसके पेटमें ही मुख था—

विवृद्धमशिरोग्रीवं कबन्धमुदरेमुखम्॥

(३। ६९। २७)

इसीलिये इस राक्षसका नाम कबन्ध था। कबन्धने दोनों भाइयोंको अपनी भुजाओंमें कस लिया। दोनों भाइयोंने आपसमें परामर्श करके प्रसन्न होकर अपनी-अपनी तलवारोंसे उसकी दोनों भुजाएँ स्कन्धप्रदेशसे अलग कर दीं अर्थात् काट दीं। दोनों भाई देश-कालके जानकार थे अतः समयपर बुद्धिपूर्वक काम किया—

ततस्तौ देशकालज्ञौ खड्गाभ्यामेव राघवौ।
अच्छिन्दन्तां सुसंहृष्टौ बाहू तस्यांसदेशतः॥

(३। ७०। ८)

भुजाओंके कटनेपर कबन्ध गर्जना करता हुआ भूमिपर गिर गया। कबन्धके पूछनेपर श्रीलक्ष्मणजीने श्रीरामजीका और अपना परिचय दिया। अब तो कबन्ध प्रसन्न हो गया। उसने कहा—हे नरशार्दूलो! आप दोनोंका स्वागत है। सौभाग्यसे मुझे आप दोनोंके दर्शन हो गये और सौभाग्यसे ही बन्धनस्वरूप मेरी दोनों भुजाएँ आपने काट दीं—

स्वागतं वां नरव्याघ्रौ दिष्ट्या पश्यामि वामहम्।
दिष्ट्या चेमौ निकृत्तौ मे युवाभ्यां बाहुबन्धनौ॥

(३। ७०। १८)

हे महाबाहो! पूर्वकालमें मैं भी सुन्दर था, बलवान् और पराक्रमी था। राक्षसका वेष बनाकर मुनियोंको भयभीत करता था। एक दिन मैंने स्थूलशिरा नामक महर्षिको राक्षसका वेष धारण करके डरा दिया। उन्होंने मुझे शाप दे दिया—जिस रूपसे तुमने मुझे डराया है, आजसे सदाके लिये तुम्हारा यही क्रूर और निन्दितरूप रह जाय। **'एतदेवं नृशंसं ते रूपमस्तु विगर्हितम्'।** मेरी प्रार्थनापर उन्होंने कहा—जब श्रीराम-लक्ष्मण तुम्हारी भुजाओंको काटकर तुम्हें निर्जन वनमें जलायेंगे तब तुम पुनः अपने सुन्दर रूपको प्राप्त कर लोगे। हे रघुनन्दन! राक्षस होनेके पश्चात् मैंने घोर तपस्या करके ब्रह्माजीको सन्तुष्ट करके उनसे दीर्घजीवी होनेका वर प्राप्त कर लिया। वर प्राप्त करके मैं मदोन्मत्त हो गया। एक दिन मैं इन्द्रसे भिड़ गया। इन्द्रने शतपर्व वज्रसे प्रहार किया जिसके कारण मेरी जाँघें और मस्तक मेरे शरीरमें प्रविष्ट हो गये। मेरे गिड़गिड़ानेपर इन्द्रने मेरी भुजाएँ एक-एक योजन लम्बी कर दीं और तत्काल ही तीखे दाढ़ोंवाला एक मुख मेरे पेटमें बना दिया। इस प्रकार मैं वनमें रहनेवाले सिंह, चीते, हरिण और बाघ आदि समस्त प्राणियोंको दोनों भुजाओंसे चारों ओरसे इकट्ठा करके खा जाता हूँ—

सिंहद्वीपिमृगव्याघ्रान् भक्षयामि समन्ततः।

(३। ७१। १५)

आज मेरा उद्धार हो गया। श्रीरामजीने एक गड्ढा बनाकर उसमें उसको डालकर आग लगा दी। वह दिव्यस्वरूप धारण करके श्रीरामजीसे बोला—हे वीर शिरोमणे! आप यहाँसे शीघ्र ही महाबलवान् सुग्रीवके पास पधारिये और उन्हें अपना मित्र बना लीजिये। हे रघुनन्दन! सुग्रीवका कार्य हो या न हो वह आपका कार्य अवश्य करेगा—

कृतार्थो वाकृतार्थो वा तव कृत्यं करिष्यति।

(३। ७२। २०)

कबन्धने अपने पहलेके रूपको पा लिया और शोभासम्पन्न हो गया। उसका शरीर सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो गया। वह श्रीरामका दर्शन करता हुआ उन्हें पम्पासरोवरका मार्ग बताता हुआ आकाशमें ही स्थित होकर बोला कि आप सुग्रीवसे मित्रता अवश्य करें—

स तत् कबन्धः प्रतिपद्य रूपं
वृत श्रिया भास्वरसर्वदेहः।
निदर्शयन् राममवेक्ष्य खस्थः
सख्यं कुरुष्वेति तदाभ्युवाच॥

(३। ७३। ४६)

कबन्धको गति देकर श्रीरामजी अनुजके साथ पम्पासरोवरके मार्गका आश्रय लेकर पम्पा नामक पुष्करिणीके पश्चिम तटपर भक्तिमती शबरीके सुरम्य आश्रमकी शोभा देखते हुए शबरीसे मिले—

'सुरम्यमभिवीक्षन्तौ शबरीमभ्युपेयतुः'॥

(३। ७४। ५)

ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी कें आश्रम पगु धारा॥

शबरीजी सिद्धा थीं—तपःसिद्धिं प्राप्ता थीं अर्थात् तपस्याके द्वारा उन्होंने सिद्धि प्राप्त कर ली थी। किं वा, सिद्धा थीं—उनका लक्ष्य मतङ्ग आश्रममें श्रीराम-लक्ष्मणका दर्शन था, वह आज सिद्ध हो गया। किं वा, समस्त साधनोंका फल श्रीरामदर्शन है, आज वह प्राप्त हो गया था एतावता सिद्धा थीं। भक्तिमती सिद्धा शबरीने जब अपने आराध्य श्रीराम-लक्ष्मणको देखा तब अञ्जलिबद्ध होकर खड़ी हो गयी—

पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी॥

तदनन्तर बुद्धिमान् श्रीराम-लक्ष्मणके चरणोंमें प्रणाम किया—

तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः।
पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः॥

(३। ७४। ६)

प्रणाम करनेके पश्चात् शबरीने पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय आदि सब सामग्रियोंको समर्पित किया। श्रीरामजीने शबरीसे कुशलप्रश्न किया। वह कुशलप्रश्न अत्यन्त गम्भीर आशयसे परिपूर्ण है। अन्तमें पूछते हैं—हे चारुभाषिणि! तुम्हारी गुरुसेवा पूर्णरूपसे फलवती हो गयी है न?

कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणि॥

(३। ७४। ९)

यह प्रश्न स्वयं ही एक स्वतन्त्र प्रसङ्ग है। मनन करनेयोग्य है। भगवान् श्रीरामके प्रश्नोंको सुनकर शबरी बोली। महर्षि वाल्मीकि शबरीको सिद्धा और 'सिद्धसम्मता' की उपाधिसे अलङ्कृत कर रहे हैं। श्रीरामका दर्शन करके वह स्वयं सिद्धा हो गयी थीं और जितने भी सिद्ध थे, महर्षि थे, मुनि थे सबकी दृष्टिमें उनका सम्मान बढ़ गया था एतावता वे सिद्धसम्मता थीं। यह बात शबरीकी बातसे और स्पष्ट है। वे कहती हैं—हे श्रीरामजी! आज आपके मङ्गलमय दर्शन करके हमारी समस्त साधनाएँ पूर्ण हो गयी हैं, तपस्या सिद्ध हो गयी है। आज मेरा जन्म सफल हो गया है। मेरे गुरुदेवकी पूजा सफल हो गयी है। हे श्रीराम! आपका दर्शन मेरी तपस्याका परिणाम नहीं है, साधनाका परिणाम नहीं है, मेरी भक्तिका परिणाम नहीं है और न मेरी

प्रतीक्षाका ही परिणाम है। हे मेरे आराध्यदेव! आपका दर्शन तो मेरे श्रीगुरुदेवके वचनका—आशीर्वादका ही परिणाम है; अतः कहती हैं—'**गुरवश्च सुपूजिताः**'।

रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसम्मता।
शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्यवस्थिता॥
अद्य प्राप्ता तपःसिद्धिस्तव संदर्शनान्मया।
अद्य मे सफलं जन्म गुरवश्च सुपूजिताः॥

(३। ७४। १०-११)

सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए॥

हे मानद! आपकी सौम्यदृष्टिसे ही मेरे जन्म-जन्मान्तरके पापपुञ्ज समाप्त हो गये—

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

हे रघुनन्दन! अनन्त जन्मोंके पापोंके नष्ट होनेसे मैं परम पवित्र हो गयी हूँ। हे समस्त आध्यात्मिक शत्रुओंके नाश करनेवाले शत्रुसूदन राम! आपकी कृपासे अब मैं दिव्य साकेत-लोकमें जाऊँगी—

तवाहं चक्षुषा सौम्य पूता सौम्येन मानद।
गमिष्याम्यक्षयांल्लोकांस्त्वत्प्रसादादरिंदम॥

(३। ७४। १३)

हे रघुनन्दन! जब श्रीमान् चित्रकूट पधारे थे उसी समय मेरे गुरुदेव सपरिकर दिव्य विमानसे दिव्यलोक चले गये। उनकी प्रयाण वेलामें जब मैं उनके वियोगकी कल्पना करके अतिशय भावविह्वल हो गयी, दुःखी हो गयी तब मेरे गुरुदेवने कहा—हे शबरी! तेरे इस परम पवित्र आश्रमपर श्रीलक्ष्मणके सहित भगवान् श्रीराम पधारेंगे। तुम उनका भलीभाँति आतिथ्य करना। उनके दर्शनसे कृतार्थ होकर तुम दिव्य साकेतलोक जाओगी। हे पुरुषश्रेष्ठ! मैंने आपके स्वागतके लिये आपके नैवेद्यके लिये पम्पासरोवरके तटपर उत्पन्न और उपलब्ध होनेवाले अनेक प्रकारके वन्य—कन्द, मूल, फलका सञ्चय किया है। आप कृपापूर्वक उन्हें स्वीकार करें—

मया तु सञ्चितं वन्यं विविधं पुरुषर्षभ।
तवार्थे पुरुषव्याघ्र पम्पायास्तीरसम्भवम्॥

(३। ७४। १७-१८)

तिलक-टीकाकार इस श्लोककी व्याख्या करते हुए पद्मपुराणका उद्धरण देकर लिखते हैं—

'अतो मया त्वदर्थं वन्यं सम्यक् परीक्ष्य माधुर्ययुतं सञ्चितमित्यर्थः। तदुक्तं पाद्मे शबरीं प्रस्तुत्य—
'प्रत्युद्गम्य प्रणम्याथ निवेश्य कुशविष्टरे।
पादप्रक्षालनं कृत्वा तत् तोयं पापनाशनम्॥
शिरसा धार्य पीत्वा च वन्यैः पुष्पैरथार्चयत्।
फलानि च सुपक्वानि मूलानि मधुराणि च॥
स्वयमासाद्य माधुर्यं परीक्ष्य परिभक्ष्य च।
पश्चान्निवेदयामास राघवाभ्यां दृढव्रता॥
फलान्यासाद्य काकुत्स्थस्तस्यैमुक्तिं परां ददौ'

अर्थात् वन्य—वनमें उत्पन्न होनेवाले कन्द, मूल, फलकी अच्छी तरह परीक्षा करके माधुर्य-संयुक्त पदार्थोंको एकत्र किया है। पद्मपुराणमें भी कहा है—शबरीजी भगवान्का स्वागत करके उन्हें आश्रममें ले आयीं। प्रभुके श्रीचरणोंमें प्रणाम करके उन्हें कुशासनपर बैठाया। भगवान्के श्रीचरणोंको पखार करके उस पापनाशक पादोदकको मस्तकपर धारण करके और पी करके वन्य-पुष्पोंसे भगवान्का पूजन किया। पुष्पोंकी माला धारण करायी और पुष्पोंके आभूषण बनाकर ठाकुरजीको धारण कराये। वनोद्भवफलोंको पहले स्वयं आस्वादन करके, उसको भक्षण करके उसके मिठासका भलीभाँति परीक्षण करके तत्पश्चात् सुपक्व अर्थात् न अधिक गला हो और न कड़ा हो ऐसे सुपक्व और मीठे-मीठे कन्द, मूल फलको श्रीराम-लक्ष्मणको अर्पण किया। श्रीरामजीने उसका आस्वादन किया—बड़े प्रेमसे सुप्रशंसा करते हुए पाया। फलका आस्वादन करके ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामजीने भक्तिमती

शबरीको परामुक्ति—साकेतधाम प्रदान किया—

कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि॥

(श्रीरामचरितमानस ३। ३४)

प्रभु श्रीराम भक्तिमती शबरीके प्रेमसे अर्पण किये हुए फलोंका स्वाद जीवनमें कभी विस्मृत न कर पाये—

घर गुरुगृह प्रिय सदन सासुरे, भइ जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरीके फलनिकी रुचि माधुरी न पाई॥

(विनय-पत्रिका १६४)

दोना रुचिर रचे पूरन कंद-मूल, फल-फूल।
अनुपम अमियहुतें अंबक अवलोकत अनुकूल॥
अनुकूल अंबक अंब ज्यों निज डिंब हित सब आनिकै।
सुंदर सनेहसुधा सहस जनु सरस राखे सानिकै॥
छन भवन, छन बाहर, बिलोकति पंथ भूपर पानिकै।
दोउ भाइ आये सबरिकाके प्रेम-पन पहिचानिकै॥

× × ×

पद-पंकजात पखारि पूजे, पंथ-श्रम-बिरति भये।
फल-फूल अंकुर-मूल धरे सुधारि भरि दोना नये॥
प्रभु खात पुलकित गात, स्वाद सराहि आदर जनु जये।
फल चारिहू फल चारि दहि, परचारि-फल सबरी दये॥
सुमन बरषि, हरषे सुर, मुनि मुदित सराहि सिहात।
'केहि रुचि केहि छुधा सानुज माँगि माँगि प्रभु खात॥
प्रभु खात माँगत देति सबरी, राम भोगी जागके'।
पुलकत प्रसंसत सिद्ध-सिव-सनकादि भाजन भागके॥
बालक सुमित्रा कौसिलाके पाहुने फल-सागके।
सुनि समुझि तुलसी जानु रामहि बस अमल अनुरागके॥
रघुबर अँचइ उठे, सबरी करि प्रनाम कर जोरि।
हौं बलि बलि गई, पुरई मंजु मनोरथ मोरि॥

(गीतावली ३। १७)

और भी अनेक संतोंने, भावुक भक्तोंने शबरीके फलकी माधुरीका भावभरे शब्दोंमें वर्णन किया है। मैं इस प्रसङ्गको प्रणाम करते हुए सन्तकवि श्रीरसिकविहारीजीके एक पदका पाठमात्र करता हूँ। आपलोग उसका श्रवण करें—

बेर बेर बेर लै सराहैं बेर बेर बहु रसिक विहारी देत बन्धु कहँ टेर टेर।
चाखि चाखि भाषैं यह बाहू ते महान मीठो लेहु तो लखन यो बखानत हैं हेर-हेर।
बेर बेर देवे है शबरी सुबेर बेर तोऊ रघुवीर वेर वेर तेहि टेर टेर।
वेर जनि लाओ वेर वेर जनि लावो वेर वेर जनि लावो वेर लाओ कहें वेर वेर॥

इस प्रकार भावपूर्वक फलका आस्वादन करके परमतृप्त हो करके श्रीरामचन्द्रजीने शबरीसे उनके गुरुके प्रभावको देखनेकी अभिलाषा व्यक्त की—

श्रुतं प्रत्यक्षमिच्छामि सन्द्रष्टुं यदि मन्यसे।

(३। ७४। २०)

भक्तिमती शबरीने मतङ्गवनका दर्शन कराया और कहा—हे श्रीराघवेन्द्र! कृच्छ्रादि शास्त्रीय उपवासके निरन्तर करनेके कारण अत्यन्त दुर्बल होनेसे जब मेरे श्रीगुरुदेव सागरादि तीर्थोंमें जाने-आनेमें असमर्थ हो गये तब उन महामहिमके चिन्तनमात्रसे यहाँ सातों समुद्रोंका जल प्रकट हो गया। वह 'सप्तसागर' तीर्थ आज भी विद्यमान है। उसमें सातों समुद्रोंका जल सम्मिलित है। हे स्वामी! उस सप्तसागर तीर्थका चलकर दर्शन करिये—

अशक्नुवद्भिस्तैर्गन्तुमुपवासश्रमालसैः ।
चिन्तितेनागतान् पश्य समेतान् सप्त सागरान्॥

(३। ७४। २५)

और भी कई अद्भुत चरित्र शबरीने सुनाये और दिखाये। इसके बाद शबरीने कहा—हे राघवेन्द्र! जिनका यह पवित्र आश्रम है, जिनकी मैं कृपापात्र शिष्या हूँ, जिनके श्रीचरणोंकी सेवा करनेका मुझे सौभाग्य मिला है और जिनकी कृपासे आज मैं आपका दर्शन कर रही हूँ, हे प्रभो! मैं उन शुद्धान्तःकरणवाले महर्षियोंके—जिनका अन्तःकरण अपने आराध्यके परिशीलनमें सदा लगा रहता है, उन मुनियोंके समीप अब मैं जाना चाहती हूँ—

तेषामिच्छाम्यहं गन्तुं समीपं भावितात्मनाम्।

मुनीनामाश्रमो येषामहं च परिचारिणी॥

(३। ७४। २९)

श्रीरामने संशितव्रता—अतितीक्ष्णव्रतशीला—आचार्यपरिचर्यानिष्ठा शबरीसे कहा—हे भद्रे! तुमने मेरा भावपूर्ण आतिथ्य किया है। बड़े सुस्वादु अमृतके स्वादको भी फीका करनेवाले फलोंके द्वारा मेरा अर्चन किया है— मुझे तृप्त किया है। अब तुम अपनी अभिलाषाके अनुरूप लोककी यात्रा सानन्द करो—

तामुवाच ततो रामः शबरीं संशितव्रताम्।
अर्चितोऽहं त्वया भद्रे गच्छ कामं यथासुखम्॥

(३। ७४। ३१)

तदनन्तर शबरीने ठाकुरजीके मङ्गलमय श्रीचरणोंको हृदयमें धारण करके वात्सल्यभावसे उनके मुखचन्द्रका स्नेहपूर्वक दर्शन करते हुए स्वयंको अग्निमें होम करके साकेतलोककी यात्रा की—'**हुत्वाऽऽत्मानं हुताशने**'।

कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदयँ पद पंकज धरे।
तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे॥

(श्रीरामचरितमानस ३। छं० ३६)

सिय-सुधि सब कही नख-सिख निरखि-निरखि दोउ भाइ।
दै दै प्रदच्छिना करति प्रनाम, न प्रेम अघाइ॥
अति प्रीति मानस राखि रामहि, राम-धामहि सो गई।
तेहि मातु-ज्यों रघुनाथ अपने हाथ जल-अंजलि दई॥
तुलसी-भनित सबरी-प्रनति, रघुबर-प्रकृति करुनामई।
गावत, सुनत, समुझत भगति हिय होइ प्रभु पद नित नई॥

(गीतावली ३। १७)

भक्तिमती शबरीकी साकेतयात्राके पश्चात् मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामने श्रीलक्ष्मणसे कहा—मैंने पुण्यात्मा मुनियोंके—मतङ्गऋषिके पावन आश्रमका दर्शन किया। इस आश्रममें अनेक आश्चर्यमय दर्शन किये हैं। हरिण और सिंहका पारस्परिक विश्वास है अर्थात् उनका परस्परमें हिंसकत्वरहित भाव है। अनेक प्रकारके पक्षी इस आश्रममें निवास करते हैं। हे लक्ष्मण! यहाँके सप्तसरोवर तीर्थमें मैंने विधिवत् स्नान करके पितरोंका तर्पण किया है। इससे हमारा सब अशुभ नष्ट हो गया। सम्प्रति हमारे कल्याणका समय समुपस्थित हो गया है। हे सौम्य! सम्प्रति मेरे मनमें परम प्रसन्नताकी अनुभूति हो रही है—

प्रणष्टमशुभं यन्न कल्याणं समुपस्थितम्।
तेन त्वेतत् प्रहृष्टं मे मनो लक्ष्मण सम्प्रति॥

(३। ७५। ५)

इस श्लोककी व्याख्या करते हुए रामायण-शिरोमणि टीकाकार कहते हैं—अशुभ नष्ट हो गया अर्थात् श्रीसीताजीके अपहरणसे समुत्पन्न सन्ताप नष्ट हो गया। इस समय उसका अनुभव नहीं हो रहा है। '**कल्याणं समुपस्थितम्**' का भाव कि श्रीसीताजीके संयोगसे समुत्पन्न सुखकी निकट भविष्यमें होनेकी आशा उपस्थित हो गयी है। इस कारण मेरा मन अधिक प्रसन्न हो रहा है। एतावता शुभ—प्रियाजीके संयोगसे समुत्पन्न सुखका अविर्भाव हो गया; अतः मेरे पास आ जाओ। '**अशुभं सीतापहरण-जनितसन्तापः प्रणष्टमिदानीं नानुभूयते अतएव कल्याणं सीता संयोगजनितसुखं समुपस्थितम् समीपे प्राप्तम् तेन हेतुना एतत् मे मनः प्रहृष्टम् अतएव शुभम्—प्रियासंयोगजनितसुखं आविर्भविष्यति तत् तस्माद्धेतोः आगच्छ मत्समीपम् इति शेषः**'। इस प्रकार मतङ्गवनसे श्रीरामजी पम्पासरोवरपर आये। पम्पासरोवरका दर्शन करते हुए अब कथा भी किष्किन्धाकाण्डमें प्रविष्ट हो रही है।

भगवान् रामकी सुग्रीवसे मैत्री

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

कथा-सुधा-सागर

किष्किन्धाकाण्ड

श्रीरामजी कहते हैं—हे लक्ष्मण! पम्पा-सरोवरके तटका वन कितना शुभ दर्शन है—प्रिय दर्शन है। यहाँके समुन्नत वृक्ष अनेक शिखरोंसे संयुक्त पर्वतोंकी भाँति सुशोभित हो रहे हैं—

सौमित्रे पश्य पम्पायाः काननं शुभदर्शनम्।
यत्र राजन्ति शैला वा द्रुमाः सशिखरा इव॥

(४। १। ४)

हे सुमित्रानन्दन! इस समय मुझे मानसिक वेदनाएँ पीड़ा पहुँचा रही हैं। इस समय मेरे मनमें दो कष्ट हैं। एक तो मुझे भरतका दुःख है। अहा! भरतने कितने स्नेहसे, कितने विश्वाससे मुझे श्रीअयोध्या लौट चलनेके लिये कहा था परन्तु मैं उस अपने प्यारे भाईकी बात नहीं मान पाया—अयोध्या नहीं लौट सका। उसको निराश होकर लौटना पड़ा। इस समय मेरे वियोग-तापसे सन्तप्त मेरा दुलारा, प्यारा भक्त भरत नगरके बाहर नन्दिग्राममें कठिन तपस्या कर रहा है, यह दुःख मुझे विस्मृत नहीं होता है। जटिल तपस्वी भरतकी मूर्ति मेरी आँखोंके सामने नाचती रहती है। हे लक्ष्मण! दूसरा दुःख यह है कि श्रीसीताके अपहरणकी चिन्तासे मैं व्यथित रहता हूँ—

मां तु शोकाभिसन्तप्तमाधयः पीडयन्ति वै।
भरतस्य च दुःखेन वैदेह्या हरणेन च॥

(४। १। ५)

श्रीसीता मेरे वियोगमें प्राण कैसे धारण करती होंगी? हे लक्ष्मण! धर्मज्ञ, सत्यवक्ता श्रीजनक जब लोगोंके मध्यमें बैठकर मुझसे श्रीसीताजीका कुशल समाचार पूछेंगे, तब मैं उनको क्या उत्तर दूँगा—

किं नु वक्ष्यामि धर्मज्ञं राजानं सत्यवादिनम्।
जनकं पृष्टसीतं तं कुशलं जनसंसदि॥

(४। १। १०६)

इस प्रकार श्रीरामजीके अनेक प्रकारके शोकसन्तप्त वचनोंको सुनकर श्रीलक्ष्मणजीने धीरेसे प्रबोध करना आरम्भ किया। श्रीलक्ष्मणने कहा—हे आर्य! आप दैन्यका परित्याग करके धैर्यका अवलम्ब लें। हे स्वामी! उत्साह ही बलवान् होता है। उत्साहसे बढ़कर दूसरा कोई बल नहीं है। जिसके मनमें उत्साह है उसके लिये इस जगत्में कुछ भी दुर्लभ नहीं है—

उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात् परं बलम्।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किञ्चिदपि दुर्लभम्॥

(४। १। १२१)

श्रीलक्ष्मणजीके इस प्रकार प्रबोधित करने-पर शोकसन्तप्तचित्त श्रीरघुनन्दनने शोक-मोहका परित्याग कर दिया और धैर्यका आश्रय लिया। श्रीरामजी पम्पा सरोवरका अतिक्रमण करके आगे बढ़े। ऋष्यमूक पर्वत पासमें आ गया—

आगें चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्बत निअराया॥

अब आगे श्रीसीताप्राप्तिके बीजका वपन होने जा रहा है। ऋष्यमूक नामक पर्वतके सन्निकट विचरण करनेवाले बलवान् वानरेन्द्र श्रीसुग्रीवजी पम्पा सरोवरके पास घूम रहे थे। उसी समय श्रीसुग्रीवने श्रीराम-लक्ष्मणका दर्शन किया। श्रीराम-लक्ष्मण अद्भुत दर्शनीय पुरुष थे और वीर थे। श्रीरामजीको देखते ही बलवान् बुद्धिमान् सुग्रीव, उनके बल-पराक्रमका अनुमान

करके मनमें भयभीत हो गये। 'सम्भव है इन्हें वालिने भेजा होगा'। यह सोचते ही वे इतने भयभीत हो गये कि खाना, पीना, चलना आदिकी कोई चेष्टा न कर सके—

तावृष्यमूकस्य समीपचारी
चरन् ददर्शाद्भुत दर्शनीयौ।
शाखामृगाणामधिपस्तरस्वी
वितत्रसे नैव विचेष्ट चेष्टाम्।

(४। १। १२८)

एक प्रश्न यहाँ आपाततः होता है कि श्रीशबरीजीने कहा था कि आप पम्पा सरोवरपर जायँ, वहाँपर अर्थात् पम्पा सरोवरपर सुग्रीवसे मित्रता होगी—'**पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई**'॥ परन्तु पम्पा सरोवरसे चलकर श्रीरामजी ऋष्यमूक पर्वतके पास आ गये। श्रीसुग्रीव भी यहीं रहते हैं, फिर श्रीशबरीकी बात कैसे सत्य है? इसका उत्तर यह है कि पम्पासर कोई सामान्य सरोवर नहीं है। यह बहुत लम्बा-चौड़ा सरोवर है, झीलकी तरह है। इसके द्वारा अनेक प्रकारके जीवोंका, व्यक्तियोंका महर्षियोंका पालन-पोषण होता है। '**पा पालने**' इस धातुसे यह शब्द निष्पन्न होता है। पम्पाका अर्थ है—'**पाति रक्षति महर्ष्यादीन् स्वीय पवित्र सलिल दानादिभिरिति**'। इसी पम्पा सरोवरके पास एक छोरपर श्रीशबरीजी रहती हैं और उसीके दूसरे छोरपर ऋष्यमूक पर्वत है—

इतः समीपे रामास्ते पम्पानाम सरोवरम्।

(अध्यात्मरामायण ३। १०। ३६)

पम्पा पुष्करिणीके पश्चिम तटपर श्रीशबरी-जीका अत्यन्त रमणीय आश्रम था—

तौ पुष्करिण्याः पम्पायास्तीरमासाद्य पश्चिमम्।
अपश्यतां ततस्तत्र शबर्या रम्यमाश्रमम्॥

(३। ७४। ४)

कबन्धने भी कहा था कि हे रामजी! अत्यन्त प्रशस्तमनवाले, धैर्यशाली वीर श्रीसुग्रीवजी सम्प्रति गिरिश्रेष्ठ ऋष्यमूक पर्वतपर चार वानरोंके साथ निवास करते हैं। वह ऋष्यमूक पर्वत पम्पा सरोवरके तटपर सुशोभित हो रहा है—

ऋष्यमूके गिरिवरे पम्पापर्यन्तशोभिते।
निवसत्यात्मवान् वीरश्चतुर्भिः सह वानरैः॥

(३। ७२। १२)

महात्मा—भद्राकृतिवाले श्रीराम और लक्ष्मण दोनों बन्धुओंको श्रेष्ठ आयुध धारण किये हुए वीरवेषमें आते देखकर श्रीसुग्रीवके मनमें बड़ी शंका हुई—

तौ तु दृष्ट्वा महात्मानौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
वरायुधधरौ वीरौ सुग्रीवः शङ्कितोऽभवत्॥

(४। २। १)

उनको अत्यन्त उद्विग्न देखकर श्रीहनुमान्जी-ने समझाया—हे सौम्य! हमने माना कि आपका भाई पापाचारी है—अनुजवधू रत है। आपके प्रति उसके मनमें दुर्भाव है, इसलिये उससे भय होना स्वाभाविक है। परन्तु वह दुष्ट स्वभावका वाली तो यहाँ आ ही नहीं सकता है, इसलिये आपके भयका कोई कारण मेरी समझमें नहीं आता है—

यस्मात् तव भयं सौम्य पूर्वजात् पापकर्मणः।
स नेह वाली दुष्टात्मा न ते पश्याम्यहं भयम्॥

(४। २। १६)

श्रीसुग्रीवने कहा—हे हनुमान्! इन दोनों वीरोंकी विशाल भुजाएँ, विशाल नेत्र, धनुष, बाण और तलवार धारण किये हुए देवकुमारोंके समान रूपको देख करके किसके मनमें भय नहीं होगा? इनका वेष असाधारण है—

दीर्घबाहू विशालाक्षौ शरचापासिधारिणौ।
कस्य न स्याद् भयं दृष्ट्वा ह्येतौ सुरसुतोपमौ॥

(४। २। २०)

हे हनुमान्! आप तो जाकर पता लगावें कि ये कौन हैं? वालिके द्वारा भेजे हुए हैं अथवा स्वयं विचरण कर रहे हैं? मेरे प्रति इनका मनोभाव कैसा है? महानुभाव श्रीहनुमान्जी

सुग्रीवजीकी आज्ञा स्वीकार करके जहाँ श्रीराम-लक्ष्मण थे उस स्थानके लिये चल दिये—

महानुभावो हनुमान् ययौ तदा
स यत्र रामोऽतिबली सलक्ष्मणः॥

(४। २। २९)

इस श्लोकमें श्रीहनुमान्‌जीके लिये 'महानुभाव' विशेषण दिया है जिसका अर्थ है—महान् अनुभाव—प्रभावसम्पन्न अथवा, सुन्दर स्वभाववाला। प्रस्तुत प्रसङ्गमें अर्थ है—'**महानुभावः वेषान्तर धारण समर्थः**'। पवननन्दन श्रीहनुमान्‌जीने सोचा कि इस समय वानररूपमें जाना उचित नहीं है; क्योंकि संसारमें वानरोंका शठबुद्धित्व प्रसिद्ध है; अतः वानर-शरीरमें मुझको देखकर शठबुद्धि समझकर सम्भवतः श्रीरामजी मुझसे बात न करें इस भावनासे अपने वानररूपका परित्याग करके विश्वास उत्पन्न करानेके लिये भिक्षुका रूप धारण कर लिया—

कपिरूपं परित्यज्य हनुमान् मारुतात्मजः।
भिक्षुरूपं ततो भेजे शठबुद्धितया कपिः॥

(४। ३। २)

इस श्लोकमें 'मारुतात्मज' शब्दसे भी यही सूचित किया है कि श्रीहनुमान्‌जीमें रूपान्तर ग्रहण करनेकी सामर्थ्य है। अथवा, श्रीहनुमान्‌जी वायुवेगसे अत्यन्त शीघ्र समस्त कार्य करनेमें समर्थ हैं अतः 'मारुतात्मजः' कहा। 'भिक्षु' का अर्थ यहाँपर संन्यासी समीचीन नहीं प्रतीत होता है। अन्यत्र वटु रूपधारण करना लिखा है; अतः 'भिक्षु' का अर्थ ब्राह्मणब्रह्मचारी उचित ज्ञात होता है। तदनन्तर श्रीहनुमान्‌जी श्रीराम-लक्ष्मणके पास जाकर अत्यन्त विनम्रतासे उन्हें प्रणाम करके सुमनोज्ञ वाणीमें—मनहरण करनेवाली वाणीमें किं वा, जो शीघ्रतासे समझमें आ जाय ऐसी वाणीमें और मधुर वाणीमें उनसे वार्ता आरम्भ की—

ततश्च हनुमान् वाचा श्लक्ष्णया सुमनोज्ञया।
विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च॥

(४। ३। ३)

'**प्रणिपत्य**' में प्रायः जिज्ञासुजन प्रश्न करते हैं कि जब श्रीहनुमान्‌जी भिक्षुके रूपमें हैं तब उन्होंने श्रीरामजीको प्रणाम कैसे किया? '**प्रणिपत्य नमस्कृत्य, नमस्कारः परिगृहीत भिक्षुवेष विरुद्ध इति चेत् अत्यद्‌भुत श्रीरामलक्ष्मणरूप दर्शन सञ्जातापि विस्मयः सन् अङ्गीकृतं भिक्षुरूपं विस्मृत्य अवशाः प्रतिपेदिरे इतिवत् प्रणनामेति न विरोधः**'। अर्थात् अत्यन्त अद्‌भुत भगवान् श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीके अलौकिक स्वरूपका अवलोकन करके श्रीहनुमान्‌जीके मनमें परम विस्मय हुआ। अतएव अभी-अभी धारण किये हुए ब्राह्मण-वेषकी विस्मृति हो गयी और उन्होंने प्रणाम कर लिया। अथवा, "**रूपमेवास्यैतन्महिमानं व्याचष्टे**" **इति न्यायेन दर्शनमात्रेणैतौ सुग्रीव विरोधि निरसन दक्षाविति निश्चित्य परिगृहीत वेषान्तरस्य स्वस्य चारत्वं प्रकटयितुं नमस्कारं कृतवानिति न दोषः**।

अर्थात् 'किसीका स्वरूप ही उसकी महिमाको अभिव्यक्त करता है'। इस न्यायसे श्रीराम-लक्ष्मणका मात्र दर्शन करके ही यह निश्चित हो गया कि ये सुग्रीव विरोधि वालिका दमन करनेमें सर्वथा सक्षम हैं। एतावता विप्रवेषधारी श्रीहनुमान्‌ने अपना सेवकत्व प्रकट करते हुए नमस्कार किया इसमें कोई दोष नहीं है। अथवा, श्रीरामजी नित्य स्वामी हैं और श्रीहनुमान्‌जी श्रीरामजीके नित्यदास हैं। यही सच्चा परिचय है, सच्चा सम्बन्ध है श्रीराम-हनुमान्‌का—

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।

(५। ४२। ३४)

श्रीहनुमान्‌जीके जन्म-जन्मके संस्कार श्रीठाकुरजीके चरणोंमें झुकनेके हैं। श्रीशङ्करजी पार्वतीजीसे बड़ी भावपूर्ण वाणीमें कहते हैं—

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि
प्रगट परावर नाथ।

रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ
कहि सिवँ नायउ माथ॥

(श्रीरामचरितमानस १। ११६)

इस प्रसङ्गमें हमें एक आख्यायिका स्मरण आती है कि जब मर्यादापुरुषोत्तम भक्तवत्सल श्रीरामजीने समुद्रके पावन तटपर दिव्य शिवलिङ्गकी स्थापना की और उसका नामकरण संस्कार किया कि '**जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं**'। अर्थात् ये रामेश्वर हैं। '**रामस्य ईश्वरः**' (**तत्पुरुष**) **रामके ईश्वर हैं।** ठाकुरजीने बड़े स्नेहसे कहा कि ये मेरे—रामके स्वामी हैं। ठाकुरजीकी वाणी सुनकर उसी समय सद्यःस्थापित दिव्य शिवलिङ्गसे भगवान् गौरीनाथ प्रकट हो गये और उन्होंने बड़ी भावपूर्ण वाणीमें कहा कि हे मेरे प्राणाराध्य! यह शिवलिङ्ग रामेश्वर है। '**रामः ईश्वरो यस्याऽसौ रामेश्वरः**' (बहुब्रीहि) अर्थात् इस शिवलिङ्गके—मेरे जीवनसार सर्वस्व एकमात्र स्वामी श्रीरामजी हैं अतः यह शिवलिङ्ग रामेश्वर है। स्वामी और सेवककी—श्रीराम और लक्ष्मणकी प्रेमपरिप्लुत वाणी सुनकर ब्रह्मादि देवता और बड़े-बड़े महर्षि गद्गद हो गये। वे कहने लगे कि आप दोनोंमें अभेद सम्बन्ध है। '**रामश्चासावीश्वरश्च**' (कर्मधारय)

रामस्तत्पुरुषं वक्ति बहुब्रीहिं महेश्वरः।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे ब्रह्माद्या कर्मधारयम्॥

श्रीरामजी चाहे जितना भी सम्मान दें परन्तु श्रीशङ्करजी तो अपना नित्यदासत्व ही स्वीकार करते हैं। उन्हींके अवतार श्रीहनुमान्जीने जब आज अपने परम प्रियतम श्रीरामजीका दर्शन किया तब उनका मस्तक स्वयमेव विनम्र हो गया—'**विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च**'।

श्रीहनुमान्जीने पूछा—आप दोनोंके रूप अत्यन्त स्निग्ध हैं, आपके दिव्य विग्रहकी कान्ति बहुत सुन्दर है, आप दोनों इस वन्यप्रदेशमें किस कारणसे आये हैं?

देशं कथमिमं प्राप्तौ भवन्तौ वरवर्णिनौ।

(४। ३। ६)

हे वीरो! आप दोनोंकी प्रभासे यह पर्वतेन्द्र ऋष्यमूक अवभाषित हो रहा है—सुप्रकाशित हो रहा है। आपलोग तो देवतुल्य हैं तथा राज्य करने योग्य हैं, इस दुर्गम प्रदेशमें आपका आगमन किस प्रयोजनसे हुआ है—

प्रभया पर्वतेन्द्रोऽसौ युवयोरवभासितः।
राज्यार्हावमरप्रख्यौ कथं देशमिहागतौ॥

(४। ३। ११)

सिंहस्कन्धौ महोत्साहौ समदाविव गोवृषौ।
आयताश्च सुवृत्ताश्च बाहवः परिघोपमाः॥
सर्वभूषणभूषार्हाः किमर्थं न विभूषिताः।

(४। ३। १४-१५)

श्रीहनुमान्जी कहते हैं कि हे वीरो! आप दोनोंके कन्धे सिंहकी तरह हैं। आप दोनों महान् उत्साहसे भरे हैं। आप दोनों मदोन्मत्त वृषभकी तरह—साँड़ोंकी तरह ज्ञात हो रहे हैं। आप दोनोंकी भुजाएँ जानुपर्यन्त लम्बिनी हैं और हस्तीके शुण्डादण्डकी तरह किं वा, सर्पकी देहकी तरह गोल-गोल हैं, आपकी भुजाएँ परिघकी तरह सुदृढ़ हैं। '**परिघोपमाः परिघो गदाविशेषः तदुपमाः स्वसौन्दर्यानुभवपराणां-समस्तविरोधिनिवर्तनक्षमाः**'। (श्रीगोविन्दराज) परिघ गदाविशेषका नाम है, परिघकी उपमा देनेका भाव यह है कि आपकी भुजाएँ आपके भक्तोंके समस्त विरोधियोंके निवर्तनमें समर्थ हैं। श्रीहनुमान्जी एक विचित्र-सा प्रश्न करते हैं कि आपकी भुजाएँ समस्त आभूषण धारण करनेयोग्य हैं, फिर भी आपने इन्हें अलङ्कारोंसे अलङ्कृत क्यों नहीं किया है? ''**सर्वभूषणभूषार्हाः आभरणस्याभरणमित्युक्तरीत्या भूषणान्यपि भूषयितुमर्हाः किमर्थं न विभूषिताः, इमान् भूषणै**

रलङ्कृत्य आमरणाभरणत्वं किमितिन प्रकाशितमित्यर्थः। यद्वा—दृष्टिदोषपरिहाराय एतादृशबाहुसौन्दर्यमाच्छादयितव्यं तत् किमर्थं नाच्छादितमिति भावः। यद् वा—आभरणच्छन्न सौन्दर्यमेवालमस्मद् वशीकरणाय अधिकं निरावरण सौन्दर्यप्रदर्शनमिति भावः। यद् वा—एवं भूषणविरहः कस्य वा शत्रोर्मूलघातायेति भावः'। अर्थात् कहा गया है कि ठाकुरजीकी मङ्गलमयी भुजाएँ एवं उनके दिव्य श्रीअङ्ग आभूषणोंको भी आभूषित करते हैं। भाव कि उनका दिव्य श्रीविग्रह आभूषणोंसे सुशोभित नहीं होता है अपितु श्रीअङ्ग में धारण करनेसे, उनका आश्रय लेनेपर आभूषण ही आभूषित हो जाते हैं, उनका आभूषण नाम सार्थक हो जाता है। श्रीहनुमान्जी पूछते हैं कि इन आभूषणोंसे अपनी भुजाओंको आभूषित करके उनका आभरणत्व क्यों नहीं सुप्रकाशित किया है आपने? अथवा, अपने सुन्दर शरीरको आच्छादित करके—ढँक करके लोगोंकी दृष्टिसे बचाया जाता है जिससे किसीकी नजर न लग जाय। आपने अपनी इतनी सुन्दर भुजाओंको सामान्य जनकी दुष्ट दृष्टिसे सुरक्षित रखनेके लिये आभूषणोंसे इन भुवनमोहिनी भुजाओंको आच्छादित क्यों नहीं किया है? अथवा, हमारी तरह भक्तोंको मुग्ध करनेके लिये तो आभूषणोंसे आच्छादित भुजाएँ ही पर्याप्त हैं। फिर आप निरावरण सौन्दर्य क्यों प्रदर्शित कर रहे हैं? किं वा, संसारमें एक प्रचलित प्रथा है कि बहुत-से लोग प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि अमुक कार्य जबतक पूर्ण न कर लेंगे तबतक अमुक वस्तु नहीं धारण करेंगे। आपने किस शत्रुका मूलसे उन्मूलन करनेके लिये आभूषणोंको धारण करना त्याग दिया है?

श्रीहनुमान्जी कहते हैं कि आप इतने बड़े वीर हैं कि समस्त समुद्रों और वनोंके साथ विन्ध्य और सुमेरु आदि पर्वतोंसे विभूषित समस्त भूमण्डलका संरक्षण अपने पराक्रमसे कर सकनेमें सर्वथा समर्थ हैं—योग्य हैं, ऐसी मेरी मान्यता है—

उभौ योग्यावहं मन्ये रक्षितुं पृथिवीमिमाम्॥
ससागरवनां कृत्स्नां विन्ध्यमेरुविभूषिताम्।

(४। ३। १५-१६)

इतने प्रश्नोंके पश्चात् भी जब श्रीरामजी और लक्ष्मणजी नहीं बोले तब श्रीहनुमान्जीने कहा—मैं इस तरह पुनः-पुनः आपसे बात कर रहा हूँ, आपलोग मुझसे बात क्यों नहीं कर रहे हैं—मेरे प्रश्नका उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं?

एवं मां परिभाषन्तं कस्माद् वै नाभिभाषतः॥

(४। ३। १९)

मैं वानरेन्द्र सुग्रीवके भेजनेसे आपके पास आया हूँ। मेरा नाम हनुमान् है, मैं भी वानरजाति-का ही हूँ—

प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना।
राज्ञा वानरमुख्यानां हनुमान् नाम वानरः॥
युवाभ्यां स हि धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति।
तस्य मां सचिवं वित्तं वानरं पवनात्मजम्॥

(४। ३। २१-२२)

धर्मात्मा वानरेन्द्र सुग्रीव आप दोनोंसे सख्य सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। मुझे आप दोनों उन्हींका मन्त्री जानें। मैं पवनदेवताका वानर-जातीय पुत्र हूँ। सुग्रीवका हित-सम्पादन करनेके लिये आया हूँ।

श्रीरामजी प्रसन्न होकर बोले—हे सुमित्राकुमार! ये महामनस्वी वानरराज सुग्रीवके सचिव हैं। सुग्रीवका हित-सम्पादन करनेके लिये यहाँ मेरे सन्निकट आये हैं—

सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
तमेव काङ्क्षमाणस्य ममान्तिकमिहागतः॥

(४। ३। २६)

हे सुमित्रानन्दन! श्रीहनुमान्जी वाक्यके

तत्त्वको समझनेवाले हैं इसलिये तुम इनसे स्नेहपूर्वक मधुर वाणीमें वार्तालाप करो।

परम गुणग्राही श्रीरामजी कहते हैं—हे सुमित्रानन्दसंवर्द्धन! यह पवननन्दन श्रीहनुमान् सकल वेदशास्त्रसम्पन्न हैं। इनका ज्ञान-भण्डार असीमित है—ये अगाध बोध हैं। हे लक्ष्मण! जिसने ऋग्वेदकी शिक्षा नहीं पायी, जिसने यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया और जो सामवेदका विद्वान् नहीं, वह इस प्रकार गूढ़, अर्थगम्भीर और सुन्दर भाषामें बात नहीं कर सकता है—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥

(४।३।२८)

ऋक्, यजु और साम तीनों वेदोंके साथ 'नञ्' के प्रयोगसे व्यतिरेक मुखसे वर्णनकी दृढ़ताकी ओर सङ्केत है—'**प्रत्येकं नञ्प्रयोगात् दार्ढ्यार्थं व्यतिरेकमुखेनोक्तिः**' (श्रीगोविन्दराज)।

श्रीरामजी कहते हैं—हे लक्ष्मण! यह केवल वेदपाठी नहीं हैं—इन्होंने केवल वेदाध्ययन ही नहीं किया है अपितु व्याकरण आदि वेदाङ्गोंका भी इन्हें भलीभाँति ज्ञान है। व्याकरणमें भी मात्र सन्धिज्ञान नहीं है, इन्होंने सूत्र, वृत्ति, वार्तिक और भाष्य आदि सबका—समस्त अङ्गोंका स्वाध्याय किया है; क्योंकि अनेक प्रकारकी बात करनेपर भी इनके मुखसे अपशब्द—अशुद्ध शब्द नहीं निकला—

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्॥

(४।३।२९)

व्याकरण-अध्ययन किया है; अतः अपशब्द-का प्रयोग नहीं हुआ। समस्त व्याकरण पढ़ा है अतः कोई भी अपशब्दका प्रयोग नहीं हुआ। प्रकृति, प्रत्यय, समास, सन्धि आदिकी कोई अशुद्धि नहीं है। एक बार श्रवणसे—पढ़नेसे अपशब्द—अशुद्धिका रह जाना सम्भव है, परन्तु बार-बार सुननेसे अशुद्धिका प्रश्न ही नहीं रह जाता है—'**अपशब्दितं अपकृष्टं न शब्दितम्। अत्रादौ यद् इति अध्याहार्यम्। व्याकरणं श्रुतं अतो नापशब्दितम्, कृत्स्नं श्रुतमतो न किञ्चिदपशब्दितम्। प्रकृतिप्रत्ययसमास सन्ध्यादिषु किञ्चिदपि नापभ्रंशितमित्यर्थः। बहुधा श्रुतमेक-वार श्रवणे क्वचिदन्यथा भावोऽपि स्यात्।)**

केवल शब्दका उच्चारण शुद्ध हो इतना ही पर्याप्त नहीं है। ललाटपर रेखाएँ खिंचती जा रही हैं, आँखें ललाटपर चढ़ती जा रही हैं, नासिकाके छिद्र भी चढ़ते जा रहे हैं, आँखें बन्द हुई जा रही हैं। ये सब दोष हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्र कह रहे हैं—हे लक्ष्मण! ये जब हमसे सम्भाषण कर रहे थे उस समय इनके मुख, आँख, ललाट, नासिकारन्ध्र और भौंहें तथा शरीरके अन्य सब अङ्गोंसे भी कोई दोष नहीं व्यक्त हुआ—

न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित्॥

(४।३।३०)

हे सुमित्राकुमार! इन्होंने अपने भाषणका इतना विस्तार नहीं किया कि लोग सुनते-सुनते ऊब जायँ और न इतना संक्षेप ही किया कि लोग समझ ही नहीं पायें। इन्होंने थोड़े शब्दोंमें अधिक भाव व्यक्त किया है। इनकी बात स्पष्ट थी, समझनेमें कोई शङ्का नहीं हुई। अपनी बात कहनेमें इन्होंने शीघ्रता भी नहीं की और विलम्ब भी नहीं किया। इनकी वाणी हृदयमें मध्यमारूपसे स्थित है और कण्ठसे वैखरीरूपमें प्रकट होती है एतावता बोलते समय इनकी वाणी न बहुत धीमी होती है और न बहुत ऊँची होती है। मध्यमस्वरसे इन्होंने बात की है—

अविस्तरमसन्दिग्धमविलम्बितमव्यथम्।
उरःस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम्॥

(४।३।३१)

श्रीरामजी कहते हैं—हे लक्ष्मण! जिस राजा-के पास श्रीहनुमान्‌जीके समान दूत न हो उनके कार्योंकी गति—सिद्धि कैसे सम्पन्न हो सकती है?

एवंविधो यस्य दूतो न भवेत् पार्थिवस्य तु।
सिद्ध्यन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयोऽनघ॥

(४। ३। ३४)

इस श्लोककी व्याख्या करते हुए श्रीगोविन्दराजजी लिखते हैं—'**एवं हनुमतोवाक् चातुरीमभिनन्द्य बुद्धिचातुरीमभिनन्दति—एवं विधः एवं प्रष्टा अस्मत् प्रशंसा व्याजेन कुलगोत्रनामधेय राज्यत्यागकारणादीनां प्रष्टा**'। इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जीकी वाक्-चातुरीका अभिनन्दन करके भगवान् श्रीराम अब उनके बुद्धि-चातुर्यका अभिनन्दन करते हैं। इस प्रकार अपने प्रश्नमें श्रीहनुमान्‌जीने हमारी प्रशंसाके व्याजसे हमारे कुल, गोत्र, नाम, राज्यत्यागके कारणको पूछ लिया है। ठाकुरजीके इस प्रकार कहनेपर वाक्यज्ञ—बोलनेकी कलामें कुशल श्रीलक्ष्मणजी वाक्यज्ञ—वार्तालाप करनेकी कलामें दक्ष, सुग्रीवजीके मन्त्री श्रीहनुमान्‌जीसे इस प्रकार बोले—

एवमुक्तस्तु सौमित्रिः सुग्रीवसचिवं कपिम्।
अभ्यभाषत वाक्यज्ञो वाक्यज्ञं पवनात्मजम्॥

(४। ३। ३६)

श्रीलक्ष्मणजीने कहा—हे विद्वन्! महामना सुग्रीवके गुण हमें कबन्धके मुखसे पहले ही परिज्ञात हो चुके हैं। हम दोनों भाई वानरेन्द्र सुग्रीवको खोजते हुए यहाँतक आये हैं—

विदिता नौ गुणा विद्वन् सुग्रीवस्य महात्मनः।
तमेव चावां मार्गावः सुग्रीवं प्लवगेश्वरम्॥

(४। ३। ३७)

हे हनुमान्‌जी! आपने सुग्रीवके वचनके अनुसार यहाँ आकर जो उनकी मित्रताकी चर्चा की वह सम्बन्ध हमें स्वीकार है। हम आपके ही कहनेसे उनसे मित्रता कर सकते हैं। श्रीगोविन्दराजजी कहते हैं—'जो आचार्याभिमाननिष्ठ लोग हैं उनका कार्य आचार्यके वचनोंसे ही मैं कर दूँगा' यह भगवान्‌की प्रतिज्ञा इस प्रसङ्गसे सूचित की गयी है। '**अनेन एतावत् आचार्याभिमाननिष्ठाः तेषां कार्यं तद्वचनादेव करिष्यामीति भगवतः प्रतिज्ञा सूचिता**'। इस सर्गका—किष्किन्धाकाण्डके तृतीय सर्गकी कथाका श्रवण करनेका और इसके पाठका अत्यन्त श्रेष्ठ महत्त्व कहा गया है।

मारुति प्रेषणं श्रुत्वा सद्‌गुरुं लभते नरः।
राममारुति संवादं श्रवणाद् राज्यमाप्नुयात्॥

(स्कन्दपुराण)

श्रीहनुमान्‌ने कहा—हे राघवेन्द्र! पम्पातटवर्त्ती काननमण्डित यह वन घोर और दुर्गम है। इसमें अनेक प्रकारके नरभक्षी हिंस्र पशु रहते हैं। आप अपने अनुज श्रीलक्ष्मणके साथ यहाँ किस लिये पधारे हैं?

किमर्थं त्वं वनं घोरं पम्पाकाननमण्डितम्।
आगतः सानुजो दुर्गं नानाव्यालमृगायुतम्॥

(४। ४। ४)

इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जीके प्रश्न करनेपर श्रीलक्ष्मणजीने भगवान् श्रीरामका परिचय दिया। हे श्रीहनुमान्‌जी! अनेक प्रकारके यज्ञ करनेवाले, धर्मवत्सल, विश्वविश्रुत श्रीदशरथनामके राजा सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए। हे पवननन्दन! सब प्राणियोंके शरण्य, पिताजीकी आज्ञा पालन करनेवाले, श्रीदशरथजीके चारों पुत्रोंमें सबसे अधिक गुणवान्—शीलवान् श्रीरामजी हैं—

शरण्यः सर्वभूतानां पितुर्निर्देशपारगः।
ज्येष्ठो दशरथस्यायं पुत्राणां गुणवत्तरः॥

(४। ४। ९)

श्रीरामजी पिताजीकी आज्ञाके कारण वन चले आये। इनकी धर्मपत्नी श्रीसीताजी भी साथमें थीं। मैं इनका छोटा भाई हूँ मेरा नाम लक्ष्मण है—इनका कैंकर्य ही मेरी शोभा है। ये कृतज्ञ

और बहुज्ञ हैं। ये अपने भक्तोंके थोड़ेसे किये हुए कार्यको बहुत करके जानते हैं— '**अल्पमपि कृतं बहुतया जानीते इत्यर्थः**'। इनके इस प्रकारके अनेक गुणोंने मेरे हृदयको अपने वशमें कर लिया है; इसलिये मैं इनका दास हूँ—

अहमस्यावरो भ्राता गुणैर्दास्यमुपागतः।
कृतज्ञस्य बहुज्ञस्य लक्ष्मणो नाम नामतः॥

(४। ४। १२)

मेरे भाई श्रीरामचन्द्रजीकी प्राणप्रिया पत्नीको किसी मायावी और कामरूप राक्षसने हरण कर लिया है। अभी उनका पता नहीं लगा है। कबन्धने श्रीसुग्रीवकी प्रशंसा करके कहा कि आप उनके पास चले जायँ, वे सीताजीका पता लगायेंगे। तदनुसार हमलोग यहाँ आये हैं। मैंने आपके प्रश्नका ठीक-ठीक उत्तर दे दिया। सम्प्रति हम दोनों भाई श्रीसुग्रीवकी शरणमें आये हैं—

एतत्ते सर्वमाख्यातं याथातथ्येन पृच्छतः।
अहं चैव च रामश्च सुग्रीवं शरणं गतौ॥

(४। ४। १७)

जो पहले सम्पूर्ण जगत्के नाथ—संरक्षक थे, वे आज सुग्रीवको अपना नाथ—रक्षक बनाना चाहते हैं—

लोकनाथः पुरा भूत्वा सुग्रीवं नाथमिच्छति॥

(४। ४। १८)

श्रीसीताजी जिनकी पुत्रवधू हैं, जो परम शरण्य और धर्मवत्सल थे, उन्हीं चक्रवर्त्तीनरेन्द्र श्रीदशरथके पुत्र परम शरण्य श्रीराम आज श्रीसुग्रीवकी शरणमें आये हैं—

सीता यस्य स्नुषा चासीच्छरण्यो धर्मवत्सलः।
तस्य पुत्रः शरण्यश्च सुग्रीवं शरणं गतः।

(४। ४। १९)

मेरे धर्मात्मा बड़े भाई रघुनन्दन इस समय सुग्रीवकी शरणमें आये हैं—

गुरुर्मे राघवः सोऽयं सुग्रीवं शरणं गतः॥

(४। ४। २०)

हे हनुमान्जी! जिनके प्रसन्न होनेपर यह समस्त प्रजा प्रसन्न हो जाती थी, वे ही श्रीराम आज वानरराज सुग्रीवकी प्रसन्नता चाहते हैं—

यस्य प्रसादे सततं प्रसीदेयुरिमाः प्रजाः।
स रामो वानरेन्द्रस्य प्रसादमभिकाङ्क्षते॥

(४। ४। २१)

करुणापूर्ण वाणीमें इतना कहते-कहते श्रीलक्ष्मणजीकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी—स्नेहकी गङ्गा, यमुना समुच्छलित हो गयी। श्रीहनुमान्जीने आश्वस्त करते हुए कहा—हे सुमित्रानन्दन! वानरेन्द्र सुग्रीवको आपके श्रीचरणोंकी शरणागति आवश्यक थी। उनका सौभाग्य है कि आप स्वयं पधार गये हैं। सूर्यपुत्र सुग्रीव श्रीसीताजीका पता लगानेंमें आप दोनोंको पूर्ण सहयोग प्रदान करेंगे। अच्छा, अब हमलोग सुग्रीवके पास चलें। ऐसा कहकर श्रीहनुमान्जी भिक्षुरूपका परित्याग कर वानररूप धारण करके उन दोनों वीरोंको अपनी पीठपर बिठाकर चल दिये—

भिक्षुरूपं परित्यज्य वानरं रूपमास्थितः।
पृष्ठमारोप्य तौ वीरौ जगाम कपिकुञ्जरः॥

(४। ४। ३४)

श्रीसुग्रीवके पास पहुँचकर श्रीहनुमान्जीने कहा—हे महाप्राज्ञ! दृढ़विक्रम—अजेय पराक्रम और सत्यविक्रम—अमोघपराक्रम किं वा, सत्यके परिपालन करनेके लिये ही जिनका पराक्रम है '**सत्याय सत्य परिपालनाय विक्रमो यस्य सः सत्य-विक्रमः**'। किंवा, सत्यके परिपालन करनेके लिये ही जिसका विक्रम—पादविन्यास अर्थात् यात्रा होती है उसे सत्यपराक्रम कहते हैं—'**सत्याय सत्य परिपालनाय विक्रमः पादन्यास; यस्यसः सत्यविक्रमः**। वे श्रीरामजी अपने भाई श्रीलक्ष्मणके साथ पधारे हैं—'

अयं रामो महाप्राज्ञ सम्प्राप्तो दृढविक्रमः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामोऽयं सत्यविक्रमः॥

(४। ५। २)

वे अपने पिताका वचन पालन करनेके लिये वनमें आये हैं। मुनियोंका नियम पालन करते हुए दण्डकारण्यमें रहते थे। एक दिन मायावी रावणने उनकी पत्नीका हरण कर लिया। वे आपसे मित्रता करना चाहते हैं। श्रीहनुमान्‌जीकी बात सुनकर श्रीसुग्रीव बड़े उत्साहसे श्रीरामके पास आकर अत्यन्त प्रेमसे बोले—हे श्रीरामचन्द्रजी! वायुनन्दन श्रीहनुमान्‌ने आपके गुणोंका तत्त्वतः—यथार्थ वर्णन किया है। श्रीसुग्रीवने बड़ी विनयपूर्ण वाणीमें अपने हृदयको और स्पष्ट करते हुए कहा है। हे रघुनन्दन! मैं तो आपसे मित्रता करना ही चाहता हूँ, परन्तु चञ्चल चपल वानरजातिके कारण अपना हार्दिक भाव अभिव्यक्त नहीं कर पा रहा हूँ। हे प्रभो! यदि आप मुझ चञ्चल चपल वानरसे मित्रता करना चाहते हैं तो यह मेरा सौभाग्य है। इसमें तो मेरा ही सम्मान है और मुझे ही उत्तम लाभ मिल रहा है। हे राघव! यदि आपको मुझसे मित्रता करना अच्छा लग रहा है तो मेरा यह दक्षिण हस्त मित्रताके लिये—कृतार्थ होनेके लिये—शरणागति प्राप्त करनेके लिये किं बहुना सौभाग्यकी याचना करनेके लिये फैला हुआ है। इसे आप अपने हस्त कमलसे स्वीकार करें—

तन्ममैवैष सत्कारो लाभश्चैवोत्तमः प्रभो।
यत्त्वमिच्छसि सौहार्दं वानरेण मया सह॥
रोचते यदि मे सख्यं बाहुरेष प्रसारितः।
गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादा बध्यतां ध्रुवा॥

(४। ५। १०-११)

हाथ-में-हाथ लेनेका भाव स्पष्ट करते हुए रामायणशिरोमणि टीकाकार लिखते हैं, '**पाणिना स्वहस्तेन पाणिः ममहस्तः गृह्यतां ध्रुवा अचाल्या मर्यादा गृहीत करो न त्यक्तव्य इत्याकारकसदाचारः गृह्यतां स्वीक्रियताम्**'। अर्थात् अपने मङ्गलमय हस्तकमलमें मेरा फैला हुआ हाथ लें। यह एक निश्चित और स्थिर मर्यादा है कि हाथ-में-हाथ ग्रहण करके उसका परित्याग नहीं किया जाता है। मेरा हाथ अपने हाथमें लेकर हे श्रीराम! इस सदाचारको स्वीकार करें।

श्रीसुग्रीवके इस सुभाषित अर्थात् स्नेहपूर्ण और स्पष्ट युक्तिको श्रवण करके श्रीरामजीका मन प्रहृष्ट नहीं 'सम्प्रहृष्ट' हो गया।

'सम' और 'प्र' इन दोनों उपसर्गोंसे 'हृष्ट' में—इस प्रसन्नतामें चार चाँद लग गये हैं। श्रीठाकुरजीने अपने दक्षिण हस्तकमलसे सुग्रीवका दक्षिण हाथ पकड़कर दबाया मानो मित्रवत्सल श्रीरामजी कह रहे हैं—हे मेरे मित्र! मैं जिसका हाथ एक बार पकड़ लेता हूँ उसे कदापि कथमपि किसी भी परिस्थितिमें नहीं छोड़ता हूँ। श्रीरामजीने केवल हाथ-से-हाथ नहीं मिलाया अपितु सौहार्दका आश्रय लेकर प्रसन्न होकर शोकार्त्त सुग्रीवको शरणागतवत्सलने अपने हृदयसे लगाकर गाढालिङ्गन प्रदान कर दिया—

एतत्तुवचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम्।
सम्प्रहृष्टमना हस्तं पीडयामास पाणिना॥
हृष्टः सौहृदमालम्ब्य पर्यष्वजत पीडितम्।

(४। ५। १२। १३)

इस प्रकार जब श्रीरामजी और सुग्रीवने—नरराज और वानरराजने एक-दूसरेका हाथ अपने हाथमें लेकर जीवनभर निभानेकी प्रतिज्ञा कर ली तब श्रीहनुमान्‌जीने आगेका कार्य आरम्भ किया। हनुमान्‌जीने सोचा कि सत्कर्ममें विलम्ब नहीं करना चाहिये; अतः अग्निप्राकट्यमें अत्यन्त शीघ्रता की। श्रीहनुमान्‌जीने तत्काल दो यज्ञीय काष्ठोंको—शमीकाष्ठोंको रगड़कर अग्नि प्रकट की। अग्निदेवका फूलोंके द्वारा आदरपूर्वक पूजन किया—

काष्ठयोः स्वेन रूपेण जनयामास पावकम्।
दीप्यमानं ततो वह्निं पुष्पैरभ्यर्च्य सत्कृतम्॥

(४। ५। १४)

तदनन्तर एक-दूसरेका हाथ पकड़कर अग्निकी प्रदक्षिणा की और दोनों एक-दूसरेके मित्र बन गये—

ततोऽग्निं दीप्यमानं तौ चक्रतुश्च प्रदक्षिणम्॥
सुग्रीवो राघवश्चैव वयस्यत्वमुपागतौ।

(४। ५। १५-१६)

जैसे विवाहके अवसरपर अग्निकी प्रदक्षिणा की जाती है और वर-वधूका पाणिग्रहण होता है। उसी प्रकार पहले मित्रता स्थापित करनेके लिये भी अग्निको साक्षी बनाकर हाथ-से-हाथ मिलाया जाता था।

श्रीसुग्रीवने कहा—आप मेरे प्रिय मित्र हैं। आजसे हम दोनोंका दुःख-सुख एक है—

त्वं वयस्योऽसि हृद्यो मे ह्येकं दुःखं सुखं च नौ॥

(४। ५। १७)

भगवान् श्रीरामने भी कहा—मैं तुम्हारी धर्मपत्नीके अपहरण करनेवाले वालीका वध कर दूँगा—

वालिनं तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम्।

(४। ५। २६)

श्रीसुग्रीव और श्रीरामके इस प्रणय-प्रसङ्गमें—मैत्रीके प्रसङ्गमें श्रीसीताजीके कमलकी तरह नेत्र, कपिराज वालीके पिङ्गाक्षत्वेन स्वर्णकी तरह नेत्र और निशाचरोंके—रावण-मेघनाद आदिके अग्निके समान नेत्र—तीनोंके वाम नेत्र एक साथ ही फड़कने लगे—

सीताकपीन्द्रक्षणदाचराणां
राजीवहेमज्वलनोपमानि ।
सुग्रीवरामप्रणयप्रसङ्गे
वामानि नेत्राणि समं स्फुरन्ति॥

(४। ५। ३१)

श्रीसुग्रीवने श्रीरामजीको आश्वस्त करते हुए कहा—हे शत्रुसूदन श्रीराम! श्रीसीताजी रसातलमें हों या नभस्तल—आकाशमें मैं उन्हें खोजकर आपकी सेवामें अर्पित कर दूँगा—

रसातले वा वर्तन्तीं वर्तन्तीं वा नभस्तले।
अहमानीय दास्यामि तव भार्यामरिंदम॥

(४। ६। ६)

श्रीसुग्रीवने कहा—हे रघुनन्दन! मैंने 'हा राम! हा राम! हा लक्ष्मण!' कहकर विलाप करती हुई दूसरेके वशमें पड़ी हुई श्रीसीताजीको आकाशमार्गसे जाते हुए देखा है। हे श्रीरामजी! अपने चारों मन्त्रियोंके साथ पाँचवाँ मैं इस पर्वतके उत्तुङ्ग शिखरपर बैठा था, मुझे देखकर श्रीजानकीजीने अपना उत्तरीय वस्त्र और कई शुभ—मङ्गलमय आभूषण आकाशसे गिराये। हमलोगोंने उन्हें लेकर यत्नपूर्वक सुरक्षित रख लिया है। मैं उन्हें अभी लाता हूँ, आप उन्हें पहचान सकते हैं। तब श्रीरामने तुरन्त कहा—हे मित्र! शीघ्र लाओ विलम्ब क्यों करते हो?

आत्मना पञ्चमं मां हि दृष्ट्वा शैलतले स्थितम्।
उत्तरीयं तया त्यक्तं शुभान्याभरणानि च॥
तान्यस्माभिर्गृहीतानि निहितानि च राघव।
आनयिष्याम्यहं तानि प्रत्यभिज्ञातुमर्हसि॥
तमब्रवीत् ततो रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम्।
आनयस्व सखे शीघ्रं किमर्थं प्रविलम्बसे॥

(४। ६। ११—१३)

अन्तिम श्लोकमें महर्षि वाल्मीकिने सुग्रीवको प्रियवादी कहा है— '**सुग्रीवं प्रियवादिनम्**'। श्रीसुग्रीवने कहा है—'**कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेसकुमारी**'॥ इससे बढ़कर और प्रियवादिता क्या हो सकती है? किं बहुना, वानरराज सुग्रीवने श्रीमिथिलेशकुमारीका चरित्र बड़े प्रेमसे गाया है, एतावता 'प्रियवादी' हैं। 'प्रियवादी' का अर्थ ही है प्रियाजीका गुणगान करनेवाला। प्रभुकी आज्ञा प्राप्त करके श्रीसुग्रीव अविलम्ब श्रीरामजीका प्रियसम्पादन करनेकी कामनासे गुफामें गये और वस्त्राभूषण लाकर

श्रीरामजीको दिखा दिये तथा दे दिये। गुफाका विशेषण दिया है 'गहनाम्' जिसका अर्थ है— '**अन्यैर्दुर्गमाम्**'। अर्थात् यह श्रीसुग्रीवका चरित्र है कि अपना दायित्व समझकर उन वस्त्राभरणोंको ज्यों-का-त्यों रखा है और सुरक्षित रखा है। कोई कठिन प्रयास करके भी उसे नहीं पा सकता है—

एवमुक्तस्तु सुग्रीवः शैलस्य गहनां गुहाम्।
प्रविवेश ततः शीघ्रं राघवप्रियकाम्यया॥
उत्तरीयं गृहीत्वा तु स तान्याभरणानि च।
इदं पश्येति रामाय दर्शयामास वानरः॥

(४। ६। १४-१५)

श्रीसीताजीके उत्तरीय वस्त्र और मङ्गलमय आभूषणोंको सुग्रीवसे लेकर श्रीरामजी रुदन करने लगे। उनका दिव्य मुखचन्द्र आँसुओंसे उसी प्रकार संरुद्ध हो गया जैसे नीहारसे आवृत चन्द्रमा अवरुद्ध हो जाता है। श्रीसीतावियोगजन्य अश्रुप्रवाहसे श्रीरामके कपोल और वक्षःस्थल भीग गये। वे 'हा प्रिये' ऐसा कहकर अधीर होकर पृथ्वीपर धड़ामसे गिर गये—

ततो गृहीत्वा वासस्तु शुभान्याभरणानि च।
अभवद् बाष्पसंरुद्धो नीहारेणेव चन्द्रमाः॥
सीतास्नेहप्रवृत्तेन स तु बाष्पेण दूषितः।
हा प्रियेति रुदन् धैर्यमुत्सृज्य न्यपतत् क्षितौ॥

(४। ६। १६-१७)

चम्पू रामायणकार लिखते हैं कि श्रीरामजीने श्रीजानकीजीके आभूषणोंको हाथमें लेकर इतना रुदन किया कि वे आभूषण उनके अश्रुजलोंसे धुल गये। उनका मलापनयन हो गया—

प्रत्यर्पितानां कपि पुङ्गवेन रामः स्वकान्ताधृतभूषणानाम्।
संस्कारहान्यात् परिधूसराणां प्रक्षालनं वाष्पजलैश्चकार॥

(चम्पूरामायण ४। १०)

श्रीठाकुरजीने उन आभूषणोंको भावविह्वल होकर अपने प्रियभ्राता श्रीलक्ष्मणको दिखाया। अपनी मातृकल्पा श्रीजनकनन्दिनीके आभूषणोंको देखकर श्रीलक्ष्मणजीने कहा—हे नाथ! मैं इन बाजूबन्दोंको तो नहीं जानता हूँ और न इन कुण्डलोंको ही जान पाता हूँ कि किसके हैं; परन्तु हे सीतापते! प्रतिदिन अपनी स्वामिनीके श्रीचरणोंमें अभिवादन करनेके कारण इन दिव्य वन्दनीय नूपुरोंको मैं अवश्य पहचान रहा हूँ कि ये हमारी माता श्रीसीताके ही हैं—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले॥
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।

(४। ६। २२-२३)

इस प्रसङ्गको इसी भावके साथ महात्मा श्रीरसिक विहारीजीने अपने ग्रन्थ रामरसायनमें इस प्रकार लिखा है—

पुनि बोले वरबन्धुसे राघव अति विलपाय।
भूषण प्राण अधार के लखो लखन ये आय॥
रामानुज कर लै निरखि भरे नीर दुहु नैन।
गद्गद कण्ठ सनेहमय कहै सत्य वर वैन॥

अमल अमोल गोल कुण्डल प्रकाशमान
ऐसो दरसात कोऊ राज भामिनी को है।
तैसेही अमन्द भुजबन्द चन्द ते दुचन्द
दीपति सुदिव्य द्युतिहारी दामिनी को है॥
परम पुनीत पद भूषण अनूप चारु
पूजनीय संतत त्रिलोक नामिनी को है।
रसिक विहारी और नहिं पहिचानें एक
जानें यह नूपुर हमारी स्वामिनीको है॥
भूषन सुलेत ही पिछाने निज लाड़िली के
हिय हुलसायो अति रसिक विहारी को।
करि करि प्यार फेरि फेरि तिहि हेरैं
श्याम कलित केयूर मञ्जुरूप उजियारी को॥
चूमि चूमि कुण्डल निहारैं नेह ऊमि ऊमि
वार वार धारैं कर जानि सुकुमारी को।
भरि भरि नैन वैन बोलैं उर लाइ लाइ
हाय यह नूपुर हमारी प्राणप्यारी को है॥

यों सिय भूषण हेरिकै प्रेम विवश रघुवीर।
करत विलाप विहाल अति तनमन भयो अधीर॥

आभूषणोंको देखकर श्रीरामचन्द्रजीकी अत्यन्त व्याकुलता देखकर श्रीसुग्रीवजी प्रेमसे प्रबोधन करते हुए कहते हैं—हे रघुनन्दन! मैं बद्धाञ्जलि होकर अपने हार्दिक स्नेहके कारण आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझपर प्रसन्न हों। आप अपने स्वाभाविक पौरुषका समाश्रयण करें। शोकको अपने ऊपर प्रभाव डालनेका अवसर न दें। जो शोकको प्रश्रय देते हैं, उनका सुख समाप्त हो जाता है और तेज भी क्षीण हो जाता है। अतः आप शोक न करें। हे प्रभो! जबतक शोक रहता है तबतक हृदयमें धैर्य आता ही नहीं है, एतावता आप केवल धैर्यका अवलम्बन करें—

एषोऽञ्जलिर्मया बद्धः प्रणयात् त्वां प्रसादये।
पौरुषं श्रय शोकस्य नान्तरं दातुमर्हसि॥
ये शोकमनुवर्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम्।
तेजश्च क्षीयते तेषां न त्वं शोचितुमर्हसि॥

(४। ७। ११-१२)

सम्भवतः अपनी वाणीका कोई प्रभाव होते न देख करके श्रीसुग्रीव कार्पण्यका अवलम्बन करके पुनः निवेदन करते हैं। हे प्रभो! मैं तो मित्रताकी भावनासे आपके हितकी बात कह रहा हूँ। आपको उपदेश नहीं दे रहा हूँ; आपको उपदेश देनेकी सामर्थ्य भी किसमें है? आप मेरे सख्यभावका सम्मान करें और मुझे प्रसन्न करनेके लिये शोकका सर्वथा परित्याग कर दें—

हितं वयस्यभावेन ब्रूहि नोपदिशामि ते।
वयस्यतां पूजयन् मे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

(४। ७। १४)

श्रीसुग्रीवजीकी इस मधुर वाणीका उनकी सान्त्वनाका, उनके कार्पण्यका, उनके सख्यभावका और उनके हितोपदेशका श्रीरामजीपर सद्यः प्रभाव हुआ। उन्होंने श्रीसीतावियोगजन्य अश्रुकणोंसे भीगे अपने मुखारविन्दको अपने उत्तरीयसे परिमार्जन कर लिया। शोकका परित्याग करके, प्रकृतिस्थ होकर श्रीरामजीने अपने हितैषी मित्रको अपने विशाल और करुणामय उदार हृदयसे लगा लिया—

मधुरं सान्त्वितस्तेन सुग्रीवेण स राघवः।
मुखमश्रुपरिक्लिन्नं वस्त्रान्तेन प्रमार्जयत्॥
प्रकृतिस्थस्तु काकुत्स्थः सुग्रीववचनात् प्रभुः।
सम्परिष्वज्य सुग्रीवमिदं वचनमब्रवीत्॥

(४। ७। १५-१६)

धन्य हो रघुनन्दन! धन्य है आपकी मानद मानवलीला! आप जिसे बड़ाई देते हैं इसी प्रकार देते हैं। अन्यथा आपको सान्त्वना देनेमें कौन समर्थ है? आपको कौन समझा सकता है? बृहस्पति भी आपको उपदेश देनेमें समर्थ नहीं हो सकते। श्रीरामजी प्रकृतिस्थ होकर श्रीसुग्रीवके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं। हे सखे! मैं तुम्हारे वचनोंसे स्वस्थचित्त हो गया—मेरी समग्र चिन्ता समाप्त हो गयी। मेरा शोकापनोदन हो गया। विपत्तिके समयमें तुम्हारे-जैसे मित्रका मिलना बहुत दुर्लभ है—

एष च प्रकृतिस्थोऽहमनुनीतस्त्वया सखे।
दुर्लभो हीदृशो बन्धुरस्मिन् काले विशेषतः॥

(४। ७। १८)

भगवान् श्रीरामने कहा—हे सखे! तुम्हारे लिये क्या करना है? उसे संकोचरहित होकर बताओ—

मया च यदनुष्ठेयं विस्त्रब्धेन तदुच्यताम्।

(४। ७। २०)

श्रीरामजी किष्किन्धा पर्वतपर सुखपूर्वक विराजमान थे, उस समय वे प्रशान्तमहासागरकी भाँति प्रशान्त और प्रसन्न थे—

'सुखोपविष्टं रामं तु प्रसन्नमुदधिं यथा'।

उस समय अवसर देखकर सुग्रीवने मधुर वाणीमें वार्तालाप आरम्भ किया—हे रघुकुलभूषण! मेरे भाईने मुझे घरसे मारकर निकाल दिया।

उसने मेरे प्राणोंसे भी प्यारी पत्नीका हरण कर लिया और जो भी मेरी सहायता कर सकते थे उन सुहृदोंको उसने बन्दी बना लिया—

हृता भार्या च मे तेन प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।
सुहृदश्च मदीया ये संयता बन्धनेषु ते॥

(४। ८। ३३)

श्रीहनुमान् आदि वानर ही मेरे सहायक हैं। इन्हींके कारण इतने कठिन दु:खोंकी मार सहन करके भी मैं जीवित हूँ। हे सखे! ये सभी वानर सब प्रकारसे मेरी रक्षा करते रहते हैं। जहाँ जाना आवश्यक है, ये मेरे साथ जाते हैं और जहाँ मैं रुक जाता हूँ ये भी मेरे साथ रहते हैं—

एते हि कपयः स्निग्धा मां रक्षन्ति समन्ततः।
सह गच्छन्ति गन्तव्ये नित्यं तिष्ठन्ति चास्थिते॥

(४। ८। ३७)

भगवान् श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। उनकी प्रत्येक क्रिया मर्यादा पुरस्सर होती है। मर्यादा-संरक्षणके लिये ही उनका धराधामपर मङ्गलमय अवतरण होता है। ठाकुरजी मर्यादा-पालन करनेके लिये ही श्रीसुग्रीवसे पूछते हैं कि आपके वनमें निवास करनेका क्या कारण है? यद्यपि श्रीहनुमान्‌जीने मित्रतासे पूर्व ही सब कथा श्रीरामजीको सुना दी है, फिर भी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम श्रीसुग्रीवके मुखसे सुनना चाहते हैं। उनसे सुनकर ही कुछ निर्णय लेना चाहते हैं।

आदिकवि महर्षि श्रीवाल्मीकिने लिखा है कि श्रीरामजी कहते हैं— मैं आप दोनों भाइयोंमें वैर होनेका मूल कारण सुनना चाहता हूँ—तत्त्वत: सुनना चाहता हूँ अर्थात् विचार करनेके लिये सुनना चाहता हूँ—

श्रुत्वैतच्च वचो रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत्।
किन्निमित्तमभूद् वैरं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥

(४। ८। ४१)

श्रीरामजी कहते हैं—'आपलोगोंकी बात श्रवण करनेके पश्चात् मेरी क्या प्रतिक्रिया होगी, मैं क्या निर्णय लूँगा और किस प्रकार विचार करूँगा इसपर कहते हैं'—

सुखं हि कारणं श्रुत्वा वैरस्य तव वानर।
आनन्तर्याद् विधास्यामि सम्प्रधार्य बलाबलम्॥

(४। ८। ४२)

इस श्लोकका भाष्य करते हुए श्रीगोविन्द-राजजीने श्रीवाल्मीकिजीके शब्दोंके आश्रयसे मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके हृदयके भावको बहुत स्पष्ट किया है। **''तव वैरस्य कारणं श्रुत्वा बलाबलं सम्प्रधार्य वैर कारणं वा वैरं वा बलवदिति विचार्य आनन्तर्यं अनन्तरं (स्वार्थेष्यञ्) तव सुखं विधास्यामि। स्वल्पापराधे प्रबल वैरं तेन कृतं चेत् तं अद्यैव हत्वा तव सुखं विधास्यामि अनल्पापराधे स्वल्प वैरं चेत् समाधानमुखेन सुखं विधास्यामीतिभावः''**। अर्थात् भगवान् श्रीराम कहते हैं, हे सुग्रीव! आपके द्वारा वर्णित वैरका कारण श्रवण करके आप दोनोंके बलाबलका ज्ञान करके ही मैं यह विचार निश्चित करूँगा कि शत्रुताका कारण बलवान् है या शत्रुता बलवान् है। इसके पश्चात् आप जिस रीतिसे सुखी होंगे वही करूँगा। हमारा लक्ष्य आपको सुखी बनाना है और हम सुखी बनाकर ही रहेंगे। यदि आपका अपराध स्वल्प है—नगण्य है—बहुत कम है और वालिकी शत्रुता बलीयसी है अर्थात् उसने अत्यल्प कारणसे—नगण्य अपराधसे बहुत बड़ी शत्रुता कर ली है तो मैं आज ही वालिको मार करके आपको सुखी बनाऊँगा। इसके विपरीत यदि आपका अपराध बहुत गम्भीर है, उसको देखते हुए उसका वैर कुछ नहीं है तो आप दोनों भाइयोंको मिलाकर समाधान करके आपको सुखी बनाऊँगा। इसलिये निर्णय करनेके लिये, न्याय करनेके लिये, मर्यादापूर्वक कार्य करनेके लिये आप दोनोंकी कथा सुनना, आप दोनोंके

वैरका मूल कारण जानना आवश्यक है। श्रीसुग्रीवने कहा—हे रघुनन्दन ! हम दोनों भाइयोंमें पहले अत्यधिक पारस्परिक स्नेह था। मयका पुत्र दुन्दुभिका बड़ा भाई मायावी नामका दानव था। एक दिन वह आधी रातके समय किष्किन्धा नगरीके दरवाजेपर आकर वालिको युद्धके लिये ललकारने लगा। वालिसे ललकार नहीं सही गयी और वे घरसे युद्ध करनेके लिये निकल गये। मैं भी स्नेहवश अपने बड़े भाईके पीछे-पीछे चल पड़ा। राक्षस मायावी एक भू-विवरमें प्रविष्ट हो गया। वालि भी उस विवरमें घुसने लगे तो मैंने उनके साथ चलनेकी प्रार्थना की, परन्तु वे अपने चरणोंकी सौगन्ध दिलाकर अकेले ही बिलमें घुसे। उन्हें बिलके भीतर गये एक वर्षसे अधिक समय बीत गया। मेरा हृदय भ्रातृस्नेहके कारण विह्वल हो गया। भीतरसे राक्षसोंकी गर्जनध्वनि तो आ रही थी परन्तु वालिके शब्द नहीं सुनायी पड़ रहे थे। सहसा फेनसहित खूनकी धारा निकली उसे देखकर मैं अत्यधिक व्याकुल हो गया। मैंने अनुमान किया कि मेरे भाई मर गये तब मैंने पर्वतके समान एक पत्थरकी चट्टान गुफाके दरवाजेपर रखकर बन्द कर दी और वहाँसे चल पड़ा। शोकसे व्याकुल होकर वालीको जलाञ्जलि देकर किष्किन्धापुरीमें आ गया। मन्त्रियोंने मुझे बरबस राज्य दे दिया। श्रीसुग्रीव कहते हैं, यद्यपि मैं वालीवधका वृत्तान्त राजनैतिक दृष्टिसे छिपा रहा था, क्योंकि वालिवधका वृत्तान्त प्रकट हो जानेपर शत्रु सहसा आक्रमण भी कर सकते थे। परन्तु मन्त्रियोंने यत्नतः—प्रयास करके गुप्तचरोंके द्वारा अथवा किसी भी उपायके द्वारा सब समाचार जान लिया—सुन लिया और उन लोगोंने सर्वसम्मतिसे हमें किष्किन्धापुरीका राजा बना दिया—

गूहमानस्य मे तत् त्वं यत्नतो मन्त्रिभिः श्रुतम्॥
ततोऽहं तैः समागम्य समेतैरभिषेचितः।

(४। ९। २०-२१)

यद्यपि मैं राज्य लेना नहीं चाहता था। भाईके वियोगका भी मुझे कष्ट था, इसलिये राज्य नहीं लेना चाहता था। भ्रातृवियोगजन्य शोकसे मेरा धैर्य नष्ट हो गया था, बुद्धि शुद्ध नहीं थी इसलिये भी राज्य नहीं लेना चाहता था। मैं यह भी चाहता था कि अभी कुछ दिन और बीत जायँ तथा किसी अन्य सूत्रसे वालिवधका सुपुष्ट और विश्वस्त समाचार मिल जाय तब देखा जायगा। परन्तु हे रघुनन्दन! मेरी एक भी न चली। मन्त्रियोंने मुझे हठात् राज्यसिंहासनाभिषिक्त कर दिया—

तच्छ्रुत्वा दुःखिताः सर्वे मामनिच्छन्तमप्युत।
राज्येऽभिषेचनं चक्रुः सर्वे वानरमन्त्रिणः॥

(अध्यात्मरामायण ४। १। ५३)

वालि मायावीका वध करके किष्किन्धापुरी आकर मुझे राज्यपर अभिषिक्त देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये, उनकी आँखें लाल हो गयीं—

आजगाम रिपुं हत्वा दानवं स तु वानरः।
अभिषिक्तं तु मां दृष्ट्वा क्रोधात् संरक्तलोचनः॥

(४। ९। २२)

एक अत्यन्त मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जब किसी भी कारणसे किसी व्यक्तिके प्रति भावना विकृत होती है तब उसको उस व्यक्तिका दुर्गुण-ही-दुर्गुण दीखने लगता है। फिर तो उसके सद्गुण भी दुर्गुण हो जाते हैं, उसकी प्रार्थना चापलूसी ज्ञात होती है, उसकी विनम्र हार्दिक प्रार्थना कायरता प्रतीत होती है, यहाँतक कि उसका सामने रहना भी नहीं अच्छा लगता है।

वालि और सुग्रीवके सम्बन्धमें इसी भावकी प्रबलता दिखायी देती है। वालिने आकर जब

श्रीसुग्रीवको राज करते देखा, तब सद्यः वालिकी भावना विकारग्रस्त हो गयी। उसने यह अनुमान लगाया कि यह गुफाके द्वारपर पर्वतकी तरह शिला लगाकर तुरन्त चला आया कि मैं मर जाऊँगा। आते ही इसने घोषणा कर दी कि वालि मर गया और प्रसन्नतापूर्वक राज्य-सञ्चालन करने लगा। वालिने इस बातको स्वयं अपने मुखसे अपने मन्त्रियोंसे कहा है। 'यह सुग्रीव पत्थर-हृदय है, कृतघ्न है। इसने मेरे वात्सल्यपूर्ण भ्रातृस्नेहको विस्मृत कर दिया। किष्किन्धा नगरीका एवं सप्तद्वीपके वानरोंका राजा स्वयं बननेके लिये इस स्वार्थीने मुझे गुफाके अन्दर बन्द कर दिया था; जिससे मैं निकल न सकूँ और भूखा-प्यासा मर जाऊँ'—

तत्रानेनास्मि संरुद्धो राज्यं मृगयताऽऽत्मनः।
सुग्रीवेण नृशंसेन विस्मृत्य भ्रातृसौहृदम्॥

(४। १०। २५)

तात्पर्य यह है कि वालिकी शत्रुताका मुख्य कारण सुग्रीवका राजगद्दीपर बैठना और गुफाके द्वारपर विशाल पत्थर लगाना है। मेरी दृष्टिमें इन कारणोंसे भी बढ़कर वालिका औद्धत्य, अभिमान, अज्ञान और उसकी स्वार्थपूर्ण भावना ही मुख्य कारण है। वास्तवमें श्रीसुग्रीव नितान्त निर्दोष थे। गुफाके द्वारपर पत्थर लगानेका कारण मैं प्रथम ही निवेदन कर चुका हूँ। मन्त्रियोंने श्रीसुग्रीवके ना-ना करनेपर भी हठात् राज्य दे दिया था। वालि तो आनेके साथ बिना कुछ पूछे और बिना कुछ सुने ही बुरा भला कहने लगा, मार-पीट करने लगा और शत्रु समझने लगा— '**बहुधाभर्त्सयित्वा मां निजघान च मुष्टिभिः**'। श्रीसुग्रीवने तो इतना करनेपर भी अपने मस्तकसे मुकुट उतारकर उसके चरणोंमें डाल दिया और प्रणाम किया तथा क्षमा-याचना की— '**नत्वा पादावहं तस्य मुकुटेनास्पृशम्**'। परन्तु अभिमानी वालिने इस स्नेहिल भावनाका और विनीत व्यवहारका अनादर कर दिया।

इसके बाद श्रीसुग्रीवने अत्यन्त दीन वाणीमें उससे प्रार्थना की। हे स्वामी! आप ही यहाँके सम्माननीय राजा हैं, मैं तो पहलेहीकी तरह आपका अनुज और अनुचर हूँ। आपका यह राज्य निष्कण्टक है, मैं या और कोई इसमें कण्टक नहीं हो सकते हैं। हे भ्रातः! मन्त्रियों, पुरवासियों और नगरसहित यह अकण्टक राज्य मेरे पास न्यासके रूपमें—धरोहरके रूपमें था। अब इसे मैं आपकी सेवामें लौटा रहा हूँ। हे सौम्य! हे शत्रुसूदन! मेरे ऊपर आप क्रोध न करें—

त्वमेव राजा मानार्हः सदा चाहं यथा पुरा॥
राजभावे नियोगोऽयं मम त्वद्विरहात् कृतः।
सामात्यपौरनगरं स्थितं निहतकण्टकम्॥
न्यासभूतमिदं राज्यं तव निर्यातयाम्यहम्।
मा च रोषं कृथाः सौम्य मम शत्रुनिषूदन॥

(४। १०। ७-९)

यदि वालि अभिमान छोड़कर अपनी स्वार्थपूर्ण भावनाको त्यागकर सरल स्वभावसे जानना चाहता तो उसे वास्तविकताका ज्ञान हो सकता था। श्रीसुग्रीवकी निर्दोषता प्रमाणित हो सकती थी। वालि बहुत बुद्धिमान् था; परन्तु उसके गर्वने ऐसा करने नहीं दिया। उसने तो केवल राजसिंहासनपर बैठा देखकर ही शत्रुता बढ़ा ली।

उसने मेरा सब कुछ छीन लिया। धारण करनेका—पहननेका वस्त्र भी छीन लिया। केवल एक अधोवस्त्र ही मैंने धारण कर रखा था। उत्तरीय भी छीन लिया—

एवमुक्त्वा तु मां तत्र वस्त्रेणैकेन वानरः।
तदा निर्वासयामास वाली विगतसाध्वसः॥

(४। १०। २६)

'**विगत साध्वसः**' कहनेका आशय यह है

कि इस प्रकारका कार्य करनेमें—वस्त्रतक छीननेमें उसे किसीका किसी भी प्रकार भय नहीं हुआ। न उसने दीनकी परवाह की न दुनियाकी—न धर्मकी चिन्ता की न संसारकी। मात्र इस एक शब्दके द्वारा ही वालिका चरित्र समझा जा सकता है। वह महा अभिमानी था, नीच विचारोंका था, हृदयहीन था, उच्छृङ्खल था, परम स्वतन्त्र था, स्नेहरहित था और अदूरदर्शी था।

भगवान्ने श्रीसुग्रीवको आश्वस्त करते हुए कहा—हे मित्र सुग्रीव! तुम्हारी पत्नीका अपहर्त्ता, पापात्मा वालि तबतक जीवन धारण कर ले जबतक मेरे दृष्टिपथमें नहीं आता है, अर्थात् मैं उस चारित्र-दूषकको—मर्यादा-विघातकको किं वा, निषिद्धानिषिद्धका ज्ञान होनेके बाद भी जीवित अनुजकी भार्यापहरण करनेवाले वालिको देखते ही मार डालूँगा—

यावत् तं नहि पश्येयं तव भार्यापहारिणम्।
तावत् स जीवेत् पापात्मा वालि चारित्रदूषकः॥

(४। १०। ३३)

श्रीरामजीकी प्रतिज्ञा सुननेके बाद भी सुग्रीवके मनमें श्रीरामजीकी शक्तिके प्रति पूर्ण विश्वास नहीं है, शङ्का है।

विश्वासके बिना मैत्रीसम्बन्धका निर्वाह अच्छी तरह नहीं हो पाता। प्रेमका जनक विश्वास है और उसका व्यावहारिक रूप है सेवा करना, सुख पहुँचाना। यदि पति-पत्नी, पिता-पुत्र अथवा मित्र-मित्र एक-दूसरेके प्रति विश्वास न करें, शङ्कालु बने रहें तो उनका पारस्परिक प्रेम दृढ़ एवं स्थिर नहीं हो पाता है। अतः विश्वासके लिये, शङ्कानिवारणके लिये यह आवश्यक है कि सुग्रीवको श्रीरामचन्द्रजीकी शक्तिका ज्ञान हो जाय। अपने इस मनोभावको श्रीसुग्रीव छिपाते भी नहीं हैं, स्पष्ट कह देते हैं कि मैं अपने भाई वालिके पराक्रमको तो जानता हूँ, परन्तु आपके बलको मैंने अभी तक प्रत्यक्ष नहीं देखा है।

श्रीसुग्रीवने पुनः कहा—हे सखे! वालि सूर्योदयसे पूर्व ही पश्चिम समुद्रसे पूर्व समुद्रतक और दक्षिण सागरसे उत्तरतक बिना श्रमके ही परिक्रमा कर लेता है—

समुद्रात् पश्चिमात् पूर्वं दक्षिणादपि चोत्तरम्।
क्रामत्यनुदिते सूर्ये वाली व्यपगतक्लमः॥

(४। ११। ४)

इसके बाद सुग्रीवने वालिबल वर्णनके सन्दर्भमें दुन्दुभिदानवके वधकी कथा सुनायी और कहा कि वालीने उस भयङ्कर दानवको मारकर एक योजन—चार कोस दूर फेंक दिया। श्रीसुग्रीवने सरल वाणीमें कहा—हे मित्रवत्सल! आप मुझे श्रेष्ठ हिमालयके समान मित्र मिल गये हैं परन्तु मैं निर्भय नहीं हो पा रहा हूँ। हे रघुनन्दन! न मैं आपकी वालीसे तुलना कर रहा हूँ, न डरा रहा हूँ और न ही आपका अपमान कर रहा हूँ। वालीके भीषण कर्मोंने मेरे हृदयमें कातरता उत्पन्न कर दी है—

न खल्वहं त्वां तुलये नावमन्ये न भीषये।
कर्मभिस्तस्य भीमैश्च कातर्यं जनितं मम॥

(४। ११। ८०)

श्रीसुग्रीवके कहनेपर श्रीरामजीने सुग्रीवके मनमें विश्वास उत्पन्न करनेके लिये दुन्दुभि दैत्यके शरीरको अपने श्रीचरणोंके अँगूठेसे दस योजन—चालीस कोस दूर फेंक दिया—

तोलयित्वा महाबाहुश्चिक्षेप दशयोजनम्।
असुरस्य तनुं शुष्कां पादाङ्गुष्ठेन वीर्यवान्॥

(४। ११। ८५)

फिर भी श्रीसुग्रीवको वालिवधका विश्वास नहीं हुआ। श्रीसुग्रीवने कहा कि हे श्रीरामजी! जब वालिने इस शरीरको फेंका था तब यह आर्द्र था—मांस, मज्जा, रुधिरके साथ था, अब यह सूखा कङ्काल है। जब वालीने फेंका था तब वह

परिश्रान्त था—थका हुआ था, और श्रीमान् इस समय थके नहीं हैं, प्रसन्न हैं। एतावता इस कार्यसे यह ज्ञान नहीं हो सकता कि आपका बल अधिक है अथवा वालिका।

भगवान्‌की अनुपम करुणा है कि भक्तका कार्य करनेके लिये, उसके मनमें अपनी सामर्थ्यके प्रति विश्वास उत्पन्न करानेके लिये, हर प्रकारसे परीक्षा देनेके लिये प्रस्तुत रहते हैं। उसके पुनः-पुनः अविश्वास करनेपर भी अपना अपमान नहीं समझते हैं। भगवान्‌की इस अदभ्र करुणाका, अचिन्त्य कृपाका स्मरण करके जो उनके श्रीचरणोंका शरणागत नहीं हो जाता है, वह वास्तवमें मन्द-भाग्य है।

श्रीसुग्रीवने कहा—हे वीर शिरोमणे! आप एक बाणसे इन सात तालके वृक्षोंको विदीर्ण कर दें तो हमें वालिवधका विश्वास हो जायगा। श्रीसुग्रीवके वचन सुनकर अपने बाणोंको अभिमन्त्रित करते हुए श्रीरामने कहा—यदि अपने श्रद्धास्पद गुरुदेव कुशिकनन्दन श्रीविश्वामित्रजीके श्रीचरणोंमें मेरी भक्ति हो, यदि मैंने ब्राह्मणोंके द्वारा तिरस्कृत होनेपर भी उनके प्रति कभी रोष न किया हो और यदि मेरा मन कभी पर स्त्रीपर चलायमान—स्पृहावान् न हुआ हो तो हे बाण! तुम इन सातों तालोंको भेदकर अगाध भूतलमें प्रविष्ट हो जाओ—

भावोऽस्ति चेत् कुशिकनन्दनपादयोर्मे
यद्यस्म्यहं द्विजतिरस्कृति रोषहीनः।
नान्याङ्गनासु च मनः शर सप्त तालान्
भित्वा तदा प्रविश भूतलमप्यगाधम् ॥

(श्रीहनुमन्नाटक ५। ४७)

इस प्रकार एक ही शक्तिशाली बाणसे असीम सामर्थ्यशाली श्रीरामचन्द्रजीने कोमल केलेके थम्भके समान सातों तालवृक्षोंको काट डाला—

एकेनैव शरेण बालकदलीकाण्डप्रभङ्गक्रमात्,
कृत्तेषु प्रथमेषु दाशरथिना तालेषु सप्तस्वथ।

(श्रीहनुमन्नाटक ५। ४८)

इस प्रकार अशरणशरण अकारण करुण करुणावरुणालय भक्तवत्सल दशरथनन्दन रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीने श्रीसुग्रीवके ऊपर करुणामयी कृपा करके अपने सामर्थ्यकी परीक्षा देकर भी उनका कार्य करनेमें प्रवृत्त हुए। धन्य है प्रभुकी करुणा!

महर्षि वाल्मीकिजी कहते हैं—सप्त साल-वृक्षोंका भेदन करके महावेगशाली श्रीरामबाण पुनः तरकशमें प्रविष्ट हो गया। श्रीरामके बाणके वेगसे उन सात सालवृक्षोंको विदीर्ण हुआ देखकर कपिश्रेष्ठ श्रीसुग्रीवको परमविस्मय हुआ—

सायकस्तु मुहूर्तेन सालान् भित्त्वा महाजवः।
निष्पत्य च पुनस्तूर्णं तमेव प्रविवेश ह॥
तान् दृष्ट्वा सप्त निर्भिन्नान् सालान् वानर पुङ्गवः।
रामस्य शरवेगेन विस्मयं परमं गतः॥

(४। १२। ४-५)

अब तो श्रीसुग्रीव तत्काल श्रीरामजीके चरणोंमें प्रसन्न होकर गिर पड़े—साष्टाङ्ग प्रणाम किया—'**समूर्ध्ना न्यपतद्भूमौ**' और बोले—आज मेरा सारा शोक दूर हो गया। आज मुझे परम सन्तोष हो गया—

अद्य मे विगतः शोकः प्रीतिरद्य परा मम।

(४। १२। १०)

हे ककुत्स्थकुलभूषण! मैं साञ्जलि प्रणाम करता हूँ। आप मेरा प्रिय सम्पादन करनेके लिये भ्राताके रूपमें दुश्मन वालीको आज ही मार डालिये—

तमद्यैव प्रियार्थं मे वैरिणं भ्रातृरूपिणम्।
वालिनं जहि काकुत्स्थ मया बद्धोऽयमञ्जलिः॥

(४। १२। ११)

श्रीरामजीने कहा—हे सुग्रीव! तुम आगे जाओ और जाकर वालीको युद्धके लिये आवाहन करो—

गत्वा चाह्वय सुग्रीव वालिनं भ्रातृगन्धिनम्॥

(४। १२। १३)

भगवान् श्रीरामने वालीको '**भ्रातृगन्धिनम्**' विशेषण दिया है। जिसका अर्थ श्रीगोविन्दराजने किया है—'**भ्रातृहिंसकम्**' भाईके वधकी इच्छा रखनेवालेको बुलाओ। तिलक टीकाकार कहते हैं—'**भ्रातृगन्धिनम् अनर्थभ्रातृव्यपदेशम्**' व्यर्थ ही भाई कहलानेवाले वालीको युद्धके लिये ललकारो। श्रीसुग्रीवने वस्त्रसे अपने कटिप्रदेशको दृढ़तासे बाँध लिया, जिससे युद्ध करते समय शिथिल न हो किं वा, कटिप्रदेशमें दृढ़ता रहे। वालीको बुलानेके लिये उन्होंने प्राणवेगसे सिंहनाद किया। गगनभेदी गर्जनासे आकाश फटने-सा लगा—

सुग्रीवोऽप्यनदद् घोरं वालिनो ह्वानकारणात्।
गाढं परिहितो वेगान् नादैर्भिन्दन्निवाम्बरम्॥

(४। १२। १५)

सुग्रीवका सिंहनाद सुन करके महाबली वाली क्रुद्ध हो गया और वह सुसंरब्ध होकर— युद्ध करनेके लिये उत्साहमें भरकर अस्ताचलसे नीचे जानेवाले सूर्यके समान बड़े वेगसे अपने महलसे निकला—

तं श्रुत्वा निनदं भ्रातुः क्रुद्धो वाली महाबलः।
निष्पपात सुसंरब्धो भास्करोऽस्ततटादिव॥

(४। १२। १६)

'**भास्करोऽस्त तटादिव**' का भाष्य श्रीगोविन्दराजजी इस प्रकार करते हैं। '**भास्करोऽस्त तटादिवेति यथा सूर्योऽस्त तटादवतरन् न दृष्टरश्मिर्भवति तथेदानीं किष्किन्धा निर्गमनं बालिनोऽल्पकालेन नाशहेतुरिति द्योतनार्थमस्त तटादित्युक्तम्**' अर्थात् जिस प्रकार सूर्य अस्ताचलसे नीचे जाते समय अदृष्टरश्मि हो जाते हैं अर्थात् उनकी किरणें विलुप्त हो जाती हैं, दिखायी नहीं पड़ती हैं। उसी प्रकार इस समय वालीका किष्किन्धासे निर्गम उसका थोड़े ही समयमें नाशका हेतु है, इस भावकी अभिव्यक्तिके लिये ही '**अस्ततटाद्**' ऐसा कहा गया है। वाली और सुग्रीव दोनोंमें अत्यन्त भयङ्कर समर कमर कसके आरम्भ हो गया। वे दोनों लड़ते हुए ऐसे ज्ञात होते थे मानो आकाशमें बुध और मङ्गलग्रह विकट युद्ध कर रहे हैं। वे दोनों क्रोधसे मूर्च्छित होकर परस्परमें एक-दूसरेपर वज्र और अशनिकी भाँति थप्पड़ों और मुक्कोंका प्रहार करने लगे—

ततः सुतुमुलं युद्धं वालिसुग्रीवयोरभूत्।
गगने ग्रहयोर्घोरं बुधाङ्गारकयोरिव॥
तलैरशनिकल्पैश्च वज्रकल्पैश्च मुष्टिभिः।
जघ्नतुः समरेऽन्योऽन्यं भ्रातरौ क्रोध मूर्च्छितौ॥

(४। १२। १७-१८)

अन्तमें सुग्रीवजी वालीका भयङ्कर आक्रमण सहन नहीं कर सके और समराङ्गणसे भाग करके श्रीरामजीके पास आ करके उपालम्भ देने लगे, हे रघुनन्दन! आपने अपना बल दिखा करके वालीसे लड़नेके लिये मुझे भेज दिया। मुझे वालीसे पिटवाया और स्वयं छिप गये। आप पहले कह देते कि मैं वालीको नहीं मारूँगा तो मैं लड़नेके लिये जाता ही नहीं।

श्रीरामचन्द्रजी श्रीसुग्रीवको समझाते हुए कहते हैं—हे मित्र! मैंने वह बाण—वालिसंहारक बाण क्यों नहीं चलाया, उसका कारण सुनो। तुम दोनोंका अलङ्कार एक-सा था। आकार-प्रकार, लम्बाई-चौड़ाई, चाल-ढालमें भी तुममें और वालीमें सादृश्य था। तुम दोनोंका स्वर भी एक-सा था। तुम दोनोंका तेज और देखनेका ढंग भी

एक-सा था। हे सुग्रीव! तुम दोनोंका पराक्रम, लड़नेका ढंग भी एक-सा ही लग रहा था। हे वानरश्रेष्ठ! तुम दोनोंके इस प्रकारके रूप-सादृश्यको देखकर मैं निर्णय नहीं कर पाया कि इसमें मेरा सुग्रीव कौन-सा है? एतावता मैं अपना महावेगवान् शत्रुसंहारक बाण नहीं छोड़ सका—

अलङ्कारेण वेषेण प्रमाणेन गतेन च।
त्वं च सुग्रीव वाली च सदृशौ स्थः परस्परम्॥
स्वरेण वर्चसा चैव प्रेक्षितेन च वानर।
विक्रमेण च वाक्यैश्च व्यक्तिं वां नोपलक्षये॥
ततोऽहं रूपसादृश्यान् मोहितो वानरोत्तम।
नोत्सृजामि महावेगं शरं शत्रुनिबर्हणम्॥

(४। १२। ३०—३२)

श्रीगोविन्दराजजी '**अलङ्कारेण**' इस शब्दमें एक शङ्का करके उसका समाधान भी स्वयं करते हैं— '**ननु काञ्चन मालारूपो वालिनो विशेषोऽस्ति सत्यम् तस्मिन् दिने तन्न धृत्वागतवानिति ज्ञेयम्**' वालीके जन्मके समय ही देवराज इन्द्रने उसे काञ्चनीमाला प्रदान की थी। वह काञ्चनीमाला अलौकिक शक्ति-सम्पन्न थी। उस मालाको वाली सदा धारण किये रहता था। वह माला वालीकी विशेष पहचान थी। तब श्रीरामने '**अलङ्कारेण सदृ शौस्थः परस्परम्**' ऐसा क्यों कहा? उत्तर देते हैं कि ठीक है, वह माला वालीकी विशेष पहचान थी तथापि श्रीसुग्रीवकी गर्जना सुनकर वाली क्रोधान्ध होकर शीघ्रतासे निकल आया, अतः उसने वह माला धारण नहीं की, ऐसा समझना चाहिये। इसके पश्चात् जब सुग्रीवसे पुनः युद्ध करने आयेगा तब काञ्चनीमाला धारण करके ही वाली आयेगा।

अध्यात्मरामायणका भी यही अभिमत है। जब श्रीसुग्रीवने श्रीरामजीसे कहा कि हे शरणागतवत्सल! आप मेरी उपेक्षा क्यों करते हैं? तब अनन्त करुणावारिधि भक्तवत्सल ठाकुरजी रोने लगे। उन्होंने सुग्रीवको हृदयसे लगाकर आँखोंमें प्रेमाश्रु भरकर कहा—हे मेरे सहृदय मित्र! तुम दोनोंको एक रूप देखकर मैंने सोचा कि कहीं अनर्थ न हो जाय, मेरे द्वारा मेरे मित्रका ही वध न हो जाय। यदि ऐसा अनर्थ होगा तो मेरी बालोचित चपलता और मूर्खता ही सिद्ध होगी— '**मौढ्यं च मम बाल्यं च ख्यापितं स्यात् कपीश्वर**'। हे सुग्रीव! मैं '**दत्ताऽभयवध**' नामक पातक कैसे कर सकता था? अतः मैंने वालीप्राण-विदारक बाण नहीं छोड़ा, अब छोड़ेंगे। तुम निश्चिन्त होकर जाओ। अब मैं पहचानके लिये तुम्हारे शरीरमें कोई चिह्न कर दूँगा—

उपेक्षसे किमर्थं मां शरणागतवत्सल॥
श्रुत्वा सुग्रीववचनं रामः साश्रुविलोचनः।
आलिङ्ग्य मा स्म भैषीस्त्वं दृष्ट्वा वामेकरूपिणौ॥
मित्रघातित्वमाशङ्क्य मुक्तवान् सायकं न हि।
इदानीमेव ते चिन्हं करिष्ये भ्रमशान्तये।

(अध्यात्मरामायण ४। २। १२—१४)

संसारमें देखा जाता है कि किसी माताके एक ही दिनमें कुछ समयके अन्तरसे दो पुत्र क्रमशः उत्पन्न हुए देवदत्त और यज्ञदत्त। दोनोंका स्वरूप एक-जैसा है। आकार-प्रकार स्वर-गति-मति-प्रकृति सब सदृश है। प्रायः लोग भ्रममें पड़ जाते हैं, पहचान नहीं पाते हैं कि यह यज्ञदत्त है किं वा देवदत्त। परन्तु प्रश्न है कि उन बच्चोंको पैदा करनेवाली जननीको भी कभी भ्रम होता है क्या? न वह यज्ञदत्तको देवदत्त समझती है और न देवदत्तको यज्ञदत्त। इसी प्रकार भगवान् द्वारा सब समुत्पन्न हैं—'**सब मम प्रिय सब मम उपजाए**' सुतराम् श्रीरामजीको यह भ्रम नहीं होना चाहिये। इसीसे संलग्न दूसरा प्रश्न है कि जब श्रीरामजीने सुग्रीवको आश्वस्त करके भेजा था कि जाओ तुम युद्ध करो, तब फिर आवश्यक होनेपर क्यों नहीं मारा? इसमें क्या कारण है?

जब श्रीसुग्रीव लड़नेके लिये गये, उस समय श्रीरामजीने भी अपनेको वृक्षोंमें छिपा लिया कि मैं सुग्रीवके बल क्षीण होनेपर उसे मारूँगा। परन्तु उसी समय सर्वान्तर्यामी, सर्वान्तर्दर्शी प्राणिमात्रके एकमात्र हितैषी श्रीरामजीके कर्णकुहरोंके पास एक वाणी बार-बार टकराकर ठाकुरजीके वालीवधके निश्चयको शिथिल करने लगी। वह वाणी थी—'**समदर्शी रघुनाथ**'। यह वाणी बार-बार टकराकर मानो यह कह रही है कि वाली भी मेरे अस्तित्वको—महत्त्वको मानता ही है फिर क्या वह वध्य है? इसी ऊहापोहमें समय निकल गया और सुग्रीवजी आकर कहने लगे कि आपने मेरी उपेक्षा क्यों की? तब श्रीरामने कहा—वालिकी बात सुनकर मुझे भ्रम हो गया था कि तुम दोनों भ्राता एक-से ही हो अन्तर तो कुछ भी नहीं है, फिर मैं तो समदर्शी हूँ। परन्तु मेरे देखते-देखते समराङ्गणमें मार न सह सकनेके कारण भागते हुए तुम्हारा जब वाली पीछा करने लगा तो मेरे मनका समस्त भ्रम नष्ट हो गया कि अरे! यह तो बड़ा निर्दयी है, नृशंस है। प्राण बचाकर भागते हुए भयभीत व्यक्तिका पीछा कर रहा है। यह तो महान् अपराध कर रहा है। ऐसे अपराधीको तो मारना ही चाहिये। हे सुग्रीव! अब मेरा भ्रम मिट चुका है, अब तुम पुनः जाओ, इस बार वह मारा जायगा।

आदिकवि महर्षि श्रीवाल्मीकि लिखते हैं कि श्रीरघुनाथजीने अपने प्राणप्रिय अनुज श्रीलक्ष्मणको आज्ञा दी कि हे लक्ष्मण! यह गजपुष्पी लता जो खिली हुई है। यह लता साधारण नहीं है, शुभलक्षणा है। इसके धारण करनेसे ही सुग्रीवका मङ्गल होगा। इसे उखाड़कर सुग्रीवके कण्ठमें बाँध दो—

गजपुष्पीमिमां फुल्लामुत्पाट्य शुभलक्षणाम्।
कुरु लक्ष्मण कण्ठेऽस्य सुग्रीवस्य महात्मनः॥

(४।१२।३९)

मानो अशरणशरण परमशरण्य श्रीरामजी कह रहे हैं—हे सुग्रीव! मेरे लक्ष्मणजीवाचार्य हैं। आज यह तुम्हारे कण्ठमें पुष्पकी माला डालकर तुम्हें विधिपूर्वक समाश्रित कर रहे हैं—श्रीवैष्णव बना रहे हैं, अब तुम्हें किसीका भय नहीं है। ये जीव जब आचार्यके द्वारा भगवत्-शरणागति प्राप्त कर लेते हैं—श्रीवैष्णव हो जाते हैं तब उनके योग-क्षेमकी चिन्ता मैं करता हूँ, उनके शत्रुओंके नाशकी चिन्ता भी मैं ही करता हूँ, इसीलिये यह माला कण्ठ में पहनायी गयी है—'**कुरु लक्ष्मण कण्ठेऽस्य**' यह प्रभुकी आज्ञा है और श्रीलक्ष्मणने कण्ठमें ही धारण करायी है—'**लक्ष्मणो गजपुष्पीं तां तस्य कण्ठे व्यसर्जयत्**'॥ अध्यात्मरामायणमें कण्ठशब्द तो नहीं आया है, '**बद्ध्वा**' शब्द आया है। '**लक्ष्मणस्तु तदा बद्ध्वा**' कण्ठी बाँधी ही जाती है। श्रीतुलसीदासजीने तो '**मेली कंठ**' लिखा ही है।

इस प्रकार श्रीरामजीने श्रीसुग्रीवको प्रपन्न बनाकर—यह माला धारण कराकर मानो घोषणा कर दी है—हे वाली! मैं अब समदर्शी नहीं हूँ, सुग्रीव मेरा शरणागत भक्त है, अब यह मात्र मित्र नहीं है इसलिये इसके लिये मैं अब विषमदर्शी भी हूँ। इसकी रक्षा करना मेरा मुख्य कर्तव्य है।

श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामजीका स्वयं माला पहनाना लिखा है—'**मेली कंठ सुमन कै माला**'। मेरे श्रीगुरुदेवका भाव है कि श्रीरामजी कहते हैं कि हे सुग्रीव! वाली इन्द्रकी कृपासे प्राप्त मालासे बलवान् है तो आज मैं तुम्हारे स्नेहिलभावसे, तुम्हारे सर्वस्व समर्पणभावसे प्रसन्न होकर दिव्य सुमन—माला धारण करा रहा हूँ। देखनेमें तो यह सुमन पुष्पकी माला है, पर वास्तवमें यह सुमन—शोभन हृदयकी माला है, इसमें मेरे हृदयके भाव पिरोये हुए हैं। अब यह माला उस मालासे नहीं संसारकी किसी भी शक्तिसे कम प्रभावशाली कथमपि नहीं होगी। हे सुग्रीव! तुम

इसे मात्र माला न समझना, यह तो अभय-प्रदायिका शक्ति है।

इस प्रकार माला पहनकर प्रभुसे आश्वासन पाकर सुग्रीवजीने श्रीरामजीके साथ किष्किन्धापुरीके लिये प्रस्थान किया। ऋष्यमूक पर्वतसे किष्किन्धा-नगरी दूर है। मध्यमें सप्तजनाश्रम है। श्रीरामजीकी जिज्ञासापर श्रीसुग्रीवने उसका इतिहास सुनाया। हे रघुनन्दन! इस आश्रममें सात ही मुनि रहते थे। वे अति कठोर व्रतका पालन करते थे। नीचे मस्तक करके तपस्या करते थे। जलमें शयन करते थे। सात अहोरात्रके अनन्तर केवल वायुका आहार करते थे और एक ही स्थलपर रहते थे। सात सौ वर्षपर्यन्त तपस्या करके सदेह स्वर्ग चले गये—

सप्तरात्रे कृताहारा वायुनाचलवासिनः।
दिवं वर्षशतैर्याताः सप्तभिः सकलेवराः॥

(४। १३। १९)

आज भी उनका प्रभाव प्रकट है। सब लोग प्रणाम करके किष्किन्धापुरी पहुँच गये। श्रीरामजीने कहा—हे वानरेन्द्र! आज युद्धमें एक ही बाणसे वालिके द्वारा समुत्पन्न तुम्हारे भय और वैरभाव दोनोंको मैं समाप्त कर दूँगा—

अद्य वालिसमुत्थं ते भयं वैरं च वानर॥
एकेनाहं प्रमोक्ष्यामि बाणमोक्षेण संयुगे।

(४। १४। १०-११)

इसके अनन्तर भगवत् प्रदत्त शौर्यके द्वारा जिनका तेज विवर्द्धमान है, वे भास्करनन्दन सुग्रीव मेघध्वनिके समान सिंहगर्जन करने लगे। उस समय ऐसा परिज्ञात होता था कि प्रचण्ड वायुवेगसे चञ्चल हुई उत्ताल तरङ्गमालाओंसे सुशोभित नदियोंका स्वामी समुद्र कोलाहल कर रहा है—

ततः स जीमूतकृतप्रणादो नादं ह्यमुञ्चत् त्वरया प्रतीतः।
सूर्यात्मजः शौर्यविवृद्धतेजाः सरित्पतिर्वानिलचञ्चलोर्मिः॥

(४। १४। २२)

भक्तवर श्रीसुग्रीवकी ललकारको सुनकर वाली अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। क्रोधान्ध होकर पैर पटकता हुआ पृथ्वीको प्रकम्पित-सा करता हुआ चला। उस समय—'**सभय सन्त्रस्त सम्भ्रान्तचित्ता तारा**' उद्विग्न और भयभीत चित्तवाली ताराने आकर स्नेहसे अपने सौहार्दका परिचय देते हुए अपनी सुकोमल भुजाओंके पाशमें वालीको निबद्ध कर लिया और हितोदर्क—हितफलक—परिणाममें हितसम्पादन करनेवाली वाणी बोली—

तं तु तारा परिष्वज्य स्नेहाद् दर्शितसौहृदा।
उवाच त्रस्तसम्भ्रान्ता हितोदर्कमिदं वचः॥

(४। १५। ६)

कविताकानन कोकिल आदिकवि महर्षि श्रीवाल्मीकिकी तपोपूत लेखनीसे निर्झरित ताराके प्रबोध वाक्योंका मनन करें। वास्तवमें यह प्रबोधन मननीय है।

ताराने कहा—हे वीर श्रेष्ठ! सुग्रीवकी गर्जन-श्रवणसे समुत्पन्न, नदीके वेगकी भाँति समागत अपने प्रचण्ड क्रोधका परित्याग कर दीजिये—'**साधु क्रोधमिमं वीर नदीवेग मिवागतम्**'। हे प्राणप्रिय! सुग्रीव एकाकी—असहाय नहीं है, निश्चय ही वह किसी समर्थ सहायकके साथ यहाँ आया है। सुग्रीवको आप मूर्ख न समझिये। वे बड़े बुद्धिमान् हैं और प्रकृत्या सर्वकर्म कुशल हैं। उन्होंने जिसकी सहायता ली है उसकी सामर्थ्यकी परीक्षा भी ले ली है। उनके सहायक निश्चय ही परम पराक्रमी हैं, एतावता हे प्राणेश्वर! आज आप युद्ध करने न जाइये—

नासहायमहं मन्ये सुग्रीवं तमिहागतम्।
अवष्टब्धसहायश्च यमाश्रित्यैष गर्जति॥
प्रकृत्या निपुणश्चैव बुद्धिमांश्चैव वानरः।
नापरीक्षितवीर्येण सुग्रीवः सख्यमेष्यति॥

(४। १५। १३-१४)

हे प्राणप्रियतम! हे वानर शार्दूल! मैं मात्र अनुमानसे ही अप्रामाणिक बात नहीं कह रही हूँ। आपके बुद्धिमान् पुत्र अङ्गदने हमें सब पता

लगाकर सुनाया है। अयोध्यानरेश चक्रवर्त्ती श्रीदशरथके दो सुपुत्र समरदुर्जय श्रीराम-लक्ष्मण आज सुग्रीवकी सहायता करनेके लिये आये हैं। उन दोनोंमें जो आपके भ्राता सुग्रीवके युद्धकर्ममें सहायक बताये गये हैं, वे श्रीरामजी हैं। उनमें अनन्त दिव्य सद्‌गुण हैं। उनके कुछ गुणोंको आप ध्यानसे सुनें—

रामः परबलामर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः।
निवासवृक्षः साधूनामापन्नानां परा गतिः॥
आर्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैकभाजनम्।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो निदेशे निरतः पितुः॥

(४। १५। १९-२०)

श्रीरामजी प्रलयकालमें प्रज्वलित अग्निके समान परम तेजस्वी हैं। प्रलयाग्निकी तरह समराङ्गणमें परबलामर्दी हैं। शत्रुका भुजबलमर्दन करनेमें परम प्रवीण हैं किं वा, शत्रुओंकी सेनाके नाश करनेमें परम कुशल हैं। साधुओंके—सन्तजनोंके—परोपकारनिरत सज्जनोंके लिये श्रीरामजी निवासवृक्ष हैं—परम सुखद आश्रय हैं। श्रीगोविन्दराज लिखते हैं—'**यथा सुग्रीवस्य सहायः एवं ममापि कुतो नस्यादित्यत्राह—साधूनामिति। स्वच्छायापेक्षिणा-मनुकूलानां निवासवृक्षः। वृक्ष इत्यभेदाध्यवसायेन सर्वथा सादृश्यमुच्यते। यथावृक्षः प्रथमं तापमपहृत्य पुष्पफलप्रदानादिना सर्वेन्द्रियतर्पणः तथायमित्यर्थः। निवास इति विशेषणेन कादाचित्कच्छायक तरु व्यावृतिः 'वासुदेव तरुच्छाया नातिशीता न घर्मदा नरकाङ्गारशमनी सा किमर्थं न सेव्यते' इत्युक्तत्वात्। सुग्रीव द्रोहकरणेन नास्माकं साधुत्व लेश इत्याशयः। साधूनामेवं, आपन्नानां तु परागतिः। योगक्षेमं वहामीत्युक्तरीत्या आश्रितविषये उपायदशाप्रभृति फलपर्यन्त सर्वकार्यकर इत्यर्थः। तत्राप्यार्तानां संश्रयश्चैव। आश्रितेष्वपि आर्त्तानां तु सर्वदा समीचीनाश्रयः सर्वकार्य निर्वाहक इत्यर्थः। भवतु एवं ममापि कश्चिदाश्रयो भविष्यतीत्यत्राह—यशसश्चैक भाजनमिति। एवं विध रक्षको लोकेऽन्यो नास्तीत्यर्थः**'। अर्थात् तारा कहती हैं कि यदि आप यह कहें कि जिस प्रकार श्रीरामजीने सुग्रीवकी सहायता की है उसी प्रकार मेरी भी तो सहायता कर सकते हैं? इसपर तारा कहती हैं, जो उनकी छायाकी अपेक्षा करते हैं उनके वे निवासवृक्ष हैं। वृक्षके साथ अभेद बताना वृक्षका सर्वथा सादृश्य कह रही हैं। जैसे वृक्ष अपने आश्रितजनोंका, जो घर्मपरिपीड़ित होकर, आतपताप व्यथित होकर वृक्षकी छायाका समाश्रयण करते हैं, उनके आनेके साथ-साथ सद्यः तापापनोदन करते हैं, उनको शैतल्य प्रदान करते हैं, उनका सारा परिश्रम समाप्त कर देते हैं। तदनन्तर अपने सुगन्धित मनमोहक पुष्पोंके द्वारा अपने सुन्दर, सुस्वादु, समधुरफलोंके द्वारा उनका सर्वेन्द्रिय तर्पण करते हैं, उनकी क्षुधाशान्त करते हैं, उनकी घ्राणेन्द्रियका, नेत्रेन्द्रियका तर्पण करके उनको सब प्रकारका सुख प्रदान करते हैं। ठीक उसी प्रकार सन्तनिवास—वृक्ष श्रीरामचन्द्रजी भी अपने आश्रितोंका—सर्वस्व समर्पणपूर्वक ऐकान्तिक भक्ति करनेवालोंका आश्रय लेते ही तापापनोदन करते हैं। उनके आधिभौतिकादि त्रिविधि तापोंको नष्ट कर देते हैं। भक्तोंके शत्रुजन्य ताप, प्रकृतिजन्य-ताप, त्रिगुणजन्य-ताप, कालजन्य-ताप, कर्मजन्य ताप, कामादिषड्‌विकारजन्य ताप और किसी भी परिस्थितिजन्य तापोंका आमूल विनाश कर देते हैं। मानसिक, वाचिक और कायिक तापोंका भी निःशेषेण अपनोदन कर देते हैं और तापापनोदनके अनन्तर जब भक्त स्वस्थचित्त हो जाता है तब उसकी घ्राणेन्द्रियको अपने दिव्य श्रीविग्रहके मनमोहक सौगन्ध्यसे आपूरित कर देते हैं। उसकी रसनेन्द्रियको अपने उपभुक्त नाना प्रकारके अमृतमय सुस्वादु, सुमधुर भोज्य पदार्थोंको प्रदान करके उसकी क्षुधा निवृत्ति करके सन्तृप्त कर देते

हैं। अपने परम ऐकान्तिक भक्तकी नेत्रेन्द्रियको अपने अनन्तानन्त मन्मथ-मन्मथ आनन्दको भी परमानन्द सुधाक्षीरनिधिमें निमज्जित करानेवाले चित्ताकर्षक लोकाभिराम मनोहर स्वरूपका दर्शन दे करके आनन्द प्रदान करके अतृप्त कर देते हैं—दर्शनपिपासाको—दिदृक्षाको वृद्धिंगत कर देते हैं। इस प्रकार वृक्षकी भाँति ही श्रीठाकुरजी भी अपने आश्रितोंका सर्वेन्द्रिय तर्पण कर देते हैं।

'निवासवृक्ष' कहकर इस आशङ्काकी भी निवृत्ति कर दी कि सामान्य वृक्षकी भाँति किसी समय छाया रहेगी और किसी समय नहीं रहेगी। प्रातःकालमें छाया मध्याह्नमें घर्मतापकी पीड़ा आदिकी शङ्का भी निरस्त हो गयी, अर्थात् सार्वकालिकी छाया है। कहा भी है कि सर्वत्र निवास करनेवाले दिव्यस्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्र—वृक्षकी छाया न अधिक शीतल है और न आतप क्लेशदायिनी ही है। वह छाया नरकरूपी भयङ्कर ज्वालाका उपशमन करनेवाली है। ऐसी दिव्य मङ्गलमयी श्रीराम-वृक्षच्छायाका आश्रय सब मनुष्य क्यों नहीं लेते? तारा कहती हैं—हे वानरेन्द्र! सुग्रीवसे द्वेष करनेके कारण हममें तो लेशमात्र भी साधुत्व नहीं है। साधुत्वके सर्वथा अभावमें वे हमारे ऊपर कैसे कृपा करेंगे? उनकी सहायता हमें कैसे प्राप्त हो सकती है? वे तो साधुओंके ही 'निवासवृक्ष' हैं। वे तो आपन्नोंके—विपन्न प्राणियोंके—सङ्कटग्रस्त अनाथोंके परागति हैं—रक्षक त्वेन परमाश्रय हैं। विपत्तिका निवारण करके उन्हें सुख प्रदान करनेके कारण ही '**आपन्नानां परा गतिः**' हैं। अपने आश्रितोंके—प्रपन्नोंके—शरणागतोंके तो उपाय दशासे लेकर फलप्राप्तिपर्यन्त समस्त कार्य करनेवाले हैं।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र परमात्मा श्रीगीताजीमें कहते हैं—मेरे चिन्तनके बिना शरीर धारण करनेमें असमर्थ होनेके कारण केवल एक मेरा चिन्तन करना ही जिनका प्रयोजन है। ऐसे अन्य प्रयोजनसे रहित जो महात्मा भक्तजन मेरा चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं—सर्वाङ्गपूर्ण उपासना करते हैं, उन नित्ययुक्त पुरुषोंका योगक्षेम—मत्प्राप्ति लक्षण योग और अपुनरावृत्तिरूप क्षेम मैं वहन करता हूँ—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

तारा पुनः कहती हैं कि श्रीरामजी आर्त्तजनके परम आश्रय हैं और भक्तजन परिरक्षणरूप यशके—कीर्तिके एकमात्र भाजन हैं— '**आर्त्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैक भाजनम्**'। श्रीरामजी उन आश्रित भक्तोंमें भी जो आर्त्त हैं—जिन्हें और किसीका, किसी भी प्रकारका आश्रय नहीं है, उनके तो समीचीनाश्रय हैं और सर्वकार्य निर्वाहक हैं—'**गई बहोर ओर निर्वाहक साजक बिगरे साज के**'। इसपर यदि वाली यह कहे कि हे तारे! यदि श्रीरामजी सुग्रीवके इतने महान् सहायक हैं तो मेरा भी कोई सहायक हो जायगा। इसपर तारा कहती हैं—'**यशसश्चैक भाजनम्**'। इस प्रकार आर्त्तत्राणपरायण, शरणागतरक्षण विचक्षण, साधुओंके निवासवृक्ष और आपन्नोंके परमाश्रय तो एकमात्र श्रीरामजी ही हैं।

तारा कहती हैं—हे प्राणेश्वर वानरेन्द्र! सुग्रीवकी चाहे राज्यकी कामना हो, चाहे भगवत्तत्त्वकी जिज्ञासा हो, चाहे आपके—वालीके दुःखके निवृत्त होनेकी कामना हो और चाहे—'**सर्वं त्यक्त्वा हरिं भजेत्**' की अभिलाषा हो। श्रीरामजी उसकी समस्त कामना पूर्ण करनेमें सर्वथा समर्थ हैं। इसलिये आपको सुग्रीवसे वैरभाव छोड़कर श्रीरामजीकी चरण-शरण ग्रहण करनी चाहिये। इस प्रकार ताराने वालीका प्रबोधन किया। ताराका पथ्यवचन—हितैषी वचन वालिको अच्छा नहीं लगा। उसने कहा—मैं हीनग्रीव सुग्रीवका गर्जन-तर्जन सहन करनेमें असमर्थ हूँ— '**हीनग्रीवस्य**

गर्जितम्'। हे तारे! मैं सुग्रीवका गर्व खर्ब कर दूँगा, परन्तु उसका वध नहीं करूँगा—

दर्पं चास्य विनेष्यामि न च प्राणैर्वियोक्ष्यते।

(४। १६। ७)

इस प्रसङ्गमें परमपूज्य पं० श्रीरामगुलाम द्विवेदीका एक कवित्त बड़ा भावपूर्ण है—

हौं तो वीर बाली सप्तद्वीप वानरालीपति
कैसे कै सुकण्ठ प्रति दीनता सुनावों री।
रामके विभेद नाहीं एक रस विश्वमाहीं
भेंट के किये ते दसशीश गहि लावों री॥
कौन हेमग्रीव के मिले ते लेशलाभ उन्हें
वदत गुलामराम बात समुझावों री।
जौ पै मोहि मारि हैं खरारि है गुहारि ताकी
त्याग प्लवगेशअमरेशपद पावौं री॥

इसके पश्चात् वालीने ताराको अपने प्राणकी शपथ दिलाकर लौटा दिया। महलसे निकलकर वालीने सुग्रीवको लँगोट बाँधकर युद्धके लिये प्रस्तुत देखा। वालीने भी लँगोट बाँधकर सुग्रीवको एक मुक्का मारा। उस मुक्केके प्रहारसे सुग्रीव झरनासे युक्त पर्वतकी तरह मुखसे खून उगलने लगा—

अभवच्छोणितोद्गारी सापीड इव पर्वतः।

(४। १६। २२)

श्रीसुग्रीव और वाली दोनोंका बल और पराक्रम भयङ्कर था। दोनोंका वेग विनतानन्दन श्रीगरुड़जीके समान था। वे दोनों घोर शत्रुओंका दमन करनेवाले थे। वे दोनों भयङ्कर समर कर रहे थे और पूर्णिमाके आकाशमें सूर्य और चन्द्रके समान दिखायी पड़ रहे थे—

तौ भीमबलविक्रान्तौ सुपर्णसमवेगितौ
प्रवृद्धौ घोरवपुषौ चन्द्रसूर्याविवाम्बरे॥

(४। १६। २५)

इस प्रकार उन दोनों भाइयोंमें अनेक प्रकारसे युद्ध हुआ। डालियोंके सहित वृक्षोंसे, उत्तुङ्ग गिरिशृङ्गोंसे, वज्रके समान विदीर्ण करनेवाले नखोंसे, मुक्कोंसे, घुटनोंसे, चरणोंसे और हाथोंसे वे भयङ्कर युद्ध कर रहे थे। महर्षि कहते हैं कि उनका भयङ्कर युद्ध इन्द्र और वृत्रासुरकी तरह भयङ्कर समर था। वे दोनों वीर मुखसे रक्तका वमन कर रहे थे। उनके अङ्ग-अङ्गसे रक्तस्राव हो रहा था, परन्तु वे दोनों भयङ्कर मेघोंकी तरह गम्भीर गर्जना करते हुए एक-दूसरेको डाँट-डपट रहे थे—तर्जना कर रहे थे—

वृक्षैः सशाखैः शिखरैर्वज्रकोटिनिभैर्नखैः॥
मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिर्बाहुभिश्च पुनः पुनः।
तयोर्युद्धमभूद्घोरं वृत्रवासवयोरिव॥
तौ शोणिताक्तौ युध्येतां वानरौ वनचारिणौ॥
मेघाविव महाशब्दैस्तर्जमानौ परस्परम्।

(४। १६। २८—३०)

जब श्रीसुग्रीवने श्रीरामकी ओर देखकर सहायताकी याचना की। वे युद्ध भी कर रहे थे और मुड़-मुड़कर श्रीरामजीकी ओर भी देख रहे थे—'**रामं विलोकयन्नेव सुग्रीवो युयुधे युधि**'। देखकर कह रहे थे—हे प्रभो! अब मैं इस वालीसे लड़ नहीं सकता हूँ, अब तो आप ही इसका वध करें। तब प्रभुने वालीवधकी इच्छासे अपने बाणोंकी ओर दृष्टि डाली—

ततो रामो महातेजा आर्तं दृष्ट्वा हरीश्वरम्।
स शरं वीक्षते वीरो वालिनो वधकांक्षया॥

(४। १६। ३२)

श्रीरामजीने कालव्यालकी भाँति भयङ्कर अपने तीक्ष्ण बाणको—वालिप्राणसंहारक बाणको अपने विशाल कोदण्डपर रखकर धनुषको आकर्ण आकृष्ट करके सन्धान कर दिया। उस समय ऐसा ज्ञात होता था, मानो यमराजने कालचक्र उठा लिया है—

ततो धनुषि सन्धाय शरमाशीविषोपमम्।
पूरयामास तच्चापं कालचक्रमिवान्तकः॥

(४। १६। ३३)

श्रीरामजीने वज्रकी भाँति गड़गड़ाहट और

प्रज्वलित अशनिकी भाँति प्रकाश उत्पन्न करनेवाला वह महान् बाण छोड़ दिया तथा उसके द्वारा वालीके वक्ष:स्थलपर—हृदयपर प्रहार किया—

मुक्तस्तु वज्रनिर्घोषः प्रदीप्ताशनिसन्निभः।
राघवेण महाबाणो वालिवक्षसि पातितः॥

(४। १६। ३५)

श्रीरामजीके बाणसे वेगपूर्वक आहत होकर महापराक्रमी, महातेजस्वी वानरेन्द्र वाली सद्यः पृथ्वीपर गिर पड़ा—

ततस्तेन महातेजा वीर्ययुक्तः कपीश्वरः।
वेगेनाभिहतो वाली निपपात महीतले॥

(४। १६। ३६)

रणकर्कश वाली श्रीरामके बाणसे आहत होकर कटे हुए वृक्षकी तरह सहसा धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ा—

ततः शरेणाभिहतो रामेण रणकर्कशः।
पपात सहसा बाली निकृत्त इव पादपः॥

(४। १७। १)

जो आजतक जीवनमें कभी पराजित नहीं हुआ था। महान्-से-महान् वीर भी जिसके नाममात्रसे प्रकम्पित हो जाते थे, वह वाली वीरशिरोमणि श्रीरामके असीम सामर्थ्यसम्पन्न बाणके हृदयमें लगनेपर एक क्षण भी रणमें खड़ा नहीं रह सका। वह तत्काल व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

जो वाली सूर्योदयके पूर्व ही पश्चिम समुद्रसे पूर्व समुद्रतक और दक्षिण सागरसे उत्तर सागरतक घूम आता था, इतनी लम्बी यात्रा करनेपर भी जो श्रान्त-क्लान्त नहीं होता था, वही वाली आज श्रीरामके बाणोंसे आहत होकर भूमिपर गिरा था।

जो वाली पर्वतके बड़े-बड़े शिखरोंको अपने हाथोंसे उठाकर गेंदकी तरह ऊपर उछालकर पुनः हाथोंमें थाम लेता था, मानो कन्दुकक्रीडा कर रहा हो, वही वाली आज श्रीरामके बाणोंसे आहत होकर रक्तसे लथपथ भूमिपर पड़ा हुआ है।

यद्यपि वाली श्रीरामके बाणोंसे आहत होकर भूमिपर पड़ा हुआ था, फिर भी वालीके शरीरको शोभा, प्राण, तेज और पराक्रम नहीं छोड़ सके थे—

भूमौ निपतितस्यापि तस्य देहं महात्मनः।
न श्रीर्जहाति न प्राणा न तेजो न पराक्रमः॥

(४। १७। ४)

महापराक्रमी श्रीराम-लक्ष्मण महान् वीर वालिका सम्मान करनेके लिये तत्काल उसके निकट पहुँच गये—

बहुमान्य च तं वीरं वीक्षमाणं शनैरिव।
उपयातौ महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥

(४। १७। १३)

वालिने कठोर वाणीमें प्रश्न किया। अड़तीस श्लोकोंमें वालीके प्रश्न हैं। उसका सारांश यह है कि आपने मुझे क्यों मारा? वाली कहता है—पृथ्वी, सोना और चाँदीके लिये राजाओंमें युद्ध होता है, हमारी आपकी इनके लिये कोई शत्रुता नहीं थी फिर आपने मुझे क्यों मारा?

भूमिर्हिरण्यं रूपं च विग्रहे कारणानि च।
तत्र कस्ते वने लोभो मदीयेषु फलेषु वा॥

(४। १७। ३१)

हे राघवेन्द्र! जिस सीताप्राप्तिके लिये आपने सुग्रीवसे मित्रता करके मुझे मारा है, यदि आपने मुझसे कहा होता तो मैं सीताजीको एक दिनमें आपके पास ला देता—

सुग्रीवप्रियकामेन यदहं निहतस्त्वया।
मामेव यदि पूर्वं त्वमेतदर्थमचोदयः॥
मैथिलीमहमेकाह्ना तव चानीतवान् भवेः।

(४। १७। ४९)

हे रघुनन्दन! मेरे मरनेपर मेरा राज्य सुग्रीवको

मिलेगा यह तो उचित ही है। अनुचित तो इतना ही हुआ है कि रणभूमिमें आपने मुझे अधर्मसे मारा है—

युक्तं यत्प्राप्नुयाद् राज्यं सुग्रीवः स्वर्गते मयि।
अयुक्तं यदधर्मेण त्वयाहं निहतो रणे॥

(४। १७। ५२)

हे रघुनन्दन! मेरे वधके औचित्यमें यदि कोई उत्तर आपने सोचा हो तो बताइये—

क्षमं चेद्भवता प्राप्तमुत्तरं साधु चिन्त्यताम्।

(४। १७। ५३)

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे वानरेन्द्र! पर्वत, वन और काननसहित यह समस्त भूमि इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंकी है, वे इक्ष्वाकुवंशीय राजा यहाँके पशु, पक्षी और मनुष्योंके ऊपर निग्रह और अनुग्रहके—दया और दण्डके अधिकारी हैं। सम्प्रति धर्मात्मा राजा भरत इस पृथ्वीका पालन करते हैं—

इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना।
मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि॥
तां पालयति धर्मात्मा भरतः सत्यवान् ऋजुः।

(४। १८। ६-७)

मैंने तुम्हें क्यों मारा है उसका कारण सुनो। तुम सनातनधर्मका परित्याग करके अपने छोटे भाईकी स्त्रीसे सहवास करते हो—

तदेतत् कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः।
भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम्॥

(४। १८। १८)

मैं सत्कुलोत्पन्न क्षत्रिय हूँ, इसलिये मैं तुम्हारे पापको सहन नहीं कर सकता हूँ। जो पुरुष अपनी कन्या, भगिनी और अनुजपत्नीके निकट कामबुद्धिसे जाता है उसका वध करना ही उसके लिये उपयुक्त दण्ड है। हमारे राजा भरत हैं। हमलोग तो उनके आदेशके अनुसार कार्य करनेवाले हैं—

न च ते मर्षये पापं क्षत्रियोऽहं कुलोद्गतः।
औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्य यः॥
प्रचरेत नरः कामात् तस्य दण्डो वधः स्मृतः।
भरतस्तु महीपालो वयं त्वादेशवर्तिनः॥
त्वं च धर्मादतिक्रान्तः कथं शक्यमुपेक्षितुम्॥

(४। १८। २२—२४)

प्रजाकी रक्षा करनेके कार्यमें नियुक्त हैं, जहाँ कोई अन्याय करता है, अधर्म करता है वहाँ उसे उचित दण्ड देना और निरपराधपर अनुग्रह करना हमारा कार्य है। तुम धर्मसे गिर गये हो, अतः तुम्हारी उपेक्षा कैसे की जा सकती थी? एतावता मैंने कुछ अकर्तव्य नहीं किया है, बल्कि एक राजाके कर्तव्यका पालन किया है।

तुम्हारे वध करनेका दूसरा कारण यह है कि सुग्रीवके साथ मेरा सख्यसम्बन्ध है। वे मेरे लिये मेरे अनुज लक्ष्मणकी तरह ही प्रिय हैं। वे अपनी स्त्री और राज्यप्राप्तिके लिये और मेरी भलाई करनेके लिये भी कटिबद्ध हैं। मैंने वानरोंकी सन्निधिमें सुग्रीवको राज्य और स्त्रीप्राप्त करानेके लिये प्रतिज्ञा कर ली है। इस स्थितिमें मैं अपनी प्रतिज्ञाकी उपेक्षा कैसे कर सकता हूँ? तात्पर्य यह है कि मैंने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये तुम्हें मारा है—

सुग्रीवेण च मे सख्यं लक्ष्मणेन यथा तथा।
दारराज्यनिमित्तं च निःश्रेयसकरः स मे॥
प्रतिज्ञा च मया दत्ता तदा वानरसन्निधौ।
प्रतिज्ञा च कथं शक्या मद्विधेनानवेक्षितुम्॥

(४। १८। २६-२७)

हे वाली! तुम्हें दण्ड देनेका तीसरा कारण यह है कि धर्मशास्त्रका वचन है—यदि राजा पापीको पापके अनुसार उचित दण्ड नहीं देता है तो उसे स्वयं उस पापका फल भोगना पड़ता है, एतावता मैं तुम्हें दण्ड देनेके लिये विवश था—

राजा त्वशासन् पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम्।

(४। १८। ३२)

हे वानरपुङ्गव! तुम्हें मारनेका चौथा कारण

यह है कि बड़े-बड़े धर्मके जानकार राजर्षि लोग भी मृगयाके लिये जाते हैं और अनेक प्रकारके जन्तुओंका वध करते हैं। इसलिये मैंने युद्धमें तुम्हें अपने बाणका लक्ष्य बनाया है। तुम मुझसे युद्ध करते थे या नहीं करते थे, तुम्हारी वध्यतामें कोई अन्तर नहीं आता है; क्योंकि तुम शाखामृग हो—वनमृग हो और मृगया करनेका क्षत्रियको अधिकार है—

यान्ति राजर्षयश्चात्र मृगयां धर्मकोविदाः।
तस्मात् त्वं निहतो युद्धे मया बाणेन वानरः॥
अयुध्यन् प्रतियुध्यन् वा यस्माच्छाखामृगो ह्यसि।

(४।१८।४०)

हे वाली! तुम्हारे मारनेका पाँचवाँ कारण यह है कि मैंने सुग्रीवके कण्ठमें गजपुष्पीलता बाँधकर सिद्ध कर दिया था कि सुग्रीव मेरा शरणागत भक्त है, फिर भी तुमने मेरे भक्तको मारनेका निन्द्य प्रयास किया, इसलिये भी मुझे तुम्हें मारना पड़ा।

हे वाली! ये सभी धर्मानुकूल महान् कारण एक साथ उपस्थित हो गये, जिनसे विवश होकर तुम्हें उचित दण्ड देना पड़ा है। तुम भी इसका अनुमोदन करो—

तदेभिः कारणैः सर्वैर्महद्भिर्धर्मसंश्रितैः।
शासनं तव यद् युक्तं तद् भवाननुमन्यताम्॥

(४।१८।२८)

श्रीरामकी धर्म-तत्त्वसे ओतप्रोत, सरलहृदयसे निकली हुई, ओजस्विनी वाणी सुनकर वालीके मनमें बड़ी व्यथा हुई—हा हन्त! मैंने बिना समझे ही इनके प्रति आक्षेपपूर्ण वचनोंका प्रयोग किया था। वालीको धर्मके तत्त्वका निश्चय हो गया। उसने श्रीरामजीके दोषका चिन्तन करना छोड़ दिया। वालीने बद्धाञ्जलि होकर कहा—हे नरश्रेष्ठ! आप जो कुछ कहते हैं वही ठीक है, इसमें सन्देह नहीं है—

एवमुक्तस्तु रामेण वाली प्रव्यथितो भृशम्।
प्रत्युवाच ततो रामं प्राञ्जलिर्वानरेश्वरः।
यत्त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तत् तथैव न संशयः॥

(४।१८।४४-४५)

जब किसी व्यक्तिको किसी महाभागवत सन्तका अथवा परम पुरुषोत्तम श्रीभगवान्का कल्याणमय सङ्ग प्राप्त होता है तब उसके स्वभावमें, प्रकृतिमें, आचरणमें, वाणीमें, व्यवहारमें सद्यः—तत्काल परिवर्तन आता है—महान् परिवर्तन आता है। '**मज्जन फल पेखिअ ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला**'॥ इस अर्द्धालीके उदाहरणके रूपमें हमें दो प्रसङ्ग बहुत अच्छे लगते हैं। एक सुन्दरकाण्डमें लङ्किनीका प्रसङ्ग और दूसरा प्रस्तुत प्रसङ्ग—वालीका प्रसङ्ग। इसमेंसे एकको महाभागवत श्रीहनुमान्‌जीका सङ्ग मिला है और दूसरेको साक्षात् परमेश्वर श्रीरामचन्द्रजीका सङ्ग सम्प्राप्त हुआ है। दोनोंमें तत्काल महान् परिवर्तन हुआ है। दोनोंकी वाणी बदल गयी है। दोनोंका जीवन बदल गया है। दोनोंका जीवन-दर्शन बदल गया है। दोनों ही उसके अनन्तर संसारपटलसे अदृश्य हो जाते हैं। दोनोंको भगवत्-तत्त्वकी समुपलब्धि हो जाती है।

वालीने कहा—हे स्वामिन्! मैं कृतार्थ हो गया। आप परम कृपालु हैं। कृपालु ही नहीं, आप तो कृपानिधान हैं—कृपाके अक्षय कोष हैं—आप कृपाके सागर हैं। भाव कि आपकी अनन्त कृपा है मुझ अधमपर। हे रघुनन्दन! मेरे, जैसे अधम प्राणीका आपने अपने बाणरूपी तीर्थसे उद्धार कर दिया। इस प्रकार वालीने श्रीरामजीकी मारमें भी प्यारका अनुभव किया है। वाली कहते हैं कि फिर मेरे-जैसे घमण्डी, उद्धत अधम अभिमानीको आपने स्वयं आकर दर्शन दिया और अपने कृपाकटाक्षसे मुझे उठकर बैठने और बोलनेका सामर्थ्य प्रदान किया। परन्तु हा हन्त! मुझ नीचने उस सामर्थ्यका उपयोग

आपको गाली बकनेमें किया है। हे कृपासागर! हे अनाथनाथ! आपकी सहिष्णुताका मैंने दर्शन किया है। मेरे कठोरतम वचनोंको सुनकर भी आपने मेरे एक-एक प्रश्नका समुचित उत्तर दिया है और मुझे सन्तुष्ट कर दिया है। हे भगवन्! आपने अपने पाप-ताप-सन्ताप नाशक मुखाम्बुजका दर्शन करा कर मेरे ज्ञाताज्ञात पापोंका, जन्म-जन्मके पापोंका विनाश कर दिया। हे कृपालो! अभी-अभी आपने मेरे मनसे कालसर्पका भय, जो मेरे मनको भयङ्कर काले सर्पकी भाँति डसने जा रहा था, उस भयको भी आपने सर्वाभयप्रद कटाक्ष मोक्षसे समाप्त कर दिया। अब मैं मृत्युका वरण करनेके लिये प्रस्तुत हूँ। हे कृपानिधान! आपकी अनन्त कृपा है, उसका मैं अनुभव अवश्य कर रहा हूँ, परन्तु उसका व्याख्यान करना सम्भव नहीं है।

वाली अतिशय स्नेहमयी वाणीमें कहते हैं—हे नाथ! मैंने मान लिया कि मुझसे भयङ्कर अपराध हो गया था, परन्तु अब तो हमने आपके द्वारा प्रदत्त दण्ड प्राप्त कर लिया है। अभी-अभी आपने ही तो कहा था कि जो पापी राजाके द्वारा दण्ड प्राप्त कर लेता है, वह निर्मल हो जाता है और पुण्यात्मा साधुकी भाँति स्वर्गकी प्राप्ति कर लेता है—

राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा॥

(४। १८। ३१)

आपके इस वचनके अनुसार तो मैं अब सर्वथा निष्पाप हो गया हूँ।

हे प्रभो! जीवके मनमें मरणकालमें जो भावना होती है उसीके अनुसार उसका पुनर्जन्म होता है। हे स्वामिन्। इस समय मेरे मनमें तारा नहीं है, सुग्रीव नहीं है, शत्रुता नहीं है, मित्रता नहीं है, राज्यकामना नहीं है, मोक्ष-कामना नहीं है। मुझे इस समय एक ही राग व्यथित कर रहा है। इतना कहते-कहते वालीका कण्ठ आर्द्र हो गया। वह कीचड़में—दलदलमें फँसे हुए हाथीकी भाँति आर्त्तनाद करते हुए श्रीरामजीसे कहने लगे—

बाष्पसंरुद्धकण्ठस्तु वाली सार्तरवः शनैः।
उवाच रामं सम्प्रेक्ष्य पङ्कलग्न इव द्विपः॥

(४। १८। ४९)

जिस समय वाली यह चर्चा कर रहे थे उसी समय वालीके भाव नेत्रोंके सामने—बुद्धिके नेत्रोंके सामने रोते हुए अङ्गद आकर खड़े हो गये। वाली कहने लगे—हे करुणामय रघुनन्दन! इसी अङ्गदमें मेरा राग है। मेरी इच्छा है कि यह पुत्रमोह भी मेरे मनसे निकल जाय तो मैं केवल आपका ध्यान करता हुआ सर्वतोभावेन आपके स्वरूपमें अपनी चित्तवृत्ति सन्निहित करके प्राणत्याग करूँ। हे रघुनन्दन! मेरा अङ्गद अभी बच्चा है। अपरिपक्व बुद्धि है। एकमात्र पुत्र होनेके कारण तारानन्दन अङ्गद मुझे बहुत प्यारा है, आप मेरे महाबली पुत्रका परिरक्षण करें—

बालश्चाकृतबुद्धिश्च एकपुत्रश्च मे प्रियः।
तारेयो राम भवता रक्षणीयो महाबलः॥

(४। १८। ५२)

हे स्वामी! अब मैं जाते-जाते एक रहस्यकी बात आपके श्रीचरणोंमें निवेदन कर रहा हूँ। मुझे पहलेसे ही ज्ञात हो गया था कि आप असामान्य महापुरुष हैं, साधारण राजकुमार नहीं हैं, सामान्य वीर नहीं हैं। आप तो पूर्णब्रह्म परात्पर मेरे आराध्य हैं। परन्तु हे कृपासागर! मैं आपकी सहायता करनेमें असमर्थ था; क्योंकि रावणसे अग्निकी साक्षी देकर मैं मित्रता कर चुका था। हे मेरे स्वामी! मैंने सोचा कि जो शरीर आपके कार्यमें नहीं आ सकता है, उसका विनाश होना ही चाहिये। इसलिये मैं चाहता था कि आपके हाथसे ही मेरी मृत्यु हो। एतावता ताराके वारण करनेपर भी मैं सुग्रीवसे द्वन्द्वयुद्ध करने चला आया—

त्वत्तोऽहं वधमाकाङ्क्षन् वार्यमाणोऽपि तारया॥

सुग्रीवेण सह भ्रात्रा द्वन्द्वयुद्धमुपागतः।

(४। १८। ५७-५८)

इसके अनन्तर भावविह्वल हृदयसे भाव-प्रिय श्रीरामने भावमय वालीका भावमय वचनोंसे भावपूर्ण आश्वासन किया। प्रभुने कहा—हे वानरेन्द्र! तुम्हारे रहनेपर अङ्गद जिस प्रकार रहता था उसी प्रकार वह मेरे और सुग्रीवके पास भी सुखपूर्वक रहेगा, इसमें संशय नहीं है—

यथा त्वय्यङ्गदो नित्यं वर्तते वानरेश्वर ।
तथा वर्तेत सुग्रीवे मयि चापि न संशयः॥

(४। १८। ६४)

वालीने प्रभुसे भावविह्वल स्वरमें अन्तिम प्रार्थना की—हे महेन्द्रोपम भीमविक्रम! हे नरेश्वर! हे विभो! मैं आपके बाणसे व्यथित होनेके कारण चेतनाशून्य हो गया था; अतः अनजानेमें मैंने आपके प्रति जो अनुचित शब्द कहे हैं उन्हें आप क्षमा करें। हे मेरे स्वामी! हे अनाथनाथ! मैं प्रार्थनापूर्वक आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ—

शराभितप्तेन विचेतसा मया
प्रभाषितस्त्वं यदजानता विभो
इदं महेन्द्रोपमभीमविक्रम
प्रसादितस्त्वं क्षम मे नरेश्वर॥

(४। १८। ६६)

वाली बड़ी दीन वाणीमें अपनी अभिलाषाकी अभिव्यक्ति करते हैं—हे नाथ! मरनेवालेपर तो सबके मनमें दयाका सञ्चार होता है। हे प्रभो! अब तो मैं कुछ ही क्षणोंका मेहमान हूँ—अब तो कुछ ही क्षणोंमें मैं मर जाऊँगा, इसलिये इस म्रियमाणकी ओर अब तो पूर्ण कृपादृष्टिसे एक बार निहार लो— **'अब नाथ करि करुना बिलोकहु'**। भाव कि यद्यपि मेरे द्वारा अनेक जघन्य अपराध हुए हैं, मैंने आपके दासको—भक्त सुग्रीवको मारना चाहा था, मैंने आपके निर्मल वचनोंका प्रत्याख्यान किया, मैंने अपनी क्रूर वाणीसे आपको दुर्वचन कहा, मेरे अपराधोंका कोई प्रायश्चित्त तो है ही नहीं; फिर भी हे करुणासागर! आपकी करुणावलोकनिमें बड़ी सामर्थ्य है, यह मैंने अनुभव किया है, अतः उसी कृपादृष्टिसे देखकर हमें कृतार्थ करें। मैं निहाल हो जाऊँगा मेरे नाथ!

वालीके घायल होनेका समाचार सारी किष्किन्धामें फैल गया। वालिपत्नी तारा रोती हुई वालीके निकट चली। उस समय कुछ वानरोंने तारासे कहा—हे देवि! अभी आपका पुत्र जीवित है, अतः आप लौट चलो और अपने पुत्र अङ्गदकी रक्षा करो। श्रीरामका रूप धारण करके स्वयं यमराज आ पहुँचा है जो वालीको मारकर अपने साथ ले जा रहा है—

जीवपुत्रे निवर्तस्व पुत्रं रक्षस्व चाङ्गदम्।
अन्तको रामरूपेण हत्वा नयति वालिनम्॥

(४। १९। ११)

इसके अनन्तर ताराके विलापका विस्तृत वर्णन है। पश्चात्ताप करती हुई, रोती हुई तारा कहती हैं—हा हन्त! आपने अपने अनुज सुग्रीवकी भार्याका हरण कर लिया और सुग्रीवको विवासित कर दिया—घरसे निकाल दिया। उसीका यह फल आपको मिला है—

सुग्रीवस्य त्वया भार्या हृता स च विवासितः।
यत् तत् तस्य त्वया व्युष्टिः प्राप्तेयं प्लवगाधिप॥

(४। २०। ११)

श्रीहनुमान्‌जीने ताराको कई प्रकारसे समझाया। हे देवि! तुम विदुषी हो, अतः जानती हो कि प्राणियोंके जन्म और मृत्युका कोई निश्चित समय नहीं है। अतएव शुभकर्मका आचरण सदा करना चाहिये। अधिक रोना-धोना आदि लौकिक व्यवहार है, अतः उसे नहीं करना चाहिये—

जानास्यनियतामेवं भूतानामागतिं गतिम्।
तस्माच्छुभं हि कर्तव्यं पण्डिते नेह लौकिकम्॥

(४। २१। ५)

जीवनकी अन्तिम वेलामें वालीकी भगवान्

श्रीरामके चरणोंमें दृढ़ प्रीति हो गयी थी। वालीकी प्रीतिकी दृढ़ताका ही परिणाम है कि मरणकालमें जब कि प्रायः लोगोंकी बुद्धि विकृत हो जाती है, मोहग्रस्त हो जाती है, कर्तव्याकर्तव्यके विवेकसे शून्य हो जाती है; परन्तु उसके विपरीत वालीकी बुद्धि निर्मल हो गयी। वालीकी श्रीरामजीके चरणोंमें अनुरागपूर्ण निष्ठा बढ़ गयी। उनका हृदय राग-द्वेषसे शून्य हो गया। न उनकी उस समय किसीसे शत्रुता थी और न किसीके प्रति मोह था। उनका कर्तव्याकर्तव्य विवेक जाग्रत् हो गया था।

वालीने अपने अनुज सुग्रीवको बुलाकर बड़े स्नेहके साथ स्पष्ट वाणीमें कहा—हे सुग्रीव! पूर्व जन्मके किसी पापसे मेरी बुद्धि विकृत हो गयी और मैं तुमको शत्रु समझने लगा था; अतः मुझसे जो अपराध हो गया उसके लिये तुम्हें मेरे प्रति दोषदृष्टि नहीं करनी चाहिये। इस प्रकार वालीने सुग्रीवको सुन्दर शिक्षा दी और उनको उनके कर्तव्यके प्रति जागरूक किया। वालीने कहा—हे सुग्रीव! यह तारानन्दन अङ्गद तुम्हारे समान ही पराक्रमी है। तुम्हारी प्रतिज्ञा-पालनमें यह तुम्हारा सहायक सिद्ध होगा। रावणादि राक्षसोंके युद्धमें यह सदा तुम्हारे आगे-आगे रहेगा। अतः इसे सँभाल कर रखना—

एष तारात्मजः श्रीमांस्त्वया तुल्यपराक्रमः।
रक्षसां च वधे तेषामग्रतस्ते भविष्यति॥

(४। २२। ११)

वालीने अपने भाईको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शिक्षा दी है—हे सुग्रीव! श्रीरामचन्द्रजीका कार्य तुम्हें शङ्कारहित—सन्देहरहित होकर करना चाहिये। श्रीरामकार्य न करनेपर अधर्म होगा—पाप होगा। कृतघ्नता होगी, मिथ्या प्रतिज्ञा करनेका पातक भी होगा, श्रीरामजीका अपमान भी होगा और हे सुकण्ठ! इसका विपरीत परिणाम भी सम्भव है—

राघवस्य च ते कार्यं कर्तव्यमविशङ्कया।
स्यादधर्मो ह्यकरणे त्वां च हिंस्यादमानितः॥

(४। २२। १५)

मरते समय अपनी दुर्लभ सम्पत्तिको वालीने अपनी पत्नी ताराको नहीं दिया। अपने प्रिय पुत्र अङ्गदको भी नहीं दिया। वालीके जन्मके समय वालिके पिता देवराज इन्द्रने काञ्चनीमाला उन्हें दी थी। वह काञ्चनीमाला अतिशय महिमामयी थी। वह विजयश्रीसम्पन्ना थी। श्रीरामचरणोंके दृढ़ प्रेमी, ईर्ष्या, द्वेष, राग, मोह आदि दुर्भावनाओंसे रहित स्थिरमति महात्मा वालीने वह माला सुग्रीवजीको दे दी। वालीने कहा कि हे सुग्रीव! मेरी यह काञ्चनीमाला तुम धारण कर लो। इस मालामें परमोदारा विजयादि लक्ष्मीका निवास है, अर्थात् इसको धारण करनेवाला विजयादि लक्ष्मीकी प्राप्ति करेगा। मेरे मर जानेपर मृतक शवके स्पर्शसे इसकी महिमा नष्ट हो जायगी; सुतराम् तुम अभी इसी समय मेरे हाथसे धारण कर लो। हे शोभन कण्ठ! मुझ मरणासन्न वालीका यही अन्तिम स्नेहोपहार है। वालीने सुग्रीवके गलेमें वह माला पहना दी। इस प्रकार अन्तिम वेलामें वालीकी बुद्धि निर्मल हो गयी—

इमां च मालामाधत्स्व दिव्यां सुग्रीव काञ्चनीम्।
उदारा श्रीः स्थिता ह्यस्यां सम्प्रजह्यान्मृते मयि॥

(४। २२। १६)

वालीकी स्नेहमयी वाणी सुनकर सुग्रीव दुःखी हो गये कि हा हन्त! मैं इनके स्नेही हृदयको समझ नहीं पाया और इन्हें मरवा दिया। वालिवधजन्य प्रसन्नता दुःखके रूपमें परिणत हो गयी—'**हर्षं त्यक्त्वा पुनर्दीनः**'। वालिके स्नेहिल वचनसे श्रीसुग्रीवका वैरभाव समाप्त हो गया। वे अतन्द्रित होकर उचित कार्य करने लगे। उन्होंने वालीकी आज्ञासे काञ्चनीमाला स्वीकार कर ली—

तद् वालिवचनाच्छान्तः कुर्वन् युक्तमतन्द्रितः।

जग्राह सोऽभ्यनुज्ञातो मालां तां चैव काञ्चनीम्॥

(४। २२। १८)

इसके बाद वालीने अङ्गदको कर्तव्यकर्मकी अनेक प्रकारसे शिक्षा दी। इसके अनन्तर वालीने अपनी भावमयी भाषामें प्रभुकी प्रार्थना की। स्मरण रहे, यह भावाञ्जलि मैं श्रीरामचरितमानस एवं अन्य ग्रन्थोंके आश्रयसे लिख रहा हूँ।

वालीने भावपूर्वक बद्धाञ्जलि होकर स्नेह समुच्छलित वाणीमें कहा—हे स्वामिन्! जीवनकी अवसान वेलामें मैं समझ पाया कि सम्राट् स्वराट्की अपेक्षा श्रीरामदासानुदासका अधिक महत्त्व है। हे अकिञ्चन धन! आपके द्वारा प्रदत्त उत्तर मेरे मनमें बैठ गया। यद्यपि उत्तरसे तो मैं पूर्ण सन्तुष्ट हो गया, परन्तु पश्चात्तापमें असन्तोष बढ़ गया। मैंने सोचा था कि आप सुग्रीवकी अपेक्षा मेरी मैत्रीको अधिक महत्त्व देंगे, क्योंकि मैं रावणको बाँधकर लानेमें सर्वथा समर्थ था, मैं सप्तद्वीपवानरालीपति था, परन्तु आपके सुग्रीव-प्रेममें तो स्वार्थकी गन्धविन्दु भी नहीं थी। आपको तो समर्थकी अपेक्षा अपना लौकिक दृष्ट्या असमर्थ दास ही अधिक प्रिय हैं। जब आपने यह कहा—'**मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥**' तब मैं निरुत्तर हो गया और लगा सोचने कि जीवनमें भयङ्कर भूल हो गयी। यदि मैं भी आपका दास होता तो बात बन जाती, परन्तु— '**का बरषा सब कृषी सुखानें**'। हे भक्तवत्सल! हे दासप्रिय रघुनन्दन! अब तो मेरे ममत्वके केन्द्रबिन्दु, इस रुदन करते हुए बालक अङ्गदको अपने श्रीचरणोंका दासत्व प्रदान करके मुझे कृतार्थ करें। इसके श्रीवैष्णव बन जानेपर—श्रीरामदास बन जानेपर मेरे पश्चात्तापका प्रायश्चित्त हो जायगा। '**आत्मा वै जायते पुत्रः**' इस न्यायसे।

'**अलम् अलमिति**'—अब मुझे कुछ नहीं कहना है, आप तो सर्वान्तर्यामी हैं और सर्वान्तर्दर्शी हैं। हे राघव! मैं भी तो आपका दास हूँ। अब तो सप्तद्वीपवानरालीपति और किष्किन्धाके राजा आपके भक्त सुग्रीव हैं। मैं तो अपने हृदयसे आपका अकिञ्चन दास हूँ। मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि इतना कहते-कहते वालीका कण्ठ आर्द्र हो गया। वाली सर्वदाके लिये मौन हो गया और उसके लोचनभ्रमर श्रीराममुखारविन्दपर मँडराने लगे और उसने............................।

वालीके महाप्रयाणके पश्चात् ताराके विलापका विस्तृत वर्णन है। अनेक प्रकारके शोकपूर्ण वचनोंको रोती हुई कहकर तारा अपनी शोकाभिव्यक्ति करने लगी। महर्षि श्रीवाल्मीकिने एक सर्गमें ताराके विलापका वर्णन किया है। महर्षिका वर्णन बड़ा भावपूर्ण और करुण है। तारा कहती हैं—स्त्रीकी शोभा पतिके साथमें ही है। पतिविहीना नारी चाहे कितने भी योग्य पुत्रोंकी माता हो, प्रभूतधन-धान्यसे सम्पन्न जीवन हो, परन्तु न वह सुखी ही रहती है और न सुशोभित ही होती है। लोगोंकी दृष्टिसे भी गिर जाती है। समाज उसे विधवा कहता है—

पतिहीना तु या नारी कामं भवतु पुत्रिणी॥
धनधान्यसमृद्धाऽपि विधवेत्युच्यते जनैः।

(४। २३। १२-१३)

ताराजी अपने मृत पतिको सम्बोधित करके कहती हैं—आपने इतने महान् समर-यज्ञका अनुष्ठान सम्पन्न किया। यज्ञान्तमें श्रीरामजीके बाणरूपी तीर्थमें—जलमें स्नान करके कृतार्थ भी हो गये। परन्तु यह स्नान आपने पत्नीके बिना एकाकी किया है। हे प्रियतम! आपको इस अवभृथ स्नानमें पत्नीको—मुझको साथमें लेना चाहिये था। भाव कि आपने जीवनमें समस्त कार्य मेरे साथ किये थे, आज जब जीवनका सबसे अच्छा दिन—महत्त्वपूर्ण दिन आया तो आप मुझे भूल गये। अवभृथ स्नानका भाव यह है कि जैसे यज्ञमें अवभृथ स्नान अन्तिम कर्म

होता है, उसी प्रकार आपके जीवनका यह अन्तिम समरयज्ञ था। दूसरा भाव कि अवभृथ स्नान यज्ञकी सफलताका द्योतक है, इसी प्रकार आपका यह यज्ञ सफल हो गया—

इष्ट्वा संग्रामयज्ञेन रामप्रहरणाम्भसा।
तस्मिन्नवभृथे स्नातः कथं पत्न्या मया विना॥

(४। २३। २७)

श्रीताराजी कहती हैं—हे वानरेन्द्र! आप प्रायः कहते थे कि तारे! तुम्हारी सम्मति सदा अनुकूल परिणामवाली होती है—'**नहि तारा मतं किञ्चिदन्यथा परिवर्तते**'। आप कहते ही नहीं थे, आप प्रायः मेरे परामर्शको महत्त्वपूर्ण समझकर उसे सम्मान भी देते थे, परन्तु हा हन्त! आज आपने मेरी हितैषी भावनासे परिपूर्ण प्रार्थनाको महत्त्व नहीं दिया, उसे ठुकरा दिया। मेरे स्नेहको धिक्कार है। मैं भी आज अपने प्रेमपाशमें आपको बाँध न सकी, मैं आपको रोकनेमें सफल न हो सकी। उसका दुःखोदर्क परिणाम मेरे सामने आ गया। आपका निष्प्राण शरीर मेरे सामने पड़ा है। आपके मारे जानेसे मैं भी पुत्रके साथ मारी गयी। अब तो सब प्रकारकी श्री आपके साथ मुझे और आपके वात्सल्य-भाजन अङ्गदको भी त्याग रही है। आपके बिना हम दोनोंकी सब शोभा नष्ट हो गयी—

न मे वचः पथ्यमिदं त्वया कृतं
न चास्मि शक्ता हि निवारणे तव।
हता सपुत्रास्मि हतेन संयुगे
सह त्वया श्रीर्विजहाति मामपि॥

(४। २३। ३०)

इसके अनन्तर श्रीसुग्रीवने पश्चात्तापपूर्ण अत्यन्त करुण विलाप किया और प्राणपरित्याग करनेके लिये प्रस्तुत हो गये। उस समय सुग्रीवके दुःखपूर्ण वचनोंको सुनकर आश्रित विरोधि निरसनशील रघुप्रवीर श्रीरामजी अपने भक्त सुग्रीवके दुःखसे दुःखी होकर रुदन करने लगे। दो घड़ीपर्यन्त श्रीरामजी अन्यमनस्क-से हो गये—

इत्येवमार्तस्य रघुप्रवीरः
श्रुत्वा वचो वालिजघन्यजस्य।
सञ्जातबाष्पः परवीरहन्ता
रामो मुहूर्तं विमना बभूव॥

(४। २४। २४)

इस श्लोककी व्याख्या करते हुए श्रीगोविन्दराजजी लिखते हैं—'**अथ रामस्याश्रित कार्यमेव स्वकार्यंन तु स्वतः किञ्चिदस्ति। अतएव मम शत्रुर्बालीति सुग्रीवेणोक्ते तन्निहत्य तस्मिन्नश्रूणि मुक्त्वाशोचति सति स्वयमपि तथा शोचतिस्म**'। अर्थात् अपने आश्रितका कार्य ही श्रीरामजीका कार्य है, उनका अपना स्वतन्त्र कोई कार्य नहीं है। जब श्रीसुग्रीवने कहा कि वाली मेरा शत्रु है तब श्रीरामजीने उसका वध कर दिया और सुग्रीवको आँसू बहाकर रोते हुए देखकर स्वयं भी आँसू बहाकर रुदन करने लगे।

इसके अनन्तर श्रीरामजीने ताराको अत्यन्त दुःखी देखकर उसको आश्वासन दिया—हे तारे! शूरवीरोंकी पत्नियाँ इस प्रकार विलाप नहीं करती हैं। विधाताका विधान ऐसा ही है। हे तारे! जिस प्रकार तुम वालीके जीवन-कालमें रहती थीं, उसी प्रकार सुग्रीवके समयमें भी रहोगी। वही सुख और आनन्द तुम्हें मिलेगा। तुम्हारा पुत्र अङ्गद युवराजपद प्राप्त करेगा—

प्रीतिं परां प्राप्स्यसि तां तथैव
पुत्रश्च ते प्राप्स्यति यौवराज्यम्।
धात्रा विधानं विहितं तथैव
न शूरपत्न्यः परिदेवयन्ति॥

(४। २४। ४३)

श्रीरामजीके आश्वासनपर वीरपत्नी ताराने रुदन करना छोड़ दिया। जब सुग्रीवने आत्महत्या करनेका विचार परित्याग कर दिया, वे थोड़े

आश्वस्त हो गये तब श्रीरामजीने देखा कि वानरोंकी भीड़ बढ़ती जा रही है और दाह-संस्कारमें विलम्ब हो रहा है तब प्रभुने श्रीसुग्रीवसे कहा—हे वानरेन्द्र! विशाल वानरवाहिनी—पति वालीने जिस नियतको—गतिको प्राप्त किया, वह गति उत्तम है, इसलिये वालीके विषयमें आपको शोक नहीं करना चाहिये। सम्प्रति तुम्हारे सामने जो समयोचित कार्य उपस्थित है उसका अनुष्ठान करो, अर्थात् वालीका अन्तिम संस्कार करो—

एषा वै नियतिः श्रेष्ठा यां गतो हरियूथपः।
तदलं परितापेन प्राप्तकालमुपास्यताम्॥

(४। २५। ११)

भगवान्के इतना कहनेपर भी श्रीसुग्रीवसे श्रीलक्ष्मणने कहा। उस समय श्रीसुग्रीवका कर्तव्या-कर्तव्य-विवेक नष्ट हो गया था। उन्हें यही नहीं सूझ रहा था कि प्रभुकी आज्ञाका पालन मैं कैसे करूँ— '**अवदत् प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं गतचेतसम्।**' अतः श्रीलक्ष्मणने यह निर्देश किया कि हे सुग्रीवजी! अब आप अङ्गद और ताराको साथमें लेकर वालीके दाहसंस्कार—सम्बन्धी प्रेतकार्य करिये। आप अपने सेवकोंको आज्ञा दे दें कि वालीका दाह-संस्कार करनेके लिये प्रचुर मात्रामें सूखी लकड़ियाँ ले आवें और दिव्य चन्दनकाष्ठ भी ले आवें, जिससे श्मशान-भूमिका वातावरण सुगन्धित भी रहे—

कुरु त्वमस्य सुग्रीव प्रेतकार्यमनन्तरम् ।
ताराङ्गदाभ्यां सहितो वालिनो दहनं प्रति॥
समाज्ञापय काष्ठानि शुष्काणि च बहूनि च।
चन्दनानि च दिव्यानि वालिसंस्कारकारणात्॥

(४। २५। १३-१४)

वालीका मृतक शरीर ले जानेके लिये—महायात्राके लिये सुन्दर शिविका सजायी गयी, वह इतनी सुन्दर थी कि दूरसे देखनेमें सिद्धोंके विमानकी तरह प्रतीत होती थी— '**विमानमिव सिद्धानाम्**'। इस प्रकार वालीका दाह-संस्कार सुग्रीव, तारा आदिकी सहायतासे वालिनन्दन अङ्गदजीने किया—

सुग्रीवेण ततः सार्द्धं सोऽङ्गदः पितरं रुदन्।
चितामारोपयामास शोकेनाभिप्लुतेन्द्रियः॥

(४। २५। ४९)

वानरेन्द्र वालीका विधिवत् संस्कार करके सभी श्रेष्ठ वानर जलाञ्जलि प्रदान करनेके लिये पवित्र नदीके तटपर आये। यह भी प्रेतकार्यका अङ्ग है, अतः 'विधिवत्' कहा है—

संस्कृत्य बालिनं तं तु विधिवत् प्लवगर्षभाः।
आजग्मुरुदकं कर्तुं नदीं शुभजलां शिवाम्॥

(४। २५। ५१)

'विधिवत्' की व्याख्या करते हुए तिलक-टीकाकार कहते हैं—'**विधिवत् देवांशत्वेन स्वयं ज्ञात वेदत्वात् ज्ञानवत् तिर्यग्देहोचित विधिवत् इत्यर्थः, यद्वा विधिवदग्निहोत्रविधिना इत्यर्थः**', देवताका अंश होनेके कारण, वेदका ज्ञान होनेके कारण वेदविधिके अनुसार समस्त कार्य हुआ। किं वा वानर देहोचित विधिवत् संस्कार सम्पन्न किया। किं वा अग्निहोत्र-विधिसे अन्त्येष्टि सम्पन्न की।

वालीकी अन्त्येष्टिकी जो सबसे बड़ी विधि सम्पन्न हुई, उसको पढ़ते ही मन गद्गद हो जाता है। परम कारुणिक भगवान् श्रीरामजी पवित्र तुङ्गभद्रा नदीके तटतक भाग्यवान् वालीकी महायात्रा-में सम्मिलित हुए। श्रीसुग्रीवके समान ही श्रीरामजी भी दुःखी हुए। श्रीरामजीने अपनी देख-रेखमें, अपने निर्देशनमें समस्त कर्म सम्पन्न करवाये—

सुग्रीवेणैव दीनेन दीनो भूत्वा महाबलः।
समानशोकः काकुत्स्थः प्रेतकार्याण्यकारयत्॥

(४। २५। ५३)

इसे वालीका सौभाग्य कहें किं वा श्रीसुग्रीवके प्रति रघुनन्दनका उत्कट सौहार्द्र कहें अथवा

श्रीरामभद्रकी अनुपम अनुकम्पा कहें। मैं तो इतना ही कहूँगा कि महाभाग वाली धन्य हो गये। मरते समय और मरनेके पश्चात् जो वालीकी उपलब्धि है, वह उपलब्धि बड़े-बड़े महामुनीन्द्र योगीन्द्र अमलात्मा महात्मा परमहंसोंको भी दुर्लभ है।

अब इसीके साथ वालीका प्रसङ्ग पूर्ण होता है। महाभाग्यवान् वालीके चरणोंमें, श्रीरामसखा सुग्रीवके अग्रजके चरणोंमें, पञ्चकन्याओंमें परिगणित तारादेवीके पतिके चरणोंमें, परम भागवत श्रीअङ्गदके पितृपदको अलङ्कृत करनेवाले भाग्यवान् वालीके चरणोंमें हम भी अपनी भावाञ्जलि अर्पण करते हैं।

समस्त वानर-समाजका एवं सुग्रीवका प्रतिनिधित्व करते हुए श्रीहनुमान्ने श्रीरामजीको नगरमें चलनेका आमन्त्रण दिया। प्रभुने उनसे कहा—हे हनुमान्! हे सौम्य! मैं अपने श्रद्धेय पिताजीका निर्देश-पालन करनेके लिये ही वनमें आया हूँ। चौदह वर्षपर्यन्त मैं किसी भी नगर अथवा ग्राममें प्रवेश नहीं कर सकता हूँ—

प्रत्युवाच हनूमन्तं बुद्धिमान् वाक्यकोविदः।
चतुर्दश समाः सौम्य ग्रामं वा यदि वा पुरम्॥
न प्रवेक्ष्यामि हनुमन् पितुर्निर्देशपालकः।

(४। २६। ९-१०)

श्रीहनुमान्से इस प्रकार कहकर प्रभुने सुग्रीवसे कहा—हे सुग्रीव! वालीने मरते समय विश्वासपूर्वक और विनम्रतापूर्वक अपने प्राणप्रिय पुत्र अङ्गदको मुझे और तुम्हें समर्पित किया है। अब वह मेरे पुत्रकी तरह है। अङ्गद स्वयं बहुत बुद्धिमान् और स्नेही हृदयका है। उसका हृदय बहुत उदार है, सङ्कुचित हृदयका नहीं है। एतावता तुम उसे युवराज-पदपर अभिषिक्त कर देना। वह युवराज-पदके योग्य है और अधिकारी भी है—

इममप्यङ्गदं वीरं यौवराज्येऽभिषेचय॥
ज्येष्ठस्य हि सुतो ज्येष्ठः सदृशो विक्रमेण च।
अङ्गदोऽयमदीनात्मा यौवराज्यस्य भाजनम्॥

(४। २६। १२-१३)

भगवान् श्रीरामकी आज्ञासे सुग्रीवने अङ्गदको अपने हृदयसे लगाकर युवराज-पदपर उनका अभिषेक करा दिया—

रामस्य तु वचः कुर्वन् सुग्रीवो वानरेश्वरः।
अङ्गदं सम्परिष्वज्य यौवराज्येऽभ्यषेचयत्॥

(४। २६। ३८)

श्रीअङ्गदको युवराज पदपर अभिषिक्त करके देशके—किष्किन्धा प्रदेशके भावी शासककी भी श्रीरामजीने घोषणा कर दी। इससे तीन लाभ हुए—(१) इससे वालीके पक्षधर प्रजाजनोंमें क्षोभ नहीं होगा। वे लोग वालीके पुत्रको युवराज पदपर भावी राजाके रूपमें देखकर निश्चय ही प्रसन्न हो जायँगे—

अङ्गदे चाभिषिक्ते तु सानुक्रोशाः प्लवङ्गमाः।
साधु साध्विति सुग्रीवं महात्मानो ह्यपूजयन्॥
रामं चैव महात्मानं लक्ष्मणं च पुनः पुनः।
प्रीताश्च तुष्टुवुः सर्वे तादृशे तत्र वर्तिनि॥

(४। २६। ३९-४०)

श्रीअङ्गदका युवराज-पदपर अभिषेक होनेपर उदार हृदयवाले दयावान् वानर साधु-साधु कहकर श्रीसुग्रीवकी प्रशस्ति करने लगे। इस प्रकार राजा और युवराज-पदपर श्रीसुग्रीव और अङ्गदको देखकर सब वानरगण—उभय पक्षके वानर बहुत प्रसन्न हुए। वे तुच्छ प्रकृतिके नहीं थे, अतः श्रीराम और लक्ष्मणजीकी भी सुन्दर स्तुति करने लगे।

(२) इस कार्यसे अङ्गदकी प्रतिभाका, उनके बुद्धि-वैभवका यथोचित सम्मान हुआ है। इस प्रकार राजनीति विशारद श्रीरामजीने वानर-समाजकी तरुण प्रतिभाका अभिनन्दन किया है।

(३) **'आत्मा वै जायते पुत्रः'** इस न्यायके

अनुसार स्वर्गीय वालीका भी सम्मान हुआ है। करुणामय श्रीरामजीने वालीका नाम समाप्त नहीं होने दिया। अङ्गदके रूपमें उसके यशको वृद्धिंगत कर दिया। यह श्रीरामजीकी निष्पक्ष राजनीति है। साथ ही चौथा लाभ यह भी हुआ कि श्रीअङ्गदजीको युवराज बनाकर श्रीरामजीने वालीकी अन्तिम अभिलाषाकी पूर्ति कर दी और तारादेवीके हृदयको भी आनन्द प्रदान कर दिया।

महर्षि वाल्मीकिजी ने लिखा है कि विशाल वानरीसेनाके अधिपति पराक्रमी श्रीसुग्रीवने महात्मा श्रीरामके निकट जाकर अपने महाभिषेकका समस्त वृत्तान्त निवेदन किया। श्रीसुग्रीवने अपनी भार्या रुमा और वानरोंका साम्राज्य पद उसी प्रकार प्राप्त किया जिस प्रकार देवराज इन्द्रने श्रीवामनभगवान्‌के द्वारा त्रिदशाधिपत्व प्राप्त किया था—

निवेद्य रामाय तदा महात्मने
महाभिषेकं कपिवाहिनीपतिः।
रुमां च भार्यामुपलभ्य वीर्यवा-
नवाप राज्यं त्रिदशाधिपो यथा॥

(४। २६। ४२)

जब वानरराज सुग्रीवका राज्याभिषेक हो गया और वे किष्किन्धापुरीमें जाकर रहने लगे तब श्रीरामजी अपने भ्राता लक्ष्मणके साथ प्रस्रवण पर्वतपर चले आये। उस पर्वतपर वर्षा अधिक होती थी और झरने बहुत थे तथा वे बहते ही रहते थे— '**प्रस्रवति जलमस्मादिति प्रस्रवणः**'।

अभिषिक्ते तु सुग्रीवे प्रविष्टे वानरे गुहाम्।
आजगाम सह भ्रात्रा रामः प्रस्रवणं गिरिम्॥

(४। २७। १)

प्रस्रवण पर्वतके शिखरपर एक बहुत बड़ी एवं विस्तृत गुफा थी, श्रीलक्ष्मणके साथ श्रीरामजीने उसी गुफाको अपने निवासके लिये निश्चित किया—

तस्य शैलस्य शिखरे महतीमायतां गुहाम्।
प्रत्यगृह्णीत वासार्थं रामः सौमित्रिणा सह॥

(४। २७। ४)

उस गुफाके सन्निकट ही तुङ्गभद्रा नदी बहती थी। उसे देखकर श्रीरामजीको चित्रकूटकी मन्दाकिनीकी स्मृति हो जाती थी। श्रीरामजीने अत्यन्त ललित भाषामें—काव्यमयी साहित्यिक भाषामें वर्षा-ऋतु और शरद्-ऋतुका वर्णन किया है। प्रभु कहते हैं—हे सुमित्रानन्दन! जलकी प्राप्ति करानेवाला वर्षाकाल आ गया है। तुम अच्छी तरह देखो, पर्वतके समान ज्ञात होनेवाले जलभरे मेघोंसे यह विस्तृत आकाशमण्डल ढक गया है—'**बरषा काल मेघ नभ छाए**'।

अयं स कालः सम्प्राप्तः समयोऽद्य जलागमः।
सम्पश्य त्वं नभो मेघैः संवृतं गिरिसन्निभैः॥

(४। २८। २)

श्रीरामजी वर्षा-ऋतुके वर्णनके सन्दर्भमें मयूर-नृत्यका अत्यन्त भावपूर्ण साहित्यिक निरूपण करते हैं—

क्वचित्प्रनृत्तैः क्वचिदुन्नदद्भिः
क्वचिच्च वृक्षाग्रनिषण्णकायैः।
व्यालम्बबर्हाभरणैर्मयूरै-
र्वनेषु सङ्गीतमिव प्रवृत्तम्॥

(४। २८। ३७)

श्रीरामजी कहते हैं—हे सुमित्रानन्दन! अपना प्रियसमय—अनुकूल समय जानकर मयूरोंने एक आयोजन ही कर लिया है। इस सङ्गीत-नृत्य-समारोहमें सब मयूर-ही-मयूर हैं। मयूरेतर जातिके लोग दूरसे भले ही देख रहे हों, सभाके भीतर तो दर्शक भी मयूर है, नर्तक भी मयूर है और गायक भी मयूर है। गायक और दर्शक मयूर तो सामान्य वेषभूषामें हैं। परन्तु नर्तक मयूरने विविध रंगोंके विशाल पंखरूपी आभूषण धारण कर लिये हैं। '**व्यालम्बबर्हाभरणैर्मयूरैः, व्यालम्बीनि अति विशालानि बर्हाणि पृच्छानि एव आभरणानि येषां तैः**'। भाव कि जब मयूर नृत्य करता है तब

वह अपने बहुरंगी सुन्दर पंखोंको फैलाता है। यही लम्बे-लम्बे दर्शनीय पंख नर्तक मयूरके आभूषण हैं।

श्रीगोविन्दरामजी लिखते हैं— **'सङ्गीत विषये केचिन्नृत्यन्ति केचिद् गायन्ति केचित् प्रधाना अनुभवन्ति तत् सर्वं वनेऽपि दर्शयति। नृत्यन्तो मयूराः नर्तक स्थानीयाः नदन्तो मयूराः गायक स्थानीयाः वृक्षाग्र निषण्णकायाः मयूरा अनुभवितृ स्थानीयाः अतस्तैः सङ्गीतं प्रवृत्तमिव'**। अर्थात् प्राकृत संगीत सभामें भी कुछ लोग नाचते हैं, कुछ लोग गाते हैं और कुछ प्रधान लोग अनुभव करते हैं—केवल नृत्य देखते हैं और उत्साह संवर्द्धन करते हैं। इसी प्रकार इस प्रस्रवण पर्वतके वनमें भी नाचनेवाले मयूर नर्तक स्थानापन्न हैं, नाद करते हुए मयूर गायक स्थानापन्न हैं और जो वृक्षोंकी शाखाओंपर अपने शरीरका भार डालकर बैठे हैं वे दर्शक स्थानापन्न हैं, इस प्रकार एक मनोरम सङ्गीत सभाका आयोजन हो गया है।

हे लक्ष्मण! आषाढी पूर्णिमाको सनातन-धर्मके मर्मज्ञ लोग, सन्त लोग, तपस्वीजन अनेक प्रकारके नियम लेते हैं। कोई द्विदल त्यागता है, कोई दुग्ध त्याग देता है। इसी प्रकार कोई अमुक पाठका, जपका, साधनका, पञ्चाग्निसेवनका, चान्द्रायणादि व्रतोंका नियम ले लेते हैं। श्रीरामजी भावविह्वल वाणीमें कहते हैं—हे सुमित्रानन्दन! कोसलाधीश श्रीभरतने भी किसी उत्तम व्रतकी दीक्षा अवश्य ली होगी—

विवृत्तकर्मायतनो नूनं सञ्चितसञ्चयः।
आषाढीमभ्युपगतो भरतः कोसलाधिपः॥

(४। २८। ५५)

वर्षा-ऋतुके समाप्त होनेपर श्रीसुग्रीवका प्रबोधन करनेके लिये श्रीहनुमान्‌जी उनके पास गये और उन्हें अनेक प्रकारसे समझाया। श्रीहनुमान्‌जीकी साम, दाम, दण्ड और भेदसे संयुक्त वाणीको हित, तथ्य और पथ्य वाणीको श्रवण करके श्रीसुग्रीव परम भयभीत हो गये। सन्तकी वाणी, निर्भीकवाणी, यथार्थवाणी, भगवन्माहात्म्ययुक्त वाणी, दोषोंको उद्घाटित करनेवाली वाणी सुनकर प्रभावित होना स्वाभाविक है।

हे वानरेन्द्र! आपने राज्य और यश प्राप्त कर लिया तथा कुल-परम्परासे आयी हुई सम्पत्तिको भी अभिवर्द्धित किया है। परन्तु अभी मित्रोंका कार्य करना, उनका संग्रह करना अवशिष्ट है। वह मित्रोंका कार्य भी आपको पूर्ण करना चाहिये—

राज्यं प्राप्तं यशश्चैव कौली श्रीरभिवर्द्धिता॥
मित्राणां संग्रहः शेषस्तद् भवान् कर्तुमर्हति।

(४। २९। ९-१०)

हे शत्रुदमन सुग्रीवजी! श्रीरामजी हमारे परम सुहृद् हैं। उनके कार्यका समय व्यतीत हो रहा है, अतः श्रीसीताजीकी खोजका कार्य आरम्भ कर देना चाहिये—

तदिदं मित्रकार्यं नः कालातीतमरिन्दम।
क्रियतां राघवस्यैतत् वैदेह्याः परिमार्गणम्॥

(४। २९। १५)

श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे वानरेन्द्र! यदि आप यह सोचें कि श्रीरामचन्द्रजीका कार्य है, समय आनेपर वे स्वयं हमसे आकर कहेंगे तो आपका यह भ्रम है। श्रीरामजी कालवित् हैं—समयका यथार्थ ज्ञान उनको है। यद्यपि उन्हें कार्यसिद्धिके लिये त्वरा है—शीघ्रता है, फिर भी वे महाबुद्धिमान् आपके अधीन बने हुए हैं। सङ्कोचवश आपसे यह नहीं कहते कि मेरे कार्यका समय व्यतीत हो रहा है। परन्तु हे वानरेन्द्र! आपको तो अपने वचनका पालन करना चाहिये। उन्होंने तो आपका कार्य पहले ही कर दिया है—

न च कालमतीतं ते निवेदयति कालवित्।
त्वरमाणोऽपि स प्राज्ञस्तव राजन् वशानुगः॥

(४। २९। १६)

हे सूर्यनन्दन! दशरथनन्दन! श्रीरघुनन्दन! अपने तीक्ष्ण और अमोघ बाणोंसे सम्पूर्ण देवताओं, असुरों और बड़े-बड़े नागोंको अपने अधीन कर सकनेमें सर्वथा समर्थ हैं। उनको आपकी सहायताकी आवश्यकता नहीं है। चौदह सहस्र सेनाके साथ खर-दूषण, त्रिशिराका वध श्रीरामजीने अकेले कर दिया था। उन्होंने महाबली वालीको भी एक बाणसे ही समाप्त कर दिया था। उन परम समर्थ श्रीराम-लक्ष्मणको आपकी सहायताकी आवश्यकता नहीं है। वे तो आपकी प्रतिज्ञाकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, अर्थात् वे तो यह देख रहे हैं कि मेरे मित्रने जो कहा था— 'मैं सपरिकर श्रीसीताजीकी खोज करूँगा' यह प्रतिज्ञा सत्य थी, किं वा असत्य—

कामं खलु शरैः शक्तः सुरासुरमहोरगान्।
वशे दाशरथिः कर्तुं त्वत्प्रतिज्ञामवेक्षते॥

(४। २९। २२)

श्रीहनुमान्जीकी इस वाणीको सुन करके सुग्रीवकी बुद्धि शुद्ध हो गयी, क्योंकि वे सत्त्वगुण-सम्पन्न थे—

सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नश्चकार मतिमुत्तमाम्॥

(४। २९। २८)

श्रीहनुमान्जीने सुग्रीवसे कहा—हे वानरेन्द्र! आपका आदेश हो जाय तो जलमें, थलमें, पातालमें, आकाशमें कहीं भी हम लोगोंकी गति अवरुद्ध नहीं हो सकती है। हे अनघ! भाव कि आपने अपने पश्चात्तापके द्वारा श्रीरामकार्य विस्मृतिरूप अपराध नष्ट कर दिया है, अतः हे निरपराध! आप आदेश दें, कौन कहाँसे आपकी किस आज्ञाका पालन करनेके लिये व्यवसाय—समुद्यम करे। आपकी आज्ञामें करोड़ोंसे अधिक ऐसे बलशाली वानर-वीर हैं, जिनको कोई धर्षित नहीं कर सकता है—जिनका मार्ग कोई अवरुद्ध नहीं कर सकता है—जिनको कोई पराभूत नहीं कर सकता है—

नाधस्तादवनौ नाप्सु गतिर्नोपरि चाम्बरे।
कस्यचित् सज्जतेऽस्माकं कपीश्वर तवाज्ञया॥
तदाज्ञापय कः किं ते कुतो वापि व्यवस्यतु।
हरयो ह्यप्रधृष्यास्ते सन्ति कोट्यग्रतोऽनघ॥

(४। २९। २६-२७)

ऊपरवाले श्लोकका तिलक-टीकाकार इस प्रकार अर्थ करते हैं—'**इदानीं सुग्रीवस्याज्ञा वैभवं दर्शयति—तवाज्ञयाह्वाने सत्यस्माकं हरीणां मध्ये यः कश्चिदपि सज्जते विलम्बते तस्य कस्यचित् कस्यापि बलिनो दुर्बलस्यवाऽधस्तात् पातालेऽन्यत्र वा गतिर्जीवनं नास्ति**' अर्थात् अब सुग्रीवकी आज्ञा-सम्पत्तिका निरूपण करते हैं। आपके आज्ञापूर्वक आवाहन करनेपर हम वानरोंमें जो विलम्ब करेगा उसको चाहे वह बलवान् हो या दुर्बल—सशक्त हो या अशक्त, वह चाहे पातालमें चला जाय या आकाशमें अथवा कहीं चला जाय, उसकी गति कहीं नहीं है, उसका जीवन बच नहीं सकता है, वह कोई भी क्यों न हो।

श्रीसुग्रीव परम बुद्धिमान् थे, इसीलिये उन्होंने आलसी, दीर्घसूत्री, प्रमादीको नहीं बुलाया। उन्होंने नीलको बुलाया जो अग्निके अंशसे समुत्पन्न थे और उनका गुण था '**नित्य कृतोद्यमम्**' नित्य उद्यमशील थे। नीलको बुलाकर श्रीसुग्रीवने आज्ञा दी—सम्पूर्ण दिशाओंसे समग्र वानरी-सेनाको एकत्र करो और ऐसी युक्ति करो कि मेरी समस्त वानरी-सेना किष्किन्धामें एकत्र हो जाय और समस्त यूथपति असङ्गेन—अविलम्ब अपनी सेना और सेनापतियोंके साथ आवें—

सन्दिदेशातिमतिमान् नीलं नित्यकृतोद्यमम्।
दिक्षु सर्वासु सर्वेषां सैन्यानामुपसंग्रहे॥
यथा सेना समग्रा मे यूथपालाश्च सर्वशः।
समागच्छन्त्यसङ्गेन सेनाग्र्येण तथा कुरु॥

(४। २९। २९-३०)

प्रस्रवण पर्वतपर शरद्-ऋतुका वर्णन करते हुए श्रीरामने कहा—हे लक्ष्मण! सुग्रीवसे आशा

थी कि वे वर्षा-ऋतुकी समाप्तिके पश्चात् वानरोंको यत्र, तत्र, सर्वत्र भेजकर श्रीसीताका पता लगायेंगे, परन्तु अभीतक उनका उपाय दिखायी नहीं दिया है। हे लक्ष्मण! राजाओंकी विजय-यात्राका यह प्रथम अवसर है, परन्तु सुग्रीव तो अभी यहाँ भी नहीं आये हैं—

इयं सा प्रथमा यात्रा पार्थिवानां नृपात्मज।
न च पश्यामि सुग्रीवमुद्योगं च तथाविधम्॥

(४। ३०। ६१)

भगवान् श्रीरामने कहा—हे सुमित्रानन्दन! सुग्रीवको मेरा सन्देश जाकर सुनाओ—हे सुग्रीव! वाली मरकर जिस मार्गसे गया है, वह मार्ग आज भी सङ्कुचित—बन्द नहीं हुआ है। अतः तुम अपनी प्रतिज्ञाका पालन करो, वालिके मार्गका अनुसरण न करो। वाली तो समराङ्गणमें अकेले ही मेरे बाणसे मारा गया था, परन्तु यदि तुमने सत्यका परित्याग किया तो मैं तुम्हें बन्धु-बान्धवोंके समेत मार डालूँगा—

न स सङ्कुचितः पन्था येन वाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः॥
एक एव रणे वाली शरेण निहतो मया।
त्वां तु सत्यादतिक्रान्तं हनिष्यामि स बान्धवम्॥

(४। ३०। ८१-८२)

श्रीलक्ष्मणने क्रुद्ध होकर कहा—हे स्वामी! मेरे क्रोधका वेग बढ़ा हुआ है। मैं इसे रोक नहीं सकता हूँ। असत्य आचरण करनेवाले सुग्रीवका मैं आज ही वध कर डालता हूँ। अब वालिनन्दन अङ्गद ही राजा बनकर प्रधान-प्रधान वानरोंके साथ श्रीमिथिलेशनन्दिनीकी खोज करें—

न धारये कोपमुदीर्णवेगं
निहन्मि सुग्रीवमसत्यमद्य।
हरिप्रवीरैः सह वालिपुत्रो
नरेन्द्रपुत्र्या विचयं करोतु॥

(४। ३१। ४)

श्रीरघुनन्दन श्रीलक्ष्मणको समझाते हुए कहते हैं—हे सुमित्रानन्दवर्द्धन! अपने स्वार्थके लिये किसीका वध नहीं करना चाहिये और न ही किसीका अपमान करना चाहिये। हे सौमित्र! तुम्हारे रहते हुए हमें किसीकी सहायताकी आवश्यकता नहीं है। ठाकुरजीने श्रीसुग्रीवसे भी कहा है—‘**जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते**’। फिर भी सुग्रीव हमारे प्रिय सखा हैं। उनका धर्म है कि वे सीताशोध करें। इसीलिये हमें उनकी प्रतीक्षा भी है। इसलिये तुम उन्हें भय-प्रदर्शन मात्र करके ले आओ।

आश्रितजनवत्सल मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम श्रीलक्ष्मणको समझाते हुए कहते हैं—हे लक्ष्मण! तुम तो साधु आचरणवाले हो, एतावता सुग्रीवके वधका निश्चय तुम्हें नहीं करना चाहिये। सुग्रीवके प्रति जो तुम्हारा स्नेहिल सम्बन्ध था उसीका अनुवर्तन करना चाहिये। हे सुमित्रानन्द संवर्द्धन! सुग्रीवके प्रति रूक्ष वचनोंका प्रयोग न करना, शान्तिपूर्ण वचनोंसे उन्हें स्मरण कराना कि आपने सीताजीकी खोजके लिये जो समय नियत किया था, वह व्यतीत हो गया, इसलिये आपको अपने वचनोंका पालन करना चाहिये—

नेदमत्र त्वया ग्राह्यं साधुवृत्तेन लक्ष्मण।
तां प्रीतिमनुवर्तस्व पूर्ववृत्तं च संगतम्॥
सामोपहितया वाचा रूक्षाणि परिवर्जयन्।
वक्तुमर्हसि सुग्रीवं व्यतीतं कालपर्यये॥

(४। ३१। ७-८)

हे भ्रातः! मेरा विश्वास है कि सुग्रीवका आन्तरिक भाव दुष्ट नहीं है। बहुत कालके पश्चात् परिवारको प्राप्त करके वह पारिवारिक मोहमें फँस गया है। सम्प्रति मेरा कार्य उसे अवश्य ही विस्मृत हो गया है, परन्तु तुम्हारे स्मरण कराते ही वह पुनः तन, मन, वचन, कर्म और सम्पूर्ण शक्तिसे सीताशोधमें प्रवृत्त हो जायगा। मेरा विश्वास है कि कालान्तरमें वह मेरा प्रिय सखा

सिद्ध होगा। हे सुमित्राकुमार! मेरा यह विश्वास है कि राम-रावण समरमें वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति समर्पित कर देगा। प्राणोंको हथेलीपर रखकर वह रावण-सदृश दुर्धर्ष, दुर्दान्त शत्रुसे लोहा लेगा। एक दिन तुम्हारा ही नहीं, तुम्हारे समस्त कुटुम्बका, श्रीअयोध्या-निवासियोंका स्नेहपात्र बन जायगा। हे लक्ष्मण! सुग्रीवका हृदय बहुत स्वच्छ है, सुतराम् तुम उसपर आन्तरिक क्रोध न करो।

श्रीरामका आदेशवाक्य ही जिनका सारथी है और कर्तव्यनिश्चय ही जिनका रथ है, वे श्रीलक्ष्मणजी किष्किन्धा नगरमें अपने स्वामीके आदेशका विधिवत् पालन करनेके लिये धनुषको चढ़ा लिया और उसकी प्रत्यञ्चाकी ध्वनिसे समस्त नगरको व्याकुल करने लगे। उस समय उनके नेत्र रक्त हो गये, भ्रकुटि बंक हो गयी। वे लम्बी-लम्बी उष्ण श्वास लेने लगे, उस समय नरशार्दूल श्रीलक्ष्मण सधूम पावककी भाँति परिज्ञात होते थे—

स दीर्घोष्णमहोच्छ्‌वासः कोपसंरक्तलोचनः।
बभूव नरशार्दूलः सधूम इव पावकः॥

(४। ३१। २९)

इस समय श्रीअङ्गद जाज्वल्यमान कालाग्नि और सर्पराज शेषके समान दृश्यमान श्रीलक्ष्मणके निकट डरते-डरते गये। उस समय युवराज अङ्गदके मनमें अत्यन्त विषाद था कि श्रीराम-लक्ष्मणने वानर-जातिका सम्मान संवर्द्धित किया था और आज वे हमारी भयङ्कर भूलके कारण—प्रमादके कारण ही हमारे ऊपर क्रुद्ध हो गये। यह हमारे लिये, हमारे परिवारके लिये, वानर-जातिके लिये और किष्किन्धा नगरीके लिये अच्छा नहीं हुआ, इस बिगड़ी बातको सुधारना ही होगा। इस विचारसे श्रीअङ्गदका मन अत्यन्त विषादसे परिपूर्ण हो गया—

तं दीप्तमिव कालाग्निं नागेन्द्रमिव कोपितम्।
समासाद्याङ्गदः त्रासाद् विषादमगमत् परम्॥

(४। ३१। ३१)

श्रीरामायण पटलपर श्रीअङ्गदका यह प्रथम चरित्र है, अत्यन्त संक्षिप्त है, परन्तु उच्चतम आदर्शसे परिपूर्ण है। इस समय युवराज अङ्गदने जो अपने दायित्वका अनुभव किया है, यह उनकी विशेषता है। श्रीअङ्गद आज अपने प्रजाजनोंके ऊपर आये हुए दुःखका अनुमान करके स्वयं कूद पड़े। किसीने उनका नाम लेकर—'**पाहि माम्, रक्ष माम्**' कह करके प्रार्थना नहीं की थी। किसी गुरुजनने उन्हें इस समस्याके हल करनेकी आज्ञा नहीं दी। वे तो स्वयं ही अपना कर्तव्य समझकर श्रीलक्ष्मणजीकी पावन सन्निधिमें आ गये।

महायशस्वी श्रीलक्ष्मणजीने श्रीअङ्गदके ऊपर कृपा की और कहा—हे वत्स! सुग्रीवको मेरे आनेकी सूचना दो। उनसे कहना कि रामानुज लक्ष्मण अपने भाईके दुःखसे दुःखी होकर आपके पास आकर दरवाजेपर खड़े हैं—

सुग्रीवः कथ्यतां वत्स ममागमनमित्युत॥
एष रामानुजः प्राप्तस्त्वत्सकाशमरिन्दम।
भ्रातुर्व्यसनसन्तप्तो द्वारि तिष्ठति लक्ष्मणः।

(४। ३१। ३२-३३)

श्रीअङ्गदके मुखसे श्रीलक्ष्मणके पधारनेका एवं उनके क्रोधका समाचार सुनकर श्रीसुग्रीव अतिशय भयाक्रान्त हो गये। उस समय श्रीहनुमान्‌जीने उन्हें समझाते हुए कहा है—

कृतापराधस्य हि ते नान्यत्पश्याम्यहं क्षमम्।
अन्तरेणाञ्जलिं बद्ध्वा लक्ष्मणस्य प्रसादनात्॥

(४। ३२। १७)

हे वानरेन्द्र! श्रीलक्ष्मणके मुखसे कठोर वचन सुनना पड़े तो आपको सुनकर सह लेना चाहिये। '**वचनं मर्षणीयं ते राघवस्य महात्मनः**'॥ श्रीराम-लक्ष्मण साधारण मित्रकी तरह मित्र नहीं हैं, वे तो महात्मा हैं—परमात्मा हैं। प्राणीमात्रके

स्वामी हैं। हे कपीश! आप कृतापराध हैं, आरब्धापराध नहीं हैं। अपराधके आरब्ध कालमें—प्रारम्भ कालमें ही यदि अनुताप हो जाय तो थोड़े-से ही प्रायश्चित्तसे आरब्धापराधका परिहार हो सकता है। परन्तु आपने अपराधके आरम्भ कालमें सन्ताप नहीं किया अपितु निश्चय करके अपराध किया है। इसलिये हाथ जोड़कर श्रीराम-लक्ष्मणको प्रसन्न करनेके अतिरिक्त अपराध परिहारका और कोई उपाय मैं नहीं समझ पा रहा हूँ; क्योंकि हाथ जोड़नेसे बढ़कर स्वामीको प्रसन्न करनेके लिये और कोई मुद्रा नहीं है, ऐसा कहा गया है— **'कृतापराधस्य न त्वारब्धापराधस्य, अपराधारम्भ काले सानुतापो यदि लघु प्रायश्चित्तेन तदा तस्य परिहारः स्यात् न तथा भूः किन्तु निश्चयेन कृतापराधोऽसि। तेन अञ्जलिं बद्ध्वा लक्ष्मणस्य प्रसादनानन्तरेण प्रसादनं विना अन्यत् क्षमं अपराध परिहार क्षमं साधनं न पश्यामि 'अञ्जलिः परमा मुद्रा क्षिप्रं देव प्रसादिनी' इति शास्त्रात्'**। (श्रीगोविन्दराजजी)

श्रीहनुमान्‌जीकी बात सुनकर भी श्रीसुग्रीव श्रीलक्ष्मणजीके निकट सीधे जानेका साहस नहीं कर पाये, उन्होंने तारासे कहा—हे तारे! तुम श्रीलक्ष्मणजीके पास जाओ, उन्हें समझाकर प्रसन्न करो—

त्वद्दर्शने विशुद्धात्मा न स्म कोपं करिष्यति।
नहि स्त्रीषु महात्मानः क्वचित् कुर्वन्ति दारुणम्॥

(४। ३३। ३६)

यदि तारा यह कहे कि आप ही जाकर उन्हें क्यों नहीं प्रसन्न कर लेते? तो श्रीसुग्रीव कहते हैं—मुझ क्रूरकर्माको, कृतघ्नको देखकर ही उनका क्रोध बढ़ जायगा, तुमको देखकर वे विशुद्धात्मा हो जायँगे—उनके चित्तका क्रोध समाप्त हो जायगा। मेरे अपराधकी शङ्का भी उनके अन्तःकरणसे निकल जायगी; अतः श्रीलक्ष्मणजी क्रोध नहीं करेंगे। यदि तुम यह सोचो कि मेरे अपराधके कारण तुम्हें भी दण्ड देंगे तो तुम्हें इस प्रकार नहीं सोचना चाहिये, क्योंकि महात्मा स्त्रियोंके प्रति कठोर व्यवहार नहीं करते हैं—**'ननु त्वयैव कथं न प्रसाद्यते इत्यत आह—त्वद्दर्शनेन त्वदवलोकन मात्रेण विशुद्धात्मा विशुद्धः विगत मदपराध शङ्कावान् आत्मा अन्तःकरणं यस्य सः लक्ष्मणः कोपं नैव करिष्यति निवर्तयिष्यतीत्यर्थः। ननु त्वदपराध शङ्कया मां दण्डयिष्यतीत्यत आह—महात्मानः स्त्रीषु क्वचित् कदाचिदपि दारुणं कर्म न कुर्वन्ति'**। (रामायण-शिरोमणि)

हे तारे! जब तुम श्रीलक्ष्मणजीके पास जाकर सान्त्वनापूर्ण वचनोंसे उन्हें शान्त कर दोगी और जब वे प्रसन्न मन हो जायँगे, इन्द्रियाँ प्रसन्न हो जायँगी उसके पश्चात् मैं उन अरिसूदन अरविन्दाक्ष सुमित्रानन्दनका दर्शन करूँगा—

त्वया सान्त्वैरुपक्रान्तं प्रसन्नेन्द्रियमानसम्।
ततः कमलपत्राक्षं द्रक्ष्याम्यहमरिन्दमम्॥

(४। ३३। ३७)

कमलपत्राक्षका भाव—(क) उस समय निश्चित ही उनकी दृष्टि मुझे सन्ताप नहीं पहुँचायेगी अपितु मुझे आह्लादित ही करेगी। (ख) वे मुझे अपने अरविन्दाक्ष नयनसे निहारकर श्रीरामचरण-शरणके योग्य पुनः बना देंगे। (ग) अपनी कृपापूर्ण चितवनसे मेरे समस्त अपराधोंको क्षमा कर देंगे। (घ) कमलमें तापनिवारिका शक्ति होती है और मैं उनके क्रोधकी अग्निसे जल रहा हूँ, मेरी यह जलन उनकी कृपापूर्ण अवलोकनिसे ही शान्त होगी।

ताराने श्रीलक्ष्मणजीके पास जाकर उनसे श्रीसुग्रीवके लिये क्षमा-याचना की। ताराकी प्रार्थनापर श्रीलक्ष्मणने सुग्रीवके भवनमें जानेका मन बनाया, परन्तु उन्होंने सोचा कि राजमहलमें सुग्रीवके पास जानेमें अनुचित अवस्थामें पर-स्त्रीदर्शन हो सकता है। बुद्धिमती ताराने श्रीलक्ष्मणजीके अभिप्रायको समझकर कहा

कि हे सुमित्रानन्दन! मित्रभावसे परदारावलोकन भी अधर्म नहीं है—'**ननु तत्र प्रवेशे अनुचित परस्त्री दर्शनं भविष्यतीत्यत आह— मित्रभावेन दारावलोकनं सतां अच्छलं नाधर्मः**' (रामायणशिरोमणि-टीका)। इस प्रकार ताराके विशेष आग्रहके कारण कार्यकी त्वरासे—शीघ्रतासे प्रेरित होकर श्रीलक्ष्मणजी राजमहलमें गये—

तदागच्छ महाबाहो चारित्रं रक्षितं त्वया।
अच्छलं मित्रभावेन सतां दारावलोकनम्॥
तारया चाभ्यनुज्ञातस्त्वरया वापि चोदितः।
प्रविवेश महाबाहुरभ्यन्तरमरिन्दमः॥

(४। ३३। ६१-६२)

श्रीलक्ष्मण बिना किसी बाधाके भीतर राजमहलमें प्रविष्ट हो गये। नरश्रेष्ठ लक्ष्मणको क्रुद्ध देखकर सुग्रीवकी समस्त इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं—

तमप्रतिहतं क्रुद्धं प्रविष्टं पुरुषर्षभम्।
सुग्रीवो लक्ष्मणं दृष्ट्वा बभूव व्यथितेन्द्रियः॥

(४। ३४। १)

श्रीलक्ष्मणने, जो अपने भ्राता श्रीरामके कष्टसे अत्यन्त सन्तप्त थे, सुग्रीवसे कहा—हे वानरराज! धैर्यवान्, कुलीन, दयालु, जितेन्द्रिय और सत्यवादी राजाका ही संसारमें आदर होता है। हे वानरेन्द्र! जो पहले मित्रोंके द्वारा अपना कार्य सम्पन्न करके उनका प्रत्युपकार नहीं करता है, वह कृतघ्न एवं सब प्राणियोंके लिये वध्य है—

पूर्वं कृतार्थो मित्राणां न तत् प्रतिकरोति यः।
कृतघ्नः सर्वभूतानां स वध्यः प्लवगेश्वर॥

(४। ३४। १०)

श्रीलक्ष्मणकी कठोर वाणी सुनकर ताराने कहा—हे वीरश्रेष्ठ! वानरेन्द्र सुग्रीव अकृतज्ञ नहीं हैं, शठ भी नहीं हैं, कठोर, कुटिल और मिथ्याभाषी भी नहीं हैं। हे परन्तप! भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने जो इनका उपकार किया है, वह समराङ्गणमें श्रीरामके बिना कोई नहीं कर सकता है। उस उपकारको सुग्रीवने विस्मृत नहीं किया है। श्रीरामजीके अनुग्रहसे ही इन्होंने वानरोंके शाश्वतराज्यपदको, कीर्तिको, रुमाको और मुझको प्राप्त किया है—

नैवाकृतज्ञः सुग्रीवो न शठो नापि दारुणः।
नैवानृतकथो वीर न जिह्मश्च कपीश्वरः॥
उपकार कृतं वीरो नाप्ययं विस्मृतः कपिः।
रामेण वीर सुग्रीवो यदन्यैर्दुष्करं रणे॥
रामप्रसादात् कीर्तिं च कपिराज्यं च शाश्वतम्।
प्राप्तवानिह सुग्रीवो रुमां मां च परन्तप॥

(४। ३५। ३—५)

यदि आप कहें कि यदि सुग्रीव कृतघ्न नहीं है तो उन्हें श्रीरामकार्य कैसे विस्मृत हो गया? '**ननु विस्मृत्यभावे कथं कालाऽतिक्रमः? यदि न कृतघ्नः तर्हिकथं कालात्ययानभिज्ञः**'? तुम मिथ्या प्रशंसा करती हो। उसपर बुद्धिमती तारा कहती है—

सुदुःखशयितः पूर्वं प्राप्येदं सुखमुत्तमम्।
प्राप्तकालं च जानीते विश्वामित्रो यथा मुनिः॥
घृताच्यां किल संसक्तो दश वर्षाणि लक्ष्मण।
अहोऽमन्यत धर्मात्मा विश्वामित्रो महामुनिः॥

(३। ३५। ६-७)

हे सुमित्रानन्दन! पहले इन्होंने कलत्रवियोग आदि अनेक प्रकारके दुःखोंको सहन किया है। सम्प्रति उत्तम सुख प्राप्त करके प्राप्त कालको—आवश्यक कर्तव्यको भूल गये। जैसे मेनकामें—घृताची अप्सरामें आसक्त महर्षि विश्वामित्रको दस वर्षके समयका ज्ञान नहीं रहा। उन्होंने दस वर्षको एक दिनकी तरह माना। श्रीविश्वामित्र और सुग्रीवमें क्या साम्य है? वे महामुनि, धर्मज्ञ और कठोर तपस्वी हैं और सुग्रीव तो निसर्ग चञ्चल वानर है, वह विषयसुखमें आसक्त हो जाय तो क्या आश्चर्य है?

प्रसादये त्वां धर्मज्ञ सुग्रीवार्थं समाहिता।

महान् रोषसमुत्पन्नः संरम्भस्त्यज्यतामयम्॥
रुमां मां चाङ्गदं राज्यं धनधान्यपशूनि च।
रामप्रियार्थं सुग्रीवस्त्यजेदिति मतिर्मम॥

(४। ३५। १२-१३)

हे सुमित्रानन्दन! मैं समाहित चित्तसे सुग्रीवके लिये आपसे क्षमाकी याचना करती हूँ। आप रोष समुत्पन्न क्षोभका परित्याग कर दीजिये। हे धर्मज्ञ! मेरी समझसे तो श्रीराघवेन्द्र सरकारकी प्रीति सम्पादन करनेके लिये सुग्रीव रुमाका, मेरा, राजकुमार अङ्गदका, धन-धान्य और पशुओंसे सम्पन्न राज्यका परित्याग कर सकते हैं।

ताराकी युक्तियुक्त विनम्र प्रार्थनासे श्रीलक्ष्मणजीका क्रोध समाप्त हो गया। श्रीसुग्रीवने श्रीलक्ष्मणके सामने अपना हृदय प्रस्तुत किया—हे सुमित्रानन्दन! मैंने अपनी प्रणष्ट राज्यश्री, कीर्ति और शाश्वत कपिराज्य सब श्रीरामजीकी कृपासे पुनः प्राप्त कर लिया। अपने सत्कर्मोंके द्वारा विख्यात श्रीरघुनन्दनके उपकारका वैसा ही प्रत्युपकार अंशमात्रसे भी करनेमें कौन समर्थ है? हे श्रीलक्ष्मणजी! धर्मात्मा श्रीरामजी अपने ही तेजसे पराक्रमसे दुरात्मा रावणका विनाश करके श्रीसीताजीकी प्राप्ति कर लेंगे। मैं तो उन परम समर्थ परम प्रेमास्पद श्रीरघुनन्दनका सहायकमात्र ही रहूँगा। मैं अपने हृदयसे सर्वथा प्राणार्पणको प्रस्तुत हूँ—

प्रणष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम्।
रामप्रसादात् सौमित्रे पुनश्चाप्तमिदं मया॥
कः शक्तस्तस्य देवस्य ख्यातस्य स्वेन कर्मणा।
तादृशं प्रतिकुर्वीत अंशेनापि नृपात्मज॥
सीतां प्राप्स्यति धर्मात्मा वधिष्यति च रावणम्।
सहायमात्रेण मया राघवः स्वेन तेजसा॥

(४। ३६। ५—७)

श्रीसुग्रीव कहते हैं—हे सुमित्रानन्दन! अतिशय विश्वास किं वा अतिशय प्रेमके कारण मुझसे यदि कोई अपराध बन गया हो तो हे क्षमासागर! मुझे क्षमा कर देना चाहिये, क्योंकि ऐसा कोई सेवक नहीं है, जिससे कभी कोई अपराध होता ही न हो—

यदि किञ्चिदतिक्रान्तं विश्वासात् प्रणयेन वा।
प्रेष्यस्य क्षमितव्यं मे न कश्चिन्नापराध्यति॥

(४। ३६। ११)

इस प्रकारके विनीत वचनोंको सुन करके—श्रीसुग्रीवकी कार्पण्यमयी वाणीको सुन करके श्रीलक्ष्मणजीको परम सुखकी अनुभूति हुई। श्रीलक्ष्मणने कहा—हे वानरेन्द्र! हे सखे! आप हमारे अपने हैं, अतः आपकी श्रीरामकार्यके प्रति उदासीनता देखकर हमें प्रणयकोप हो गया था, इसलिये हमने जो अनुचित कहा है, उसे क्षमा कर दें—

यच्चशोकाभिभूतस्य श्रुत्वा रामस्य भाषितम्।
मया त्वं परुषाण्युक्तस्तत् क्षमस्व सखे मम॥

(४। ३६। २०)

श्रीसुग्रीवकी आज्ञासे श्रीहनुमान्‌जीने पुनः प्रमुख वानरोंको, समस्त देशके वानरोंको बुलानेके लिये भेजा। उन वानरोंने आकर सूचना दी—हमलोग समस्त पर्वतों, नदियों और वनोंमें घूम आये। भूमण्डलके समस्त वानर आपकी आज्ञासे यहाँ आ रहे हैं—

सर्वे परिसृताःशैलाः सरितश्च वनानि च।
पृथिव्यां वानराः सर्वे शासनादुपयान्ति ते॥

(४। ३७। ३६)

श्रीलक्ष्मणजीके साथ वानरेन्द्र सुग्रीवने श्रीरामजीके चरणोंमें पहुँचकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। श्रीरामजीने उन्हें उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया। तदनन्तर सुग्रीवको दीनभावसे भूमिपर बैठा हुआ देखकर भक्तवत्सल श्रीराम बोले—हे वानर शिरोमणे! जो धर्म, अर्थ, कामके लिये समयका उचित विभाजन करके समयानुसार

इनका धर्मपूर्वक सेवन करता है वही उत्तम राजा है; परन्तु जो धर्म और अर्थका सेवन न करके केवल कामोपभोगमें सब समय समाप्त कर देता है, वह वृक्षकी शाखाके अग्रभागपर सोये हुए व्यक्तिके समान है। गिरनेपर ही उसकी आँखें खुलती हैं—

निषण्णं तं ततो दृष्ट्वा क्षितौ रामोऽब्रवीत् ततः।
धर्ममर्थं च कामं च काले यस्तु निषेवते॥
विभज्य सततं वीर स राजा हरिसत्तम।
हित्वा धर्मं तथार्थं च कामं यस्तु निषेवते॥
स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते।

(४। ३८। २०—२२)

हे शत्रुसूदन सुग्रीव! यह हमलोगोंके लिये, सीताप्राप्तिके लिये उद्योग करनेका समय आ गया है। इस समयको व्यर्थ नहीं व्यतीत करना चाहिये। हे वानरेन्द्र! श्रीसीताप्राप्तिके विषयमें अपने वानरमन्त्रियोंके साथ परामर्श करें कि किस पद्धतिसे कार्य किया जाय—

उद्योगसमयस्त्वेष प्राप्तः शत्रुनिषूदन॥
सञ्चिन्त्यतां हि पिङ्गेश हरिभिः सह मन्त्रिभिः।

(४। ३८। २३-२४)

श्रीरामजी सुग्रीवजीसे वार्तालाप कर ही रहे थे कि उसी समय धूल उड़ने लगी—'**रजः समभिवर्तत**'। देखते-देखते पर्वतराजके समान शरीर और तीखी दाढ़वाले असंख्य महाबली वानरोंसे वहाँकी समग्र भूमि आच्छादित हो गयी। अरबों वानरोंसे घिरे हुए अनेकानेक यूथपति आ गये—

कृत्स्ना संछादिता भूमिरसंख्येयैः प्लवङ्गमैः॥
निमेषान्तरमात्रेण ततस्तैर्हरियूथपैः।
कोटीशतपरीवारैर्वानरैर्हरियूथपैः॥

(४। ३९। १०-११)

नदी, पर्वत, वन और समुद्र सभी स्थानोंके महाबली वानर एकत्रित हो गये। वे मेघध्वनिकी तरह सिंहनाद कर रहे थे। कोई तरुण सूर्यकी आभा-प्रभासे सम्पन्न थे, कोई चन्द्रमाके समान गौर वर्णके थे, कोई कमल केशर वर्णके थे—पीले थे और कोई हिमालयवासी वानर श्वेत वर्णके थे—

नादेयैः पार्वतेयैश्च सामुद्रैश्च महाबलैः।
हरिभिर्मेघनिर्ह्लादैरन्यैश्च वनवासिभिः॥
तरुणादित्यवर्णैश्च शशिगौरैश्च वानरैः।
पद्मकेसरवर्णैश्च श्वेतैर्हेमकृतालयैः॥

(४। ३९। १२-१३)

श्रीसुग्रीवके श्वशुर, रुमाके पिता दस अरब वानरके साथ आये—

तथापरेण कोटीनां सहस्रेण समन्वितः।
पिता रुमायाः सम्प्राप्तः सुग्रीवश्वशुरो विभुः॥

(४। ३९। १६)

अनेक वानरोंके साथ श्रीहनुमान्‌जीके पिता कपिश्रेष्ठ श्रीकेशरीजी पधारे। गोलाङ्गल वानरोंके स्वामी महापराक्रमी गवाक्ष आये। पनस आये, महाबली नील आये, गवय आये, मैन्द और द्विविद आये। दस करोड़ रीछोंसे घिरे हुए ऋक्षराज महातेजस्वी जाम्बवान् आये। गन्धमादन आये, महाबली अङ्गद अनन्त सेना लेकर आये। कान्तिमान् तार आये, रम्भ आये, दुर्मुख आये और दस अरब वानरोंके साथ श्रीहनुमान् आये—

वृतः कोटिसहस्रेण हनुमान् प्रत्यदृश्यत।

(४। ३९। ३५)

महापराक्रमी नल आये और दधिमुख आये। इस प्रकार अनेक महाबली अनन्तानन्त वानरोंके साथ आये। श्रीसुग्रीवने श्रीरामसे कहा—हे नरशार्दूल! आपकी यह समस्त सेना आपके वशमें है। आप इन्हें यथोचित कार्यके लिये आज्ञा दें—

यन्मन्यसे नरव्याघ्र प्राप्तकालं तदुच्यताम्।
त्वत्सैन्यं त्वद् वशे युक्तमाज्ञापयितुमर्हसि॥

(४। ४०। ८)

भगवान् श्रीरामने कहा—हे सौम्य सुग्रीव! पहले यह ज्ञात करो कि श्रीविदेहनन्दिनी सीता

जीवित हैं या नहीं? हे महाप्राज्ञ! यह भी पता लगाओ कि रावण कहाँ निवास करता है?

ज्ञायतां सौम्य वैदेही यदि जीवति वा न वा।
स च देशो महाप्राज्ञ यस्मिन् वसति रावणः॥

(४।४०।११)

श्रीसुग्रीवने विनत नामके यूथपति वानरको एक लाख वानरोंके साथ पूर्व दिशाकी ओर भेजा और उन्हें पूर्व दिशाकी समस्त भौगोलिक स्थिति बतायी। श्रीसुग्रीवने सबको आज्ञा दी कि एक मासकी अवधिमें ही लौट आना, अन्यथा मेरे हाथोंसे मारे जाओगे।—

ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन् वध्यो भवेन्मम।
सिद्धार्थाः संनिवर्तध्वमधिगम्य च मैथिलीम्॥

(४।४०।७०)

उसके अनन्तर श्रीसुग्रीवने ताराके पिता सुषेण नामक महाबली वानरेन्द्रको आदरपूर्वक प्रणाम करके उनसे कहा—

तारायाः पितरं राजा श्वशुरं भीमविक्रमम्।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यमभिगम्य प्रणम्य च॥

(४।४२।२)

आप दो लाख वानरोंके साथ पश्चिम दिशामें पधारें तथा वहाँ श्रीसीताजीकी खोज करें। सुग्रीवने उन्हें पश्चिम दिशाकी भौगोलिक परिस्थितिका ज्ञान कराया। इसके पश्चात् शतबलि नामके महाबली वानरेन्द्रको उत्तर दिशाकी ओर एक लाख बलवान् वानरोंके साथ भेजा और कहा— आपलोग उत्तर दिशामें प्रवेश करें। जो उत्तर दिशा हिमालयरूपी आभूषणसे अलङ्कृत है वहाँ सब जगह श्रीरामप्रिया यशस्विनी श्रीसीताजीका परिमार्गण करें—

दिशं ह्युदीचीं विक्रान्तां हिमशैलावतंसिकाम्।
सर्वतः परिमार्गध्वं रामपत्नीं यशस्विनीम्॥

(४।४३।४)

श्रीसुग्रीवने उत्तर दिशाकी भौगोलिक स्थितिको भी समझाया। वानरेन्द्र सुग्रीवने दक्षिण दिशाकी ओर कार्य करनेमें परम कुशल परीक्षित वानरवीरोंको भेजा। अग्निपुत्र नील, श्रीहनुमान्‌जी, ब्रह्माजीके पुत्र जाम्बवान्‌जी, सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, गन्धमादन, उल्कामुख, अनङ्ग और अङ्गद आदि मुख्य-मुख्य वीरोंको जो महान् वेग और पराक्रमसे सम्पन्न थे, विशेषज्ञ वानरेन्द्र सुग्रीवने दक्षिण दिशाकी ओर जानेकी आज्ञा दी—

दक्षिणां प्रेषयामास वानरानभिलक्षितान्॥
नीलमग्निसुतं चैव हनूमन्तं च वानरम्।
पितामहसुतं चैव जाम्बवन्तं महौजसम्॥
सुहोत्रं च शरारिं च शरगुल्मं तथैव च।
गजं गवाक्षं गवयं सुषेणं वृषभं तथा॥
मैन्दं च द्विविदं चैव सुषेणं गन्धमादनम्।
उल्कामुखमनङ्गं च हुताशनसुतावुभौ॥
अङ्गदप्रमुखान् वीरान् वीरः कपिगणेश्वरः।
वेगविक्रमसम्पन्नान् सन्दिदेश विशेषवित्॥

(४।४१।१-५)

उसके बाद श्रीसुग्रीवने दक्षिण दिशाकी भौगोलिक स्थितिकी जानकारी देकर कहा—एक मासके पूर्ण होनेपर जो सबसे पहले कहेगा कि मैंने श्रीसीताजीका दर्शन किया है वह मेरे प्राणोंसे भी प्रिय होगा। हे वीरो! आपलोग अपार बल और पराक्रमके धनी हैं। अच्छे गुणशालीवंशमें आप सबका जन्म है। मिथिलेश राजनन्दिनी श्रीसीताका जिस प्रकार भी पता मिल सके उसके अनुरूप उच्च कोटिका पुरुषार्थ आपलोग आरम्भ करें—

अमितबलपराक्रमा भवन्तो
विपुलगुणेषु कुलेषु च प्रसूताः।
मनुजपतिसुतां यथा लभध्वं
तदधिगुणं पुरुषार्थमारभध्वम्॥

(४।४१।४९)

करोड़ों-अरबों वानर हैं परन्तु सबकी आशाके केन्द्रबिन्दु एकमात्र श्रीहनुमान्‌जी ही हैं। सबको विश्वास है कि कार्य तो इनके द्वारा ही सम्पन्न होगा। वानरेन्द्र श्रीसुग्रीव कहते हैं—हे हरिश्रेष्ठ ! पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, देवलोक अथवा जलमें भी आपकी गति अबाधित है—

न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये।
नाप्सु वा गतिभङ्गं ते पश्यामि हरिपुङ्गव॥

(४। ४४। ३)

श्रीसुग्रीव कहते हैं—हे पवननन्दन! समस्त भूमण्डलमें आप अप्रतिम हैं। आपके तेजकी समानता करनेवाला कोई नहीं है, इसलिये जिस प्रकार श्रीमिथिलेशनन्दिनीकी उपलब्धि हो आप उसी उपायका चिन्तन कीजिये—

तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते।
तद् यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय॥

(४। ४४। ६)

श्रीरामजीने निश्चय कर लिया कि कार्य तो श्रीहनुमान्‌के द्वारा ही सम्पन्न होना है। इसलिये प्रभुने सोचा कि कार्य हो गया, अतः श्रीरामजीकी इन्द्रियाँ और उनका मन प्रहृष्ट हो गया—हर्षातिरेकसे प्रफुल्लित हो गया—

तं समीक्ष्य महातेजा व्यवसायोत्तरं हरिम्।
कृतार्थ इव संहृष्टः प्रहृष्टेन्द्रियमानसः॥

(४। ४४। ११)

महातेजा रामः हरिं हनुमन्तं व्यवसायोत्तरं कार्य-निष्पादने श्रेष्ठं वीक्ष्य ज्ञात्वा कृतार्थः सिद्धप्रयोजन इव संहृष्टः अतएव प्रहृष्टानि प्रहर्षितानि इन्द्रिय-मानसानि सुग्रीवादीनां इन्द्रियाणि येन सोऽभवत्। (रामायणशिरोमणि टीका)

कविता कानन कोकिल महर्षि श्रीवाल्मीकि लिखते हैं कि शत्रुसूदन श्रीरघुनन्दनने श्रीहनुमान्‌जीको अभिज्ञानके रूपमें मुद्रिका प्रदान की—

ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम्।
अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परन्तपः॥

(४। ४४। १२)

जिसके द्वारा परिचय मिल जाय उसको अभिज्ञान कहते हैं। प्रश्न है कि जब श्रीरामजीने सम्पूर्ण धनका परित्याग कर दिया था, वनवासी-वृत्तिसे रहते थे तब उनके हाथमें यह स्वर्ण-मुद्रिका कहाँसे आयी? (१) इस एक मुद्रिकाको इसी कार्यके लिये सुरक्षित रखा था, इसीलिये अङ्गुलिसे उतारकर दी, इस प्रकार नहीं लिखा है। (२) श्रीरामनामसे आभूषित यह मुद्रिका रावणके आगमनसे बहुत पूर्व किसी समय श्रीसीताजीने श्रीरामजीको अत्यन्त स्नेहसे दी थी। श्रीरघुनाथजीने उनके स्नेहको देखकर स्नेहसे स्वीकार कर ली थी। आज वही मुद्रिका अभिज्ञानके रूपमें प्रदान कर दी। (३) एक लोकाचार है कि कनिष्ठिका अङ्गुलिमें मुद्रिका धारण करनेसे पत्नीका मङ्गल होता है और पत्नीका स्नेह बढ़ता है। इस लोकाचारके कारण श्रीजनकनन्दिनीसे अतिशय स्नेह होनेके कारण श्रीरामजीने इसे धारण किया था। आज उसे ही अभिज्ञानके रूपमें दे दिया। (४) विवाहके समय राजर्षि श्रीजनकने प्रदान की थी। श्रेष्ठ अलङ्कारके रूपमें श्रीरामजीने इसे धारण किया था। आज उसे ही अभिज्ञानके रूपमें दे दिया— **'राजपुत्र्या अभिज्ञानं अभिज्ञायते अनेनेति अभिज्ञानम्।' ननु त्यक्त सकल धनस्य वनवृत्या-वर्तमानस्य कुतोऽङ्गुलीयकमिति चेत् इदमेकमेतत् कार्यार्थं रक्षितवान् अतएवाङ्गुलीयमुन्मुच्येति नोक्तम्। यद् वा श्रीरामनामाङ्कितमङ्गुलीयकं सीतायाः कदाचिद् रावणागमनात्पूर्वं प्रणयपरत्वेन रामेण स्वीकृतमिति बोध्यम्। यद् वा भार्या स्नेहेन कनिष्ठिकायां सदामुद्रा धार्यते इति देशाचारः। यद् वा विवाहकाले**

जनकेन दत्तमिदं वरालङ्कारत्वेन गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषणमित्युक्तेः'॥

(श्रीगोविन्दराजजी।)

वानरश्रेष्ठ पवननन्दन श्रीहनुमान्‌जीने मुद्रिका लेकर उसे मस्तकपर रख लिया। तदनन्तर बद्धाञ्जलि होकर श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें वन्दन करके वहाँसे समुद्र होकर प्रस्थान किया—

स तद् गृह्य हरिश्रेष्ठः कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः।
वन्दित्वा चरणौ चैव प्रस्थितः प्लवगर्षभः॥

(४।४४।१५)

वानरसेनाके स्वामी वीर राजा सुग्रीव चारों दिशाओंमें यथायोग्य बलशाली वानरोंको भेजकर अतिशय सुखी हुए और अपने मनमें प्रसन्नताका अनुभव करने लगे—

ततः सर्वा दिशो राजा चोदयित्वा यथातथम्।
कपिसेनापतिर्वीरो मुमोद सुखितः सुखम्॥

(४।४५।८)

समस्त वानर श्रेष्ठोंके प्रस्थानके पश्चात् श्रीरामजीने पूछा—हे मित्र! समस्त भूमण्डलके स्थानोंका तुम्हें इतना विशाल परिज्ञान किस प्रकार हुआ?

गतेषु वानरेन्द्रेषु रामः सुग्रीवमब्रवीत्।
कथं भवान् विजानीते सर्वं वै मण्डलं भुवः॥

(४।४६।१)

श्रीसुग्रीवने कहा—हे रघुनन्दन! जब वाली मुझसे शत्रुता करके मुझे मारनेके लिये मेरे पीछे दौड़ा तब मैंने उसके डरसे भागना आरम्भ किया। सूर्यपुत्र होनेके कारण दौड़नेमें मैं वालीसे प्रबल था, इसलिये मैंने समस्त भूमण्डलकी परिक्रमा कर डाली। हे प्रभो! वाली मेरा पीछा करता रहा और मैं भागता रहा, यह क्रम बहुत दिनोंतक चलता रहा, इसलिये मुझे भूमण्डलके पर्वतों, नदियों आदिका भलीभाँति परिचय हो गया—

परिकाल्यमानस्तु तदा वालिनाभिद्रुतो ह्यहम्।
पुनरावृत्य सहसा प्रस्थितोऽहं तदा विभो॥

(४।४६।१६)

हे रघुनन्दन! इस प्रकार चारों दिशाओंमें मैं कई बार गया। हे राजन्! इस प्रकार मैंने उन दिनों समस्त भूमण्डलको प्रत्यक्ष देखा था। तदनन्तर मैं ऋष्यमूक पर्वतकी गुहामें आ गया—

एवं मया तदा राजन् प्रत्यक्षमुपलक्षितम्।
पृथिवीमण्डलं सर्वं गुहामस्म्यागतस्ततः॥

(४।४६।२४)

एक मासकी अवधितक पूर्व, उत्तर, पश्चिम दिशाओंमें गये हुए महाबली वानर जो विनत, शतवलि और सुषेणके नेतृत्वमें गये थे निराश और असफल होकर लौट आये। उन्होंने वानरेन्द्र सुग्रीवको सब समाचार दिया। हे राजन्! हमने समस्त पर्वत, घने जंगल, समुद्रान्त नदियाँ, सम्पूर्ण देश, आपके द्वारा निर्दिष्ट सारी गुफाएँ तथा लतावितानसे परिव्याप्त झाड़ियाँ भी खोज डालीं, परन्तु हे वानरेन्द्र! हम श्रीसीताजीका पता लगानेमें असमर्थ और असफल रहे—

विचिताः पर्वताः सर्वे वनानि गहनानि च।
निम्नगाः सागरान्ताश्च सर्वे जनपदाश्च ये॥
गुहाश्च विचिताः सर्वा याश्च ते परिकीर्तिताः।
विचिताश्च महागुल्मा लतावितत संतताः॥

(४।४७।११-१२)

इधर दक्षिण दिशाकी ओर खोज करनेवाले वानरोंमें बड़े-बड़े अनुभवी वयोवृद्ध, विद्यावृद्ध बुद्धिमान् लोग हैं। सुतराम् उन लोगोंने नदियों और सरोवरोंमें भी अन्वेषण किया। वे समस्त वानरयूथपति एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें, एक वनसे दूसरे वनमें श्रीसीताजीको खोजते हुए चले जा रहे हैं, निर्भय होकर अपना कार्य कर रहे हैं—

त्यक्त्वा तु तं ततो देशं सर्वे वै हरियूथपाः।

देशमन्यं दुराधर्षं विविशुश्चाकुतोभयाः॥

(४।४८।८)

वे यूथपति लोग एक ऐसे वनमें गये, जिस वनमें वृक्ष तो थे परन्तु पत्तों, पुष्पों और फलोंसे रहित थे। नदियोंमें एक चुल्लुक भी जल नहीं था—'**निस्तोयाः सरितो यत्र**'। उस वनमें पशु-पक्षीके भी दर्शन नहीं होते थे। उस वनमें पहले कण्डु नामके तपोधन सन्त रहते थे। किसी बालककी मृत्युके कारण क्रुद्ध होकर महर्षिने इस वनको शाप दे दिया—'**तेन धर्मात्मना शप्तम्**'। जिससे यह आश्रयहीन, दुर्गम तथा पशु-पक्षियोंसे शून्य हो गया। इस वनके भी आगे दूसरे वनमें वानरवीरोंने एक राक्षसको देखा। वह देवताओंका शत्रु राक्षस अत्यन्त निर्भय था। वानरोंको देखते ही मुक्का तानकर उनकी ओर दौड़ा। श्रीअङ्गदने उसे रावण समझकर एक थप्पड़ मारा, परिणामस्वरूप वह रक्त वमन करता हुआ भूतलपर गिरकर मर गया—

तमापतन्तं सहसा वालिपुत्रोऽङ्गदस्तदा॥
रावणोऽयमिति ज्ञात्वा तलेनाभिजघान ह।
स वालिपुत्राभिहतो वक्त्राच्छोणितमुद्वमन्॥
असुरो न्यपतद् भूमौ पर्यस्त इव पर्वतः।

(४।४८।२०—२२)

श्रीजानकीजी कहाँ मिलेंगी? कैसे मिलेंगी? यह अभिलाषा वानरोंकी प्रबल होती जा रही थी। वे सभी श्रेष्ठ वानर वहाँके रमणीय लोध्रवनमें और सप्तपर्णवनमें श्रीसीताजीका अन्वेषण करने लगे—

तत्र लोध्रवनं रम्यं सप्तपर्णवनानि च।
विचिन्वन्तो हरिवराः सीतादर्शनकाङ्क्षिणः॥

(४।४९।१७)

इस प्रकार एक वनसे दूसरे वनमें खोजते हुए समस्त वानर वीर श्रीसीताजीके न मिलनेसे अधीर हो गये। उन्हें भूख और प्यास भी सताने लगी। उस बियाबान जङ्गलमें कहीं जलाशय भी नहीं दीख रहा था। एक स्थानपर आर्द्र पक्ष पक्षियोंको देखकर जलका अनुमान लगाकर वे गये। एक गुफामें घुसे, उसमें भयङ्कर अन्धकार था। एक-दूसरेको पकड़कर कुछ दूर जानेपर उन्होंने काञ्चन वन देखा और एक तपस्विनीका दर्शन किया। वह वल्कल वस्त्र और काला मृगचर्म धारण किये हुए थी। श्रीहनुमान्‌जीने हाथ जोड़कर उस वृद्धा तपस्विनीको प्रणाम किया। हनुमान्‌जीका शरीर पर्वतकी तरह था परन्तु वे महान् विनम्र थे, उन्होंने हाथ जोड़कर पूछा—हे देवि! आप कौन हैं, यह गुफा, यह भवन और ये रत्न किसके हैं? आप हमें बतायें—

ततो हनूमान् गिरिसन्निकाशः
कृताञ्जलिस्तामभिवाद्य वृद्धाम् ।
पप्रच्छ का त्वं भवनं बिलं च
रत्नानि चेमानि वदस्व कस्य॥

(४।५०।४१)

तपस्विनीने कहा—यह विचित्र वन मय दानवके द्वारा निर्मित है। ब्रह्माजीने इस वनको मेरी सखी हेमाको दे दिया। मैं मेरुसावर्णिकी कन्या हूँ। मेरा नाम स्वयंप्रभा है। आपलोग भूखे-प्यासे हैं, अतः पहले फल-मूल खायें और जल पी लें तत्पश्चात् अपना वृत्तान्त बतावें—

शुचीन्यभ्यवहाराणि मूलानि च फलानि च।
भुक्त्वा पीत्वा च पानीयं सर्वं मे वक्तुमर्हसि॥

(४।५१।१९)

सुस्वादु फल खाकर और जल पीकर सब वानर तृप्त हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने अपना आज-तकका समस्त वृत्तान्त सुना दिया। श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे तपोमयि! हम इस बिलसे बाहर जाना चाहते हैं। स्वयंप्रभाने कहा—इस बिलसे कोई जीवित बाहर नहीं निकल पाता; परन्तु हे रामभक्तो! मैं अपने व्रत, नियम और तपस्याके

प्रभावसे आपको बाहर निकाल दूँगी। आपलोग आँखें बन्द करें, क्योंकि आँख बन्द किये बिना यहाँसे निकलना असम्भव है। यह सुनकर श्रेष्ठ वानरोंने अपनी सुकुमार अङ्गुलियोंसे अपनी आँखें बन्द कर लीं—

सर्वानेव बिलादस्मात् तारयिष्यामि वानरान्।
निमीलयत चक्षूंषि सर्वे वानरपुङ्गवाः॥
नहि निष्क्रमितुं शक्यमनिमीलितलोचनैः।
ततो निमीलिताः सर्वे सुकुमाराङ्गुलैः करैः॥

(४।५२।२७-२८)

आँखें खोलनेपर समस्त वानरोंने चार सौ कोसके गर्जन-तर्जन करते हुए उत्ताल तरङ्गोंवाले विशाल सागरका दर्शन किया। समुद्रके तटपर पहुँचकर अङ्गदादि वीर वानरोंके मनमें महान् चिन्ता व्याप्त हो गयी कि श्रीसुग्रीवकी दी हुई अवधि तो गुफामें ही बीत गई थी। श्रीसीताजीके दर्शनका कोई सूत्र भी नहीं मिल पाया। हा हन्त! हम क्या करें? अब तो हमारी मृत्यु निश्चित है। अब हमलोग उपवास करके प्राण परित्याग कर दें, यही उचित प्रतीत होता है—

अस्मिन्नतीते काले तु सुग्रीवेण कृते स्वयम्।
प्रायोपवेशनं युक्तं सर्वेषां च वनौकसाम्॥

(४।५३।१३)

श्रीहनुमान्‌जीने श्रीअङ्गदको समझाया—हे युवराज! आपके पितृव्य—चाचा सुग्रीव धर्मके मार्गपर चलनेवाले हैं। वे दृढ़व्रत, शुचि और सत्यप्रतिज्ञ हैं। वे आपकी खुशी चाहते हैं, इसलिये वे कदापि आपका नाश नहीं कर सकते। आपके अतिरिक्त उनके कोई अन्य पुत्र भी नहीं है, अतः आपको वानरेन्द्र श्रीसुग्रीवके पास चलना चाहिये—

धर्मराजः पितृव्यस्ते प्रीतिकामो दृढव्रतः।
शुचिः सत्यप्रतिज्ञश्च स त्वां जातु न नाशयेत्॥
प्रियकामश्च ते मातुस्तदर्थं चास्य जीवितम्।
तस्यापत्यं च नास्त्यन्यत् तस्मादङ्गद गम्यताम्॥

(४।५४।२१-२२)

परन्तु अङ्गदजीने एवं उनके समर्थक वानरोंने आमरण अनशन करनेका विचार कर लिया। श्रीअङ्गदने कहा—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि किष्किन्धापुरी नहीं जाऊँगा, यहींपर आमरण उपवास करूँगा—

अहं वः प्रतिजानामि न गमिष्याम्यहं पुरीम्।
इहैव प्रायमासिष्ये श्रेयो मरणमेव मे॥

(४।५५।१२)

हे वानरो! आपलोग किष्किन्धा जाकर महान् बलशाली श्रीराम-लक्ष्मणसे और राजा सुग्रीवसे मेरा प्रणाम कहकर कुशल-समाचार बताइयेगा। मेरी वात्सल्यमयी माता ताराको भी धैर्य बँधाइयेगा। इतना करकर अङ्गद वृद्धजनोंको प्रणाम करके आमरण अनशनपर बैठ गये। उनके बैठनेपर सभी वानर रोते हुए उन्हें चारों ओरसे घेरकर उपवास करनेका निश्चय करके बैठ गये। सब वानर समुद्रके उत्तर तटपर कुशासन बिछाकर आचमन करके पूर्वकी ओर मुख करके बैठ गये। आचमनका कितना महत्त्व है—मरनेमें, जीनेमें, पढ़नेमें, लिखनेमें, उपासना करनेमें दैनिक कार्यमें, प्रत्येक कार्यमें आचमनका विधान है।

वहींपर चिरञ्जीवी पक्षी गृध्रराज सम्पाति आये। उन्होंने कन्दरासे निकलकर वानरोंको देखकर कहा—अहा! मैं बहुत दिनसे भूखा था, आज भाग्यवश अच्छा भोजन मिल गया है। इन वानरोंमें जो-जो मरता जायगा उसको मैं क्रमशः खाता जाऊँगा—'**परम्पराणां भक्षिष्ये वानराणां मृतं मृतम्**'।

सम्पातिका वचन सुनकर समस्त वानर दुःखी हो गये। बुद्धिमान् अङ्गदने कहा—हे वीरो! जटायुका महान् कर्म आपलोगोंने सुना ही होगा। श्रीअङ्गद जटायुकी कथा कहने

लगे। सम्पातिने जब सुना तब हर्षसे शोकमें विह्वल होकर पूछा—जन स्थानमें राक्षस-गृध्रका संग्राम कैसे हुआ था? आज मैंने अपने प्यारे भाईका नाम बहुत दिनोंके पश्चात् सुना है—

कथमासीज्जनस्थाने युद्धं राक्षसगृध्रयोः।
नामधेयमिदं भ्रातुश्चिरस्याद्य मया श्रुतम्॥

(४। ५६। २०)

सम्पातिको पर्वतशिखरसे उतारकर श्रीअङ्गदने कहा— हे पक्षिराज! वानरराज ऋक्षरजाके दो पुत्र हुए—वाली और सुग्रीव। मैं वालीका पुत्र अङ्गद हूँ। इक्ष्वाकुवंशीय राजा दशरथके पुत्र अपने पिताकी आज्ञासे अपनी पत्नी सीता और छोटे भाई लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्यमें आये। उनकी पत्नीका रावणने हरण कर लिया। गृध्रराज जटायु उन्हीं सीताकी रक्षाके लिये—अपने मित्रकी पुत्रवधूकी रक्षाके लिये रावण-ऐसे दुर्धर्ष, दुर्दान्त, भयङ्कर वीरसे भयङ्कर संग्राम किया। उसके रथ, सारथी, घोड़े, अस्त्र, शस्त्र सबको समाप्त कर दिया। उसको एक दण्डतक मूर्च्छित करके श्रीसीताजीको भी छुड़ा लिया। परन्तु अन्तमें रावणके हाथसे मारे गये। श्रीरामजीने उनका अन्तिम संस्कार श्राद्ध, पिण्ड-दानादि स्वयं अपने हाथसे किये। श्रीरामने मेरे पितृव्य श्रीसुग्रीवसे मित्रता कर ली। मेरे पिता वालीकी मृत्युके बाद सुग्रीव राजा हो गये। हमलोग श्रीरामचन्द्रजी और वानरेन्द्र सुग्रीवकी आज्ञासे श्रीसीताजीकी खोजके लिये आये हैं। परन्तु बहुत प्रयत्न करनेपर भी हमें श्रीसीताका दर्शन उसी प्रकार नहीं हुआ जैसे रात्रिमें सूर्यकी प्रभाका दर्शन नहीं होता है—

एवं रामप्रयुक्तास्तु मार्गमाणास्ततस्ततः।
वैदेहीं नाधिगच्छामो रात्रौ सूर्यप्रभामिव॥

(४। ५७। १५)

श्रीजटायुका समाचार सुनकर सम्पाति रोने लगे। उन्होंने कहा—हे वानरवीरो! जटायु मेरा अनुज था—

'यवीयान् स मम भ्राता जटायुर्नाम वानराः'।

(४। ५८। २)

हा हन्त! मैं पक्षहीन, असमर्थ और वृद्ध होनेके कारण जटायुका प्रतिशोध नहीं ले सकता हूँ। श्रीअङ्गदने पूछा—यदि आप श्रीसीताजीका समाचार जानते हों तो बतायें। सम्पातिने सबको आश्वस्त करते हुए कहा—मैं आपलोगोंकी वचनमात्रसे सहायता करूँगा। हे वीरो! मैं श्रीसीताको यहाँसे देख रहा हूँ। हमलोग सामान्य गृध्र नहीं हैं। हमलोगोंकी विनतानन्दन गरुड़की भाँति देखनेकी दिव्य शक्ति है। हम दोनों भाई गरुड़के अनुज अरुणके ही तो पुत्र हैं—

इहस्थोऽहं प्रपश्यामि रावणं जानकीं तथा।
अस्माकमपि सौपर्णं दिव्यं चक्षुर्बलं तथा॥

(४। ५८। ३१)

इसके अनन्तर सम्पातिने अपने भाई जटायुको जलाञ्जलि प्रदान की और वानरोंको श्रीरामकार्य करनेकी प्रेरणा दी—मैंने आपको श्रीसीताजीका निश्चित पता बता दिया है, अब आपलोग व्यर्थमें समय यापन न करें। आप-जैसे बुद्धिमान् लोग कार्योंकी सिद्धिमें विलम्ब नहीं करते हैं—

तदलं कालसङ्गेन क्रियतां बुद्धिनिश्चयः।
नहि कर्मसु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः॥

(४। ५९। २८)

सम्पातिने अपनी आत्मकथा सुनायी। सूर्यकी किरणोंसे झुलसकर मैं यहाँ गिर पड़ा। यहाँ एक चन्द्र नामके ऋषि थे। उन्होंने मुझपर अतिशय कृपा की। उन्होंने कृपा करके मेरे जलनेकी कथा पूछी—तुम्हें कौन-सा रोग है? तुम्हारे पंख कैसे गिर गये? किसीने तुम्हें

दण्ड तो नहीं दिया? जो मैं पूछता हूँ सब स्पष्ट बताओ—

किं ते व्याधिसमुत्थानं पक्षयोः पतनं कथम्।
दण्डो वाऽयं धृतः केन सर्वमाख्याहि पृच्छतः॥

(४। ६०। २१)

हे वानरवीरो! मैंने चन्द्रमा ऋषिको अपनी कथा सुनायी—हम दोनों भाई जटायु और मैं आकाशमें सूर्यके पास जानेके लिये उड़े। मैंने वात्सल्यके कारण जटायुको अपने पंखसे आच्छादित कर लिया, अतः वह जलनेसे बच गया। मेरे पक्ष सूर्यकी किरणोंसे दग्ध हो गये, अतः हम दोनों नीचे गिर पड़े। मेरा भाई सम्भवतः जनस्थानमें गिरा और मैं यहाँ विन्ध्य पर्वतपर गिरा। मेरे दोनों पंख जल गये हैं, एतावता मैं कहीं आ-जा नहीं सकता हूँ। हे महर्षे! राज्यसे भ्रष्ट हुआ, भाईसे अलग हुआ और पंख तथा पराक्रम भी समाप्त हो गया। अब तो पर्वतशिखरसे गिरकर मर जाऊँगा—

राज्याच्च हीनो भ्रात्रा च पक्षाभ्यां विक्रमेण च।
सर्वथा मर्तुमेवेच्छन् पतिष्ये शिखराद् गिरेः॥

(४। ६१। १७)

हे वानरवीरो! महर्षि चन्द्रमाने मुझे आश्वस्त किया और कहा—हे सम्पाते! तुम्हारे पंख पुनः निकल आयेंगे और तुम्हारी दृष्टि भी ठीक हो जायगी। हे सम्पाते! त्रेता युगमें श्रीरामके दूत आवेंगे, उन्हें तुम श्रीसीताजीका पता बता देना—

एष्यन्ति प्रेषितास्तत्र रामदूताः प्लवङ्गमाः।
आख्येया राममहिषी त्वया तेभ्यो विहङ्गम॥

(४। ६२। ११)

सम्पाति कहते हैं—हे रामभक्तो! हे वानरश्रेष्ठो! चन्द्रमामुनिकी भविष्यवाणीके अनन्तर लगभग आठ हजार वर्ष व्यतीत हो गये हैं। तबसे अनुपल, अनुक्षण मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ—मुझे पावन करनेवाले, कृतार्थ करनेवाले, पक्षप्रदान करनेवाले, परमसमर्थ श्रीरामजीके समर्थ दूत कब आवेंगे? उनके दर्शन मुझे कब होंगे? वह चिर प्रतीक्षित मङ्गलमय दिवस आज आ गया। आपलोगोंके पवित्र दर्शनसे मेरे मनमें महान् प्रसन्नता हो रही है—

अद्य त्वेतस्य कालस्य वर्षं साग्रशतं गतम्।
देशकालप्रतीक्षोऽस्मि हृदि कृत्वा मुनेर्वचः॥

(४। ६३। ३)

उस स्थानपर इकट्ठे बैठे हुए वानरोंके साथ सम्पाति इस प्रकार वार्तालाप कर ही रहे थे कि देखते-देखते उसी समय उनके पार्श्वभागमें दो पंख निकल आये। अपने शरीरको रक्त वर्णके दो पक्षोंसे संयुक्त देखकर सम्पातिको अत्यन्त प्रसन्नता हुई और वे वानरोंसे इस प्रकार बोले—

तस्य त्वेवं ब्रुवाणस्य संहतैर्वानरैः सह॥
उत्पेततुस्तदा पक्षौ समक्षं वनचारिणाम्।
स दृष्ट्वा स्वां तनुं पक्षैरुद्गतैररुणच्छदैः।
प्रहर्षमतुलं लेभे वानरांश्चेदमब्रवीत्॥

(४। ६३। ८-९)

हे वानरेन्द्र! आपलोग सर्वथा श्रीसीताजीकी प्राप्तिका प्रयत्न करिये। आपलोगोंको निश्चय ही श्रीसीताजीके दर्शन होंगे। मेरा यह नूतन कोमल पक्ष-लाभ ही आपलोगोंके लिये कार्यसिद्धिविषयक विश्वास दिलानेवाला है—

सर्वथा क्रियतां यत्नः सीतामधिगमिष्यथ॥
पक्षलाभो ममायं वः सिद्धिप्रत्ययकारकः।

(४। ६३। १२-१३)

इस प्रकार कहकर जब सम्पाति चले गये तब विशाल आकाशकी भाँति उत्तालतरङ्गोंवाले दुर्लंघ्य सागरका अवलोकन करके वे सब वानर विषाद करने लगे कि कार्य कैसे सिद्ध होगा—

आकाशमिव दुष्पारं सागरं प्रेक्ष्य वानराः।

विषेदुः सहिताः सर्वे कथं कार्यमिति ब्रुवन्॥

(४। ६४। ७)

श्रीअङ्गदजीने सबके मनमें अपनी ओजस्विनी वाणीसे उत्साहका संवर्द्धन करते हुए कहा—आपलोगोंमें कौन तेजस्वी पुरुष है, जो समुद्रोल्लंघन करके शत्रुदमन सुग्रीवको सत्यप्रतिज्ञ बनायेगा—

क इदानीं महातेजा लंघयिष्यति सागरम्।
कः करिष्यति सुग्रीवं सत्यसन्धमरिन्दमम्॥

(४। ६४। १५)

किसकी कृपासे हमलोग प्रसन्नतापूर्वक किष्किन्धा चलकर श्रीराम-लक्ष्मण और सुग्रीवका दर्शन कर सकेंगे—

कस्य प्रसादाद् रामं च लक्ष्मणं च महाबलम्।
अभिगच्छेम संहृष्टाः सुग्रीवं च वनौकसम्॥

(४। ६४। १८)

श्रीअङ्गदके उत्साहवर्द्धक वचनोंका श्रवण करके सभी श्रेष्ठ वानर—गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, सुषेण और जाम्बवान् अपनी-अपनी शक्तिका क्रमशः परिचय देने लगे—

अथाङ्गदवचः श्रुत्वा ते सर्वे वानरर्षभाः।
स्वं स्वं गतौ समुत्साहमूचुस्तत्र यथाक्रमम्॥
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः।
मैन्दश्च द्विविदश्चैव सुषेणो जाम्बवांस्तथा॥

(४। ६५। १-२)

अपने-अपने पराक्रमका परिचय सबने दिया, परन्तु चार सौ कोसके महासागरके अतिक्रमणमें सबने अपनी असमर्थता व्यक्त की। अस्सी योजनतक ही जानेकी चर्चा हुई। वास्तवमें दक्षिण दिशाकी ओर श्रीजानकीके होनेका अनुमान करके वानरेन्द्र सुग्रीवने प्रधान-प्रधान महान् वीरोंको ही सम्प्रेषित किया था। इसमें प्रत्येक वानर वीर समुद्र पार कर सकते थे। सबने अपने-अपने बलका वर्णन अवश्य किया; परन्तु समुद्रपार जानेमें सन्देह व्यक्त किया; क्योंकि सब लोगोंने देखा है और अनुभव किया है कि श्रीरामजीने समुद्रपार जाकर सीताजीका समाचार लानेके लिये श्रीहनुमान्‌जीको ही अधिकृत किया है, एतावता पार जानेमें समझ-बूझ करके बुद्धिपूर्वक सबने अपनी-अपनी असमर्थता व्यक्त की है—

प्रदक्षिणीकृतः पूर्वं क्रममाणस्त्रिविक्रमम्॥
स इदानीमहं वृद्धः प्लवने मन्दविक्रमः।
यौवने च तदासीन्मे बलमप्रतिमं परम्॥

(४। ६५। १५-१६)

श्रीजाम्बवान् अपने अप्रतिहत गमनकी चर्चा करते हुए कहते हैं कि त्रेताके प्रारम्भमें जब वालिके द्वारा अनुष्ठित यज्ञमें भगवान् तीन चरण भूमि नापनेके लिये अपने मङ्गलमय श्रीचरण बढ़ा रहे थे, उस समय प्रभुके उस अपूर्व विराट्स्वरूपकी मैंने अल्प कालमें ही प्रदक्षिणा कर ली थी। परन्तु सम्प्रति मैं वृद्ध हो गया हूँ; अतः वार्द्धक्यके कारण छलाँग मारनेकी मेरी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गयी; परन्तु युवावस्थामें मुझमें अप्रतिम और महान् बल था। अन्तमें वयोवृद्ध जाम्बवान्‌ने कहा कि इस समय मेरी जो गति है उसे आपलोग श्रवण करें। मैं नब्बे योजनतक एक बारमें ही चला जाऊँगा, इसमें संशय नहीं है—

साम्प्रतं कालमस्माकं या गतिस्तां निबोधत।
नवतिं योजनानां तु गमिष्यामि न संशयः॥

(४। ६५। १३)

श्रीअङ्गदजी कहते हैं कि मैं सौ योजनवाले महोदधिका उल्लंघन कर जाऊँगा, परन्तु परावर्तनमें मेरी ऐसी ही शक्ति रहेगी अथवा नहीं रहेगी, यह निश्चित नहीं है—

अहमेतद् गमिष्यामि योजनानां शतं महत्।
निवर्तने तु मे शक्तिः स्यान्न वेति न निश्चितम्॥

(४। ६५। १९)

इस श्लोकका भाष्य करते हुए श्रीगोविन्दराजजी लिखते हैं—'**इदं स्वस्य वीर्याणां न्यूनत्वेन वर्णनम् हनुमत्पराक्रमदर्शनविषयकोत्कटेच्छया बोध्यम् अतएव 'त्वद्वीर्यं द्रष्टुकामा हि सर्ववानरवाहिनी' इति वक्ष्यमाणजाम्बवत्वाक्यं सानुकूलम्**'। अर्थात् श्रीअङ्गदने अपने पराक्रममें न्यूनता इसलिये दिखायी कि उनके मनमें श्रीहनुमान्‌जीके पराक्रम-दर्शन करनेकी उत्कट इच्छा है। आगे श्रीजाम्बवान्‌का यह वचन इस आशयमें प्रमाणभूत है—हे हनुमन्! तुम अपने अपरिमित बलका विस्तार करो। छलाँग मारनेवालोंमें तुम सर्वश्रेष्ठ हो। यह सम्पूर्ण वानरवाहिनी तुम्हारे पराक्रमका मङ्गलमय दर्शन करना चाहती है। इसीलिये सब वानरोंने अपने-अपने पराक्रमका विशेष वर्णन नहीं किया।

परम बुद्धिमान् वयोवृद्ध श्रीजाम्बवान्‌ने कहा—हे युवराज अङ्गद! आपकी गमनशक्तिको मैं जानता हूँ। आप इस समुद्रका अतिक्रमण कर सकते हैं और पुनः इस पार आ भी सकते हैं। भले ही आप एक लाख योजन चले जायँ फिर भी आप हम सबके नायक हैं, एतावता आपका भेजना हमारे लिये उचित नहीं है—

तमुवाच हरिश्रेष्ठं जाम्बवान् वाक्यकोविदः।
ज्ञायते गमने शक्तिस्तव हर्यृक्षसत्तम॥
कामं शतसहस्रं वा नह्येष विधिरुच्यते।
योजनानां भवाञ्शक्तो गन्तुं प्रतिनिवर्तितुम्॥

(४। ६५। २०-२१)

हे प्लवगसत्तम! हे तात! जो सबका प्रेषयिता—प्रेषणशील—स्वामी है वह कथञ्चन प्रेष्य—आज्ञापालक नहीं हो सकता है। ये समस्त वानर आपके सेवक हैं, आप इन्हींमेंसे किसीको भेजें—

नहि प्रेषयिता तात स्वामी प्रेष्यः कथञ्चन।
भवतायं जनः सर्वः प्रेष्यः प्लवगसत्तम॥

(४। ६५। २२)

भल्लूकाधिपति जाम्बवान्‌ने एक बड़ी गम्भीर बात कही है—हे युवराज! आप 'कलत्र' हो अर्थात् स्त्रीकी भाँति सतत रक्षणीय हो तथा जिस भाँति नारी पतिके हृदयकी स्वामिनी होती है उसी भाँति आप हमारे स्वामीके पदपर सुप्रतिष्ठित हैं। हे परन्तप! हे रिपुदमन! हे तात! आप ही उस कार्यके मूल हैं, एतावता कलत्रकी ही तरह आपका संरक्षण करना हम सबके लिये सदा योग्य है, अतः आपको हम इस कार्यके लिये नियुक्त नहीं कर सकते हैं—

भवान् कलत्रमस्माकं स्वामिभावे व्यवस्थितः।
स्वामी कलत्रं सैन्यस्य गतिरेषा परन्तप॥
अपि वै तस्य कार्यस्य भवान् मूलमरिन्दम।
तस्मात् कलत्रवत् तात प्रतिपाल्यः सदा भवान्॥

(४। ६५। २३-२४)

'कलत्र' शब्दकी व्याख्या करते हुए रामायण-शिरोमणि टीकाकार लिखते हैं—'**कं सुखं लाति ददाति तदेव त्रं रक्षाकर्तृ सुखदाता त्राता चेत्यर्थः**'। तिलक टीकाकार लिखते हैं—'**कलत्रवद् दृढ स्वीयत्वबुद्ध्या यावत् स्वप्राणबलं परिपाल्य इत्यर्थः**' अर्थात् जिस प्रकार कलत्रके प्रति प्रगाढ़ आत्मीयताकी बुद्धि होती है उसी प्रकार स्वामीके प्रति भी दृढ़ आत्मीयताका भाव होना चाहिये और जबतक शरीरमें प्राण रहे तबतक उसका पालन करना चाहिये।

श्रीजाम्बवान्‌के यह कहनेपर श्रीअङ्गदने कहा कि यदि मैं नहीं जाऊँगा और अन्य कोई वानरश्रेष्ठ भी नहीं जायगा, आप वृद्ध ही हैं तब तो हम लोगोंको फिरसे आमरण अनशन ही करना चाहिये—

यदि नाहं गमिष्यामि नान्यो वानरपुङ्गवः।
पुनः खल्विदमस्माभिः कार्यं प्रायोपवेशनम्॥

(४। ६५। २९)

श्रीअङ्गदजीकी बात सुनकर ऋक्षेशने

उत्तम बात कही—'**जाम्बवानुत्तमं वाक्यं प्रोवाचेदं ततोऽङ्गदम्**'॥ श्रीजाम्बवान्के वाक्यको उत्तम कहनेका भाव यह है कि इनके इन्हीं वचनोंमें कार्यसिद्धिका बीज सन्निहित है। किंवा इनके वचनोंमें हनुमन्महिमाका—भक्तिमहिमाका निरूपण है।

ततः प्रतीतं प्लवतां वरिष्ठ-
मेकान्तमाश्रित्य सुखोपविष्टम्।
सञ्चोदयामास हरिप्रवीरो
हरिप्रवीरं हनुमन्तमेव॥

(४। ६५। ३५)

इस श्लोकमें हनुमान्जीके लिये चार विशेषण प्रयुक्त हैं—'**प्रतीतम्, प्लवतां वरिष्ठम्, हरिप्रवीरम्** और **एकान्तमाश्रित्यसुखोपविष्टम्**'। ये चारों ही विशेषण अत्यन्तभावपूर्ण हैं और प्रस्तुत प्रसङ्गपर प्रकाश डाल रहे हैं।

'**प्रतीतम्**' अर्थात् श्रीहनुमान्जी अत्यन्त विश्वस्त हैं, किं बहुना प्रतीतका अर्थ यह भी हो सकता है कि उनकी बुद्धिमत्ता और बलवत्ताकी इयत्ता नहीं है, यह प्रतीत है अर्थात् विख्यात है। '**प्लवतां वरिष्ठम्**' का भाव उनकी छलाँग मारनेकी शक्तिकी कोई तुलना नहीं हो सकती है, वे छलाँग मारनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। '**हरिप्रवीरम्**' का भाव कि वे हम सबसे श्रेष्ठ हैं। स्मरण रहे, इस श्लोकमें श्रीजाम्बवान् और श्रीहनुमान् दोनोंको ही '**हरिप्रवीर**' शब्दसे अभिहित किया गया है। आशय यह है कि हरिप्रवीर ही हरिप्रवीरका उद्बोधन कर सकता है। '**एकान्तमाश्रित्य सुखोपविष्टम्**' का भाव कि श्रीहनुमान्जीने वानरोंकी मन्त्रणाको, बातोंको सुना ही नहीं है। उनका स्वभाव भगवच्चिन्तनमें सतत निमग्न रहनेका है। अपने स्वभाववश जब वे एकान्तमें बैठे तब सुखपूर्वक उपविष्ट हो गये अर्थात् श्रीरामचरणोंकी उपासनामें—चिन्तनमें निमग्न हो गये। अथवा '**एकान्तमाश्रित्य**' का अर्थ है '**एक एव अन्तः एकान्तः श्रीरामः श्रीहरिः तं आश्रित्य**' भाव कि एकमात्र श्रीरामजीका ही आश्रय लेकर सुखपूर्वक अपने परमाराध्य प्राणेश्वर प्राणनाथ, जीवनसार-सर्वस्व एकमात्र ध्येय, ज्ञेय, श्रेय, प्रेय श्रीरामजीके ही श्रीचरणोंकी मानसिक सन्निधिमें विराजमान हो गये। श्रीभगवान्के स्वरूपके प्रगाढ़ ध्यानमें ध्यानस्थ हो गये, परिणामस्वरूप उन्हें बाह्यज्ञान नहीं रहा। इसलिये यहाँकी चर्चामें सम्मिलित नहीं हुए, अतः वयोवृद्ध श्रीजाम्बवान्को प्रेरित करना पड़ा।

हे भगवच्चिन्तननिमग्न! हे रामकार्यसाधक! हे वानरलोकके वीर! हे निखिल शास्त्रज्ञोंमें अग्रगण्य हनुमन्! आप एकान्तका समाश्रयण करके चुपचाप क्यों बैठे हैं? कुछ बोलते क्यों नहीं हैं?

वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदां वर।
तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनूमन् किं न जल्पसि॥

(४। ६६। २)

इसका अर्थ इस प्रकार भी करते हैं—'**हे वीर! वानरलोकस्य कृत्यमुद्दिश्य किं न जल्पसि**' (तिलकटीका) अर्थात् हे वीर! वानरलोकका समुद्रसन्तरणरूपकार्य उपस्थित है, इस उद्देश्यसे आप क्यों नहीं कुछ बोलते? अथवा—'**हे वीर! वानरलोकस्य कल्याणं किं किमर्थं त्वं न जल्पसि कल्याणम्**' (रामायणशिरोमणि टीका) अर्थात् हे वीर वानरलोकका कल्याण किस प्रकार सम्भव है? इस विषयमें आप क्यों नहीं बोलते हैं?

हे अञ्जनानन्दन! विनतानन्दन गरुड़के समान ही आप भी विख्यात शक्तिशाली तथा तीव्रगामी हैं। उनके दोनों पक्षोंमें जो शक्ति है वही शक्ति, वही पराक्रम आपकी इन दोनों भुजाओंमें भी है।

इसीलिये आपका वेग और पराक्रम गरुड़से अन्यून है—

पक्षयोर्यद् बलं तस्य भुजवीर्यबलं तव।
विक्रमश्चापि तेजश्च न ते तेनापहीयते॥

(४। ६६। ६)

साक्षात् वायुदेवता भी आपकी माता अञ्जनाको आश्वस्त करते हुए कहते हैं—'हे यशस्विनि! आपका पुत्र बलवान्, बुद्धिमान् और पराक्रम-सम्पन्न होगा। वह महाधैर्यवान्, शक्तिमान् और महातेजस्वी होगा। उसकी उल्लंघन करनेकी और छलाँग मारनेकी क्षमता मेरे समान होगी—

मनसास्मि गतो यत् त्वां परिष्वज्य यशस्विनि।
वीर्यवान् बुद्धिसम्पन्नस्तव पुत्रो भविष्यति॥
महासत्त्वो महातेजा महाबलपराक्रमः।
लङ्घने प्लवने चैव भविष्यति मया समः॥

(४। ६६। १८-१९)

श्रीजाम्बवान्ने कहा—हे अञ्जनानन्दन! आप तो साक्षात् पवनदेवके पुत्र हैं, अतः आपका पराक्रम भी वायुतुल्य है—'**त्वं साक्षाद् वायुतनयो वायुतुल्य पराक्रमः**'। आपका तेज भी पवनतुल्य है। हे वत्स! छलाँग लगानेमें भी आप वायुतुल्य हैं। हे पवनपुत्र! सम्प्रति हमारी प्राणशक्ति नष्ट हो गयी है, अतः आप प्राणवायुकी भाँति हमारी रक्षा करें—

मारुतस्यौरसः पुत्रस्तेजसा चापि तत्समः।
त्वं हि वायुसुतो वत्स प्लवने चापि तत्समः॥
वयमद्य गतप्राणा भवानस्मासु साम्प्रतम्।
दाक्ष्यविक्रमसम्पन्नः कपिराज इवापरः॥

(४। ६६। ३०-३१)

श्रीजाम्बवान्के मुखसे सुनकर श्रीहनुमान्जी अतिशय प्रसन्न हुए। जिस प्रकार पहाड़की विस्तृत गुफामें केशरी अँगड़ाई लेता है उसी प्रकार केशरीकिशोर श्रीहनुमान्जीने उस समय अँगड़ाई ले-ले करके अपने श्रीविग्रहका विवर्द्धन किया—

यथा विजृम्भते सिंहो विवृते गिरिगह्वरे।
मारुतस्यौरसः पुत्रस्तथा सम्प्रति जृम्भते॥

(४। ६७। ६)

वायुदेवताके औरस पुत्र वानरोंके मध्यसे उठकर खड़े हो गये। उनके समग्र दिव्य विग्रहमें रोमाञ्च हो गया। वृद्ध वानरोंका अभिवादन करके पवननन्दने यह कहा—

हरीणामुत्थितो मध्यात् सम्प्रहृष्टतनूरुहः।
अभिवाद्य हरीन् वृद्धान् हनूमानिदमब्रवीत्॥

(४। ६७। ८)

श्रीहनुमान्जी उत्साहपूर्वक कहते हैं—आकाशचारी समस्त ग्रह, नक्षत्र आदिका अतिक्रमण करके आगे बढ़ जानेका मैं उत्साह रखता हूँ। मैं चाहूँ तो समुद्रोंको सोख लूँगा, पृथ्वीको विदीर्ण कर दूँगा और कूद-कूदकर पर्वतोंको चूर्ण कर डालूँगा; क्योंकि मैं दूरतक छलाँग मारनेवाला वानर हूँ। महान् वेगसे समुद्रको फाँदता हुआ मैं अवश्य समुद्रके पार पहुँच जाऊँगा—

उत्सहेयमतिक्रान्तुं सर्वानाकाशगोचरान्।
सागरान् शोषयिष्यामि दारयिष्यामि मेदिनीम्॥
पर्वतांश्चूर्णयिष्यामि प्लवमानः प्लवङ्गमः।
हरिष्याम्युरुवेगेन प्लवमानो महार्णवम्॥

(४। ६७। १७-१८)

श्रीहनुमान्जीने कहा—हे वानरवीरो! मैं अपनी बुद्धिसे जैसा देखता-समझता हूँ, मेरे मनकी चेष्टा तदनुरूप ही होती है। मुझे निश्चितरूपसे प्रतीति होती है कि मैं मिथिलेशनन्दिनी श्रीजानकीका दर्शन करूँगा, इसलिये हे वानरेन्द्रो! आपलोग प्रसन्न हो जाओ—

बुद्ध्या चाहं प्रपश्यामि मनश्चेष्टा च मे तथा।

अहं द्रक्ष्यामि वैदेहीं प्रमोदध्वं प्लवङ्गमाः॥

(४। ६७। २६)

श्रीजाम्बवान्‌जी प्रसन्न होकर बोले—हे वीर! हे केशरीनन्दन! हे वेगवान् हनुमान्! हे तात! हे पवननन्दन! तुमने अपने बन्धुओंका विपुलशोक प्रणष्ट कर दिया—

वीर केसरिणः पुत्र वेगवन् मारुतात्मज॥
ज्ञातीनां विपुलः शोकस्त्वया तात प्रणाशितः।

(४। ६७। ३१-३२)

इसके अनन्तर छलाँग लगानेके लिये श्रीवायुनन्दनने महेन्द्र पर्वतका चयन किया। वे महेन्द्र पर्वतके शिखरपर चढ़कर विचरण करने लगे। पर्वतमें नये-नये झरने फूट निकले, बड़े-बड़े वन्य जन्तु भयसे थर्रा उठे, बड़े-बड़े वृक्ष झोंके खाकर झूमने लगे, पर्वतके शिलाखण्ड इधर-उधर बिखरने लगे—

मुमोच सलिलोत्पीडान् विप्रकीर्णशिलोच्चयः।
वित्रस्तमृगमातङ्गः प्रकम्पितमहाद्रुमः॥

(४। ६७। ४४)

शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले, वानरसेनाके श्रेष्ठ बलशाली, महामनस्वी श्रीपवननन्दनका मन वेगपूर्वक छलाँग मारनेकी योजनामें लगा हुआ था और वे अपने चित्तको एकाग्र करके मन-ही-मन लङ्काका स्मरण करने लगे थे—

स वेगवान् वेगसमाहितात्मा
हरिप्रवीरः परवीरहन्ता।
मनः समाधाय महानुभावो
जगाम लङ्कां मनसा मनस्वी॥

(४। ६७। ४९)

श्रीहनुमान्‌जीके मनके साथ कथा भी किष्किन्धाकाण्डसे निकलकर सुन्दरकाण्डमें प्रविष्ट हो रही है।

शरणागत विभीषण

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

कथा-सुधा-सागर

सुन्दरकाण्ड

ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्षणः।
इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि॥

(५।१।१)

श्रीजाम्बवान्‌के प्रोत्साहित करनेके पश्चात् श्रीसीताजीके अन्वेषणके मार्गमें आनेवाले समस्त विरोधी तत्त्वोंको नष्ट करनेमें समर्थ श्रीहनुमान्‌जीने संसारको रुदन करानेवाले रावणके द्वारा अपहृता श्रीसीताजीके निवासस्थानका पता लगानेके लिये उस आकाशमार्गसे जानेका विचार किया, जिसपर चारण विचरा करते हैं। '**चारणाचरिते पथि**' का भाव कि आकाशमें सबके मार्ग अलग-अलग हैं। गरुड़का अलग है, हंसका अलग है, गीधका अलग है और जिस मार्गसे चारण-देवताओंकी विशेष जाति-लोग विचरण करते हैं, उस मार्गसे जानेका विचार किया। अथवा '**चारयन्ति आचारयन्ति धर्मानिति चारणाः पूर्वाचार्याः तैराचरिते पथि 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' इत्युक्त-सदाचारे स्थितः**' जो धर्मका स्वयं आचरण करें उन्हें चारण कहते हैं—पूर्वाचार्य कहते हैं। उनके द्वारा आचरित मार्गका अवलम्बन करके भक्तिस्वरूपा श्रीजानकीजीकी खोजमें प्रवृत्त होनेका विचार किया।

श्रीहनुमान्‌जीने सूर्य, इन्द्र, पवन, ब्रह्मा और भूतोंको भी हाथ जोड़कर समुद्रपार जानेका विचार किया। तदनन्तर पूर्वकी ओर मुख करके अपने पिता पवनदेवका वन्दन किया। फिर दक्षिण—सर्वकार्यकुशल श्रीहनुमान्‌जी दक्षिण दिशामें जानेके लिये अपने शरीरको बढ़ाने लगे—

स सूर्याय महेन्द्राय पवनाय स्वयंभुवे।
भूतेभ्यश्चाञ्जलिं कृत्वा चकार गमने मतिम्॥
अञ्जलिं प्राङ्मुखं कुर्वन् पवनायात्मयोनये।
ततो हि ववृधे गन्तुं दक्षिणो दक्षिणां दिशम्॥

(५।१।८-९)

तिलकटीकाकारने '**पवनाय स्वयंभुवे**' की व्याख्या की है '**स्वयंभुवे पवनाय पूयते येन स्वज्ञानेन योगिवृन्दं सपवनो भगवान् प्रत्यक् तत्त्वभूतो रामः। एतेन सकलविघ्ननिवारणायेष्ट देवताप्रार्थनापूर्वं यात्रा कर्त्तव्येति सदाचारो बोधितः**' अर्थात् जो अपने ज्ञानके द्वारा योगिवृन्दोंको पवित्र कर देते हैं वे ही भगवान् श्रीराम 'पवन' शब्दवाच्य हैं, उन्हें नमस्कार किया। इससे यह मर्यादा स्थापित की कि समस्त विघ्नोंके निवारण करनेके लिये अपने इष्ट देवताकी प्रार्थना करके—वन्दना करके ही यात्रा करनी चाहिये। श्रीहनुमान्‌जीने समस्त वानरोंको सम्बोधित करके कहा—हे जाम्बवान्‌जी! हे अङ्गदजी! हे नीलजी! हे नलजी! हे समस्त वानरवीरो! मैं रावणके द्वारा सुरक्षित नगरीमें श्रीरामजीद्वारा निर्मुक्तश्वसन विक्रम—पवनवेग बाणकी भाँति जाऊँगा—

वानरान् वानरश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत्।
यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः॥
गच्छेत् तद्वद् गमिष्यामि लङ्कां रावणपालिताम्।

(५।१।३९-४०)

रामबाणका भाव—

(क) जैसे श्रीरामबाण अव्याहत गति होता है, उसी प्रकार मेरी गतिको भी कोई रोक नहीं

पायेगा। (ख) जैसे श्रीरामका बाण अमोघ—अव्यर्थ होता है उसी प्रकार मैं भी कार्य करके ही लौटूँगा, मेरी यात्रा व्यर्थ नहीं होगी। (ग) जैसे श्रीरामका बाण कहीं दृश्य कहीं अदृश्य, कभी छोटा कभी बड़ा हो जाता है, उसी प्रकार मैं भी कहीं दृश्य होकर कार्य करूँगा और कहीं अदृश्य होकर कार्य करूँगा। कभी छोटा रूप धारण कर लूँगा—कभी बड़ा रूप। (घ) जैसे श्रीरामके बाणकी त्रैलोक्यमें सर्वत्र गति है, उसी प्रकार श्रीजानकीको मैं स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताललोक जहाँ भी मिलेंगी, ले आऊँगा। (ङ) जैसे श्रीरामजीका एक बाण अनन्तरूपोंमें कार्य करता है उसी प्रकार मैं भी एक होकर अनन्त वीरोंका कार्य एकाकी ही सम्पादन करूँगा। (च) जैसे श्रीरामजीका बाण कार्य करके श्रीरामजीके पास चला आता है, उसी प्रकार मैं भी श्रीसीतादर्शन करके श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें उपस्थित हो जाऊँगा। (छ) श्रीरामका बाण बिना लक्ष्यके नहीं चलता है, उसी प्रकार मेरी भी यह यात्रा श्रीसीतादर्शनके लिये है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी श्रीरामचरितमानसमें लिखा है—

जिमि अमोघ रघुपति कर बाना।
एही भाँति चलेउ हनुमाना॥

श्रीहनुमान्‌जी आकाशमें अपनी भुजाओंको फैलाकर चल रहे हैं, फैली हुई भुजाएँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानो किसी पर्वतशिखरसे पाँच फनवाले दो सर्प निकल रहे हैं। श्रीहनुमान्‌जीका शरीर ही विशाल शैल है और उनकी भुजाएँ ही सर्प हैं और उनकी पाँच अँङ्गुलियाँ सर्पके फण हैं—

तस्याम्बरगतौ बाहू ददृशाते प्रसारितौ।
पर्वताग्राद् विनिष्क्रान्तौ पञ्चास्याविव पन्नगौ॥

(५। १। ५६)

जिस समय श्रीहनुमान्‌जी यात्रा कर रहे थे, देवता, गन्धर्व, चारण पुष्पवृष्टि करने लगे। सूर्यदेवने उन्हें ताप नहीं पहुँचाया, उनका मन प्रसन्न है कि आज मेरा शिष्य रामकार्य करने जा रहा है। वायुदेवने अपना वेग सुखद कर दिया, आज उनका पितृत्व कृतार्थ हो रहा है। दिव्य ऋषि-मुनि स्तुति कर रहे हैं। देवता और गन्धर्व अपनी वाणीको सफल करके श्रीहनुमान्‌की प्रशंसाके गीत गाकर उत्साह-संवर्द्धन कर रहे हैं—

प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा प्लवगं त्वरितं तदा।
ववृषुस्तत्र पुष्पाणि देवगन्धर्वचारणाः॥
ततापनहि तं सूर्यः प्लवन्तं वानरेश्वरम्।
सिषेवे च तदा वायू रामकार्यार्थसिद्धये॥
ऋषयस्तुष्टुवुश्चैनं प्लवमानं विहायसा।
जगुश्च देवगन्धर्वाः प्रशंसन्तो वनौकसम्॥

(५। १। ८३—८५)

जिस समय श्रीहनुमान्‌जी समुद्र पार कर रहे थे, उस समय समुद्रने सोचा कि मैं इक्ष्वाकुनाथ सगरके द्वारा विवर्धित हूँ और ये इक्ष्वाकुसचिव हैं, अतः इन्हें समुद्र-यात्रामें कष्ट नहीं होना चाहिये। समुद्रने मैनाक पर्वतसे कहा—ये हमारे श्रद्धेय अतिथि हैं, एतावता तुम इनको विश्राम दो। तुम्हारे ऊपर किञ्चित्कालपर्यन्त विश्राम करके अवशिष्ट मार्ग ये सुगमतासे पार कर लेंगे—

हनूमांस्त्वयि विश्रान्तस्ततः शेषं गमिष्यति॥

(५। १। ९९)

समुद्रका वचन सुनकर मैनाक प्रसन्नतापूर्वक उठा। श्रीहनुमान्‌जीने उसे विघ्न समझकर अपनी छातीकी ठोकरसे नीचे गिरा दिया। अपनी पराजयके बाद भी—ठोकर खानेके बाद भी मैनाक श्रीहनुमान्‌के महान् वेगका अनुभव करके प्रसन्न होकर गर्जना करने लगा—

स तदासादितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमः।
बुद्ध्वा तस्य हरेर्वेगं जहर्ष च ननाद च॥

(५। १। १०९)

जिसके प्रति वात्सल्यभाव होता है, उससे पराजित होकर भी सुखानुभूति होती है। तदनन्तर मैनाक मनुष्यका रूप धारण करके अपने ही शिखरपर खड़ा होकर मनको प्रसन्न करनेवाली वाणीमें बोला—हे पुत्र हनुमन्! मुझे अपना पितृव्य—चाचा समझो, मैं तुम्हारे पिता वायुदेवका मित्र हूँ—

पुत्रेति मधुरां वाणीं मनः प्रह्लादयन्निव।
पितृव्यं चापि मां विद्धि सखायं मातरिश्वनः॥

(५।५८।१३)

हे वानरोत्तम! आप मुझपर विश्राम करके आगेकी यात्रा करें। समुद्र और मैं दोनों उपकृत हैं, अतः हमारा सत्कार करना परम कर्तव्य है, क्योंकि उपकारके बदलेमें प्रत्युपकार करना सनातन धर्म है—

कृते च प्रति कर्तव्यमेष धर्मः सनातनः॥

(५।१।११३)

श्रीहनुमान्जीने विनम्रतापूर्वक कहा—हे पितृकल्प मैनाकजी! आपका दर्शन करके मुझे प्रसन्नता हुई है। मेरा आतिथ्य हो गया। आप अपने मनमें दुःखी न हों किंवा मुझपर कोप न करें—'**मन्युरेषोऽपनीयताम्**'। हे चाचाजी! मेरे कार्यका समय मुझे शीघ्रता करनेके लिये प्रेरित कर रहा है। यह दिन भी व्यतीत हो रहा है, मुझे लङ्का पहुँचकर आज ही कार्यारम्भ कर देना है, अतः मैं आपका स्वागत स्वीकार नहीं कर सकता हूँ। हे पितृव्यजी! मैंने अपने साथियोंसे प्रतिज्ञा की है कि मैं बीचमें विश्राम नहीं करूँगा अतः सम्प्रति मैं आपकी और समुद्रकी आज्ञापालन करनेमें असमर्थ हूँ, एतावता आप दोनों मुझे क्षमा करें। इस प्रकार कहकर श्रीहनुमान्जी हाथसे मैनाकका स्पर्श करके हँसते हुए-से आकाशमें ऊपर उठकर चलने लगे—

त्वरते कार्यकालो मे अहश्चाप्यतिवर्तते।
प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरा॥
इत्युक्त्वा पाणिना शैलमालभ्य हरिपुङ्गवः।
जगामाकाशमाविश्य वीर्यवान् प्रहसन्निव॥

(५।१।१३१-१३२)

'**प्रहसन्निव**' का भाव—(क) हनुमान्जी प्रसन्न हो गये कि आरम्भमें ही सगुन अच्छा मिल गया। (ख) मैनाककी वात्सल्यमयी वाणी सुनकर हर्ष हुआ। (ग) इसने आरम्भमें पुत्र कहा है तो अब मेरी माता—श्रीसीताजी भी मुझे पुत्र शब्दसे सम्बोधित करेंगी, इस अभिलाषासे प्रसन्न हो गये। (घ) यात्रामें अभीतक सब परिस्थितियाँ मेरे अनुकूल हैं, अतः प्रसन्न हो गये। (ङ) प्रसन्न हैं कि यात्रामें मुझे किञ्चिन्मात्र भी श्रम तथा असुविधा नहीं हो रही है। (च) श्रीहनुमान्जी इसलिये हँस दिये कि समुद्र और मैनाकने मुझे इतने ही परिश्रमसे श्रमित जान लिया—

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी।
तैं मैनाक होहि श्रमहारी॥
हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥

(श्रीरामचरितमानस ५।१)

इसके अनन्तर देवताओंके राजा इन्द्रने मैनाकको सदाके लिये निर्भय कर दिया। हे मैनाक! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुमने श्रीरामभक्त हनुमान्का स्वागत किया है। हे सौम्य! मैं तुम्हे अभयदान देता हूँ। तुम सुखपूर्वक जहाँ चाहो जाओ—

हिरण्यनाभ शैलेन्द्र परितुष्टोऽस्मि ते भृशम्।
अभयं ते प्रयच्छामि गच्छ सौम्य यथासुखम्॥

(५।१।१३९)

श्रीरामभक्तकी सेवा करनेके प्रयासका फल शैलेन्द्र मैनाकको तत्काल मिल गया।

इसके पश्चात् देवता, गन्धर्व, सिद्ध और

महर्षियोंने सूर्यकी तरह तेजस्विनी नागमाता सुरसाको हनूमान्‌जीके बल और पराक्रमकी परीक्षाके लिये भेजा— '**बलमिच्छामहे ज्ञातुं भूयश्चास्य पराक्रमम्**'। सुरसाको परीक्षाके लिये भेजनेका कारण यह है कि परीक्षकको कोमल नहीं होना चाहिये; परन्तु निष्पक्ष होना चाहिये, अन्यथा यथान्याय परीक्षा नहीं ले सकेगा। श्रीसुरसाजी नागोंकी माता हैं, नागोंका आहार वायु है और श्रीहनुमान् वायुपुत्र हैं। दूसरे नागमाता कठोरहृदया होती ही है तभी तो अपने पुत्रोंको भी खा जाती है—'**पुत्रादिनी सर्पिणी**' अतः सुरसाको भेजा। सुरसा विकराल राक्षसीका रूप धारण करके श्रीहनुमान्‌जीको मार्गमें घेर कर बोली—देवेश्वरोंने मुझे भक्ष्यके रूपमें तुम्हें दिया है, एतावता मैं तुम्हें खाऊँगी। इसीलिये तुम मेरे मुखमें चले आओ—'**अहं त्वां भक्षयिष्यामि प्रविशेदं ममाननम्**'। श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे माताजी! यदि देवताओंने आपको भोजन दिया है तो मैं श्रीरामकार्य करने जा रहा हूँ और श्रीरामजीका कार्य तो देवताओंका ही कार्य है, अतः आप मेरी सहायता करो; क्योंकि आप तो श्रीरामके ही शासनमें रहती हैं—

तस्याः सकाशं दूतोऽहं गमिष्ये रामशासनात्।
कर्तुमर्हसि रामस्य साह्यं विषयवासिनि॥

(५।१।१५४)

अथवा, हे मातः! इस समय तुम मुझे खा सको या न खा सको, परन्तु श्रीरामकार्य करके—श्रीसीताजीका समाचार प्रभुको सुना करके मैं स्वयं तुम्हारे मुखमें प्रविष्ट हो जाऊँगा, उस समय आप मुझे खा लेना यह मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ—

अथवा मैथिलीं दृष्ट्वा रामं चाक्लिष्टकारिणम्।
आगमिष्यामि ते वक्त्रं सत्यं प्रतिशृणोमि ते॥

(५।१।१५५)

राम काजु करि फिरि मैं आवौं।
सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥
तब तव बदन पैठिहउँ आई।
सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥

सुरसाने श्रीहनुमान्‌जीकी किसी भी बातका सम्मान नहीं किया तब श्रीहनुमान्‌जीने कहा—तुम अपना मुँह इतना बड़ा बना लो जिससे उसमें मेरा भार सह सको—'**अब्रवीत् कुरु वै वक्त्रं येन मां विषहिष्यसि**'। सुरसाने खानेके लिये अपना मुख दस योजन विस्तृत बना लिया तब श्रीहनुमान्‌जी उससे बढ़ गये। वह अपना मुख बढ़ाती गयी और श्रीहनुमान्‌जी अपना शरीर बढ़ाते गये, अन्तमें उसने अपना मुख सौ योजनका बना लिया तब श्रीहनुमान्‌जी अंगुष्ठके समान हो गये—'**तस्मिन् मुहूर्ते हनुमान् बभूवाङ्गुष्ठमात्रकः**'। उसी स्वरूपसे सुरसाके मुखमें प्रवेश करके बाहर निकल आये और अन्तरिक्षमें स्थित होकर बोले—हे दाक्षायणि! तुम्हें नमस्कार है—

प्रविष्टोऽस्मि हि ते वक्त्रं दाक्षायणि नमोऽस्तु ते।

(५।१।१६९)

मैं आपके मुखमें प्रविष्ट होकर बाहर आ गया। अब मैं श्रीरामकार्य करनेके लिये जा रहा हूँ। सुरसाने अपने वास्तविक रूपमें प्रकट होकर श्रीहनुमान्‌से कहा—हे हरिश्रेष्ठ! तुम श्रीरामकार्य पूर्ण करनेके लिये सुखपूर्वक प्रस्थान करो। हे सौम्य! श्रीराम-सीताका शीघ्र मिलन कराओ—

अर्थ सिद्ध्यै हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम्।
समानय च वैदेहीं राघवेण महात्मना॥

(५।१।१७१)

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा।
मागा बिदा ताहि सिरु नावा॥
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा।
बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥

(श्रीरामचरितमानस ५। २)

कपिश्रेष्ठ श्रीहनुमान्‌जीके अत्यन्त दुष्कर कर्मको देखकर सब प्राणी 'साधु-साधु' करके प्रशंसा करने लगे—'**साधु साध्विति भूतानि प्रशशंसुस्तदा हरिम्**'। श्रीहनुमान्‌जी यहाँसे गरुड़के समान वेगसे आकाशमें आगे बढ़ने लगे—

जगामाकाशमाविश्य वेगेन गरुडोपमः॥

(५। १। १७३)

आगे चलनेपर सिहिंका नामकी राक्षसीने हनुमान्‌जीकी छाया पकड़ ली। गतिके अवरुद्ध होनेपर श्रीहनुमान्‌जीको वानरेन्द्र सुग्रीवकी बात याद आ गयी। नि:सन्देह यह वही छाया-ग्रहणी राक्षसी है—

कपिराज्ञा यथाख्यातं सत्त्वमद्भुतदर्शनम्।
छायाग्राहि महावीर्यं तदिदं नात्र संशयः॥

(५। १। १९०)

श्रीहनुमान्‌जीने विशालकाय होकर सिंहिकाके फैले हुए विकराल मुखमें पुन: शरीरको संक्षिप्त करके आ गिरे और अपने तीक्ष्ण नखोंसे उसका हृदय विदीर्ण कर दिया, वह मर गयी—

ततस्तस्या नखैस्तीक्ष्णैर्मर्माण्युत्कृत्य वानरः॥

(५। १। १९६)

आकाशके विचरण करनेवाले प्राणी प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—हे बलवान् हनुमान्‌जी! जिस व्यक्तिमें आपकी तरह धृति, सूझ-बूझ, बुद्धि और दक्षता ये चार गुण होते हैं, वह कभी किसी कार्यमें असफल नहीं होता है—

यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव।
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति॥

(५। १। २०१)

यह श्लोक जीवनके हर क्षेत्रमें सफलताके लिये स्मरण करने योग्य है। श्रीहनुमान्‌जीकी समुद्र-यात्राकी फलश्रुतिके रूपमें इसको समझना चाहिये—

ताहि मारि मारुतसुत बीरा।
बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा।
गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥

श्रीहनुमान्‌जी समुद्र पार करके समुद्रके दक्षिणी तटपर उतरकर अमरावतीके समान सुशोभित लङ्कापुरीको देखने लगे—

निपत्य तीरे च महोदधेस्तदा
ददर्श लङ्काममरावतीमिव॥

(५। १। २१३)

महाबलवान् श्रीहनुमान्‌जी दुर्लङ्घ्य सागर-का अतिक्रमण करके त्रिकूटाचलपर खड़े होकर लङ्कापुरीको देख रहे थे, उस समय वहाँके वृक्षोंसे फूल झड़कर उनपर गिर रहे थे। ऐसा ज्ञात होता था कि स्वागत करने योग्य श्रीहनुमान्‌जीका लङ्कानिवासियों-द्वारा स्वागत न होते देखकर प्रकृति उनके आनेपर उनका स्वागत कर रही है। उस समय हनुमान्‌जी पुष्पके द्वारा निर्मित वानरके समान ज्ञात होने लगे—

ततः पादपमुक्तेन पुष्पवर्षेण वीर्यवान्।
अभिवृष्टस्ततस्तत्र बभौ पुष्पमयो हरिः॥

(५। २। २)

श्रीहनुमान्‌जीने समस्त लङ्काका सूक्ष्म दृष्टिसे निरीक्षण किया। एक तो लङ्का चारों ओर समुद्रसे घिरी हुई थी '**खाईं सिंधु गभीर अति चारिहुँ दिसि फिरि आव**' अत: प्रकृतिके द्वारा सुरक्षित थी। दूसरे विशाल बलवान् भयङ्कर राक्षसोंका कड़ा पहरा था। तीसरे रावण-जैसे लोक-रावण शत्रुके द्वारा सुरक्षित थी, अत: लङ्काकी महती गुप्ति—सुरक्षा देखकर हनुमान्‌जी सोचने लगे।

तस्याश्च महतीं गुप्तिं सागरं च निरीक्ष्य सः।

रावणं च रिपुं घोरं चिन्तयामास वानरः॥

(५।२।२६)

श्रीहनुमान्‌जीने सोचा कि श्रीसीताजीको खोजते समय मुझे इन राक्षसोंसे अपनेको छिपाना आवश्यक है, अतः मैं रात्रिके समय लक्ष्याऽलक्ष्य रूपसे—जो स्वरूप आँखोंसे देखा न जा सके, मात्र कार्यसे अनुमान लगाया जा सके कि यहाँ कोई आया था, अपना कार्य सम्पन्न करूँगा—

लक्ष्यालक्ष्येण रूपेण रात्रौ लङ्कापुरी मया।
प्राप्तकालं प्रवेष्टुं मे कृत्यं साधयितुं महत्॥

(५।२।३५)

सूर्यास्त होनेपर श्रीहनुमान्‌जीने अपने शरीरको छोटा बना लिया। स्मरण रहे हनुमान्‌जीने रूपान्तर नहीं किया। वह वृषदंशक—‘**वृषान् मूषकान् दशतीति वृषदंशकः मार्जारस्तत् प्रमाणम्**’ अर्थात् जो वृष-मूषकको खा डाले उसे वृषदंशक अर्थात् बिल्ली कहते हैं, भाव कि बिल्लीके बराबर होकर अद्भुत दर्शन हो गये। श्रीतुलसीदासजीने भी इसी भावको लिखा है—‘**मसक समान रूप कपि धरी**’ ‘मसक’ का अर्थ भी बिडाल ही होता है—‘**मसको बिडालो मार्जारः**’।

सूर्ये चास्तं गते रात्रौ देहं संक्षिप्य मारुतिः।
वृषदंशकमात्रोऽथ बभूवाद्भुतदर्शनः॥

(५।२।४९)

भगवान् भी जब लोक-कल्याणके लिये रूप धारण करते हैं तब अद्भुत दर्शन हो जाते हैं—‘**अद्भुत रूप निहारी**’ तथा ‘**तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणम्**’। आज भक्तने भी रूप धारण किया तो अद्भुत दर्शन हो गये।

लङ्कामें प्रवेश करते ही लङ्काकी अधिष्ठात्री देवी लङ्का गर्जना करती हुई बोली—तुम कौन हो और किस कार्यसे यहाँ आये हो? हे वनालय वानर! मुझे बताओ।

कस्त्वं केन च कार्येण इह प्राप्तो वनालय।

(५।३।२३)

श्रीहनुमान्‌जीने कहा—अरी दारुणे! तेरे प्रश्नका मैं अवश्य उत्तर दूँगा; किन्तु उसके पहले तू बता कि तू कौन है? तेरी आँखें बड़ी भयङ्कर हैं। नगरद्वारपर खड़ी होकर तू मुझे डाँट क्यों रही है?

का त्वं विरूपनयना पुरद्वारेऽवतिष्ठसे।
किमर्थं चापि मां क्रोधान्निर्भर्त्सयसि दारुणे॥

(५।३।२६)

श्रीहनुमान्‌जीके पूछनेका आशय यह है कि यह स्त्री है, इसके साथ मैं कैसा व्यवहार करूँ। इसके पूर्व दो स्त्रियाँ मिल चुकी हैं, सुरसा और सिंहिका। यह सुरसाकी तरह सम्मानके योग्य है अथवा सिंहिंकाकी तरह वधके योग्य है, इसका निर्णय करनेके लिये पूछते हैं कि तुम कौन हो।

लङ्किनीने कहा—मैं राक्षसराज रावणकी आज्ञाकारिणी दासी हूँ। हे वानर! मैं लङ्कानगरीकी अधिष्ठात्री देवी हूँ और इस नगरीकी सर्वतः रक्षा करती हूँ, एतावता मैंने कठोर वाणीका प्रयोग किया है—

अहं हि नगरी लङ्का स्वयमेव प्लवङ्गम।
सर्वतः परिरक्षामि अतस्ते कथितं मया॥

(५।३।३०)

श्रीहनुमान्‌ने कहा—हे देवि! मैं इस नगरीके महल, परकोटे, अट्टालिकाएँ, वन, उपवन, कानन, खास-खास महल सब कुछ देखना चाहता हूँ। हे लङ्के! लङ्काको भलीभाँति देखनेकी मेरी उत्कट इच्छा है। मैं कुछ हानि नहीं करूँगा। मेरा देखना कोई जान भी नहीं पायेगा। हे भद्रे! मेरे इस कार्यसे आपका कल्याण ही होगा। मैं लङ्काको देखकर जैसे आया हूँ वैसे ही चला जाऊँगा। यहाँपर स्थायी-रूपसे निवास करने नहीं आया हूँ। वानर शार्दूल श्रीहनुमान्‌जीने इस प्रकार उस

राक्षसीसे कहा। श्रीहनुमान्‌जीके वचन सुनकर लङ्किनीने भयङ्कर गर्जना करके उन्हें एक तमाचा मार दिया—

ततः कृत्वा महानादं सा वै लङ्का भयङ्करम्।
तलेन वानरश्रेष्ठं ताडयामास वेगिता॥

(५।३।३८)

श्रीहनुमान्‌जीने सोचा कि न तो यह सुरसाकी तरह पूज्या है और न सिंहिकाकी तरह वध्या ही है, अतः उसे स्त्री समझकर अधिक क्रोध नहीं किया। लङ्काके ऊपर श्रीहनुमान्‌जीने कृपा की— '**कृपां चकार तेजस्वी**'। श्रीहनुमान्‌जी जिन करारविन्दोंसे श्रीरामचरणारविन्दोंका सतत संवाहन करते हैं, उसी हाथसे मारनेके व्याजसे उसका स्पर्श करके श्रीरामभक्तिका शक्तिपात करके कृपा कर दी। सन्तने उसकी जीवनधारा बदल दी। उसका जीवन बदल गया, मन बदल गया और व्यवहार बदल गया तथा वाणी भी बदल गयी। सन्तका यही काम है कि वह धारा बदल देता है। उस धाराके सहारे वह श्रीरामचरणोंकी ओर चल पड़ता है। लङ्किनीका सब कुछ बदल गया। हनुमान्‌जीने बाँयें हाथसे एक मुक्का मारा और वह भी धीरेसे मारा। बायें हाथका प्रहार हलका होता है। इस हलके प्रहारसे ही उसके अङ्ग-अङ्ग व्याकुल हो गये, वह तो भूमिपर धड़ामसे गिर पड़ी—

ततः संवर्तयामास वामहस्तस्य सोऽङ्गुलीः।
मुष्टिनाभिजघानैनां हनुमान् क्रोधमूर्च्छितः॥
स्त्री चेति मन्यमानेन नातिक्रोधः स्वयं कृतः।
सा तु तेन प्रहारेण विह्वलाङ्गी निशाचरी।
पपात सहसा भूमौ विकृताननदर्शना।

(५।३।४०-४१)

मुठिका एक महा कपि हनी।
रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥

उसने सोचा कि कहीं दूसरा प्रहार न हो जाय, अतः तत्काल विनम्र स्वरमें कहने लगी—हे महाबलवान् हनुमान्! मुझपर प्रसन्न होइये। मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपके पराक्रमके द्वारा जीत ली गयी हूँ। हे श्रीरामदूत! आज मैं आपके मङ्गलमय करस्पर्शसे पवित्र हो गयी। मेरा विचार पवित्र हो गया। हे महाबली! मैं हार गयी, अतः आपसे समस्त लङ्का हार गयी। अब आपको जीतनेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं है—

अहं तु नगरी लङ्का स्वयमेव प्लवङ्गम।
निर्जिताहं त्वया वीर विक्रमेण महाबला॥

(५।३।४५)

ब्रह्माजीने मुझे पहले ही बता दिया था कि जब तुझे कोई वानर अपने बलसे वशमें कर लेगा तब समझ लेना कि अब राक्षसकुलपर सङ्कट आ गया है—

जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा।
चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा॥
बिकल होसि तैं कपि कें मारे।
तब जानेसु निसिचर संघारे॥

हे वानरेन्द्र! अब मैं आपको पहचान गयी, अब आप लङ्कामें प्रवेश करके जो करना हो करिये, जहाँ जाना हो जाइये, श्रीसीताजीकी खोज करिये—

तत् प्रविश्य हरिश्रेष्ठ पुरीं रावणपालिताम्।
विधत्स्व सर्वकार्याणि यानि यानीह वाञ्छसि॥

(५।३।५०)

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा।
हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई।
गोपद सिंधु अनल सितलाई॥
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही।
राम कृपा करि चितवा जाही॥

श्रीहनुमान्‌जीने लङ्काके समस्त द्वारोंपर कड़ा

पहरा देखा तब बिना द्वारके ही प्राकार-चहारदीवारी लाँघकर लङ्काके भीतर प्रविष्ट हो गये—

अद्वारेण महावीर्यः प्राकारमवपुप्लुवे।
निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः॥

(५।४।२)

लङ्काके भीतर अनेक प्रकारके कार्योंमें लोगोंको व्यस्त देखा। किसीको मन्त्रजप करते देखा और किसीको स्वाध्याय करते देखा—

सुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान् रक्षोगृहेषु वै।
स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान् ददर्श सः॥

(५।४।१३)

हजारों राक्षसोंके रहते हुए भी श्रीहनुमान्‌जीने रावणके अन्तःपुरमें प्रवेश कर लिया—'**स रावणान्तःपुरमाविवेश**'। ज्ञात होता है, वह राकारजनी थी—पूर्णिमाकी रात थी; क्योंकि चन्द्रमाका बड़ा साहित्यिक वर्णन है। जैसे चाँदीके पिंजरेमें हंस सुशोभित होता है। जैसे मन्दराचलकी कन्दरामें सिंह भला प्रतीत होता है और मदोन्मत्त हाथीपर जैसे वीर पुरुष सुहावना लगता है, उसी प्रकार गगनविहारी चन्द्रदेव सुशोभित हो रहे हैं—

हंसो यथा राजतपञ्जरस्थः
सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः।
वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्थ-
श्चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाम्बरस्थः॥

(५।५।४)

जैसे सुवर्णजटित दाँतोंसे युक्त गजराज सुहावना लगता है, उसी प्रकार हरिणके शृङ्गरूपी चिह्नसे युक्त परिपूर्ण चन्द्रमा छवि पा रहे थे—

हस्तीव जाम्बूनदबद्धशृङ्गो
विभाति चन्द्रः परिपूर्णशृङ्गः॥

(५।५।५)

जैसे कन्दराके बाहर शिलातलपर बैठा हुआ मृगेन्द्र शोभा पाता है, जैसे विशाल भवनमें पहुँचकर गजेन्द्र सुशोभित होता है और जैसे सुन्दर राज्य प्राप्त करके नरेन्द्र अधिक शोभासे सम्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार निर्मल प्रकाशसे युक्त होकर चन्द्रदेव सुशोभित हो रहे हैं—

शिलातलं प्राप्य यथा मृगेन्द्रो
महारणं प्राप्य यथा गजेन्द्रः।
राज्यं समासाद्य यथा नरेन्द्र-
स्तथा प्रकाशो विरराज चन्द्रः॥

(५।५।७)

श्रीहनुमान्‌जीने श्रीसीताजीको खोजते हुए अनेक प्रकारके वीरोंको देखा, राक्षसोंको देखा, अनेक प्रकारकी स्त्रियोंको अनेक स्थानोंमें, अनेक वेषभूषामें, अनेक स्थितियोंमें देखा; परन्तु श्रीसीताजीको कहीं नहीं देखा। श्रीहनुमान्‌जीने श्रीरामजीसे श्रवण करके अथवा, अपनी आराधनाके बलपर श्रीसीताजीके मङ्गलमय स्वरूपकी कल्पना कर ली, उसका पाँच श्लोकोंमें बहुत सुन्दर और भावमय वर्णन है।

जो श्रीसीता सनातन मार्गपर—अविच्छिन्न पातिव्रत्यधर्ममें स्थिर रहनेवाली हैं। जो श्रीसीता रामेक्षणी हैं—जो सर्वदा श्रीरामजीके ध्यानमें ही चित्त लगाये रहती हैं—'**राममीक्षते ध्यायती रामेक्षणी ताम्**'। जो श्रीसीता रामविषयकप्रेमसे परिपूर्ण हैं, जो श्रीसीता अपने पतिके श्रीमत्-मनमें—सीता चिन्तनविशिष्ट मनमें सर्वदा प्रविष्ट रहती हैं, जो श्रीसीता दूसरी सभी स्त्रियोंसे सदा ही विशिष्ट हैं उन श्रीसीताजीके दर्शन नहीं हुए-

सनातने वर्त्मनि सन्निविष्टां
रामेक्षणीं तां मदनाभिविष्टाम्।
भर्तुर्मनः श्रीमदनुप्रविष्टां
स्त्रीभ्यः पराभ्यश्च सदा विशिष्टाम्॥

(५।५।२४)

जो श्रीसीता श्रीरामविरहजन्य तापसे सर्वदा

सन्तप्त रहती हैं, जिनके नेत्रोंसे रात-दिन गङ्गा-यमुनाकी धारा बहती रहती है, जिनका कण्ठ उन निरन्तर बहनेवाले आँसुओंसे गद्‌गद रहता है—'**उष्णार्दितां सानु सृतास्त्रकण्ठीम्**' वक्ताओंमें श्रेष्ठ राजराजेश्वर श्रीरामचन्द्रजीकी प्राणप्रिया प्रियतमा प्रेयसी पत्नी श्रीसीताजीका बहुत देरतक खोजनेपर भी जब श्रीहनुमान् दर्शन नहीं कर सके तब वे सद्यः अत्यन्त आर्त्त और शिथिल हो गये—

सीतामपश्यन् मनुजेश्वरस्य
रामस्य पत्नीं वदतां वरस्य।
बभूव दुःखोपहतश्चिरस्य
प्लवङ्गमो मन्द इवाचिरस्य॥

(५।५।२७)

श्रीहनुमान्‌जी एक घरसे दूसरे घरमें जाकर राक्षसोंके उद्यानोंको अच्छी तरह देखते हुए—सूक्ष्मतासे खोजते हुए निर्भय होकर अट्टालिकाओंपर विचरण करने लगे—

गृहाद् गृहं राक्षसानामुद्यानानि च सर्वशः।
वीक्षमाणोऽप्यसन्त्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः॥

(५।६।१६)

—कूदकर प्रहस्तके घरमें गये, वहाँसे उछलकर महापार्श्वके घर गये। इसी प्रकार कुम्भकर्ण, विभीषण और मेघनाद आदिके घरोंमें भी श्रीपवननन्दनने श्रीसीताका अन्वेषण किया। तदनन्तर श्रीहनुमान्‌जीने रावणके महलमें प्रवेश करके वहाँकी गतिविधिका निरीक्षण किया। नूपुरोंकी झङ्कार, मेखलाओंकी खनखनाहट, मृदङ्गों और तालियोंकी मधुर ध्वनिसे तथा अन्य सुवाद्योंकी ध्वनिसे वह राजभवन निनादित—मुखरित हो रहा था—

नूपुराणां च घोषेण काञ्चीनां निःस्वनेन च।
मृदङ्गतलनिर्घोषैर्घोषवद्‌भिर्विनादितम् ॥

(५।६।४३)

तदनन्तर रावणके भुजबलसे सुरक्षित नगरी लङ्कामें जाकर श्रीसीताजीके अन्वेषणके लिये इतस्ततः परिभ्रमण करनेपर भी महात्माओंके द्वारा-सज्जनोंके द्वारा अतिप्रशंसिता, श्रीरामके वियोग-दुःखसे सुदुःखिता, अपने प्राणप्रियपति श्रीरामजीके वात्सल्यादि गुणोंके वेगसे विमुग्धा श्रीजनकराजदुलारीको न देखकर श्रीहनुमान्‌जी बहुत दुःखी हो गये—

ततः स तां कपिरभिपत्य पूजितां
चरन् पुरीं दशमुखबाहुपालिताम्।
अदृश्य तां जनकसुतां सुपूजितां
सुदुःखितां पतिगुणवेगनिर्जिताम्॥

(५।७।१६)

श्रीसीताजीको खोजते हुए श्रीहनुमान्‌जीने पुष्पक-विमान देखा। पुष्पक-विमानका बहुत अद्‌भुत वर्णन है। उस उत्तम पुष्पक-विमानको जो वसन्तकालके पुष्पपुञ्जके समान मनोहर दीखता था और वसन्तमाससे भी अधिक चारुदर्शन था, श्रीहनुमान्‌जीने देखा—

वसन्तपुष्पोत्करचारुदर्शनं
वसन्तमासादपि चारुदर्शनम्।
स पुष्पकं तत्र विमानमुत्तमं
ददर्श तद् वानरवीरसत्तमः॥

(५।८।८)

श्रीहनुमान्‌जीने रावणके विशाल भवनमें हजारों स्त्रियोंको विचित्र वेषोंमें देखा। उनमें बहुत-सी राजर्षियोंकी, ब्रह्मर्षियोंकी, दैत्योंकी, गन्धर्वोंकी तथा राक्षसोंकी कन्याएँ जो मदन-वशङ्गता होकर या अन्य किसी कारणसे रावणकी पत्नियाँ हो गयी थीं—

राजर्षिविप्रदैत्यानां गन्धर्वाणां च योषितः।
रक्षसां चाभवन् कन्यास्तस्य कामवशंगताः॥

(५।९।६८)

उन सहस्रों कामिनियोंको देखनेके पश्चात् श्रीहनुमान्‌जीने देखा कि इन समस्त कामिनियोंसे अलग एकान्तमें एक शय्या है, उसपर एक रूपवती युवती शयन कर रही है। वह मुक्तामणि-जटित अलङ्कारोंसे अलङ्कृता थी। अपनी शोभासे उस भवनको भी सुशोभित कर रही थी—

तासामेकान्तविन्यस्ते शयानां शयने शुभे।
ददर्श रूपसम्पन्नामथ तां स कपिः स्त्रियम्॥
मुक्तामणिसमायुक्तैर्भूषणैः सुविभूषिताम्।
विभूषयन्तीमिव च स्वश्रिया भवनोत्तमम्॥

(५।१०।५०-५१)

वास्तवमें यह स्त्री मन्दोदरी थी। श्रीहनुमान्‌जीने उन्हें देखकर अनुमान लगाया कि सम्भवतः यही श्रीसीताजी हैं। अब तो श्रीहनुमान्‌जी अति प्रसन्न हो गये। वे अपनी पूँछको पटकने और चूमने लगे, प्रसन्न होकर गाने लगे, इधर-उधर आने-जाने लगे। वह कभी खम्भोंपर चढ़ जाते तो कभी भूमिपर कूद पड़ते, इस प्रकार वानरी प्रकृतिका प्रदर्शन करके आनन्द मनाने लगे—

आस्फोटयामास चुचुम्ब पुच्छं
ननन्द चिक्रीड जगौ जगाम।
स्तम्भानरोहन् निपपात भूमौ
निदर्शयन् स्वां प्रकृतिं कपीनाम्॥

(५।१०।५४)

परन्तु तत्काल ही श्रीहनुमान्‌जीका यह विचार समाप्त हो गया। वे सोचने लगे—भारतीय संस्कृतिकी आराध्या श्रीरामवियोगिनी श्रीसीताजीको निद्रा आ ही नहीं सकती, वे भोजन भी नहीं कर सकती हैं और वे आभूषण भी धारण नहीं कर सकतीं, फिर मधुपानकी तो चर्चा ही व्यर्थ है, यह तो कोई दूसरी ही सुन्दरी स्त्री है—

न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी।
न भोक्तुं नाप्यलङ्कर्तुं न पानमुपसेवितुम्॥

(५।११।२)

इस प्रकार नग्न आभूषित, अर्द्धनग्न स्त्रियोंमें खोजते-खोजते श्रीहनुमान्‌जीके मनमें **'नेक्षेत नग्नां परस्त्रियम्'** इस शास्त्रके स्मरणसे धर्मनाशकी शङ्का हो गयी—**'धर्म साध्वसशङ्कितः'** **'धर्मलोपनिमित्तं यत् साध्वसं भयं तेन शङ्कितः धर्मसाध्वसशङ्कितः'**।

निरीक्षमाणश्च ततस्ताः स्त्रियः स महाकपिः।
जगाम महतीं शङ्कां धर्मसाध्वसशङ्कितः॥

(५।११।३७)

श्रीहनुमान्‌जीने सोचा—रावणकी स्त्रियाँ निःशङ्क सो रही थीं, उसी स्थितिमें मैंने उनको भलीभाँति देखा है, तथापि मेरे मनमें कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ है—

कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।
न तु मे मनसा किञ्चिद् वैकृत्यमुपपद्यते॥

(५।११।४१)

फिर मैं उन स्त्रियोंको देखनेके लिये विवश था। स्त्रीको स्त्रियोंमें ही खोजा जाता है, एतावता श्रीविदेहनन्दिनीको अन्यत्र मैं कहाँ खोजता?

नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम्।
स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सदा सम्परिमार्गणे॥

(५।११।४३)

इस प्रकार जब बहुत खोजनेपर भी श्रीसीताजीके दर्शन नहीं हुए तब श्रीहनुमान् सोचने लगे—मैंने रावणका सारा अन्तःपुर छान डाला, रावणकी समस्त स्त्रियोंको भी देख लिया; परन्तु अभीतक पतिव्रताशिरोमणि श्रीजानकीजी-के दर्शन नहीं हुए। हा हन्त! मेरा समुद्रोल्लङ्घनका श्रम व्यर्थ हो गया—

दृष्टमन्तःपुरं सर्वं दृष्टा रावणयोषितः।
न सीता दृश्यते साध्वी वृथा जातो मम श्रमः॥

(५।१२।६)

यदि मैं लौटकर जाऊँगा तो श्रीजाम्बवान्-अङ्गद आदिको क्या उत्तर दूँगा? फिर सोचते हैं—उत्साह ही ऐश्वर्यका मूल कारण है। उत्साह

ही परमसुखका हेतु है। इसलिये मुझे उत्साहका परित्याग नहीं करना चाहिये। अब मैं पुनः उत्साहपूर्वक उन स्थानोंमें खोजूँगा जहाँ अबतक नहीं खोजा है—

अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम्।
भूयस्तत्र विचेष्यामि न यत्र विचयः कृतः॥

(५।१२।१०)

रावणके महलमें चार अङ्गुल भी ऐसा स्थान नहीं रह गया जहाँ श्रीहनुमान्‌जी न पहुँचे हों—

चतुरङ्गुलमात्रोऽपि नावकाशः स विद्यते।
रावणान्तःपुरे तस्मिन् यं कपिर्न जगाम सः॥

(५।१२।१७)

श्रीहनुमान्‌जीने सोचा कि मैंने लङ्कामें श्रीसीताजीको कई बार खोजा—बहुत बार खोजा—'**भूयिष्ठं लोलिता लङ्का**' परन्तु माता मैथिलीके दर्शन नहीं हुए।

मैंने छोटे-बड़े तालाबोंमें खोजा, नदियों और नालोंमें खोजा, लङ्काकी निकटवर्ती समस्त भूमिमें खोजा; परन्तु कहीं भी मुझे श्रीसीताजीके दर्शन नहीं हुए—

पल्वलानि तटाकानि सरांसि सरितस्तथा।
नद्योऽनूपवनान्ताश्च दुर्गाश्च धरणीधराः॥
लोलिता वसुधा सर्वा न च पश्यामि जानकीम्।

(५।१३।४-५)

यह भी सम्भव है, जिस समय रावण श्रीसीताजीको लेकर समुद्रके ऊपर गया हो, उस समय भयङ्कर समुद्रकी भयावह लहरोंको देखकर भयके कारण श्रीसीताजीका हृदय ही न विदीर्ण हो गया हो; क्योंकि उनका स्वभाव अतिशय कोमल है—

अथवा ह्रियमाणायाः पथि सिद्धनिषेविते।
मन्ये पतितमार्याया हृदयं प्रेक्ष्य सागरम्॥

(५।१३।८)

यह भी सम्भव है कि जिस समय दुष्ट रावण श्रीसीताजीको समुद्रके ऊपर ला रहा हो उस समय श्रीमिथिलेशनन्दिनी छटपटाकर—विह्वल होकर समुद्रमें गिर पड़ी हों—

उपर्युपरि सा नूनं सागरं क्रमतस्तदा।
विचेष्टमाना पतिता समुद्रे जनकात्मजा॥

(५।१३।१०)

यह भी सम्भव है कि अपने शीलकी रक्षामें तत्पर हुई श्रीसीताजीको, जिनका कोई सहायक नहीं था—रक्षक नहीं था, ऐसी तपस्विनी सीताको नीच रावणने स्वयं ही भक्षण कर लिया हो; क्योंकि वह अति निर्दय और कठोर है—

आहो क्षुद्रेण चानेन रक्षन्ती शीलमात्मनः।
अबन्धुर्भक्षिता सीता रावणेन तपस्विनी॥

(५।१३।११)

श्रीहनुमान्‌जी सोचते हैं—श्रीरामचन्द्रके पूर्ण चन्द्रमाके समान तथा प्रफुल्ल कमलदलके सदृश नेत्रोंवाले मुखचन्द्रका चिन्तन करती हुई श्रीमैथिली हा राम! हा लक्ष्मण! हा अयोध्ये! इस प्रकार पुकार-पुकारकर अनेक प्रकारसे करुण क्रन्दन करती हुई श्रीजनकराज किशोरीने कहीं अपने शरीरका परित्याग तो नहीं कर दिया?

सम्पूर्णचन्द्रप्रतिमं पद्मपत्रनिभेक्षणम्।
रामस्य ध्यायती वक्त्रं पञ्चत्वं कृपणा गता॥
हा राम लक्ष्मणेत्येवं हायोध्ये चेति मैथिली।
विलप्य बहु वैदेही न्यस्तदेहा भविष्यति॥

(५।१३।१३-१४)

श्रीहनुमान्‌जी अपने मनमें सोचते हैं—यदि मैं श्रीसीताजीका दर्शन किये बिना लङ्कासे वानरेन्द्र सुग्रीवकी नगरी किष्किन्धा लौट जाऊँगा तो मेरा क्या पुरुषार्थ होगा? फिर तो मेरा समुद्रोल्लङ्घन, लङ्काप्रवेश और राक्षसोंका दर्शन आदि सब निरर्थक हो जायगा—

यदि सीतामदृष्ट्वाहं वानरेन्द्रपुरीमितः।
गमिष्यामि ततः को मे पुरुषार्थो भविष्यति॥
ममेदं लङ्घनं व्यर्थं सागरस्य भविष्यति।
प्रवेशश्चैव लङ्कायां राक्षसानां च दर्शनम्॥

(५।१३।२०-२१)

श्रीहनुमान्‌जी सोचते हैं—यदि मैं जाकर श्रीरामजीसे यह कठोर बात कह दूँ कि मैंने श्रीसीताका दर्शन नहीं किया तो वे प्राणोंका परित्याग कर देंगे—

गत्वा तु यदि काकुत्स्थं वक्ष्यामि परुषं वचः।
न दृष्टेति मया सीता ततस्त्यक्ष्यति जीवितम्॥

(५।१३।२३)

अपने सर्वस्व श्रीरामके न रहनेपर उनसे अत्यधिक अनुराग करनेवाले मेधावी श्रीलक्ष्मणजी भी नहीं रहेंगे—

भृशानुरक्तमेधावी न भविष्यति लक्ष्मणः॥

श्रीराम-लक्ष्मणका यह समाचार सुनकर श्रीभरत-शत्रुघ्न भी नहीं रहेंगे। चारों पुत्रोंकी यह स्थिति देखकर माता कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा भी नहीं रहेंगी—

पुत्रान् मृतान् समीक्ष्याथ न भविष्यन्ति मातरः।
कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च न संशयः॥

(५।१३।२७)

श्रीरामकी इस स्थितिसे कृतज्ञ सत्यसन्ध वानरेन्द्र सुग्रीव भी प्राण त्याग कर देंगे—

कृतज्ञः सत्यसन्धश्च सुग्रीवः प्लवगाधिपः।
रामं तथागतं दृष्ट्वा ततस्त्यक्ष्यति जीवितम्॥

(५।१३।२८)

सुग्रीवके न रहनेपर रुमा, तारा और अङ्गद भी नहीं रहेंगे। श्रीहनुमान् सोचते हैं—मेरे लौटकर जानेमें बड़ा भयङ्कर आर्त्तनाद होगा। इक्ष्वाकुकुलका और वानरोंका भी नाश हो जायगा। इसलिये श्रीसीताजीका दर्शन किये बिना लौटकर मैं किष्किन्धा नहीं जाऊँगा—

घोरमारोदनं मन्ये गते मयि भविष्यति।
इक्ष्वाकुकुलनाशश्च नाशश्चैव वनौकसाम्॥
सोऽहं नैव गमिष्यामि किष्किन्धां नगरीमितः।
नहि शक्ष्याम्यहं द्रष्टुं सुग्रीवं मैथिलीं विना॥

(५।१३।३७-३८)

श्रीहनुमान्‌जी तो यह भी सोचते हैं कि मैं समुद्रतटपर चिता-निर्माण करके समिद्ध-प्रज्वलित अग्निमें प्रविष्ट हो जाऊँगा—

सागरानूपजे देशे बहुमूलफलोदके।
चितिं कृत्वा प्रवेक्ष्यामि समिद्धमरणीसुतम्॥

(५।१३।४१)

अथवा, यदि मैं श्रीसीताजीका दर्शन न प्राप्त कर सकूँगा तो जलसमाधि ले लूँगा। मेरे विचारसे तो इस प्रकार जलप्रवेश करके मृत्युका वरण करना ऋषियोंकी दृष्टिमें भी उत्तम ही है—

इदमप्यृषिभिर्दृष्टं निर्याणमिति मे मतिः।
सम्यगापः प्रवेक्ष्यामि न चेत् पश्यामि जानकीम्॥

(५।१३।४३)

अन्तमें श्रीहनुमान्‌जीने निर्णय किया कि मैं नियताहार और नियतेन्द्रिय होकर यहीं निवास करूँगा, जिससे कि मेरे कारण समस्त नर-वानरका नाश न हो—

इहैव नियताहारो वत्स्यामि नियतेन्द्रियः।
न मत्कृते विनश्येयुः सर्वे ते नरवानराः॥

(५।१३।५४)

जब साधक जीव, भगवद्भक्त व्यक्ति, श्रीरामकृपाका अनुभव करनेवाला पुरुष चारों ओरसे निराश हो जाता है, चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार ज्ञात होने लगता है, सारे सहारे टूट जाते हैं, प्रयत्न करनेपर भी अपना पुरुषार्थ असफल हो जाता है, अपने पराये हो जाते हैं, जब कुछ नहीं सूझता है, तब भगवद्भक्तको एक प्रकाशकी किरण दिखायी पड़ती है। वह प्रकाश प्रभुकी कृपाका होता है।

अब आप प्रस्तुत प्रसङ्गको इस दृष्टिकोणसे देखें। श्रीहनुमान्‌जी जब समुद्रके उत्तर तटपर थे तब उन्होंने कहा था कि सब कार्य मैं अपने बलसे कर लूँगा। मेरी शक्ति महान् है, मेरा वेग प्रबल है, मैं समग्र कार्य करनेमें समर्थ हूँ, मैं स्वर्ग और पातालसे भी श्रीसीताको ला सकता हूँ, मैं त्रैलोक्यसे श्रीसीताको ढूँढ़ लाऊँगा, मैं रावणको उसके सहायकोंके साथ मार डालूँगा, मैं लङ्काको उखाड़कर उठा लाऊँगा इत्यादि। यद्यपि श्रीहनुमान्‌जीके कथनमें अतिशयोक्ति नहीं है, वे जो कुछ कह रहे हैं उसके करनेमें वे सर्वथा समर्थ हैं; परन्तु आज असमर्थ होकर, हताश होकर, असफल होकर प्राण देनेके लिये प्रस्तुत हैं। जलसमाधि लेनेके लिये भी तैयार हैं, जीवनभर लङ्कामें ही रहनेके लिये प्रस्तुत हैं। तात्पर्य यह है कि वे अपनेको असहाय-सा अनुभव कर रहे हैं। उनकी सीताजीके अन्वेषणकी शक्तिमें कुण्ठा लग गया है। अब भगवदनुग्रहचन्द्रकी आह्लादमयी किरणें पथप्रदर्शनके लिये समुदित हो गयीं। अब यह भगवत्-कृपाका पथप्रदर्शन किस रूपमें होगा यह प्रसङ्ग अतिशय मननीय है। भगवत्-कृपाके प्रकाशपुञ्जके आनेके दो स्वरूप हैं। सन्तकृपाके रूपमें आ जाय अथवा बुद्धि-परिवर्तनके रूपमें आ जाय। दो प्रकारसे पथप्रदर्शन होता है।

श्रीरामचरितमानसमें जब श्रीहनुमान्‌जी चारों ओरसे निराश हो गये तब विभीषणका—सन्तका आश्रम दिखायी दिया—

भवन एक पुनि दीख सुहावा।
हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥
रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ॥

(श्रीरामचरितमानस ५।५)

परन्तु श्रीहनुमान्‌जी सोचते हैं कि लङ्कामें सन्तनिवास कैसे सम्भव है?

लंका निसिचर निकर निवासा।
इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥
मन महुँ तरक करैं कपि लागा।
.................................॥
तत्क्षण............तेहीं समय बिभीषनु जागा॥
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा।
हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥

श्रीहनुमान्‌जीने गाढ़ परिचय होनेके अनन्तर विभीषणसे कहा—हे भ्रातः! मैं वात्सल्यमयी जननी श्रीजानकीजीका दर्शन करना चाहता हूँ—

तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता।
देखी चहउँ जानकी माता॥

तुरन्त श्रीविभीषणने पथप्रदर्शन कर दिया और श्रीहनुमान्‌जीको श्रीसीताजीके दर्शन हो गये—

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई।
चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ।
बन असोक सीता रह जहवाँ॥
देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा।
बैठेहिं बीति जात निसि जामा॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी।
जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी॥
निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन॥

(श्रीरामचरितमानस ५। ८। ५—८, दो० ८)

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें बुद्धिपरिवर्तनके रूपमें भगवदनुग्रहचन्द्रकी आह्लादित करनेवाली अमृतमयी किरणोंने बुद्धिपरिवर्तन कर दिया और मार्ग स्पष्ट हो गया। जब श्रीहनुमान्‌जीका पुरुषार्थ समाप्त हो गया, बुद्धि-बल समाप्त हो गया। जल-

समाधि लेनेके लिये किं वा नियताहार, नियतेन्द्रिय होकर जीवन लङ्कामें व्यतीत करनेके लिये प्रस्तुत हो गये, तब सहसा भगवत्कृपा उद्भासित होकर पथप्रदर्शन करती है। श्रीहनुमान्जीकी बुद्धिमें सहसा यह विचार आता है कि अरे! यह बहुत बड़ी अशोकवाटिका है, इसमें बड़े-बड़े वृक्ष हैं, इसमें तो मैंने खोजा ही नहीं, अब इसीमें चलकर श्रीसीताजीकी खोज करूँगा—

अशोकवनिका चापि महतीयं महाद्रुमा।
इमामधिगमिष्यामि नहीयं विचिता मया॥

(५। १३। ५५)

वास्तवमें श्रीसीताजीका अन्वेषण तो अब आरम्भ हो रहा है। इस नवीन बुद्धिके समुदय होनेपर श्रीहनुमान्जी दो मुहूर्त्तक पथप्रदर्शन करनेवाले, सुन्दर बुद्धिके प्रेरक श्रीरामजीका ध्यान करके सहसा उठकर खड़े हो गये। अब उनकी दृष्टिमें भविष्य सुन्दर प्रतीत हो रहा था। वे सद्यः अपने आराध्यके श्रीचरणोंमें अपनी भावमयी कुसुमाञ्जलि समर्पण करने लगे—हे प्राणिमात्रके हृदयमें रमण करनेवाले श्रीरामचन्द्र! आपके मङ्गलमय श्रीचरणोंमें मैं नमन करता हूँ। भगवत्कैङ्कर्यकी लक्ष्मीसे सम्पन्न श्रीलक्ष्मणजीके श्रीचरणोंमें मैं प्रणाम करता हूँ। भगवती भास्वती करुणामयी देवी श्रीजनकनन्दिनीके श्रीचरणोंमें भी नमस्कार है। रुद्र, यम, वायु, चन्द्रमा, अग्नि और मरुद्गणोंको भी नमस्कार है—

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्राग्निमरुद्गणेभ्यः॥

(५। १३। ५९)

इस प्रकार नमस्कार करके और वानरेन्द्र सुग्रीवको भी प्रणाम करके पवननन्दन श्रीहनुमान्जी सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर समालोक्य—अच्छी तरह देख करके अर्थात् समस्त दिशाओंके देवताओंको भी नमस्कार करके किं वा सावधान हो करके कि हमको कोई राक्षस देख तो नहीं रहा है, अशोकवाटिकामें जानेका विचार किया—

स तेभ्यस्तु नमस्कृत्वा सुग्रीवाय च मारुतिः।
दिशः सर्वाः समालोक्य सोऽशोकवनिकां प्रति॥

(५। १३। ६०)

अशोकवाटिकाके लिये प्रस्थान करते समय श्रीहनुमान्जी बड़ी भावपूर्ण अभिलाषा कर रहे हैं—जिनकी नासिका समुन्नत है, जिनकी दन्तपंक्ति श्वेत है, जिनका मुखमण्डल अव्रण अनवद्य है तथा पवित्र स्मितसे समुल्लसित है, जिनके नेत्र कमलदलके समान हैं तथा जो निर्मल निष्कलङ्क चन्द्रमाकी तरह कमनीय कान्तिसे सुशोभित हैं, उन श्रीसीताजीके पवित्र दर्शन हमें कब होंगे—वे मेरे दृष्टिपथमें कब आयेंगी?

तदुन्नसं पाण्डुरदन्तमव्रणं
शुचिस्मितं पद्मपलाशलोचनम्।
द्रक्ष्ये तदार्यावदनं कदा न्वहं
प्रसन्नताराधिपतुल्यवर्चसम्॥

(५। १३। ६८)

इस प्रकार उछलकर श्रीहनुमान्जी अशोक-वाटिकामें पहुँच गये। वहाँ उन्होंने अनेक प्रकार-के सुन्दर वृक्षोंको देखा। पर्वत देखा, पर्वतसे गिरती हुई नदीको भी देखा—

ददर्श कपिशार्दूलो रम्यं जगति पर्वतम्।
ददर्श च नगात् तस्मान्नदीं निपतितां कपिः॥
अङ्कादिव समुत्पत्य प्रियस्य पतितां प्रियाम्।

(५। १४। २८-२९)

उस नदीको देख करके श्रीपवननन्दन सोचने लगे—श्रीराम नित्य सन्ध्या-वन्दन करते हैं। श्रीरामजीकी उपासिका, भक्ता, प्राणप्रिया, सहधर्मिणी,

सहकर्मिणी श्रीसीताजी भी सन्ध्या अवश्य करती होंगी। जो सन्ध्यावन्दन नहीं करता है वह श्रीरामजीका कैसा सेवक? श्रीरामका भक्त सन्ध्या अवश्य करेगा— **'देवो भूत्वा देवं यजेत्'**। श्रीसीताजी सन्ध्या अवश्य करती हैं वे 'सन्ध्याकालमना' हैं—**'सन्ध्याकाले मनः यस्याः सा सन्ध्याकालमना'** सन्ध्योपासनतत्परा श्यामा जनकनन्दिनी वरवर्णिनी श्रीसीताजी सन्ध्याकालिक उपासनाके लिये इस पुण्यसलिला नदीके तटपर अवश्य पधारेंगी—

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनि॥

(५। १४। ४९)

श्रीहनुमान् सुन्दर पुष्पोंसे युक्त घने पत्तेवाले अशोकवृक्षपर अपनेको छिपाये हुए श्रीसीताजीकी प्रतीक्षा करते हुए, उनको खोजते हुए वहाँकी भूमिपर चारों ओर दृष्टि दौड़ाने लगे—

स वीक्षमाणस्तत्रस्थो मार्गमाणश्च मैथिलीम्।
अवेक्षमाणश्च महीं सर्वां तामन्ववैक्षत॥

(५। १५। १)

श्रीहनुमान्‌जीकी दृष्टि सहसा श्रीसीताजीपर पड़ी। श्रीसीताजीके वस्त्र मलिन थे किं वा उनके अङ्ग मलिन थे—**'मलिनसंवीतां मलिनवस्त्रेणावृतां मलिनैरङ्गैः संवीतां वा'**। चारों ओर राक्षसियाँ उन्हें घेरकर बैठी हुई थीं। उपवास करनेके कारण श्रीसीता अत्यन्त दुर्बल और दीन थीं, वह बारम्बार सिसकियाँ ले रही थीं। वे शुक्लपक्षके द्वितीयाके चन्द्रमाकी भाँति वन्दनीया तो थीं साथ ही निर्मल, तेजस्विनी और पतली दीख रही थीं—

ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम्।
उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः॥
ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम्॥

(५। १५। १८-१९)

जिनको देखनेकी इच्छा थी उन प्रियजनोंको— श्रीरामलक्ष्मणको तो श्रीसीताजी देख नहीं पाती थीं और जिन्हें देखना नहीं चाहती थीं, उन राक्षसियोंको विवश होकर श्रीसीताको देखना पड़ता था। जैसे कोई हरिणी अपने साथियोंसे अलग होकर कुत्तोंके समूहसे घिर गयी हो, वही स्थिति श्रीरामवियोगिनी सीताजीकी थी—

प्रियं जनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राक्षसीगणम्।
स्वगणेन मृगीं हीनां श्वगणेनावृतामिव॥

(५। १५। २४)

इस प्रकार असहाय श्रीसीताजीको देखकर युक्तियुक्त कारणोंके द्वारा श्रीहनुमान्‌ने अनुमान लगा लिया कि ये रामवल्लभा श्रीसीताजी ही हैं—

तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादिभिः।

(५। १५। २७)

श्रीहनुमान्‌जी सोचते हैं—ये निश्चित ही श्रीसीता हैं, क्योंकि जब ये सिसकियोंसे संयुक्त श्वास लेती हैं तब हा राम! हा लक्ष्मण! हा अयोध्ये! हा कौसल्ये! इस प्रकार कहती हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने जिन-जिन आभूषणोंको ऋष्यमूक पर्वतपर गिराकर हमलोगोंको सनाथ किया था, वे-वे आभूषण इनके उन-उन अङ्गोंमें दृश्यमान नहीं हैं। एतावता असन्दिग्धरूपसे ये रामप्रिया श्रीसीता ही हैं—

तत्र यान्यवहीनानि तान्यहं नोपलक्षये।
यान्यस्या नावहीनानि तानीमानि न संशयः॥

(५। १५। ४४)

ये निश्चित ही वही मैथिली हैं जिनके लिये श्रीरामजी इस संसारमें करुणा, दया, शोक और स्नेह इन चार कारणोंसे परितप्त रहते हैं—

इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिरिह तप्यते।
कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च॥

(५। १५। ४९)

आपत्तिकालमें स्त्रियोंकी रक्षा करनी चाहिये; परन्तु हा हन्त! मैं अपनी सीताकी—प्राणप्रिया पत्नीकी रक्षा नहीं कर सका, यह सोचकर

श्रीरामजी कारुण्यसे परितप्त रहते हैं। नित्यकिशोरी श्रीसीताजी मेरी आश्रिता थीं; परन्तु मैं उनका आश्रय न बन सका। इस प्रकार मेरा आश्रित संरक्षणत्व नष्ट हो गया, अतः आनृशंस्यसे—दयासे परितप्त रहते हैं। पत्नी तो आत्मार्द्धभूता ही होती है तथा सर्वधर्म साधनभूता होती है, इसलिये शोकसे—धर्मनाशचिन्ताके शोकसे परितप्त रहते हैं। श्रीसीताजी परमरूप लावण्यादिमती हैं, परम सुखसाधनभूता हैं। वे हरी गयीं, अतः मदनसे—प्रेमसे परितप्त रहते हैं। इस प्रकारकी व्याख्या श्रीगोविन्दराजजीने और तिलकटीकाकारने की है।

कार्यकी सफलताके कारण बुद्धिप्रदानके द्वारा पथप्रदर्शन करनेवाले श्रीरघुनन्दनके पावन चरणमें पहुँचकर पवननन्दन श्रीहनुमान् मन-ही-मन उनकी स्तुति करने लगे—हे आश्रित-जनवत्सल! आपकी करुणामयी कृपासे ही आज मैं श्रीसीतापादपद्मोंका दर्शन कर सका— आपका कार्य करनेमें समर्थ हो सका। हे स्वामी! अपने पराक्रमबल, बुद्धिबल और परिश्रमबलसे तो मैं खोजकर हार गया था। हे प्रभो! आप सचमुच प्रभु हैं—कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ हैं। आपने तो असम्भवको सम्भव कर दिया। वास्तवमें आप सर्वं कर्तुं समर्थ प्रभु हैं, आपके श्रीचरणोंमें हमारा बारम्बार वन्दन है—

एवं सीतां तथा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसम्भवः।
जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्रभुम्॥

(५। १५। ५४)

इसके बाद श्रीसीताजीकी दीन दशा देखकर परमतेजस्वी श्रीहनुमान् आँखोंमें आँसू भरकर सीतामाश्रित्य—श्रीसीताजीके विषयमें विलाप करने लगे—

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणः।
सीतामाश्रित्य तेजस्वी हनूमान् विललाप ह॥

(५। १६। २)

श्रीहनुमान्जी सोचते हैं—श्रीसीताजीका शील-स्वभाव, अवस्था, चरित्र, कुल आदि सब लक्षण श्रीरामजीके अनुरूप है। यहाँपर 'तुल्य' शब्दका अर्थ अनुरूप ही होगा। श्रीरामजी श्रीसीताके अनुरूप हैं और श्रीसीताजी श्रीरामके अनुरूप हैं—

तुल्यशीलवयोवृत्तां तुल्याभिजनलक्षणाम्।
राघवोऽर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा॥

(५। १६। ५)

'असितेक्षणा' यह विशेषण श्रीसीताजीमें अधिक देनेसे श्रीरामजीकी अपेक्षा श्रीसीताजीकी आँखोंको अधिक सुन्दर कहा है। इसीलिये ये श्रीरामजी कहेंगे कि मैं उन असितेक्षणाके बिना क्षणमात्र भी जीवित नहीं रह सकता हूँ—'**असितेक्षणेत्यधिकविशेषणदानाद् रामापेक्षया सीताया नयनसौन्दर्यंअधिकमित्युच्यते अतएव रामो वक्ष्यति—न जीवेयं क्षणमपि विना तामसितेक्षणा-मिति**' (श्रीगोविन्दराज)। श्रीहनुमान्जी सोचते हैं—श्रीसीताजी अपने बन्धुजनोंसे बिछुड़कर विषयभोगोंका परित्याग करके केवल श्रीरामजीके स्नेहमय सम्मिलनकी आशासे ही अपना शरीर धारण कर रही हैं—

कामभोगैः परित्यक्ता हीना बन्धुजनेन च।
धारयत्यात्मनो देहं तत्समागमकाङ्क्षिणी॥
नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान् पुष्पफलद्रुमान्।
एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति॥

(५। १६। २४-२५)

श्रीसीता आस-पासकी रहनेवाली, घेरकर पहरा देनेवाली राक्षसियोंको नहीं देखती हैं। श्रीरामजीके वियोगजन्य क्लेशातिशयके कारण राक्षसियोंकी तरह पुष्प-फलवाले वृक्षोंको भी देखना उन्हें असह्य है। वे तो एकाग्रचित्त होकर—

समस्त विषयोंसे मनकी वृत्तियोंको मोड़कर श्रीरामका ही दर्शन करती हैं—ध्यान करती हैं। अथवा, श्रीरामके आगमनकी जिस दिशासे सम्भावना है, उस दिशाकी ओर ही देखती रहती हैं। अथवा, नैरन्तर्येण रामानुभव होनेके कारण निकटवर्त्ती कोई भी पदार्थ उनकी दृष्टिमें आता ही नहीं है—

'नैषा पश्यति राक्षस्यः राक्षसीर्न पश्यति नेमान् पुष्पफलद्रुमान् रामविरहक्लेशातिशयेन राक्षसी दर्शनवत् सुपुष्पफलवतां द्रुमाणामपि दर्शनमस्या असह्यमित्यर्थः। एकस्थहृदया एकाग्रचित्ता-राममेवानुपश्यति ध्यायतीत्यर्थः रामागमन सम्भावनावती दिशोऽवलोकयतीति वार्थः। यद् वा निरन्तरेण रामानुभवेन परिसरवर्त्ती कोऽपि पदार्थो न दृष्टिपथं गच्छतीत्यर्थः' (श्रीगोविन्दराज)

श्रीहनुमान्‌जीने देखा कि श्रीसीताजीके आस-पास घोरदर्शना राक्षसियाँ हैं। इनमें कोई एकाक्षी थी, कोई एक कर्णा थी, कोई अकर्णा थी, किसीके कान इतने लम्बे थे कि कानोंको ही ओढ़ लिया जाता था अर्थात् कर्णप्रावरणा थी। कोई शङ्कुकर्णा थी—उसके कान क्या थे मानो खूँटे थे। किसीकी श्वास लेनेवाली नासिका उसके मस्तकपर थी—

एकाक्षीमेककर्णां च कर्णप्रावरणां तथा।
अकर्णां शङ्कुकर्णां च मस्तकोच्छ्वासनासिकाम्॥

(५। १७। ५)

कोई लम्बोदर पयोधरा थी, कोई लम्बोष्ठी थी, कोई चिबुकोष्ठी थी, किसीका मुख लम्बा था तो किसीके घुटने। कोई नाटी थी, कोई लम्बी थी, कोई कुबरी थी, कोई टेड़ी-मेड़ी, कोई बौनी थी, कोई सूअरकी तरह, कोई भैंसकी तरह, कोई बकरीकी तरह और कोई सियारिनकी तरह थी। किसीके पैर हाथीके समान, किसीके ऊँटके समान और किसीके घोड़ोंके समान थे। कोई अतिनासा थी, कोई तिर्यङ्नासा थी और कोई बिना नाकके ही थी। इस प्रकार बड़ा भयङ्कर वर्णन है। श्रीहनुमान्‌जीने इन भयङ्कर राक्षसियोंके मध्यमें श्रीसीताजीको देखा।

श्रीसीता सभी उत्तम आभूषणोंसे रहित थीं, परन्तु एक ऐसा आभूषण उनके पास था, जिस आभूषणके रहनेसे सम्पूर्ण आभूषणोंकी कमी पूर्ण हो जाती थी। अन्य सभी आभूषण हों और वह आभूषण न हो तो सब आभूषण व्यर्थ हैं। उस आभूषणका नाम है भर्तृवात्सल्य—पतिके प्रति स्नेह अथवा पतिका स्नेह। यही उनका शृङ्गार था—

भूषणैरुत्तमैर्हीनां भर्तृवात्सल्यभूषिताम्।
राक्षसाधिपसंरुद्धां बन्धुभिश्च विनाकृताम्॥

(५। १७। २१)

राक्षसराज रावणने उन्हें वन्दिनी बना लिया था, वे अपने स्वजनोंसे वियुक्त हो गयी थीं; परन्तु श्रीसीताजी अपने शीलसे—चरित्रसे स्वयं सुरक्षित थीं—

रक्षितां स्वेन शीलेन सीतामसितलोचनाम्।

(५। १७। २७)

श्रीहनुमान्‌जीके मनमें अतिशय प्रसन्नता है कि श्रीरामकृपासे ही मुझे माता सीताके दर्शन हो गये। अतः श्रीराम-लक्ष्मणको पुनः प्रणाम करके महाबली श्रीहनुमान् संवृत हो गये—राक्षसियाँ मुझे देख न लें, एतावता सूक्ष्मरूप धारण करके वृक्षोंकी शाखाओंमें हरे-हरे पत्तोंमें छिप गये।

उसी समय अनेक स्त्रियोंसे घिरा हुआ रावण अशोकवाटिकामें आया। उसके आगे-आगे सुगन्धित तेलसे भीगी हुई मशालें लेकर अनेक स्त्रियाँ चल रही थीं। वृक्षके घने पत्तों और डालियोंमें छिपे हुए श्रीहनुमान्‌जी जो अनेक पत्र-पुष्पोंसे आच्छादित थे, समीप आये हुए रावणको पहचाननेका प्रयास करने लगे—

तं पत्रविटपे लीनः पत्रपुष्पशतावृतः।

समीपमुपसंक्रान्तं विज्ञातुमुपचक्रमे॥

(५। १८। २५)

रावणको देखते ही विदेहनन्दिनी सुकुमार स्वभावा श्रीसीताजी प्रचण्ड वातसे प्रकम्पित कदलीकी भाँति भयसे प्रकम्पित हो गयीं। वरवर्णिनी विशालाक्षी मैथिली अपनी जाँघोंसे अपने पेटको और दोनों भुजाओंसे स्तनोंको आच्छादित करके रुदन करने लगीं—

ततो दृष्ट्वैव वैदेही रावणं राक्षसाधिपम्।
प्रावेपत वरारोहा प्रवाते कदली यथा॥
ऊरुभ्यामुदरं छाद्य बाहुभ्यां च पयोधरौ।
उपविष्टा विशालाक्षी रुदती वरवर्णिनी॥

(५। १९। २-३)

वत्सलहृदय रससिद्ध महाकवि श्रीवाल्मीकिजी लिखते हैं—ध्यानशोकपरायणा श्रीरामकी अनुव्रता—अनुरक्ता श्रीसीताजी सोचती हैं कि मेरे दुःखोंका अन्त नहीं दीख रहा है। श्रीसीता सङ्कल्पोंके घोड़ोंसे युक्त मनोमय रथपर चढ़कर राजराजेश्वर श्रीरामके पास जाती हुई-सी ज्ञात होती हैं—

समीपं राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मनः।
सङ्कल्पहयसंयुक्तैर्यान्तीमिव मनोरथैः॥
शुष्यन्तीं रुदतीमेकां ध्यानशोकपरायणाम्।
दुःखस्यान्तमपश्यन्तीं रामां राममनुव्रताम्॥

(५। १९। ७-८)

इस समय श्रीसीताजी एक महान् धन—तपस्यारूप धनसे सम्पन्न हैं। वे अल्पाहारा हैं। **'अल्पः अतिसूक्ष्मः वायुः आहारो यस्यास्ताम्'** अर्थात् वे वायुभक्षण करके रहती हैं। अथवा सन्ध्याके समय नदी तटपर जो जल ले लेती हैं मात्र उसी जलके आश्रयसे रहती हैं— **'अल्पाहारो तोयमात्राहारामित्यर्थः'**। तपोधना अल्पाहारा श्रीसीताजी उपवास, शोक, चिन्ता और भयसे परिक्षीण कृशकाय तथा दीन हो गयी हैं—

उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च।
परिक्षीणां कृशां दीनामल्पाहारां तपोधनाम्॥

(५। १९। २०)

रावण स्वयंको कालका ग्रास बनानेके लिये श्रीरामकी अनुरक्ता श्रीसीताको वञ्चना वचनोंसे प्रलुब्ध करने लगा—

अनुव्रतां राममतीव मैथिलीं प्रलोभयामास वधाय रावणः॥

(५। १९। २२)

रावण कहता है हे भीरु! मैं तो स्वधर्मका ही पालन करता हूँ। परस्त्रीगमन करना अथवा बलपूर्वक स्त्रियोंका अपहरण कर लेना यह तो हम राक्षसोंका सदा ही अपना धर्म रहा है। यह असन्दिग्ध है, अतः तुम्हें मुझसे भय नहीं करना चाहिये—

स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वदैव न संशयः।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य वा॥

(५। २०। ५)

रावण कहता है—हे सीते! मेरे यहाँ अनेक प्रकारकी उत्तम स्त्रियाँ हैं। देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों, किन्नरों और मनुष्योंकी पुत्रियोंने मुझे अपने पतिके रूपमें वरण किया है। तुम उन सबमें मेरी महिषी हो जाओ। रामका मोह छोड़ दो किंवा, पातिव्रतधर्मके मोहको छोड़ दो—

भव मैथिलि भार्या मे मोहमेतं विसर्जय।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां ममाग्रमहिषी भव॥

(५। २०। १६)

हे सीते! तुम्हारी प्रसन्नताके लिये नाना नगरमालिनी वसुन्धराको अपने पराक्रमसे जीत करके तुम्हारे पिता जनकको उसका स्वामी बना दूँगा—

विजित्य पृथिवीं सर्वां नानानगरमालिनीम्।
जनकाय प्रदास्यामि तव हेतोर्विलासिनि॥

(५। २०। १८)

श्रीरामकी अनुरक्ता सीताको, रावणने इस प्रकार अनेक प्रकारके प्रलोभन दिये। उस रौद्र

राक्षसका लोभमय वचन सुनकर श्रीसीताको महान् व्यथा हुई। उन्होंने दीन स्वरमें धीरे-धीरे अत्यन्त दुःखके साथ उत्तर देना आरम्भ किया—

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रस्य रक्षसः।
आर्ता दीनस्वरा दीनं प्रत्युवाच ततः शनैः॥

(५। २१। १)

तपस्विनी, शुचिस्मिता सीताजी अपने प्राणाराध्य पतिदेव श्रीरामका ध्यान करती हुई, काँपती हुई, रोती हुई तृणको बीचमें रख करके रावणके वचनोंका उत्तर देने लगीं— हे निशाचर! तुम मेरी ओरसे अपना मन हटाकर अपने बाल-बच्चोंसे प्रेम करो—

दुःखार्ता रुदती सीता वेपमाना तपस्विनी।
चिन्तयन्ती वरारोहा पतिमेव पतिव्रता॥
तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता।
निवर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रीयतां मनः॥

(५। २१। २-३)

'**तृणमन्तरतः कृत्वा**' का भाव यह है कि दूसरे पुरुषसे सम्भाषण करते समय पिता अथवा भाई साथमें रहे तो मर्यादा रहती है और बात करनेकी हिम्मत भी बनी रहती है। श्रीसीताजी भूमिजा हैं—भूदेवीसे समुत्पन्न हैं, भूमिपुत्री हैं और तृण भी भूमिसे ही समुत्पन्न है—भूमिज है, एतावता तृण श्रीसीताजीका भाई है, अतः तृणको सामने रखकर रावणसे वार्ता आरम्भ की। इसी प्रकार अरण्यकाण्डमें भी किया है— '**तृणमन्तरतः कृत्वा रावणं प्रत्यभाषत**'। अथवा, करुणामयी श्रीसीताजी जिस व्यक्तिकी ओर दृष्टिपात कर दें वही व्यक्ति धन्य, गुणी, श्लाघ्य, कुलीन, बुद्धिमान्, शूर और पराक्रमी हो जाता है—

स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान्।
स शूरः स च विक्रान्तो यं त्वं देवि निरीक्षसे॥

'**इत्युक्तकटाक्षपातो माभूत्**' (तनिश्लोकी टीकाकार)। अथवा, श्रीसीताजी कहती हैं—राक्षसराज! मैं तुमको श्रीरामजीके सामने इस तिनकेके समान तुच्छ समझती हूँ। अथवा, श्रीसीताजी कहती हैं—हे रावण! इन्द्रपुत्र जयन्तने काकका स्वरूप धारण करके मुझे चोंच मारनेका दुःसाहस किया था, तब श्रीरामचन्द्रजीने उसपर एक तिनकेके बाणका प्रहार किया था, परिणामस्वरूप उसको त्रैलोक्यमें किसीने शरण नहीं दी—

ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका।
फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका॥
काहूँ बैठन कहा न ओही।
राखि को सकइ राम कर द्रोही॥

जब श्रीरामजीके हाथोंमें पड़कर एक तिनका भी इतना शक्तिसम्पन्न हो जाता है, तब उनका बाण कितना शक्तिसम्पन्न होगा, इसका अनुमान तुम्हें लगाना चाहिये। इसीलिये श्रीकिशोरीजीने तिनका दिखाकर बात आरम्भ की। '**तृणमन्तरतः कृत्वा**' के अनेक भाव इसी ग्रन्थमें अरण्यकाण्ड सर्ग ५६ श्लोक-संख्या एककी व्याख्यामें लिखा गया है। पाठकोंको वहाँ देखना चाहिये।

श्रीसीताजीने कहा—हे निशाचर! तुमने जो धर्मकी—स्वधर्मकी व्याख्या की है वह भी ठीक नहीं है, दोषपूर्ण है। इसलिये श्रेष्ठधर्मको विचारो और श्रेष्ठ पुरुषोंके नियमका पालन करो। जैसे तुम्हारी स्त्रियाँ तुम्हारे द्वारा सुरक्षा प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार दूसरोंकी स्त्रियोंकी भी तुम्हें रक्षा करनी चाहिये—

साधु धर्ममवेक्षस्व साधु साधुव्रतं चर।
यथा तव तथान्येषां रक्ष्या दारा निशाचर॥

(५। २१। ७)

हे रावण! मैं ऐश्वर्य और धनके द्वारा प्रलुब्ध नहीं की जा सकती। जैसे प्रभा और सूर्यका नित्य सम्बन्ध है, उसी प्रकार मेरा और मेरे

प्रियतम श्रीरामका नित्य और अभिन्न सम्बन्ध है। जैसे सूर्यकी प्रभाको कोई चाहकर भी बलपूर्वक नहीं अलग कर सकता, उसी प्रकार श्रीरामजीसे मुझे कोई चाहकर भी बलपूर्वक नहीं अलग कर सकता। मैं उनकी अनपायिनी—अविश्लेषा प्रियतमा हूँ—

शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा॥

श्रीरामचन्द्रजीको समस्त धर्मोंके तत्त्वका भलीभाँति परिज्ञान है। यदि तुम अभी संसारमें कुछ दिन और जीना चाहते हो तो श्रीरामजीकी शरणागति स्वीकार कर लो और मुझे लौटा दो तथा शरणागतवत्सल श्रीरामजीको प्रसन्न कर लो—

प्रसादयस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम्।
मां चास्मै प्रयतो भूत्वा निर्यातयितुमर्हसि॥

(५। २१। २१)

हे रावण! तुम यह अभिमान न करो कि मेरे पास बड़े-बड़े बलवान् राक्षस हैं। जिस प्रकार विनतानन्दन गरुड़ बड़े-बड़े सर्पोंका भक्षण कर लेते हैं, उसी प्रकार श्रीरामस्वरूप महान् गरुड़ बलवान् राक्षसरूप बड़े-बड़े सर्पोंको वेगपूर्वक उच्छिन्न कर डालेंगे—

राक्षसेन्द्रमहासर्पान् स रामगरुडो महान्।
उद्धरिष्यति वेगेन वैनतेय इवोरगान्॥

(५। २१। २७)

हे रावण! श्रीराम और लक्ष्मणकी गन्ध पाकर भी तुम उनके सामने ठहर नहीं सकते हो। क्या एक कुत्ता दो-दो शार्दूलों—सिंहोंके सामने टिक सकता है—

नहि गन्धमुपाघ्राय रामलक्ष्मणयोस्त्वया।
शक्यं संदर्शने स्थातुं शुना शार्दूलयोरिव॥

(५। २१। ३१)

श्रीसीताजीकी बात सुनकर क्रुद्ध होकर रावणने कहा—यदि तुमने दो मासमें मेरी बात न मान ली—मुझे पतिके रूपमें स्वीकार न कर लिया तो मेरे रसोइये मेरे प्रातःकालीन जलपानके लिये तुम्हारे शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे—

द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम्।
मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः॥

(५। २२। ९)

जब रावण श्रीसीताजीको इस प्रकार धमका रहा था, तब रावणके साथ आयी हुई स्त्रियोंमें जो देवता और गन्धर्वोंकी कन्याएँ थीं, जिन्हें रावण बलात्कार करके हर लाया था, उन्हें बहुत विषाद हुआ। उनकी आँखें क्रोधयुक्त हो गयीं। उनमेंसे किसीने आँखोंके सङ्केतसे, किसीने ओष्ठोंके इशारेसे, किसीने मुखके सङ्केतसे श्रीसीताजीको आश्वस्त किया कि यह नीच तुम्हारा क्या कर लेगा, इससे बिलकुल मत डरो—

तां भर्त्स्यमानां सम्प्रेक्ष्य राक्षसेन्द्रेण जानकीम्।
देवगन्धर्वकन्यास्ता विषेदुर्विकृतेक्षणाः॥
ओष्ठप्रकारैरपरा नेत्रैर्वक्त्रैस्तथापराः।
सीतामाश्वासयामासुस्तर्जितां तेन रक्षसा॥

(५। २२। १०-११)

श्रीसीताजीने कहा—अरे राक्षस! मैं चक्रवर्ती महाराज श्रीदशरथकी पुत्रवधू हूँ और महान् धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रकी प्रियतमा पत्नी हूँ। अरे पापी! मुझसे इस प्रकार पापकी बातें करते समय तेरी जिह्वा गलकर गिर क्यों नहीं जाती है? अरे दशकण्ठ! मैं अपने तेजसे ही तुम्हें भस्म कर सकती हूँ। केवल मेरे पतिदेव श्रीरामकी आज्ञा न होनेसे और अपनी तपस्याको सुरक्षित रखनेके विचारसे ही मैं तुझे भस्म नहीं कर रही हूँ—

तस्य धर्मात्मनः पत्नी स्नुषा दशरथस्य च।
कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा पाप शीर्यति॥

असन्देशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा॥

(५।२२।१९-२०)

अरे राक्षस! तू तो अपनेको शूर कहता है, तू महात्मा कुबेरका भ्राता है और तेरे पास अपार सेना भी है, फिर भी श्रीरामको छलसे दूर हटाकर—मृगके द्वारा उन्हें मुझसे दूर करके शून्य आश्रमसे तूने मेरा अपहरण क्यों किया? दारचौर्य क्यों किया?

शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च।
अपोह्य रामं कस्माच्चिद् दारचौर्यं त्वया कृतम्॥

(५।२२।२२)

सठ सूनें हरि आनेहि मोही।
अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

श्रीसीताजीकी सत्य वाणी और स्पष्ट वाणी सुनकर रावण क्रोधसे नेत्र रक्त करके सर्पके समान फूत्कार करते हुए श्वास लेने लगा—

अवेक्षमाणो वैदेहीं कोपसंरक्तलोचनः।
उवाच रावणः सीतां भुजङ्ग इव निःश्वसन्॥

(५।२२।३०)

भयङ्कर राक्षसियोंको डराने-धमकानेकी आज्ञा देकर काम और क्रोधसे व्याकुल होकर श्रीजानकीजी-की ओर देखकर दशग्रीव गर्जना करने लगा—

काममन्युपरीतात्मा जानकीं प्रति गर्जत।

(५।२२।३९)

तत्काल मन्दोदरी और धान्यमालिनी रावणकी इन दोनों सहृदय स्त्रियोंने रावणके पास आकर उसको अपने बाहुपाशमें निबद्ध कर लिया और स्नेहसे बोलीं—हे महाराज! आप मेरे साथ रमण कीजिये। इस कान्तिहीन दीन मानुषीसे आपका क्या प्रयोजन है—

उपगम्य ततः क्षिप्रं राक्षसी धान्यमालिनी॥
परिष्वज्य दशग्रीवमिदं वचनमब्रवीत्।
मया क्रीड महाराज सीतया किं तवानया॥
विवर्णया कृपणया मानुष्या राक्षसेश्वर।

(५।२२।३९—४१)

कभी-कभी दुष्टको प्रसन्न करनेके लिये शिष्टको गाली देनी पड़ती है। प्रस्तुत प्रसङ्गमें रावण दुष्टको प्रसन्न करनेके लिये शिष्ट श्रीसीताजीको गाली दे रही हैं। वास्तवमें श्रीकिशोरीजीके प्रति इनके मनमें दुर्भाव नहीं है। इसके पश्चात् काममोहित रावण श्रीसीताको डराकर, धमकाकर अपनी राक्षसियोंको नियुक्त करके अपने भवनमें चला गया—

विहाय सीतां मदनेन मोहितः
स्वमेव वेश्म प्रविवेश रावणः।

रावणके जानेके बाद उसकी राक्षसियाँ क्रोधसे व्याकुल होकर अत्यन्त कठोर शब्दोंके द्वारा श्रीसीताजीको प्रताड़ित करने लगीं। एकजटाने कहा—पुलस्त्यके मानसपुत्र विश्रवा महर्षि हैं, उनके पुत्र शत्रुरावण रावण हैं। इन राक्षसेन्द्रकी तुम्हें भार्या हो जाना चाहिये—

पुलस्त्यस्य तु तेजस्वी महर्षिर्मानसः सुतः।
नाम्ना स विश्रवा नाम प्रजापतिसमप्रभः॥
तस्य पुत्रो विशालाक्षि रावणः शत्रुरावणः।
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि॥

(५।२३।७-८)

फिर हरिजटा, विकटा और दुर्मुखीने साम, दाम, दण्ड और भेद—चारों नीतियोंका आश्रयण लेकर श्रीसीताको समझाया। कमलनयनी श्रीसीताने अश्रुपरिपूर्ण नेत्रोंसे उनकी ओर देखकर कहा—एक मानवी कभी राक्षसपत्नी नहीं हो सकती है। तुमलोग चाहे मुझे खा ही डालो, परन्तु मैं तुम्हारी बात कदापि स्वीकार नहीं कर सकती। मेरे पति दीन हों चाहे राज्यहीन हों; वे ही मेरे पति हैं, गुरु हैं, मेरा उनमें नित्य

अनुराग है और रहेगा, जैसे सुवर्चलाका सूर्यसे अनुराग है—

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः॥
दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः।
तं नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्यं सुवर्चला॥

(५। २४। ८-९)

जैसे महाभागा शची इन्द्रमें अनुरक्त हैं, तपस्विनी अरुन्धती श्रीवसिष्ठमें, रोहिणी चन्द्रमामें, लोपामुद्रा अगस्त्यमें, राजकन्या सुकन्या च्यवनमें, सावित्री सत्यवान्में, श्रीमती कपिलमें, मदयन्ती सौदासमें, केशिनी सगरमें, दमयन्ती नलमें अनुरक्त हैं; उसी प्रकार मैं अपने जीवनसर्वस्व इक्ष्वाकु-कुलनन्दन श्रीराममें अनुरक्त हूँ—

यथा शची महाभागा शक्रं समुपतिष्ठति।
अरुन्धती वसिष्ठं च रोहिणी शशिनं यथा॥
लोपामुद्रा यथागस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा।
सावित्री सत्यवन्तं च कपिलं श्रीमती यथा॥
सौदासं मदयन्तीव केशिनी सगरं यथा।
नैषधं दमयन्तीव भैमी पतिमनुव्रता॥
तथाहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता।

(५। २४। १०—१३)

श्रीसीताजीकी बात सुनकर राक्षसियाँ क्रोधसे मूर्च्छित हो गयीं। अनेकों राक्षसियोंने अनेकों प्रकारसे समझाया। श्रीसीताजी उनकी बात सुनकर अत्यन्त दुःखी होकर वहाँसे उठकर रोती हुई उसी अशोकवृक्षके नीचे आ गयीं, जिसपर श्रीहनुमान्जी बैठे थे। एक भयङ्कर स्वरूपवाली राक्षसी क्रूर स्वरमें बोली—हे सीते! तुम दीन-हीन मनुष्य रामको छोड़कर सबसे प्रिय बोलनेवाले, उदार और त्यागी रावणका आश्रय ले लो—उन्हें अपना पति बना लो—

दक्षिणं त्यागशीलं च सर्वस्य प्रियवादिनम्।
मानुषं कृपणं रामं त्यक्त्वा रावणमाश्रय॥

(५। २४। २४)

एक दूसरी लम्बमान पयोधरा विकटा नामकी राक्षसी कुपित होकर मुक्का तानकर तर्जना करती हुई श्रीसीतासे बोली—

अन्या तु विकटा नाम लम्बमानपयोधरा।
अब्रवीत् कुपिता सीतां मुष्टिमुद्यम्य तर्जती॥

(५। २४। २८)

समस्त राक्षसोंके भर्तार रावणको भर्तार बना लो। अन्यथा हे मैथिलि! मैं तुम्हारा कलेजा निकालकर खा जाऊँगी—

रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम्।
उत्पाट्य वा ते हृदयं भक्षयिष्यामि मैथिलि॥

(५। २४। ३७)

अनेक दुष्ट क्रूर एवं पाषाणहृदया राक्षसियों-की हृदयहीन वाणी सुन करके श्रीसीताजी हा राम! हा लक्ष्मण! हा मेरी श्वश्रू कौसल्ये! हा मातः सुमित्रे! कहकर आँखोंसे आँसू बहाते हुए विलाप करने लगीं—

आर्ता व्यसृजदश्रूणि मैथिली विललाप च॥
हा रामेति च दुःखार्ता हा पुनर्लक्ष्मणेति च।
हा श्वश्रूर्मम कौसल्ये हा सुमित्रेति भामिनी॥

(५। २५। १०-११)

श्रीसीताजी दुःखोंसे ऊबकर मरना चाहती हैं, परन्तु मरनेका भी कोई उपाय नहीं सूझता है तब कहती हैं कि पण्डितोंकी यह लोकोक्ति ठीक ही है कि समय जबतक नहीं आ जाता तबतक मृत्यु नहीं आ सकती, चाहे स्त्री हो या पुरुष—

लोकप्रवादः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः।
अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा॥

(५। २५। १२)

श्रीसीताजी कहती हैं—हे राक्षसियो! लोक-

निन्दित राक्षस रावणको मैं वाम चरणसे भी स्पर्श नहीं कर सकती, फिर उसको चाहनेकी तो चर्चा ही व्यर्थ है—

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्॥

(५। २६। ८)

जिन महाबली श्रीरामने जनस्थानमें अकेले ही—बिना किसीकी सहायताके ही चौदह हजार राक्षसोंको मार डाला, वे मेरे प्रियतम मेरे पास क्यों नहीं आ रहे हैं?

राक्षसानां जनस्थाने सहस्राणि चतुर्दश।
एकेनैव निरस्तानि स मां किं नाभिपद्यते॥

(५। २६। १२)

जिन्होंने राक्षसपुङ्गव विराधका दण्डकारण्यमें समराङ्गणमें वध कर डाला, हा हन्त! वे इस समय मेरी रक्षा करनेके लिये क्यों नहीं आ रहे हैं—

विराधो दण्डकारण्ये येन राक्षसपुङ्गवः।
रणे रामेण निहतः स मां किं नाभिपद्यते॥

(५। २६। १४)

श्रीसीताजीके अनेक प्रकारके दुःखपूर्ण वचनोंको सुन करके राक्षसियाँ क्रोधसे बेहोश-सी हो गयीं और कहने लगीं—हे पाप विनिश्चये! हे अनार्ये! हे सीते! ये सब राक्षसियाँ आज और अभी तुझे मारकर तेरा मांस सुखपूर्वक भक्षण करेंगी—

अद्येदानीं तवानार्ये सीते पापविनिश्चये।
राक्षस्यो भक्षयिष्यन्ति मांसमेतद् यथासुखम्॥

(५। २७। ३)

एक राक्षसी थी, जिसका नाम त्रिजटा था—'**तिस्राजटा यस्याः सा त्रिजटा**'। उसके मस्तकपर तीन जटाएँ थीं। श्रीगोविन्दराजजी कहते हैं कि यह विभीषणकी पुत्री थी। परमपूज्य काशीनिवासी पं० श्रीरामकुमारजी रामायणीका भाव है कि इसके मस्तिष्कमें ज्ञान, कर्म, उपासनाकी तीन जटाएँ थीं—

त्रिजटा नाम राच्छसी एका।
राम चरन रति निपुन बिबेका॥

वह वृद्धा थी—ज्ञानवृद्धा थी। वह प्रबुद्धा थी—तुरन्त सो करके उठी थी अथवा मोह-निद्रासे उठ गयी थी, उसका मोह नष्ट हो गया था। अथवा, प्रबुद्धा थी, अर्थात् भक्तिमती थी। उसने राक्षसियोंसे कहा—अरी नीच निशाचरियो! राजर्षि जनककी प्राणप्यारी पुत्री और चक्रवर्त्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजीकी पुत्रवधू श्रीसीताको तुम लोग नहीं खा सकोगी। अपने-आपको ही खा जाओ—

राक्षसी त्रिजटा वृद्धा प्रबुद्धा वाक्यमब्रवीत्॥
आत्मानं खादतानार्या न सीतां भक्षयिष्यथ।
जनकस्य सुतामिष्टां स्नुषां दशरथस्य च॥

(५। २७। ४-५)

आज मैंने अत्यन्त दारुण और रोमहर्षण स्वप्न देखा है। स्वप्न तो बहुत बड़ा है, परन्तु उसका संक्षेपमें फल यह है कि श्रीसीताके पति श्रीरामचन्द्रजीका तो अभ्युदय होगा और रावणादि राक्षसोंका विनाश हो जायगा—

स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः।
राक्षसानामभावाय भर्तुरस्या भवाय च॥

(५। २७। ६)

श्रीत्रिजटाकी बात सुन करके राक्षसियोंके क्रोधका नशा उतर गया, अब तो वे सब अत्यन्त भयभीत हो गयीं और त्रिजटासे बार-बार प्रार्थनापूर्वक पूछने लगीं—क्या स्वप्न देखा है? हमें विस्तारपूर्वक बतायें। त्रिजटाने कहा—रावण गधेपर चढ़कर दक्षिण दिशाकी ओर जा रहा था—'**गर्दभेन ययौ शीघ्रं दक्षिणां दिशिमास्थितः**'। शिशुमारपर चढ़कर मेघनाद और ऊँटपर चढ़कर कुम्भकर्ण दक्षिण दिशामें गया था। राक्षसोंमें केवल एक विभीषणजीको ही मैंने देखा कि वे श्वेतच्छत्र थे, श्वेत वस्त्र और

माला धारण किये थे। श्वेत चन्दन और अङ्गराग लगाये थे—

एकस्तत्र मया दृष्टः श्वेतच्छत्रो विभीषणः॥
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्नृत्तगीतैरलङ्कृतः ।

(५। २७। ३२-३३)

मेरे स्वप्नका तात्पर्य यह है कि सकुटुम्ब रावणका विनाश शीघ्र ही हो जायगा तथा विभीषणजी लङ्काके राजा हो जायँगे। भगवान् श्रीराम श्रीसीताजीकी प्राप्ति कर लेंगे। मैंने यह भी स्वप्न देखा है कि रावणके द्वारा सुरक्षित नगरी लङ्काको श्रीरामके दूतके रूपमें आये एक वेगशाली वानरने जलाकर भस्म कर दिया है—

लङ्का दृष्टा मया स्वप्ने रावणेनाभिरक्षिता।
दग्धा रामस्य दूतेन वानरेण तरस्विना॥

(५। २७। ३८)

सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना॥
सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥
एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥
यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी॥
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं॥
जहँ तहँ गईं सकल तब सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर पोच॥

(श्रीरामचरितमानस ५। ११। २—८, दो० ११)

त्रिजटाने कहा—श्रीरामजी शीघ्र ही श्रीसीताजीकी प्राप्ति कर लेंगे। जिन श्रीसीताजीने श्रीरामजीका साथ वनवासके समय भी नहीं छोड़ा, उन अपनी प्रियतमा सीताकी भर्त्सना एवं उनका डाँटना उनके प्रियतम श्रीरामजी कभी सहन नहीं कर सकेंगे—

प्रियां बहुमतां भार्यां वनवासमनुव्रताम्।
भर्त्सितां तर्जितां वापि नानुमंस्यति राघवः॥

(५। २७। ४२)

अब तो राक्षसियाँ बहुत डर गयीं कि हमने तो इनको गालियाँ दी हैं, इनका अपमान किया है, इनको खानेके लिये कहा है, हाय-हाय अब हमारा क्या होगा? हमारे प्राण कैसे बचेंगे? विभीषणके राजा होनेपर हमारी कौन रक्षा करेगा? राक्षसियोंको इस प्रकार दुःखी देखकर त्रिजटाने कहा—हे निशाचरियो! यद्यपि तुम लोगोंने बहुत बड़ा अपराध किया है, जघन्य कर्म किया है; परन्तु श्रीसीताकी शरणमें जाकर इन दयामयीसे ही अभयकी याचना करो; क्योंकि श्रीराघवेन्द्र रामकी ओरसे राक्षसोंके लिये घोर भय सम्प्राप्त है—

भर्त्सितामपि याचध्वं राक्षस्यः किं विवक्षया।
राघवाद्धि भयं घोरं राक्षसानामुपस्थितम्॥

(५। २७। ४५)

हे राक्षसियो! करुणामयी, रामप्राणप्रिया श्रीसीताजीमें भी श्रीरामजीके समान ही शरणागत वत्सलता है। ये भी परम शरण्य हैं, क्योंकि ये श्रीरामकी सहधर्मिणी हैं। श्रीरामजीने श्रीविभीषणजीको अपना लिया है, उसी प्रकार कृपामयी, क्षमाशीला मिथिलेशनन्दिनी श्रीजानकीजी भी मात्र प्रणाम करने मात्रसे ही प्रसन्न हो जायँगी। सम्प्रति करुणामयी श्रीसीता ही इस महान् भयसे तुम्हारी रक्षा करनेमें समर्थ हैं—

प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा।
अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात्॥

(५। २७। ४६)

त्रिजटाने और भी बहुत-से लक्षणोंका वर्णन किया और विश्वास दिला दिया कि श्रीरामजीकी विजय निश्चित है।

श्रीसीताजीने उन शरणागत राक्षसियोंको, कष्ट देनेवाली राक्षसियोंको, मारकर खा जानेकी इच्छावाली राक्षसियोंको, जघन्य कर्म करनेवाली राक्षसियोंको श्रीरामजीकी निन्दा करनेवाली राक्षसियोंको निर्भय कर दिया कि मैं तुम्हारी अवश्य रक्षा करूँगी—

ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता।
अवोचद् यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः॥

(५। २७। ५४)

सब राक्षसियों एवं त्रिजटाके जानेके बाद श्रीसीताजी रावणका वचन स्मरण करके अतिशय दुःखी हो गयीं। श्रीसीता विलाप करती हैं—हे प्राणप्रियतम! आपको नहीं ज्ञात है कि मैं राक्षसोंके हाथसे मारी जानेवाली हूँ—'**वध्यां न मां वेत्सि हि राक्षसानाम्**'। मैं राक्षसोंके हाथसे मरनेके पूर्व स्वयं ही मर जाना चाहती हूँ; परन्तु इस राक्षसके यहाँ मुझे न कोई विष देनेवाला है और न शस्त्र—

सञ्जीवितं क्षिप्रमहं त्यजेयं
विषेण शस्त्रेण शितेन वापि।
विषस्य दाता न तु मेऽस्ति कश्चि-
च्छस्त्रस्य वा वेश्मनि राक्षसस्य॥

(५। २८। १६)

इस प्रकार श्रीसीताजी अनेक प्रकारसे मरनेका उपाय सोचती हैं; परन्तु कोई उपाय सफल नहीं होता है। शोकाभितप्ता श्रीसीताने अपनी वेणीको पकड़कर निश्चय किया कि मैं इस चोटीसे फाँसी लगाकर—गला बाँधकर कालके भी नियन्ता यमराजके पास शीघ्र पहुँच जाऊँगी—

शोकाभितप्ता बहुधा विचिन्त्य
सीताथ वेणीग्रथनं गृहीत्वा।
उद्बध्य वेण्युद्ग्रथनेन शीघ्र-
महं गमिष्यामि यमस्य मूलम्॥

(५। २८। १७)

इस प्रकार वेणीके द्वारा गला बाँधकर प्राण देनेके लिये प्रस्तुत श्रीसीताके शुभ सूचक अङ्ग फड़कने लगे, अन्य शुभ शकुन होने लगे। अनेक शुभ शकुन अशोकवृक्षके नीचे प्रकट होकर व्यथितहृदया, अनिन्दिता, दीनचित्ता, शुभ लक्षणा श्रीसीताकी सेवा करने लगे, अर्थात् अनेक प्रकारके शुभ शकुन होने लगे, जैसे श्रीमान् मनुष्यके पास सेवा करनेवाले लोग स्वयं पहुँच जाते हैं—

तथागतां तां व्यथितामनिन्दितां
व्यतीतहर्षां परिदीनमानसाम्।
शुभां निमित्तानि शुभानि भेजिरे
नरं श्रिया जुष्टमिवोपसेविनः॥

(५। २९। १)

पराक्रमी श्रीहनुमान्जीने भी श्रीसीताजीका विलाप, त्रिजटाका स्वप्न और राक्षसियोंकी भर्त्सना, तर्जना सब तत्त्वतः—ध्यानपूर्वक श्रवण कर ली—

हनुमानपि विक्रान्तः सर्वं शुश्राव तत्त्वतः।
सीतायास्त्रिजटायाश्च राक्षसीनां च तर्जितम्॥

(५। ३०। १)

श्रीहनुमान्जीने सोचा—यद्यपि मैंने श्रीसीताजीका पता लगा लिया है, रावणका नगर भी देख लिया है, परन्तु फिर भी श्रीसीताजीको, जो शोकके कारण चेतनाशून्य हो रही हैं, उन सती—साध्वी सीताको आश्वासन दिये बिना यदि चला जाऊँगा तो अनुचित होगा—

यदि ह्यहं सतीमेनां शोकोपहतचेतनाम्।
अनाश्वास्य गमिष्यामि दोषवद् गमनं भवेत्॥

(५। ३०। ८)

यदि मैं इन्हें सान्त्वना दिये बिना चला जाऊँगा तो अपने परित्राण—रक्षाका कोई उपाय

न देख करके यशस्विनी राजकिशोरी श्रीसीता प्राणान्त कर देंगी—

गते हि मयि तत्रेयं राजपुत्री यशस्विनी।
परित्राणमपश्यन्ती जानकी जीवितं त्यजेत्॥

(५। ३०। ९)

यदि मैं इनसे मिले बिना चला जाऊँ तो सीता-दर्शनलालस श्रीरामजीके पूछनेपर कि मेरे लिये क्या सन्देश भेजा है? तो मैं क्या उत्तर दूँगा? अतः श्रीसीताजीका दर्शन करके, उन्हें आश्वस्त करके, उनसे सन्देश लेकर जाना ही उचित होगा—

रामस्तु यदि पृच्छेन्मां किं मां सीताब्रवीद् वचः।
किमहं तं प्रतिब्रूयामसम्भाष्य सुमध्यमाम्॥

(५। ३०। १३)

अब प्रश्न है कि मैं इनसे किस भाषामें बात करूँ? यदि मैं द्विजातिकी भाँति इनसे संस्कृतमें बात करूँगा तो श्रीसीताजी मुझे रावण मानकर भयभीता हो जायेंगी—

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥

(५। ३०। १८)

इस स्थितिमें मुझे कोई सार्थक मानुष भाषाका प्रयोग करना चाहिये, अन्यथा इन सती-साध्वी सीताको मैं भलीभाँति आश्वस्त नहीं कर सकता हूँ—

अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता॥

(५। ३०। १९)

यहाँपर मानुष भाषाका अर्थ है—जिस भाषाको अयोध्याके आसपासकी सामान्य जनता बोलती है। उसी भाषाको देवी श्रीसीताजी जानती हैं। **'अत्र वाक्यस्य मानुषत्वं कोसलदेशवर्ति मनुष्यसम्बन्धित्वं विवक्षितम् तादृक् वाक्यस्यैव देवी परिचितत्वात्'**। (श्रीगोविन्दराजजी) इस प्रकार बहुत कुछ सोचने-विचारनेके पश्चात् श्रीहनुमान्‌जीने अवधी भाषामें श्रीरामकथा आरम्भ की। राजा दशरथके पुत्र श्रीराम अपनी पत्नी और भाईके साथ वनमें आ गये। वनमें रावणने श्रीरामकी पत्नी सीताका अपहरण कर लिया। श्रीरामजीने वानरेन्द्र सुग्रीवजीसे मित्रता करके उन्हें किष्किन्धाका राज्य दे दिया। वानरेन्द्रकी आज्ञासे सम्पूर्ण दिशाओंमें लाखों वानर श्रीसीताजीकी खोजमें निकले हैं। उन्हींमें मैं भी एक हूँ। सम्पातिके वचनसे चार सौ कोसके विस्तृत समुद्रको वेगपूर्वक लाँघकर श्रीसीताकी खोजके लिये यहाँ आया हूँ। श्रीरामजीके मुखसे मैंने श्रीसीताजीका जैसा रूप, जैसा रंग और जैसे लक्षण सुने थे, उसीके अनुरूप यहाँ पाया है। इतना कहकर श्रीहनुमान्‌जी चुप हो गये।

अहं सम्पातिवचनाच्छतयोजनमायतम्॥
तस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः समुद्रं वेगवान् प्लुतः।
यथारूपां यथावर्णां यथालक्ष्मवतीं च ताम्॥
अश्रौषं राघवस्याहं सेयमासादिता मया।
विररामैवमुक्त्वा स वाचं वानरपुङ्गवः॥

(५। ३१। १४—१६)

श्रीरामकथा श्रवण करके श्रीसीताजी विभोर हो गयीं। वे सर्वात्मना श्रीठाकुरजीका स्मरण करती हुई समस्त दिशाओंमें, ऊपर-नीचे इतस्ततः दृष्टि दौड़ाकर खोजने लगीं कि इतनी मङ्गलमयी मधुर रामकथा किसने सुनायी है? इस रामकथाका गायक कौन है?

धन्य हैं श्रीहनुमान्‌जी! जिनको खोजनेके लिये—जिनको देखनेके लिये नित्य किशोरी करुणामयी श्रीसीताजी उत्सुक हैं। आज श्रीहनुमान्‌जीका कथा सुनाना सफल हो गया। इस कथाने श्रीहनुमान्‌जीको श्रीजनकराजदुलारीके कृपाकटाक्षकी उपलब्धि करा दी है। वास्तवमें श्रीरामकथासे न केवल चतुष्टय पुरुषार्थकी उपलब्धि

होती है अपितु जीवनका चरम फल भगवत्पदप्रेम भी प्राप्त हो जाता है। भगवत्पदप्राप्ति भी हो जाती है। धन्य हैं श्रीहनुमान्! धन्या है उनकी कथा! और धन्य है उनका सौभाग्य! श्रीसीताजी अचिन्त्य बुद्धिसम्पन्न, वानरेन्द्र सुग्रीवके सचिव पवननन्दन श्रीहनुमान्जीको उदयाचलपर विराजमान सूर्यके समान देखा—

निशम्य सीता वचनं कपेश्च
दिशश्च सर्वाः प्रदिशश्च वीक्ष्य।
स्वयं प्रहर्षं परमं जगाम
सर्वात्मना राममनुस्मरन्ती॥
सा तिर्यगूर्ध्वं च तथा ह्यधस्ता-
न्निरीक्षमाणा तमचिन्त्यबुद्धिम्।
ददर्श पिङ्गाधिपतेरमात्यं
वातात्मजं सूर्यमिवोदयस्थम्॥

(५। ३१। १८-१९)

रामचंद्र गुन बरनैं लागा।
सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई।
आदिहु तें सब कथा सुनाई॥

श्रीहनुमान्जीको देखकर श्रीसीताजीने समझा कि यह स्वप्न है। स्वप्नमें वानरको देखना शास्त्रोंमें निषिद्ध बताया है। श्रीसीता दुःस्वप्ननाशके लिये प्रार्थना करती हैं—मेरे आराध्य श्रीरामचन्द्र तथा श्रीलक्ष्मणका और मेरे पिताश्री जनकजीका मङ्गल हो—

स्वप्नो मयायं विकृतोऽद्य दृष्टः
शाखामृगः शास्त्रगणैर्निषिद्धः।
स्वस्त्यस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
तथा पितुर्मे जनकस्य राज्ञः॥

(५। ३२। ९)

मूँगेके समान लाल मुखवाले, विनीतवेष वायुनन्दन श्रीहनुमान्जीने अशोकवृक्षसे नीचे उतरकर बद्धाञ्जलि होकर अत्यन्त दैन्यपूर्वक श्रीसीताजीके निकट आकर मधुर वाणीमें पूछा—हे देवि! हे अनिन्दिते! हे पद्मपलाशाक्षि! आप यहाँ क्यों खड़ी हैं? आप कौन हैं? आपकी करुणामयी आँखोंसे शोकजाश्रु क्यों निर्झरित हो रहे हैं—

किमर्थं तव नेत्राभ्यां वारि स्रवति शोकजम्।

(५। ३३। ४)

श्रीसीताने हनुमान्जीके वचनोंका उत्तर देते हुए कहा—भूमण्डलके श्रेष्ठ राजाओंमें मुख्य, जगत्प्रसिद्ध, शत्रुओंकी सेनाके प्रणाश करनेमें कुशल चक्रवर्त्ती नरेन्द्र श्रीदशरथकी मैं पुत्रवधू हूँ, महात्मा विदेहराज श्रीजनककी पुत्री हूँ और परम धीमान् श्रीमान् श्रीरामजीकी पत्नी हूँ। मेरा नाम सीता है—

पृथिव्यां राजसिंहानां मुख्यस्य विदितात्मनः।
स्नुषा दशरथस्याहं शत्रुसैन्यप्रणाशिनः॥
दुहिता जनकस्याहं वैदेहस्य महात्मनः।
सीतेति नाम्ना चोक्ताहं भार्या रामस्य धीमतः॥

(५। ३३। १५-१६)

इसके अनन्तर श्रीसीताजीने श्रीरामवनगमनसे लेकर आजतकका समस्त चरित्र सुना दिया। श्रीहनुमान्जीने कहा—हे देवि! मैं श्रीरामचन्द्रजीका दूत हूँ। आपके लिये उनका सन्देश लेकर आया हूँ। श्रीरामजी स्वयं कुशली हैं और उन्होंने आपका कुशल-समाचार पूछा है—

अहं रामस्य सन्देशाद् देवि दूतस्तवागतः।
वैदेहि कुशली रामः स त्वां कौशलमब्रवीत्॥

(५। ३४। २)

राम दूत मैं मातु जानकी।
सत्य सपथ करुनानिधान की॥

आपके पति श्रीरामजीके अनुचर तथा प्रियभ्राता महान् तेजस्वी श्रीलक्ष्मणजीने भी शोक-सन्तप्त होकर आपके श्रीचरणोंमें मस्तक रखकर अभिवादन कहा है—

लक्ष्मणश्च महातेजा भर्तुस्तेऽनुचरः प्रियः।

कृतवाञ्छोकसन्तप्तः शिरसा तेऽभिवादनम्॥

(५। ३४। ४)

श्रीराम-लक्ष्मणका समाचार एवं सन्देश सुनकर श्रीजनकनन्दिनीके समग्र अङ्गोंमें हर्षजन्य रोमाञ्च हो गया और वे बोलीं—

प्रतिसंहृष्टसर्वाङ्गी हनूमन्तमथाब्रवीत्॥

(५। ३४। ५)

श्रीसीताजीने इतना बड़ा धोखा खाया है कि उनको सहसा विश्वास नहीं होता है। श्रीहनुमान्‌जीके ऊपर विश्वास करके भी पुनः अविश्वास हो गया। श्रीसीताजी कहती हैं—यदि तुम सत्य ही श्रीरामदूत हो तो तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुमसे श्रीरामजीकी बातें पूछती हूँ, क्योंकि श्रीरामकथा मुझे बहुत प्रिय है—

यदि रामस्य दूतस्त्वमागतो भद्रमस्तु ते।
पृच्छामि त्वां हरिश्रेष्ठ प्रिया रामकथा हि मे॥

(५। ३४। १८)

हे वानर! मेरे प्रियतम श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका वर्णन करो। हे सौम्य! तुम श्रीरामकथासे मेरे चित्तका अपहरण कर लेते हो—

गुणान् रामस्य कथय प्रियस्य मम वानर।
चित्तं हरसि मे सौम्य नदीकूलं यथा रयः॥

(५। ३४। १९)

श्रीविदेहनन्दिनी सोचती हैं—अहो! यह स्वप्न कितना सुखद है? यदि मैं स्वप्नमें भी वीरश्रेष्ठ श्रीराम-लक्ष्मणको देख लिया करूँ तो मुझे इतना कष्ट न हो, परन्तु स्वप्न भी तो मुझसे डाह करता है—

स्वप्नेऽपि यद्यहं वीरं राघवं सहलक्ष्मणम्।
पश्येयं नावसीदेयं स्वप्नोऽपि मम मत्सरी॥

(५। ३४। २१)

श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे मातः! श्रीरामजीके मित्र सुग्रीव नामके वानर हैं। सुग्रीव और श्रीलक्ष्मणके सहित श्रीरामजी नित्य आपका स्मरण करते हैं। हे मातः! इन राक्षसियोंके वशमें पड़कर भी जैसा मैंने अभी इस वृक्षसे देखा है, आप अबतक जीवित हैं, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। अब आप शीघ्रातिशीघ्र महारथी श्रीराम और श्रीलक्ष्मणका दर्शन करेंगी—

नित्यं स्मरति ते रामः ससुग्रीवः सलक्ष्मणः॥
दिष्ट्या जीवसि वैदेहि राक्षसीवशमागता।
नचिराद् द्रक्ष्यसे रामं लक्ष्मणं च महारथम्॥

(५। ३४। ३६-३७)

हे मातः! मैं सुग्रीवका सचिव हूँ, मेरा नाम हनुमान् है। मैंने आपका दर्शन करनेके लिये समुद्रका उल्लङ्घन करके दुष्ट रावणके मस्तकपर चरण रखकर लङ्कामें प्रवेश किया है—

अहं सुग्रीवसचिवो हनूमान्नाम वानरः॥
प्रविष्टो नगरीं लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम्।
कृत्वा मूर्ध्नि पदन्यासं रावणस्य दुरात्मनः॥

(५। ३४। ३८-३९)

हे देवि! आप मेरी बातपर विश्वास करें। आप मुझे जैसा समझ रही हैं, मैं वैसा नहीं हूँ। आप मेरे प्रति अविश्वास न करें—

नाहमस्मि तथा देवि यथा मामवगच्छसि।
विशङ्का त्यज्यतामेषा श्रद्धत्स्व वदतो मम॥

(५। ३४। ४०)

श्रीजानकीजीने शान्तिपूर्वक मधुर वाणीमें पूछा—हे वानरश्रेष्ठ! तुम्हारा श्रीरामजीसे सम्पर्क कहाँ हुआ? तुम लक्ष्मणको कैसे जानते हो? यह नर-वानरोंका अनोखा समागम किस प्रकार हुआ—

क्व ते रामेण संसर्गः कथं जानासि लक्ष्मणम्।
वानराणां नराणां च कथमासीत्समागमः॥

(५। ३५। २)

नर बानरहि संग कहु कैसें।
......................................॥

श्रीरामलक्ष्मणके जो चिह्न हैं, उनका भी

वर्णन करो। उनकी आकृति, उनका रूप, उनकी भुजाएँ और जाँघोंका भी वर्णन करो—

कीदृशं तस्य संस्थानं रूपं तस्य च कीदृशम्।
कथमूरू कथं बाहू लक्ष्मणस्य च शंस मे॥

(५।३५।४)

भगवान्‌के दिव्य देशमें दर्शन करने तो सभी जाते हैं; परन्तु भक्तके दर्शन करनेकी दृष्टिमें और सामान्यजनके दर्शन करनेकी दृष्टिमें अवनि-अम्बरका अन्तर होता है। सामान्य व्यक्ति मन्दिरके निर्माणकी चकाचौंधमें भगवान्‌को भूल जाता है। वह देखता है मन्दिर बहुत अच्छा है, साज-सज्जा अच्छी है, झाड़फानूस अच्छे हैं, पुजारीजी बहुत अच्छे हैं; परन्तु भक्त तन्मय होकर ठाकुरजीके दिव्य विग्रहका दर्शन करता है। वह अपनी भावमयी दृष्टिसे श्रीरामजीकी प्रसन्नताका अनुभव करता है। कभी यह भी सोचता है कि आज भगवान्‌का मुखमण्डल उदास है, सेवामें कोई कमी रह गयी है, मेरी भावना दोषपूर्ण है इत्यादि। वह भगवान्‌के दिव्य नेत्रोंका, भगवान्‌के कण्ठका, भगवान्‌की नासिकाका, भगवान्‌के एक-एक अङ्गका सूक्ष्म दृष्टिसे दर्शन करता है; यह भक्तकी दृष्टि है।

श्रीसीताजी पूछती हैं—हे हनुमान्! तुम भगवान्‌के सेवक हो तो उनका पाद-संवाहन अवश्य ही करते होगे? उनके श्रीचरणोंमें कौन-कौन-सी रेखाएँ हैं। उनकी नखमणिचन्द्रिका कैसी है? उनका पार्ष्णिप्रदेश कैसा है? श्रीचरणोंके तलवे कैसे हैं? उनकी मनोहारिणी भुजाएँ कैसी हैं? उनका वक्ष:स्थल कितना विशाल है? उनके किन-किन अङ्गोंमें तिल हैं? उनका कटिप्रदेश कैसा है? उनका ऊरुप्रदेश कैसा है? उनकी नासिका कैसी है? उनके अधरोष्ठ कैसे हैं? उनकी दन्त-पंक्ति कैसी है? उनकी चिबुक कैसी है? उनका कपोल-प्रदेश कैसा है? उनके श्रवण कैसे हैं? उनके नेत्र कैसे हैं? सबका भलीभाँति निरूपण करो।

श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे जनकाधिराजतनये! रघुनन्दनके विशाल नेत्र उत्फुल्ल कमलदलके समान तापापहारक हैं। उनका मुख राकेश—पूर्ण चन्द्रमाके समान आह्लादक है। हे मात:! वे तो जन्मकालसे ही रूपवान् और उदार हैं—

राम: कमलपत्राक्ष: पूर्णचन्द्रनिभानन:।
रूपदाक्षिण्यसम्पन्न: प्रसूतो जनकात्मजे॥

(५।३५।८)

इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जीने ठाकुरजीके विविध अङ्गोंका बड़ा सुशोभन वर्णन किया है। आगे कहते हैं—श्रीलक्ष्मणजीके मङ्गलमय विग्रहकी छवि सुवर्ण गौर है और महायशस्वी श्रीरामका दिव्य श्रीअङ्ग श्यामल है। हे मात:! आपके दर्शनके लिये दोनोंके मनमें तीव्र लालसा है—

स सुवर्णच्छवि: श्रीमान् राम: श्यामो महायशा:।
तावुभौ नरशार्दूलौ त्वद्दर्शनकृतोत्सवौ॥

(५।३५।२३)

श्रीसीताजीने श्रीहनुमान्‌की विकट परीक्षा ली है। इस प्रकारकी परीक्षा शायद ही किसीकी किसीने ली हो। जो गम्भीर भक्त नहीं होगा वह इस प्रश्नको सुनकर ही घबरा जायगा। परन्तु धन्य हैं श्रीहनुमान्‌जी! उन्होंने अनुद्विग्नभावसे विचित्र वर्णन किया है। उस वर्णनको सुन करके श्रीजानकीजीको पूर्ण विश्वास हो गया। उनको अलौकिक आनन्दकी प्राप्ति हुई। उनकी सारी शङ्का निरस्त हो गयी, उनकी आँखोंसे आनन्दाश्रु बहने लगे—

अतुलं च गता हर्षं प्रहर्षेण तु जानकी।
नेत्राभ्यां वक्रपक्ष्माभ्यां मुमोचानन्दजं जलम्॥

(५।३५।८६)

श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे महाभागे! मैं परम

धीमान् श्रीमान् रामका दूत हूँ। हे देवि! यह श्रीरामनामाङ्कित मुद्रिका है, इसे आप देख लें—

वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः।
रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम्॥

(५। ३६। २)

यह मुद्रिका मातु मैं आनी।
दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥

मुद्रिकाको पाकर श्रीसीताजी इतनी प्रसन्न हुईं मानो साक्षात् श्रीरामजी ही मिल गये हों—

गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषितम्।
भर्तारमिव सम्प्राप्तं जानकी मुदिताभवत्॥

(५। ३६। ४)

मुद्रिका हाथमें लेकर प्रसन्नता तो हुई; परन्तु बादमें कहती हैं कि अरी मुद्रिके! अब स्त्रियोंका कौन विश्वास करेगा?

'री मुदरी अब तियन की को करिहै परतीति॥
श्रीपुर में वन मध्य हौं तू मग करी अनीति।'

(श्रीकेशवदास)

राज्यलक्ष्मीने श्रीअयोध्यामें छोड़ दिया। मैंने भी दण्डकारण्यमें छोड़ दिया और तूने अब स्वामीका परित्याग कर दिया। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने श्रीसीताजी और मुदरीका श्रीगीतावलीरामायणमें बहुत भावपूर्ण पारस्परिक संवाद लिखा है।

श्रीसीताजीने कहा—हे हनुमान्! तुम अत्यन्त पराक्रमी, समर्थ और बुद्धिमान् हो। हे वानर-शिरोमणे! मैं तुम्हें सामान्य वानर नहीं मानती हूँ; क्योंकि रावण-जैसे भयावह राक्षससे भी न तो तुम्हें भय है और न सम्भ्रम—घबराहट—

न हि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ।
यस्य ते नास्ति संत्रासो रावणादपि सम्भ्रमः॥

(५। ३६। ९)

श्रीसीताजीने कहा—हे वानरश्रेष्ठ! पराधीनताके कारण मैं श्रीरामसे अलग हो गयी हूँ। इसलिये श्रीरामजीका मुझसे स्नेह समाप्त तो नहीं हो गया है? क्या वे मुझे कभी इस सङ्कटसे मुक्त करेंगे?

कच्चिन्न विगतस्नेहो विवासान्मयि राघवः।
कच्चिन्मां व्यसनादस्मान्मोक्षयिष्यति राघवः॥

(५। ३६। २०)

श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे मातः! श्रीरामजी सर्वदा आपका ही चिन्तन करते रहते हैं, एतावता उन्हें रात्रिमें निद्रा भी नहीं आती है। यदि कभी तनिक-सी नींद आ भी जाती है तो मधुर वाणी-से हा सीते! हा सीते! कहते हुए शीघ्र ही उठकर बैठ जाते हैं—

अनिद्रः सततं रामः सुप्तोऽपि च नरोत्तमः।
सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन् प्रतिबुध्यते॥

(५। ३६। ४४)

श्रीसीताजीने कहा—तुम्हारा यह वचन मुझे विष-सम्पृक्त अमृतके समान लगा कि श्रीरामजी मेरे लिये शोकग्रस्त रहते हैं। हा हन्त! मैं कितनी मन्दभाग्या हूँ कि मेरे लिये मेरे नाथको इतना कष्ट सहना पड़ रहा है। हे हनुमान्! श्रीरामजी तो प्रचण्ड दिवाकरके तुल्य हैं और उनके तीक्ष्ण बाणसमूह ही उनकी किरणें हैं, वे उन किरणोंके द्वारा शत्रुभूत राक्षसरूप जलका परिशोषण कब करेंगे?

शरजालांशुमाञ्छूरः कपे रामदिवाकरः।
शत्रुरक्षोमयं तोयमुपशोषं नयिष्यति॥

(५। ३७। १८)

हा हन्त! मुझे अब श्रीरामजीके दर्शन कब होंगे? उनके श्यामल, मृदुल, दिव्य श्रीअङ्गका दर्शन करके मेरे विरह-सन्तप्त नेत्र कब शीतल होंगे? यह कहते-कहते श्रीसीताके मुखपर आँसुओंकी धारा बहने लगी—

कबहुँ नयन मम सीतल ताता।

होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता॥
बचनु न आव नयन भरे बारी।
अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥

श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे मातः! आप आज ही श्रीलक्ष्मणके साथ भगवान् श्रीरामका दर्शन कर सकती हैं—

द्रक्ष्यस्यद्यैव वैदेहि राघवं सहलक्ष्मणम्।

(५। ३७। २४)

हे सुशोभन स्वभाववाली मातः! आप मेरी पीठपर बैठिये। आपको पीठपर बिठाकर मैं इस विशाल समुद्रको लाँघ जाऊँगा। हे मातः! रावणके सहित समस्त लङ्काको भी वहन करनेकी मुझमें शक्ति है—

त्वां तु पृष्ठगतां कृत्वा संतरिष्यामि सागरम्।
शक्तिरस्ति हि मे वोढुं लङ्कामपि सरावणाम्॥

(५। ३७। २२)

श्रीहनुमान्‌जीके इस अद्भुत वचनको सुनकर श्रीसीताने कहा—हे हनुमान्! तुम इतने दूरके मार्गपर मुझे कैसे ले चलना चाहते हो? मैं तो तुम्हारे इस दुःसाहसपूर्ण वचनको कपि-चाञ्चल्य ही समझती हूँ। हे वानरश्रेष्ठ! तुम्हारा शरीर तो बहुत छोटा है फिर तुम मेरे स्वामी मानवेन्द्र श्रीरामके पास मुझे ले जानेकी कैसे इच्छा करते हो?

हनूमन्दूरमध्वानं कथं मां नेतुमिच्छसि।
तदेव खलु ते मन्ये कपित्वं हरियूथप॥
कथं चाल्पशरीरस्त्वं मामितो नेतुमिच्छसि।
सकाशं मानवेन्द्रस्य भर्तुर्मे प्लवगर्षभ॥

(५। ३७। ३१-३२)

श्रीसीताजीके मनमें विश्वास दिलानेके लिये शत्रुसूदन वानरेन्द्र श्रीहनुमान्‌जीने अपना विशाल स्वरूप दिखाया। देखते-देखते उनका श्रीविग्रह मेरु पर्वतके समान समुन्नत हो गया। वे जाज्वल्यमान अग्निकी भाँति तेजस्वी प्रतीत होने लगे। इस प्रकार विशाल स्वरूप धारण करके वे श्रीजानकीजीके पुरस्तात् खड़े हो गये—

मेरुमन्दरसङ्काशो बभौ दीप्तानलप्रभः।
अग्रतो व्यवतस्थे च सीताया वानरर्षभः॥

(५। ३७। ३७)

श्रीहनुमान्‌जीके विशाल स्वरूपको देखकर श्रीजानकीजी चकित हो गयीं। उन्होंने कहा—हे हनुमान्! मुझे अब तुम्हारी शक्तिके सम्बन्धमें कोई सन्देह नहीं रहा। तुम वायुके समान गतिशील और अग्निके समान तेजस्वी हो, इसीलिये तुम विशाल समुद्रका अतिक्रमण करके लङ्कातक आ सके हो। हे पवननन्दन! तुम निःसन्देह मुझे अपनी पीठपर बैठाकर श्रीरामचन्द्रजीके पास पहुँचा सकते हो; परन्तु हे कपिश्रेष्ठ! तुम्हारे साथ मेरा जाना किसी भी दृष्टिसे उचित नहीं है; क्योंकि तुम्हारा वेग प्रचण्ड वायुके वेगके समान है, यह वेग मुझे मूर्च्छित कर सकता है।

अयुक्तं तु कपिश्रेष्ठ मया गन्तुं त्वया सह।
वायुवेगसवेगस्य वेगो मां मोहयेत् तव॥

(५। ३७। ४५)

उस समय मैं तुम्हारे पृष्ठभागसे समुद्रमें गिर सकती हूँ। फिर तो जलजन्तु मुझे अपना आहार बना लेंगे और मैं अपने प्राणाराध्यके दर्शनोंसे सदाके लिये वञ्चित हो जाऊँगी। हे पवननन्दन! यह भी सम्भव है कि लङ्काके राक्षस तुम्हें अपनी पीठपर ले जाते हुए देख लें और तुम्हारे ऊपर धावा बोल दें, उस समय तुम मुझे सँभालोगे या उनसे लड़ोगे? तुम्हारा और निशाचरोंका युद्ध छिड़ जानेपर निश्चित ही मैं भयार्त्त होकर तुम्हारी पीठसे गिर जाऊँगी—

प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद् भयार्ता कपिसत्तम॥

(५। ३७। ५२)

श्रीसीताजीने फिर कहा—हे हनुमान्! मैंने अपने जीवनमें जान-बूझकर किसी परपुरुषका

स्पर्श नहीं किया है। जिस समय रावण मुझको पञ्चवटीसे उठाकर ले आया था, उस समय मैं अकेली थी, विवश थी; इसलिये कुछ न कर सकी। अब यदि जान-बूझकर तुम्हारी पीठपर बैठूँ और श्रीरामचन्द्रके पास पहुँचूँ तो यह कदापि धर्मसङ्गत नहीं होगा—

भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम॥

(५। ३७। ६२)

अन्तमें श्रीविदेहनन्दिनीने एक ऐसी बात कही जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कहा—हे वानरश्रेष्ठ! रावण तो मुझको चोरीसे हरकर ले आया था एतावता उसका दौर्बल्य, उसका पराभव तो उसी समय प्रकट हो गया, जब वह श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणका सामना नहीं कर सका। परन्तु हे हनुमान्! यदि तुम भी उसीकी तरह मुझको चोरीसे ही ले जाओगे तो इसमें तुम्हारी, मेरी और तुम्हारे स्वामी श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मणकी क्या मर्यादा रहेगी? उसका तो यही अर्थ होगा कि श्रीराममें रावणको पराजित करके मुझे ले जानेकी सामर्थ्य नहीं थी एतावता उन्होंने मुझको चोरीसे बुलवाया। हे पवननन्दन! राक्षसोंके साथ रावणको मार करके वीरेन्द्र मुकुटमणि श्रीरामजी मुझको ले चलें तो यह कार्य उनके अनुरूप होगा—

यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम्।
मामितो गृह्य गच्छेत तत्तस्य सदृशं भवेत्॥

(५। ३७। ६४)

'तत्तस्य सदृशं भवेत्' का भाव यह है कि यदि तुम मुझे लेकर चलोगे तो इसमें श्रीरामजीकी कीर्तिका संवर्द्धन नहीं होगा अपितु अपकीर्ति ही होगी कि श्रीरामजी अपनी अपहृता पत्नीको भी नहीं ले जा सके, रावणका वध नहीं कर सके, सीताको हनुमान्जी ले आये। हे हनुमान्! उत्तम पुत्र, सेवक, पत्नी और शिष्य वही है जो स्वयंको दुःखके समुद्रमें डालकर भी अपने पिता, स्वामी, पति और गुरुकी कीर्तिका संवर्द्धन करे। इसलिये हे हनुमान्! मैंने बहुत दुःख सहा है, बड़ी-बड़ी यातनाएँ भोगी हैं, हृदयविदारक कटु वचन सुने और सहे हैं; थोड़े दिन और दुःख सह लूँगी; परन्तु अपने प्राणाराध्य, जीवनसारसर्वस्व, रघुकुलनन्दन श्रीरामकी कीर्तिका संवर्द्धन करनेके लिये तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी। हे हनुमान्! तुम तो प्रयत्न करके वानरेन्द्र सुग्रीव और महाबली लक्ष्मणके साथ मेरे प्राणप्रियतम श्रीरामको शीघ्र ही यहाँ बुला लाओ। हे वत्स! मैं प्रभुके दर्शनके लिये बहुत दिनोंसे शोकाकुल हो रही हूँ। तुम उनके मङ्गलमय आगमनसे मुझे प्रसन्न करो—

स मे कपिश्रेष्ठ सलक्ष्मणं प्रियं सयूथपं क्षिप्रमिहोपपादय।
चिराय रामं प्रति शोककर्शितां कुरुष्व मां वानरवीर हर्षिताम्॥

(५। ३७। ६८)

हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना॥
मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥
सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ॥
सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल॥

(श्रीरामचरितमानस ५। १६। ६—९, दो० १६)

इसके पश्चात् श्रीहनुमान्जीने विनम्रतापूर्वक कहा—हे मातः! जैसे श्रीरामचन्द्रजीने मुझे मुद्रिका-का अभिज्ञान दिया था, उसी प्रकार आप भी

कोई अभिज्ञान दीजिये, जिससे कि श्रीरामजी जान लें कि मैंने आपका दर्शन किया है—

अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयाद् राघवो हि यत्॥

(५। ३८। १०)

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा।
जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा॥

श्रीसीताजीने कहा—मैं तुम्हें किसी वस्तुको पहचानके रूपमें अवश्य दूँगी; परन्तु वस्तुकी पहचानसे महत्त्वपूर्ण पहचान—श्रेष्ठ अभिज्ञान मैं तुम्हें दे रही हूँ। हे हनुमान्! मात्र मुद्रिकाके अभिज्ञानसे तुम मेरे विश्वासपात्र नहीं बने हो। श्रीरामजीकी कथा सुनानेके कारण और उनका सूक्ष्म स्वरूप वर्णन करनेके कारण ही मेरे विश्वासभाजन बन सके हो। हे हनुमान्! मैं तुम्हें श्रेष्ठ अभिज्ञान देती हूँ, उसका श्रवण करो। जो चरित्र मेरे और श्रीरामजीके अतिरिक्त कोई नहीं जानता है, श्रीलक्ष्मणजी भी नहीं जानते हैं; वह चरित्र आज मैं तुम्हें सुना रही हूँ। वह परम श्रेष्ठ अभिज्ञान होगा—

इदं श्रेष्ठमभिज्ञानं ब्रूयास्त्वं तु मम प्रियम्।

(५। ३८। १२)

इसके अनन्तर श्रीसीताजीने इन्द्रपुत्र जयन्तकी कथा सुनायी। इन्द्रपुत्र जयन्तने श्रीरामजीका बल-परीक्षण करनेके लिये कौवेका रूप बना करके मेरे स्तनान्तरमें चोंच मारकर क्षत-विक्षत कर दिया। रक्तकी धार बह चली। मेरी छातीमें घाव हुआ देखकर महाबाहु श्रीरामजी क्रुद्ध हो गये। उन्होंने कुशकी चटाईसे एक कुश निकालकर उसे ब्रह्मास्त्रके मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके कौवेकी ओर छोड़ दिया। वह प्राण बचानेके लिये समग्र जगत्‌में मारा-मारा घूमा; परन्तु बाणने उसका पीछा नहीं छोड़ा और किसीने उसकी रक्षा भी नहीं की। यहाँतक कि पिताने भी उसे भगा दिया। किसी महर्षिने भी उसको शरणमें नहीं रखा। तीनों लोकोंकी परिक्रमा करके अन्तमें परम शरण्य श्रीरामजीकी ही शरणमें आया—

स पित्रा च परित्यक्तः सर्वैश्च परमर्षिभिः।
त्रींल्लोकान् सम्परिक्रम्य तमेव शरणं गतः॥

(५। ३८। ३२)

शरणागत वत्सल श्रीरामजीने उसके कथनानुसार उसकी दाहिनी आँख नष्ट करके उसे क्षमा कर दिया—

कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम॥

(श्रीरामचरितमानस ३। सो० २)

श्रीसीताजी कहती हैं—हे हनुमान्! तुम मेरे आराध्यसे जाकर मेरी ओरसे कहना—हे भूपते! हे अनाथनाथ! एक सामान्य अपराध करनेपर आपने मेरे लिये एक कौवेपर भी ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया था, फिर जो मुझको आपके पाससे हरकर लाया है; उसे आप कैसे क्षमा कर रहे हैं?

मत्कृते काकमात्रेऽपि ब्रह्मास्त्रं समुदीरितम्।
कस्माद् यो माहरत् त्वत्तः क्षमसे तं महीपते॥

(५। ३८। ३७)

हे नरशार्दूल! आप मेरे ऊपर कृपा करें। हे अनाथनाथ! आपके द्वारा नाथवती सीता आज अनाथ-सी दृश्यमान हो रही है। हे प्राणनाथ! मुझे सनाथ करिये, बस, यही प्रार्थना है—

स कुरुष्व महोत्साहां कृपां मयि नरर्षभ।
त्वया नाथवती नाथ ह्यनाथा इव दृश्यते॥

(५। ३८। ३८)

हे हनुमान्! कौसल्यानन्दसंवर्द्धन श्रीरामचन्द्रके श्रीचरणोंमें मस्तक झुकाकर मेरी ओरसे अभिवादन करना— '**शिरसा चाभिवादय**'। हे वानरशिरोमणे! नित्य कोमल स्वभाववाले, पवित्र विचारवाले,

प्रत्येक कार्यमें कुशल, श्रीरामजीके परम प्रिय बन्धु लक्ष्मणसे वही बात कहना जिससे वे मेरा दु:ख दूर करनेका प्रयत्न करें—

मृदुर्नित्यं शुचिर्दक्षः प्रियो रामस्य लक्ष्मणः।
यथा हि वानरश्रेष्ठ दुःखक्षयकरो भवेत्॥

(५। ३८। ६२)

श्रीसीताजीने वस्त्रमें बँधी हुई मङ्गलमयी दिव्य चूड़ामणि खोलकर—निकालकर श्रीहनुमान्जी-के हाथपर रखकर कहा—इसे राघवेन्द्र सरकारको दे देना—

ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम्।
प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ॥

(५। ३८। ६६)

श्रीसीताने चूड़ामणि देकर कहा—इस मणिको देखकर श्रीरामजी मेरी माताका, मेरा और राजा दशरथजीका स्मरण करेंगे। तीनोंका स्मरण युगपत्—एक साथ करेंगे—

मणिं दृष्ट्वा तु रामो वै त्रयाणां संस्मरिष्यति।
वीरो जनन्या मम च राज्ञो दशरथस्य च॥

(५। ३९। २)

तीनोंके स्मरणका भाव श्रीमाहेश्वर तीर्थ करते हैं—'**पाणिग्रहणकाले मम जननी इमं मणिं दशरथसन्निधौ जनक हस्तादादाय शिरोभूषणतया मह्यं दत्तवती अतो मम जननीं दशरथं जनकं मां च स्मरिष्यतीति अर्थः**'। अर्थात् मेरे विवाहके समय इस मणिको मेरी माताने श्रीदशरथजीकी सन्निधिमें श्रीजनकके हाथसे लेकर शिरोभूषणके रूपमें मुझे दिया था। अतएव मेरी माँको, श्रीदशरथको, जनकको और मुझे भी स्मरण करेंगे। इसी प्रसङ्गपर तिलकटीकाकार कहते हैं—'**वीरो रामः मणिं दृष्ट्वा जनन्यादीनां त्रयाणां संस्मरिष्यति एव पाणिग्रहणसमये दशरथसन्निधौ मम जननी मणिं मह्यं ददाविति पौराणिकी कथा सूचिता**' अर्थात् यह मणि मेरे विवाहके समय मेरी माँके हाथसे मेरे पिताने लेकर श्रीदशरथजीके हाथमें मेरे शिरोभूषणके लिये दिया था; अत: मेरी माता, मेरे पिता जनक और श्रीदशरथजी—इन तीनोंका यह मणि स्मारक है।

इस प्रकार मणि देनेके पश्चात् श्रीसीताजीने हनुमान्जीको विशेष रूपसे समझाया। उन्हें प्रार्थना-पूर्वक भगवान्से दु:ख निवेदन करनेके लिये कहा—हे हनुमान्! महाबाहु श्रीराघवेन्द्र सरकार जिस प्रकार इस दु:खाम्बु संरोधसे—दु:खसागरसे '**अम्बूनि संरुध्यन्ते यस्मिन्निति अम्बु संरोधः समुद्रः**' मुझे तार दें—पार कर दें, उसी प्रकार श्रीरामजीको मेरे अनुकूल बनानेका तुम्हें प्रयत्न करना चाहिये—

यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः।
अस्माद् दुःखाम्बुसंरोधात् त्वं समाधातुमर्हसि॥

(५। ३९। ९)

हे हनुमान्! तुम अकेले ही मुझे यहाँसे ले चलनेमें समर्थ हो, परन्तु ऐसा करनेसे विजयरूप फल मात्र तुम्हींको मिलेगा, भगवान् रामको नहीं और यदि ससैन्य सदल रावणको युद्धमें जीत करके, विजयश्रीका वरण करके मुझे साथमें ले करके श्रीअयोध्यापुरी पधारेंगे तो वह श्रीरामके अनुरूप कार्य होगा। अर्थात् इससे त्रैलोक्यमें श्रीरामकीर्तिका अभ्युदय होगा—

काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते फलोदयः॥
बलैः समग्रैर्युधि मां रावणं जित्य संयुगे।
विजयी स्वपुरं यायात् तत्तस्य सदृशं भवेत्॥

(५। ३९। २८-२९)

श्रीहनुमान्जीने कहा—हे मातः! इस राक्षसोंके देशमें आप अधिक दिन नहीं रहेंगी, आपके प्राण-प्रियतमके आनेमें अब समय नहीं लगेगा। जबतक मैं उनके श्रीचरणोंमें पहुँच नहीं जाता

उतने समयतकके लिये जो विलम्ब हो उसके लिये आप क्षमा करें—

नास्मिंश्चिरं वत्स्यसि देवि देशे रक्षोगणैरध्युषितेऽतिरौद्रे।
न ते चिरादागमनं प्रियस्य क्षमस्व मत्सङ्गमकालमात्रम्॥

(५। ३९। ५४)

श्रीसीताजीने श्रीहनुमान्‌जीकी मङ्गलमयी यात्राके लिये मङ्गलकामना करते हुए कहा—हे हरिप्रवीर! मेरा यह तीव्र—दु:सह शोकवेग और इन राक्षसोंकी परिभर्त्सना-तर्जना भी तुम श्रीरामजीके पास जाकर अवश्य कहना। हे हनुमान्! जाओ, आपका मार्ग—आपकी यात्रा कल्याणमयी हो—

इदं च तीव्रं मम शोकवेगं रक्षोभिरेभिःपरिभर्त्सनञ्च।
ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपं शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर॥

(५। ४०। २४)

भगवती भास्वती करुणामयी श्रीसीताजीका मङ्गलमय आशीर्वाद प्राप्त करके श्रीहनुमान्‌जीने अपनेको कृतकृत्य अनुभव किया। तदनन्तर श्रीहनुमान्‌जीने सोचा—थोड़ा-सा कार्य अभी शेष रह गया है—‘**तदल्पशेषं प्रसमीक्ष्य कार्यम्**’ अर्थात् लङ्कामें आकर मुख्य कार्य तो श्रीसीताजीका दर्शन और उन्हें श्रीरामजीका सन्देश सुनाना था, वह कार्य तो सम्पन्न हो गया। परन्तु उत्तम सेवकका कर्तव्य है कि मुख्य कार्य सम्पादित करके अन्य भी अनेक कार्य सम्पन्न कर ले और प्रधान कार्यमें किसी प्रकारकी बाधा न आवे। श्रीहनुमान्‌जीने सोचा कि मैंने सोते हुए रावणको तो देखा है; परन्तु जाग्रत् अवस्थामें भी रावणको देखना चाहिये। उसके बलाबलका भी ज्ञान करना चाहिये। उसके हृदयकी, उसके शील-स्वभावकी भी परीक्षा करनी चाहिये। उसके सैन्यबलको भी देखना चाहिये। रावणके मन्त्री, सेनापति, सेवक कितने बुद्धिमान् और बलवान् हैं यह भी जानना चाहिये। लङ्कामें युद्ध किस प्रकार करना होगा, यह भी समझना चाहिये। यह सब कार्य ‘**अल्पशेष कार्य**’ है।

लङ्काके आगमनके प्रयोजनमें थोड़ा-सा अंश अवशिष्ट है। श्रीसीताजीके दर्शनरूप महान् प्रधान कार्यके सम्पन्न होनेपर बलदर्शनरूप कार्य ही ‘**अल्प शेष**’ कार्य है। ‘**तत्कार्यं लङ्कागमनप्रयोजनं अल्पशेषम्। देवीदर्शनरूपस्य महतः प्रधानकृत्यस्य निष्पन्नत्वात् परबलदर्शनरूपस्यानुषङ्गिकत्वादल्प-शेषत्वमित्याशयः**’ (तिलक-टीका)। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी श्रीगीतावली रामायणमें लिखा है कि श्रीरामजीने तीन कार्य करनेके लिये आज्ञा दी थी—‘**देखि दुर्ग, बिसेषि जानकि, जानि रिपु-गति आउ।**’ इसलिये श्रीहनुमान्‌जी सोचते हैं कि दुर्ग तो मैंने लङ्कामें प्रवेश करते ही देख लिया था—

गिरि पर चढ़ि लंका तेहि देखी।
कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी॥

श्रीजानकीजीके दर्शन भी कर लिये हैं। अब तो शत्रुकी गतिका जानना ही अवशिष्ट है। इस अवशिष्ट कार्यको ही श्रीवाल्मीकिजीने ‘**अल्पशेष**’ लिखा है।

श्रीहनुमान्‌जी सोचते हैं कि इस ‘**अल्पशेष**’ कार्यको सम्पन्न करनेके लिये साम, दान, भेद और दण्ड—ये चार उपाय हैं। राक्षसोंके प्रति सामनीतिका प्रयोग करनेमें कोई लाभ नहीं है; क्योंकि उनका अत्यन्त क्रूर स्वभाव है। इनके पास प्रभूत सम्पत्ति है, अत: इनके अत्यन्त धनवान् होनेके कारण दानका प्रयोग भी व्यर्थ है, ये अपने बलके दर्पमें मदोन्मत्त हैं, अत: भेदनीतिके द्वारा भी काम नहीं होगा। इस स्थितिमें चतुर्थ उपाय—दण्डनीति अर्थात् पराक्रम दिखाना ही उचित प्रतीत होता है—

अल्पशेषमिदं कार्यं दृष्टेयमसितेक्षणा।
त्रीनुपायानतिक्रम्य चतुर्थ इह दृश्यते॥

न साम रक्षःसु गुणाय कल्पते न दानमर्थोपचितेषु युज्यते।
न भेदसाध्या बलदर्पिता जनाः पराक्रमस्त्वेष ममेह रोचते॥

(५।४१।२-३)

अब प्रश्न है कि पराक्रम दिखानेका क्या साधन हो सकता है? श्रीहनुमान्‌जीने सोचा कि रावणकी यह अशोकवाटिका बहुत सुन्दर है। नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे संयुक्त होनेके कारण नन्दनवनके समान नेत्रोंको आनन्द देनेवाली और मनोरम है। इस उपवनको ही मैं विध्वंस कर डालूँगा। जैसे आग सूखे वनको भस्म कर देती है। इसके विध्वंस होनेपर रावण अवश्य ही मुझपर क्रोध करेगा—

इदं विध्वंसयिष्यामि शुष्कं वनमिवानलः।
अस्मिन् भग्ने ततः कोपं करिष्यति स रावणः॥

(५।४१।११)

फिर तो रावण महती सेना लेकर—चतुरङ्गिणी सेना लेकर युद्ध करने आयेगा और महान् युद्ध आरम्भ हो जायगा—'**ततो महद्‌युद्धमिदं भविष्यति**'। तदनन्तर श्रीहनुमान्‌जीने प्रमदावनको—अन्तःपुरवनको नष्ट करके उजाड़ डाला—

ततस्तद्धनुमान् वीरो बभञ्ज प्रमदावनम्।

(५।४१।१५)

अन्तःपुरवनको नष्ट करके अनेक महाबली योद्धाओंसे अकेले ही युद्ध करनेका उत्साह लेकर प्रमदावनके द्वारपर आ गये। उस समय श्रीहनुमान्‌जीका अद्‌भुत तेज जगमगा रहा था—

युयुत्सुरेको बहुभिर्महाबलैः श्रियाज्वलंस्तोरणमाश्रितः कपिः॥

(५।४१।२१)

राक्षसियोंने भी श्रीसीतासे पूछा—यह कौन था? कहाँसे आया था? इसने तुम्हारे साथ बातचीत क्यों की? तुम्हारे साथ क्या बातें कीं? डरो मत! हमें सच-सच बताओ। सर्वाङ्गशोभना साध्वी सीताने कहा—तुम्हीं जानो यह कौन है और क्या करेगा? सर्पके चरणोंको सर्प ही जानता है, इसमें संशय नहीं है—

यूयमेवास्य जानीत योऽयं यद् वा करिष्यति।
अहिरेव ह्यहेः पादान् विजानाति न संशयः॥

(५।४२।९)

इसके अनन्तर राक्षसियोंने रावणको सूचना दी—हे राक्षसराज! अशोकवाटिकामें एक बड़ा भयङ्कर वानर आया है, उसने श्रीसीताजीसे वार्तालाप भी किया है। वह महापराक्रमी वानर सम्प्रति भी वहाँ विद्यमान है—

अशोकवनिकामध्ये राजन् भीमवपुः कपिः।
सीतया कृतसंवादस्तिष्ठत्यमितविक्रमः॥

(५।४२।१३)

हे राक्षसराज! उसने समस्त प्रमदावनको विध्वंस कर दिया है, केवल श्रीसीताजी जहाँ रहती हैं, वह स्थान उसने नष्ट नहीं किया है—

न तत्र कश्चिदुद्देशो यस्तेन न विनाशितः।
यत्र सा जानकी देवी स तेन न विनाशितः॥

(५।४२।१७)

राक्षसियोंकी वार्ता सुन करके रावणको अतिशय क्रोध हुआ। उसकी आँखोंसे आँसूकी बूँदें गिरने लगीं—

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः।

(५।४२।२३)

रावणकी विशेष आज्ञासे किङ्कर-संज्ञक अस्सी हजार वेगवान् राक्षस सशस्त्र युद्ध करने गये। श्रीहनुमान्‌जी उन राक्षसोंको देखकर अपनी विशाल पूँछको भूमिपर पटककर लङ्काको प्रतिध्वनित करते हुए गर्जना करने लगे। उस समय श्रीहनुमान्‌जीने गर्जनाके उच्च स्वरसे इस प्रकार घोषणा की—

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमाञ्छत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥

न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः॥
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्॥

(५। ४२। ३३—३६)

इस घोषणाका एक-एक शब्द मन्त्रकी भाँति महत्त्वपूर्ण है। भक्तलोग यात्रामें मङ्गलप्राप्त करनेके लिये इन श्लोकोंका स्मरण करते हैं। अनेक लोग श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके पाठमें सर्गके आद्यन्तमें इसका सम्पुट लगाते हैं। अनेक लोग अनेक प्रकारकी मनोरथ सिद्धिके लिये अनेक विधानोंसे जप भी करते हैं। इन श्लोकोंमें श्रीहनुमान्‌जीकी निष्ठाका परिचय, साहसका परिचय और भगवत्कृपापर विश्वासका परिचय मिलता है। मैंने सूत्ररूपसे इन श्लोकोंके महत्त्वकी व्याख्या की है। श्रीहनुमान्‌जी अत्यन्त निष्ठापूर्वक, उत्साहपूर्वक और स्नेहपूर्वक जयघोष कर रहे हैं।

अत्यन्त बलवान् भगवान् श्रीरामचन्द्रकी जय हो। महाबलसम्पन्न श्रीलक्ष्मणजीकी जय हो। वालिका वध करके श्रीरामजीके द्वारा संरक्षित वानरेन्द्र सुग्रीवकी जय हो। श्रीहनुमान्‌जी मङ्गलाचरण करके सबसे पहले अपना परिचय देते हैं। जीवका सहज परिचय क्या है? श्रीहनुमान्‌जी इसका उत्तर अनायासेन देते हैं—'**दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य**' अर्थात् अक्लिष्टकर्मा कोसलेन्द्र श्रीरामका मैं दास हूँ, मेरा नाम हनुमान् है। मैं पवनदेवका पुत्र हूँ तथा शत्रुसेनाका मस्तक विदीर्ण करनेवाला हूँ। जब मैं हजारों वृक्षों एवं सहस्रों शिलाखण्डोंसे प्रहार करने लगूँगा, तब सहस्रों रावण समवेत होकर भी मेरे बलकी समानता नहीं कर सकते। मैं लङ्कापुरीको तहस-नहस कर डालूँगा और सबके देखते-देखते चोरीसे नहीं। श्रीमिथिलेशनन्दिनीके श्रीचरणोंमें अभिवादन करके जिस कार्यके लिये आया हूँ, उस कार्यको पूर्ण करके—सफलमनोरथ हो करके, श्रीरामजीके पास चला जाऊँगा। इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जीकी गर्जना सुन करके समस्त राक्षस भयभीत और आतङ्कित हो गये। उन किन्नर नामधारी अस्सी हजार राक्षसोंको मार करके महावीर मारुतात्मज श्रीहनुमान् युद्धकी इच्छासे पुनः फाटकपर खड़े हो गये—

स हत्वा राक्षसान् वीरः किङ्करान् मारुतात्मजः।
युद्धाकाङ्क्षी महावीरस्तोरणं समवस्थितः॥

(५। ४२। ४२)

किङ्करोंका वध करनेके पश्चात् श्रीहनुमान्‌जीने सोचा कि मैंने वनको तो विध्वंस कर दिया; परन्तु इस चैत्य-प्रासादको (राक्षसोंके कुलदेवताका स्थान) नष्ट नहीं किया—

ततः स किङ्करान् हत्वा हनूमान् ध्यानमास्थितः।
वनं भग्नं मया चैत्यप्रासादो न विनाशितः॥

(५। ४३। १)

श्रीहनुमान्‌जी चैत्य-प्रासादको तोड़ने-फोड़ने लगे। उस प्रासादके खम्भोंको उखाड़कर उन्हींसे रक्षक राक्षसोंका संहार कर दिया। आकाशमें स्थित होकर श्रीहनुमान्‌जीने ललकारकर कहा— अब न तो यह लङ्कापुरी रहेगी, न तो तुमलोग रहोगे और न वह रावण ही रह सकेगा, जिसने इक्ष्वाकुनन्दन महात्मा श्रीरामचन्द्रसे शत्रुता ठान रखी है—

नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूयं न च रावणः।
यस्य त्विक्ष्वाकुवीरेण बद्धं वैरं महात्मना॥

(५। ४३। २५)

तदनन्तर रावणने प्रहस्तके बलवान् पुत्र जम्बुमालीको युद्धके लिये भेजा। जम्बुमाली और श्रीहनुमान्‌का विकट युद्ध हुआ। अन्तमें हनुमान्‌जीने उसके विशाल वक्षःस्थलपर एक परिघका प्रहार किया। यह परिघ जम्बुमालीने ही श्रीहनुमान्‌जीपर

छोड़ा था। अब तो श्रीहनुमान्‌जीके परिघप्रहारसे जम्बुमाली ही गायब हो गया। न तो उसके सिरका पता लगा, न भुजाओंका और न घुटनोंका ही पता लगा। धनुष, बाण, रथ, घोड़े सब साफ हो गये—

तस्य चैव शिरो नास्ति न बाहू जानुनी न च।
न धनुर्न रथो नाश्वास्तत्रादृश्यन्त नेषवः॥

(५। ४४। १७)

जम्बुमालीके मरनेके बाद रावणने मन्त्रीके सात पुत्रोंको, जो अग्निके समान तेजस्वी थे, युद्धके लिये भेजा। वे सुतप्त काञ्चनके चमचमाते हुए आभूषण पहने थे। वे सातों आपसमें होड़ लगाकर फाटकपर खड़े हुए श्रीहनुमान्‌जीपर सहसा आक्रमण कर दिये—

ते परस्परसंघर्षात् तप्तकाञ्चनभूषणाः।
अभिपेतुर्हनूमन्तं तोरणस्थमवस्थितम्॥

(५। ४५। ६)

श्रीहनुमान्‌ने किन्हींको थप्पड़से मार डाला, किन्हींको चरणोंसे कुचल डाला, किन्हींको मुक्केसे मार डाला, किन्हींको नखोंसे विदीर्ण कर डाला, किन्हींको छातीसे दबाकर और किन्हींको दोनों जाँघोंसे दबोचकर पीस डाला। बहुत-से राक्षस तो श्रीहनुमान्‌जीकी गर्जनासे ही गिरकर मर गये—

तलेनाभिहनत् कांश्चित् पादैः कांश्चित्परन्तपः।
मुष्टिभिश्चाहनत्कांश्चिन्नखैः कांश्चिद् व्यदारयत्॥
प्रममाथोरसा कांश्चिदूरुभ्यामपरानपि।
केचित् तस्यैव नादेन तत्रैव पतिता भुवि॥

(५। ४५। १२-१३)

सबको समाप्त करके दूसरे राक्षसोंसे युद्ध करनेकी इच्छासे पुनः उसी फाटकपर पहुँच गये—

युयुत्सुरन्यैः पुनरेव राक्षसैस्तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणम्।

(५। ४५। १७)

इसके अनन्तर दशग्रीव रावणने विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस और भासकर्ण नामके पाँच सेनापतियोंको हनुमान्‌जीको पकड़कर लानेके लिये भेजा। रावणने कहा—यह तो कोई महान् प्राणी है, वानर नहीं है, तुमलोग चतुरङ्गिणी सेना लेकर जाओ और महान् प्रयत्न करके उसको बन्दी बना लो—

प्रयत्नं महदास्थाय क्रियतामस्य निग्रहः।

(५। ४६। १५)

उन वीरोंने जाकर श्रीहनुमान्‌जीको देखा कि वे द्वारपर उदयकालीन सूर्यकी भाँति सुप्रकाशित हो रहे हैं। उनकी शक्ति, बल, वेग, बुद्धि, उत्साह, शरीर और भुजाएँ सभी महान् थीं—

रश्मिमन्तमिवोद्यन्तं स्वतेजोरश्मिमालिनम्।
तोरणस्थं महावेगं महासत्वं महाबलम्॥
महामतिं महोत्साहं महाकायं महाभुजम्।

(५। ४६। २०-२१)

श्रीहनुमान्‌जीने उन पाँच वीरोंको विभिन्न प्रकारसे मार डाला। उनके साथकी चतुरङ्गिणी सेनाका भी संहार करना आरम्भ कर दिया। घोड़ोंसे घोड़ोंका, हाथियोंसे हाथियोंका, योद्धाओंसे योद्धाओंका और रथोंसे रथोंका काम तमाम कर दिया—

अश्वैरश्वान् गजैर्नागान् योधैर्योधान् रथै रथान्।
स कपिर्नाशयामास सहस्राक्ष इवासुरान्॥

(५। ४६। ३९)

इस प्रकार सबका संहार करके पूर्वकी भाँति फाटकपर जाकर खड़े होकर आनेवाले वीरोंकी प्रतीक्षा करने लगे। उस समय श्रीहनुमान्‌जी प्रजाका संहार करनेके लिये समुद्यत कालकी भाँति ज्ञात होते थे—

तथैव वीरः परिगृह्य तोरणं कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये।

(५। ४६। ४१)

तदनन्तर पराक्रमी अक्षकुमारको रावणने युद्धमें जानेकी आज्ञा दी। वह बड़े उत्साहसे युद्धमें आया। उसके बल, पराक्रम और युद्ध-कौशलको देखकर पक्षपातरहित श्रीहनुमान्‌जी सोचने लगे। यह अक्षकुमार बालसूर्यकी भाँति आभा-प्रभासम्पन्न है। बालक होकर भी अबालवत्-बड़ोंकी तरह महत् कर्म कर रहा है। युद्ध-कर्ममें दक्ष होनेके कारण यहाँ इस महाबलीको मेरी मारनेकी इच्छा नहीं हो रही है—

अबालवद् बालदिवाकरप्रभः करोत्ययं कर्म महन्महाबलः।
न चास्य सर्वाहवकर्मशालिनः प्रमापणे मे मतिरत्र जायते॥

(५। ४७। २६)

इसके अनन्तर श्रीहनुमान्‌जी और अक्षकुमारका संग्राम हुआ। पवनदेवके समान पराक्रमी वानररत्न श्रीहनुमान्‌जीने जैसे गरुड़जी बड़े-बड़े सर्पोंको वेगपूर्वक घुमाते हैं; उसी तरह अक्षकुमारको पकड़कर हजारों बार घुमाकर भूतलमें पटक दिया। परिणामस्वरूप उसकी भुजा, जाँघ, कमर और छातीके टुकड़े-टुकड़े हो गये। रक्तकी धारा बहने लगी, हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं, आँखें बाहर निकल आयीं, हड्डियोंके बन्धन खुल गये और नस-नाड़ियोंके बन्धन भी शिथिल हो गये। इस प्रकार अक्षकुमार श्रीपवनकुमारके हाथों मारा गया—

स तं समाविध्य सहस्रशः कपिर्महोरगं गृह्य इवाण्डजेश्वरः।
मुमोच वेगात् पितृतुल्यविक्रमो महीतले संयति वानरोत्तमः॥
स भग्नबाहूरुकटीपयोधरः क्षरन्नसृङ्निर्मथितास्थिलोचनः।
सम्भिन्नसन्धिः प्रविकीर्णबन्धनो हतः क्षितौ वायुसुतेन राक्षसः॥

(५। ४७। ३५-३६)

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा।
चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा।
ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥
कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि॥

(श्रीरामचरितमानस ५। १८। ७-८; दो० १८)

श्रीहनुमान्‌जी पूर्ववत् पुनः तोरणपर—द्वारपर आ गये—

तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणं कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये।

(५। ४७। ३८)

अक्षकुमारके मारे जानेपर अपने मनको किसी प्रकार समाहित करके रावणने मेघनादको बुलाकर कहा—तुम्हारा तपोबल, पराक्रम और अस्त्रबल मेरी ही तरह है। परन्तु वर्तमान समयमें युद्धकी स्थिति इस प्रकार है। अस्सी हजार विकराल राक्षस मारे गये। जम्बुमाली, मन्त्रीके सातों वीर पुत्र और पाँच सेनापति भी युद्धमें मार डाले गये। उनके साथ विशाल चतुरङ्गिणी सेना भी काल-कवलित हो गयी। हे पुत्र! तुम्हारा सहोदर और प्रियबन्धु कुमार अक्ष भी मार डाला गया—

निहताः किङ्कराः सर्वे जम्बुमाली च राक्षसः।
अमात्यपुत्रा वीराश्च पञ्च सेनाग्रगामिनः॥
बलानि सुसमृद्धानि साश्वनागरथानि च।
सहोदरस्ते दयितः कुमारोऽक्षश्च सूदितः॥

(५। ४८। ७-८)

हे शत्रुसूदन! यद्यपि तुम उनकी तरह नहीं हो, फिर भी अपनी विशाल सेनाका संहार और इस वानरका प्रभाव एवं पराक्रम देखकर तुम अपने बलका भी विचार कर लो। तदनन्तर अपनी सामर्थ्यके अनुरूप कार्य करो। मेघनाद अपने पिताको प्रणाम और परिक्रमा करके सन्नद्ध होकर चल पड़ा। मेघनादके रथका निर्घोष और धनुषकी टङ्कारध्वनि सुनकर श्रीहनुमान्‌जी सम्प्रहृष्टतर-अतिशय प्रसन्न हो गये—

स तस्य रथनिर्घोषं ज्यास्वनं कार्मुकस्य च।
निशम्य हरिवीरोऽसौ सम्प्रहृष्टतरोऽभवत्॥

(५। ४८। २०)

वेगवान् श्रीहनुमान्‌जीने मेघनादको आते देखकर बड़े जोरसे गर्जना की और अपने श्रीविग्रहका विवर्द्धन किया—

'ननाद च महानादं व्यवर्धत च वेगवान्'।

चला इंद्रजित अतुलित जोधा।
बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा॥
कपि देखा दारुन भट आवा।
कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥

श्रीहनुमान्‌जी और मेघनादमें भयङ्कर समर हुआ। मेघनादके समस्त अमोघ बाण मोघ हो गये—व्यर्थ हो गये। उसने अपने मनमें श्रीहनुमान्‌जीको अवध्य समझकर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग कर दिया। श्रीहनुमान्‌ने सोचा कि श्रीब्रह्माके वरदानके कारण यद्यपि मुझे ब्रह्मास्त्रके द्वारा कोई हानि नहीं हो सकती है, फिर भी मुझे ब्रह्माका एवं उनके अस्त्रका सम्मान करना चाहिये—'**मयात्मयोनेरनुवर्तितव्यः**'।

ब्रह्म अस्त्र तेहिं साँधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार॥

(श्रीरामचरितमानस ५। दो० १९)

श्रीहनुमान्‌जीने सोचा कि राक्षसोंके द्वारा पकड़े जानेमें भी मुझे गुण-ही-गुण दिखायी दे रहे हैं। इसी बहाने मुझे राक्षसेन्द्र रावणसे वार्तालाप करनेका सुअवसर मिलेगा। एतावता ये मुझे पकड़कर ले चलें—

ग्रहणे चापि रक्षोभिर्महन्मे गुणदर्शनम्।
राक्षसेन्द्रेण संवादस्तस्माद् गृह्णन्तु मां परे॥

(५। ४८। ४४)

राक्षसोंने जब देखा कि हनुमान्‌जी विनिश्चेष्ट हो गये—हिलते-डुलते नहीं हैं, तब उन्होंने श्रीहनुमान्‌जीको सुतरी और वृक्षोंके वल्कलको बटकर बनाये गये रस्सोंसे बाँधनेका उपक्रम किया—

ततस्ते राक्षसा दृष्ट्वा विनिश्चेष्टमरिंदमम्।
बबन्धुः शणवल्कैश्च द्रुमचीरैश्च संहतैः॥

(५। ४८। ४६)

वल्कलके रस्सेसे बद्ध होनेपर पराक्रमी श्रीहनुमान्‌जी ब्रह्मास्त्रके बन्धनसे विमुक्त हो गये; क्योंकि ब्रह्मास्त्रका बन्धन किसी दूसरे बन्धनके साथ नहीं रहता है—

स बद्धस्तेन वल्केन विमुक्तोऽस्त्रेण वीर्यवान्।
अस्त्रबन्धः स चान्यं हि न बन्धमनुवर्तते॥

(५। ४८। ४८)

फिर भी श्रीहनुमान्‌जीने ऐसा प्रदर्शित किया कि वे ब्रह्मास्त्रके द्वारा मूर्च्छित हैं और वे आँखोंको बन्द करके भगवान्‌का नाम जपने लगे—अपना नियम पूरा करने लगे। दुष्ट और निर्दय राक्षस श्रीहनुमान्‌जीको बन्धनमें देखकर कालमुष्टिकसे मारते हुए रस्सेसे खींचकर राक्षसेन्द्रके पास ले गये—

हन्यमानस्ततः क्रूरै राक्षसैः कालमुष्टिभिः।
समीपं राक्षसेन्द्रस्य प्राकृष्यत स वानरः॥

(५। ४८। ५२)

अब तो राक्षसोंने बँधे हुए हनुमान्‌जीको देखकर क्रोधपूर्वक कहा—वानरको मार डालो, इसे जला डालो, किं वा खा डालो—

हन्यतां दह्यतां वापि भक्ष्यतामिति चापरे।
राक्षसास्तत्र संक्रुद्धाः परस्परमथाब्रुवन्॥

(५। ४८। ५६)

रावणकी आज्ञासे उसके मन्त्रियोंके परिचय पूछनेपर श्रीहनुमान्‌ने कहा—मैं वानरेन्द्र सुग्रीवके पाससे आया हूँ और उनका दूत हूँ—

निवेदयामास हरीश्वरस्य दूतः सकाशादहमागतोऽस्मि।

(५। ४८। ६१)

रावणको देखकर उसके तेजसे मोहित होकर श्रीहनुमान्‌जी अपने मनमें सोचने लगे—अहो! इस राक्षसराज रावणका कितना अद्‌भुत रूप है? इसका कैसा अपूर्व धैर्य है? इतनी सेना और पुत्रके मर जानेपर भी इसके धैर्यमें कोई कमी नहीं आयी है। कितनी अप्रतिम शक्ति है? अहो!

इसका तेज भी अप्रतिम है। रावणका समस्त राजाके योग्य लक्षणोंसे युक्त होना भी कैसे आश्चर्यकी बात है? यदि रावणमें अधर्म बलवान् न होता तो यह राक्षसेन्द्र रावण इन्द्रके साथ सम्पूर्ण देवलोकोंका पालक हो सकता था—

अहो रूपमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो द्युतिः।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता॥
यद्यधर्मो न बलवान् स्यादयं राक्षसेश्वरः।
स्यादयं सुरलोकस्य स शक्रस्यापि रक्षिता॥

(५।४९।१७-१८)

श्रीहनुमान्‌जीको देखकर रावणने प्रहस्तसे कहा—हे प्रहस्त! इस दुरात्मासे पूछो कि कहाँसे आया है? क्यों आया है? वनको क्यों विध्वंस किया है? तथा राक्षसोंको क्यों मारा है? मेरी दुर्जय नगरी लङ्कामें आनेका क्या प्रयोजन है? राक्षसोंके साथ लड़ाई शुरू करनेमें इसका क्या लक्ष्य है? ये सारी बातें इस दुर्बुद्धिसे पूछो—

दुरात्मा पृच्छ्यतामेष कुतः किं वास्य कारणम्।
वनभङ्गे च कोऽस्यार्थो राक्षसानां च तर्जने॥
मत्पुरीमप्रधृष्यां वै गमने किं प्रयोजनम्।
आयोधने वा किं कार्यं पृच्छ्यतामेष दुर्मतिः॥

(५।५०।५-६)

कह लंकेस कवन तैं कीसा।
केहि कें बल घालेहि बन खीसा॥
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही।
देखउँ अति असंक सठ तोही॥
मारे निसिचर केहिं अपराधा।
कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा॥

प्रहस्तने रावणकी आज्ञानुसार प्रश्न किया और कहा—कि हे वानर! धैर्य रखो, तुम्हारा मङ्गल हो, तुम डरो मत। तुम ठीक-ठीक बताओ कि तुम किसके भेजनेसे आये हो? श्रीहनुमान्‌जीने कहा—मैं किसी देवताका दूत नहीं हूँ। मैं बहुरुपिया भी नहीं हूँ। मैं जन्मसे ही वानरजातिका हूँ। राक्षसोंके राजा रावणका दर्शन करनेकी इच्छासे ही मैंने उनके इस दुर्लभ वनका विध्वंस किया है। तदनन्तर तुम्हारे बलवान् राक्षस हठात् युद्ध करनेके लिये मेरे पास आये और मैंने अपने शरीरकी रक्षाके लिये समराङ्गणमें उनसे युद्ध भी किया—

जातिरेव मम त्वेषा वानरोऽहमिहागतः।
दर्शने राक्षसेन्द्रस्य तदिदं दुर्लभं मया॥
वनं राक्षसराजस्य दर्शनार्थं विनाशितम्।
ततस्ते राक्षसाः प्राप्ता बलिनो युद्धकाङ्क्षिणः॥
रक्षणार्थं च देहस्य प्रतियुद्धा मया रणे।

(५।५०।१४—१६)

खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा।
कपि सुभाव ते तोरेउँ रूखा॥
सब कें देह परम प्रिय स्वामी।
मारहिं मोहि कुमारग गामी॥
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे।
तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा।
कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥

श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे रावण! मैं अपने सरकार श्रीरामजीके कार्यसे आपके पास आया हूँ। हे प्रभो! मैं अत्यन्त तेजसम्पन्न श्रीराघवेन्द्रका दूत हूँ। मेरे पथ्य—हित वचनोंको सुनो—

केनचिद् रामकार्येण आगतोऽस्मि तवान्तिकम्॥
दूतोऽहमिति विज्ञाय राघवस्यामितौजसः।
श्रूयतामेव वचनं मम पथ्यमिदं प्रभो॥

(५।५०।१८-१९)

श्रीहनुमान्‌जीने सुग्रीवकी ओरसे रावणको सन्देश सुनाया कि हे राक्षसराज! आप धर्म और अर्थको तत्त्वतः जानते हो, आपने तपस्या भी की

है। हे महाप्राज्ञ! परदाराको अपने घरमें रखना कदापि उचित नहीं है। हे रावण! श्रीरामजीके क्रोध करनेके पश्चात् श्रीलक्ष्मणके द्वारा सन्धान किये बाणोंके सामने कौन ठहर सकता है? वह चाहे देवता हो या असुर—

कश्च लक्ष्मणमुक्तानां रामकोपानुवर्तिनाम्।
शराणामग्रतः स्थातुं शक्तो देवासुरेष्वपि॥

(५।५१।१९)

जनस्थानमें खरादि राक्षसोंका विनाश, वालीका वध और श्रीराम-सुग्रीवका सख्य-सम्बन्ध—इन तीनों प्रसङ्गोंको भलीभाँति जान लो और अपने हितका विचार करो—

जनस्थानवधं बुद्ध्वा वालिनश्च वधं तथा।
रामसुग्रीवसख्यं च बुद्ध्यस्व हितमात्मनः॥

(५।५१।३०)

हे रावण! तुमने सबसे अपनी अवध्यता माँगी है; परन्तु मनुष्य और वानर तो तुम्हें मार ही सकते हैं, इसका तुम्हें ध्यान रखना चाहिये। हे राक्षसराज! श्रीसुग्रीव और श्रीरामचन्द्रजी न तो देवता हैं, न यक्ष हैं और न राक्षस ही। श्रीरामजी मनुष्य हैं और सुग्रीव वानरेश्वर। अतः इनके हाथसे तुम अपने प्राणोंकी रक्षा कैसे करोगे?

सुग्रीवो न च देवोऽयं न यक्षो न च राक्षसः।
मानुषो राघवो राजन् सुग्रीवश्च हरीश्वरः॥
तस्मात् प्राणपरित्राणं कथं राजन् करिष्यसि।

(५।५१।२७)

हे रावण! अपने यहाँ—इस समय रहनेवाली श्रीसीताजीको तुम सर्वलङ्काविनाशिनी कालरात्रि ही जानो—

यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते गृहे।
कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलङ्काविनाशिनीम्॥

(५।५१।३४)

कालराति निसिचर कुल केरी।
तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥

महायशस्वी भगवान् श्रीराम चराचर प्राणियोंके सहित सम्पूर्ण लङ्काका संहार करके पुनः उसका उसी प्रकार निर्माण करनेमें समर्थ हैं—

सर्वाँल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान्।
पुनरेव तथा स्त्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः॥

(५।५१।३९)

हे दशग्रीव! चतुर्मुख स्वयंभू ब्रह्मा, त्रिनेत्र त्रिपुरहर शङ्कर, देवेन्द्र महेन्द्र इन्द्र भी रणभूमिमें श्रीराघवेन्द्र सरकारके आगे टिकनेमें अक्षम हैं—

ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य॥

(५।५१।४४)

महात्मा—उदारचेता श्रीहनुमान्जीका कल्याणमय वचन सुनकर क्रोधन्मत्त रावणने अपने सेवकोंको आज्ञा दी—इस वानरको मार डालो—

स तस्य वचनं श्रुत्वा वानरस्य महात्मनः।
आज्ञापयद् वधं तस्य रावणः क्रोधमूर्च्छितः॥

(५।५२।१)

रावणकी इस आज्ञाके विपरीत श्रीविभीषणने कहा—हे राक्षसेन्द्र! क्षमा कीजिये, रोषका परित्याग करिये, प्रसन्न होइये और मेरी बात सुनिये। उचित-अनुचितका विचार करनेवाले श्रेष्ठ राजालोग दूतका वध नहीं करते हैं—

क्षमस्व रोषं त्यज राक्षसेन्द्र प्रसीद मे वाक्यमिदं शृणुष्व।
वधं न कुर्वन्ति परावरज्ञा दूतस्य सन्तो वसुधाधिपेन्द्राः॥

(५।५२।५)

विभीषणका वचन सुनकर राक्षसेश्वर रावणने क्रोधपूर्वक कहा—हे शत्रुसूदन विभीषण! पापियोंका वध करनेमें पाप नहीं है। इस वानरने वाटिकाका विध्वंस तथा राक्षस-वधरूप पाप किया है एतावता मैं इसे अवश्य मारूँगा—

न पापानां वधे पापं विद्यते शत्रुसूदन।

तस्मादिमं वधिष्यामि वानरं पापकारिणम्॥

(५।५२।११)

तदनन्तर श्रीविभीषणने रावणको अनेक प्रकारसे समझाया—हे राक्षसराज! दूतके किसी अङ्गको विरूप-विकृत कर देना, कोड़ेसे पिटवाना, सिर मुड़ा देना, शरीरको दागकर कोई चिह्न बना देना ये ही दण्ड दूतोंके लिये उचित कहे गये हैं; परन्तु वधका दण्ड तो कभी नहीं सुना है—

वैरूप्यमङ्गेषु कशाभिघातो मौण्ड्यं तथा लक्षणसन्निपातः।
एतान् हि दूते प्रवदन्ति दण्डान् वधस्तु दूतस्य न नः श्रुतोऽस्ति॥

(५।५२।१५)

श्रीविभीषणने कई युक्तियोंसे रावणको समझाया। तब रावणने कहा—हे विभीषण! तुम्हारा कहना उचित है। वास्तवमें दूतवध विगर्हित—निन्दित है; परन्तु वधके अतिरिक्त और कोई दण्ड देना चाहिये। वानरोंको पूँछ बहुत प्रिय होती है और पूँछ ही वानरका आभूषण भी है, अतः शीघ्रातिशीघ्र वानरकी पूँछ जला दो। जली पूँछ लेकर यहाँसे अपने स्वामीके पास जाय—

सम्यगुक्तं हि भवता दूतवध्या विगर्हिता।
अवश्यं तु वधायान्यः क्रियतामस्य निग्रहः॥
कपीनां किल लाङ्गूलमिष्टं भवति भूषणम्।
तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु॥

(५।५३।२-३)

.................................।
सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए॥
नाइ सीस करि बिनय बहूता।
नीति बिरोध न मारिअ दूता॥
आन दंड कछु करिअ गोसाँई।
सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥
सुनत बिहसि बोला दसकंधर।
अंग भंग करि पठइअ बंदर॥

कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ॥
पूँछहीन बानर तहँ जाइहि।
तब सठ निज नाथहिं लइ आइहि॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई।
देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई॥

रावणकी आज्ञासे राक्षसोंने पूँछमें वस्त्र लपेटनेके बाद तेलसे सींचकर आग लगा दी। श्रीहनुमान्‌जी अपनी जलती हुई पूँछसे ही राक्षसोंको मारने लगे—

तैलेन परिषिच्याथ तेऽग्निं तत्रोपपादयन्।
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन राक्षसांस्तानताडयत्॥

(५।५३।८)

राक्षसलोग रावणकी आज्ञासे पूँछमें आग लगानेके पश्चात् श्रीहनुमान्‌जीको समस्त लङ्कामें घुमाने लगे। श्रीहनुमान्‌जी आगे-आगे चल रहे थे, पीछे-पीछे राक्षस शङ्ख भेरी आदि बजाते हुए चल रहे थे। श्रीहनुमान्‌जी निर्भयतापूर्वक उत्साहसे लङ्काके दुर्गका भलीभाँति निरीक्षण करते हुए चल रहे थे।

नगरके नर-नारी अपनी-अपनी छतोंपरसे यह दृश्य देख रहे थे। श्रीहनुमान्‌जीकी मस्तीभरी चालसे यह परिज्ञात होता था कि मानो श्रीहनुमान्‌जीकी अपूर्व शोभायात्रा निकल रही है और लङ्का-निवासी दर्शन कर रहे हैं।

जिस समय श्रीहनुमान्‌जीकी पूँछमें आग लगायी जा रही थी, उसी समय भयङ्कर नेत्रोंवाली राक्षसियोंने श्रीसीताजीके पास जाकर यह अप्रिय समाचार सुनाया—हे सीते! जिस लाल मुखवाले वानरने आपसे वार्तालाप किया था, उसकी पूँछमें आग लगाकर उसे नगरमें चारों ओर घुमाया जा रहा है। इस क्रूर वचनको श्रवण करके श्रीसीताजी शोक-सन्तन्त हो गयीं। उस समय उन्हें उतना

ही क्लेश हुआ जितना क्लेश रावणके द्वारा अपहरणके दिन हुआ था। श्रीसीताजी मनसे अग्निदेवकी उपासना करने लगीं—

राक्षस्यस्ता विरूपाक्ष्यः शंसुर्देव्यास्तदप्रियम्।
यस्त्वया कृतसंवादः सीते ताम्रमुखः कपिः॥
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन स एष परिणीयते।
श्रुत्वा तद् वचनं क्रूरमात्मापहरणोपमम्॥
वैदेही शोकसन्तप्ता हुताशनमुपागमत्।

(५। ५३। २४—२६)

श्रीसीताजी परम वात्सल्यके कारण अपनी साधनाको स्मरण करके कहती हैं—हे अग्निदेव! यदि मैंने अपने पतिकी सेवा की है और यदि मुझमें किञ्चिन्मात्र भी तपस्या और पातिव्रत्यका बल है तो आप मेरे हनुमान्‌के लिये शीतल हो जायँ—

यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः।
यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः॥

(५। ५३। २७)

हे अग्निदेव! यदि परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामचन्द्रके मनमें मेरे प्रति किञ्चिन्मात्र भी दया है किं वा, यदि मेरा सौभाग्य शेष है तो आप मेरे हनुमान्‌के लिये शीतल हो जायँ—

यदि किञ्चिदनुक्रोशस्तस्य मय्यस्ति धीमतः।
यदि वा भाग्यशेषो मे शीतो भव हनूमतः॥

(५। ५३। २८)

पूँछमें आग लगनेपर श्रीहनुमान्‌जी सोचने लगे कि यह आग भलीभाँति प्रज्वलित होनेपर भी मुझे जला क्यों नहीं रही है?

दह्यमाने च लाङ्गूले चिन्तयामास वानरः।
प्रदीप्तोऽग्निरयं कस्मान्न मां दहति सर्वतः॥

(५। ५३। ३३)

रामायणशिरोमणि टीकाकार इस श्लोकका इस प्रकार अर्थ करते हैं—'**लाङ्गूले दह्यमाने दहिनो वह्नेः अमानः दाहगर्वाभावः यस्मिन्, अदह्यमाने सतीत्यर्थः। किञ्च लाङ्गूले लाङ्गूल सम्बन्धिपटे दह्यमाने सति वानरश्चिन्तयामास।**' अर्थात् दहिनका अर्थ अग्नि है। इस अग्निके अमान—जलानेके गर्वका अभाव जिसमें हो इस प्रकार अनुभव करके किं वा, पूँछमें लगे हुए वस्त्रके दह्यमान—प्रज्वलित होनेपर भी यह आग मुझे जला क्यों नहीं रही है? फिर श्रीहनुमान्‌जी सोचते हैं—करुणामयी श्रीसीताजीकी स्वाभाविकी अतिशय कृपासे, श्रीराघवेन्द्र सरकारके तेजसे और मेरे पिता श्रीपवनदेवके सख्य-सम्बन्धसे ही श्रीअग्निदेव मुझे जला नहीं रहे हैं—

सीतायाश्चानृशंस्येन तेजसा राघवस्य च।
पितुश्च मम सख्येन न मां दहति पावकः॥

(५। ५३। ३७)

श्रीहनुमान्‌जीने अपनी देहको ह्रस्व कर लिया—अत्यन्त सूक्ष्म बना लिया। देहके सूक्ष्म हो जानेके कारण शणवल्कल आदिके बन्धन स्वयं निकल गये। इस प्रकार बन्धनोंको दूर करके, बन्धनमुक्त हो करके पुनः पर्वताकार हो गये—

ह्रस्वतां परमां प्राप्तो बन्धनान्यवशातयत्।
विमुक्तश्चाभवच्छ्रीमान् पुनः पर्वतसन्निभः॥

(५। ५३। ४२)

पावक जरत देखि हनुमंता।
भयउ परम लघुरूप तुरंता॥
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं।
भईं सभीत निसाचर नारीं॥

श्रीहनुमान्‌जीने सोचा—प्रमदावनको तो मैंने पहले ही उजाड़ दिया था, लङ्काके बलवान् अनेक राक्षस भी मारे गये और लङ्काकी सेनाका एक अंश भी नष्ट हो गया। अब तो दुर्गका—पुरका विनाश अवशिष्ट है—

वनं तावत्प्रमथितं प्रकृष्टा राक्षसा हताः।

बलैकदेशः क्षपितः शेषं दुर्गविनाशनम्॥

(५।५४।३)

श्रीहनुमान्‌जी कृतज्ञतापूर्वक सोचते हैं—श्रीअग्निदेवका मेरे ऊपर कितना महान् उपकार है कि मुझे जला नहीं रहे हैं, अपितु हिमखण्डकी तरह शैतल्य प्रदान कर रहे हैं, अतः उत्तम गृहोंकी आहुति देकर इनका सन्तर्पण करना सर्वथा न्याय है—उचित है—

यो ह्ययं मम लाङ्गूले दीप्यते हव्यवाहनः।
अस्य संतर्पणं न्याय्यं कर्तुमेभिर्गृहोत्तमैः॥

(५।५४।५)

श्रीहनुमान्‌जीने विभीषणका घर छोड़कर सब घरोंमें क्रमशः अग्निका सञ्चार कर दिया—

वर्जयित्वा महातेजा विभीषणगृहं प्रति।
क्रममाणः क्रमेणैव ददाह हरिपुङ्गवः॥

(५।५४।१६)

जारा नगरु निमिष एक माहीं।
एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥
ता कर दूत अनल जेहिं सिरिजा।
जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥

वीरवर श्रीहनुमान्‌जी रावणके घरमें आग लगाकर प्रलयकालीन मेघकी भाँति गर्जना करने लगे—'**ननाद हनुमान् वीरो युगान्त जलदो यथा**'। वायुके संयोगसे प्रबल आग बड़े वेगसे बढ़ने लगी और कालाग्निकी तरह प्रज्वलित हो गयी—

श्वसनेन च संयोगादतिवेगो महाबलाः।
कालाग्निरिव जज्वाल प्रावर्धत हुताशनः॥

(५।५४।२१)

श्रीगोविन्दराजजी कहते हैं—'**पूर्वं रावणादि भीतावग्न्यनिलौ इदानीं राक्षसक्षयं देव बलोदयं च प्रत्यासन्नं विदित्वा निःशङ्कावभूतामिति भावः**'। पहले रावणके भयसे भयभीत अग्नि और वायु सम्प्रति राक्षसोंका विनाश और देवताओंके बलका समुदय जान करके शङ्कारहित हो गये। तिलक-टीकाकार लिखते हैं—'**श्वसनेन संयोगात् सीताश्वास-मिश्रित वायु संयोगात् अत एव वायोरपि निर्भयता**' अर्थात् '**श्वसन संयोगात्**' का अर्थ है— श्रीसीताजीके श्वाससे मिली हुई वायुके संयोगसे, इसलिये वायुदेव भी निर्भय होकर कार्य कर रहे हैं—

हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास॥

देह बिसाल परम हरुआई।
मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला।
झपट लपट बहु कोटि कराला॥

जिस प्रकार प्रलयङ्कर श्रीशङ्करने त्रिपुरका दहन किया था, उसी प्रकार महान् वेगशाली वानर श्रेष्ठ, महात्मा श्रीहनुमान्‌जीने लङ्कापुरीको दग्ध कर दिया—

हनूमता वेगवता वानरेण महात्मना।
लङ्कापुरं प्रदग्धं तद् रुद्रेण त्रिपुरं यथा॥

(५।५४।३०)

लंकामें चारों ओर करुण-क्रन्दन सुनायी पड़ रहा है। हा तात! हा पुत्र! हा कान्त! हा मित्र! हा प्राणेश्वर! हमारे समस्त पुण्य समाप्त हो गये। इस प्रकार भाँति-भाँतिसे विलाप करते हुए राक्षस, राक्षसीगण बड़ा भयावह और घोरतर आर्त्तनाद करने लगे—

हा तात हा पुत्रक कान्त मित्र हा जीवितेशाङ्ग हतं सुपुण्यम्।
रक्षोभिरेवं बहुधा ब्रुवद्भिः शब्दः कृतो घोरतरः सुभीमः॥

(५।५४।४०)

राक्षसोंके घरोंमें आग लगाकर श्रीहनुमान्‌जी कृतकृत्यताका अनुभव करते हुए मन-ही-मन श्रीरामजीकी शरणागति स्वीकार कर रहे हैं। भाव कि श्रीहनुमान्‌जी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए ठाकुरजीकी शरणमें गये कि आपने इतना

बड़ा और दुष्कर कर्म मुझसे करा लिया, अथवा, इतने लोगोंका आर्त्तनाद और चीत्कार सुनकर ठाकुरजीकी शरणमें गये कि हे प्रभो! आपने जो प्रेरणा की वह कार्य हो गया। हे अन्तर्यामिन्! यदि कुछ अनुचित हो गया तो आप सँभाल लें—'**विसृज्य रक्षोभवनेषु चाग्निं जगाम रामं मनसा महात्मा**'॥ समस्त लङ्काको व्यथित करके वानरशिरोमणि महाकपि श्रीहनुमान्‌जीने समुद्रके जलमें कूदकर अपनी पूँछकी आग शान्त कर ली—

लङ्कां समस्तां सम्पीड्य लाङ्गूलाग्निं महाकपिः।
निर्वापयामास तदा समुद्रे हरिपुङ्गवः॥

(५। ५४। ४९)

उलटि पलटि लंका सब जारी।
कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥
पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता के आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि॥

(श्रीरामचरितमानस ५। २६। ८, दो० २६)

समस्त लङ्काको ज्वालाजालमें धधकते हुए देखकर श्रीहनुमान्‌जीके मनमें महती चिन्ता उत्पन्न हो गयी कि कहीं इस भयङ्कर अग्निकाण्डमें श्रीसीताजी भी दग्ध न हो गयी हों? हाय! हाय! मैंने यह अत्यन्त जघन्य कर्म कर डाला!

वे महात्मा धन्य हैं जो किसी कारणसे समुत्थ क्रोधको बुद्धिके द्वारा उसी तरह रोक लेते हैं, जिस तरह लोग अग्निको जलसे शान्त कर देते हैं—

धन्याः खलु महात्मानो ये बुद्ध्या कोपमुत्थितम्।
निरुन्धन्ति महात्मानो दीप्तमग्निमिवाम्भसा॥

(५। ५५। ३)

यह क्रोध भी कितना दुष्ट होता है? क्रोधी व्यक्ति कौन-सा पाप नहीं कर डालता? क्रोधी क्रोधमें गुरुजनोंकी भी हत्या कर बैठता है। क्रोधीको इस बातका विचार नहीं होता है कि क्या वाच्य है और क्या कुवाच्य—क्या कहना चाहिये और क्या नहीं कहना चाहिये। समस्त बुरे कार्य क्रोधी कर सकता है और समस्त कुवाच्य क्रोधी बोल सकता है—

वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित्।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित्॥

(५। ५५। ५)

हा हन्त! जिस कार्यकी सिद्धिके लिये यह सारा प्रयत्न किया गया, उसे मैंने ही नष्ट कर दिया, क्योंकि लङ्का जलाते समय मैंने श्रीसीताकी रक्षा नहीं की—

यदर्थमयमारम्भस्तत्कार्यमवसादितम्।
मया हि दहता लङ्कां न सीता परिरक्षिता॥

(५। ५५। ९)

हा हन्त! मुझे धिक्कार है, मेरी बुद्धि दुष्ट है, मैं निर्लज्ज और पापी हूँ, मैंने श्रीसीताजीकी रक्षाका प्रबन्ध किये बिना लङ्कामें आग लगा दी। इस तरह मैंने अपने स्वामीकी ही हत्या कर डाली। हा हन्त! मैं क्या करूँ? जलती आगमें कूद पड़ूँ? किं वा, बड़वानलके मुखमें? किं बहुना समुद्रमें निवास करनेवाले प्राणियोंको ही अपना शरीर समर्पित कर दूँ?

किमग्नौ निपताम्यद्य आहोस्विद् वडवामुखे।
शरीरमिह सत्त्वानां दद्मि सागरवासिनाम्॥

(५। ५५। १३)

थोड़ी देरमें श्रीहनुमान्‌जीको शुभ शकुन दिखायी पड़े, तब उन्होंने सोचा कि मैं क्या सोच रहा हूँ? श्रीसीताजी तो महान् हैं। वे अपने तपोबल, सत्यभाषण और पातिव्रत्यके प्रभावसे अग्निको भले ही जला दें; परन्तु अग्निमें इतनी सामर्थ्य नहीं कि वह उनको जला सके। जो श्रीभरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न तीनों भाइयोंकी

आराध्य देवी हैं और श्रीरामचन्द्रजीकी प्राणवल्लभा हैं, वे अग्निसे कैसे नष्ट हो सकेंगी?

त्रयाणां भरतादीनां भ्रातॄणां देवता च या।
रामस्य च मनःकान्ता सा कथं विनशिष्यति॥

(५। ५५। २५)

श्रीहनुमान्‌जी इस प्रकार सोच ही रहे थे कि वहाँ महात्मा, चारणोंके मुखसे ये बातें सुनीं—अहो! श्रीहनुमान्‌जीने राक्षसोंके घरोंमें दुस्सह एवं भयङ्कर आग लगाकर अत्यन्त अद्भुत और दुष्कर कार्य सम्पन्न किया है। अट्टालिकाओंपर कोटों और नगरके द्वारोंसहित समस्त लङ्कानगरी जल गयी, परन्तु सीताजी नहीं जलीं। यह हमारे लिये विस्मयकी बात है—

दग्धेयं नगरी लङ्का साट्टप्राकारतोरणा।
जानकी न च दग्धेति विस्मयोऽद्भुत एव नः॥

(५। ५५। ३२)

चारणोंकी बात सुनकर श्रीहनुमान्‌जी बहुत प्रसन्न हुए और माता सीताका प्रत्यक्ष दर्शन करनेके लिये पुनः अशोकवाटिकामें गये। वहाँ माताजीको विराजमान देखकर प्रसन्न होकर श्रीहनुमान्‌जीने प्रणाम किया। प्रणाम करके श्रीहनुमान्‌जीने कहा—सौभाग्यकी बात है कि इस समय मैं आपको सकुशल देख रहा हूँ—

ततस्तु शिंशपामूले जानकीं पर्यवस्थिताम्।
अभिवाद्याब्रवीद् दिष्ट्या पश्यामि त्वामिहाक्षताम्॥

(५। ५६। १)

माता श्रीसीताने स्नेह विह्वल स्वरमें कहा—हे पुत्र! यदि सम्भव हो और उचित समझो तो किसी गुप्त स्थानमें एक दिन और रुक जाओ। बहुत बड़ा कार्य किया है, थक गये होगे, एक दिनका विश्राम मिल जायगा, फिर चले जाना। तुम्हारे रहनेसे मुझ अभागिनीका अपार विरह-दुःख थोड़ी देरके लिये कम हो जायगा। हे कपिश्रेष्ठ! हे वानरशार्दूल! तुम्हारे जानेके पश्चात् पुनः तुम्हारे आनेतक मैं जीवित रहूँगी या नहीं इसका कोई विश्वास नहीं है। हे वीरपुत्र! उत्तरोत्तर दुःखोंके आते रहनेसे मैं जर्जर हो गयी हूँ। मेरा मन भी शोकके कारण उत्तरोत्तर दुर्बल हो गया है। हे पुत्र! हे हनुमान्! अब तुम्हारा वियोग मेरे हृदयको और भी विदीर्ण करता रहेगा। हा हन्त! अब मैं अपने प्राणोंकी रक्षा कैसे करूँगी?

कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना।
तुम्हहू तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतलि भइ छाती।
पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सो राती॥
जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह॥

(श्रीरामचरितमानस ५। २७। ७-८, दो० २७)

मम चैवाल्पभाग्यायाः सान्निध्यात् तव वानर।
शोकस्यास्याप्रमेयस्य मुहूर्त्तं स्यादपि क्षयः॥
गते हि हरिशार्दूल पुनः सम्प्राप्तये त्वयि।
प्राणेष्वपि न विश्वासो मम वानरपुङ्गव॥
अदर्शनं च ते वीर भूयो मां दारयिष्यति।
दुःखाद् दुःखतरं प्राप्तां दुर्मनः शोककर्शिताम्॥

(५। ५६। ४-६)

श्रीहनुमान्‌जीने अपने प्रकारसे श्रीसीताजीको समझाते हुए कहा—हे मातः! आप आश्वस्त हों—धैर्य धारण करें, आपका मङ्गल होगा। आप अनुकूल समयकी प्रतीक्षा करें। आप अपनी आँखोंसे शीघ्र देखेंगी कि श्रीरामचन्द्रजीने समराङ्गणमें रावणको मार डाला है—

समाश्वसिहि भद्रं ते भव त्वं कालकाङ्क्षिणी।
क्षिप्रं द्रक्ष्यसि रामेण निहतं रावणं रणे॥

(५। ५६। १९)

इस प्रकार श्रीसीताजीको आश्वासन देकर

श्रीहनुमान्‌जीने जानेका विचार करके श्रीसीताजीको प्रणाम किया—

एवमाश्वास्य वैदेहीं हनूमान् मारुतात्मजः।
गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीमभ्यवादयत्॥

(५। ५६। २२)

जिस महासागरकी उत्ताल तरङ्गें अपने किनारोंका स्पर्श कर रही थीं, उस लवण सागरको लीलापूर्वक—अनायासेन लाँघनेकी इच्छासे महावीर श्रीहनुमान्‌जी आकाशमें उड़ चले—

स लिलङ्घयिषुर्भीमं सलीलं लवणार्णवम्।
कल्लोलास्फालवेलान्तमुत्पपात नभो हरिः॥

(५। ५६। ५१)

समुद्रके उत्तर तटके निकट आकर श्रीहनुमान्‌जीने प्रसन्नतासूचक गर्जना की। उस गर्जनाको सुनकर वानरोंको नवजीवन मिल गया। वे अपने परम हितैषी श्रीहनुमान्‌जीका दर्शन करनेके लिये परम उत्कण्ठित हो गये—

बभूवुरुत्सुकाः सर्वे सुहृद्दर्शनकाङ्क्षिणः॥

(५। ५७। २१)

हरिश्रेष्ठ श्रीजाम्बवान्‌जी—प्रीतिसंहृष्टमानस श्रीजाम्बवान्‌जी सभी वानरोंको निकट बुलाकर इस प्रकार बोले—हे वानरो! निःसन्देह श्रीहनुमान्‌जी कृतकार्य हैं—वे अपना कार्य भलीभाँति सम्पन्न करके आ रहे हैं, अन्यथा इस प्रकारकी गर्जना नहीं हो सकती है—

सर्वथा कृतकार्योऽसौ हनूमान् नात्र संशयः।
न ह्यस्याकृतकार्यस्य नाद एवंविधो भवेत्॥

(५। ५७। २३)

सब वानर श्रीहनुमान्‌जीके दर्शनकी अभिलाषासे उत्साहपूर्वक एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर तथा एक शिखरसे दूसरे शिखरपर चढ़ने लगे—

ते नगाग्रान्नगाग्राणि शिखराच्छिखराणि च।
प्रहृष्टाः समपद्यन्त हनूमन्तं दिदृक्षवः॥

(५। ५७। २५)

समस्त वानर आदर और श्रद्धासे परिपूर्ण हृदय लेकर श्रीहनुमान्‌जीका स्वागत करनेके लिये बद्धाञ्जलि होकर खड़े हो गये। श्रीहनुमान्‌जी छिन्नपक्ष पर्वतकी तरह आकाशसे नीचे आ गये—

छिन्नपक्ष इवाकाशात् पपात धरणीधरः॥

(५। ५७। ३०)

उस क्षार समुद्रके तटपर मधुर फल दुर्लभ थे, परन्तु सब वानर श्रीहनुमान्‌जीको फलमूल आदि समर्पण करके उनका स्वागत करने लगे। कोई प्रमुदित मनसे गर्जना करने लगे, कोई वानर-जातिकी प्रसन्नताकी अभिव्यक्ति करनेवाला किलकिला शब्द करने लगे और कुछ श्रेष्ठ वानर प्रसन्न होकर श्रीहनुमान्‌जीके बैठनेके लिये वृक्षोंकी शाखाएँ तोड़ लाये। महाकपि श्रीहनुमान्‌जीने जाम्बवान् आदि वृद्ध गुरुजनोंकी तथा युवराज अङ्गदकी वन्दना की—

हनूमांस्तु गुरून् वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्तदा।
कुमारमङ्गदं चैव सोऽवन्दत महाकपिः॥

(५। ५७। ३५)

सफलताप्राप्तिके पश्चात् दुष्ट, कुसंस्कारी और अननुशासित व्यक्तिमें औद्धत्य आ जाता है। इसके विपरीत जिसके संस्कार अच्छे होते हैं, जो शिष्ट होता है, अनुशासित होता है और जिसमें वैष्णवता होती है, वह विनम्र हो जाता है। इस प्रसङ्गमें श्रीहनुमान्‌जीकी विनम्रता मननीय एवं अनुकरणीय है।

तत्पश्चात् श्रीहनुमान्‌जीने स्वस्थ होकर संक्षेपमें निवेदन किया कि मुझे श्रीसीताजीके मङ्गलमय दर्शन हो गये— **'दृष्टा देवीति विक्रान्तः सङ्क्षेपेण न्यवेदयत्'**। यह संवाद सुनकर सभी वानरश्रेष्ठ अतिशय प्रसन्न हो गये। श्रीअङ्गदने कहा—हे हनुमान्‌जी! बल और पराक्रममें आपके समान कोई नहीं है, क्योंकि आप इस महासागरके

उस पार जाकर पुनः लौट आये। हे वानरोत्तम! आप हम सबके जीवनरक्षक हैं। आपकी कृपासे हमलोग सिद्धार्थ होकर—सफलमनोरथ होकर श्रीरामचन्द्रजीके श्रीचरणोंका दर्शन करेंगे। हे हनुमान्‌जी! स्वामी श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें आपकी भक्ति अनोखी है। आपका बल, उत्साह, धैर्य भी अद्‌भुत है—

सत्त्वे वीर्ये न ते कश्चित् समो वानर विद्यते॥
यदवप्लुत्य विस्तीर्णं सागरं पुनरागतः।
जीवितस्य प्रदाता नस्त्वमेको वानरोत्तम॥
त्वत्प्रसादात् समेष्यामः सिद्धार्था राघवेण ह।
अहो स्वामिनि ते भक्तिरहो वीर्यमहो धृतिः॥

(५।५७।४५—४७)

इसके पश्चात् श्रीजाम्बवान्‌ने श्रीहनुमान्‌से पूछा—तुमने श्रीसीताजीको कैसे देखा? वे वहाँ किस तरह रहती हैं? क्रूरकर्मा दशाननका उनके प्रति कैसा व्यवहार है? तुम इन बातोंका विस्तारपूर्वक वर्णन करो—

जाम्बवान् कार्यवृत्तान्तमपृच्छदनिलात्मजम्।
कथं दृष्टा त्वया देवी कथं वा तत्र वर्तते॥
तस्यां चापि कथं वृत्तः क्रूरकर्मा दशाननः।
तत्त्वतः सर्वमेतन्नः प्रब्रूहि त्वं महाकपे॥

(५।५८।३-४)

इस प्रकार और भी प्रश्न किये। श्रीजाम्बवान्‌के द्वारा प्रेरित करनेपर श्रीहनुमान्‌जीके शरीरमें करुणामयी श्रीजनकनन्दिनीका स्मरण करके पुलकावली छा गयी। सम्प्रहृष्टतनूरुह श्रीहनुमान्‌जी भगवतीभास्वती श्रीसीतादेवीको मन-ही-मन प्रणाम करके बोले—

स नियुक्तस्ततस्तेन सम्प्रहृष्टतनूरुहः।
नमस्यञ्शिरसा देव्यै सीतायै प्रत्यभाषत॥

(५।५८।७)

समुद्रके मध्यमें मैनाक मिला, सुरसा मिली और सिंहिका मिली। लङ्कामें प्रवेश करते ही लङ्किनी मिली। श्रीहनुमान्‌जीने इनके व्यवहारोंका वर्णन किया। अशोकवाटिकामें श्रीजानकीजीकी स्थिति सुनायी। रावणके आगमन और सीताजीके फटकारनेकी कथा सुनायी। त्रिजटाके स्वप्नकी कथा सुनायी और यह भी सुनाया कि करुणामयी श्रीसीताजीने दुःख देनेवाली राक्षसियोंको क्षमा कर दिया। श्रीसीताजीके दर्शन और उनसे सम्भाषणकी कथा सुनायी। चूड़ामणि लेकर, लङ्का जलाकर, यहाँतक पहुँचनेका समस्त वृत्तान्त श्रीहनुमान्‌जीने सुना दिया। श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे वानरश्रेष्ठो! श्रीसीताजी भूमिपर शयन करती हैं और वे मरनेका निश्चय किये बैठी हैं। महिमामयी श्रीसीताजी प्रकृतिसे ही दुबली-पतली हैं, फिर श्रीरामजीके वियोगसे और कृश हो गयी हैं, जिस प्रकार प्रतिपदाको पाठ पढ़नेवाले विद्यार्थीकी विद्या दुर्बल हो जाती है, उसी प्रकार श्रीसीताजीका शरीर भी अत्यन्त कृश हो गया है—

सा प्रकृत्यैव तन्वङ्गी तद्वियोगाच्च कर्शिता।
प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुतां गता॥

(५।५९।३१)

श्रीहनुमान्‌जीके मुखसे श्रीसीताजीकी करुण दशा सुनकर श्रीअङ्गदने कहा—हमलोग राक्षसोंके समूहके साथ लङ्काको जीत करके, समराङ्गणमें रावणको मार करके, श्रीसीताजीको साथमें ले करके सिद्धार्थ एवं हृष्टचित्त होकर श्रीरामजीके पास चलेंगे—

जित्वा लङ्कां सरक्षौघां हत्वा तं रावणं रणे।
सीतामादाय गच्छामः सिद्धार्था हृष्टमानसाः॥

(५।६०।१०)

इस प्रकार श्रीअङ्गदजीका निश्चय जानकर श्रीजाम्बवान्‌ने बड़ी युक्तियुक्त सार्थक बात कही—हे महाकपे! तुम बहुत बुद्धिमान् हो; परन्तु इस समय जो सङ्कल्प कर रहे हो, वह बुद्धिमत्तापूर्ण

नहीं है। हमें श्रीरामजीने या सुग्रीवजीने केवल श्रीसीताजीका पता लगानेकी आज्ञा दी है, साथमें ले आनेकी आज्ञा नहीं है—

नैषा बुद्धिर्महाबुद्धे यद् ब्रवीषि महाकपे।
विचेतुं वयमाज्ञप्ता दक्षिणां दिशमुत्तमाम्॥
नानेतुं कपिराजेन नैव रामेण धीमता।

(५। ६०। १५-१६)

एतना करहु तात तुम्ह जाई।
सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥
तब निज भुज बल राजिवनैना।
कौतुक लागि संग कपि सेना॥
कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं।
त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

(श्रीरामचरितमानस ४। ३०। ११-१२, छं० ३०)

श्रीजाम्बवान्की उचित बातको अङ्गदप्रमुख सभी वीर वानरोंने तथा महाकपि श्रीहनुमान्जीने भी स्वीकार कर लिया—

ततो जाम्बवतो वाक्यमगृह्णन्त वनौकसः।
अङ्गदप्रमुखा वीरा हनूमांश्च महाकपिः॥

(५। ६१। १)

इस प्रसङ्गसे शिक्षा लेनी चाहिये कि वृद्ध पुरुषको अपने साथ रखना चाहिये और उनकी बातका आदर करना चाहिये। यदि इस समय श्रीजाम्बवान्जी न होते तो अनर्थ हो जाता।

अब तो समस्त वानर बड़े उत्साहसे उछलते-कूदते श्रीहनुमान्जीकी प्रशंसा करते हुए सैकड़ों वृक्षोंसे परिपूर्ण एक सुन्दर वनमें पहुँच गये। वह वन नन्दनवनके समान सुशोभन था—

प्लवमानाः खमाप्लुत्य ततस्ते काननौकसः।
नन्दनोपममासेदुर्वनं द्रुमशतायुतम्॥

(५। ६१। ७)

चले हरषि रघुनायक पासा।
पूँछत कहत नवल इतिहासा॥

उस वनका नाम मधुवन था। वह श्रीसुग्रीव-के द्वारा सुरक्षित था। कपिश्रेष्ठ महात्मा सुग्रीवके मामा महाबली दधिमुख नामके वानर उस वनकी सदा रक्षा करते थे—

यद् रक्षति महावीरः सदा दधिमुखः कपिः।
मातुलः कपिमुख्यस्य सुग्रीवस्य महात्मनः॥

(५। ६१। ९)

सब लोगोंने मधुवनमें फल खानेकी और मधु पीनेकी इच्छा प्रकट की। श्रीअङ्गदजीने जाम्बवान् आदि वृद्धोंकी अनुमति लेकर सबको मधु पीनेकी आज्ञा दे दी—

ततः कुमारस्तान् वृद्धाञ्जाम्बवत् प्रमुखान् कपीन्।
अनुमान्य ददौ तेषां निसर्गं मधुभक्षणे॥

(५। ६१। १२)

तब मधुबन भीतर सब आए।
अंगद संमत मधु फल खाए॥

अब वानरलोग गाते थे, हँसते थे, नाचते थे, उछलते और कूदते थे। इस प्रकार मस्त होकर उत्साहपूर्वक फल खाने लगे और मधु पीने लगे। जब वानरोंको वनके रक्षक बलपूर्वक रोकनेका प्रयत्न करने लगे, तब वे वानर रक्षकोंको नखोंसे बकोटने लगे, दाँतोंसे काटने लगे तथा लातोंसे और थप्पड़ोंसे मारने लगे। इस प्रकार वानरोंने उस महावनको फल आदिसे रहित कर दिया—

नखैस्तुदन्तो दशनैर्दशन्तस्तलैश्च पादैश्च समापयन्तः।
मदात् कपिं ते कपयः समन्तान्महावनं निर्विषयं च चक्रुः॥

(५। ६१। २४)

रखवारे जब बरजन लागे।
मुष्टि प्रहार हनत सब भागे॥

वानरेन्द्र सुग्रीवके पास जाकर बद्धाञ्जलि

होकर वनके रक्षक दधिमुखने दीनमुख होकर चरणोंमें प्रणाम किया—

स दीनवदनो भूत्वा कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्।
सुग्रीवस्याशु तौ मूर्ध्ना चरणौ प्रत्यपीडयत्॥

(५। ६२। ३८)

दधिमुखने श्रीसुग्रीवसे कहा—हे राजन्! आपके पिता ऋक्षरजा तथा वाली और आपने पहले कभी मधुवनके मनमाना उपभोगकी इस प्रकार आज्ञा कभी नहीं दी थी। आज उसी मधुवनका हनूमान् आदि वानरोंने नाश कर दिया—

नैवर्क्षरजसा राजन् न त्वया न च वालिना।
वनं निसृष्टपूर्वं ते नाशितं तत्तु वानरैः॥

(५। ६३। ५)

हे राजन्! मैंने वनरक्षक वानरोंके साथ उन सबको रोकनेके अनेक प्रयास किये, परन्तु उन लोगोंने हमारी बातका आदर नहीं किया। उन लोगोंने किसीको हाथोंसे—तमाचोंसे मारा, किन्हींको घुटनोंसे घायल कर दिया, अनेक लोगोंको मनमाना घसीटा और कितनोंको पीठके बल पटककर देवमार्ग—आकाश दिखा दिया—

पाणिभिर्निहताः केचित् केचिज्जानुभिराहताः।
प्रकृष्टाश्च तदा कामं देवमार्गं च दर्शिताः॥

(५। ६३। ११)

वनरक्षक दधिमुखकी बात सुनकर श्रीसुग्रीवको महान् हर्ष हुआ। उन्होंने दधिमुखसे कहा—हे मामाजी! आपके मुखसे यह समाचार सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ; अतः आपको भी उन्हें क्षमा कर देना चाहिये, क्योंकि अङ्गदादि कपिश्रेष्ठ श्रीरामजीका कार्य सम्पन्न करके लौटे हैं। अब आप यहाँसे जल्दी मधुवन जाइये। मधुवनकी रक्षा भी आप ही करें। हे मामाजी! अङ्गद आदि समस्त वानरोंको शीघ्र ही मेरे पास भेज दें—

गच्छ शीघ्रं मधुवनं संरक्षस्व त्वमेव हि।
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तान् हनूमत्प्रमुखान् कपीन्॥

(५। ६३। ३१)

वनरक्षक वानरश्रेष्ठ दधिमुख मधुवन जा करके श्रीअङ्गदकुमारसे कोमल वाणीमें बोले—हे सौम्य! रक्षकोंने अज्ञानवश आपलोगोंको मधुपानके लिए रोका था, इस अनुचित कार्यके लिये आप क्रोध न करें—क्षमा करें—

स तानुपागमद् वीरो बद्ध्वा करपुटाञ्जलिम्।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमिदं हृष्टवदङ्गदम्॥
सौम्य रोषो न कर्तव्यो यदेभिः परिवारणम्।
अज्ञानाद् रक्षिभिः क्रोधाद् भवन्तः प्रतिषेधिताः॥

(५। ६४। ५-६)

जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज।
सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज॥

(श्रीरामचरितमानस ५। २८)

जौं न होति सीता सुधि पाई।
मधुबन के फल सकहिं कि खाई॥

हे अनघ युवराज! आपके आगमनका समाचार सुनकर आपके पितृव्य बहुत प्रसन्न हैं। वनविध्वंसका समाचार सुनकर भी वे रुष्ट नहीं हुए। हे युवराज! वानरेश्वर सुग्रीवने प्रसन्नतापूर्वक कहा है कि सब वीर वानरोंको मेरे पास शीघ्र भेजो—

भवदागमनं श्रुत्वा सहैभिर्वनचारिभिः॥
प्रहृष्टो न तु रुष्टोऽसौ वनं श्रुत्वा प्रधर्षितम्।
प्रहृष्टो मां पितृव्यस्ते सुग्रीवो वानरेश्वरः॥
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तानिति होवाच पार्थिवः।

(५। ६४। १०—१२)

इधर श्रीसुग्रीवजी श्रीरामजीसे कह रहे हैं—हे रघुनन्दन! जिस दलके नेता श्रीजाम्बवान् और हरीश्वर अङ्गद हों तथा अधिष्ठाता—संरक्षक श्रीहनुमान् हों, उस दलको विपरीत परिणाम-असफलता मिल ही नहीं सकती है।

हे अमित पराक्रमशाली श्रीरामजी! अब आप चिन्ता न करें—

जाम्बवान् यत्र नेता स्यादङ्गदश्च हरीश्वरः॥
हनूमांश्चाप्यधिष्ठाता न तत्र गतिरन्यथा।
मा भूश्चिन्तासमायुक्तः सम्प्रत्यमितविक्रम॥

(५। ६४। ३४-३५)

इस प्रकार बतकही हो ही रही थी कि श्रीरामजीके दर्शनकी प्रबल आकाङ्क्षासे श्रीअङ्गद और श्रीहनुमान्‌जीको आगे करके समस्त वानर आ गये—

आजग्मुस्तेपि हरयो रामदर्शनकाङ्क्षिणः।
अङ्गदं पुरतः कृत्वा हनूमन्तं च वानरम्॥

(५। ६४। ४०)

एहि बिधि मन बिचार कर राजा।
आइ गए कपि सहित समाजा॥

महाबाहु श्रीहनुमान्‌जीने श्रीराघवेन्द्र सरकार-के श्रीचरणोंमें शिरसा प्रणाम करके—साष्टाङ्ग दण्डवत् करके श्रीसीताजीका समाचार बताया कि वे नियता और अक्षता हैं—

हनूमांश्च महाबाहुः प्रणम्य शिरसा ततः।
नियतामक्षतां देवीं राघवाय न्यवेदयत्॥

(५। ६४। ४२)

'**नियताम्**' का अर्थ है— '**पातिव्रत्य सम्पन्नाम्**' अर्थात् श्रीसीताजीने अपने पातिव्रत्य-धर्ममें किसी प्रकारकी कमी नहीं आने दी है। '**अक्षताम्**' का अर्थ है— '**शरीरेण कुशलिनीम्**' अर्थात् श्रीसीताजी शरीरसे कुशल हैं। अथवा '**नियताम्**' का अर्थ है—'**यतचित्ताम्**' अर्थात् उनके चित्तकी वृत्ति संयत है। '**अक्षताम्**' का अर्थ है— '**विनाशरहितम्**'। श्रीगोविन्दराजजी कहते हैं— '**अक्षतत्वेऽपि अनियतत्वे वैयर्थ्यम् नियतत्वेऽपि क्षतत्वे च तथा ततः आवश्यकमुभयं सङ्ग्रहेण दर्शयति**'। अर्थात् अक्षत होनेपर भी यदि नियत नहीं है तो अक्षतत्व व्यर्थ है, उसी प्रकार नियत होनेपर भी यदि अक्षतत्व नहीं है तो वह भी व्यर्थ है, एतावता दोनोंका होना आवश्यक है। श्रीहनुमान्‌जीके मुखसे यह अमृतके समान अत्यन्त मधुर शब्द 'मैंने देवी सीताका दर्शन किया है' सुनकर श्रीलक्ष्मण-सहित श्रीरामजी अत्यन्त प्रसन्न हुए—

दृष्टा देवीति हनुमद्वदनादमृतोपमम्।
आकर्ण्य वचनं रामो हर्षमाप सलक्ष्मणः॥

(५। ६४। ४३)

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले श्रीराघवेन्द्र प्रभुने परमप्रीति और महान् सम्मानके साथ श्रीहनुमान्‌जीको निमेषोन्मेषवर्जित अपलक नेत्रों-से देखा—

प्रीत्या च परयोपेतो राघवः परवीरहा।
बहुमानेन महता हनूमन्तमवैक्षत॥

(५। ६४। ४५)

पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता।
लोचन नीर पुलक अति गाता॥

भगवान्‌के देखनेका भाव—(१) इतना महान् कार्य सम्पन्न करके आये हैं, इनके श्रीअङ्गपर कहीं कोई घाव तो नहीं हो गया है। इस अपूर्व वात्सल्यदृष्टिसे देखा। (२) करुणामय श्रीरामचन्द्रजी स्नेहिल भाषामें—मूक भाषामें कहते हैं कि हे हनुमन्! तुम्हारे इस कार्यके विनिमयमें मेरे पास देनेके लिये कुछ भी नहीं है; अतः मेरी जिस कृपाकटाक्षकी उपलब्धिके लिये बड़े-बड़े देवता तरसते रहते हैं और प्रार्थना करते हैं— '**मामवलोकय पंकज लोचन। कृपाबिलोकनि सोच बिमोचन**'॥ (श्रीनारदजी)। '**रघुनंदन निकंदय द्वंद्वघनं। महिपाल बिलोकय दीन जनं**'॥ (श्रीशङ्करजी)। वह देवदुर्लभ कृपाकटाक्ष आज मैं तुम्हें स्वयं प्रदान कर रहा हूँ। (३) हे हनुमन्! आज तुमने अपनी भक्तिसे मुझे जीत लिया है;

अतः लोग मुझे देखते हैं परन्तु मैं तुम्हें देखता हूँ। (४) देखनेसे मन तृप्त नहीं हो रहा है; अतः दृष्टि हट ही नहीं रही है। (५) भगवती भास्वती करुणामयी श्रीसीताजीके कृपापात्र पुत्रको देखकर श्रीजानकीजीके दर्शनका-सा सुख मिल रहा है। (६) हे हनुमन्! तुम श्रीसीताका दर्शन करके आये हो, उनके विशेष कृपाभाजन बनकर आ रहे हो, एतावता मेरी कृपाकटाक्षके अब तुम सहज ही पात्र बन गये हो। (७) हे हनुमन्! आज तुम किशोरी कृपामण्डनसे मण्डित हो; अतः मुझे बहुत अच्छे लग रहे हो।

श्रीरामजीने वानरोंसे प्रश्न किया—हे वानरो! श्रीसीता देवी कहाँ हैं? मेरे प्रति उनका कैसा भाव है? श्रीसीतासे सम्बन्धित समस्त संवाद मुझे सुनाओ—

क्व सीता वर्तते देवी कथं च मयि वर्तते।
एतन्मे सर्वमाख्यात वैदेहीं प्रति वानराः॥

(५। ६५। ५)

श्रीरामजीका प्रश्न सुनकर समस्त वानर सीतावृत्तान्तकोविद श्रीहनुमान्जीको भगवान्के प्रश्नका उत्तर देनेके लिये प्रेरित करने लगे—

रामस्य गदितं श्रुत्वा हरयो रामसंनिधौ।
चोदयन्ति हनूमन्तं सीतावृत्तान्तकोविदम्॥

(५। ६५। ६)

आज श्रीहनुमान्जीको श्रीवाल्मीकिजीने एक विशेष उपाधि प्रदान की है। श्रीहनुमान्जी वैसे तो श्रीरामकथाका प्रत्येक भाग अच्छी तरह निरूपित करते हैं, परन्तु श्रीसीतासम्बन्धी कथा कहनेमें उन्होंने विशेष योग्यता प्राप्त कर ली है; अतः श्रीजाम्बवान् अङ्गदजी आदि वानरशिरोमणि भक्त श्रीहनुमान्जीको आज '**सीतावृत्तान्तकोविद**' की उपाधि प्रदान कर रहे हैं।

मारुतात्मज—श्रीसीतावृत्तान्त निवेदन करनेमें सक्षम श्रीहनुमान्जीने वानरोंका प्रेरणापूर्ण वचन सुनकर मनमें श्रीसीताजीका ध्यान करके श्रीसीताजीको तथा जिस दिशामें श्रीसीताजी रहती हैं, उस दिशाको विनम्रतापूर्वक वन्दन किया—

श्रुत्वा तु वचनं तेषां हनूमान् मारुतात्मजः।
प्रणम्य शिरसा देव्यै सीतायै तां दिशं प्रति॥

(५। ६५। ७)

श्रीहनुमान्जीने भगवान् श्रीरामको श्रीसीताके दर्शन जिस प्रकार हुए थे, वह सब वृत्तान्त सुना दिया और अपने तेजसे प्रकाशित होनेवाली दिव्य चूड़ामणि भी भगवान् श्रीरामको देकर बद्धाञ्जलि होकर बोले—हे महाप्राज्ञ! हे रघुनन्दन! चित्रकूटमें एक कौवेके सम्बन्धमें जो घटना घटी थी, उस चरित्रको श्रीसीतामाताने अभिज्ञान—पहचानके रूपमें मुझे दिया था। अर्थात् उन्होंने इन्द्रपुत्र जयन्त जो काक बनकर आया था, उसकी कथा सुनाकर उसे श्रेष्ठ अभिज्ञान बताया—

अभिज्ञानं च मे दत्तं यथावृत्तं तवान्तिके।
चित्रकूटे महाप्राज्ञ वायसं प्रति राघव॥

(५। ६५। २०)

राजकुमार श्रीराम-लक्ष्मण श्रीसीताजीके-समाचारसे आश्वस्त हो गये हैं, यह जानकर चूड़ामणिका अभिज्ञान श्रीरामजीके हस्तकमलमें देकर पवन-नन्दन श्रीहनुमान्जीने देवी श्रीसीताजीके द्वारा कथित समस्त सन्देश एवं अपनी यात्राका वृत्तान्त अपनी वाणीके द्वारा कहकर श्रीरामजीको सुना दिया—

तौ जाताश्वासौ राजपुत्रौ विदित्वा तच्चाभिज्ञानं राघवाय प्रदाय।
देव्या चाख्यातं सर्वमेवानुपूर्व्याद् वाचा सम्पूर्णं वायुपुत्रः शशंस॥

(५। ६५। २८)

श्रीगोविन्दराजजी लिखते हैं—'**समुद्रतरणे सुरसा निरसनादिकं अक्षवध लङ्का दहनादिकं सजातीयेभ्यः**

पूर्वमुक्तमपि प्रभु सन्निधावात्मश्लाघायां पर्यवस्येदिति नोक्तमिति ध्येयम्'। अर्थात् समुद्रसन्तरणके समय सुरसा निरसनका प्रसङ्ग, सिंहिकाका प्रसङ्ग, लङ्किनीका प्रसङ्ग, अक्षकुमार-वध, अनेक राक्षसोंका विनाश, प्रमदावन-विध्वंस और लङ्कादहन आदि प्रसङ्ग यद्यपि पहले श्रीजाम्बवान्, अङ्गद आदिके समक्ष श्रीहनुमान्ने कहा था; परन्तु अपने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके सामने उन चरित्रोंको नहीं कहा, क्योंकि उनका पर्यवसान आत्मश्लाघामें है। इस चरित्रसे यह शिक्षा मिलती है कि अपनेसे बड़ोंके सामने आत्मस्तुति या उस प्रकारका चरित्र जिसमें आत्मस्तुति हो, नहीं कहना चाहिये।

श्रीहनुमान्जीके द्वारा चूड़ामणि प्राप्त करके उसे अपने हृदयमें लगाकर श्रीरामजी श्रीलक्ष्मणजीके साथ रोने लगे—

तं मणिं हृदये कृत्वा रुरोद सहलक्ष्मणः।

(५। ६६। १)

श्रीरामचन्द्रजी श्रीसुग्रीवसे कहने लगे—हे सखे! जैसे अपने वत्समें स्नेह रखनेवाली वत्सलाधेनु अपने वत्सविषयक स्नेहसे द्रवीभूत हो जाती है और उसके स्तनोंसे दुग्ध क्षरण होने लगता है, उसी प्रकार इस उत्तम मणिके दर्शनसे आज मेरा हृदय स्रवित-द्रवित हो रहा है—

यथैव धेनुः स्रवति स्नेहाद् वत्सस्य वत्सला।
तथा ममापि हृदयं मणिश्रेष्ठस्य दर्शनात्॥

(५। ६६। ३)

हे सुग्रीव! जलसम्भूत यह मणि देवताओंके द्वारा पूजित है। किसी यज्ञमें परम सन्तुष्ट होकर बुद्धिमान् इन्द्रने इस मणिको राजा जनकको दिया था—

अयं हि जलसम्भूतो मणिः प्रवरपूजितः।
यज्ञे परमतुष्टेन दत्तः शक्रेण धीमता॥

(५। ६६। ५)

हे हनुमन्! मुझसे वियुक्ता मधुरभाषिणी मेरी प्रियतमा जानकीने मेरे लिये क्या संदेश दिया है? हे पवननन्दन! मेरी प्राणप्रिया सीता दुःख-पर-दुःख झेलकर भी किस प्रकार जी रही है?

मधुरा मधुरालापा किमाह मम भामिनी।
मद्विहीना वरारोहा हनुमन् कथयस्व मे॥
दुःखाद् दुःखतरं प्राप्य कथं जीवति जानकी।

(५। ६६। १५)

महात्मा श्रीरामचन्द्रके इस प्रकार कहनेपर श्रीहनुमान्जीने श्रीसीताके द्वारा कथित समस्त सन्देश श्रीरामजीसे निवेदन कर दिया—

एवमुक्तस्तु हनुमान् राघवेण महात्मना॥
सीताया भाषितं सर्वं न्यवेदयत राघवे।

(५। ६७। १)

हे प्रभो! श्रीसीताजीने इन्द्र-पुत्र जयन्तकी कथा विस्तारपूर्वक आपके श्रीचरणोंमें निवेदन करनेके लिये आज्ञा दी है। हे राघव! श्रीसीताजीने मुझसे श्रीलक्ष्मणके लिये सन्देश दिया है—अपने भ्राताका आदेश लेकर परन्तप नरश्रेष्ठ श्रीलक्ष्मण क्यों नहीं मेरी रक्षा करते हैं?

भ्रातुरादेशमाज्ञाय लक्ष्मणो वा परंतपः॥
स किमर्थं नरवरो न मां रक्षति राघवः।

(५। ६७। २१-२२)

हे करुणामय रघुनन्दन! मैं चलते-चलते श्रीसीताजीको आश्वासन देकर आया हूँ कि आपको शीघ्र ही यह देखनेका सौभाग्य मिलेगा कि रिपुसूदन श्रीराघवेन्द्र सरकार वनवासकी अवधि पूर्ण करके आपके साथ श्रीअयोध्याजीमें पधारकर वहाँके राज्यपर अभिषिक्त हो गये हैं—

निवृत्तवनवासं च त्वया सार्धमरिंदमम्।
अभिषिक्तमयोध्यायां क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम्॥

(५। ६८। २८)

हे रघुनन्दन! श्रीजनकनन्दिनी बहुत दु:खी हैं। उन्हें सबसे महान् दु:ख तो आपके वियोगका है, दूसरे रावण अपने दुष्ट एवं क्रूर वचनोंसे उन्हें व्यथित करता रहता है, तीसरे राक्षसियोंके क्रूर एवं भयावने चेहरेके पहरेके अन्दर श्रीसीताजीको रहना पड़ता है। परन्तु हे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामजी! इतने दु:खोंसे दु:खी होनेके पश्चात् भी उनकी वाणीमें कभी दीनता नहीं आने पाती। वे रावण-सदृश दुर्धर्ष, दुर्दान्त, क्रूर राक्षसको कुत्तेकी तरह फटकारती हैं। राक्षसियोंके कोमल एवं कठोर वचनोंका भी जादू और उनके साम, दान, दण्ड, भेदका प्रभाव उनपर नहीं चल पाता, उनके वचनोंसे व्यथित होनेपर भी वे महिमामयी कभी दीन भाषामें बात नहीं करती हैं। हे स्वामी! उन मिथिलेश राजकिशोरी श्रीसीताजीको आपके दासने प्रिय एवं मङ्गलमय वचनोंद्वारा सान्त्वना देकर प्रसन्न किया है; अत: सम्प्रति उनके मनको कुछ शान्ति मिली है—

ततो मया वाग्भिरदीनभाषिणी
शिवाभिरिष्टाभिरभिप्रसादिता ।
उवाह शान्तिं मम मैथिलात्मजा
तवातिशोकेन तथातिपीडिता॥

(५।६८।२९)

इसी श्लोकके साथ श्रीरामायणीकथा सुन्दरकाण्डसे निकलकर लङ्काकाण्डमें प्रविष्ट हो रही है।

रामके लिये देव-रथ

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥
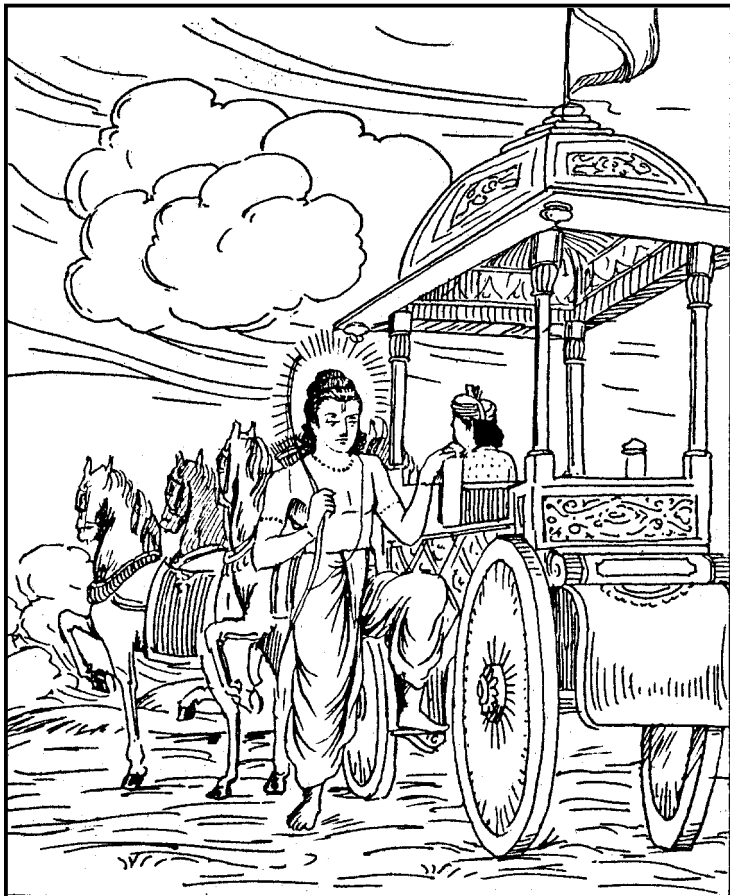
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

कथा-सुधा-सागर

युद्धकाण्ड

श्रीहनुमान्‌जीके द्वारा श्रीजानकीजीका समाचार श्रवण करके, कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न करनेके अनन्तर स्वामीके उचित व्यवहारकी संसारको शिक्षा देनेके लिये मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामजी श्रीहनुमान्‌जीकी सुप्रशंसा कर रहे हैं—

कृतं हनूमता कार्यं सुमहद् भुवि दुर्लभम्।
मनसापि यदन्येन न शक्यं धरणीतले॥

(६। १। २)

भगवान् श्रीराम वानरेन्द्र सुग्रीव आदिका उत्साह संवर्द्धन करते हुए कहते हैं—श्रीहनुमान्‌ने अति महान् कार्य किया है। भूलोकमें इस प्रकारका कार्य होना कठिन है। जो कार्य दूसरा—श्रीहनुमान्‌जीके अतिरिक्त दूसरा व्यक्ति मनसे करनेके लिये भी नहीं सोच सकता है वह दुष्कर कार्य श्रीहनुमान्‌जीने सफलतापूर्वक सम्पन्न किया है।

शास्त्रका वचन है कि प्रत्यक्ष—मुखके सामने गुरुजनोंकी प्रशंसा करनी चाहिये। मित्रोंकी और बान्धवोंकी प्रशंसा परोक्षमें करनी चाहिये। दास और भृत्यकी—सेवकोंकी प्रशंसा कार्यके सम्पन्न होनेपर करनी चाहिये और पुत्रोंकी प्रशंसा करनेका नियम नहीं है। तात्पर्य यह है कि शिष्य और पुत्रकी प्रशंसा मनमें करनी चाहिये—

प्रत्यक्षे गुरवः स्तुत्याः परोक्षे मित्रबान्धवाः।
कर्मान्ते दासभृत्याश्च न कदाचन पुत्रकाः॥

इस वचनसे कार्यके अन्तमें सेवककी श्रीहनुमान्‌जीकी प्रशंसा करते हुए श्रीरामजी कहते हैं। इस श्लोकमें हनुमान्‌जीके समस्त कार्योंका सूत्ररूपमें उल्लेख है—सङ्केत है। 'महत्' शब्दसे समुद्रका सन्तरण सूचित किया है। समुद्रको पार करना साधारण कार्य नहीं है। '**सुमहत्**' शब्दसे लङ्काप्रवेश कहा है। '**दुर्लभम्**' शब्दसे लङ्का-दहन आदि कार्यका सङ्केत किया है। '**मनसापि न शक्यम्**' से लङ्कादहन करके पुनः लङ्कासे बाहर निकलना कहा है। तात्पर्य यह है कि पहले तो समुद्रके पार जाना ही कठिन कार्य था, समुद्र पार जाकर भी लङ्कामें प्रवेश करना और कठिन कार्य था, लङ्कामें प्रवेश करनेके पश्चात् भी लङ्काका धर्षण करना उससे भी कठिन कार्य था। इसके अनन्तर इतना कार्य सम्पन्न करनेके पश्चात् लङ्काके बाहर निकल जाना अत्यन्त असम्भव कार्य था। '**अत्र महदित्यनेन सागरतरणमुच्यते सुमहदित्यनेन लङ्काप्रवेशः। दुर्लभमित्यनेन लङ्काधर्षणं मनसापि न शक्यमित्यनेन पुनर्निर्गमः। प्रथमं सागर एव न तर्तुं शक्यः, तीर्त्वापि तं लङ्का न प्रवेष्टुं। प्रविश्यापि न धर्षयितुं धर्षयित्वापि न ततो निर्गन्तुमिति भावः**'। (श्रीगोविन्दराजजी)।

'नियोग' कहते हैं कार्यको '**नियुज्यतेऽस्मिन्निति नियोगः**'। श्रीहनुमान्‌जी अपने स्वामीके एक नियोगमें—श्रीसीतान्वेषण कार्यमें नियुक्त होकर अनेक आवश्यक कार्य—वाटिकाविध्वंस, लङ्का-दहन, रावण-साक्षात्कार आदि कार्य सम्पन्न किये। साथ ही अपनेको दूसरोंकी दृष्टिमें छोटा भी नहीं बनने दिया अपितु लोगोंकी दृष्टिमें महान् बन गये। लङ्कामें सब उनके नामसे काँपते हैं—

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका।
जब तें जारि गयउ कपि लंका॥

बहुत-से लोग कार्य तो सम्पन्न कर लेते हैं परन्तु अपने गौरवको सदा-सदाके लिये नष्ट कर देते हैं। यश, कीर्ति सब नष्ट कर देते हैं। श्रीहनुमान्‌जीने सौंपे हुए कार्यको भी भलीभाँति सम्पन्न किया साथ ही अपने स्वामी श्रीरामजीका और सुग्रीवका गौरव बढ़ा दिया, तथा अपनी भी छाप समस्त लङ्कामें डाल दी।

श्रीरामजी कहते हैं—आज श्रीहनुमान्‌जीने मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीको खोज करके, उनका दर्शन करके धर्मतः मेरी, समस्त रघुवंशकी और महाबली लक्ष्मणकी भी रक्षा की है—

तन्नियोगे नियुक्तेन कृतं कृत्यं हनूमता।
न चात्मा लघुतान्नीतः सुग्रीवश्चापि तोषितः॥
अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च महाबलः।
वैदेह्या दर्शनेनाद्य धर्मतः परिरक्षिताः॥

(६। १। १०-११)

हमलोगोंको अधर्मसे बचाकर धर्ममें स्थापित कर दिया। यदि हनुमान्‌जीने श्रीसीताजीका दर्शन न किया होता, मुझे उनका समाचार न मिल गया होता तो मैं अपने-आपको समाप्त कर लेता और मेरे न रहनेपर लक्ष्मण-भरतादि भी नहीं रहते। इस प्रकार आत्महत्यारूप अधर्म सबको लग जाता उससे बचा लिया। अथवा वैदेही दर्शनरूप धर्मसे—उपकारसे हम सब लोग परिरक्षित हो गये—निरपवाद हो गये। '**धर्मतः धर्मे, सप्तम्यर्थे तसिः। धर्मतः परिरक्षिताः धर्मेस्था पिताः धर्मस्थापनञ्चात्राधर्मान्मोचनम्। यदि हनुमता सीता न दृश्येत तदाऽहं तावदात्मानं जह्याम् ततो लक्ष्मणादयश्च तत् आत्महानिरूपोऽधर्मः सर्वेषां स्यादिति भावः। यद्वा वैदेहीदर्शनरूपेण धर्मेण उपकारेण सर्वे वयं परिरक्षिताः निरपवादाः कृताः स्मेति भावः**'। (श्रीगोविन्दराजजी)

श्रीरामजी कहते हैं कि श्रीहनुमान्‌के इस प्रिय संवादके सुनानेके उपलक्ष्यमें मैं इन्हें क्या प्रदान करूँ? मेरे पास देनेयोग्य वस्तुका अभाव है। इस समय मैं महात्मा-महास्वभाव-महोदार श्रीहनुमान्‌को केवल अपना प्रगाढ़ आलिङ्गन प्रदान करता हूँ क्योंकि यही मेरा सर्वस्व है—

इदं तु मम दीनस्य मनो भूयः प्रकर्षति।
यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृशं प्रियम्॥
एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः॥

(६। १। १२-१३)

इस प्रसङ्गका सभी आचार्योंने स्नेहरसमें डूब करके भावपूर्वक अपनी-अपनी भङ्गीसे रसास्वादन किया है। व्याख्या करनेका अवसर नहीं है। कुछ झलकियोंके छलके हुए रसका हमलोग समास्वादन करें।

एक आचार्य कहते हैं कि परिष्वङ्ग—गाढालिङ्गनके अतिरिक्त श्रीहनुमान्‌के उपयोगके योग्य कोई अन्य वस्तु मेरे पास नहीं है यह सूचित किया। इससे यह सिद्ध हुआ कि श्रीरामके परिष्वङ्गकी प्राप्ति ही परम पुरुषार्थ है— '**इमं दान-योग्यं कालं प्राप्य सर्वस्वभूतः मम सर्वधनत्वं प्राप्तः एष परिष्वङ्गः ममालिङ्गनं महात्मनः हनूमतः दत्तोऽस्तु एतेन परिष्वङ्गातिरिक्तं हनुमदुपयोगि-वस्त्वन्तरं नास्तीति सूचितम् तेन राम परिष्वङ्ग प्राप्तेः परम पुरुषार्थत्वं सूचितम्।**' (रामायणशिरोमणि-टीका)

दूसरे आचार्य कहते हैं कि ब्रह्माण्ड पुराणादि-के अनुसार इस प्रकार परिष्वङ्गके द्वारा श्रीरामजीने श्रीहनुमान्‌जीके लिये ब्रह्मानन्द ही समर्पण कर दिया—'**ब्रह्माण्डपुराणादिषु चैवं परिष्वङ्ग-द्वारा ब्रह्मानन्दार्पणमेव हनूमते कृतमिति बोधितम्**'। (तिलक-टीका)

जिसने दो शरीरोंकी रक्षा की हो उसको एक देह प्रदान करना क्या उचित है? अपनी वेणीसे फाँसी लगानेके लिये समुद्यत श्रीसीताजीकी रक्षा करके तथा मैं समुद्रमें डूबना चाहता था मुझको श्रीसीताजीका सन्देश सुनाकर समुद्रमें

डूबनेसे बचाकर दो देह देनेवालेको एक देहका दान करना क्या उचित है? ! '**देहद्वयमुपकृतवतः किमेक देह प्रदानमुचितमिति भावः। वेण्युद्ग्रथन-समये सीतां संरक्ष्य दत्वा अवगाह्यार्णवं स्वप्स्य इति दशायां रामदेहं च सीतासन्देशवचनेना जीवयद्धि। एवं देह द्वयं दत्तवतः किमेकदेह दानमुचितमिति भावः**' (श्रीगोविन्दराज) जो अमृत-का भोजन करनेवाला हो उसको तृणका ग्रास आदि नहीं देना चाहिये। स्नेहसे बढ़कर और कोई पदार्थ नहीं है और मेरा श्रीअङ्ग—शरीर प्रेमहीके द्वारा निर्मित है—प्रेममय है। अतः इस शरीरका प्रेमपरिष्वङ्गका ही दान करना चाहिये। '**एतद्व्यतिरिक्त प्रदानेन इदं न दत्तमिति न्यूनता स्यात्। एतत्प्रदाने तु सर्वं दत्तं, एतद्विग्रहस्य सर्वाश्रयत्वात्परिष्वङ्गो हनूमतः। अमृताशिनो हि तृणकवलादिकं न देयम्। स्नेहो मे परमो राजन्नित्येतद्विग्रहे प्रेमवतः स एव दातव्यः**' (श्रीगोविन्दराजजी) इस प्रकार कहते-कहते श्रीरामजी प्रीति पुलकित गात्र हो गये और उन्होंने श्रीहनुमान्‌जीको अपनी विशाल भुजाओंके पाशमें निबद्ध करके गाढालिङ्गन प्रदान कर दिया—

इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टाङ्गो रामस्तं परिषस्वजे।
हनूमन्तं कृतात्मानं कृतकार्यमुपागतम्॥

(६। १। १४)

इसके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—अब समुद्र कैसे पार करना चाहिये? श्रीसुग्रीवने कहा—हे रघुकुलभूषण! ये वानर यूथपति सर्वतः समर्थ हैं—उपायकुशल हैं एवं पराक्रमशील हैं। आपका प्रियकार्य सम्पादन करनेके लिये इनके मनमें अतिशय उत्साह है। ये आपके लिये जाज्वल्यमान हुताशनमें—जलती हुई अग्निमें भी प्रवेश कर सकते हैं। इनके मुखकी प्रसन्नतासे मैं यह जानता हूँ, इस विषयमें मेरा तर्क दृढ़ है—दोषरहित है—

इमे शूराः समर्थाश्च सर्वतो हरियूथपाः।
त्वत्प्रियार्थं कृतोत्साहाः प्रवेष्टुमपि पावकम्।
एषां हर्षेण जानामि तर्कश्चापि दृढो मम॥

(६। २। ७)

हे राघवेन्द्र! मुझे तो त्रैलोक्यमें कोई ऐसा वीर नहीं दीखता, जो धनुष पकड़नेपर आपके सामने ठहर सके—

नहि पश्याम्यहं कञ्चित् त्रिषु लोकेषु राघव।
गृहीत धनुषो यस्ते तिष्ठेदभिमुखो रणे॥

(६। २। १७)

भगवान् श्रीरामने कहा—हे हनुमन्! मैं तपस्याके द्वारा समुद्रपर पुल बाँधकर किंवा सागरका शोषण करके सब प्रकारसे इस महासागरके उल्लङ्घन करनेमें समर्थ हूँ।

तपसा सेतुबन्धेन सागरोच्छोषणेन च।
सर्वथापि समर्थोऽस्मि सागरस्यास्य लङ्घने॥

(६। ३। २)

हे हनुमन्! तुम यह बताओ कि दुर्गम लङ्कापुरीमें कितने दुर्ग हैं। मैं उसका विवरण इस प्रकार सुनना चाहता हूँ, जैसे मैं आँखोंसे देख रहा हूँ। श्रीहनुमान्‌जीने लङ्कापुरीका समस्त शब्द-चित्र ठाकुरजीके सामने प्रस्तुत कर दिया। वे कहते हैं—हे रघुनन्दन! लङ्कापर चढ़ाई करनेके लिये कोई अवलम्ब नहीं है। लङ्का देवदुर्गा और भयावह है। लङ्काके चारों ओर नदी, पर्वत, वन और कृत्रिम ये चार प्रकारके दुर्ग हैं—

लङ्का पुनर्निरालम्बा देवदुर्गा भयावहा।
नादेयं पार्वतं वान्यं कृत्रिमं च चतुर्विधम्॥

(६। ३। २०)

हे प्रभो! मैंने सब संक्रमोंको भग्न कर दिया है। खाइयाँ ईंटोंसे पाट दी हैं, लङ्कानगरी दग्ध कर दी है, परकोटोंको ढहा दिया है। हे प्रभो! वहाँके विशालकाय राक्षसोंकी सेनाका चतुर्थ भाग मैंने विनष्ट कर डाला है।

ते मया संक्रमा भग्नाः परिखाश्चावपूरिताः।

दग्धा च नगरी लङ्का प्राकाराश्चावसादिताः।
बलैकदेशः क्षपितो राक्षसानां महात्मनाम्॥

(६।३।२९)

हे रघुनन्दन! हमलोग किसी-न-किसी मार्गसे—उपायसे वरुणालय—सागरका अतिक्रमण कर लें; फिर तो वानरोंके द्वारा लङ्काको नष्ट हुई ही समझिये—

येन केन तु मार्गेण तराम वरुणालयम्।
हतेति नगरी लङ्का वानरैरुपधार्यताम्॥

(६।३।३०)

हे स्वामी! आप तो सबको प्रस्थान करनेकी आज्ञा प्रदान करिये और युक्त मुहूर्तसे प्रस्थान करनेका मन बनाइये—

मुहूर्तेन तु युक्तेन प्रस्थानमभिरोचय॥

(६।३।३३)

श्रीहनुमान्‌जीके वचनोंको सुनकर श्रीरामजीने सुग्रीवसे कहा—हे सखे! इस समय मध्याह्नके सूर्य हैं, विजय नामक मुहूर्त उपस्थित है आप इसी पावन और शुभ मुहूर्तमें प्रस्थानका उद्यम करो—

अस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचय।
युक्तो मुहूर्ते विजये प्राप्तो मध्यं दिवाकरः॥

(६।४।३)

हे नील! जिस रास्तेमें फल-मूल अधिक मिल सकें, शीतल छायासे युक्त सघन वन हो, शीतल जलकी सुविधा हो, मधु भी मिल सके, हे सेनापते! ऐसे मार्गसे सेनाको ले चलिये—

फलमूलवता नील शीतकाननवारिणा।
पथा मधुमता चाशु सेनां सेनापते नय॥

(६।४।१०)

इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि दुष्ट राक्षस कहीं फल-मूल-जल आदिको विषैला न बना दें। यह भी ध्यान रखना है कि कहीं नीचे स्थलोंमें शत्रुसेना तो नहीं छिपी है कि हम आगे चलें और पीछेसे आक्रमण हो जाय। वानर-सेनाके दक्षिण भागमें ऋषभ, वाम भागमें गन्धमादन और पृष्ठ भागमें जाम्बवान् अपने दलके साथ रक्षा करते हुए चलेंगे। इस प्रकार राजनीति विशारद भगवान् श्रीरामके कुशल नेतृत्वमें, संरक्षणमें विशाल वानर-वाहिनीने दक्षिण दिशा-की ओर प्रस्थान किया। परम भाग्यवान् श्रीहनुमान् और अङ्गदकी पीठपर विराजमान श्रीराम और श्रीलक्ष्मण शुक्र और बृहस्पति इन दो महाग्रहोंसे संयुक्त हुए चन्द्रमा और सूर्यकी भाँति सुशोभित हो रहे थे—

कपिभ्यामुह्यमानौ तौ शुशुभाते नरर्षभौ॥
महद्भ्यामिव संस्पृष्टौ ग्रहाभ्यां चन्द्रभास्करौ।

(६।४।४१-४२)

इस प्रकार यात्रा करते हुए सह्य तथा मलय पर्वतको पार करके क्रमशः महेन्द्र पर्वतके समीपवर्त्ती सागर तटपर पहुँच गये। जहाँ बड़ा भयङ्कर समुद्रका गर्जन सुनायी पड़ रहा था।

ते सह्यं समतिक्रम्य मलयं च महागिरिम्।
आसेदुरानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम्॥

(६।४।९४)

भगवान् श्रीरामने कहा—हे सुग्रीव! हमलोग समुद्र तटपर आ गये। अब समुद्र सन्तरण कैसे किया जाय यह समस्या है।

समुद्रके तटपर जहाँ-तहाँ वानरसेना ठहर गयी। एक ओर गर्जन करता हुआ समुद्र सुशोभित हो रहा था तो दूसरी ओर गर्जन-तर्जन करती हुई विशाल वानरवाहिनी भी दूसरे समुद्रके समान ही सुशोभित हो रही थी।

समुद्रतटपर पहुँचकर भगवती श्रीजानकीके लिये भगवान् श्रीरामके शोक और विलापका वर्णन लगभग बीस श्लोकोंमें है।

श्रीरामजी कहते हैं मुझे यह दुःख नहीं है कि श्रीसीता मुझसे दूर हैं, यह भी दुःख नहीं है

कि उनका अपहरण हो गया है। मैं तो इसलिये बार-बार सोच रहा हूँ कि उनके जीवनकी अवधि दो मास निश्चित कर दी गयी है, वह शीघ्रतासे व्यतीत होती जा रही है—

न मे दुःखं प्रिया दूरे न मे दुःखं हृतेति च।
एतदेवानुशोचामि वयोऽस्या ह्यतिवर्तते॥

(६। ५। ५)

श्रीलक्ष्मणजीके आश्वस्त करनेपर शोकसे व्याकुल श्रीरामजीने कमलपत्राक्षी श्रीसीताका स्मरण करते हुए सन्ध्योपासना की—

आश्वासितो लक्ष्मणेन रामः सन्ध्यामुपासत।
स्मरन् कमलपत्राक्षीं सीतां शोकाकुलीकृतः॥

(६। ५। २३)

महर्षि श्रीवाल्मीकिजी श्रीहनुमान्‌जीकी प्रतिनिवृति और समुद्र तटपर श्रीरामजीके आनेके वृत्तान्तका वर्णन करके, श्रीहनुमान्‌जीके लङ्कासे लौटनेके पश्चात् भयभीत रावणके व्यापारका वर्णन करते हैं।

शक्र विक्रम महात्मा श्रीहनुमान्‌जीने जो घोर और भयावह कर्म किया था उसको देखकर राक्षसेन्द्र रावणका मुख लज्जासे कुछ नीचे झुक गया था। लज्जावनत रावणने समस्त राक्षसोंसे कहा—हे राक्षसो! एक वानर किसीकी सहायता-के बिना मेरी दुर्गमपुरी लङ्कामें प्रविष्ट हो गया और उसे तहस-नहस करके अपने वचनके अनुसार जनकपुत्री सीताका भी दर्शन कर लिया। मेरी समस्त सुरक्षाकी व्यवस्था चौपट हो गयी। उसने हमारे चैत्यप्रासादको धर्षित करके—ढहा करके प्रधान-प्रधान राक्षसवीरोंको भी मार डाला। समस्त लङ्कामें खलबली मचा दी—

लङ्कायां तु कृतं कर्म घोरं दृष्ट्वा भयावहम्।
राक्षसेन्द्रो हनुमता शक्रेणेव महात्मना।
अब्रवीद् राक्षसान् सर्वान् ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखः॥
धर्षिता च प्रविष्टा च लङ्का दुष्प्रसहा पुरी।
तेन वानरमात्रेण दृष्टा सीता च जानकी॥
प्रासादो धर्षितश्चैत्यः प्रवरा राक्षसा हताः।
आविला च पुरी लङ्का सर्वा हनुमता कृता॥

(६। ६। १—३)

रावणने अपने मन्त्रियोंसे मन्त्रणा की—अब हमें किस नीतिको अपनाना चाहिये। रावणने कहा—हे महाबली वीरो! संसारमें उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकारके पुरुष होते हैं, मैं उन सबके गुण-दोषोंका वर्णन करता हूँ—

त्रिविधाः पुरुषा लोके उत्तमाधममध्यमाः।
तेषां तु समवेतानां गुणदोषौ वदाम्यहम्॥

(६। ६। ६)

तदनन्तर रावणने तीनों प्रकारके पुरुषोंका और तीन प्रकारके मन्त्रोंका निरूपण करके कहा—आपलोग यह निश्चित मानकर बात करिये कि राम समुद्र पार कर लेंगे या समुद्रका शोषण कर लेंगे; किंवा अपने पराक्रमसे कोई अन्य युक्ति करेंगे। ऐसी स्थितिमें वानरोंसे विरोध आ पड़नेपर नगर और सेनाके लिये जो हितकर मन्त्र हो आपलोग बतायें—

तस्मिन्नेवंविधे कार्ये विरुद्धे वानरैः सह।
हितं पुरे च सैन्ये च सर्वं सम्मन्त्र्यतां मम॥

(६। ६। १८)

महर्षि श्रीवाल्मीकिजी लिखते हैं—उन राक्षसों-को नीतिका ज्ञान नहीं था इसलिये वे अबुद्धि थे—महामूर्ख थे। वे शत्रुपक्षके श्रीराम और सुग्रीवादिके बलाबलको भी नहीं समझते थे। वे बलवान् तो बहुत थे—महाबली थे; परन्तु नीतिकी दृष्टिसे महामूर्ख थे। अतः वे राक्षसराज रावणके प्रश्नका उत्तर देते हुए हाथ जोड़कर बोले—

इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसास्ते महाबलाः।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे रावणं राक्षसेश्वरम्॥

द्विषत्पक्षमविज्ञाय नीतिबाह्यास्त्वबुद्धयः।

(६।७।१-२)

रावणसे उसके चाटुकार राक्षस-मन्त्रियोंने कहा—हे राक्षसशिरोमणे! आपने कुबेरको जीतकर पुष्पक-विमान छीन लिया। अपनी बहन कुम्भीनसीके सुख देनेवाले पति दानवेन्द्र मधुको वशमें कर लिया और दूसरी बहन शूर्पणखाके पति विद्युज्जिह्वको मार गिराया फिर मनुष्य रामपर विजय पाना आपके लिये कौन बड़ी बात है? हे राजन्! आप चुपचाप बैठे रहें, आपको श्रम करनेकी जरूरत नहीं है। अकेले महाबाहु इन्द्रजीत—मेघनाद ही समस्त वानरोंका संहार कर डालेंगे—

तिष्ठ वा किं महाराज श्रमेण तव वानरान्।
अयमेको महाबाहुरिन्द्रजित् क्षपयिष्यति॥

(६।७।१८)

सेनापति प्रहस्तने कहा—हमलोग असावधान थे एतावता हनुमान्ने हमें धोखा दे दिया। अब यदि आपकी आज्ञा हो तो पर्वत, वन और काननोंसहित समुद्रपर्यन्त समस्त वसुन्धराको वानरशून्य कर दें—

सर्वां सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम्।
करोम्यवानरां भूमिमाज्ञापयतु मां भवान्॥

(६।८।४)

तदनन्तर मेघनाद, प्रहस्त, कौम्भकर्णि निकुम्भ आदि वीर राक्षस पारस्परिक परामर्श करके अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको लेकर श्रीरामके पास जानेके लिये सन्नद्ध होकर रावणसे बोले—हे राक्षसेन्द्र! हमलोग आज ही राम, सुग्रीव, लक्ष्मण और उस कृपण हनुमान्को भी मार डालेंगे जिसने लङ्कापुरी जलायी थी—

अद्य रामं वधिष्यामः सुग्रीवं च सलक्ष्मणम्।
कृपणं च हनूमन्तं लङ्का येन प्रधर्षिता॥

(६।९।६)

अस्त्र-शस्त्रसे सन्नद्ध, जानेके लिये समुद्यत राक्षस वीरोंको रोककर विभीषणने हाथ जोड़कर रावणसे कहा—हे तात! जो प्रयोजन साम, दान और भेदसे न सिद्ध हो सके उसके लिये अवसर देखकर पराक्रमका—दण्डका उपयोग करना चाहिये। हे राक्षसेन्द्र! श्रीरामजी असावधान नहीं हैं। वे विजयकी इच्छासे आ रहे हैं, उनके साथ सेना भी है, वे क्रोधजित् हैं; अतः वे सर्वथा दुर्जय हैं ऐसे दुराधर्ष महान् वीरको आपलोग कैसे जीतना चाहते हैं—

अप्रमत्तं कथं तं तु विजिगीषुं बले स्थितम्।
जितरोषं दुराधर्षं तं धर्षयितुमिच्छथ॥

(६।९।१०)

सरितांपति भयङ्कर सागरको जो एक ही छलाँगमें उल्लङ्घन करके यहाँतक आ पहुँचे, उन श्रीहनुमान्जीकी गतिको मनसे भी कौन जान सकता है? किं वा कौन अनुमान लगा सकता है?

समुद्रं लङ्घयित्वा तु घोरं नदनदीपतिम्।
गतिं हनुमतो लोके को विद्यात्तर्कयेत वा॥

(६।९।११)

हे राक्षसराज! हाथी, घोड़े और बहुरत्नपरिपूर्णा लङ्काको जबतक श्रीरामजी अपने तीखे बाणोंसे नष्ट नहीं कर देते तबतक आप श्रीमिथिलेशनन्दिनी सीताको उन्हें आदरपूर्वक लौटा दें—

यावन्न सगजां साश्वां बहुरत्नसमाकुलाम्।
पुरीं दारयते बाणैर्दीयतामस्य मैथिली॥

(६।९।१७)

हे भ्रातः! आप सुख और धर्मको नष्ट करनेवाले क्रोधका परित्याग कर दें। रतिकीर्तिवर्द्धन धर्मका सेवन करिये। हमपर आप प्रसन्न हो जाइये। हमलोग सपुत्र, सबान्धव जीवित रह सकें इसलिये मेरी प्रार्थना है कि दशरथनन्दन श्रीरामके हाथोंमें मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीको दे दें—

त्यजाशु कोपं सुखधर्मनाशनं भजस्व धर्मं रतिकीर्तिवर्द्धनम्।

प्रसीद जीवेम सपुत्रबान्धवाः प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली॥

(६।९।२२)

विभीषणजीकी हितैषी बात सुन करके उसका कुछ भी उत्तर न दे करके सभी सभासदोंको विदा करके रावण अपने महलमें चला गया—

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः।
विसर्जयित्वा तान् सर्वान् प्रविवेश स्वकं गृहम्॥

(६।९।२३)

दूसरे दिन प्रातःकाल विभीषणजी रावण-के भवनमें पहुँचे। वहाँपर वेदज्ञ विद्वानोंके द्वारा वेदमन्त्रका पाठ, पुण्याहवाचनका पवित्र घोष सुना। जो रावणकी विजयके लिये हो रहा था—

पुण्यान् पुण्याहघोषांश्च वेदविद्भिरुदाहृतान्।
शुश्राव सुमहातेजा भ्रातुर्विजयसंश्रितान्॥

(६।१०।८)

वहाँ जानेपर राक्षसोंने उनका सम्मान किया। महाबाहु विभीषणने आसनपर विराजमान अपने तेजसे दीप्यमान अपने बड़े भाई रावणको प्रणाम किया—

स पूज्यमानो रक्षोभिर्दीप्यमानं स्वतेजसा।
आसनस्थं महाबाहुर्ववन्दे धनदानुजम्॥

(६।१०।१०)

रावणके द्वारा दृष्टिके सङ्केतसे निर्दिष्ट आसनपर बैठकर श्रीविभीषणने कहा—हे परन्तप! जबसे श्रीसीताजी लङ्कामें आयी हैं तभीसे हमलोगोंको अमङ्गलसूचक अपशकुन दृष्टिगोचर होते रहते हैं—

यदाप्रभृति वैदेही सम्प्राप्तेह परन्तप।
तदाप्रभृति दृश्यन्ते निमित्तान्यशुभानि नः॥

(६।१०।१४)

श्रीविभीषणने रावणको अनेक प्रकारसे समझाया, परन्तु विभीषणकी हित और पथ्य वाणी सुनकर रावणको बुखार चढ़ आया—**'निशम्य तद्वाक्यमुपस्थितज्वरः'**। रावणने कहा—हे विभीषण! मैं तो कहींसे कोई भय नहीं देखता हूँ। राम सीताको कभी नहीं पा सकते हैं। इस प्रकार कहकर दशाननने अपने यथार्थ वक्ता परम हितैषी रामभक्त भ्राता विभीषणको तत्काल विदा कर दिया—

इत्येवमुक्त्वा सुर सैन्य नाशनो महाबलः संयति चण्डविक्रमः।
दशाननो भ्रातरमाप्तवादिनं विसर्जयामास तदा विभीषणम्॥

(६।१०।२९)

दूसरे दिन रावण सभामें जाकर बैठ गया। उसने सेवकोंके द्वारा अपने मन्त्रियों और सुहृदोंको बुलवाया। रावणके आदेशसे सभी आ गये और अपने-अपने आसनपर बैठ गये। श्रीविभीषणजीने आकर अभिवादन किया। इसी भाँति शुक और प्रहस्त भी आ गये। रावणने सबको यथायोग्य अलग-अलग आसन दिये—

स पूर्वजायावरजः शशंस नामाथ पश्चाच्चरणौ ववन्दे।
शुकः प्रहस्तश्च तथैव तेभ्यो ददौ यथार्हं पृथगासनानि॥

(६।११।२८)

रावणने अपने मन्त्रियोंसे कहा—राम-लक्ष्मण दोनों राजकुमार सुग्रीव आदि वानरोंकी सेना साथमें लेकर समुद्र तटपर आ गये हैं। आपलोग पारस्परिक मन्त्रणा करके कोई ऐसी सुन्दर नीति निर्धारित करिये कि सीताको देना न पड़े और दोनों दशरथकुमार मारे जायँ—

परे पारे समुद्रस्य पुरस्कृत्य नृपात्मजौ।
सीतायाः पदवीं प्राप्य सम्प्राप्तौ वरुणालयम्॥
अदेया च यथा सीता वध्यौ दशरथात्मजौ।
भवद्भिर्मन्त्र्यतां मन्त्रः सुनीतं चाभिधीयताम्॥

(६।१२।२४-२५)

महाबली पार्श्वने निम्नकोटिकी चाटुकारिता करते हुए कहा—हे शत्रुसूदन! राक्षसेन्द्र! आप तो

स्वयं ईश्वर हैं। आपका ईश्वर कौन है? आप शत्रुओंके मस्तकपर पैर रखकर विदेहकुमारी श्रीसीताके साथ रमण कीजिये—

ईश्वरस्येश्वरः कोऽस्ति तव शत्रुनिबर्हण।
रमस्व सह वैदेह्या शत्रूनाक्रम्य मूर्धसु॥

(६। १३। ३)

रावणने महापार्श्वकी प्रशंसा करके कहा—पुञ्जिकस्थला अप्सराके साथ बलात्कार करनेके कारण ब्रह्माजीने मुझे शाप दे दिया—आजसे यदि तू किसी परस्त्रीके साथ बलात्कार करेगा तो तेरे मस्तकके सौ टुकड़े हो जायँगे इसमें संशय नहीं है—

अद्यप्रभृति यामन्यां बलान्नारीं गमिष्यसि।
तदा ते शतधा मूर्द्धा फलिष्यति न संशयः॥

(६। १३। १४)

इस ब्रह्माजीके शापके कारण मैं किसी स्त्रीके साथ बलात्कार नहीं कर सकता हूँ।

इसके अनन्तर श्रीविभीषणजी सार्थक और हितकारी वचन बोले—'**उवाच वाक्यं हितमर्थयुक्तम्**' युद्धभूमिमें श्रीरामका वेग सहन करनेमें रावण, त्रिशिरा, कुम्भकर्णपुत्र निकुम्भ और इन्द्रजयी मेघनाद भी समर्थ नहीं हैं। देवान्तक, नरान्तक, महाकाय, अतिरथ, अतिकाय तथा पर्वतके समान सार अकम्पन भी श्रीराघवेन्द्र सरकारके सामने युद्धभूमिमें टिक नहीं सकते हैं—

न रावणो नातिबलस्त्रिशीर्षो न कुम्भकर्णस्य सुतो निकुम्भः।
न चेन्द्रजिद् दाशरथिं प्रवोढुं त्वं वा रणे शक्रसमं समर्थः॥
देवान्तको वापि नरान्तको वा तथातिकायोऽतिरथो महात्मा।
अकम्पनश्चाद्रिसमानसारः स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य॥

(६। १४। १५-१६)

श्रीविभीषण कहते हैं—मैं तो समस्त राक्षसोंके साथ इस नगरके और मित्रोंके सहित महाराज रावणके कल्याणके लिये अपनी यही उत्तम सम्मति देता हूँ कि ये नरेन्द्रपुत्र श्रीरामके हाथोंमें मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीको प्रदान कर दें—

इदं पुरस्यास्य सराक्षसस्य राज्ञश्च पथ्यं ससुहृज्जनस्य।
सम्यग्घि वाक्यं स्वमतं ब्रवीमि नरेन्द्रपुत्राय ददातु मैथिलीम्॥

(६। १४। २१)

बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् श्रीविभीषणजी-के वचनोंको बड़े कष्टसे श्रवण करके मेघनाद बोला—हे पितः! हमारे वंशमें एकमात्र ये छोटे चाचा विभीषण ही ऐसे हैं, जिनमें बल, वीर्य, पराक्रम, धैर्य, शौर्य और तेज आदि सद्गुणोंका नितान्त अभाव है—

सत्त्वेन वीर्येण पराक्रमेण धैर्येण शौर्येण च तेजसा च।
एकः कुलेऽस्मिन् पुरुषो विमुक्तो विभीषणस्तात कनिष्ठ एषः॥

(६। १५। ३)

श्रीविभीषणने कहा—हे मेघनाद! तुम अभी बच्चे हो। तुम्हारी बुद्धि भी अविपक्क है। तुम्हारे मनमें कार्याऽकार्यका निश्चय नहीं है। इसलिये तुम भी अपने नाशके लिये अर्थहीन वचन बक रहे हो—

न तात मन्त्रे तव निश्चयोऽस्ति बालस्त्वमद्याप्यविपक्कबुद्धिः।
तस्मात्त्वयाप्यात्मविनाशनाय वचोऽर्थहीनं बहु विप्रलप्तम्॥

(६। १५। ९)

हे मेघनाद! तुम मूढ हो; परन्तु अपनेको बहुत बुद्धिमान् मानते हो, अशिक्षित हो, क्रूर प्रकृतिके हो, अल्पमति हो, दुरात्मा—दुष्टान्तः-करण हो, मूर्ख हो और अत्यन्त सुदुर्मति हो। भाव कि प्रहस्त दुर्मति है, महापार्श्वादि सुदुर्मति हैं और तुम अत्यन्त सुदुर्मति हो एतावता तुम बालकोंकी तरह असम्बद्ध प्रलाप करते हो—

मूढोऽप्रगल्भोऽविनयोपपन्नस्तीक्ष्ण स्वभावोऽल्पमतिर्दुरात्मा।
मूर्खस्त्वमत्यन्तसुदुर्मतिश्च त्वमिन्द्रजिद् बालतया ब्रवीषि॥

(६। १५। १२)

विभीषणजीकी बात सुनकर कालप्रेरित रावणने अत्यन्त कठोर शब्दोंमें कहा—बाह्य शत्रुके साथ, महाविषैले और क्रुद्ध सर्पके साथ रहना पड़े तो रह ले; परन्तु जो मित्र कहलाकर शत्रुकी सेवा करता हो ऐसे मित्रके साथ कभी न रहे—

वसेत् सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण च।
न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना॥

(६।१६।२)

इससे रावणने स्पष्ट निरूपण कर दिया कि श्रीविभीषणजी श्रीरामजीके संसर्गी हैं। श्रीगोविन्दराजजी कहते हैं कि इससे स्पष्ट हो गया कि रावण कहता है—जो शत्रुका पक्षपात करता है उसे सहजशत्रु कहते हैं। इसलिये तुमको मेरे नगरसे तुरन्त निकल जाना चाहिये— **'शत्रु सर्प सहवासादपि सहजशत्रुसहवासः सुदूरं परिहर्त्तव्य इति भावः'। अतस्त्वयाऽस्मान्नगरात् सद्योगन्तव्यमिति द्योत्यते।'** यदि कोई यह कहे कि इतने दिनोंसे विभीषण साथमें रहते हैं तब उनसे कार्य-नाशकी आशङ्का क्यों करते हो? तो इसके उत्तरमें रावण कहता है अनार्यका चिरसंवास भी प्रयोजनशून्य है। कमलके पत्तेपर गिरी हुई जलकी बूँदें जैसे ऐक्य प्राप्त नहीं करती हैं—सटती नहीं हैं अपितु सद्यः अलग हो जाती हैं। उसी प्रकार अनार्योंके हृदयमें—क्रूर और दुष्ट स्वभाववालोंके हृदयमें सौहार्द टिकता नहीं है—

यथा पुष्करपत्रेषु पतितास्तोयबिन्दवः।
न श्लेषमभिगच्छन्ति तथानार्येषु सौहृदम्॥

(६।१६।११)

श्रीविभीषणका हृदय रावणके पुत्र मेघनाद-के वाक्यसे तो व्यथित था ही रावणके तिरस्काररूप वचनसे उनका हृदय रो पड़ा। बस, यहींसे भगवान्‌की शरणमें जानेके वे सच्चे अधिकारी बन गये।

श्रीविभीषण रावणको कालवशीभूत समझकर वहाँसे उठ खड़े हुए। उनके हृदयमें ठाकुरजीके प्रति आकर्षण तो पहलेसे ही था इस सहकारी कारणने उस आकर्षणको प्रबल बना दिया। श्रीविभीषणजी हाथमें गदा लेकर अन्य चार स्वजन राक्षसोंके साथ उसी समय उछलकर आकाशमें चले गये—

इत्युक्तः परुषं वाक्यं न्यायवादी विभीषणः।
उत्पपात गदापाणिश्चतुर्भिः सह राक्षसैः॥

(६।१६।१७)

'उत्पपात' का भाव यह है कि जिस प्रकार सन्तप्त बालुकामयी भूमिमें कोई स्थिर नहीं रह सकता है। यदि कहीं व्यक्तिका पैर उस सन्तप्त सिकतामय भूमिपर पड़ जाय तो वह जिस प्रकार उछलता है और पुनः उस भूमिपर नहीं आना चाहता, इसी प्रकार श्रीविभीषण भी लङ्काकी भूमिसे उछलकर आकाशमें चले गये। लङ्का सन्तप्त सिकतामयी भूमि इसलिये है कि सम्प्रति इस भूमिपर मेरे परमाराध्य जीवनसारसर्वस्व श्रीराघवेन्द्र सरकारकी, छोटे सरकारकी, रामप्राणवल्लभा सतीशिरोमणि परब्रह्ममहिषी नित्यकिशोरी श्रीजनक किशोरीजीकी, मेरे गुरुदेव श्रीहनुमान्‌जीकी निन्दा हो रही है इन तापोंसे यह भूमि सन्तप्त हो गयी है। इसलिये लङ्कासे उछलकर आकाशमें चले गये। अब इस भूमिमें जब श्रीरामजीकी विजय वैजयन्ती फहर-फहर फहरायेगी किं बहुना उनकी कीर्ति-सरिता लहर-लहर लहरायेगी और उस कीर्ति-सरितासे यह भूमि अभिसिञ्चित हो जायगी तभी मैं आऊँगा।— **'उत्पपात सन्तप्त सिकतामय भूमिस्थित इव उद्‌गतः'।** (श्रीगोविन्दराज)

'चतुर्भिः सह राक्षसैः'—चार राक्षसोंको साथमें ले जानेका रहस्य यह है कि इन्होंने आरम्भसे

ही मेरा साथ दिया है, अतः इन्हें मेरा प्रिय समझकर इनके साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार होनेकी सम्भावना है, एतावता कृतज्ञताके कारण इन्हें साथमें ले गये। किंवा—ये मेरे जीवनभर आश्रित रहे हैं, अब जबकि मैं जीवनका परम लक्ष्य प्राप्त करने जा रहा हूँ तब इनका छोड़ना उचित नहीं है; अतः भगवच्छरणागतिके महान् फलकी प्राप्ति करानेके लिये साथ ले जा रहे हैं।

इस समय महर्षि श्रीवाल्मीकिजी ध्वनि मर्यादासे श्रीविभीषणजीकी श्लाघा करते हैं। वे उन्हें 'श्रीमान्' कहकर अभिनन्दन करते हैं '**अन्तरिक्षगतः श्रीमान्**'। अन्यथा जो विभीषण लङ्का, मित्र, कलत्र, पुत्र, वित्त आदि सब छोड़ दिये हैं, समस्त श्री छोड़कर आ रहे हैं वे श्रीमान् कैसे हो गये? परन्तु नहीं, अबतक श्रीरामके प्रतिकूल संसर्गमें थे। आज उनके सम्मुख आ जानेके लिये वे आकाशमें चढ़ रहे हैं इससे बढ़कर और कौन-सा सौभाग्य होगा? एतावता प्रहृष्ट होकर बधाई देते हैं—'**अन्तरिक्षगतः श्रीमान्**'। '**परित्यक्ता मयालङ्का मित्राणि च धनानि चेति समुत्थितस्य कानाम श्रीः उच्यते। प्रतिकूल निवृत्तिपूर्वकानुकूल रामविषयाभिमुख्य श्रीसमेत इत्यर्थः**'। (श्रीगोविन्दराज)

चलते-चलते श्रीविभीषणने रावणसे कहा—हे राजन्! अच्छी बात है, आप मुझे सहज शत्रु समझते हैं, अनार्य समझते हैं तो मैं चला जाऊँगा। मैं अपने हृदयसे चाहता हूँ कि आप सुखी हों। मैंने आपको ज्येष्ठ भ्राता समझकर स्नेहके कारण आपकी हित-चिन्तासे जो कुछ कहा है वह यदि आपको अच्छा नहीं लगा है तो आप मुझे क्षमा कर दें। आप अपने राक्षसोंके सहित इस पुरीकी सब प्रकारसे रक्षा करें। आपका कल्याण हो! अब मैं यहाँसे चला जाऊँगा। आप मेरे बिना सुखी हो जाओ—

तन्मर्षयतु यच्चोक्तं गुरुत्वाद्धितमिच्छता।
आत्मानं सर्वथा रक्ष पुरीं चेमां सराक्षसाम्॥
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव मया विना।

(६। १६। २५)

अब रावणकी मृत्युमें विलम्ब नहीं है। श्रीविभीषणके लङ्कामें रहते श्रीरामजी लङ्कापर आक्रमण करनेमें संकुचित हो रहे थे—

तौलौं न दापु दल्यौ दसकंधर, जौलौं बिभीषन लातु न मारो॥

(श्रीकवितावली रामायण ७। ३)

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं।
आयूहीन भए सब तबहीं॥

श्रीविभीषणके कारण समस्त लङ्का सुरक्षित थी। कभी-कभी ऐसा संसारमें भी देखा जाता है। स्मरण रखें, कभी भगवद्भक्तका अनादर न होने पावे। भगवद्भक्तका अनादर सर्वस्व नाश कर देता है। कोई सन्त स्वभावका व्यक्ति, भजनानन्दी व्यक्ति घरमें हो, स्थानमें हो, आश्रममें हो और सांसारिक दृष्टिसे कोई कार्य न करता हो तो उसे 'फोकटिया' समझकर निष्कासित मत कर देना। पीछे पश्चात्ताप करना पड़ेगा। श्रीविभीषण चल पड़े—

तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा।
रामु भजें हित नाथ तुम्हारा॥
सचिव संग लै नभ पथ गयऊ।
सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ॥
रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥

(श्रीरामचरितमानस ५। ४१। ८-९, दो० ४१)

श्रीविभीषणजी जब चलते हैं तो बड़ी भावपूर्ण अभिलाषा करते हुए चलते हैं—

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं।
करत मनोरथ बहु मन माहीं॥

देखिहउँ जाइ चरन जलजाता।
अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी।
दंडक कानन पावनकारी॥
जे पद जनकसुताँ उर लाए।
कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई।
अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥
जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥

(श्रीरामचरितमानस ५। ४२। ४—८, दो० ४२)

महाराज रामपहँ जाउँगो।
सुख-स्वारथ परिहरि करिहौं सोइ, ज्यौं साहिबहि सुहाउँगो॥
सरनागत सुनि बेगि बोलि हैं, हौं निपटहि सकुचाउँगो।
राम गरीबनिवाज निवाजिहैं, जानिहैं, ठाकुर-ठाउँगो॥
धरिहैं नाथ हाथ माथे, एहितें केहि लाभ अघाउँगो।
सपनो-सो अपनो न कछू लखि, लघु लालच न लोभाउँगो॥
कहिहौं, बलि, रोटिहा रावरो, बिनु मोलही बिकाउँगो।
तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहौं, उबरी जूठनि खाउँगो॥

(श्रीगीतावली रामायण ५। ३०)

यही शरणागतकी भाषा है। यही भक्तकी मङ्गलमयी अभिलाषा है। वह कहता है कि मैं तो अपने आराध्यके पास जाऊँगा और अपना सुख-स्वार्थ छोड़कर वही करूँगा जो मेरे प्रियतमको अच्छा लगे और जिससे मैं अपने प्रेमास्पद श्रीरामको अच्छा लगूँ। मेरा अपना कोई सुख-स्वार्थ नहीं है इसीलिये श्रीविभीषणकी शरणागति न किसी लोभके लिये है, न किसी लौकिक लाभकी प्राप्तिके लिये है और न धर्मका उल्लङ्घन है; क्योंकि भगवान्‌की शरणागति तो सबके लिये धर्म है।

श्रीविभीषणकी अभिलाषाकी व्याख्या करने-की मनमें अभिलाषा तो है; परन्तु विवशताके कारण न चाहते हुए भी इस डूबनेवाले प्रसङ्ग-को प्रणाम करके आगे चलता हूँ।

लङ्कासे प्रस्थान करके समुद्रके उत्तरी तटपर जहाँ ठाकुरजी वानरेन्द्र सुग्रीव आदिके साथ समुद्रोल्लङ्घनकी युक्ति सोच रहे थे, वहाँ आ गये। यहींसे भगवच्छरणागतिका प्रसङ्ग आरम्भ होता है—

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणं रावणानुजः।
आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः॥

(६। १७। १)

'इत्युक्त्वा' से कहनेके प्रकारको सूचित किया गया। **'प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली'** अर्थात् श्रीदशरथनन्दन श्रीरामजीके हाथोंमें श्रीमिथिलेश-नन्दिनीको प्रदान कर दो। यह कर्तव्यमें सुविधा दिखायी।

'यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणाः' अर्थात् श्रीरामजीके बाण जबतक सिर-उच्छिन्न नहीं कर देते यह भय भी दिखलाया। यह भाव **'इत्युक्त्वा'** का है। **'परुषम्'**—विभीषणकी तरह शान्तप्रकृति श्रीरामभक्तके वाक्यको कठोर कहनेका तात्पर्य यह है कि वह वाक्य तो हित था और मधुर भी था; परन्तु रावणरूप ग्राहकके दोषसे कठोर हो गया। मलयानिल विलासियोंका आन्तरिक सन्ताप दूर करता है; परन्तु वही मलयपवन विरही लोगोंको जलाता रहता है, एतावता विभीषणका हितवचन भी कठोर हो गया। **'इत्युक्त्वा' 'प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली' 'इतिकर्तव्यसौकर्यम्' 'यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणाः' इत्यकरणे प्रत्यवायं चोक्त्वा। परुषम्—सस्त्रीकजनसुखावहस्य मलयमारुतस्य विरहिणि दुःखकरत्ववद् विभीषणोदितं हितम्। आश्रय दोषेण परुषं वाक्यं हितपरिपूर्णम्। उक्त्वा हितज्ञो भ्राता भ्रातरमापन्न परितत्याजेत्यपयशो यावता शक्यं परिमार्ष्टुं तावत् पर्यन्तमुक्त्वा। परुषत्वे**

हेतुः रावणमिति। प्रबल दुर्बल विचारमन्तरेण सर्वरावकस्य शत्रुबलोपवर्णने परुषं भवत्येव'।

(श्रीगोविन्दराजजी)

'आजगाम'—जब लङ्कासे विभीषणजी श्रीठाकुरजीके पास गये थे, तब 'जगाम' शब्दका प्रयोग होना चाहिये था। आनेका अर्थ द्योतन करनेवाले 'आजगाम' का प्रयोग क्यों किया? जहाँ-जहाँ भी ऐसा प्रयोग आया है वहाँ-वहाँपर महर्षि श्रीवाल्मीकिने **'जगाम'** का ही प्रयोग किया है। भगवान् श्रीरामके विषयमें भी कहा है—**'जगाम मनसा सीताम्'** फिर प्रस्तुत प्रसङ्गमें **'आजगाम'** का प्रयोग क्यों हुआ है? इस **'आजगाम'** शब्दके प्रयोगमें श्रीवाल्मीकिजीका यह आशय है कि श्रीविभीषणजी तो दैवजीव थे। वे लङ्कामें रहकर भी लङ्कासे हार्दिक सम्बन्ध नहीं रखते थे—

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी।
जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी॥

वे सदा श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें ही अपना घर समझते थे, सुतराम् घरमें आनेके लिये **'आजगाम'** शब्दका प्रयोग सर्वथा उचित है—**'अजगाम रावणगोष्ठ्यां स्वस्य सम्बन्धाभावेन रामगोष्ठ्याः स्वगृहत्वेनाजगामेत्युक्तं न तु जगामेति'**।

भक्त भगवान्‌की नित्य विभूति हैं। श्रीरामजी ही भक्तोंके आश्रय हैं। आश्रयके पास लौटनेमें आना ही कहा जायगा। इसीलिये 'शरणागति' के शरणमें 'आगति' आना कहा जाता है न कि 'गति'। अतः आदिकवि श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं—'आजगाम'।

'मुहूर्तेन'—का अर्थ यह भी सम्भव है कि वे मुहूर्तसे—साइतसे गये अर्थात् ज्योतिषियोंसे मुहूर्त निश्चय करके चले थे। चन्द्रमा अनुकूल थे, योगिनी सुखदा थी, सर्वदिग्गमन नक्षत्र था, दिक्शूल नहीं था, काल राहु भी सन्मुख नहीं था, भद्रा भी नहीं थी इत्यादि। परन्तु यहाँपर यह अर्थ नहीं है—***'तहँई मिले महेश दियो हित उपदेश राम की सरन जाहि सुदिन न हेरै'।*** भगवान् श्रीसीतानाथकी शरणमें जानेके लिये मुहूर्तकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

यहाँपर **'मुहूर्तेन'** का भाव है 'अत्यन्तशीघ्र'। इस **'मुहूर्तेन'** शब्दके द्वारा भगवद्भक्त विभीषणकी मानसिक अवस्थाका निरूपण किया गया है। श्रीविभीषण बहुत दिनोंसे श्रीरामचन्द्र-मुखचन्द्रका दर्शन करनेके लिये उत्कण्ठित थे। वे सोचते थे कब लङ्कासे छुटकारा पाऊँ और अपने जीवन-सर्वस्वको जीवन समर्पित कर दूँ—

तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा।
करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥

आज जब रावण-सभामें महापार्श्वका घिनौना प्रस्ताव सुना—

बलात् कुक्कुटवृत्तेन प्रवर्तस्व महाबल।
आक्रम्याक्रम्य सीतां वै तां भुङ्क्ष्व च रमस्व च॥

(६। १३। ४)

तब उनका मन घृणासे भर गया। उनके हृदयमें आग लग गयी। अपनी माताके लिये इस प्रकारके प्रस्तावका श्रवण एक सुयोग्य पुत्र कैसे कर सकता था? मेघनादके वचनोंने उस आगमें हवाका काम किया और रावणके वचनोंने तो घृतका कार्य करके उस आगको अत्यन्त संवर्द्धित कर दिया और श्रीविभीषण अविलम्ब **'मुहूर्तेन'** चल पड़े।

जिस प्रकार पराधीन गायका बछड़ा खूँटेमें बँधा हुआ मातृदर्शन किं वा मातृस्तन्यकी अनुपल, अनुक्षण आकाङ्क्षा करता रहता है, अहर्निश उसी चिन्तामें निमग्न रहता है। **'स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्त्ताः'**। अवसर पाते ही समस्त अन्तरायोंको

पार करके प्रतिबन्धोंको तोड़ करके शीघ्रातिशीघ्र 'हम्बा रव' करते हुए अपनी माँके पास पहुँच जाता है उसी प्रकार श्रीविभीषण जन्मसे ही श्रीरामचरणदर्शन एवं उनके वचनामृत दुग्धरस-पानकी आकांक्षामें सतत निमग्न रहते थे। आज अवसर पाकर तत्काल समस्त अन्तरायोंको पार करके अपने जीवनधनके श्रीचरणोंमें पहुँच गये—*'कुटुम्ब तजि राम सरन तेरी आयो'*।

जिस प्रकार जलते हुए अंगारोंपर चलना पड़े तो व्यक्ति शीघ्र-से-शीघ्र अंगारोंको पार करके गन्तव्य स्थलपर पहुँचता है। संसारमें रहना, हरिविमुखोंके संगमें निवास करना अच्छा नहीं है, इसकी अपेक्षा अग्निकी लपटोंमें रहना ठीक है। श्रीविभीषणजी भयानक अग्निके समान दाहक रावणादि हरिविमुखोंका संग छोड़कर '**मुहूर्तेन**'—शीघ्रातिशीघ्र श्रीरामचरणोंमें पहुँच गये '**मुहूर्त्तेन' वरं हुतवहज्वाला पञ्जरान्तर्व्यवस्थितिः। न शौरि चिन्ता विमुख जनसंवास वैशसम्' इति न्यायेनाङ्गार निकर परिक्षिप्ते वर्त्मनि पदन्यासवत् रावण सदनावस्थित्यनर्हत्वं विगलित बन्धन रज्जोर्वत्सस्य मातुरूधः स्पर्शमन्तरेण मध्यदेशादर्शनवदतिवेगागमनं चोक्तम्**'। (श्रीगोविन्दराजजी) श्रीविभीषणजी श्रीरामजीका मङ्गलमय दर्शन करूँगा—इस परम पवित्र सङ्कल्प-को करते हुए श्रीरघुनन्दनके वात्सल्य, सौशील्य, सौन्दर्य, माधुर्य आदि सद्‌गुणोंका चिन्तन करते हुए चल रहे हैं अतः '**मुहूर्तेन**'—अत्यन्त शीघ्र पहुँच गये—

एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा।
आयउ सपदि सिंधु एहिं पारा॥

जो श्रीरामजीका चिन्तन करता है वह इस समुद्रकी तो बात ही छोड़ दें वह तो भवसमुद्र-से भी शीघ्र ही पार हो जाता है—*'नाम लेत भव सिन्धु सुखाहीं।*

'**यत्र रामः**'—जहाँ राम थे वहाँ आये। कहना चाहिये '**रामं आजगाम**' रामके पास पहुँच गये। जहाँ शरणागतिका निरूपण किया जा रहा है, वहाँ '**शरणम्**' जो भगवान् उनके पास 'आगति' यों साक्षात् भगवान्‌का उपसर्पण ही वर्णन किया जाता है। फिर यहाँ '**यत्र रामः**' कहकर रामके निवास देशका व्यवधान बीचमें क्यों लगाया? इसका भी तात्पर्य है—विभीषण भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका मन-ही-मन ध्यान करते हुए इतने अनुरक्त हो गये कि चित्तमें सोचते आ रहे थे—'अहा! वह स्थान कितना पवित्र है, जहाँ भगवान् इस समय विराज रहे हैं'। एतावता उनकी दृष्टिमें श्रीरामकी अपेक्षा भी उनके श्रीचरणारविन्दोंसे पवित्र हुए उस स्थानका बड़ा सम्मान था। भक्तगण भगवच्चरणार्चित स्थानको दूरसे ही देखकर गद्‌गद हो जाते हैं।

श्रीभरतजी महाराज चित्रकूटमें श्रीचित्रकूटाद्रि-विहारी जिस चित्रकूट पर्वतपर निवास करते हैं उसको देखकर ही गद्‌गद हो जाते हैं। वे कहते हैं—जिस प्रकार नन्दनवनमें कुबेरजी निवास करते हैं उसी प्रकार जिसके वनमें ककुत्स्थ कुलनन्दन श्रीरघुनन्दन विराज रहे हैं वह चित्रकूट पर्वत परम मङ्गलमय तथा गिरिराज हिमालयके समान श्रेष्ठ है। यह सर्पसेवित दुर्गम वन भी कृतार्थ हो गया, जहाँ शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाराज श्रीरामचन्द्र नित्य निवास करते हैं—

सुशुभश्चित्रकूटोऽसौ गिरिराजसमो गिरिः।
यस्मिन् वसति काकुत्स्थः कुबेर इव नन्दने॥
कृतकार्यमिदं दुर्गवनं व्यालनिषेवितम्।
यदध्यास्ते महाराजो रामः शस्त्रभृतां वरः॥

(२।९८।१२-१३)

अथवा—लङ्कानिवासके 'वैशस' से घबड़ाये

हुए श्रीविभीषण जल्दी-जल्दी उड़े आ रहे थे। उन्हें समुद्रकी लम्बाई बहुत बड़ी ज्ञात हो रही थी; किन्तु जैसे ही श्रीरामचन्द्रजीके निवास-स्थानकी सीमापर पहुँचे उन्हें शान्ति मिल गयी। एतावता उन्हें तो श्रीरामचन्द्रजीके निवाससे पवित्र हुआ वह देश ही बड़ा अच्छा लग रहा था। इसलिये विभीषणके हृदयानुसार महर्षिने कहा—'**यत्र रामः**'।

'**सलक्ष्मणः**'—'यत्र रामः' के आगे श्रीरामका विशेषण है—'**सलक्ष्मणः**'। यहाँ शुद्ध साहित्यज्ञ एवं वैयाकरण पण्डित तो कदाचित् अपने शास्त्रके अनुसार साहचर्यका अनुगम जोड़ें कि लक्ष्मण पदके साहचर्यसे रामपदका राघव ही अर्थ है, परशुरामादि नहीं। परन्तु यहाँ विभीषणका अभिप्राय लौकिक साहित्य व्यवहार आदिसे विलक्षण है। वे सोचते हैं—मैं शरणागत होकर श्रीरामदरबार-में उपस्थित हुआ हूँ और श्रीरामचन्द्रजी भी शरणागतको अपनानेवाले परम शरण्य स्वयं ही हैं; परन्तु मेरा तो इसमें कुछ पुरुषार्थ नहीं है। भरोसा यह है कि मेरे आराध्य अकेले ही नहीं विराज रहे हैं अपितु सुमित्रानन्द संवर्द्धन श्रीमान् लक्ष्मणजी भी तो उनके साथ हैं। श्रीलक्ष्मणजी शरणागतोंकी दशाको जाननेवाले हैं क्योंकि सर्वविभूति सम्पन्न अयोध्याको तथा जननी सुमित्राको और अपनी नव परिणीता प्रियतमा उर्मिलाजीको भी छोड़कर वे श्रीरामजीकी चरणशरणमें रह रहे हैं। पहले तो श्रीरामजीकी करुणासे कोई 'ननु न च' उपस्थित ही नहीं होगा। यदि कदाचित् मेरे दुर्भाग्यसे कोई सन्देह हो ही जाय तो श्रीलक्ष्मण जो अत्यन्त दयालु हैं निश्चित ही मेरा पक्ष प्रतिपादन कर देंगे—मेरे हृदयको निवेदन कर देंगे। इसी आशयसे महर्षि लिखते हैं—'**यत्र रामः स लक्ष्मणः' यत्र रामः, रामापेक्षया तद् देश सम्बन्धस्य प्राप्यत्वमुक्तम्। 'सुशुभश्चित्रकूटोऽसौ गिरिराजोपमोगिरिः। यस्मिन् वसति काकुत्स्थः कुबेर इव नन्दने' 'इतिवत् रामस्य लक्ष्मणो व्यावर्तक इति सलक्ष्मण इत्युक्तम्। यद् वा पुरुषकार सान्निध्यमनेनोच्यते**'। समुद्रके उत्तर तटपर आकर श्रीविभीषण निर्भयतापूर्वक आकाशमें ही खड़े हो गये। महा बुद्धिमान् और गम्भीराशय विभीषण श्रीसुग्रीव और अन्य वानरश्रेष्ठोंको देखकर कुछ देरतक आकाशमें ही खड़े रहे और फिर ऊँचे स्वरमें बोले—

उत्तरं तीरमासाद्य खस्थ एव व्यतिष्ठत॥
स उवाच महाप्राज्ञः स्वरेण महता महान्।
सुग्रीवं तांश्च सम्प्रेक्ष्य खस्थ एव विभीषणः॥

(६। १७। १०-११)

इस श्लोकमें आये हुए सभी शब्द अत्यन्त गम्भीर आशयसे संयुक्त हैं। कतिपय शब्दोंका हमलोग रसास्वादन करें।

सम्प्रेक्ष्य—केवल बाहरसे ही नहीं देखा अपितु सम्—सम्यक्—भलीभाँति अन्तरङ्ग दृष्टिसे परख लिया इसीलिये कहते हैं—'महाप्राज्ञः'। सम्पूर्ण दोषोंकी खानि रावणका त्याग करनेसे और निर्दुष्ट समस्त सद्गुणोंकी खानि श्रीरामजीका आश्रय—शरणागति स्वीकार करनेके कारण महाप्राज्ञ विशेषण है। '**सर्व दोषाकर रावणत्यागान्निर्दुष्ट सर्वगुणाकर रामाश्रयणाच्च महाप्राज्ञत्वम्**'। (तिलकटीका)

'**महतास्वरेण**'—ऊँचे स्वरसे अर्थात् बड़े जोरसे बोले। कारण यह था कि जिन पार्श्ववर्त्तियों-को मैं अपने अनुकूल करना चाहता हूँ वे सब सुन लें। न जाने उनमेंसे कौन मेरा सहायक बन जाय और वह इस समय न जाने कहाँ बैठा हो? यदि कोई और सहायताके लिये न भी प्रस्तुत हो तो स्वयं दीनवत्सल भक्तोंके हृदयकी हृत्तन्त्रीकी

मधुर ध्वनि सुननेवाले करुणामय श्रीरामचन्द्रजी ही मेरा आर्त्तस्वर श्रवण कर लें। फिर तो मेरी सब बात ही बन जायगी। इसलिये '**महता स्वरेण उवाच**'। 'महान्'—महाप्राज्ञ विशेषण प्रयुक्त करनेके पश्चात् पुनः 'महान्' विशेषणके प्रयोग करनेका भाव यह है कि विभीषणजी तो सब तरहके महत्त्वके भाजन हैं। 'महाप्राज्ञः' से तो मात्र बुद्धिकृत् महत्त्व ही प्रतीत होता है, परन्तु महान् कहनेसे यावन्मात्र महत्त्व—सम्पूर्ण प्रकारके महत्त्वों-का समावेश हो गया। आज ठाकुरजीकी शरणमें आ करके इस तरह उच्च स्वरमें अपना आर्त्त निवेदन श्रीरामजीको सुना रहे हैं, इनसे बढ़कर भला और कौन महान्—भाग्यवान् होगा? लक्ष्मीतन्त्रमें बड़ा सुन्दर कहा है—'निष्किञ्चनता ही जिनका एकमात्र आश्रय है ऐसे होकर भी असङ्ख्योंमें कोई एक भाग्यवान् मात्र मेरी ही शरण लेकर अन्तमें मुझको ही सम्प्राप्त होते हैं'। बस, शरणागतिके इसी गूढ़ तात्पर्यको समझते हुए महर्षि श्रीविभीषणजीको 'महान्' कहते हैं। '**पुरुषकार भूतानां सर्वेषां सर्वलोक शरण्यस्य च स्वार्त रवश्रवणाय महास्वर प्रयोगः रामविषये चैवं विधार्त्तरवोच्चारण भाग्याधिकस्यैवेति विवक्षया महानित्युक्तिः। यथोक्तं लक्ष्मीतन्त्रे—आकिञ्चन्यैक शरणाः केचिद् भाग्याधिकाः पुनः। मामेव शरणं प्राप्य मामेवान्ते समश्नुते**' इति।

श्रीविभीषणजीने छः श्लोकोंमें अपने हृदयके भावोंको श्रीसुग्रीवादिके माध्यमसे करुणामय श्रीरघुनाथजीकी सेवामें सम्प्रेषित किया है। ये छः श्लोक बड़े भावपूर्ण हैं आचार्य लोग तो यह भी कहते हैं कि शरणागतके जो छः अङ्ग शास्त्रोंमें कहे गये हैं—'**आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोमृत्व वरणं तथा॥ आत्मनिक्षेप कार्पण्ये षड्विधाशरणागतिः**' उनका भी इन छः श्लोकोंमें बीजरूपसे निरूपण किया गया है। विभीषणजी अपने स्वरूपको छिपाते नहीं हैं। अपना दोष सत्य-सत्य स्वयं कह रहे हैं। अपने वक्तव्यके आरम्भमें वे कहते हैं—

रावणो नाम दुर्वृत्तो राक्षसो राक्षसेश्वरः।
तस्याहमनुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः॥

(६। १७। १२)

रावण नामका जो दुष्ट आचरणवाला राक्षस निशाचरोंका राजा है उसका मैं अनुज हूँ। मेरा नाम विभीषण है।

यहाँ 'रावणः'—रुलानेवाला पदसे सब लोगोंको कष्ट देना, 'दुर्वृत्तः' पदसे अकार्य करना, 'राक्षस' पदसे जातिगत क्रौर्य, 'राक्षसेश्वर' पदसे उसके सेवक, भृत्य आदि सब क्रूर हैं अर्थात् उसके सब परिकर दुष्ट हैं। रावण इस तरहका दुष्ट है इस कथनसे सब दोष रावणमें सिद्ध होते हैं, होने दो। तुम्हें इससे क्या? उसपर कहते हैं—'**तस्याहमनुजो भ्राता**' मैं उसका छोटा भाई हूँ। ऐसे घोर अपराधीके भाई होनेसे अपनेमें पूर्ण दोष सिद्ध हो गया। धर्मशास्त्रकी गद्दीपर बैठकर प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देते समय '**सहयानास-नाशनात्**' एक यानमें चलना, एक स्थानमें बैठना, एक साथ भोजन करना, इत्यादिसे ही जब संसर्ग प्रायश्चित्तका दण्ड देना आवश्यक हो जाता है तब यहाँ तो यह सगा भाई ही है। भाई भी छोटा है, बड़ा भाई होता तो मुझे उसकी आज्ञामें चलना आवश्यक नहीं होता। देखिये—कुबेर भी तो रावणके भाई ही हैं, परन्तु बड़े हैं, वे अलग रहते हैं एतावता उनके दोषोंसे असम्पृक्त हैं परन्तु मैं तो छोटा भाई हूँ। अपनी इच्छासे अथवा अनिच्छासे उसके किये अपराधोंमें मुझे योग देना ही पड़ता है। '**रावणं लोकरावणमिति न्यायेन रावयतीति व्युत्पत्ति सम्भवान्नामैव**

क्रूरमित्यर्थः। न केवलं नामैव क्रूरं व्यापारोऽपि नृशंस इत्याह—दुर्वृत इति। जातिरपि तथा विधेत्याह—राक्षस इति। न केवलं स्वयमेव क्रूरः क्रूरानेक परिकर समवेतश्चेत्याह—राक्षसेश्वर इति। रावणस्यैवंविधत्वे तव किमायातमित्यत्राह—तस्याहमिति। यद्यहमग्रजः स्यां तर्हि तदाऽननुवर्तित्वेन धनदवत्तद्दोषैर्नलिप्येय। अनुजत्वेन तन्मनीषिताः सर्वेदोषास्तदाज्ञया मया कृता इति भावः'। (श्रीगोविन्दराजजी) उसका भाई होनेके सम्बन्धसे अपनेको भी दोषीके रूपमें प्रस्तुत करना यह विभीषणका गर्व हानिरूप कार्पण्य है। '**तद्भ्रातृत्वेन स्वस्यापि दोषवत्व कथनाद् गर्वहानिरूप कार्पण्यमुक्तम्**'। (तिलक टीका)।

श्रीविभीषण कहते हैं उस दुर्वृत्तने जन स्थानसे जटायुको मारकर श्रीसीताका हरण किया। श्रीसीता सम्प्रति बड़ी दीन दशामें हैं। कदाचित् इससे पतिव्रता सीताके चारित्र्यपर सन्देह हो जाय इसलिये श्रीविभीषण कहते हैं—'**राक्षसीभिः सुरक्षिता**' अकेली नहीं हैं, क्रूर राक्षसियाँ श्रीसीताजीके चारों ओर कड़ा पहरा दे रही हैं। आगे कहते हैं कि मैंने उपपत्तियुक्त वचनोंसे बार-बार समझाया कि श्रीसीताजीको श्रीरामके पास लौटा दो; परन्तु मरनेवाला जिस तरह औषधि नहीं लेता उसी तरह कालप्रेरित रावणने मेरी बातको स्वीकार नहीं किया, प्रत्युत उसने मुझको अनेक कठोर बातें सुनायीं और '**दासवच्चावमानितः**'। उच्छिष्टभोजी दासको जिस तरह ठुकराते हैं उस तरह मेरा अपमान किया। इसके आगे सत्रहवाँ श्लोक विभीषणजीके वक्तव्यमें सबसे प्रधान है। उसका भक्तजनोंको मनन करना चाहिये—

निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने।
सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम्॥

(६। १७। १७)

'**सर्वलोक शरण्याय महात्मने राघवाय उपस्थितं मा विभीषणं क्षिप्रं निवेदयत**' अर्थात् सब लोगोंको आश्रय देनेवाले महात्मा श्रीरघुनन्दनको शीघ्र मेरे आनेकी सूचना दो और उनसे कहो—शरणागत विभीषण आपके श्रीचरणोंमें स्वयं उपस्थित है—'**सर्वलोकशरण्याय**'—'शरण्य' का अर्थ है वे '**शरणे रक्षणे साधुः शरण्यः**' '**तत्र साधुः**' इस तद्धित सूत्रसे 'यत्' प्रत्यय हुआ है। रक्षा करनेमें जो साधु हो उसे शरण्य कहते हैं। श्रीविभीषण कहते हैं—मैं श्रीरामजीके स्वभावको जानता हूँ कि शरणागतकी जाति, कुल, विद्या, गुण, आचरण आदिका विचार नहीं करते हैं। जो उनकी ओर एक बार भी अभिमुख हो जाता है उन सबको वे आश्रय देते हैं—'**अनालोचित कुल विद्या वृत्तादि विशेषाऽशेष लोक शरण्याय**' 'राघवाय'—ठाकुरजीका साक्षान्नाम निर्देश न करके वंशका नाम लेना साभिप्राय है। श्रीविभीषण व्यञ्जनासे सूचित करते हैं कि आप उस कुलमें उत्पन्न हैं जिस कुलके एक-एक बालकको यह अभिमान है—'**किन्त्वर्थिनामर्थित दान दीक्षाकृतव्रत-श्लाघ्यमिदं कुलं नः**' अर्थात् हमारा कुल वह है, जो अर्थी चाहे कैसा भी प्रयोजन लेकर आवे उसके मनोरथकी पूर्ति कर देना, इस दानदीक्षा-के व्रतको लिये हुए है और इसीसे अपनी प्रशंसा समझे हुए हैं। श्रीविभीषण कहते हैं—उसी प्रसिद्ध वंशमें आप समुत्पन्न हैं अतः आपके दरबारसे अर्थी विमुख लौट जाय यह आशङ्का ही नहीं है। इसी भावको सूचित करनेके लिये श्रीविभीषण नाम-निर्देश न करके कुलका निर्देश करके कहते हैं—'राघवाय'। '**राघवाय' किन्त्वर्थिनामर्थित दानदीक्षा कृतव्रत श्लाघ्यमिदं कुलं नः' इत्यादि वचनैः प्रसिद्ध वैभवे रघुवंशेऽवतीर्णाय अनेनार्थिप्रार्थित वैफल्याभावोध्वनितः**'।

'महात्मने'—श्रीगोविन्दराजजी कहते हैं—**'अत्र शरण्याङ्गभूतं सुलभत्वपरत्वरूपं गुणद्वयं प्राधान्येन दर्शयति—राघवाय महात्मने इति। सुलभत्वेऽप्यनिष्टानां लोष्टानां उत्कर्षेऽप्यसुलभानां मेरुप्रभृतीनां चानुपादेयत्वादुभयमप्यपेक्षितम्'।** अर्थात् शरणागतिमें शरण्यके दो गुण देखे जाते हैं—सुलभत्व और परत्व। शरण देनेकी प्रतिज्ञा तो कर रखी है परन्तु वह सुलभ ही न हुए। उनतक किसीकी पहुँच ही न हो सकी तो रक्षा करनेके अवसर ही कितने मिलेंगे? सुमेरु पर्वत सोनेका है परन्तु उस पर्वततक कितने लोग पहुँच सके हैं? इसलिये आवश्यक है कि वह सुलभ हो। सुलभ भी हो परन्तु पूर्ण समर्थ न हो तो हम शरण लेकर ही क्या करेंगे? मिट्टीके ढेले जहाँ चाहें वहाँ मिल जायेंगे परन्तु वे सुवर्णका काम तो नहीं देंगे? अतः शरण्यमें दूसरा गुण होना चाहिये परत्व—उत्कर्ष-सामर्थ्य। **'राघवाय'** और **'महात्मने'** इन दोनों पदोंसे परत्व और सुलभत्व दोनों गुणोंका श्रीरामचन्द्रमें दर्शन कराया है।

'उपस्थितम्' से यह सूचित किया कि करुणामय श्रीरामजीके दरबारमें केवल उपस्थित होना ही स्वीकार करनेके लिये पर्याप्त है। गुण-दोषकी परीक्षा आवश्यक नहीं है क्योंकि श्रीरामजी कहते हैं—**'सकृदेव प्रपन्नाय'** अर्थात् एक बार भी आ जाता है उसे हम स्वीकार कर लेते हैं। भाव यह है कि मेरी ओरका कर्तव्य उपस्थान था वह मैं कर चुका अब आगे अपने कर्तव्यकी बात आप जानें इसी अभिप्रायसे विशेषण दिया 'उपस्थितम्'। **'अतिहीनस्यापि उपगमनमेव हि श्रीरामाङ्गीकारे बीजमिति भावः'।**

(श्रीगोविन्दराजजी)

'क्षिप्रम्'—का भाव कि ग्रीष्म ऋतुकी मध्याह्न वेलामें मीलों दूरसे चलकर कोई व्यक्ति आवे, अपने गन्तव्यतक पहुँच जावे। वहाँपर उसके सामने शीतल, सुगन्धित, स्वच्छ, मधुर, ठण्ढाई—पेय पदार्थ तैयार है। अब तो यात्रा करके आनेवालेका मन न बातमें लगेगा और न किसी व्यवहारमें ही लगेगा, वह तो सोचेगा कि शीघ्रातिशीघ्र हमें यह पेय पदार्थ मिल जाय और हमारी तृषा शान्त हो जाय। उसी प्रकार श्रीविभीषण जन्म-जन्मसे चलते आ रहे हैं।

अबतक वे अपनी प्यासको—भगवद्दर्शनकी चाहको मारते हुए आये हैं, आज उनके सामने श्रीरामदर्शनका अमृतमय पदार्थ उपस्थित है; परन्तु एक परदाका अन्तर है। श्रीविभीषणजीका हृदय छटपटा रहा है, अहा! यह व्यवधान कब समाप्त होगा? मुझे रामदर्शनरूप पेय पदार्थ कब प्राप्त होगा? मैं अपने नेत्रोंका पात्र बनाकर उसे कब पीऊँगा? अतः वे कहते हैं—**'क्षिप्रं निवेदय'। क्षिप्रमित्यनेन शीतल सुरभिसलिलं प्राप्य तृषितस्येव विलम्बासहत्वम्।'** (तिलकटीका) अथवा—'क्षिप्रम्' का भाव है कि हे सुग्रीव! हे वानरेन्द्र! भगवान् तो अकारण करुण हैं। आपके निवेदनमें विलम्ब है, उनके अपनानेमें विलम्ब नहीं होगा, अतः कहते हैं—**'क्षिप्रं निवेदयत'।** अथवा श्रीविभीषण कहते हैं कि हे हरीन्द्र! वे तो सर्वलोकशरण्य हैं, महात्मा हैं। देवता, दानव, राक्षस, मनुष्यका बाह्यभेद उनकी दृष्टिमें नहीं है वे अशरणशरण तो सुनते ही मुझे अपना लेंगे। आप तो शीघ्रतासे उनके श्रीचरणोंमें निवेदनमात्र कर दें। अथवा—**'आसमानसे गिरा खजूरमें अटका'** की कहावत चरितार्थ न हो जावे। मैं सारे अन्तरायोंको दूर करके, सारे बन्धनोंको तोड़ करके, सारी ममताओंको समाप्त करके, राग-द्वेषके प्रतिबन्धको नष्ट करके, चार सौ कोसकी दूरीको समाप्त करके, भावपूर्ण हृदयको ले करके श्रीरामदरबारमें आ गया हूँ।

अब तो मुझे अपने प्राणप्रियतमकी बाँकी-झाँकीकी एक झलक चाहिये और कुछ नहीं चाहिये। हे रामसखे! मुझ दर्शनके भिखारीकी दर्दभरी दीदारकी फरियाद जल्दीसे सुना दो।

श्रीविभीषणजीकी यह बात सुनकर लघुविक्रम—शीघ्र चलनेमें परमप्रवीण श्रीसुग्रीवजी सद्यः श्रीरामजीके पास जाकर श्रीलक्ष्मणजीके सामने कहने लगे—

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो लघुविक्रमः।
लक्ष्मणस्याग्रतो रामं संरब्धमिदमब्रवीत्॥

(६। १७। १८)

श्रीसुग्रीवजीकी अपने सखा श्रीरामजीमें अत्यन्त प्रीति थी। अत्यन्त स्नेहीके हृदयमें अनिष्टकी आशङ्का पदे-पदे होती ही रहती है। अतः स्नेहातिशयके कारण श्रीरामजीकी सर्वशक्तिमत्ताका विस्मरण करके सोचने लगे। शरणागतवत्सल श्रीराम शरणागति शब्द श्रवण करते ही विभीषणको शरणमें ले लेंगे और यह क्रूरहृदय राक्षस रामजीका पता नहीं क्या अनर्थ कर डाले इस भयकी शङ्कासे व्याकुलचित्त श्रीसुग्रीव सद्यः श्रीरामके पास जाकर अपने समान हृदयवाले श्रीलक्ष्मणजीको अपना सहायक बनाकर 'विभीषणको पकड़कर बाँध लेना चाहिये—दण्ड देना चाहिये' इस प्रकार प्रार्थना की। '**अथ सुग्रीवो राम प्रेमातिशय जनिताद् व्यामोहात् अतिस्नेहः पापशङ्कीति न्यायेन तस्य सर्वशक्तित्वमपि विस्मृत्य शरणागतवत्सलो रामः शरणागति शब्द श्रवण-मात्रेण गूढहृदयमेनं परिगृह्णीयात् ततः क्रूर हृदयोऽयं रामे किमिव पापमाचरेदित्यस्थानभयशङ्का-व्याकुलितः शीघ्रं राम समीपं गत्वा स्वसमान हृदयं लक्ष्मणमपि सहायीकृत्य विभीषणो निग्राह्य इति विज्ञापयामास**'। (श्रीगोविन्दराज)

..।
कहइ कपीस सुनहु नरनाहा॥
जानि न जाइ निसाचर माया।
कामरूप केहि कारन आया॥
भेद हमार लेन सठ आवा।
राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥

भगवान् श्रीरामने अपने सभी मन्त्रियोंको अपनी-अपनी सम्मति प्रकट करनेके लिये कहा—

परम बुद्धिमान् श्रीअङ्गदने विभीषणकी परीक्षा ली जाय, यह सलाह दी—

इत्युक्ते राघवायाथ मतिमानङ्गदोऽग्रतः।
विभीषणपरीक्षार्थमुवाच वचनं हरिः॥

(६। १७। ३८)

शरभने कहा—पहले इसके पास गुप्त दूत भेजना चाहिये, परीक्षा करके फिर स्वीकार करना उचित है। श्रीजाम्बवान्ने स्पष्ट शब्दोंमें कहा—हे रघुनन्दन! जिससे हमारी शत्रुता दृढ़ हो चुकी है, वह रावण बहुत पापी है। यह विभीषण उसीके पाससे आया है। इसके आनेका न यह समय है और न स्थान है एतावता इसको शङ्काकी दृष्टिसे देखना ही उचित है—इसे विश्वस्त नहीं मानना चाहिये।

तदनन्तर नयाऽपनयकोविद, वाग्वैभव-सम्पन्न मैन्दने कहा—हे राघवेन्द्र! यह रावणका अनुज ही तो है; अतः मधुर व्यवहारके साथ इससे धीरे-धीरे सब बात पूछनी चाहिये। हे नरेन्द्र! इसके हृदयके भावको समझकर दुष्ट हो तो त्याग देना चाहिये और यदि निर्दुष्ट सिद्ध हो जाय तो स्वीकार कर लेना चाहिये।

पवननन्दन श्रीहनुमान्जी ध्यानपूर्वक सबका अभिमत श्रवण कर रहे थे। अवसर पाकर बड़े धैर्यसे विचारपूर्वक वचन कहने लगे। इस प्रसङ्गमें श्रीहनुमान्जीके लिये दो विशेषण दिये गये हैं 'सचिवोत्तम' और 'संस्कारसम्पन्न'। उनके वचनोंको चार विशेषण दिये गये हैं। इन विशेषणोंका मनन करना चाहिये—

अथ संस्कारसम्पन्नो हनूमान् सचिवोत्तमः।

उवाच वचनं श्लक्ष्णमर्थवन्मधुरं लघु॥

(६। १७। ५०)

श्रीहनुमान्‌ने कहा—हे रघुनन्दन! आप बुद्धिमानोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, समर्थ हैं—सकल शास्त्रार्थ तत्त्व-निरूपण समर्थ हैं और वक्ताओंमें उत्तम हैं। साक्षात् देवगुरु बृहस्पति भी आपसे श्रेष्ठ भाषण नहीं कर सकते हैं। मुझे न किसीके मतकी स्पर्धा है और न मुझे विवाद ही अभीष्ट है। मेरी समझमें जो इस समय आया है वह निवेदन करना ही पड़ेगा, क्योंकि '**तव गौरवात्**'। आपने मुझे भी अपने सलाहकारोंमें सम्मिलित करके सम्मान दे रखा है। उस आपके दिये हुए गौरवके कारण जो कुछ इस समय सूझ रहा है वही निवेदन करता हूँ। सचिवश्रेष्ठ श्रीमारुतिने यद्यपि प्रत्येकके मतकी आलोचना कर डाली थी; परन्तु किसीका स्पष्ट नाम निर्देश नहीं किया। उन्होंने अपनी बुद्धिके अनुसार उन मतोंके दोष-गुणोंको स्पष्ट कह दिया। श्रीहनुमान्‌जीने अपना पक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा—हे प्रभो! आपका रावणवध विषयक उद्योग, रावणका मिथ्याचरण एवं पापाचरण, रावणसे भी अधिक बलवान् वालीका वध और सुग्रीवका राज्याभिषेक सुनकर, वालिकी तरह रावणको मारकर सुग्रीवकी तरह मुझे भी राज्य देंगे। इन्हीं सब बातोंको सोचकर श्रीविभीषणजी बुद्धिपूर्वक यहाँ आये हैं। इन सब बातोंको दृष्टिमें रखकर विभीषणका संग्रह करना—शरणमें ले लेना मुझे उचित प्रतीत होता है—

उद्योगं तव सम्प्रेक्ष्य मिथ्यावृत्तं च रावणम्।
वालिनं च हतं श्रुत्वा सुग्रीवञ्चाभिषेचितम्॥
राज्यं प्रार्थयमानस्तु बुद्धिपूर्वमिहागतः।
एतावत्तु पुरस्कृत्य युज्यते तस्य सङ्ग्रहः॥

(६। १७। ६६-६७)

श्रीहनुमान्‌जीने तो वही कहा जो श्रीरामजीके हृदयमें था। इस प्रकार पवननन्दनके स्वचित्तस्थितार्थ प्रतिपादक वचनोंको सुनकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने जो कुछ कहा है वह शरणागति वर्णनका मुख्य भाग है। श्रीरामजीके समस्त भाषणका कह पाना सम्प्रति मेरे लिये सम्भव नहीं है परन्तु दो-एक पद्योंकी संक्षिप्त व्याख्या आवश्यक समझकर प्रस्तुत कर रहा हूँ। आपलोग एक-एक अक्षरको सुननेका—पान करनेका प्रयास करें।

करुणावतार श्रीरामचन्द्रजीने एक श्लोकमें अपना सब कुछ वक्तव्य कह दिया। यद्यपि इसपर सुग्रीवादिके उत्तर-प्रत्युत्तर होंगे; किन्तु ठाकुरजीने अपना स्वभाव, कर्तव्य, नीति, सिद्धान्त, सब कुछ केवल एक श्लोकमें—बत्तीस अक्षरोंमें इस दृढ़तासे प्रतिपादित किया है कि किसीके विरोधका—खण्डनका उसपर कोई प्रभाव नहीं हुआ। उस मङ्गलमय श्लोकको श्रवण करें और उसके भावको हृदयमें धारण करके श्रीरामचन्द्रजीके श्रीचरणोंकी मङ्गलमयी शरणागति स्वीकार करें—

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम्॥

(६। १८। ३)

मित्रभावसे सम्प्राप्त व्यक्तिका मैं किसी तरह भी परित्याग नहीं कर सकता। हो सकता है उसमें कुछ दोष भी हो, तो भी मैं उसे नहीं छोड़ सकता; क्योंकि मित्रभावसे प्राप्त हुए दोषीको भी स्वीकार करना सज्जनोंके द्वारा निन्द्य नहीं माना गया है।

'**मित्रभावेन**'—यहाँपर शरणागतिका प्रसङ्ग है; अतः '**शरणागत भावेन**' कहना चाहिये, तब '**मित्रभावेन**' क्यों लिखा गया है? रामायणशिरोमणि टीकाकारने इस प्रश्नका उत्तर दिया है— '**मित्रभावेन उपलक्षणतया मित्रत्व दासत्वादि धर्मेण सम्प्राप्तं जनं कथञ्चन न त्यजेयम्**'। अर्थात् '**मित्रभावेन**' यह उपलक्षणमात्र है। श्रीरामजीका तात्पर्य है कि मित्रत्व, दासत्वादि किसी भी भावनाको लेकर

जो कोई आता है उसे मैं कभी भी नहीं छोड़ता हूँ। श्रीगोविन्दराजजी कहते हैं—'**मित्रभावेन वास्तव मित्रत्वाभावेऽपि मित्रत्वाभिनयमात्रेणापीत्यर्थः**' अर्थात् यहाँ '**मित्रत्वेन**' न कहकर '**मित्रभावेन**' कहा गया है। वास्तवमें मित्रत्व न होनेपर भी जो कोई मित्रका-सा भाव ऊपरसे दिखाता हुआ भी आ जाता है उसका भी मैं त्याग नहीं करता। भगवान् तो अपनी तरफ एकमात्र आ जाने मात्रकी प्रतीक्षा किया करते हैं। उसमें भी जब वह मित्रका-सा भाव दिखला रहा है, चाहे ऊपरसे ही सही, तब उसे स्वीकार करनेमें सन्देह कैसा?

पूतना जिस समय भगवान्को स्तन्यपान कराने आयी, उस समय उसके हृदयमें कौन-सा स्नेहभाव था? वह तो चाहती थी कि भगवान्का अनिष्ट हो जाय। परन्तु प्राणीमात्रका उद्धार करनेवाले दयालु श्रीकृष्णचन्द्र परमात्माने देखा कि इसके हृदयमें चाहे कुछ भी हो, ऊपरसे तो यह दूध पिलाकर माताका कार्य कर रही है। बस, आपने उसको वह गति, वह गौरव दिया जो साक्षात् माताको भी दुर्लभ था। भगवान्की इस दयालुता, शरणागत-वत्सलता आदि गुणोंपर रीझकर परमहंस चूड़ामणि श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'**ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम**'। जो शरणागतवत्सल परम कारुणिक ठाकुरजी विष पिलानेवालेको भी उच्चतम गति प्रदान करते हैं उनसे बढ़कर और कौन दयालु होगा जिसकी शरणमें जाया जाय? अथवा, 'मित्र अर्थात् जो विश्वासपात्र हो, उसके भावसे आये हुए को'। क्योंकि कहा है—'**तन्मित्रं यत्र विश्वासः**'। मित्र वही है जिसपर विश्वास किया जाय। इस पक्षमें अर्थ हुआ कि—मेरे ऊपर पूरा विश्वास करके जो आता है उसको मैं नहीं छोड़ सकता। '**विश्वसनीय स्थलं मित्रं तन्मित्रं यत्र विश्वास इत्युक्तत्वात्। विश्वासिनो भावेनेत्यर्थः।**' '**सम्प्राप्तम्**'— '**सम्यक् प्राप्तम्**' अच्छी तरह आये हुए अर्थात् अन्य विषयोंसे चित्त हटाकर मुझमें अनुरागपूर्वक जिसने चित्त लगा दिया है उसको। जबतक और-और स्थानोंसे चित्त हटा नहीं लिया जाता, तबतक भगवान्में एकाग्रता नहीं होती। भगवद्ध्यानादिके समय मन एकतान होकर जबतक भगवान्में नहीं लगता तबतक जैसी चित्तशुद्धि होनी चाहिये नहीं होती। दर्शन करनेके लिये मन्दिर गये। मन्दिरके द्वारपर पादुकाओंको रखकर—चरण-दासियोंको खोलकर जिस समय देवदर्शनको जाते हैं उस समय हमारे नेत्र तो देवदर्शन करते हैं, परन्तु मन जूतोंपर—पादुकाओंपर मड़राया करता है। भगवान् तो परम दयालु हैं, उनकी ओर उपसर्पणमात्रसे ही फल तो होता ही है, परन्तु जो चित्तशुद्धि एकान्तभावसे देवदर्शन करनेमें होती है वह इस खींचातानीमें कहाँ? ठीक है, जबतक विरोधीभावोंकी निवृत्ति नहीं हो जाती, तबतक चित्त स्थिर नहीं हो पाता है और चित्त स्थिर हुए बिना कार्यका फल नहीं। परन्तु यहाँ विभीषणने विरोधी भावोंकी आरम्भसे निवृत्ति कर दी है। वे कहते हैं—'**परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च**'। अर्थात् मैंने लङ्का, धन, वैभव, मित्र आदि सबका परित्याग कर दिया है। जब चित्तके अस्थिर होनेका सामान ही नहीं है तो अब चित्त अव्यवस्थित कैसे होगा? अतः विभीषणजी सब कुछ ठुकराकर एकान्तचित्तसे भगवान्की शरणमें आये हैं इसी आशयसे कहते हैं—'**सम्प्राप्तम्**'। '**सम्प्राप्तं सम्यक् प्राप्तम्। पादुके द्वारि विन्यस्य देववन्दन कारिन्यायेनान्यत्र चित्त प्राप्तिमन्तरेण परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि चेति विरोधिनिवृत्तिपूर्वकं प्राप्तमित्यर्थः।**'

(श्रीगोविन्दराजजी)

'**न त्यजेयं कथञ्चन**'—'**अप्यहं जीवितं**

जह्यामित्युक्त रीत्या नवप्रसव वात्सल्येन वत्सला गौः पूर्व वत्सानिव युष्मानपि त्यक्ष्यामि न त्वाश्रितम्'। (श्रीगोविन्दराजजी) श्रीरामजी कहते हैं—'मैं अपने जीवनको छोड़ सकता हूँ,' परन्तु मेरी शरणमें आये हुए भक्तको नहीं छोड़ सकता। जब यह दशा है कि त्याग करनेपर स्वयं अपनी ही सत्ता नहीं रहती, तब उसके लिये उद्योग कैसे हो सकता है? इसी आशयसे ठाकुरजी कह रहे हैं कि '**न त्यजेयं कथञ्चन**' अर्थात् मेरे लिये त्याग करना सम्भव ही नहीं है।

श्रीसुग्रीव कह सकते हैं कि विभीषणके स्वीकार किये बिना आपकी सत्ता नहीं रहती तो इसके स्वीकार करनेपर हमारी भी सत्ता नहीं रहती। यदि हम लोगोंकी रायके बिना आपने इसे अङ्गीगार कर लिया तो अच्छी बात है कर लीजिये, आपकी इच्छा है किन्तु फिर हम साथ नहीं दे सकते। हमलोग आपकी सहायताके लिये आये हैं। लङ्काकी विजय करके आपके कार्यकी सिद्धि करें, यह हमारा प्रयोजन है। यदि शत्रुके कपटाचारी पुरुषोंको आप अपनेमें मिला लेंगे तो कार्यसिद्धि कैसे होगी? फिर तो हमलोगोंकी ही कुशल नहीं है। इसलिये इसके स्वीकार कर लेनेपर हमारी स्थिति नहीं है। अब यदि हमारा परित्याग भी आपको अभीष्ट हो तो दूसरी बात है। परन्तु आपके अनुग्रहको देखते हुए तो यह प्रतीत होता है कि आप हमारा त्याग नहीं करेंगे। जब हमारा त्याग करना आपको अभीष्ट नहीं है तो यह आवश्यक है कि आप इस रावणके छोटे भाईका त्याग करें; क्योंकि इसके स्वीकार करनेपर हम नहीं रह सकते। इसपर ठाकुरजी कहते हैं—'**अहं कथञ्चन न त्यजेयम्**'—मैं किसी भी परिस्थितमें इसको नहीं छोड़ सकता चाहे मेरी किसी भी प्रकारकी हानि हो मैं शरणागतको नहीं छोड़ सकता।

कदाचित् कहा जाय कि जैसा वात्सल्य पात्र अभी आया हुआ यह विभीषण है वैसे हम भी तो आपके वात्सल्यभाजन ही हैं फिर हमारा त्याग कैसे किया जायगा? इसका उत्तर भी श्रीरामजी स्वभावको लेकर ही देते हैं कि गौ अपने बछड़ेपर अत्यन्त स्नेह रखती है, परन्तु जैसे ही उसका नया प्रसव होता है और नूतन वत्सको जैसे ही देखती है, पहलेके बछड़ोंको छोड़कर सर्वप्रथम उस नये बछड़ेको सँभालती है। जरायुसे लिपटा हुआ वह बछड़ा चाहे लोगोंको घृणित दीखता हो परन्तु गौमाता उसे भूमिमें पड़ते ही, अपने पहलेके बच्चोंको छोड़कर उसे ही चाटने लगती है। उस समय चाहे हजार बाधाएँ हों परन्तु प्रेमोन्मत्त हुई वह गौ किसी तरफ भी न देखकर उस बछड़ेको ही चाटती है, यहाँतक भी सुना है कि वह साधारण जङ्गली जानवरतकको उस समय अपने बच्चेके पास नहीं आने देती। रातभर उसके लिये वह सिंह रूप धारण करके चारों तरफ चक्कर लगाती हुई उसकी रक्षा करती है। श्रीरामजी कहते हैं— हे सुग्रीव! 'जब यह स्वाभाविक नियम है तब नये आये हुए इस शरणागतके लिये आपलोगोंका भी यदि त्याग हो जाय तो कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। इसी आशयसे शरणागतवत्सल प्रभु कहते हैं—'**न त्यजेयं कथञ्चन**'।

भगवान् श्रीराम कहते हैं—यद्यपि दुष्ट जनोंका संग्रह शास्त्रके द्वारा निन्द्य है, तथापि शरणागत दुष्टका भी—शरणमें आये दुष्टको भी शरण देना सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें निन्दित नहीं है। इसलिये हे सुग्रीव! विभीषणको मैं निश्चित ही अपनाऊँगा।

'**द्विबद्धं सुबद्धं भवति**' इस न्यायके अनुसार किसी बातको दो बार दृढ़ कर लेना ही पर्याप्त

होता है; परन्तु जब तीन-तीन बार श्रीसुग्रीवजीने श्रीविभीषणकी शरणागतिका मुखर विरोध किया तब तीसरी बार अनिच्छा होनेपर भी भगवान् श्रीरामने अपना विचार दृढ़तापूर्वक अभिव्यक्त कर दिया—हे वानर यूथपते! संसारमें कोई भी मेरा अनहित नहीं कर सकता है। मैं एक अङ्गुलिके अग्रभागसे ही सबको मार सकता हूँ—'**अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर**' अतः भयके कारण शरणागतका त्याग करना ठीक नहीं है—

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥

(श्रीरामचरितमानस ५। ४३)

हे मित्र! शरणागतकी रक्षा करनेका धर्म सनातन है। पशु-पक्षीतक अपना प्राण देकर भी शरणागतकी रक्षा करते हैं। श्रीठाकुरजीने कपोतका उदाहरण देते हुए आर्षवचनका भी प्रमाण दिया। सब कुछ कहकर अन्तमें शरणागतकी रक्षाके विषयमें अपना चरम निश्चय श्रीरामजी कहते हैं—हे वानरेन्द्र! मेरी प्रतिज्ञाको ध्यानपूर्वक सुनो और मेरे स्वभावका परिज्ञान कर लो। 'जो एक बार भी मेरी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' इस प्रकार कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ। यह मेरा व्रत है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(६। १८। ३३)

'**सकृदेव**'—भगवान्‌को प्रसन्न करनेके अन्य जितने भी उपाय हैं, उन सबमें आवृत्तिकी—पुनः-पुनः करनेकी आवश्यकता होती है। जप, कीर्तन, स्वाध्याय, तप तीर्थाटन इत्यादि सभी साधन—उपाय बार-बार किये जाते हैं। परन्तु प्रपत्तिमें आवृत्ति शास्त्रको अभीष्ट नहीं है—'**सकृदेव हि शास्त्रार्थः कृतोऽयं तारयेन्नरम्**' अर्थात् यह शास्त्रकी आज्ञामात्र एक बार करनेसे ही मनुष्यका उद्धार हो जाता है—'**सकृदेव एकबारमेव। उपायान्तरेष्वावृत्तिः शास्त्रार्थः प्रपत्तौ त्वनावृत्तिः। सकृदेव हि शास्त्रार्थः कृतोऽयं तारयेन्नरमित्युक्तेः**'।

(श्रीगोविन्दराज)

इस श्लोकमें '**सकृदेव**' का जो प्रयोग है वह ठाकुरजीको बहुत पसन्द है। बार-बारका शब्द पसन्द नहीं है। वे न तो दो बार निशाना लगाना पसन्द करते हैं, न दो बार किसीको बसाना पसन्द करते हैं और न दो बार किसीको देना पसन्द करते हैं। एक ही बार इतना दे देते हैं कि उसको बार-बार लेनेके लिये आना न पड़े। उनको बार-बार बसानेकी, बार-बार निशाना लगानेकी और बार-बार देनेकी जरूरत ही नहीं पड़ती है, एतावता कहते हैं कि केवल एक बार मेरी शरणमें आ जाओ।

भक्त लोग भगवान्‌से कह देते हैं कि हे प्रभो! मैं जन्म-जन्मसे भवसागरमें भटक रहा हूँ, न जाने कबसे डूब-उतरा रहा हूँ—लेकिन आज आप मिल गये तो इस भवसागरका किनारा मिल गया—

निमज्जतोऽनन्त भवार्णवान्तश्चिराय मे कूलमिवाद्य लब्धम्।
त्वयापि लब्धं भगवन्निदानीमनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः॥

लेकिन आप ही मुझे मिले हैं, ऐसा नहीं है। आपको मैं भी मिला हूँ। अरे भाई! तुम मिले हो तो कौन-सी बड़ी बात हो गयी? तुममें ऐसी क्या विशेषता है, जो तुम अपनी छाती ठोककर अपने मिलनेकी बात बोलते हो? भक्त कहता है—हे प्रभो! इससे बढ़कर विशेषताकी बात और क्या हो सकती है, जो मेरे-जैसा दयाका पात्र आपको मिला है। आपको मुझ-जैसा दयाका पात्र न तो मिला होगा और न आगे मिलनेवाला है। मैं अनुपम पात्र हूँ दयाका।

इस प्रकारकी भावना लेकर भक्तलोग भगवान्‌की शरणमें जाते हैं। शरणागति ऐसा भाव है, जो सङ्कीर्ण दृष्टियोंको, सङ्कीर्ण भावनाओंको समाप्त कर देता है। उसमें भगवान् शरणागतके सामने होते हैं, भगवान्‌के अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं होती है।

'प्रपन्नाय'—प्रपन्नका अर्थ होता है प्रपद—पाँव पकड़नेवाला। यह भी शरणागतिका ही अङ्ग है। महात्माओंका कहना है कि शरणागतिका एक अधिकार होता है। वह अधिकार क्या है? जब मनुष्य चारों ओरसे असहाय और निर्बल होकर यह अनुभव करे कि मैं आत्मज्ञानी नहीं हूँ, भक्तिमान् नहीं हूँ, धर्मनिष्ठ नहीं हूँ, केवल एक अकिञ्चन हूँ, मेरे पास साधनकी कोई पूँजी नहीं है और श्रीरामजीके चरणोंकी गतिके अतिरिक्त अन्य कोई अवलम्ब नहीं है तब वह शरणागतिका अधिकारी होता है—

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्य त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥

(आलवन्दारस्तोत्र)

शरणागत कहता है कि हे नाथ! मेरी बुद्धि कुण्ठित हो गयी है, मेरी युक्तियाँ समाप्त हो गयी हैं, मेरे पास कोई सहारा नहीं है और मैं कोई भी उपाय नहीं जानता हूँ, केवल तुम्हारी शरणमें हूँ। तुम्हीं मेरे आश्रय हो, रक्षक हो, शरण्य हो, तुम्हारे अतिरिक्त मेरा और कोई नहीं है। इसलिये मुझपर कृपा करो, अपनी शरणमें स्वीकार कर लो—

बुद्धिर्विकुण्ठिता नाथ समाप्ता मम युक्तयः।
नान्यत् किञ्चिद् विजानामि त्वमेव शरणं मम॥

भगवान् श्रीरामचन्द्र कहते हैं कि जब मनुष्य इस प्रकार याचना करता है तब मैं उसको समस्त भूतोंसे अभय कर देता हूँ, यह मेरी प्रतिज्ञा है।

'तवास्मीति च याचते'—मैं आपका हूँ, इस प्रकारकी प्रार्थना करता है कि हे अशरणशरण! मैं आपका सेवक हूँ, आप मेरे स्वामी हैं, मैं शिष्य हूँ आप गुरु हैं, मैं रक्ष्य हूँ और आप मेरे रक्षक हैं, इस प्रकारकी उपासना करता है। **'औपाधिकभेदमवलम्ब्य तवाहं सेवकस्त्वं मे स्वामी, अहं शिष्यस्त्वं गुरुः, अहं रक्ष्यस्त्वं रक्षकः, इत्येवमुपासनां कुर्वते'**। (तिलकटीका) केवल एक बार प्रार्थना करनी है—मात्र एक बार याचना करनी है। श्रीरामजीके कान बहुत बड़े हैं, उनके अनन्त कान हैं, उनकी तरह सुननेवाला त्रैलोक्य-में और कौन हो सकता है? **'चींटी के पग नूपुर बाजे सो भी साहब सुनता है'**। सुनना तो श्रीरामजी ही जानते हैं। दुनिया बहरी है, बहरोंके सामने जाकर हम गिड़गिड़ाते हैं, चिल्लाते हैं। हे मित्र! मैं तुम्हारा हूँ, हे राजन्! मैं तुम्हारा हूँ, हे सेठजी! मैं तुम्हारा हूँ, हे पितरो! 'मैं तुम्हारा हूँ, हे भूतो-प्रेतो! मैं तुम्हारा हूँ, हे देवताओ! मैं तुम्हारा हूँ। परन्तु हा हन्त! कोई नहीं सुनता है—**'अन्धे के आगे रोवे अपना दीदा खोवे'**। क्या कभी श्रीरामजीसे कहा है कि हे प्रभो! हे करुणामय! मैं तुम्हारा हूँ। अब भी चेत जाओ श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें शरणागत होकर आर्त्तस्वरसे पुकारो—हे अशरणशरण! हे शरणागतवत्सल! हे अनाथनाथ! हे जगन्नाथ! हे सीतानाथ! मैं आपका हूँ—**'तवास्मीति च याचते'** बात बन जायगी, बिगड़ी सँवर जायगी। सँवारना तो साँवरा ही जानता है। **'तवास्मीति च याचते'** का दूसरा भाव यह है कि हे रघुनन्दन! मैं संसारका नहीं हूँ। हे करुणामय! मैं तो केवल आपका हूँ। इस प्रकार जो याचना करता है श्रीरामजी कहते हैं, मैं उसको अभयदान देता हूँ। अभय मोक्षको भी कहते हैं अर्थात् मैं उसे मोक्ष, भक्ति, श्रीरामप्रेम सबकुछ प्रदान करता हूँ। अथवा—समस्त भय प्रदान करनेवाले पदार्थोंसे अभयदान देता हूँ।

अथवा '**अभय**' यहाँ उपलक्षणमात्र है भाव कि सब कुछ देता हूँ, क्योंकि जब ठाकुरजी उसकी शरणागति स्वीकार कर लेते हैं तब सब प्रकारसे उसका अभीष्ट पूर्ण, उसका योग-क्षेम श्रीरामजीको ही वहन करना पड़ता है। '**अभयं ददामि**' का भाव तिलकटीकाकार कहते हैं '**अत्र तात्कालिकमात्यन्तिकं चेत्युभयविधमप्यभयदानं प्रतिज्ञायते। तत्रात्यन्तिकं संसारभयोपरतिरूपं द्वितीयं तु रावणादित उत्थित-मृत्युभयनिवृत्तिरूपम्, इदं चोरारि ग्रहनिमित्तकाभय-दानस्याप्युपलक्षणम्**'। (तिलकटीका) अर्थात् श्रीरामजी तात्कालिक एवं आत्यन्तिक दोनों प्रकारके अभय-प्रदानकी प्रतिज्ञा करते हैं। संसारके भयसे उपरतिको आत्यन्तिक अभय कहते हैं और रावणादिके द्वारा समुत्त्थ मृत्युभयकी निवृत्तिको तात्कालिक अभय कहते हैं। यह अभयदान चोर, डाकू, शत्रु और ग्रह आदिसे समुत्पन्न भयकी निवृत्तिका भी उपलक्षण है। भाव कि मैं शरणागतको इन सब भयोंके भयसे भी निर्भय कर देता हूँ।

श्रीरामजीका एक नाम अभय भी है। उनका नाम भी अभय है, काम भी अभय है, स्वरूप भी अभय है और दान भी अभय है। जिसको अपने लिये भय होता है वह दूसरेको अभय नहीं कर सकता। इसलिये शरणागति भयरहित पुरुषकी ही होती है। भययुक्त या भयभीत पुरुषकी शरणागति नहीं होती है। श्रीरामचन्द्रजी सर्वथा निर्भय हैं, इसीलिये उनकी शरणग्रहण की जाती है। वे अपने समस्त रूपोंमें अभयदाता हैं।

'**सर्वभूतेभ्यः**'—यह अपादान और सम्प्रदान दोनोंका रूप है। श्रीरामजी कहते हैं कि मैं अपने शरणागत भक्तोंको समस्त प्राणियोंसे निर्भय कर देता हूँ, चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो—

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान॥

(श्रीरामचरितमानस ४। ६)

अथवा—मेरा यह अभयदान समस्त प्राणियोंके लिये है। भाव कि मेरा शरणागत राजा हो, रंक हो, विद्वान् हो, मूर्ख हो, ब्राह्मण हो, चाण्डाल हो, सर्वज्ञ हो, बहुज्ञ हो, अल्पज्ञ हो, पशु हो, पक्षी हो, देवता हो, दानव हो—कोई भी प्राणी क्यों न हो '**सर्वभूतेभ्यः**'—सब प्राणियोंके लिये अभयदान देता हूँ—'**प्रपन्नसम्बन्धिभ्योऽपि सर्व भूतेभ्योऽभयं ददामि। पशुर्मनुष्यः पक्षी वा ये च वैष्णव-संश्रयाः। तेनैव ते प्रयास्यन्ति तद्विष्णोः परमं पदम्' इत्युक्तेः॥**

'**एतद् व्रतं मम**'—यह मेरा व्रत है, भाव कि सामान्य प्राणी भी कोई व्रत लेकर उसको निर्वाह करनेका प्रयत्न करते हैं, फिर मैं अपने व्रतको पूर्ण करनेका प्रयास क्यों नहीं करूँगा अर्थात् यह मेरी प्रतिज्ञा कभी टल नहीं सकती है। '**एतद्व्रतं मम व्रतवदिदं कस्याञ्चिदपि दशायां परित्यागायोग्यमित्यर्थः**' (श्रीगोविन्दराज) अर्थात् जिस प्रकार व्रतका परित्याग नहीं हो सकता उसी प्रकार किसी भी स्थितिमें मेरे इस व्रतका परित्याग नहीं हो सकता।

शरणागतको मैं संसारके यावन्मात्र फल दे देता हूँ, इसीमें तो सब कुछ आ गया था, फिर '**व्रतं मम**' इतने अक्षर क्यों बढ़ाये? '**व्रतं मम**' से यह दिखाते हैं कि शरणागतको सर्व अभय और फल दे देता हूँ, इसको साधारण न समझना, यह मेरा व्रत है—दीक्षा है। व्रत जैसे किसी भी अवस्थामें छोड़ा नहीं जा सकता और यदि छोड़ दें तो दृष्ट और अदृष्ट—दोनोंसे वह गिर जाता है, उसका जीवन लाञ्छित हो जाता है। इसी तरह शरणागतरक्षा मुझसे त्रिकालमें भी छोड़ी नहीं जा सकती।

चक्रवर्त्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजीने अपने प्राणप्रिय

पुत्र मुझको वन भेज दिया और अपने प्राणतकका परित्याग कर दिया परन्तु; अपना व्रत नहीं छोड़ा। उनका ही पुत्र होकर मैं अपने व्रतको कैसे छोड़ सकता हूँ। अतः **'एतद् व्रतं मम'** यह मेरा व्रत है, इसका परित्याग नहीं किया जा सकता।

समुद्रतटपर श्रीहनुमान्‌जी, जाम्बवान्‌जी आदि महान् भक्तोंके सामने करुणामय श्रीरामचन्द्रजीने एक महान् प्रतिज्ञा की। युग-युगान्तर, कल्प, कल्पान्तरके भक्तगण श्रीरामजीकी इस प्रतिज्ञाको पढ़ करके, मनन करके, चिन्तन करके प्रेरणा प्राप्त करते रहेंगे। अपना व्रत सुनानेके बाद—**'एतद् व्रतं मम'** कहनेके पश्चात् ठाकुरजीने सुग्रीवजीके प्रत्युत्तरकी प्रतीक्षा नहीं की; तत्काल आज्ञा प्रदान कर दी। वह आज्ञा भी श्रीविभीषण-शरणागतिके प्रबल विरोधी श्रीसुग्रीवको ही दी—हे वानरश्रेष्ठ सुग्रीव! वह रावणानुज विभीषण हो, किं वा स्वयं रावण ही आ गया हो, तुम उसे ले आओ मैंने उसे अभयदान दे दिया है—

आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्॥

(६। १८। ३४)

श्रीगोविन्दराजजी इस श्लोकका अर्थ इस प्रकार करते हैं—**'स्वयं अयं यदि विभीषणो न भवति किन्तु कामरूपी रावण एव विभीषण-भूमिकां परिगृह्य यद्यागतः तथाप्यस्याभयं मया दत्तम्। त्वमपि रावणोऽयं न तु विभीषणम् इति विज्ञापनायापि पुनर्नागच्छेः। किन्त्वानयैवेत्यर्थः'**। अर्थात् हे वानरेन्द्र सुग्रीव! यदि यह स्वयं विभीषण न हो अपितु कामरूप—मनचाहा रूप धारण करनेवाला रावण ही हो, विभीषणका रूप धारण करके आया हो फिर भी मैंने इसको अभयदान दे दिया है। अतः आप भी यह रावण है विभीषण नहीं है, यह बतानेके लिये लौटकर मेरे पास मत आइयेगा अपितु उसको ले आइये।

इसके अनन्तर अपने चारों मन्त्रियोंके सहित धर्मात्मा श्रीविभीषणजी आकाशसे भूमिपर उतर आये और श्रीरामजीके चरणोंमें गिर पड़े—

खात् पपातावनिं हृष्टो भक्तैरनुचरैः सह।
स तु रामस्य धर्मात्मा निपपात विभीषणः॥
पादयोर्निपपाताथ चतुर्भिः सह राक्षसैः।

(६। १९। २-३)

इस श्लोकमें आचार्योंने साङ्ग षड्विधा शरणागतिका अनुशीलन किया है। विभीषणने उस समय श्रीरामजीसे धर्मानुकूल युक्तियुक्त समयोचित और सम्प्रहर्षण वचन कहा है—हे अनाथनाथ! मैं रावणका छोटा भाई विभीषण हूँ। हे अशरणशरण रघुनन्दन! रावणके द्वारा अपमानित होकर समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले शरण्यकी शरण मैंने स्वीकार की है—

धर्मयुक्तं च युक्तं च साम्प्रतं सम्प्रहर्षणम्।
अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः॥
भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः।

(६। १९। ४-५)

हे प्रभो! सारे संसारको छोड़कर मैंने केवल आपको पकड़ लिया है—

नाथ दसानन कर मैं भ्राता।
निसिचर बंस जनम सुरत्राता॥
सहज पापप्रिय तामस देहा।
जथा उलूकहि तम पर नेहा॥
श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥

(श्रीरामचरित मानस ५। ४५। ७-८)

श्रीरामजीने श्रीविभीषणके वचनोंको सुनकर उन्हें सान्त्वना देकर उनके हृदयको स्नेहसे आर्द्र कर दिया—

वचसा सान्त्वयित्वैनं लोचनाभ्यां पिबन्निव।

(६। १९। ७)

प्रभुने कहा—हे विभीषण! जिस समय तुमने '**शरणं गतः**' यह कहा था उसी समय मुझे तुम्हें स्वीकार कर लेना था; परन्तु उसके बाद जो विलम्ब हुआ उसके लिये तुम मुझे क्षमा करो, इन वचनोंसे भक्तके हृदयको सरस करते हुए—प्रेमरससे भिगोते हुए श्रीरामजी अत्यन्त अनुग्रह-पूर्ण नेत्रोंसे देखने लगे—'**सान्त्वयित्वा शरणं गत इत्युक्तिसमय एव स्वीकार्योऽसि एतावत्पर्यन्तं विलम्बः क्षन्तव्य इति सान्त्ववचनान्युक्त्वा लोचनाभ्यां पिबन्निव सान्त्ववचनेन तस्य हृदयं आर्द्रं कृत्वा अत्यादरेण विलोकयन्नित्यर्थः।**

(श्रीगोविन्दराजजी)

'**लोचनाभ्यां पिबन्निव**' का एक बड़ा भावपूर्ण भाव है कि श्रीविभीषणजी अपनी जन्म-जन्मान्तरकी साधनासे समुत्पन्न जो भगवत्प्रेम था, किं वा श्रीब्रह्माजीके वरदानद्वारा प्राप्त जो भगवत्प्रेम था, उस प्रेमरूप प्रशान्त महासागरमें श्रीरामचन्द्र मुखचन्द्रके दर्शनसे जो तरङ्गें उठीं—लहरें उठीं ,उनके अङ्ग-अङ्गसे जो स्नेह निर्झरित हो रहा है उसका पान प्रेमप्रिय रघुनन्दन अपने प्रेमपियासे नेत्रोंसे करने लगे—'**लोचनाभ्यां पिबन्निव**'। इस प्रकारका एक प्रसङ्ग श्रीमद्भागवतमें भी है।

वानरोंमें कई लोगोंके मनमें अब भी विभीषणके प्रति, उनकी निष्ठाके प्रति शङ्का थी; वे सोचते थे कि यह शत्रुका भाई है, कोई हानि न पहुँचा दे। श्रीरामचन्द्रजी इस बातको ताड़ गये। प्रभुने उनके सन्देहका निवारण करनेके लिये सबके सामने ही पूछा—हे विभीषण! बताओ तुम्हारी लङ्काका दुर्ग कैसा है? वहाँकी रक्षा-व्यवस्था कैसी है? सेना कैसी है? रावणका बलाबल कैसा है?

आख्याहि मम तत्त्वेन राक्षसानां बलाबलम्॥

(६।१९।७)

विभीषणजीने श्रीरामजीको सब कुछ बता दिया और वैसा ही बताया, जैसा कि श्रीहनुमान्जीने लङ्कासे लौटनेके पश्चात् बताया था। श्रीविभीषणकी बात सुनकर वानर लोग उनके प्रति शङ्कारहित हो गये।

इसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने रावणका वध करके श्रीविभीषणको राजा बनानेकी प्रतिज्ञा की। सत्यसङ्कल्प श्रीरामजीने कहा—हे विभीषण! मैं सत्य कहता हूँ, प्रहस्त और पुत्रोंके सहित रावणको मार करके मैं तुम्हें लङ्काका राजा बनाऊँगा—

अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं सहात्मजम्।
राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतच्छृणोतु मे॥

(६।१९।१९)

हे विभीषण! मैं अपने प्राणप्रिय तीनों भाइयोंकी शपथ करके कहता हूँ—सपुत्र जन-बान्धव रावणको बिना मारे मैं श्रीअयोध्यापुरीमें प्रवेश नहीं करूँगा—

अहत्वा रावणं संख्ये सपुत्रजनबान्धवम्।
अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि त्रिभिस्तैर्भ्रातृभिः शपे॥

(६।१९।२१)

श्रीविभीषणजीने कहा—हे स्वामी! राक्षसोंके संहारमें मैं यथाप्राण सहायता करूँगा। सहायता भी चुपकेसे नहीं करूँगा, छिपकर नहीं करूँगा, डरकर नहीं करूँगा अपितु खुल्लमखुल्ला करूँगा। प्राणोंको समर्पण करके रावणकी विशाल वाहिनीमें प्रवेश करके वीरोंको रौंदता हुआ संग्राम करूँगा—लड़ूँगा—

राक्षसानां वधे साह्यं लङ्कायाश्च प्रधर्षणे।
करिष्यामि यथाप्राणं प्रेक्ष्यामि च वाहिनीम्॥

(६।१९।२३)

इसके बाद ठाकुरजीने विभीषणको हृदयसे लगाकर श्रीलक्ष्मणसे कहा—हे मानद सुमित्रानन्दन! समुद्रसे जल ले आओ और लङ्काके राज्यपर

राक्षसराज विभीषणका अभिषेक कर दो—'**अभिषिञ्च विभीषणम्**'। भगवान्‌की आज्ञानुसार श्रीलक्ष्मणने विभीषणका अभिषेक कर दिया—

..............................।
मागा तुरत सिंधु कर नीरा॥
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं।
मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा।
सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥
रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड॥
जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥

(श्रीरामचरितमानस ५। ४९। ८—१०, दो० ४९ (क))

श्रीरामजीने श्रीहनुमान्, सुग्रीव और विभीषणसे पूछा—हमलोग इस अक्षोभ्य समुद्रको महाबलवान् वानरोंकी सेनाके साथ किस प्रकार पार कर सकेंगे?

अब्रवीच्च हनूमांश्च सुग्रीवश्च विभीषणम्।
कथं सागरमक्षोभ्यं तराम वरुणालयम्॥
सैन्यैः परिवृताः सर्वे वानराणां महौजसाम्।

(६। १९। २८)

सुनु कपीस लंकापति बीरा।
केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा॥
संकुल मकर उरग झष जाती।
अति अगाध दुस्तर सब भाँती॥

श्रीरामजीके इस प्रकार पूछनेपर धर्मात्मा विभीषणने उत्तर दिया—रघुवंशीराजा श्रीरामचन्द्रजी-को समुद्रकी शरण स्वीकार करनी चाहिये—

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा प्रत्युवाच विभीषणः।
समुद्रं राघवो राजा शरणं गन्तुमर्हति॥

(६। १९। ३०)

कह लंकेस सुनहु रघुनायक।
कोटि सिंधु सोषक तव सायक॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई।
बिनय करिअ सागर सन जाई॥
प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि॥

(श्रीरामचरितमानस ५। ५०। ७-८, दो० ५०)

श्रीरामजी विभीषणके वचनका सम्मान करके समुद्रतटपर कुश बिछा करके उसके ऊपर उसी प्रकार विराजमान हो गये जिस प्रकार वेदीपर अग्निदेव सुप्रतिष्ठित होते हैं—

एवमुक्तः कुशास्तीर्णे तीरे नदनदीपतेः।
संविवेश तदा रामो वेद्यामिव हुताशनः॥

(६। १९। ४१)

प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई।
बैठे पुनि तट दर्भ डसाई॥

इसके अनन्तर रावणने अपने गुप्तचर एवं मन्त्री शार्दूलकी प्रार्थनापर शुक नामक राक्षस दूतसे श्रीसुग्रीवके पास सन्देश भेजा—हे वानरेन्द्र! आप वानरराजके कुलमें समुत्पन्न हैं, ऋक्षरजाके पुत्र हैं, मैं आपको भाईकी भाँति मानता हूँ। यदि मैंने बुद्धिमान् राजकुमार रामकी पत्नीका अपहरण किया है तो इसमें आपको क्या आपत्ति है? अतः आप किष्किन्धा लौट जाइये—

अहं यद्यहरं भार्यां राजपुत्रस्य धीमतः।
किं तत्र तव सुग्रीव किष्किन्धां प्रति गम्यताम्॥

(६। २०। ११)

श्रीसुग्रीवने प्रत्युत्तरमें कहला भेजा—हे दशानन! न तो तुम मेरे मित्र हो, न दयाके पात्र हो, न मेरे उपकारी हो और न प्रिय हो। तुम मेरे सर्वस्व श्रीरामके शत्रु हो, अतः अपने सगे-सम्बन्धियोंके सहित तुम वालीकी ही तरह मेरे लिये वध्य हो। हे राक्षसेन्द्र! मैं विशाल वानर-वाहिनीके साथ आकर समस्त लंकाको भस्म कर

डालूँगा और पुत्र, बन्धु तथा कुटुम्बियोंके साथ तुम्हें मार डालूँगा—

न मेऽसि मित्रं न तथानुकम्प्यो न चोपकर्तासि न मे प्रियोऽसि।
अरिश्च रामस्य सहानुबन्धस्ततोऽसि वालीव वधार्ह वध्यः॥
निहन्म्यहं त्वां ससुतं सबन्धुं सज्ञातिवर्गं रजनीचरेश।
लङ्कां च सर्वां महता बलेन सर्वैः करिष्यामि समेत्य भस्म॥

(६। २०। २३-२४)

इधर महासागरके तटपर भगवान् श्रीराम विराजमान हैं। मेरे श्रीरामजीकी अनोखी झाँकी है। ऐसी झाँकीका दर्शन पुनः नहीं होगा। कुशासन बिछा हुआ है, श्रीरामजी उसपर लेटे हुए हैं। श्रीरामके पीन श्यामल भुजदण्ड उपधान—तकियाका कार्य कर रहे हैं। प्रभुकी वह भुजा सर्पके शरीरके समान ऊपरसे मोटी और नीचेसे पतली है। प्रभु विनम्रतापूर्वक समुद्रकी प्रार्थना भी कर रहे हैं। इस प्रकार तीन दिन व्यतीत होनेपर भी जब समुद्रदेवताके दर्शन नहीं हुए तब श्रीरामजीके नेत्र रक्त हो गये। प्रभुने श्रीलक्ष्मणसे कहा—हे सुमित्रानन्दन! मेरा धनुष तथा विषधर सर्पोंके समान भयङ्कर बाण ले आओ; मैं समुद्रका शोषण कर लूँगा, तदनन्तर मेरे वानरलोग पैदल ही लङ्काके लिये प्रस्थान करें—

चापमानय सौमित्रे शरांश्चाशीविषोपमान्।
समुद्रं शोषयिष्यामि पद्भ्यां यान्तु प्लवङ्गमाः॥

(६। २१। २२)

श्रीरामके द्वारा क्रोधपूर्वक सहसा धनुष आकर्षित होते ही भूमि और अन्तरिक्ष मानो फटने लगे और पर्वत डगमगा गये—

तस्मिन् विकृष्टे सहसा राघवेण शरासने।
रोदसी सम्पफालेव पर्वताश्च चकम्पिरे॥

(६। २२। ६)

तब समुद्रके मध्य भागसे सागर स्वयं मूर्तिमान् होकर प्रकट हो गये। ऐसा ज्ञात होता था मानो महा शैल सुमेरु पर्वतके अङ्गभूत उदयाचलसे भगवान् भास्कर समुदित हुए हों—

ततो मध्यात् समुद्रस्य सागरः स्वयमुत्थितः।
उदयाद्रिमहाशैलान्मेरोरिव दिवाकरः॥

(६। २२। १७)

नदियोंके, समुद्रोंके, वृक्षोंके, नगरके, देशके अधिष्ठातृ देवता होते हैं। प्रत्येक नगरमें अधिष्ठातृ देवता होते हैं, प्रत्येक गाँवके अधिष्ठातृ देवता होते हैं, समय-समयपर ग्रामदेवताओंका पूजन भी करनेका विधान है। भारतवर्ष देश है, इसकी अधिष्ठातृदेवी हैं; जिन्हें हम भारतमाता कहते हैं। देशभक्तोंने गीत गाये हैं—'**वन्दे मातरम्**'। श्रीअयोध्याजी नगर है, उसकी भी अधिष्ठात्री देवी हैं। सज्जनलोग वृक्षोंकी डालियोंका भी अनावश्यक छेदन नहीं करते हैं। श्रीतुलसीजी मात्र पौधा नहीं है। उनके नित्य पूजनका वैष्णवोंमें विधान है। तुलसीजीकी प्रार्थना करके तब पूजन करनेके लिये तुलसी उतारनी चाहिये। तुलसीजी प्रसन्न हो जाती हैं कि मेरे प्रियतमके अर्चनमें मेरा उपयोग होगा। परन्तु जो उनकी डालियाँ तोड़ लेते हैं उनसे तुलसीजी प्रसन्न नहीं होती हैं।

समुद्रके अधिष्ठातृदेवता अनेक प्रकारकी भेंट-सामग्रीका सङ्कलन करके उसे थालीमें सजा करके भगवान् श्रीरामके समक्ष भेंट करके प्रार्थना करने लगे। उनकी विनम्रता देखकर, उनका सौजन्य देखकर, उनकी निष्ठा देखकर करुणावरुणालय श्रीराम वरुणालयके ऊपर प्रसन्न हो गये। वास्तवमें कृपामूर्ति श्रीरामजीको तो क्रोध आता ही नहीं है, वे अपने भक्तोंके लिये कभी-कभी क्रोधाभिनय करते हैं और भक्त-द्रोहियोंके लिये अपनेमें समय-समयपर क्रोधका आधान करते हैं।

श्रीरामजीने कहा—हे वरुणालय! आप तो मेरी शरणमें आ गये, परन्तु यह मेरा बाण अमोघ है, इसे मैं किस स्थानपर छोड़ूँ?

तमब्रवीत् तदा रामः शृणु मे वरुणालय।
अमोघोऽयं महाबाणः कस्मिन् देशे निपात्यताम्॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा तं च दृष्ट्वा महाशरम्।
महोदधिर्महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत्॥

(६। २२। ३०-३१)

समुद्रने श्रीरामका वचन सुनकर और उनके महान् बाणको देखकर श्रीरामजीसे कहा—हे रघुनन्दन! यह तो मैंने पहले ही सोच लिया है। इसीलिये तो मैं विलम्बसे आया हूँ। हे करुणामय! मेरे उत्तर तटपर आभीर आदि जातियोंके लोग निवास करते हैं। जिनके रूप और कर्म उग्र हैं, वे सब-के-सब पापी और दस्यु हैं—लुटेरे हैं। ये मेरा जल पीते हैं। हे प्रभो! उन पापियोंका स्पर्श मुझसे सहन नहीं होता है। हे श्रीरामजी! आप अपने इस अमोघ बाणको वहीं सफल करें—

अमोघः क्रियतां राम अयं तत्र शरोत्तमः॥

(६। २२। ३४)

श्रीरामजीने समुद्रकी अभिलाषा पूर्ण कर दी। तदनन्तर समुद्रने कहा—हे सौम्य! आपकी सेनामें जो नल नामके श्रीसम्पन्न वानर हैं वे विश्वकर्माके पुत्र हैं। इनके पिताने इन्हें वर दिया है कि शिल्पविद्यामें तुम मेरे समान निपुण होओगे। हे प्रभो! आप भी तो विश्वके स्रष्टा विश्वकर्मा हैं। नलके हृदयमें आपके प्रति महान् स्नेह है—

अयं सौम्य नलो नाम तनयो विश्वकर्मणः।
पित्रा दत्तवरः श्रीमान् प्रीतिमान् विश्वकर्मणः॥
एष सेतुं महोत्साहः करोतु मयि वानरः।
तमहं धारयिष्यामि यथा ह्येष पिता तथा॥

(६। २२। ४५-४६)

हे इक्ष्वाकुनन्दन! ये मेरे ऊपर पुलका निर्माण करें। मैं उसको धारण करूँगा। इतना कहकर समुद्र अदृश्य हो गये—

प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई।
उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई।
करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई॥
सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ॥
नाथ नील नल कपि द्वौ भाई।
लरिकाईं रिषि आसिष पाई॥
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे।
तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे॥
मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई।
करिहउँ बल अनुमान सहाई॥
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ।
जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ॥
एहिं सर मम उत्तर तट बासी।
हतहु नाथ खल नर अघ रासी॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा।
तुरतहिं हरी राम रनधीरा॥
देखि राम बल पौरुष भारी।
हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा।
चरन बंदि पाथोधि सिधावा॥

(श्रीरामचरितमानस ५। ५९। ७-८, दो० ५९; ६०। १—८)

समुद्रके अदृश्य होनेके बाद नलने भगवान् श्रीरामसे कहा—हे स्वामी! मैं महासागरपर सेतु-निर्माण करनेमें समर्थ हूँ, अतः समस्त वानरश्रेष्ठ आज ही सेतु-निर्माणका कार्य आरम्भ कर दें—

समर्थश्चाप्यहं सेतुं कर्तुं वै वरुणालये।
तस्मादद्यैव बध्नन्तु सेतुं वानरपुङ्गवाः॥

(६। २२। ५३)

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे उसी दिन सेतु-निर्माणका कार्य आरम्भ हो गया। वानर वीर उत्साहपूर्वक अनेक प्रकारके वृक्षोंसे, पर्वतके शिखरोंसे समुद्रको पाटने लगे, बड़े-बड़े पर्वतोंको यन्त्रोंके द्वारा—सम्भवतः क्रेनके द्वारा समुद्रतटपर ले आये—

पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च॥

(६।२२।६०)

कुछ वानर सौ योजन लम्बा सूत पकड़े हुए थे, अर्थात् पुलका निर्माण सूतसे—सिधाईमें हो रहा था—

सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णन्ति ह्यायतं शतयोजनम्॥

(६।२२।६२)

महान् शिल्पी नलके द्वारा नदों और नदियोंके स्वामी समुद्रके मध्यमें सेतुका निर्माण हो रहा था। घोर कर्मा वानरोंने एक-दूसरेकी सहायतासे सेतु-निर्माणका कार्य आरम्भ किया था—

नलश्चक्रे महासेतुं मध्ये नदनदीपतेः।
स तदा क्रियते सेतुर्वानरैर्घोरकर्मभिः॥

(६।२२।६३)

लगभग पाँच दिनोंमें पुलका निर्माण सम्पन्न हुआ। नलके द्वारा निर्मित सौ योजन लम्बे और दस योजन चौड़े उस पुलको—आश्चर्यमय कार्यको देवताओं और गन्धर्वोंने देखा। सबकी दृष्टिमें यह कार्य सुदुष्कर था—

दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम्।
ददृशुर्देवगन्धर्वा नलसेतुं सुदुष्करम्॥

(६।२२।७६)

एक खरब वानर तो पुल बाँधते-बाधँते ही समुद्रके उस पार पहुँच गये। विशाल सेतुका निरीक्षण करके श्रीसुग्रीवने सत्य पराक्रमी श्रीरामसे कहा—हे रघुवीर! आप हनुमान्‌के और श्रीलक्ष्मण अङ्गदके कन्धोंपर चढ़कर समुद्र पार करें—**'हनूमन्तं त्वमारोह अङ्गदं त्वथ लक्ष्मणः'**। इस प्रकार श्रीराम-लक्ष्मण श्रीसुग्रीवके साथ सेनाके आगे-आगे चले। कितने ही वानर जलमें कूद पड़ते थे और तैरते हुए चलते थे। दूसरे वानर पुलके मार्गसे चल रहे थे और कितने ही आकाशमें उछलकर गरुड़के समान उड़ते थे—

सलिलं प्रपतन्त्यन्ये मार्गमन्ये प्रपेदिरे।
केचिद् वैहायसगताः सुपर्णा इव पुप्लुवुः॥

(६।२२।८५)

सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं॥

(श्रीरामचरितमानस ६। दो० ४)

इस प्रकार जल, थल, नभमें तीन मार्ग बन गये और तीनों ही मार्गोंसे वानर समुद्र सन्तरण कर रहे हैं। जलका मार्ग कर्मका मार्ग है, नभका मार्ग ज्ञानका मार्ग है और सेतुका मार्ग भक्तिका मार्ग है, इस मार्गमें प्रभु साथमें रहते हैं। मार्ग तीनों ही अच्छे हैं। तीनोंसे भव-समुद्रका सन्तरण होता है। अपने लिये जो मार्ग सुविधाजनक और सुखकर प्रतीत हो, उसका चयन कर लेना चाहिये।

इस प्रकार श्रीरामजी सपरिकर समुद्रके उस पार सानन्द, सकुशल पहुँच गये। देवताओंने—'हे नरदेव! आप शत्रुओंपर विजय प्राप्त करें, ससागरावसुन्धराका सदा पालन करते रहें।' इस प्रकार अनेक प्रकारके शुभ वचनोंके द्वारा राजसम्मानित श्रीरामका अभिनन्दन किया—

जयस्व शत्रून् नरदेव मेदिनीं
ससागरां पालय शाश्वतीः समाः।
इतीव रामं नरदेवसत्कृतं
शुभैर्वचोभिर्विविधैरपूजयन्॥

(६।२२।८९)

इस समुद्र सन्तरण—सेतुनिर्माणके प्रसङ्गमें कई प्रेरक और भावपूर्ण कथाएँ सन्तोंसे सुनी हैं। समयाभावके कारण सब तो नहीं सुना पाऊँगा; परन्तु छोटी-छोटी दो-तीन कथाओंका संक्षेपमें सङ्कीर्तन करना चाहता हूँ। आपलोग भावपूर्वक सुनें।

(१) यह कथा सम्भवतः तेलुगु भाषाकी रङ्गनाथरामायणमें है। श्रीरामजीसे चड़-चेतन सभी प्रेम करते हैं। एक गिलहरी-दम्पतिका भी ठाकुरजीसे अतिशय स्नेह था। वे श्रीरामजीके आस-पास ही बने रहते थे। जब सेतुका निर्माण आरम्भ हुआ तब भावुक दम्पतिने अनोखा कैङ्कर्य आरम्भ कर दिया। ये समुद्रमें डूबते थे और बालूमें लोटकर पुनः पुलपर लोटते थे, पुनः डूबते थे और पुनः लोटते थे। इनकी सेवाका यह क्रम चलता रहा। श्रीहनुमान्जीने जब गिलहरी-दम्पतिको ऐसा करते देखा तब प्रेमसे डाँटा और कहा कि यहाँसे भाग जाओ, अन्यथा किसीके पैरके नीचे दब जाओगे। यदि कहीं पत्थरके नीचे आ गये तो मर ही जाओगे। इसपर गिलहरीने कहा—आपलोग सेवा कर रहे हैं तो हम भी ऐसा कार्य कर रहे हैं जो कोई नहीं कर रहा है। आपलोगोंके कार्यमें जो त्रुटि है, उसे हमलोग सुधार रहे हैं। सब लोग सुनकर हँस पड़े। काम चलता रहा, उन दोनोंका भी कैङ्कर्य होता रहा। अन्तिम दिन श्रीहनुमान्जीके वेगसे चलनेके कारण उनके श्रीचरणोंकी तेज हवासे गिलहरी मूर्च्छित हो गया। उसकी पत्नी रोने लगी। सर्वान्तर्दर्शी, सर्वान्तर्यामी श्रीरामने पूछा—अरी तू क्यों रो रही है? गिलहरीकी पत्नीने कहा—श्रीमन्! हनुमान्जीने मेरे पतिको चरणोंसे मूर्च्छित कर दिया है। श्रीरामने पूछा—हे हनुमन्! क्या यह सत्य कह रही है? श्रीहनुमान्जीने स्वीकार किया। हे प्रभो! मेरे पैरोंकी तेज हवासे यह गिलहरी मूर्च्छित हो गया है। करुणामय श्रीरामने कहा—गिलहरी! तुम्हारी बात प्रमाणित हो गयी है। अब तुम बताओ कि हनुमान्को क्या दण्ड दें? तब उसने कहा—हे स्वामी! जिस तरह इन्होंने मेरे पतिको अपने चरणोंसे मारा है, उसी प्रकार आप अपने चरणोंसे इन्हें मारें, सुनकर श्रीहनुमान्जी भावविह्वल होकर रोने लगे। गिलहरी डर गयी कि सम्भवतः बहुत कड़ा दण्ड हो गया है; तब उसने कहा—हे प्रभो! मैंने इन्हें क्षमा कर दिया। तब श्रीहनुमान्ने कहा—हे गिलहरी! मेरा सौभाग्य मुझसे मत छीनो, यह दण्ड तो मुझे नित्य मिलता रहे, यह तो तुम्हारी बहुत बड़ी कृपा है। मुझे तो दण्ड मिलना ही चाहिये। तब उसने पूछा—फिर तुम रो क्यों रहे हो? श्रीहनुमान्जीने कहा—अरी! यह तो मेरे प्रेमके आँसू हैं, खुशीके आँसू हैं कि मेरे स्वामीका कितना उदार दरबार है जहाँ गिलहरीको भी न्याय मिलता है। इस भावपूर्ण प्रसङ्गसे सारा समाज पुलकित हो गया।

तदनन्तर भगवान् श्रीरामने मूर्च्छित गिलहरीको अपनी गोदमें लेकर उसे अपने कराम्बुजोंका मङ्गलमय स्पर्श प्रदान किया। उसकी मूर्च्छा दूर हो गयी। करुणामय श्रीरामजीने कहा—हे सखाओ! वास्तवमें गिलहरी-दम्पतिने कितना बड़ा प्रयास किया है। गिलहरीने कहा—हे प्रभो! जब दो पत्थर रखे जाते थे तब जो दरारें रह जाती थीं, उन्हींको भरनेका हमने प्रयास किया है। परन्तु हे रघुनन्दन! हमारी सामर्थ्य ही कितनी है? फिर भी हमें संतोष है कि हमने कैङ्कर्य तो कर ही दिया, आपके सेतु-निर्माण-कार्यमें हमारा भी थोड़ा सहयोग हो गया। प्रभुने सुग्रीवादि सखाओंके साथ गिलहरीको साथमें लेकर कुछ दूरतक पुलका निरीक्षण किया तो कहा—हे सुग्रीव! हे

हनुमान्! हे सखाओ! इधर देखो, उधर देखो, आगे देखो, पीछे देखो, गिलहरीयुगलकी डाली हुई बालू समस्त पुलपर बिखरी हुई है और दरारें भर गयी हैं। लोगोंने देखा, सबकी आँखें बरस पड़ीं। धन्य हो श्रीराम! कोई कार्य करनेका विचार कर ले—संकल्प कर ले—कैङ्कर्यकी चाह कर ले, उसको पूर्ण तो आप कर देते हैं। आपमें और आपके नाममें पूर्णताकी अद्भुत क्षमता है।

(२) सन्तलोग कहते हैं कि जब सेतु बनकर तैयार हो गया तब विचार हुआ कि इस सेतुका नाम-संस्कार कर देना चाहिये। अनेक लोगोंने अनेक प्रकारके नाम सोच रखे थे किसीने रामनाम-सेतु, किसीने रघुवीरसेतु तो किसीने श्रीरामसेतु आदि नाम सोच रखे थे; परन्तु जब नामकरण-संस्कारका समय आया तब सबसे पहले बड़े गम्भीर शब्दोंमें श्रीरामजीने कहा कि इस पुलका निर्माण विश्वकर्माके पुत्र नलके बुद्धिकौशलसे सम्पन्न हुआ है, एतावता इस सेतुका नाम 'नलसेतु' होगा। सर्वसमर्थ श्रीरामकी व्याख्याको अमान्य करनेकी सामर्थ्य किसमें है।

(३) एक कथा सन्तलोग बड़े प्यारसे कहते हैं कि जब सेतुका निर्माण हो गया तब वयोवृद्ध श्रीजाम्बवान्ने कहा—'**श्री रघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान**' अर्थात् भगवान् श्रीरामके प्रतापसे सेतुका निर्माण हो गया। नटनागर श्रीरामचन्द्रने सबके देखते-देखते हाथमें एक पत्थरका टुकड़ा लेकर समुद्रमें डाल दिया और वह डूब गया। प्रभुने कहा—हे हनुमान्! तुम निर्णय करो, जब मेरे हाथसे छोड़नेपर एक पत्थरका टुकड़ा नहीं तैर सका तो इतने बड़े-बड़े पहाड़ कैसे तैर गये? श्रीहनुमान्जीने बड़ी विनम्र वाणीमें कहा—हे नाथ! आपने आज्ञा दी है; अतः धृष्टताके लिये क्षमा माँगते हुए उत्तर दे रहा हूँ कि हे करुणासागर! जिसको आप अपने हाथसे छोड़ देंगे, वह तो इस अभागे पत्थरकी तरह डूब ही जायगा। हे क्षमासागर! समुद्रके ऊपर पर्वतोंको तो आपने तैराया है; अतः ये तैर रहे हैं और तैरते रहेंगे, साथ ही दूसरोंको भी तारते रहेंगे। हे अनाथनाथ! मेरी प्रार्थना है कि आप अपने करकमलोंसे कभी किसीको छोड़ें नहीं। समस्त वातावरण भक्तिमय हो गया, सब लोग विभोर हो गये।

(४) सन्तलोग कहते हैं कि जब सेतुका निर्माण आरम्भ हुआ, वानरलोग पत्थर लाने लगे, श्रीनलजी उन्हें लेकर समुद्रमें डालने लगे तब पत्थर तैरते तो थे, जुड़ते नहीं थे, कोई पत्थर इधर चला जाता था, कोई उधर चला जाता था। समस्या थी कि पत्थर कैसे जुड़ें? तब श्रीहनुमान्जीने कहा कि एक पत्थरमें 'रा' लिख दो और दूसरेमें 'म' लिख दो। इस युक्तिसे 'रा' और 'म' लिखकर पत्थर डालने लगे और सब आपसमें जुड़ने लगे। इस संहतिका परिणाम—नलसेतु निर्मित हो गया।

समुद्रके दक्षिणी तटपर पहुँचकर श्रीरामने कहा—हे वानरश्रेष्ठो! हमलोग आज ही शीघ्रातिशीघ्र रावणके द्वारा सुरक्षित परम दुर्जय लङ्कापुरीपर वानरोंके साथ वेगपूर्वक धावा बोल दें—

क्षिप्रमद्यैव दुर्धर्षां पुरीं रावणपालिताम्।
अभियाम जवेनैव सर्वैर्हरिभिरावृताः॥

(६। २३। १३)

श्रीसुग्रीवका सन्देश लेकर शुक नामके दूत-ने रावणसे श्रीरामका समाचार कहकर श्रीसीताको लौटानेकी प्रार्थना की। शुककी बात सुनकर रावण क्रुद्ध होकर बोला—यदि देवता, गन्धर्व और दानव भी मुझसे युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत

हो जायँ तथा संसारके लोग भयभीत करें तो भी मैं सीताको नहीं लौटाऊँगा—

यदि मां प्रति युद्धेरन् देवगन्धर्वदानवाः।
नैव सीतां प्रदास्यामि सर्वलोकभयादपि॥

(६। २४। ३६)

हे शुक! मेरे तरकशमें सोये हुए विषधर सर्पोंके समान बाण अतिशय भयङ्कर हैं, रामने संग्राममें उन बाणोंको देखा ही नहीं है, इसीलिये वह मुझसे युद्ध करना चाहता है।

श्रीरामके सेतुनिर्माणकी और वानरीसेनाके साथ इस पार आनेकी बात सुनकर रावणने अपने दोनों मन्त्री शुक और सारणसे पुनः कहा—

समग्रं सागरं तीर्णं दुस्तरं वानरं बलम्।
अभूतपूर्वं रामेण सागरे सेतुबन्धनम्॥
सागरे सेतुबन्धं तं न श्रद्दध्यां कथञ्चन।
अवश्यं चापि संख्येयं तन्मया वानरं बलम्॥

(६। २५। २-३)

दुस्तर समुद्रका अतिक्रमण कर लेना और समुद्रपर सेतुका निर्माण करना ये दोनों ही कार्य अभूतपूर्व हैं। सुनकर भी मुझे विश्वास नहीं होता कि समुद्रपर पुल बन गया। हे शुक! हे सारण! वानरसेनाकी संख्या कितनी है? यह मुझे ज्ञात होना चाहिये। रावणकी आज्ञासे शुक और सारणने वानररूप धारण करके वानरी सेनामें प्रवेश किया—

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ।
हरिरूपधरौ वीरौ प्रविष्टौ वानरं बलम्॥

(६। २५। ९)

वानरवेषमें छिपकर सेनाका भेद लेते हुए दोनों राक्षसोंको श्रीविभीषणने पहचान लिया। उन दोनोंको लेकर श्रीरामजीके पास आकर सब समाचार बताया। शुक-सारणने कहा—हे सौम्य! हे रघुनन्दन! हम दोनों रावणके द्वारा सम्प्रेषित गुप्तचर हैं।

उनकी बात सुनकर प्राणिमात्रके हितैषी श्रीरामने हँसते हुए कहा—हे दूतो! यदि तुमने अपने स्वामीकी आज्ञानुसार हमारी सारी सेना देख ली हो, हमारी शक्तिका ज्ञान हो गया हो तो प्रसन्नतापूर्वक लङ्का लौट जाओ। यदि कुछ देखना शेष हो तो पुनः देख लो। विभीषण तुम्हें भलीभाँति सब दिखा देंगे। तुम निर्भय हो जाओ, तुम दूत हो शस्त्रहीन अवस्थामें पकड़े गये हो। इसलिये सर्वथा अवध्य हो। हे दूतों! लङ्कामें जाकर राक्षसराज रावणको मेरी ओरसे सन्देश सुना देना—हे रावण! जिस बलपर भरोसा करके तुमने मेरी सीताका हरण किया है, अब समय आ गया है कि अपनी सेना और बान्धवोंके सहित आकर उस बलको इच्छानुसार दिखाओ—

यद् बलं त्वं समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि।
तद् दर्शय यथाकामं ससैन्यश्च सबान्धवः॥

(६। २५। २३)

भगवान् श्रीरामका यह सन्देश पाकर आपकी जय हो कहते हुए लङ्कामें आकर रावणसे समस्त वृत्तान्त शुक-सारणने सुनाया।

रावणने दूरसे वानरीसेना देखकर सारणसे पूछा—इन वानरोंमें कौन-कौन-से मुख्य हैं? कौन शूरवीर हैं और कौन महाबली हैं?

एषां के वानरा मुख्याः के शूराः के महाबलाः॥

(६। २६। ८)

सारणने कहा—हे राक्षसेन्द्र! ये युवराज अङ्गद हैं, ये अपने साथ युद्ध करनेके लिये आपको ललकार रहे हैं। ये अपने पिताकी तरह बलशाली हैं और सुग्रीव इन्हें सदा प्यार करते हैं।

युवराजोऽङ्गदो नाम त्वामाह्वयति संयुगे॥
वालिनः सदृशः पुत्रः सुग्रीवस्य सदा प्रियः।

(६। २६। १७-१८)

इस प्रकार नील, हनुमान्, नल, कुमुद, चण्ड, रम्भ, शरभ, पनस, विनत, क्रोधन, गवय, हर, ऋक्षराज धूम्र, दम्भ, क्रथन, गवाक्ष, केसरी, शतवलि आदि वीर वानरोंका, उनकी सेनाका, उनके प्रभावका वर्णन करके सारणने कहा—हे महाराज! ये सभी वानर प्रभावशाली हैं। सभीके शरीर महाशैलके समान हैं। पृथ्वीके समस्त पर्वतोंको चूर-चूर करके सब ओर बिखेर देनेकी शक्ति रखते हैं—

सर्वे महाराज महाप्रभावाः
सर्वे महाशैलनिकाशकायाः।
सर्वे समर्थाः पृथिवीं क्षणेन
कर्तुं प्रविध्वस्तविकीर्णशैलाम्॥

(६। २७। ४८)

इसके पश्चात् शुकने श्रीसुग्रीव, श्रीहनुमान्, श्रीराम और श्रीलक्ष्मणके स्वभाव और प्रभावका बहुत सुन्दर वर्णन किया। श्रीलक्ष्मणजीके चरित्रका वर्णन करते हुए शुक कहता है—हे राक्षसेन्द्र! श्रीलक्ष्मण अमर्षशील, दुर्जय, जैत्र, पराक्रमी, विजयी और बली हैं। हे दशानन! श्रीलक्ष्मण अपने भाई श्रीरामके नित्य दक्षिण बाहु और बहिश्चर प्राण हैं। वे श्रीरामजीके लिये अपने प्राणार्पण करनेके लिये सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं और युद्धमें अकेले ही समस्त राक्षसोंके विनाशकी अभिलाषा रखते हैं—

अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तश्च जयी बली।
रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिश्चरः॥
नह्येष राघवस्यार्थे जीवितं परिरक्षति।
एषैवाशंसते युद्धे निहन्तुं सर्वराक्षसान्॥

(६। २८। २४-२५)

हे राक्षसेन्द्र! जिन्हें आप वानरोंके मध्यमें विशाल शैलके समान अविचलभावसे खड़ा देख रहे हैं, ये परम तेजस्वी वानर-शिरोमणि सुग्रीव हैं—

यं तु पश्यसि तिष्ठन्तं मध्ये गिरिमिवाचलम्।
सर्वशाखामृगेन्द्राणां भर्तारममितौजसम्॥

(६। २८। २८)

शुकके बताये अनुसार सपरिकर श्रीरामजीको देखकर रावणका हृदय किञ्चित् उद्विग्न हो गया, उसे क्रोध भी आ गया और उसने शुक और सारणकी भर्त्सना की—

किञ्चिदाविग्नहृदयो जातक्रोधश्च रावणः।
भर्त्सयामास तौ वीरौ कथान्ते शुकसारणौ॥

(६। २९। ५)

इसके पश्चात् रावणने शार्दूल नामक मन्त्रीको गुप्तचरके रूपमें भेजा। शार्दूलने रामदलसे लौटकर रावणसे वहाँका वृत्तान्त बताया—हे राक्षसराज! श्रीरामकी गतिविधिका पता गुप्तचरोंद्वारा नहीं लगाया जा सकता; क्योंकि वे लोग अत्यन्त सावधान हैं। उन्होंने मुझे पहचान लिया और अनेक प्रकारसे मारा-पीटा; परन्तु श्रीरामजीने मेरी रक्षा कर ली। महान् तेजस्वी श्रीरामजी गरुड़व्यूहका आश्रय लेकर वानरोंके मध्यमें विराजमान हैं—

गरुडव्यूहमास्थाय सर्वतो हरिभिर्वृतः।

(६। ३०। १२)

हे राजन्! वानरसेनामें एक जाम्बवान् नाम-के वीर हैं। उन प्रसिद्ध जाम्बवान्को युद्धमें जीतना बहुत कठिन है। वे ऋक्षरजा तथा गद्गदके पुत्र हैं—

अथर्क्षरजसः पुत्रो युधि राजन् सुदुर्जयः।
गद्गदस्याथ पुत्रोऽत्र जाम्बवानिति विश्रुतः॥

(६। ३०। २०)

हे राक्षसेन्द्र! पृथ्वीपर कोई व्यक्ति श्रीरामके गुणोंका सर्वाङ्ग वर्णन नहीं कर सकता है। श्रीरामने ही जनस्थानमें उतने राक्षसोंका संहार किया था—

वक्तुं न शक्तो रामस्य गुणान् कश्चिन्नरः क्षितौ।
जनस्थानगता येन तावन्तो राक्षसा हताः॥

(६। ३०। ३०)

इसके अनन्तर रावणने मायाका आश्रय लेकर कार्य करनेका मन बनाया। वह अशोक-वाटिकामें श्रीसीताजीके पास गया और कहने लगा कि श्रीरामजीका वध हो गया—'**खरहन्ता स ते भर्ता राघवः समरे हतः**'। सुग्रीव ग्रीवासे हीन हो गया, हनुमान्‌की हनु नष्ट करके राक्षसोंने मार डाला, इतना कहकर उसने विद्युज्जिह्वको आज्ञा दी—तुम दशरथपुत्र रामका सिर शीघ्र ही सीताके सामने रख दो जिससे यह विचारी कृपणा अपने पतिकी अन्तिम दशाका भलीभाँति दर्शन कर ले—

अग्रतः कुरु सीतायाः शीघ्रं दाशरथेः शिरः।
अवस्थां पश्चिमां भर्तुः कृपणा साधु पश्यतु॥

(६। ३१। ४१)

इसके अनन्तर श्रीसीताने अतिशय कारुणिक विलाप किया है। वे उस मस्तकको अपने समीप रखकर विलाप करने लगीं—हा हन्त! हे महाबाहो! मैं मारी गयी। हे स्वामी! आप वीरव्रतका पालन करनेवाले थे। हाय-हाय! आपकी इस अन्तिम अवस्थाको मुझे अपने नेत्रोंसे देखना पड़ा। आपने मुझे विधवा बना दिया—

तच्छिरः समुपास्थाय विललापायतेक्षणा॥
हा हताऽस्मि महाबाहो वीरव्रतमनुव्रत।
इमां ते पश्चिमावस्थां गतास्मि विधवा कृता॥

(६। ३२। ७-८)

श्रीसीता कहती हैं—हे रावण! तुम मुझे भी मार डालो। मेरे सिरसे श्रीरामजीके सिरका और मेरे शरीरसे श्रीरामजीके शरीरका संयोग करा दो। इस प्रकार मैं अपने महात्मा पतिकी गतिका ही अनुगमन करूँगी—

शिरसा मे शिरश्चास्य कायं कायेन योजय।
रावणानुगमिष्यामि गतिं भर्तुर्महात्मनः॥

(६। ३२। ३२)

श्रीविभीषणकी पत्नी सरमाजी श्रीसीताजीके प्रति भक्तिमती थीं। वे मोहमें पड़ी हुई श्रीसीताजीको देखकर उनके पास उसी प्रकार आयीं, जिस प्रकार स्नेहवती सखी अपनी प्रिय सखीके पास जाती है—

सीतां तु मोहितां दृष्ट्वा सरमा नाम राक्षसी।
आससादाथ वैदेहीं प्रियां प्रणयिनी सखीम्॥

(६। ३३। १)

सरमाजीने आकर श्रीकिशोरीजीको अनेक प्रकारसे आश्वासन दिया। श्रीसरमाने कहा—हे सीते! आप रोना-धोना छोड़ दें। शत्रुसूदन श्रीरामजी मारे नहीं गये हैं—

न हतो राघवः श्रीमान् सीते शत्रुनिबर्हणः॥

(६। ३३। १२)

हे सीते! श्रीरामजी अपार वानरसेनाके साथ समुद्रका सन्तरण करके इस पार आ गये हैं। उन्होंने महासागरके दक्षिण तटपर पड़ाव डाला है। मैंने अपनी आँखोंसे श्रीलक्ष्मणके साथ परिपूर्ण-काम—आप्तकाम श्रीरामका दर्शन किया है—

उत्तीर्य सागरं रामः सह वानरसेनया।
सन्निविष्टः समुद्रस्य तीरमासाद्य दक्षिणम्॥
दृष्टो मे परिपूर्णार्थः काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः।

(६। ३३। १५-१६)

श्रीरामजीके इस पार आनेके कारण रावण घबड़ा गया है, वह अपने सभी मन्त्रियोंके साथ गुप्तमन्त्रणा कर रहा है—'**एष मन्त्रयते सर्वैः सचिवैः सह रावणः**'। हे रामवल्लभे! वह दिन शीघ्र ही आनेवाला है, जब आप श्रीरामजीसे मिलकर उनके विशाल वक्षःस्थलसे लगकर अपने नेत्रोंसे आनन्दाश्रुकी वर्षा करेंगी—

अस्त्राण्यानन्दजानि त्वं वर्तयिष्यसि जानकि।
समागम्य परिष्वक्ता तस्योरसि महोरसः॥

(६। ३३। ३३)

रावणके कठोर वचनोंसे सन्तप्त श्रीसीताजीको सरमाने अपनी मधुरवाणीसे उसी भाँति आह्लादित कर दिया जिस भाँति ग्रीष्म-ऋतुके तापसे सन्दग्ध वसुन्धराको वर्षाकालकी मेघमाला अपने जलसे शैतल्य प्रदान करती है—

अथ तां जातसन्तापां तेन वाक्येन मोहिताम्।
सरमा ह्लादयामास महीं दग्धामिवाम्भसा॥

(६। ३४। १)

सरमाने कहा—हे विदेहनन्दिनि! रावणकी माता केकसीने और उसके बूढ़े मन्त्रीने रावणका अनेक प्रकारसे प्रबोधन किया कि वह तुम्हें सत्कारपूर्वक श्रीरामको लौटा दे; परन्तु बूढ़े मन्त्रियों तथा माताके बहुत समझानेपर भी वह तुम्हें उसी भाँति छोड़नेकी इच्छा नहीं करता है, जिस प्रकार अर्थपरायण लोभी अर्थका परित्याग नहीं करना चाहता है—

एवं स मन्त्रिवृद्धैश्च मात्रा च बहुबोधितः।
न त्वामुत्सहते मोक्तुमर्थमर्थपरो यथा॥

(६। ३४। २३)

इसके अनन्तर महाबुद्धिमान् माल्यवान् नामके राक्षसने, जो रावणका नाना भी था, रावणको अनेक प्रकारसे समझाया—हे रावण! जो समयको देख करके आवश्यक होनेपर शत्रुओंके साथ सन्धि और विग्रह करता है और अपने पक्षकी उन्नतिमें तत्पर रहता है, वह महान् ऐश्वर्यको प्राप्त करता है—

संदधानो हि कालेन विगृह्णंश्चारिभिः सह।
स्वपक्षे वर्द्धनं कुर्वन् महदैश्वर्यमश्नुते॥

(६। ३५। ८)

इसलिये हे रावण! मुझे तो श्रीरामके साथ सन्धि करना ही भला प्रतीत होता है। जिसके लिये तुम्हारे ऊपर आक्रमण हो रहा है, वह सीता तुम रामको लौटा दो—

तन्मह्यं रोचते सन्धिः सह रामेण रावण।
यदर्थमभियुक्तोऽसि सीता तस्मै प्रदीयताम्॥

(६। ३५। १०)

हे रावण! तुमने देवता, दानव और यक्षोंसे अवध्यत्वका वरदान प्राप्त किया है, मनुष्य आदिसे नहीं। परन्तु यहाँ तो मनुष्य, वानर, रीछ और लङ्गूर आकर गर्जना कर रहे हैं। वे सब-के-सब बड़े बलवान् हैं और सैनिकशक्तिसे सम्पन्न हैं तथा महापराक्रमी हैं—

देवदानवयक्षेभ्यो गृहीतश्च वरस्त्वया।
मनुष्या वानरा ऋक्षा गोलाङ्गूला महाबलाः।
बलवन्त इहागम्य गर्जन्ति दृढविक्रमाः॥

(६। ३५। २३)

हे राजन्! दृढ़ पराक्रमी रघुवीर साधारण मानव मात्र नहीं हैं। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि भगवान् श्रीविष्णु ही श्रीरामके रूपमें—मानवके रूपमें अवतरित होकर आये हैं—

विष्णुं मन्यामहे रामं मानुषं रूपमास्थितम्।
नहि मानुषमात्रोऽसौ राघवो दृढविक्रमः॥

(६। ३५। ३५)

माल्यवान्के वचन रावणको अच्छे नहीं लगे। रावणने भर्त्सना करते हुए माल्यवान्से कहा कि मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है—तुम शत्रुसे मिल गये हो अथवा मुझसे द्वेष रखते हो अथवा शत्रुओंने ऐसा कहने या करनेके लिये तुम्हें प्रोत्साहन दिया है—उत्कोच दिया है—

वीरद्वेषेण वा शङ्के पक्षपातेन वा रिपोः।
त्वयाहं परुषाण्युक्तो परप्रोत्साहनेन वा॥

(६। ३६। ६)

हे माल्यवान्! मैं बीचसे टूट जाऊँगा, पर किसीके सामने झुकूँगा नहीं, यह मेरा सहज दोष है और स्वभाव किसीके लिये भी दुरतिक्रम होता है—

द्विधा भज्येयमप्येवं न नमेयं तु कस्यचित्।
एष मे सहजो दोषः स्वभावो दुरतिक्रमः॥

(६। ३६। ११)

माल्यवान् अपने घर चला गया। रावणने मन्त्रियोंसे विचार करके लङ्काकी रक्षाका प्रबन्ध किया। पूर्व द्वारपर प्रहस्तको, दक्षिण द्वारपर महापार्श्व और महोदरको तथा पश्चिम द्वारपर मेघनादको नियुक्त किया, जो महान् मायावी था और अनेक राक्षसोंसे घिरा हुआ था—

व्यादिदेश च पूर्वस्यां प्रहस्तं द्वारि राक्षसम्।
दक्षिणस्यां महावीर्यौ महापार्श्वमहोदरौ॥
पश्चिमायामथ द्वारि पुत्रमिन्द्रजितं तदा।
व्यादिदेश महामायं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम्॥

(६। ३६। १७-१८)

रावणने नगरके उत्तर द्वारपर शुक और सारणको रक्षाके लिये जानेकी आज्ञा दी और मन्त्रियोंसे कहा कि मैं स्वयं भी उत्तर द्वारपर जाऊँगा।

इस तरफ शत्रुके देशमें पहुँचे हुए राजराजेश्वर श्रीरामजी अपने मन्त्रियोंसे मन्त्रणा करने लगे। श्रीविभीषणने कहा—हे वीरेन्द्र मुकुटमणि श्रीरामजी! मेरे मन्त्री अनल, पनस, सम्पाति और प्रमति—ये चारों लङ्कापुरी जाकर वापस आ गये हैं। ये पक्षीका वेष धारण करके गये थे और वहाँकी व्यवस्था अपनी आँखोंसे देखकर भेद लेकर आ गये हैं—

अनलः पनसश्चैव सम्पातिः प्रमतिस्तथा।
गत्वा लङ्कां ममामात्याः पुरीं पुनरिहागताः॥
भूत्वा शकुनयः सर्वे प्रविष्टाश्च रिपोर्बलम्।
विधानं विहितं यच्च तद् दृष्ट्वा समुपस्थिताः॥

(६। ३७। ७-८)

इस प्रकार विभीषणने रावणकी रक्षाकी व्यवस्थाका वर्णन किया। उसे सुनकर श्रीरामने कहा—अनेक वानरोंके साथ नील पूर्व द्वारपर जाकर प्रहस्तसे लोहा लें। विशाल सेनाके साथ वालिनन्दन अङ्गद दक्षिण द्वारपर स्थित होकर महापार्श्व और महोदरके कार्यमें बाधा दें। पवन-नन्दन हनुमान् अनुपम आत्मबलसे सम्पन्न हैं, वे अनेक वानरोंके साथ लङ्काके पश्चिम फाटकमें प्रवेश करें—

पूर्वद्वारं तु लङ्काया नीलो वानरपुङ्गवः।
प्रहस्तं प्रतियोद्धा स्याद् वानरैर्बहुभिर्वृतः॥
अङ्गदो वालिपुत्रस्तु बलेन महता वृतः।
दक्षिणे बाधतां द्वारे महापार्श्वमहोदरौ॥
हनुमान् पश्चिमद्वारं निष्पीड्य पवनात्मजः।
प्रविशत्वप्रमेयात्मा बहुभिः कपिभिर्वृतः॥

(६। ३७। २६—२८)

नगरके उत्तर फाटकपर मैं सुमित्राकुमार लक्ष्मणके साथ आक्रमण करके, उसके भीतर प्रवेश करूँगा, जहाँपर सेनाके साथ रावण उपस्थित है—

उत्तरं नगरद्वारमहं सौमित्रिणा सह।
निपीड्याभिप्रवेक्ष्यामि सबलो यत्र रावणः॥

(६। ३७। ३१)

तदनन्तर महामना महात्मा श्रीराम अपनी विशाल सेनाके द्वारा वहाँकी समग्र भूमिको आच्छादित करके शत्रुवधका निश्चय करके अत्यन्त हर्ष और उत्साहसे लङ्काकी ओर चले—

ततस्तु रामो महता बलेन
प्रच्छाद्य सर्वां पृथिवीं महात्मा।
प्रहृष्टरूपोऽभिजगाम लङ्कां
कृत्वा मतिं सोऽरिवधे महात्मा॥

(६। ३७। ३७)

तदनन्तर श्रीरामजी सुबेल पर्वतपर चढ़ गये। युद्धकी आकाङ्क्षा करनेवाले राक्षसोंको देखकर समस्त वानर श्रीरामके देखते-देखते सिंहनाद करने लगे—

ते दृष्ट्वा वानराः सर्वे राक्षसान् युद्धकाङ्क्षिणः।
मुमुचुर्विविधान् नादांस्तस्य रामस्य पश्यतः॥

(६। ३८। १८)

सुबेलपर्वतसे ही श्रीरामजीने लङ्काको भलीभाँति देखा। लङ्कामें बड़े-बड़े महल थे, उस सघन बसी हुई स्वर्गके सदृश नगरीको देखकर महान् पराक्रमी श्रीरामको परम विस्मय हुआ—

तां महागृहसम्बाधां दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः।
नगरीं त्रिदिवप्रख्यां विस्मयं प्राप वीर्यवान्॥

(६। ३९। २७)

श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवादि वानरोंके साथ सुबेल-गिरिके सबसे ऊँचे शिखरपर चढ़ गये, जिसका विस्तार आठ कोसका था—

ततो रामः सुबेलाग्रं योजनद्वयमण्डलम्।
उपारोहत् ससुग्रीवो हरियूथैः समन्वितः॥

(६। ४०। १)

वहाँसे लङ्कानगरी देखी और यह देखा कि रावण गोपुरकी छतपर बैठा है, उसके दोनों ओर श्वेत चँवर डुलाये जा रहे थे, सिरपर विजयछत्र सुशोभित हो रहा था। यह रावणका अखाड़ा है। अखाड़ा दो तरहका होता है, एक पहलवानोंका— मल्लयुद्धका अखाड़ा और दूसरा संगीतज्ञोंका अखाड़ा जहाँ नाचना गाना होता है। रावणके यहाँ दोनों अखाड़े थे। मल्लयुद्धका अखाड़ा—'**नाना अखारेन्ह भिरहिं बहु बिधि एक एकन्ह तर्जहीं**'॥ संगीतज्ञोंका अखाड़ा—'**लंका सिखर उपर आगारा। अति बिचित्र तहँ होइ अखारा**'॥

श्रीसुग्रीवने रावणको देखा, देखते ही उनके तन, मनमें आग लग गयी, उनसे देखा न गया। उन्होंने सोचा कि मेरे ठाकुरजी तो कष्ट उठा रहे हैं और यह दुष्ट राग-रंगमें मस्त है, उसी आवेशमें श्रीसुग्रीवने न इधर देखा न उधर देखा, नहीं किसीसे आदेश लिया और न सलाह की। तत्काल आकाश-मार्गसे उड़कर रावणकी छतपर कूद पड़े। कुछ देरतक तो उसे देखते रहे। जब रावणने इन्हें देखा तो घबड़ा गया, उसको वालिका भ्रम हो गया, उसने सोचा कि कहीं मेरे अपराधका दण्ड देनेके लिये वाली ही तो जीवित होकर नहीं आ गया। वाली और सुग्रीवका स्वरूप तो एक-सा था ही। भयभीत रावणको देखकर उसको तृणवत् समझकर श्रीसुग्रीव कठोर वाणीमें बोले—अरे राक्षस! मैं श्रीरामका सखा हूँ, वे कृपालु मुझे सखा मानते हैं, परन्तु वास्तवमें मैं उनका दास हूँ। श्रीरामजीके यहाँ दासका स्वामीकी तरह आदर होता है और सखाकी तरह व्यवहार मिलता है तथा पुत्रकी तरह प्यार मिलता है। हे राक्षस! महाराज श्रीरामचन्द्रके तेजसे आज तू मुझसे बच नहीं सकता है—

लोकनाथस्य रामस्य सखा दासोऽस्मि राक्षस।
न मया मोक्ष्यसेऽद्य त्वं पार्थिवेन्द्रस्य तेजसा॥

(६। ४०। १०)

ऐसा कहकर उछलकर उसके मुकुटोंको खींच करके भूमिपर गिरा दिया।

आकृष्य मुकुटं चित्रं पातयामास तद् भुवि॥

(६। ४०। ११)

मुकुट गिरानेका भाव—श्रीसुग्रीवने कहा— अरे मन्दभाग्य! अब तू इन मुकुटोंको धारण करनेका अधिकारी नहीं रहा, इन्हें तो अब मेरे सखा विभीषण धारण करेंगे। अथवा—मुकुट गिराकर रावणको यह सूचित किया कि अब तू श्रीहीन हो गया। किं वा—मुकुट गिराकर राज्यश्री नष्ट होनेका सङ्केत दे दिया। यद्वा मुकुट गिराकर युद्धके आरम्भमें अपशकुन कर दिया।

रावणने सुग्रीवको पकड़कर अपनी छतपर पटक दिया। सुग्रीवने भी गेंदकी भाँति उछलकर दोनों भुजाओंसे रावणको उठाकर उसी छतपर जोरसे दे मारा।

इत्युक्त्वोत्थाय तं क्षिप्रं बाहुभ्यामाक्षिपत् तले।
कन्दुवत् स समुत्थाय बाहुभ्यामाक्षिपद्धरिः॥

(६। ४०। १३)

इस प्रकार दोनोंमें भयङ्कर पटका-पटकी, मारा-मारी होने लगी। घूँसे, थप्पड़, कुहनी और पंजोंकी मारसे दोनोंमें भयङ्कर युद्ध होने लगा। जब रावणने देखा सुग्रीव विजयी हो जायँगे तब अपनी मायाशक्तिसे काम लेनेका मन बनाया। सुग्रीवजी जान गये और सहसा आकाशमें उछल पड़े।

इस प्रसङ्गमें सुग्रीवको '**जितकाशी**' और 'जितक्लम' इन दो विशेषणोंसे मण्डित किया गया है। जो अपने कार्यमें सफल हो जाता है वही '**जितकाशी**' और '**जितक्लम**' हो सकता है। '**जितकाशी**' का अर्थ है विजयोल्लाससे सुशोभित—'**जितेन जयेन काशते प्रकाशते इति जितकाशी**'। और 'जितक्लमका' अर्थ है—जिसे श्रम न हो। असफल व्यक्तिको श्रम भी महसूस होता है और उसका मुखड़ा भी कुम्हला जाता है। श्रीसुग्रीव रावणको चकमा देकर निकल गये। वह खड़ा-खड़ा देखता ही रह गया—

उत्पपात तदाऽऽकाशं जितकाशी जितक्लमः।
रावणः स्थित एवात्र हरिराजेन वञ्चितः॥

(६।४०।२८)

श्रीसुग्रीवजी युद्धका आरम्भ करके विजयश्री प्राप्त करके श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें आ गये। श्रीसुग्रीवजीके श्रीविग्रहमें युद्धके चिह्न देखकर श्रीलक्ष्मणाग्रज रघुनन्दनने उन्हें उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया और कहा—हे वानरेन्द्र! तुमने मुझसे परामर्श किये बिना इतना महान् साहसका कार्य कर लिया। राजा लोग इस प्रकारके दुस्साहसपूर्ण कार्य नहीं करते। श्रीसुग्रीवने कहा—हे रघुनन्दन! मैं आपके भार्यापहारीको देखकर—श्रीसीताजीको चुरानेवालेको देखकर उसे कैसे क्षमा कर सकता था—

तव भार्यापहर्तारं दृष्ट्वा राघव रावणम्।
मर्षयामि कथं वीर जानन् विक्रममात्मनः॥

(६।४१।९)

श्रीसुग्रीवकी विशाल सेनाको सुसज्जित करके कालज्ञ श्रीरामजीने ज्योतिषशास्त्रोक्त शुभ मुहूर्त-में सेनाको युद्धके लिये प्रस्थान करनेकी आज्ञा दी—

सन्नह्य तु ससुग्रीवः कपिराजबलं महत्।
कालज्ञो राघवः काले संयुगायाभ्यचोदयत्॥

(६।४१।२५)

श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीवके द्वारा सुरक्षित वह विशाल वानरसेना समस्त देवताओं और असुरोंके लिये भी अत्यन्त दुर्जय हो गयी थी—

रामलक्ष्मणगुप्ता सा सुग्रीवेण च वाहिनी।
बभूव दुर्धर्षतरा सर्वैरपि सुरासुरैः॥

(६।४१।५७)

श्रीरामजीने विभीषणसे सलाह लेकर राजधर्मका विचार करते हुए वालिपुत्र अङ्गदको प्रेमसे बुलाकर उनसे कहा—हे सौम्य! हे वालिनन्दन! तुम रावणके पास जाओ और उसे मेरी बात सुनाओ—यदि तुम श्रीमिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताको लेकर मेरी शरणमें नहीं आये तो मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा संसारको अराक्षस—राक्षसशून्य कर दूँगा—

अराक्षसमिमं लोकं कर्तास्मि निशितैः शरैः।
नो चेच्छरणमभ्येषि तामादाय तु मैथिलीम्॥

(६।४१।६७)

अङ्गदजी रावणके पास निर्भय होकर पहुँच गये और उससे कहा—मैं अक्लिष्टकर्मा कोसलेन्द्र भगवान् श्रीरामचन्द्रका दूत हूँ। सम्भव है, मेरा नाम कभी तुम्हारे कानोंमें पड़ा हो। मेरा नाम अङ्गद है और मैं वालीका पुत्र हूँ—

दूतोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
वालिपुत्रोऽङ्गदो नाम यदि ते श्रोत्रमागतः॥

(६।४१।७७)

हे रावण! कौसल्यानन्दसंवर्द्धन भगवान् श्रीराघवेन्द्र रामने यह सन्देश दिया है—अरे क्रूर रावण! तनिक पुरुष बनो और घरसे बाहर निकलकर युद्धमें मेरा सामना करो—

आह त्वां राघवो रामः कौसल्यानन्दवर्द्धनः।
निष्पत्य प्रतियुध्यस्व नृशंस पुरुषो भव॥

(६। ४१। ७८)

हे रावण! श्रीरामने कहा है कि यदि तुम मेरे चरणोंमें गिरकर आदरपूर्वक सीताको नहीं प्रदान करोगे तो मारे जाओगे और तुम्हारे मरनेपर लङ्काका समग्र ऐश्वर्य विभीषणको मिलेगा—

विभीषणस्य चैश्वर्यं भविष्यति हते त्वयि।
न चेत् सत्कृत्य वैदेहीं प्रणिपत्य प्रदास्यसि॥

(६। ४१। ८१)

वानरश्रेष्ठ अङ्गदका वचन सुनकर रावणने अपने मन्त्रियोंसे बार-बार कहा—पकड़ लो इस दुर्बुद्धि वानरको और मार डालो—'**गृह्यतामिति दुर्मेधा वध्यतामिति चाऽसकृत्**'। '**असकृत्**'—बार-बार कहनेका भाव कि कोई वीर भयके कारण अङ्गदके सामने आनेका साहस ही नहीं कर रहा है फिर साहस करके चार राक्षसोंने मिलकर प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी अङ्गदको पकड़ लिया। श्रीअङ्गदने अपनेको स्वयं पकड़ा दिया और उनको लिये-दिये अङ्गदजी उछलकर महलकी छतपर चढ़ गये। उनके उछलनेके वेगसे सब राक्षस धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़े। श्रीअङ्गदके चरणोंकी ठोकरसे रावणके भवनकी छत फट गयी। छत तोड़कर सिंहनाद करके आकाशमार्गसे उड़ करके श्रीरामजीके पास आ गये।

धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने राक्षसियोंके द्वारा दुःख प्राप्त करती हुई श्रीसीताजीका बार-बार चिन्तन करते हुए शत्रु राक्षसोंका वध करनेके लिये वीरवानरोंको आज्ञा दी—

निपीड्यमानां धर्मात्मा वैदेहीमनुचिन्तयन्।
क्षिप्रमाज्ञापयद् रामो वानरान् द्विषतां वधे॥

(६। ४२। ९)

वानरों और राक्षसोंका अत्यद्भुत संग्राम हुआ। युद्धभूमिमें रक्त और मांसकी कीच जम गयी—

स सम्प्रहारस्तुमुलो मांसशोणितकर्दमः।
रक्षसां वानराणां च सम्बभूवाद्भुतोपमः॥

(६। ४२। ४७)

रामदल और रावणदलमें पारस्परिक द्वन्द्व युद्ध हो रहा था। अङ्गद और मेघनादका, नील और निकुम्भका, सुग्रीव और प्रघसका, श्रीलक्ष्मण और विरूपाक्षका, नल और प्रतपनका तथा श्रीहनुमान् और जम्बुमालीका भयङ्कर युद्ध हो रहा था। मेघनादको छोड़कर सभी राक्षस जो लड़ रहे थे इस युद्धमें मारे गये। शूरवीर राक्षस शौर्य-सम्पन्न वानरोंद्वारा द्वन्द्व युद्धमें मार डाले गये, जैसे देवताओंके द्वारा दैत्य मथ डाले गये थे—

एवं तैर्वानरैः शूरैः शूरास्ते रजनीचराः।
द्वन्द्वे विमथितास्तत्र दैत्या इव दिवौकसैः॥

(६। ४३। ४२)

श्रीअङ्गदके द्वारा मेघनाद प्रत्यक्ष युद्धमें पराजित हो गया। अङ्गदने मेघनादको घायल कर दिया और उसके सारथी तथा घोड़ोंको यमलोक पहुँचा दिया—

रावणिं निजघानाशु सारथिं च हयानपि॥

(६। ४४। २८)

मेघनाद रथ छोड़कर अन्तर्धान हो गया। अदृश्य होकर कूट युद्ध करनेवाले मेघनादने सर्पाकार बाणोंके बन्धनसे श्रीराम-लक्ष्मणको बाँध लिया—

अदृश्यः सर्वभूतानां कूटयोधी निशाचरः।
बबन्ध शरबन्धेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥

(६। ४४। ३७)

उन्हें उस अवस्थामें देखकर वानरवीरोंको महान् सन्ताप हो गया। वे शोकातुर होकर नेत्रोंमें आँसू भरकर घोर आर्तनाद करने लगे—

हरयश्चापि तं दृष्ट्वा सन्तापं परमं गताः।
शोकार्ताश्चुक्रुशुर्घोरमश्रुपूरितलोचनाः॥

(६। ४५। २७)

श्रीराम-लक्ष्मणको नागपाशमें निबद्ध तथा मूर्च्छित देखकर नील, द्विविद, मैन्द, सुषेण, कुमुद, अङ्गद, सुग्रीव आदि सब हनुमान्‌जीके साथ शोक करने लगे—

नीलश्च द्विविदो मैन्दः सुषेणः कुमुदोऽङ्गदः।
तूर्णं हनुमता सार्धमन्वशोचन्त राघवौ॥

(६। ४६। ३)

मेघनादने भूमिपर निश्चेष्ट पड़े हुए श्रीराम-लक्ष्मणको देखा, उनकी श्वास भी नहीं चल रही थी। उसने समझ लिया कि ये दोनों मर गये। युद्धविजेता मेघनाद प्रसन्न होकर राक्षसोंको प्रसन्न करता हुआ लङ्कापुरीमें चला गया—

निष्पन्दौ तु तदा दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
वसुधायां निरुच्छ्वासौ हतावित्यन्वमन्यत॥
हर्षेण तु समाविष्ट इन्द्रजित् समितिञ्जयः।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां हर्षयन् सर्वनैर्ऋतान्॥

(६। ४६। २७-२८)

श्रीसुग्रीवके मुखपर दैन्य था, उनके शोकाकुल नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। वे उस समय अत्यन्त परित्रस्त थे। श्रीविभीषणने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा—सुग्रीव! डरो मत। आँसुओंका वेग रोको और धैर्य धारण करो—

तमुवाच परित्रस्तं वानरेन्द्रं विभीषणः।
सबाष्पवदनं दीनं शोकव्याकुललोचनम्॥
अलं त्रासेन सुग्रीव बाष्पवेगो निगृह्यताम्।

(६। ४६। ३०-३१)

श्रीविभीषणने सबको आश्वस्त किया। मेघनादने रावणके निकट आकर बद्धाञ्जलि होकर प्रणाम करके राम-लक्ष्मणके मारे जानेका प्रिय संवाद सुनाया—

तत्र रावणमासाद्य अभिवाद्य कृताञ्जलिः।
आचचक्षे प्रियं पित्रे निहतौ रामलक्ष्मणौ॥

(६। ४६। ४६)

मेघनादका वचन सुनकर रावण बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपने पुत्रका मस्तक सूँघकर उसका अभिनन्दन किया।

मेघनादके लङ्का जानेके पश्चात् श्रीहनुमान्-अङ्गद, नील, सुषेण, कुमुद, नल, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, जाम्बवान्, ऋषभ, स्कन्ध, रम्भ, शतबलि, पृथु—ये सब समाहित होकर अपनी सेनाकी व्यूह रचना करके हाथोंमें वृक्ष ले करके सब ओरसे पहरा देने लगे—

तस्मिन् प्रविष्टे लङ्कायां कृतार्थे रावणात्मजे।
राघवं परिवार्याथ ररक्षुर्वानरर्षभाः॥
हनुमानङ्गदो नीलः सुषेणः कुमुदो नलः।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः॥
जाम्बवानृषभः स्कन्धो रम्भः शतबलिः पृथुः।
व्यूढानीकाश्च यत्ताश्च द्रुमानादाय सर्वतः॥

(६। ४७। १—४)

रावणकी आज्ञासे राक्षसियोंने श्रीसीताजीको पुष्पकविमानपर बैठाकर युद्धभूमिमें नागपाशमें निबद्ध श्रीराम-लक्ष्मणको दिखाया। अपने स्वामी श्रीरामजीको तथा महाबली लक्ष्मणको मारा गया देखकर शोककर्षिता सीता करुण विलाप करने लगीं—

भर्तारं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं च महाबलम्।
विललाप भृशं सीता करुणं शोककर्शिता॥

(६। ४८। १)

श्रीसीताजीने त्रिजटासे कहा—मैं श्रीराम, महारथी लक्ष्मण और अपनी माता सुनैनाके लिये उतना शोक नहीं कर रही हूँ। मुझे तो सबसे अधिक चिन्ता अपनी तपस्विनी सास माता

श्रीकौसल्याजीकी है। वे अनुदिन, अनुपल, अनुक्षण गणना करके दिन व्यतीत कर रही हैं कि वह दिन कब आवेगा जब मैं अपने राम-लक्ष्मण और आँखोंकी पुत्तलिका सीताको नेत्र भरकर निहारूँगी—

न शोचामि तथा रामं लक्ष्मणं च महारथम्।
नात्मानं जननीं चापि यथा श्वश्रूं तपस्विनीम्॥
सा तु चिन्तयते नित्यं समाप्तव्रतमागतम्।
कदा द्रक्ष्यामि सीतां च लक्ष्मणं च सराघवम्॥

(६। ४८। २०-२१)

विलाप करती हुई श्रीसीताका भक्तिमती त्रिजटाने प्रबोधन किया—हे देवि! विषाद न करो। मैं निश्चयपूर्वक कहती हूँ कि तुम्हारे पतिदेव जीवित हैं—

परिदेवयमानां तां राक्षसी त्रिजटाब्रवीत्।
मा विषादं कृथा देवि भर्तायं तव जीवति॥

(६। ४८। २२)

हे देवि! यदि श्रीराम-लक्ष्मण जीवित न होते तो यह पुष्पकविमान आपको धारण न करता; क्योंकि यह दिव्य पुष्पकविमान विधवाको नहीं धारण कर सकता—

इदं विमानं वैदेहि पुष्पकं नाम नामतः।
दिव्यं त्वां धारयेन्नेदं यद्येतौ गतजीवितौ॥

(६। ४८। २५)

त्रिजटाने अनेक प्रकारके अकाट्य तर्कोंसे श्रीसीताजीको आश्वस्त कर दिया।

कुछ देरके पश्चात् अपने शरीरकी दृढ़ता एवं शक्तिमत्ताके कारण श्रीरामचन्द्र नागपाशमें निबद्ध होनेपर भी होशमें आ गये—

एतस्मिन्नन्तरे रामः प्रत्यबुध्यत वीर्यवान्।
स्थिरत्वात्सत्त्वयोगाच्च शरैः सन्दानितोऽपि सन्॥

(६। ४९। ३)

श्रीरामजी होशमें आनेपर रक्तसे लथपथ और अत्यन्त घायल श्रीलक्ष्मणको देखकर हृदयद्रावक विलाप करने लगे—हाय-हाय! यदि सुमित्रानन्द-वर्द्धन लक्ष्मण जीवित न रहे तो मैं वानरोंके देखते-देखते अपने प्राणोंका परित्याग कर दूँगा—

परित्यक्ष्याम्यहं प्राणान् वानराणां तु पश्यताम्।
यदि पञ्चत्वमापन्नः सुमित्रानन्दवर्द्धनः॥

(६। ४९। ७)

शरणागतवत्सल श्रीराम इस कठिन समयमें भी शरणागतका स्मरण करते हुए कहते हैं—हा हन्त! मैं विभीषणको राक्षसोंका राजा नहीं बना सका एतावता मेरा यह असत्य प्रलाप मुझे भीतर-भीतर सदा दग्ध करता रहेगा, इसमें सन्देह नहीं है—

तत्तु मिथ्या प्रलप्तं मां प्रधक्ष्यति न संशयः।
यन्मया न कृतो राजा राक्षसानां विभीषणः॥

(६। ४९। २२)

उस समय सबको सान्त्वना देते हुए वानरेन्द्र सुग्रीवने अपने श्वशुर सुषेणसे कहा—हे वानरेन्द्र! आप स्वस्थ होनेपर शत्रुसूदन श्रीराम-लक्ष्मणको लेकर शूरवीर वानरगणोंके साथ किष्किन्धापुरी चले जाइये। मैं रावणको सपुत्र, सबान्धव मार करके उसके हाथसे भगवती श्रीमैथिलीको उसी प्रकार छीन लाऊँगा जिस प्रकार देवेन्द्र इन्द्र अपनी प्रणष्टा राज्यलक्ष्मीको दैत्योंके यहाँसे हर लाये थे—

सह शूरैर्हरिगणैर्लब्धसंज्ञावरिन्दमौ।
गच्छ त्वं भ्रातरौ गृह्य किष्किन्धां रामलक्ष्मणौ॥
अहं तु रावणं हत्वा सपुत्रं सहबान्धवम्।
मैथिलीमानयिष्यामि शक्रो नष्टामिव श्रियम्॥

(६। ५०। २४-२५)

सुषेण वानर वैद्यने ओषधि लानेका प्रस्ताव किया। अभी चर्चा चल ही रही थी कि उसी समय श्रीविनतानन्दन गरुड़जी वहाँ आ गये। उनको देखते ही बाणके रूपमें श्रीराम-लक्ष्मणको बाँधनेवाले महाबली नाग वहाँसे अपनी जान बचाकर भाग खड़े हुए—

तमागतमभिप्रेक्ष्य नागास्ते विप्रदुद्रुवुः।
यैस्तु तौ पुरुषौ बद्धौ शरभूतैर्महाबलैः॥

(६। ५०। ३७)

श्रीगरुड़जीका संस्पर्श होते ही श्रीराम-लक्ष्मणके समस्त घाव भर गये और उनके शरीर सद्यः सुन्दर कान्तिसम्पन्न एवं स्निग्ध हो गये।

वैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोः संरुरुहुर्व्रणाः।
सुवर्णे च तनू स्निग्धे तयोराशु बभूवतुः॥

(६। ५०। ३९)

श्रीगरुड़जीने श्रीरामजीका अभिनन्दन करते हुए कहा—हे दाशरथे राम! मैंने देवताओंके मुखसे आपलोगोंके नागपाशमें बँधनेका समाचार सुना। सुनते ही अत्यन्त त्वराके साथ यहाँ आया हूँ। हे रघुनन्दन! क्रूरकर्मा इन्द्रजित्‌ने मायाके बलसे जिन नागरूपी बाणोंका बन्धन तैयार किया था, वे नाग कद्रूके पुत्र ही थे। इनके दाँत बड़े तीखे होते हैं। इन नागोंका विष बड़ा भयङ्कर होता है—'**एते नागाः काद्रवेयास्तीक्ष्णदंष्ट्रा विषोल्बणाः**'। अब आपको सदा सावधान रहना चाहिये। हे धर्मज्ञ! हे सत्यपराक्रम! हे श्रीराम! युद्धभूमिमें शत्रुओंका संहार करनेवाले अपने भ्राता श्रीलक्ष्मणके साथ ही आप परम सौभाग्यशाली हैं—

सभाग्यश्चासि धर्मज्ञ राम सत्यपराक्रम।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा समरे रिपुघातिना॥

(६। ५०। ५०)

श्रीगरुड़जी श्रीरामजीकी परिक्रमा करके उन्हें अपने हृदयसे लगा करके पवनके समान गतिसे आकाशमें चले गये—

प्रदक्षिणं ततः कृत्वा परिष्वज्य च वीर्यवान्।
जगामाकाशमाविश्य सुपर्णः पवनो यथा॥

(६। ५०। ६०)

उस समय श्रीरामदलमें खुशीकी लहर दौड़ गयी, प्रसन्नताका वातावरण छा गया। समस्त वानरगण पूँछ हिला-हिलाकर प्रसन्नताकी अभिव्यक्ति करने लगे। नगाड़े बजने लगे, शङ्खध्वनि, मृदङ्गध्वनि, वानरोंकी हर्षोल्लास परिपूर्ण किलकिला-ध्वनि और जयध्वनि होने लगी। वानरगण पहलेकी भाँति गर्जने और ताल ठोकने लगे—

ततो भेरीः समाजघ्नुर्मृदङ्गांश्चाप्यवादयन्।
दध्मुः शङ्खान् सम्प्रहृष्टाः क्ष्वेलन्त्यपि यथापुरम्॥

(६। ५०। ६२)

अवनि-अम्बरमें परिव्याप्त हर्षध्वनिसे रावण-का हृदय आशङ्कित हो गया। उसकी नींद हराम हो गयी। उसकी प्रसन्नता रातभर भी साथ न दे सकी। उसने राक्षसोंसे कहा—पता लगाओ कि रामदलमें शोककाल उपस्थित होनेपर भी इन वानरोंकी प्रसन्नताका क्या रहस्य है?

ज्ञायतां तूर्णमेतेषां सर्वेषां च वनौकसाम्।
शोककाले समुत्पन्ने हर्षकारणमुत्थितम्॥

(६। ५१। ७)

राक्षसोंने पता लगाकर सब कारण बता दिया। महाबलवान् रावण चिन्ता और शोकसे समाक्रान्त हो गया। उसका मुख विवर्ण हो गया—पीला पड़ गया—

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां राक्षसेन्द्रो महाबलः।
चिन्ताशोकसमाक्रान्तो विवर्णवदनोऽभवत्॥

(६। ५१। १४)

उसने धूम्राक्षको युद्ध करनेके लिये भेजा। धूम्राक्षने श्रीरामदलमें आकर श्रीरामजीकी विशाल भुजाओंसे सुरक्षित विशाल वानरवाहिनीको देखा। वह सेना प्रलयकालके समुद्रके समान प्रतीत होती थी—

ददर्श तां राघवबाहुपालितां
महौघकल्पां बहु वानरीं चमूम्॥

(६। ५१। ३६)

उस समय वानर और राक्षसोंमें भयङ्कर युद्ध

छिड़ गया। वानरोंने लातों, मुक्कों, तमाचों, दाँतों और वृक्षोंकी मारसे राक्षसोंको '**अवपोथिताः**'—'**हिंसिताः**' अर्थात् मार डाला—

वानरैः पातयन्तस्ते वेगिता वेगवत्तरैः।
मुष्टिभिश्चरणैर्दन्तैः पादपैश्चावपोथिताः॥

(६। ५२। १७)

अपनी सेनाको विद्रुत—भागती हुई देखकर राक्षसशिरोमणि धूम्राक्षने युयुत्सु—युद्धकी इच्छावाले वानरोंका रोषपूर्वक कदन—संहार आरम्भ कर दिया—

सैन्यं तु विद्रुतं दृष्ट्वा धूम्राक्षो राक्षसर्षभः।
रोषेण कदनं चक्रे वानराणां युयुत्सताम्॥

(६। ५२। १८)

धूम्राक्षके द्वारा अर्दित और पीड़ित अपनी सेनाको देखकर मारुति श्रीहनुमान्‌जी अत्यन्त क्रुद्ध होकर एक विशाल शिला हाथमें लेकर धूम्राक्षके सामने आये मानो भेंट लेकर आये हों—

धूम्राक्षेणार्दितं सैन्यं व्यथितं प्रेक्ष्य मारुतिः।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम्॥

(६। ५२। २६)

अपने रथकी ओर विशाल शिलाको आते देखकर भयसे उद्विग्न होकर धूम्राक्ष हाथमें गदा लेकर वेगपूर्वक रथसे कूदकर भूमिपर खड़ा हो गया—

आपतन्तीं शिलां दृष्ट्वा गदामुद्यम्य सम्भ्रमात्।
रथादाप्लुत्य वेगेन वसुधायां व्यतिष्ठत॥

(६। ५२। २८)

और वह शिला रथके पहिये, कूबर, अश्व, ध्वज और धनुषसहित उसके रथ को चूर-चूर करके भूमिपर गिर पड़ी—

सा प्रमथ्य रथं तस्य निपपात शिला भुवि।
सचक्रकूबरं साश्वं सध्वजं सशरासनम्॥

(६। ५२। २९)

धूम्राक्षने बहुसङ्ख्यक काँटोंसे परिपूर्ण गदा श्रीहनुमान्‌जीके मस्तकपर दे मारी। श्रीहनुमान्‌जीने इस प्रहारकी चिन्ता न करके एक पर्वतशिखर धूम्राक्षके मस्तकपर फेंक दिया। उसकी गहरी चोटसे धूम्राक्षके समस्त अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये और वह बिखरे हुए पर्वतकी तरह सहसा भूमिपर गिर पड़ा—

स विस्फारितसर्वाङ्गो गिरिशृङ्गेण ताडितः॥
पपात सहसा भूमौ विकीर्ण इव पर्वतः।

(६। ५२। ३६-३७)

यद्यपि श्रीहनुमान्‌जी बलवान् धूम्राक्षका वध करनेके कारण थक गये थे, तथापि वानरोंके द्वारा पूजित एवं सुप्रशंसित होनेके कारण उन्हें महान् हर्ष हुआ—

रिपुवधजनितश्रमो महात्मा
मुदमगमत् कपिभिः सुपूज्यमानः॥

(६। ५२। ३८)

राक्षसेश्वर रावणने जब धूम्राक्षके वधका समाचार सुना तब उसे महान् क्रोध हुआ और फुफकारते हुए सर्पकी भाँति जोर-जोरसे साँस लेने लगा—

धूम्राक्षं निहतं श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो निःश्वसन्नुरगो यथा॥

(६। ५३। १)

रावणने महाबली वज्रदंष्ट्रको आज्ञा दी—हे वीर! तुम राक्षसोंके सहित जाओ और दशरथपुत्र रामको तथा वानरोंके सहित सुग्रीवको मार डालो—

गच्छ त्वं वीर निर्याहि राक्षसैः परिवारितः।
जहि दाशरथिं रामं सुग्रीवं वानरैः सह॥

(६। ५३। ३)

वज्रदंष्ट्र जब समराङ्गणमें आया तो महाबली अङ्गदने उसका लोहा लिया। वज्रदंष्ट्र वानरोंका संहार करने लगा और अङ्गदजी एक वृक्ष लेकर राक्षसोंका संहार करने लगे। विशाल राक्षस-सेना

श्रीअङ्गदके वेगसे प्रकम्पित हो गयी, जैसे वायुके वेगसे मेघ प्रकम्पित हो उठता है—

अङ्गदस्य च वेगेन तद् राक्षसबलं महत्।
प्राकम्पत तदा तत्र पवनेनाम्बुदो यथा॥

(६। ५३। ३२)

तदनन्तर वज्रदंष्ट्र और अङ्गदजीमें अत्यन्त लोमहर्षक युद्ध हुआ। अन्तमें महाबली वालिनन्दन अङ्गदने निर्मल एवं तेज धारवाली तलवारसे वज्रदंष्ट्रका महान्—विशाल सिर काट डाला—

निर्मलेन सुधौतेन खड्गेनास्य महच्छिरः।
जघान वज्रदंष्ट्रस्य वालिसूनुर्महाबलः॥

(६। ५४। ३४)

इस अद्भुत कार्यसे श्रीअङ्गदजीकी चारों ओर सुप्रशंसा होने लगी।

जब रावणने सुना कि श्रीअङ्गदने वज्रदंष्ट्रको मार डाला तब उसने हाथ जोड़कर अपने समीपमें स्थित सेनाध्यक्ष प्रहस्तसे कहा—अकम्पनको आगे करके भीम पराक्रमी दुर्जय राक्षस शीघ्र युद्धके लिये जायँ—

वज्रदंष्ट्रं हतं श्रुत्वा वालिपुत्रेण रावणः।
बलाध्यक्षमुवाचेदं कृताञ्जलिमुपस्थितम्॥
शीघ्रं निर्यान्तुदुर्धर्षा राक्षसा भीमविक्रमाः।
अकम्पनं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रास्त्रकोविदम्॥

(६। ५५। १-२)

अकम्पनकी विशेषता बताते हुए स्वयं रावण कहता है—(१) '**सर्वशस्त्रास्त्रकोविदम्**', शस्त्रको पकड़कर मारा जाता है जैसे—तलवार और अस्त्रको फेंककर मारा जाता है जैसे—बाण। अकम्पन इन दोनों विद्याओंमें पण्डित था। (२) '**शास्ता**' **रिपूणां निग्रहकर्त्ता**—दुश्मनको दण्ड देनेवाला। (३) '**गोप्ता**' **स्वबलरक्षकः**—अपनी सेनाका रक्षक। (४) '**नेता**' **नायकः**—सेनापति है। (५) '**युधिसत्तमः**' युद्धमें एक श्रेष्ठ योद्धा माना गया है। (६) '**भूतिकामः**' मेरी सदा उन्नति चाहता है। (७) '**नित्यं च समरप्रियः**' अकम्पनको युद्ध सदा प्रिय है।

अकम्पन नामके रावणके कई मन्त्री और योद्धा हैं। एकका वर्णन अरण्यकाण्डमें आ गया है। एकका वर्णन अभी आगे आयेगा। अकम्पनको देवता भी महासमरमें कम्पित नहीं कर सकते थे, इसीलिये वह अकम्पन नामसे प्रसिद्ध था और राक्षसोंमें सूर्यके समान तेजस्वी था—

नहि कम्पयितुं शक्यः सुरैरपि महामृधे॥
अकम्पनस्ततस्तेषामादित्य इव तेजसा।

(६। ५५। ८-९)

अकम्पनके समराङ्गणमें आते ही भयङ्कर संग्राम आरम्भ हो गया। अकम्पनके द्वारा वानरोंका संहार देखकर श्रीहनुमान्जी युद्धमें उसका सामना करनेके लिये—उसकी गतिको अवरुद्ध करनेके लिये आ गये। अब तो भागते हुए वानर भी लौट पड़े। यह देखकर अकम्पन श्रीहनुमान्जीके ऊपर जलधाराकी तरह बाणवर्षा करने लगा—

अकम्पनस्तु शैलाभं हनूमन्तमवस्थितम्।
महेन्द्र इव धाराभिः शरैरभिववर्ष ह॥

(६। ५६। ११)

महातेजस्वी मारुतात्मज श्रीहनुमान् महान् अट्टहास करके मेदिनीको प्रकम्पित करते हुए अकम्पनकी ओर दौड़े—

स प्रहस्य महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः।
अभिदुद्राव तद्रक्षः कम्पयन्निव मेदिनीम्॥

(६। ५६। १३)

अकम्पनने श्रीहनुमान्जीको चौदह बाण मारकर घायल कर दिया। श्रीहनुमान्जीने एक विशाल वृक्ष उखाड़कर राक्षसेन्द्र अकम्पनके सिरपर दे मारा। वानरश्रेष्ठ श्रीहनुमान्जीके द्वारा चलाये हुए उस वृक्षकी गम्भीर चोटसे महाबली अकम्पन भूमिपर गिर पड़ा और मर गया—

स वृक्षेण हतस्तेन सक्रोधेन महात्मना।

राक्षसो वानरेन्द्रेण पपात च ममार च॥

(६। ५६। ३०)

उस समय देवता, महाबली श्रीराम, श्रीलक्ष्मण, श्रीसुग्रीव आदि वानर, श्रीविभीषण सभीने धन्य-धन्य, साधु-साधु कहकर श्रीहनुमान्‌जी महाराजका महान् सम्मान किया—

अपूजयन् देवगणास्तदाकपिं
स्वयं च रामोऽतिबलश्च लक्ष्मणः।
तथैव सुग्रीवमुखाः प्लवङ्गमा
विभीषणश्चैव महाबलस्तदा॥

(६। ५६। ३९)

अकम्पनके वधका समाचार सुनकर राक्षसेश्वर रावणको अति क्रोध हुआ वह दीन मुख होकर मन्त्रियोंकी ओर देखने लगा—

अकम्पनवधं श्रुत्वा क्रुद्धो वै राक्षसेश्वरः।
किञ्चिद् दीनमुखश्चापि सचिवांस्तानुदैक्षत॥

(६। ५७। १)

रावणने सेनापति प्रहस्तसे कहा—हे युद्धविशारद वीर! लङ्का चारों ओरसे शत्रुओंके द्वारा अवरुद्ध हो गयी है—घेर ली गयी है। सारा नगर दुःखसे व्याकुल है। अब सामान्य योद्धाके युद्धसे कार्य बननेवाला नहीं है। सम्प्रति मैं, कुम्भकर्ण, मेरे सेनापति तुम, मेघनाद अथवा निकुम्भ ही युद्धका भार उठा सकते हैं। अतः हे बलाध्यक्ष! तुम शीघ्र ही सेना लेकर विजयके लिये प्रस्थान करो—

अहं वा कुम्भकर्णो वा त्वं वा सेनापतिर्मम।
इन्द्रजिद् वा निकुम्भो वा वहेयुर्भारमीदृशम्॥
स त्वं बलमतः शीघ्रमादाय परिगृह्य च।
विजयायाभिनिर्याहि यत्र सर्वे वनौकसः॥

(६। ५७। ६-७)

प्रहस्तने कहा—हे राजन्। मेरा आरम्भसे ही विचार था कि सीताप्रदानसे—लौटानेमें ही हमलोगोंका श्रेय है—कल्याण है अन्यथा युद्ध निश्चित होगा। उसीके अनुसार हमें आज सङ्कटका सामना करना पड़ रहा है—

प्रदानेन तु सीतायाः श्रेयो व्यवसितं मया।
अप्रदाने पुनर्युद्धं दृष्टमेव तथैव नः॥

(६। ५७। १४)

हे राक्षसेन्द्र! आपने दान, मान, सत्कार आदिसे मेरा सदा सत्कार किया है। इस समय मुझे अपने जीवन, कलत्र, पुत्र और वित्त आदिकी रक्षा नहीं करनी है। आप देखते रहिये कि मैं किस प्रकार आपके लिये युद्धकी प्रज्वलित अग्निमें अपने जीवनकी आहुति देता हूँ।

त्वं पश्य मां जुहूषन्तं त्वदर्थे जीवितं युधि॥

(६। ५७। १६)

इस प्रकार कहकर प्रहस्तने सेनापतियोंको युद्धके लिये आज्ञा प्रदान कर दी। चारों ओर उत्साहपूर्वक युद्धकी तैयारियाँ होने लगीं। उस समय कोई राक्षस घृतकी आहुति देकर अग्निदेव-का सन्तर्पण करने लगा। कोई वैदिक ब्राह्मणोंको प्रणाम करके आशीर्वाद लेने लगा। उस समय घीकी सुगन्धित वायु सब ओर बहने लगी—

हुताशनं तर्पयतां ब्राह्मणांश्च नमस्यताम्॥
आज्यगन्धप्रतिवहः सुरभिर्मारुतो ववौ।

(६। ५७। २१-२२)

मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित मालाओंको राक्षसोंने स्वीकार किया और युद्धोपयोगी वेष-भूषा हर्ष एवं उत्साहसे धारण की। एक सुन्दर सुसज्जित रथपर बैठकर रावणकी आज्ञाको आदरपूर्वक स्वीकार करके विशाल सेनासे घिरा हुआ सेनापति प्रहस्त शीघ्र ही लङ्कासे बाहर निकल गया। मेघकी गम्भीर गर्जनाके समान दुन्दुभियाँ बजने लगीं, और भी अनेक प्रकारके समरवाद्य सुवादित हो उठे। नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत प्रहस्तके ये चार सचिव उसको चारों

ओरसे घेरकर लङ्कासे बाहर निकले। जैसे मुमूर्षु, शलभ अग्निकी ओर उत्साह और वेगसे बढ़ता है उसी प्रकार प्रहस्त भी श्रीरामदलकी ओर बढ़ा—**'यथामुमूर्षुः शलभोविभावसुम्'**।

प्रहस्तको समराङ्गणमें आते देखकर परम कौतुकी श्रीरामचन्द्रजीने पूछा—हे विभीषण! यह बहुत बड़ी सेना लेकर अत्यन्त वेगसे कौन पराक्रमी आ रहा है? श्रीविभीषणने कहा—हे प्रभो! यह राक्षसराज रावणका सेनापति प्रहस्त है। यह लङ्काकी एक तिहाई सेनासे घिरा हुआ है। यह विख्यात पराक्रमवाला अस्त्रवेत्ता और शूरवीर है—

लङ्कायां राक्षसेन्द्रस्य त्रिभागबलसंवृतः।
वीर्यवानस्त्रविच्छूरः सुप्रख्यातपराक्रमः॥

(६।५८।४)

इसके अनन्तर भयङ्कर युद्ध आरम्भ हो गया। उसके चारों वीर सचिवोंने अनेक वानरोंका विनाश कर दिया। परन्तु अन्तमें वे भी मारे गये। नरान्तक नामक सचिवको द्विविदने एक पर्वतके शिखरसे मार डाला। समुन्नतको दुर्मुख नामके वानरने एक विशाल वृक्षसे समाप्त कर दिया। तत्पश्चात् सुसंक्रुद्ध जाम्बवान्ने एक महती शिला उठाकर महानादकी छातीपर पटक दी, जिससे वह मर गया। तार नामक वानरके द्वारा कुम्भहनु-को अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा। तदनन्तर श्रीरामदलके सेनापति अग्निपुत्र महाबली नील और प्रहस्तका घमासान युद्ध होने लगा। नीलने उसका धनुष तोड़ डाला। धनुषके टूटनेपर प्रहस्त हस्तमें मुसल धारण करके समर करने लगा। वे दोनों—नील और प्रहस्त वाहिनीपति थे। दोनों एक-दूसरेके वैरी थे, दोनों वेगशाली थे, वे दोनों मदकी धारा बहानेवाले मत्तगजेन्द्रकी भाँति रक्तसे नहा उठे थे—

तावुभौ वाहिनीमुख्यौ जातवैरौ तरस्विनौ।
स्थितौ क्षतजसिक्ताङ्गौ प्रभिन्नाविव कुञ्जरौ॥

(६।५८।४६)

वे दोनों सिंह और शार्दूलके समान विजय-के लिये चेष्टा कर रहे थे—

सिंहशार्दूलसदृशौ सिंहशार्दूलचेष्टितौ॥

(६।५८।४७)

प्रहस्तने नीलके ललाटमें मुसलसे घोर प्रहार किया। नीलका शरीर रक्तार्द्र हो गया, तब क्रुद्ध होकर नीलने एक विशाल शिला हाथमें लेकर मुसलयोधी निशाचर प्रहस्तके मस्तकपर दे मारी। परिणामस्वरूप प्रहस्तका मस्तक कई टुकड़ोंमें विभक्त हो गया और वह निष्प्राण हो गया। उसकी कान्ति, उसका बल, उसकी इन्द्रियाँ समाप्त हो गयीं। वह राक्षस छिन्नमूल-वृक्षकी भाँति धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ा—**'पपात सहसा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः'**॥

सेनापति प्रहस्तके मारे जानेपर उसकी सेना रणभूमिमें रुक नहीं सकी, जिस प्रकार बाँध टूट जानेपर नदीका पानी रुक नहीं पाता—

न शेकुः समवस्थातुं निहते वाहिनीपतौ।
सेतुबन्धं समासाद्य विशीर्णं सलिलं यथा॥

(६।५८।५८)

सेनापति प्रहस्तके वधके समाचारसे रावण क्लेशाक्रान्त हो गया। उसने कहा—शत्रुको कभी छोटा समझकर उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इन्द्रकी सेनाके नाश करनेमें समर्थ मेरे सेनापति प्रहस्तका हाथियों और सेवकोंके सहित वध हो गया। जिन्हें मैं अत्यन्त असमर्थ समझता था उन्हींके द्वारा मेरा बलाध्यक्ष मारा गया। अब मैं बिना विचार किये शत्रुओंके विनाश करनेके लिये और अपनी विजयके लिये स्वयं ही समराङ्गणमें जाऊँगा—

नावज्ञा रिपवे कार्या यैरिन्द्रबलसादनः।
सूदितः सैन्यपालो मे सानुयात्रः सकुञ्जरः॥

सोऽहं रिपुविनाशाय विजयायाविचारयन्।
स्वयमेव गमिष्यामि रणशीर्षं तदद्भुतम्॥

(६।५९।४-५)

रावणने अपनी विशाल सेनाको सुसज्जित करके युद्धके लिये प्रस्थान किया। उस विशाल सेनाको देखकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रने विभीषणसे पूछा—हे सखे! अनेक प्रकारकी ध्वजा-पताकाओं और छत्रोंसे युक्त प्रास, खड्ग-और शूल आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे संयुक्त अजेय और निडर वीरोंसे सुसेवित और विशालकाय महेन्द्र पर्वत-जैसे हाथियोंसे परिपूर्ण यह वाहिनी किसकी है!

नानापताकाध्वजछत्रजुष्टं
प्रासासिशूलायुधशस्त्रजुष्टम्।
कस्येदमक्षोभ्यमभीरुजुष्टं
सैन्यं महेन्द्रोपमनागजुष्टम्॥

(६।५९।१२)

श्रीरामजीकी जिज्ञासा सुनकर महामना विभीषण रावणकी सैनिक-शक्तिका परिचय देते हुए बोले—हे रघुनन्दन! यह हाथीकी पीठपर बैठा हुआ महाबली अकम्पन है, यह स्वयं नहीं काँपता है दूसरोंको कँपा देता है। यह रथपर स्थित सिंहध्वज उग्रदन्त इन्द्रजित् मेघनाद है, यह वरप्रधान है—'**स इन्द्रजिन्नामवरप्रधानः**' अर्थात् यह बलवान् तो है; परन्तु, वरदानके प्रभावसे अत्यन्त प्रबल हो गया है। इसी प्रकार श्रीविभीषणने अतिकाय, महोदर, पिशाच, त्रिशिरा, कुम्भ, निकुम्भ, नरान्तक आदि वीरोंका परिचय देकर रावणका विशेष परिचय दिया।

श्रीरामने कहा—अहो! राक्षसेश्वर रावण महातेजस्वी है यह सूर्यकी भाँति दुष्प्रेक्ष्य है।

प्रत्युवाच ततो रामो विभीषणमरिन्दमः।
अहो दीप्तमहातेजा रावणो राक्षसेश्वरः॥

(६।५९।२६)

जो शत्रुकी भी प्रशंसा करे, शत्रुका भी गुण-वर्णन करे वही श्रीरामका सच्चा भक्त है। सुन्दर-काण्डमें श्रीहनुमान्जीने भी रावणके सम्बन्धमें इसी प्रकार कहा है। इस महान् गुणको ही अनसूया कहते हैं। गुणमें भी दोषके आविष्कारको असूया कहते हैं—'**गुणेष्वपि दोषाविष्करणमसूया**' सद्गुणोंमें भी अवगुण न रहनेपर भी दोषका अविष्कार कर देना दुष्ट पुरुषका लक्षण है और अवगुणोंमें भी गुणका आविष्कार करना सन्त पुरुषका लक्षण है।

इस प्रकार कहकर महान् पराक्रमी श्रीराम-धनुष लेकर और उत्तम बाण निकालकर श्रीलक्ष्मणके साथ युद्धके लिये प्रस्तुत हो गये—

एवमुक्त्वा ततो रामो धनुरादाय वीर्यवान्।
लक्ष्मणानुचरस्तस्थौ समुद्धृत्य शरोत्तमम्॥

(६।५९।३२)

रावणने अपने साथ आये हुए प्रधान-प्रधान वीरोंको नगरकी रक्षाके लिये लौटा दिया। तदनन्तर जैसे महाझष—तिमिङ्गल सम्पूर्ण समुद्रको विक्षुब्ध कर देता है उसी प्रकार वानर सैन्यसागर-को रावण मथने लगा—विदारण करने लगा—

विसर्जयित्वा सचिवांस्ततस्तान्
गतेषु रक्षःसु यथानियोगम्।
व्यदारयद् वानरसागरौघं
महाझषः पूर्णमिवार्णवौघम्॥

(६।५९।३५)

रावणके बाणोंसे पीड़ित और भयभीत वीर वानर रावणके द्वारा प्रताड़ित होकर तीव्र स्वरमें चीत्कार करते हुए भूमिपर गिरने लगे। रावणके बाणोंसे आर्त्त अनेक वानर परम शरण्य श्रीरामजीकी शरणमें गये—

शाखामृगा रावणसायकार्ता
जग्मुः शरण्यं शरणं स्म रामम्॥

(६।५९।४५)

'शरण्य' कहनेका आशय यह है कि वानरोंको परम विश्वास है कि श्रीराम हमारी व्यथा दूर करेंगे। इनकी शरणमें जाना व्यर्थ नहीं होगा। वही हुआ, इनकी पुकार सुनते ही श्रीरामजी तत्काल चल पड़े—

ततो महात्मा स धनुर्धनुष्मा-
नादाय रामः सहसा जगाम।
तं लक्ष्मणः प्राञ्जलिरभ्युपेत्य
उवाच रामं परमार्थयुक्तम्॥

(६।५९।४६)

वानरोंके शरणागत होनेपर धनुर्धर-धनुर्युद्ध-समर्थ, महात्मा—शरणागतिके महत्त्वके ज्ञाता श्रीरामजी धनुष लेकर सेवकोंकी रक्षा करनेके लिये सहसा चल पड़े। उसी समय श्रीलक्ष्मणजी अपने आराध्य श्रीरामजीके सामने आकर हाथ जोड़कर परमार्थयुक्तवचन बोले। **'लक्ष्मणः'** कहनेका भाव **'श्रीरामकैङ्कर्यलक्ष्मीसम्पन्नः'** अर्थात् सम्प्रति श्रीलक्ष्मणके मनमें भगवान्के कैङ्कर्यकी सेवाकी प्रबल भावना है। वे चाहते हैं कि प्रभु विश्राम करें और मैं युद्ध करूँ। **'परमार्थयुक्तम्'** श्रीलक्ष्मणके वचनोंको परमार्थयुक्त कहनेका भाव यह है कि एक वचन तो होता है मात्र उपचारके लिये—सुनानेके लिये और दूसरा होता है हृदयसे कार्य करनेके लिये। श्रीलक्ष्मणके ये वचन औपचारिक नहीं हैं अपितु हार्दिक हैं। अथवा **'परमार्थयुक्तं परप्रयोजनयुक्तम्'** अर्थात् इन वचनोंमें जीवनका परम प्रयोजन सन्निहित है।

श्रीलक्ष्मणने कहा—हे प्रभो! इस दुरात्माके-दुष्टमनवाले रावणके वधके लिये तो मैं ही पर्याप्त हूँ। हे स्वामी! मुझे कृपापूर्वक आज्ञा दें, मैं इसका नाश करूँगा—

काममार्य सुपर्याप्तो वधायास्य दुरात्मनः।
विधमिष्याम्यहं चैतमनुजानीहि मां विभो॥

(६।५९।४७)

श्रीलक्ष्मणजीकी हार्दिक सद्भाव पूर्णवाणी सुनकर श्रीरामने कहा—अच्छा; लक्ष्मण जाओ। स्मरण रखना, रावण अद्भुत पराक्रमी है। तुम युद्धमें रावणका छिद्र देखना—उसकी असावधानी-पर दृष्टि रखना अथवा उसकी दुर्बलताओंसे लाभ उठाना। अपने छिद्रोंपर भी दृष्टि रखना—दुर्बलताओंका कहीं शत्रु लाभ न ले ले। समाहित हो करके—सावधान हो करके अपने चक्षुसे—चक्षुका अर्थ आँख है, दृष्टि है। भाव कि ज्ञानदृष्टिसे शत्रुके बलाबलको समझकर धनुषसे अपनी रक्षा करना—

तस्यच्छिद्राणि मार्गस्व स्वच्छिद्राणि च लक्षय।
चक्षुषा धनुषाऽऽत्मानं गोपायस्व समाहितः॥

(६।५९।५०)

सुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मणजीने श्रीरामजीका अनोखा वात्सल्यरस—सिञ्चित स्नेह प्राप्त करके, उनके हृदयसे लग करके, श्रीरामजीका पूजन करके, अभिवादन करके युद्धके लिये प्रस्थान कर दिया।

—श्रीहनुमान्जी रावणसे कहते हैं—हे दशानन! पाँच अङ्गुलियोंसे संयुक्त मेरी दक्षिण भुजा उठी हुई है। मेरी यह भुजा आज तुम्हारे शरीरमें बहुत दिनसे निवास करनेवाले जीवात्माको तुम्हारे शरीरसे भिन्न कर देगी अर्थात् मैं आज तुम्हें निष्प्राण कर दूँगा—

एष मे दक्षिणो बाहुः पञ्चशाखः समुद्यतः।
विधमिष्यति ते देहे भूतात्मानं चिरोषितम्॥

(६।५९।५६)

रावणने कहा—तुम मेरे शरीरपर प्रहार करो। तुम्हारा बलाबल जानकर फिर मैं तुम्हारा वध करूँगा। श्रीहनुमान्जीने कहा—अरे मूर्ख! अरे मिथ्याभिमानी! मेरा पराक्रम अभी तुझे जानना शेष है? स्मरण करो, मैंने तो पहले ही तुम्हारे पुत्र अक्ष कुमारका वध करके तुम्हें अपने बलसे परिचित करा दिया है—

रावणस्य वचः श्रुत्वा वायुसूनुर्वचोऽब्रवीत्।

प्रहतं हि मया पूर्वमक्षं तव सुतं स्मर॥

(६।५९।५९)

रावणने यह सुनकर हनुमान्‌जीके वक्षःस्थलमें एक तमाचा मारा। श्रीहनुमान्‌जीने भी उठकर एक तमाचा मारा। इस प्रकार रणभूमिमें रावणको थप्पड़ खाते देखकर ऋषि, वानर, सिद्ध, देवता और असुर सभी हर्षध्वनि करने लगे—

सङ्ग्रामे तं तथा दृष्ट्वा रावणं तलताडितम्॥
ऋषयो वानराः सिद्धा नेदुर्देवाः सहाऽसुरैः।

(६।५९।६३-६४)

रावणने सँभलकर कहा—हे वानर! साधु-साधु! बलकी दृष्टिसे तुम मेरे श्लाघ्य—सुप्रशंस्य रिपु हो—

'साधु वानर वीर्येण श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः'।

रावणकी श्लाघा सुनकर श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे रावण! मेरे मारनेके बाद भी तुम अभी जीवित हो एतावता मेरे बल और पौरुषको धिक्कार है—

मुरुछा गै बहोरि सो जागा।
कपि बल बिपुल सराहन लागा॥
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही।
जौ तैं जिअत रहेसि सुरद्रोही॥

धिगस्तु मम वीर्यस्य यत्त्वं जीवसि रावण।

(६।५९।६६)

तदनन्तर रावण सेनापति नीलसे जा भिड़ा। दोनोंमें घमासान युद्ध हुआ। नील लघिमासिद्धिके द्वारा छोटा रूप धारण करके रावणके ध्वजाके शिखरपर चढ़ गये। अपनी ध्वजापर पावकनन्दन नीलको सानन्द विराजमान देखकर रावण क्रोधसे जल उठा और नील उच्चस्वरसे गर्जना करने लगे—

पावकात्मजमालोक्य ध्वजाग्रे समवस्थितम्।
जज्वाल रावणः क्रोधात् ततो नीलो ननाद च॥

(६।५९।८०)

सेनापति नील लघिमा सिद्धिका आश्रय लेकर कभी रावणकी ध्वजापर, कभी धनुषपर और कभी मुकुटपर विराजमान हो जाते। नीलका यह चरित्र देखकर श्रीराम—लक्ष्मण और हनुमान्‌जीको भी परम विस्मय हुआ—

ध्वजाग्रे धनुषश्चाग्रे किरीटाग्रे च तं हरिम्।
लक्ष्मणोऽथ हनूमांश्च रामश्चापि सुविस्मिताः॥

(६।५९।८१)

राक्षसेश्वर रावणको भी नीलका यह लाघव देखकर महान् आश्चर्य हुआ— **'रावणोऽपि महातेजाः कपिलाघवविस्मितः'**। राक्षसेश्वर रावणने कहा—हे नील! तुम उच्चकोटिकी मायाके साथ ही महान् लाघवसंयुक्त हो—

ततोऽब्रवीन्महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः।
कपे लाघवयुक्तोऽसि मायया परया सह॥

(६।५९।८६)

रावणने नीलके वधके लिये आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया। उसके प्रहारसे नील सहसा भूमिपर गिर पड़े, परन्तु अपने पिता अग्निदेवकी महिमासे और अपने तेजके प्रभावसे उनके प्राण नहीं निकले—

पितृमाहात्म्यसंयोगादात्मनश्चापि तेजसा।
जानुभ्यामपतद् भूमौ न तु प्राणैर्वियुज्यत॥

(६।५९।९१)

नीलको संज्ञाशून्य देखकर रणके लिये समुत्सुक—उत्साहित रावणने सुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मणजीकी ओर अपने रथको मोड़ दिया—

विसंज्ञं वानरं दृष्ट्वा दशग्रीवो रणोत्सुकः।
रथेनाम्बुदनादेन सौमित्रिमभिदुद्रुवे॥

(६।५९।९२)

परम शक्तिसम्पन्न श्रीलक्ष्मणने कहा—हे रावण! समझ लो अब मैं आ गया। अब तुम्हें वानरोंके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये—

अवेहि मामद्य निशाचरेन्द्र
न वानरांस्त्वं प्रतियोद्धुमर्हसि॥

(६।५९।९४)

रे खल का मारसि कपि भालू।

मोहि बिलोकु तोर मैं कालू॥

रावणने कहा—हे लक्ष्मण! अब तुम्हारा शीघ्र ही अन्त होनेवाला है, एतावता तुम्हारी बुद्धि विपरीत हो गयी है। सम्प्रति तुम मेरे बाणोंसे व्यथित हो करके इसी समय यमलोककी यात्रा करोगे।

श्रीलक्ष्मणको रावणकी बात सुनकर आश्चर्य नहीं हुआ। श्रीसुमित्राकुमारने कहा—हे पापिश्रेष्ठ! जिस प्रकार तुम मिथ्या आत्मश्लाघा कर रहे हो उस प्रकार महान् प्रभावशाली नहीं करते हैं। तुम्हारे पापने तुम्हारी बुद्धि विकृत कर दी है एतावता तुम अपनी मिथ्या प्रशंसा कर रहे हो—**'पापकृद्वरिष्ठत्वात् त्वं विकत्थसे'**।

तमाह सौमित्रिरविस्मयानो
गर्जन्तमुद्वृत्तशिताग्रदंष्ट्रम् ।
राजन्न गर्जन्ति महाप्रभावा
विकत्थसे पापकृतां वरिष्ठ॥

(६।५९।९७)

श्रीलक्ष्मण और रावणमें युद्ध हो रहा था, श्रीलक्ष्मणने उसका धनुष काट गिराया। अपने प्राणको सङ्कटमें देखकर राक्षसराष्ट्रनाथ रावणने ब्रह्माकी दी हुई परम शक्तिशाली प्रज्वलन्ती शक्ति बड़े वेगसे श्रीलक्ष्मणके ऊपर छोड़ दी—

चिक्षेप शक्तिं तरसा ज्वलन्तीं
सौमित्रये राक्षसराष्ट्रनाथः॥

(६।५९।१०८)

परम शक्तिशाली श्रीलक्ष्मण उस शक्तिशाली शक्तिसे आहत होकर भूमिपर गिर पड़े। रावण उन्हें अपनी दोनों भुजाओंसे उठानेका असफल प्रयास करने लगा।

रावणका असफल प्रयास देखकर भावुक हृदय आदि कवि महर्षि श्रीवाल्मीकिजी अपनी टिप्पणी लिख रहे हैं—जिस रावणमें देवताओंके सहित हिमाचल, मन्दराचल, कनकाचल अथवा त्रैलोक्यको भुजाओंके द्वारा उठा लेनेकी शक्ति थी, वह श्रीभरतके लघु भ्राता श्रीलक्ष्मणको नहीं उठा सका—

हिमवान् मन्दरो मेरुस्त्रैलोक्यं वा सहामरैः।
शक्यं भुजाभ्यामुद्धर्त्तुं न शक्यो भरतानुजः॥

(६।५९।१११)

सो ब्रह्म दत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही।
पर्‍यो बीर बिकल उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही॥
ब्रह्मांड भवन बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुअन धनी॥

(श्रीरामचरितमानस ६। छं० ८३)

श्रीहनुमान्‌जीने दूरसे देखा कि श्रीलक्ष्मण धराशायी हैं और राक्षस रावण उन्हें उठानेका प्रयास कर रहा है। यह देखते ही वे बड़े वेगसे दौड़े और रावणको एक मुक्का मार करके, संज्ञाहीन करके श्रीलक्ष्मणको भुजाओंसे उठा करके श्रीरामके पास ले आये।

महर्षि वाल्मीकि पुनः गद्गद होकर अपनी टिप्पणी लिख रहे हैं—

आनयद् राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम्।
वायुसूनोः सुहृत्त्वेन भक्त्या परमया च सः।
शत्रूणामप्यकम्प्योऽपि लघुत्वमगमत् कपेः॥

(६।५९।११९)

पहले श्रीलक्ष्मणजीका अकम्प्यत्व कहकर अब उन्हीं श्रीलक्ष्मणका श्रीहनुमान्‌जीके द्वारा श्रीरामजीके समीप ले आना कैसे कहा गया? श्रीहनुमान्‌जीका हृदय बहुत सुन्दर था, भगवान्‌के सर्वथा अनुकूल था। हृदयका आनुकूल्य ही उठानेके लिये पर्याप्त है, भक्ति तो अधिक हो गयी। श्रीलक्ष्मण शत्रुओंके लिये अप्रकम्प्य थे—उनसे हिलाये-डुलाये भी नहीं जा सके। यहाँ **'शत्रूणाम्'** में बहुवचनका भाव यह है कि रावणसे जब श्रीलक्ष्मणजी नहीं उठे तब उसके परिकर भी उठानेमें लग गये, फिर भी लक्ष्मणजी

नहीं उठ सके थे। परन्तु अकेले श्रीहनुमान्‌जीके लिये हलके हो गये। भाव यह है कि वे शत्रुओंके लिये दुष्प्राप्य हैं और मित्रोंके लिये सुप्राप्य हैं—**'ननु पूर्वं हिमवानित्यादिना लक्ष्मणस्याकम्प्यत्वमुक्तं, तादृशस्य कपिना रामसमीपप्रापणं कथमित्याशंक्य विरोधं परिहरति। सुहृत्वेन शोभनहृदयत्वेन अनुकूलहृदयत्वेनेत्यर्थः। हृदयानुकूल्यमेवालं भक्तिस्त्वधिकेत्याह—भक्त्या परमयाचेति। च शब्दोऽन्वाचये। सः लक्ष्मणशत्रूणां रावणस्य तत्परिकराणां चेत्यर्थः। अप्रकम्प्योऽपि कम्पितुमशक्योऽपि। कपेः कपेरपि हनुमत एकस्य लघुत्वमगमत् अनेन लघुत्वस्य बुद्धिपूर्वकत्वमुक्तम्। शत्रुमित्रयोर्दुष्प्रापत्वसुप्रापत्वे स्वरूपयुक्तेऽस्येति भावः'।**

थोड़ी ही देरमें श्रीलक्ष्मणजी पुनः अपने भक्तस्वरूपका चिन्तन करके होशमें आ गये।

इधर रावणने वानरसेनाके अनेक वीरोंको मार गिराया। वानरोंका विनाश देखकर श्रीरामजी स्वयं रावणसे युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत हुए। उस समय श्रीहनुमान्‌जीने प्रभुके निकट आकर निवेदन किया—हे करुणामय! जिस प्रकार श्रीविष्णुभगवान्‌ने विनतानन्दन गरुड़को सौभाग्यशाली बनाया। उनको वाहनके रूपमें स्वीकार करके उनके कन्धोंपर आरूढ़ होकर दैत्योंका संहार किया। उसी प्रकार आप मुझे भी सौभाग्यशाली बनावें। मुझे भी सेवा करनेका अवसर प्रदान करें। मेरी पीठपर आरूढ़ होकर इस राक्षस रावणको दण्ड दें। कृपालु श्रीरघुनन्दनने श्रीहनुमान्‌जी-की प्रार्थना स्वीकार कर ली और सहसा महाकपि श्रीहनुमान्‌जीकी पीठपर चढ़ गये—

अथैनमनुसङ्क्रम्य हनूमान् वाक्यमब्रवीत्।
मम पृष्ठं समारुह्य राक्षसं शास्तुमर्हसि॥
तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यं वायुपुत्रेण भाषितम्।
अथारुरोह सहसा हनूमन्तं महाकपिम्।

(६। ५९। १२४—१२६)

भगवान् श्रीरामका और रावणका युद्ध आरम्भ हो गया। रावणने कालाग्नि शिखाके समान सुदीप्त बाणोंके द्वारा श्रीरामजीके वाहनस्थानापन्न श्रीहनुमान्‌-जीको अत्यन्त घायल कर दिया। यह देखकर महातेजस्वी श्रीरामजी अत्यन्त कुपित हो गये—

ततो रामो महातेजा रावणेन कृतव्रणम्।
दृष्ट्वा प्लवगशार्दूलं क्रोधस्य वशमेयिवान्॥

(६। ५९। १३६)

क्रुद्ध होकर श्रीरामजीने आक्रमण करके पहिये, घोड़े, ध्वज, छत्र, पताका, सारथि, अशनि, शूल और खड्गसहित उसके रथको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट दिया—

तस्याभिसङ्क्रम्य रथं सचक्रं
साश्वध्वजच्छत्रमहापताकम्।
स सारथिं साशनिशूलखड्गं
रामः प्रचिच्छेद शितैः शराग्रैः॥

(६। ५९। १३७)

श्रीरामजीने रावणके वक्षःस्थलमें बाणसे वेगपूर्वक प्रहार किया। रावणके हाथसे धनुष छूटकर गिर पड़ा। प्रभुने उसका मुकुट भी काट डाला। रावण श्रीहीन हो गया, दीन हो गया, निस्तेज हो गया। उसकी दीन-अवस्थाको देखकर समराङ्गणमें श्रीरामजीने कहा—हे रावण आज तुमने भयङ्कर कर्म किया है, मेरी सेनाके प्रधान-प्रधान वीरोंको मार डाला है। इतनेपर भी तुम्हें परिश्रान्त, परिक्लान्त, परिभ्रान्त जानकर अपने बाणोंके द्वारा तुम्हें नहीं मार रहा हूँ। हे राक्षसेन्द्र! मैं जानता हूँ कि तुम युद्धसे अत्यन्त व्यथित हो, अतः मैं तुमसे कह रहा हूँ—जाओ, लङ्कामें प्रवेश करके कुछ देर विश्राम कर लो। तत्पश्चात् तुम अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो करके सन्नद्ध हो

करके रथपर चढ़कर आना। उस समय तुम मेरा बल देखना—

कृतं त्वया कर्म महत्सुभीमं हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम्।
तस्मात्परिश्रान्त इति व्यवस्य न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि॥
प्रयाहि जानामि रणार्दितस्त्वं प्रविश्य रात्रिंचरराज लङ्काम्।
आश्वस्य निर्याहि रथी च धन्वी तदा बलं प्रेक्ष्यसि मे रथस्थः॥

(६।५९।१४२-१४३)

संसारके इतिहासमें यह एक अनोखा ही उदाहरण है। शत्रुको सब तरहसे वशंगत करके, पराजित करके छोड़ दिया कि जाओ थक गये हो विश्राम करो। यह श्रीरामके रामत्वका, उनके उदार चरित्रका, उनके विशाल हृदयका अनोखा उदाहरण है।

कृपामय श्रीरामजीके इस प्रकार कहनेपर रावण सहसा लङ्कामें प्रविष्ट हो गया, उसकी प्रसन्नता समाप्त हो गयी थी, उसका दर्प—घमण्ड खतम हो गया था। धनुष कट गया था, घोड़े तथा सारथी भी मार डाले गये थे, उसका महान् किरीट भी भग्न हो गया था और वह स्वयं भी श्रीरामजीके तीक्ष्ण बाणोंसे टूट चुका था—

स एवमुक्तो हतदर्पहर्षो निकृत्तचापः स हताश्वसूतः।
शरार्दितो भग्नमहाकिरीटो विवेश लङ्कां सहसा स्म राजा॥

(६।५९।१४४)

रावणके लङ्का चले जानेपर श्रीलक्ष्मणके साथ करुणामय श्रीरामजीने समराङ्गणमें जाकर अपने वानर वीरोंके शरीरमें चुभे हुए बाण निकालकर उनको स्वस्थ किया—

तस्मिन् प्रविष्टे रजनीचरेन्द्रे महाबले दानवदेवशत्रौ।
हरीन् विशल्यान् सहलक्ष्मणेन चकार रामः परमाहवाग्रे॥

(६।५९।१४५)

श्रीरामजीके बाणोंसे और भयसे व्यथित होकर जब रावण लङ्कामें पहुँचा तब उसका घमण्ड नष्ट हो गया था। उसकी समस्त इन्द्रियाँ व्याकुल थीं—

सः प्रविश्य पुरीं लङ्कां रामबाणभयार्दितः।
भग्नदर्पस्तदा राजा बभूव व्यथितेन्द्रियः॥

(६।६०।१)

श्रीरामजीके बाणोंकी याद करके रावणके मनमें अत्यन्त व्यथा हुई—

स्मरन् राघवबाणानां विव्यथे राक्षसेश्वरः॥

(६।६०।३)

रावणको बीते हुए दिन याद आ रहे थे। अपने पाप याद आ रहे थे। लोगोंके शाप याद आ रहे थे। श्रीरामके बाणोंकी कसक याद आ रही थी। श्रीरामजीकी कृपालुता याद आ रही थी और अपनी हार याद आ रही थी।

रावणने अपने सेवकोंको बुलाकर आज्ञा दी कि जाकर कुम्भकर्णको जगाओ। इस समय यदि वह मेरी सहायता नहीं करेगा तो उससे मेरा क्या प्रयोजन है?

कुम्भकर्णके सोनेकी गुफा अलग ही थी। वह रावणके राजभवनसे अलग हटकर थी। वह चारों ओरसे एक-एक योजनकी थी, वह पुष्प आदिसे सर्वथा सुगन्धित रहती थी। पहले तो एक राक्षस उस गुफामें घुसा, परन्तु वह कुम्भकर्णकी श्वासके वेगसे सहसा पीछे ढकेल दिया गया। फिर कई लोग मिलकर आपसमें एक-दूसरेको पकड़कर धीरे-धीरे पैर जमाते हुए उसके पास पहुँचे—

कुम्भकर्णस्य निःश्वासादवधूता महाबलाः।
प्रतिष्ठमानाः कृच्छ्रेण यत्नात्प्रविविशुर्गुहाम्॥

(६।६०।२५)

कुम्भकर्णके तेज एवं गम्भीर खर्राटेसे लोग अवधूत हो जाते थे। आगे नहीं बढ़ पाते थे।

उसको जगानेके लिये पहले तो चन्दनका लेप किया गया, परन्तु वह नहीं जगा। फिर शङ्ख, दुन्दुभि आदि बाजे बजे, परन्तु वह भी व्यर्थ हो गया। फिर उसके बालोंको नोंचा गया,

फिर भी वह टस-से-मस नहीं हुआ, फिर किसीने अपने दाँतोंसे उसके कानोंको काटा, परन्तु वह फिर भी नहीं जगा। कुछ राक्षसोंने उसके दोनों कानोंमें सौ घड़े पानी डाल दिये तो भी महानिद्रा वशंगत कुम्भकर्ण टस-से-मस नहीं हुआ।

अन्ये भेरीः समाजघ्नुरन्ये चक्रुर्महास्वनम्।
केशानन्ये प्रलुलुपुः कर्णानन्ये दशन्ति च॥
उदकुम्भशतानन्ये समसिञ्चन्त कर्णयोः।
न कुम्भकर्णः पस्पन्दे महानिद्रावशं गतः॥

(६।६०।५१-५२)

दूसरे बलवान् राक्षसोंने काँटेदार मुद्गर हाथमें लेकर उन्हें उसके मस्तक, छाती तथा अन्य अङ्गोंपर गिराये परन्तु वह नहीं जगा। अन्तमें जब हजारों हाथी उसके शरीरपर भगाये गये तब वह अँगड़ाई तथा जमुहाई लेता हुआ जगा। नींदसे जगे हुए कुम्भकर्णका वह रूप प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंके संहारकी इच्छा रखनेवाले कालके समान जान पड़ता था—

रूपमुत्तिष्ठतस्तस्य कुम्भकर्णस्य तद् बभौ।
युगान्ते सर्वभूतानि कालस्येव दिधक्षतः॥

(६।६०।६०)

जगकर उसने हजारों पशु खा डाले, हजारों घड़े मदिरा पी गया, तब होशमें आकर पूछा—आपलोगोंने इतना सम्मान करके—बाइज्जत मुझे क्यों जगाया है? मेरे भैय्या श्रीरावणजी कुशलसे तो हैं? कोई भय तो नहीं आ गया है—

किमर्थमहमादृत्य भवद्भिः प्रतिबोधितः।
कच्चित् सुकुशलं राज्ञो भयं वा नेह किञ्चन॥

(६।६०।६७)

राक्षसोंने समस्त समाचार सुना दिया और यह भी कहा कि आपको राक्षसेश्वर रावणने बुलाया है—

द्रष्टुं त्वां काङ्क्षते राजा सर्वराक्षसपुङ्गवः।
गमने क्रियतां बुद्धिर्भ्रातरं सम्प्रहर्षय॥

(६।६०।८९)

कुम्भकर्णकी शयनस्थली राजमहलसे बाहर थी, इसलिये जब वह रावणके पास जाने लगा तब वानरोंमें भगदड़ मच गयी—‘**यं दृष्ट्वा वानराः सर्वे विद्रवन्ति ततस्ततः**’।

श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणसे पूछा—इतने भयङ्कर शरीरवाला यह कौन है? श्रीविभीषणने कहा—हे भगवन्! जिसने युद्धमें यमराज और इन्द्रको भी पराजित किया था; यह वही विश्रवामुनिका प्रतापवान् पुत्र कुम्भकर्ण है। उसके समान लम्बा अन्य कोई राक्षस नहीं है—

येन वैवश्वतो युद्धे वासवश्च पराजितः।
सैष विश्रवसः पुत्रः कुम्भकर्णः प्रतापवान्।
अस्य प्रमाणसदृशो राक्षसोऽन्यो न विद्यते॥

(६।६१।९)

इस महात्मा—महाकाय राक्षसने जन्म लेते ही क्षुधार्त्त हो करके कई हजार प्रजाजनोंको खा डाला था—

बालेन जातमात्रेण क्षुधार्तेन महात्मना।
भक्षितानि सहस्राणि प्रजानां सुबहून्यपि॥

(६।६१।१३)

कुम्भकर्णने रावणके महलमें जाकर उसके चरणोंमें प्रणाम करके पूछा—हे भ्रातः! मुझसे क्या कार्य है? रावणने बड़ी प्रसन्नतासे उसे हृदयसे लगा लिया। उसके बाद दिव्य सिंहासनपर बैठकर क्रोधसे आँखें लाल करके रावणसे पूछा—हे राजन्! किसलिये बड़े आदरके साथ मुझे जगाया है? रावणने आत्मीयतापूर्वक समस्त समाचार सुना दिया।

रावणने कहा—हे भाई! इस समय लङ्कामें वानररूपी जलका एक समुद्र और लहरा रहा है। हमारे प्रधान-प्रधान राक्षसोंको वानरोंने युद्धमें मार डाला—

सेतुना सुखमागत्य वानरैकार्णवं कृतम्।
ये राक्षसा मुख्यतमा हतास्ते वानरैर्युधि॥

(६।६२।१६)

हमारा सारा ख़ज़ाना खाली हो गया है, अतः तुम मुझपर कृपा करके लङ्काकी रक्षा करो। हे भाई! अब तो लङ्कामें मात्र बालक और वृद्ध ही बचे हैं—

सर्वक्षपितकोशं च स त्वमभ्युपपद्य माम्।
त्रायस्वेमां पुरीं लङ्कां बालवृद्धावशेषिताम्॥

(६। ६२। १९)

कुम्भकर्णने रावणको अनेक प्रकारसे समझाया और यह भी कहा—हे भ्रातः! तुम्हारी पत्नी मन्दोदरी और मेरे प्रिय अनुज विभीषणने पहले तुमसे जो कहा था वही हमारे लिये हितकर था। वैसे तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा करो—

यदुक्तमिह ते पूर्वं प्रियया मेऽनुजेन च।
तदेव नो हितं वाक्यं यथेच्छसि तथा कुरु॥

(६। ६३। २१)

कुम्भकर्णकी बात सुनकर रावणने कुपित होकर कहा—हे कुम्भकर्ण! तुम सम्मान्य गुरु और आचार्यकी तरह मेरा अनुशासन क्यों कर रहे हो—मुझे उपदेश क्यों दे रहे हो? इस प्रकार व्यर्थके वाक्श्रम करनेसे क्या लाभ होगा? इस समय जो उचित हो वह करो—

मान्यो गुरुरिवाचार्यः किं मां त्वमनुशाससे।
किमेवं वाक्श्रमं कृत्वा यद्युक्तं तद् विधीयताम्॥

(६। ६३। २३)

कुम्भकर्णने कहा—हे भ्रातः! मैंने बन्धुभाव और भ्रातृभावसे जो उचित था वही कहा है। यह मेरा शरीर तुम्हारे द्वारा परिपालित है, इसे मैं तुम्हारे लिये बलिदान कर दूँगा। अब आप आनन्द करिये मैं श्रीरामसे युद्ध करने जा रहा हूँ।

कुम्भकर्णका प्रसङ्ग चल ही रहा था कि महोदरने रावणकी चाटुकारिता करते हुए कहा—हे कुम्भकर्ण! हमारे महाराजा रावण नीति और अनीतिको नहीं जानते हैं, ऐसी बात नहीं है। तुम केवल अपने बचपनके कारण धृष्टतापूर्वक इस प्रकार कह रहे हो—

नहि राजा न जानीते कुम्भकर्ण नयानयौ।
त्वं तु कैशोरकाद् धृष्टः केवलं वक्तुमिच्छसि॥

(६। ६४। ३)

एक पूरा सर्ग महोदरकी चापलूसीसे भरा है। कुम्भकर्णने महोदरकी चिकनी-चुपड़ी बातोंका विरोध करते हुए कहा—हे महोदर! जो भीरु, मूर्ख और व्यर्थ ही अपनेको पण्डित माननेवाले होंगे, उन्हीं राजाओंको तुम्हारे द्वारा कही जानेवाली ये चिकनी-चुपड़ी बातें सदा अच्छी लगेंगी—

विक्लवानां ह्यबुद्धीनां राज्ञां पण्डितमानिनाम्।
रोचते त्वद्वचो नित्यं कथ्यमानं महोदर॥

(६। ६५। ५)

राक्षसराज रावणने हँसते हुए कुम्भकर्णसे कहा—हे कुम्भकर्ण! मेरे स्वजनोंमें सौहार्द्र और बलकी दृष्टिसे कोई भी तुम्हारे समान नहीं है। तुम शत्रुओंका वध करनेके लिये और विजय प्राप्तिके लिये युद्ध-भूमिमें जाओ—

कश्चिन्मे त्वत्समो नास्ति सौहृदेन बलेन च।
गच्छ शत्रुवधाय त्वं कुम्भकर्ण जयाय च॥

(६। ६५। ११)

कुम्भकर्ण अपने भाईको अपने हृदयसे लगाकर उसकी प्रदक्षिणा करके उस महाबलवान् वीरने रावणको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और युद्धके लिये प्रस्थान कर दिया—

भ्रातरं सम्परिष्वज्य कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्।
प्रणम्य शिरसा तस्मै प्रतस्थे स महाबलः॥

(६। ६५। ३२)

कुम्भकर्णने बड़ा उग्र स्वरूप धारण किया, जिसे देखते ही डर लगता था। उस समय वह छः सौ धनुषके समान विस्तृत और सौ धनुषके समान ऊँचा हो गया। उसके दोनों नेत्र बैलगाड़ीके पहियोंके समान ज्ञात होते थे, वह विशाल पर्वतके समान भयङ्कर दिखायी देता था—

धनुःशतपरीणाहः स षट्शतसमुच्छ्रितः।

रौद्रः शकटचक्राक्षो महापर्वतसन्निभः॥

(६। ६५। ४१)

कुम्भकर्णके विशाल एवं भयंकर शरीरको देखकर भगदड़ मच गयी। बड़े-बड़े वीर वानर भी भागने लग गये। उन सबको भागते देखकर युवराज कुमार अङ्गदने नल, नील, गवाक्ष और महाबली कुमुदको सम्बोधित करके कहा—हे वानरवीरो! आप साधारण वानर नहीं हैं, आपने उत्तम कुलमें जन्म लिया है, आपके अलौकिक पराक्रम हैं। उनको विस्मृत करके आपलोग प्राकृत वानरोंकी तरह कहाँ भागे जा रहे हो?

आत्मनस्तानि विस्मृत्य वीर्याण्यभिजनानि च।
क्व गच्छत भयत्रस्ताः प्राकृता हरयो यथा॥

(६। ६६। ५)

हे सौम्य स्वभाववालो! अच्छा होगा कि तुम लौट आओ। क्यों जान बचानेके फेरमें पड़े हो? यह राक्षस हमारे साथ युद्ध करनेकी शक्ति नहीं रखता है। यह तो इसकी बड़ी भारी विभीषिका है—इसने मायासे विशाल रूप धारण करके तुम्हें भयत्रस्त करनेके लिये व्यर्थ घटाटोप फैला रखा है—

साधु सौम्या निवर्तध्वं किं प्राणान् परिरक्षथ।
नालं युद्धाय वै रक्षो महतीयं विभीषिका॥

(६। ६६। ६)

हे वानरो! यदि युद्धमें हमने शत्रुको मार डाला तो उत्तम कीर्ति मिलेगी और यदि स्वयं मारे गये तो हम वीरलोकके वैभवका उपभोग करेंगे—

अवाप्नुयामः कीर्तिं वा निहत्वा शत्रुमाहवे।
निहता वीरलोकस्य भोक्ष्यामो वसु वानराः॥

(६। ६६। २५)

श्रीअङ्गदके उद्बोधक वचनोंको सुनकर वे सब विशालकाय वानर मरने-मारनेका निश्चय करके युद्ध करनेकी इच्छासे लौट आये।

ते निवृत्ता महाकायाः श्रुत्वाङ्गदवचस्तदा।
नैष्ठिकीं बुद्धिमास्थाय सर्वे सङ्ग्रामकाङ्क्षिणः॥

(६। ६७। १)

उन महाकाय वानरोंने वृक्ष तथा बड़े-बड़े पर्वत-शिखरोंको लेकर तत्काल कुम्भकर्णपर धावा किया—

अथ वृक्षान् महाकायाः सानूनि सुमहान्ति च।
वानरास्तूर्णमुद्यम्य कुम्भकर्णमभिद्रवन्॥

(६। ६७। ४)

कुम्भकर्णने भी गदा लेकर भयङ्कर युद्ध किया। परिणामस्वरूप उसकी मारसे आठ हजार सात सौ वानर धराशायी हो गये—

शतानि सप्त चाष्टौ च सहस्राणि च वानराः।
प्रकीर्णाः शेरते भूमौ कुम्भकर्णेन ताडिताः॥

(६। ६७। ६)

इसके अनन्तर श्रीसुग्रीव और कुम्भकर्णका भयङ्कर युद्ध हुआ। अन्तमें कुम्भकर्णने विद्युत्की भाँति सुप्रकाशित शूल सुग्रीव-वधके लिये चलाया, श्रीहनुमान्‌जीने उस शूलको उछलकर दोनों हाथोंसे पकड़कर वेगपूर्वक तोड़ डाला—

तत्कुम्भकर्णस्य भुजप्रणुन्नं
शूलं शितं काञ्चनधामयष्टिम्।
क्षिप्रं समुत्पत्य निगृह्य दोर्भ्यां
बभञ्ज वेगेन सुतोऽनिलस्य॥

(६। ६७। ६२)

उस शूलके टूटनेसे वानरोंमें प्रसन्नता छा गयी, परन्तु कुम्भकर्ण भयसे प्रकम्पित हो गया। वानरवीर बार-बार सिंहनाद करने लगे। उन सब लोगोंने श्रीहनुमान्‌जीका सम्मान किया और उनकी सुप्रशंसा करने लगे—

बभूवाथ परित्रस्तो राक्षसो विमुखोऽभवत्।
सिंहनादं च ते चक्रुः प्रहृष्टा वनगोचराः।
मारुतिं पूजयाञ्चक्रुर्दृष्ट्वा शूलं तथागतम्॥

(६। ६७। ६५)

कुम्भकर्णने एक विशाल शैलशृङ्ग लेकर

श्रीसुग्रीवके ऊपर फेंका, परिणामस्वरूप श्रीसुग्रीव संज्ञाशून्य हो गये और सङ्ग्रामभूमिमें गिर पड़े। उन्हें इस स्थितिमें देखकर राक्षसोंको बड़ी खुशी हुई और वे समराङ्गणमें सिंहनाद करने लगे—

स शैलशृङ्गाभिहतो विसंज्ञः
पपात भूमौ युधि वानरेन्द्रः।
तं वीक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं
नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः॥

(६। ६७। ६७)

कुम्भकर्ण मूर्च्छित सुग्रीवको अपनी काँखमें दबाकर लङ्का ले चला। उसका भाव यह था कि रावणसे कहूँगा कि हे भ्रातः! इसके बड़े भाईने आपको काँखमें दबाया था और उसके छोटे भाईको आपके छोटे भाईने—मैंने काँखमें दबा लिया—इस प्रकार मैंने आपके अपमानका बदला ले लिया। अथवा, सुग्रीवके मरनेपर रामजी स्वयं समाप्त हो जायँगे और सारी वानरी सेना मारी जायगी—

ततस्तमादाय तदा स मेने
हरीन्द्रमिन्द्रोपममिन्द्रवीर्यः।
अस्मिन् हते सर्वमिदं हतं स्यात्
सराघवं सैन्यमितीन्द्रशत्रुः॥

(६। ६७। ७१)

जब कुम्भकर्ण चला तो राक्षस-राक्षसियोंने उसपर पुष्प, लावा, सुगन्धित जल आदिकी वर्षा की। उसके परिणामस्वरूप और राजमार्गकी शीतल वायुके प्रभावसे सुग्रीव धीरे-धीरे होशमें आ गये। तत्पश्चात् सुग्रीवने बड़ी तेजीसे दोनों कान तथा दाँतोंसे नाक काट ली और चरणोंसे उसकी पसली तोड़ डाली—

ततः कराग्रैः सहसा समेत्य
राजा हरीणाममरेन्द्रशत्रोः।
खरैश्च कर्णौ दशनैश्च नासां
ददंश पादैर्विददार पार्श्वौ॥

(६। ६७। ८६)

बीचमें उसको भूख लगी, वह रक्त तथा मांसके लोभसे वानरों और भालुओंको, साथ-ही-साथ राक्षसों और पिशाचोंको भी खाने लगा—

बुभुक्षितः शोणितमांसगृध्नुः
प्रविश्य तद्वानरसैन्यमुग्रम्।
चखाद रक्षांसि हरीन् पिशाचा-
न्नृक्षांश्च मोहाद् युधि कुम्भकर्णः॥

(६। ६७। ९४)

तदनन्तर परबलामर्दी सुमित्राकुमार श्रीलक्ष्मण-कुमार क्रुद्ध होकर उससे युद्ध करने लगे—

तस्मिन् काले सुमित्रायाः पुत्रः परबलार्दनः।
चकार लक्ष्मणः क्रुद्धो युद्धं परपुरञ्जयः॥

(६। ६७। १००)

युद्धके मध्यमें कुम्भकर्णने श्रीलक्ष्मणसे कहा—हे सुमित्रानन्दसंवर्द्धन! आपने अपने पराक्रमसे मुझे आज बालक होकर भी सन्तुष्ट कर दिया है। अब मैं आपकी आज्ञा लेकर रघुनन्दन श्रीरामके पास जाना चाहता हूँ—

अद्य त्वयाहं सौमित्रे बालेनापि पराक्रमैः।
तोषितो गन्तुमिच्छामि त्वामनुज्ञाप्य राघवम्॥

६। ६७। १०९)

अब मैं केवल श्रीरामको ही मारना चाहता हूँ, जिनके मारनेपर शत्रुसेना स्वयं ही समाप्त हो जायगी—

यत्तु वीर्यबलोत्साहैस्तोषितोऽहं रणे त्वया।
राममेवैकमिच्छामि हन्तुं यस्मिन्हते हतम्॥

(६। ६७। ११०)

इस प्रसङ्गका अध्ययन सूक्ष्म दृष्टिसे करना आवश्यक है। अनेक ग्रन्थोंसे यह सुप्रमाणित है कि कुम्भकर्णकी श्रीरामके प्रति भगवद्बुद्धि थी। युद्धभूमिमें भी उसके आनेकी एक विशेष दृष्टि है कि इसी व्याजसे पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीरामका दर्शन करूँगा और उनके बाणोंसे उनका दर्शन करते-करते प्राण-त्याग करके सद्गति प्राप्त करूँगा। जब वह श्रीलक्ष्मणसे युद्ध कर रहा था तब उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि ये तो महान् पराक्रमी हैं, ये

मुझे मार डालेंगे, मैं श्रीरामदर्शनसे वञ्चित रह जाऊँगा; अतः उसने श्रीलक्ष्मणसे प्रार्थना की कि मुझे श्रीरामके पास जाने दो। अथवा श्रीलक्ष्मणजी जीवाचार्य हैं, आचार्यके द्वारा ही भगवच्छरणागति होती है, आचार्यकी कृपासे भगवद्दर्शन प्रत्यक्ष हो जाता है। इसीलिये कुम्भकर्ण कहता है कि मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके ही श्रीरामके दर्शन करना चाहता हूँ—**'त्वामनुज्ञाप्य राघवम्'**। श्रीलक्ष्मणसे यह भी निवेदन करता है कि मेरे मनमें श्रीरामदर्शनके अतिरिक्त अन्य कोई भी अभिलाषा नहीं है—**'राममेवैकमिच्छामि'**। भाव कि भाईको नहीं देखना चाहता, माईको नहीं देखना चाहता, पत्नीको नहीं देखना चाहता, केवल श्रीरामको देखना चाहता हूँ। मेरे मनमें पुत्र नहीं है, मित्र नहीं है, कलत्र नहीं है, शत्रु नहीं है, मित्र नहीं है, मेरे मनमें तो केवल श्रीराम हैं। मेरे मनमें जिजीविषा नहीं है, जिगमिषा नहीं है, केवल श्रीरामकी दिदृक्षा है। हे जीवाचार्य! हे सद्गुरो! मुझे तो आप श्रीरामके पास पहुँचा दें। उसकी बात सुनकर समराङ्गणमें श्रीलक्ष्मणजी प्रसन्न हो गये। तत्काल श्रीलक्ष्मणने कहा—हे कुम्भकर्ण! दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम ये रहे, जो पर्वतके समान अविचलभावसे खड़े हैं—**'एष दाशरथी रामस्तिष्ठत्यद्रिरिवाचलः'**। अब आइये प्रकृत प्रसङ्गमें युद्धका—लीलारसका आस्वादन करें।

श्रीराम और कुम्भकर्णका घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। कुम्भकर्णने एक विशाल पर्वत शिखर लेकर श्रीरामजीको लक्ष्य करके चला दिया। प्रभुने उस गिरिशृङ्गको बाणोंके द्वारा बीचमें ही टुकड़े-टुकड़े कर दिया। अपने पासतक आने ही नहीं दिया। श्रीरामजीने कुम्भकर्णको देखकर तत्काल अपना धनुष खींचा। प्रभुके धनुषकी टङ्कार सुनकर कुम्भकर्ण संक्रुद्ध हो गया और उस टङ्कार-ध्वनिको सहन न करके श्रीरामजीकी ओर दौड़ा—

स तस्य चापनिर्घोषात् कुपितो राक्षसर्षभः।
अमृष्यमाणस्तं घोषमभिदुद्राव राघवम्॥

(६।६७।१४२)

उस समय हाथमें गदा लेकर विभीषणजी श्रीरामजीके लिये युद्ध करनेके लिये भाई होकर भी भाईका सामना करनेके लिये बड़े वेगसे आगे बढ़े—

पुरस्ताद् राघवस्यार्थे गदायुक्तो विभीषणः।
अभिदुद्राव वेगेन भ्राता भ्रातरमाहवे॥

उस समय कुम्भकर्णने कहा—हे विभीषण! तुम भाईका स्नेह छोड़कर अपने स्वामी श्रीरामजीका प्रिय करो और समराङ्गणमें मेरे ऊपर गदाका प्रहार करो—

विभीषणं पुरो दृष्ट्वा कुम्भकर्णोऽब्रवीदिदम्।
प्रहरस्व रणे शीघ्रं क्षत्रधर्मे स्थिरो भव॥
भ्रातृस्नेहं परित्यज्य राघवस्य प्रियं कुरु।

हे वत्स! भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें आकर तुमने हम लोगोंका कल्याणपथ प्रशस्त कर दिया। राक्षसोंमें एक तुम्हीं हो, जिसने इस जगत्में सत्य और धर्मकी रक्षा की है—

अस्मत्कार्यं कृतं वत्स यस्त्वं राममुपागतः।
त्वमेको रक्षसां लोके सत्यधर्माभिरक्षिता॥

हे विभीषण! तुम्हारे रामभक्त होनेसे राक्षसकुल उजागर—प्रकाशित हो गया। हमें तुमपर गर्व है। हे विभीषण! तुम धन्य हो गये और हमें भी धन्य कर दिया—

धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन।
भयेहु तात निसिचर कुल भूषन॥
बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर।
भजेहु राम सोभा सुख सागर॥
बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि भयउँ कालबस बीर॥

(श्रीरामचरितमानस ६।६४।८-९, दो० ६४)

इसके पश्चात् कुम्भकर्णके अत्यन्त भयङ्कर युद्धका वर्णन महर्षि श्रीवाल्मीकिजीने किया है। कुम्भकर्ण हाथमें मुद्गर लेकर वानरी सेनाका नाश

कर रहा है, यह देखकर श्रीरघुनाथजीने वायव्यास्त्रका सन्धान करके मुद्गरसहित उसकी दक्षिण भुजाका कृन्तन कर दिया। भुजा कट जानेपर राक्षस भयावनी आवाजमें चीत्कार करने लगा—

वायव्यमादाय ततोऽपरास्त्रं
रामः प्रचिक्षेप निशाचराय।
समुद्गरं तेन जहार बाहुं
स कृत्तबाहुस्तुमुलं ननाद॥

(६। ६७। १५५)

तदनन्तर वह बायीं भुजासे ही एक ताल-वृक्ष उखाड़कर श्रीरामजीकी ओर दौड़ा। प्रभुने ऐन्द्रास्त्रसे वृक्षके सहित वह भुजा भी काट डाली। दोनों भुजाओंके कट जानेपर वह आर्त्तनाद करता हुआ श्रीरामजीपर टूट पड़ा। श्रीरामजीने दो अर्ध चन्द्राकार बाण लेकर युद्धस्थलमें ही उसके दोनों पैरोंका भी कृन्तन कर दिया—

तं छिन्नबाहुं समवेक्ष्य रामः
समापतन्तं सहसा नदन्तम्।
द्वावर्धचन्द्रौ निशितौ प्रगृह्य
चिच्छेद पादौ युधि राक्षसस्य॥

(६। ६७। १६१)

तदनन्तर वह भयङ्कर गर्जन करता हुआ श्रीरामकी ओर दौड़ा। प्रभुने स्वर्णजटित बाणोंसे उसका मुख भर दिया। मानो मृत्युकालमें प्रभुने कृपा करके उसके मुखमें स्वर्ण डाल दिया हो। वह बोलनेमें असमर्थ हो गया और अत्यन्त कठिनतासे आर्त्तनाद करके मूर्च्छित हो गया। तदनन्तर भगवान् श्रीरामने एक भयंकर एवं तीखा बाण, जो हीरे और सुवर्णसे विभूषित, सुन्दर पंखसे युक्त था, हाथमें ले लिया और कुम्भकर्णको लक्ष्य करके छोड़ दिया। श्रीरामजीकी भुजाओंसे प्रेरित होकर वह बाण अपनी आभा—प्रभासे दसों दिशाओंको सुप्रकाशित करता हुआ इन्द्रके वज्रकी भाँति भयङ्कर वेगसे चला। वह धूमरहित अग्निके समान भयानक दिखायी देता था—

स सायको राघव बाहुचोदितो
दिशः स्वभासा दश सम्प्रकाशयन्।
विधूम वैश्वानर भीमदर्शनो
जगाम शक्राशनिभीम विक्रमः॥

(६। ६७। १६७)

जैसे पूर्वकालमें पुरन्दरने वृत्रासुरका मस्तक काट डाला था, उसी प्रकार उस बाणने राक्षसराज कुम्भकर्णके मस्तकको धड़से अलग कर दिया—

चकर्त रक्षोऽधिपतेः शिरस्तदा
यथैव वृत्रस्य पुरा पुरन्दरः।

(६। ६७। १६८)

श्रीरामजीकी चारों ओर भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी, देवतालोग और वानरलोग उच्चस्वरसे जय-जयकार करने लगे। महाबली कुम्भकर्ण समराङ्गणमें श्रीरामजीके द्वारा मारा गया, यह समाचार सुनकर रावण शोकसे सन्तप्त तथा मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ा—

श्रुत्वा विनिहतं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम्।
रावणः शोकसंतप्तो मुमोह च पपात च॥

(६। ६८। ६)

अपने पितृव्यके—चाचाके निधनका समाचार सुनकर देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा और अतिकाय शोकसन्तप्त होकर रोने लगे। अनेक प्रकारसे विलाप करते हुए आज रावण सोच रहा है—मैंने एक दिन कायर, क्लीव कहकर विभीषणको घरसे निकाल दिया था; परन्तु विभीषण महात्मा है अर्थात् क्लीव नहीं है; पौरुषसम्पन्न है। किं वा विभीषण दुर्जन नहीं था, हमारा अहित चाहनेवाला नहीं था, अपितु हमारा हितैषी था। हा हन्त! मैंने महात्मा—शुद्ध मनवाले विभीषणके शुभ वचनोंको अपने अज्ञानके कारण नहीं माना था, वे मेरे

ऊपर आज प्रत्यक्षरूपसे घटित हो रहे हैं। हा हन्त! जबसे कुम्भकर्ण और प्रहस्तका यह दारुण विनाश उत्पन्न हुआ है तभीसे विभीषणकी बात याद आकर मुझे ब्रीडित—विलज्जित कर रही है। अथवा पीड़ित—व्यथित कर रही है। मैंने परम धर्मज्ञ—भागवत धर्मज्ञ, श्रीमान्—भक्तिश्रीसे सम्पन्न विभीषणको घरसे निकालकर अच्छा नहीं किया। भागवत और भक्ति-सम्पन्न विभीषणके उस अपमानका यह शोकदायक विपाक—परिणाम अब मुझे सम्प्राप्त हो रहा है—

तदिदं मामनुप्राप्तं विभीषणवचः शुभम्।
यदज्ञानान्मया तस्य न गृहीतं महात्मनः॥
विभीषणवचस्तावत्कुम्भकर्णप्रहस्तयोः ।
विनाशोऽयं समुत्पन्नो मां व्रीडयति दारुणः॥
तस्याऽयं कर्मणः प्राप्तो विपाको मम शोकदः।
यन्मया धार्मिकः श्रीमान् स निरस्तो विभीषणः॥

(६।६८।२१—२३)

अपने हितैषियोंकी बातका सम्मान करना चाहिये। सन्तोंकी बातका सम्मान करना चाहिये। गुरुजनोंकी बातका आदर करना चाहिये। अन्यथा कभी-न-कभी अवश्य ही पश्चात्ताप करना पड़ता है। जिस प्रकार आज महान् अभिमानी रावण पश्चात्ताप कर रहा है।

रावणको अत्यन्त शोकसन्तप्त देखकर उसके पुत्र त्रिशिराने आकर आश्वस्त किया—हे पितः! युद्धमें मेरे द्वारा मारे जाकर राम सदाके लिये महानिद्रामें सो जायँगे—

तथाद्य शयिता रामो मया युधि निपातितः॥

(६।६९।७)

त्रिशिराका आश्वासन सुनकर कालप्रेरित राक्षसेन्द्र रावणको परम सन्तोष हुआ। उसने यह समझा कि मेरा आज अभिनव जन्म हुआ है। त्रिशिराकी बात सुनकर देवान्तक, नरान्तक और अतिकाय—ये तीनों भी युद्धके लिये उत्साहित हो गये—

श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः।
पुनर्जातमिवात्मानं मन्यते कालचोदितः॥
श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं देवान्तकनरान्तकौ।
अतिकायश्च तेजस्वी बभूवुर्युद्धहर्षिताः॥

(६।६९।८-९)

रावणके ये पुत्र शक्रतुल्य पराक्रमी थे। रावणने अपने पुत्रोंको हृदयसे लगाकर आभूषणोंसे आभूषित किया और उत्तम आशीर्वाद देकर युद्धभूमिमें भेजा। रावणने अपने दो भाइयों—महापार्श्व और महोदरको भी पुत्रोंकी रक्षाके लिये भेजा। रावणको प्रणाम एवं परिक्रमा करके त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक, नरान्तक, महोदर और महापार्श्व—ये छः महाबली वीर श्रेष्ठ राक्षस कालसे प्रेरित होकर युद्ध करनेके लिये लङ्कासे बाहर निकले। आज ये समस्त राक्षस मरने-मारनेका निश्चय करके निकले हैं। श्रीरामदलमें पहुँचकर सब मिलकर समराङ्गणमें युद्ध करने लगे। राक्षस और वानर दोनों समराङ्गणमें सिंहोंकी भाँति दहाड़ रहे थे। वानरोंने पर्वतकी शिलाओंकी मारसे राक्षसोंको कुचल डाला—

सिंहनादान् विनेदुश्च रणे राक्षसवानराः।
शिलाभिश्चूर्णयामासुर्यातुधानान् प्लवङ्गमाः॥

(६।६९।४९)

राक्षसोंमें श्रेष्ठ राक्षस वीर वानरोंको पकड़कर उन्हें दूसरे वानरोंपर पटक देते थे, इसी प्रकार वानर भी राक्षसोंसे राक्षसोंको मार रहे थे—

वानरान् वानरैरेव जघ्नुस्ते नैर्ऋतर्षभाः।
राक्षसान् राक्षसैरेव जघ्नुस्ते वानरा अपि॥

(६।६९।५७)

इस श्लोकमें एक अन्तर देखने योग्य है कि वानरोंको साधारण राक्षस नहीं उठाते थे **'नैर्ऋतर्षभाः'**—श्रेष्ठ राक्षस उठाते थे। परन्तु राक्षसोंको तो साधारण वानर ही उठा लेते थे।

वानरोंके युद्धकी एक प्रक्रियाका वर्णन और करते हैं—कुछ वानर समराङ्गणमें रथसे रथको, हाथीसे हाथीको और घोड़ेसे घोड़ेको मार डालते थे—

रथेन च रथं चापि वारणेनापि वारणम्।
हयेन च हयं केचिन्निर्जघ्नुर्वानरा रणे॥

(६। ६९। ६१)

इन्द्रद्रोही, विशाल शरीरवाले नरान्तकने सुदीप्त प्रास—भालासे सात सौ वानर वीरोंको चीर डाला।

स वानरान् सप्त शतानि वीरः प्रासेन दीप्तेन विनिर्बिभेद।
एकः क्षणेनेन्द्ररिपुर्महात्मा जघान सैन्यं हरिपुङ्गवानाम्॥

(६। ६९। ६७)

वानर वीरोंका नाश देखकर श्रीसुग्रीवने अङ्गदकुमारसे कहा—हे पुत्र अङ्गद! यह वीर राक्षस, जो अश्वारूढ़ होकर वानर-सेनाको क्षुभित कर रहा है, जाओ, इससे युद्ध करके इसको जल्दी ही मार डालो—

गच्छैनं राक्षसं वीरं योऽसौ तुरगमास्थितः।
क्षोभयन्तं हरिबलं क्षिप्रं प्राणैर्वियोजय॥

(६। ६९। ८२)

महातेजस्वी, निरायुध नखदंष्ट्रवान्-मात्र नख और दाढ़ ही जिनके अस्त्र-शस्त्र थे, वे अङ्गद नरान्तकके पास जाकर बोले—अरे राक्षस! ठहर जा! इन साधारण बन्दरोंको क्यों मारता है? तेरे भालेकी चोट वज्रकी भाँति असह्य है, परन्तु इसे मेरी छातीपर मार—

निरायुधो महातेजाः केवलं नखदंष्ट्रवान्।
नरान्तकमभिक्रम्य वालिपुत्रोऽब्रवीद् वचः॥
तिष्ठ किं प्राकृतैरेभिर्हरिभिस्त्वं करिष्यसि।
अस्मिन् वज्रसमस्पर्शं प्रासं क्षिप ममोरसि॥

(६। ६९। ८५, ८६)

नरान्तकने अपने तीक्ष्ण भालेको घुमाकर बड़े वेगसे अङ्गदकी छातीपर मारा, परन्तु अङ्गदके वज्रकल्प वक्षःस्थलसे टकराकर नरान्तकका वह ऐतिहासिक भाला टूट गया—

स प्रासमाविध्य तदाङ्गदाय समुज्ज्वलन्तं सहसोत्ससर्ज।
स बालिपुत्रोरसि वज्रकल्पे बभूव भग्नो न्यपतच्च भूमौ॥

(६। ६९। ८८)

श्रीअङ्गदने एक थप्पड़से राक्षसके घोड़ोंको मार गिराया और एक मुक्का नरान्तककी छातीमें मारा। उस मुष्टिप्रहारसे उसका हृदय विदीर्ण हो गया। वह मुखसे आगकी ज्वाला उगलने लगा। उसका समस्त अङ्ग रक्तसे लथपथ हो गया और वह वज्रनिपातभग्न पर्वतकी तरह भूमिपर गिर पड़ा और मर गया—

स मुष्टिनिर्भिन्न निमग्नवक्षा ज्वालावमञ्शोणित दिग्धगात्रः।
नरान्तको भूमितले पपात यथाचलो वज्रनिपातभग्नः॥

(६। ६९। ९४)

श्रीअङ्गदके इस अद्भुत कर्मकी सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। आकाशमें देवताओंने और पृथ्वीपर वानरोंने महान् हर्षनाद किया। श्रीरामजीके मनको विशेष हर्ष प्रदान करनेवाला दुष्कर कार्य कुमार अङ्गदने सम्पन्न किया था—

अथाङ्गदो राममनःप्रहर्षणं सुदुष्करं तं कृतवान् हि विक्रमम्।
विसिस्मिये सोऽप्यथ भीमकर्मा पुनश्च युद्धे स बभूव हर्षितः॥

(६। ६९। ९६)

नरान्तकका वध देखकर देवान्तक, त्रिशिरा और महोदर हाहाकार करने लगे। तीनों मिलकर श्रीअङ्गदसे लड़ने लगे; परन्तु महातेजस्वी, प्रतापवान् वालिकुमारके मनमें तनिक भी व्यथा नहीं हुई—

स त्रिभिर्नैर्ऋतश्रेष्ठैर्युगपत् समभिद्रुतः।
न विव्यथे महातेजाः वालिपुत्रः प्रतापवान्॥

(६। ७०। १२)

श्रीअङ्गदने महोदरके गजराजपर आक्रमण करके उसके मस्तकपर जोरदार तमाचा मारा। उसकी आँखें भूमिपर गिर पड़ीं और वह मर गया। श्रीअङ्गद उसके दाँतको उखाड़कर उसीको घुमा-घुमाकर युद्ध करने लगे। श्रीअङ्गदको तीन

राक्षसोंसे घिरा हुआ देखकर श्रीहनुमान् और बलाध्यक्ष नील सहायताके लिये आये। देवान्तक परिघ लेकर श्रीहनुमान्‌जीकी ओर दौड़ा। श्रीहनुमान्‌ने श्रीराघवका स्मरण करके अतिलाघवसे एक मुक्का उसके सिरपर मारा और अपनी गर्जनासे राक्षसोंको दहला दिया। उस मुष्टिप्रहारसे देवान्तकका मस्तक फट गया। दाँत, आँखें और लम्बी जीभ बाहर निकल आयी और वह प्राणशून्य होकर जमीनपर गिर पड़ा—

स मुष्टिनिष्पिष्टविभिन्नमूर्धा निर्वान्तदन्ताक्षिविलम्बिजिह्वः।
देवान्तको राक्षसराजसूनुर्गतासुरुर्व्यां सहसा पपात॥

(६। ७०। २६)

भाईके वधसे दुःखी और कुपित होकर त्रिशिराने नीलकी छातीपर तीखे बाणोंकी वर्षा शुरू कर दी। महोदरने भी अपने बाणोंका लक्ष्य नीलको ही बनाया। नीलका शरीर शिथिल हो गया। महोदरने क्षत-विक्षत करके उन्हें मूर्च्छित कर दिया और उनके पराक्रमको भी कुण्ठित कर दिया—

ततः शरौघैरभिवृष्यमाणो विभिन्नगात्रः कपिसैन्यपालः।
नीलो बभूवाथ विसृष्टगात्रो विष्टम्भितस्तेन महाबलेन॥

(६। ७०। ३०)

मूर्च्छा दूर होनेपर नीलने एक पर्वतशिखर उखाड़कर और उछलकर महोदरके मस्तकपर डाल दिया। महोदर प्राणशून्य हो गया। अपने चाचाको मारा गया देखकर संक्रुद्ध त्रिशिरा हाथमें धनुष लेकर श्रीहनुमान्‌जीको तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करने लगा—

पितृव्यं निहतं दृष्ट्वा त्रिशिराश्चापमाददे।
हनूमन्तं च संक्रुद्धो विव्याध निशितैः शरैः॥

(६। ७०। ३३)

श्रीहनुमान्‌जीने नखोंसे त्रिशिराके घोड़ोंको विदीर्ण कर डाला। त्रिशिराने एक भयङ्कर शक्तिका प्रहार किया। श्रीहनुमान्‌ने उस शक्तिको अपने शरीरमें लगनेसे पूर्व ही हाथोंसे पकड़कर तोड़ डाला और भयङ्कर गर्जना की—

गृहीत्वा हरिशार्दूलो बभञ्ज च ननाद च॥

(६। ७०। ३९)

श्रीहनुमान्‌जीने त्रिशिराके खड्गसे ही उसके तीनों सिर काट लिये। ऋषभ नामके वीर वानरने रावणके भाई महापार्श्वको उसीकी गदासे मार डाला। नरान्तक, देवान्तक, त्रिशिरा, महोदर और महापार्श्वके वधसे अतिकायको महान् क्लेश हुआ। वह रथपर चढ़कर वानरदलमें युद्ध करनेके लिये आया। उसके विशाल शरीरको देखकर वानर ऐसा अनुमान करने लगे कि कुम्भकर्ण ही पुनः आ गया है। वानर भयाक्रान्त होकर एक-दूसरेका संश्रय—आश्रय लेने लगे—

ते दृष्ट्वा देहमाहात्म्यं कुम्भकर्णोऽयमुत्थितः।
भयार्ता वानराः सर्वे संश्रयन्ते परस्परम्॥

(६। ७१। ७)

श्रीरामजीने पूछा—एक हजार घोड़ोंके विशाल रथपर बैठा यह पर्वताकार राक्षस कौन है?

कोऽसौ पर्वतसंकाशो धनुष्मान् हरिलोचनः।
युक्ते हयसहस्रेण विशाले स्यन्दने स्थितः॥

(६। ७१। १२)

श्रीविभीषणने कहा—हे भगवन्! यह रावणका पराक्रमी पुत्र अतिकाय है, रावणके समान बली है। यह वृद्धोंका सम्मान करता है, वेद-शास्त्रोंका ज्ञाता और अस्त्र-शस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ है। उसके बाहुबलका आश्रय लेकर लङ्कानगरी सदा निर्भय रहती आयी है। यह रावणकी द्वितीय पत्नी धान्यमालिनीका पुत्र है—

यस्य बाहुं समाश्रित्य लङ्का भवति निर्भया।
तनयं धान्यमालिन्या अतिकायमिमं विदुः॥

(६। ७१। ३०)

राक्षसेन्द्र अतिकाय वानरोंके समूहमें घूम रहा है; परन्तु किसी भी ऐसे योद्धाको नहीं मारा, जो उसके साथ युद्ध न कर रहा हो। उसने श्रीरामके पास जाकर कहा—मैं धनुष-बाण लेकर रथपर

स्थित हूँ। सामान्य योद्धासे युद्ध करनेका मेरा विचार नहीं है। जिसमें शक्ति हो, साहस हो, उत्साह हो वह शीघ्र आकर यहाँ मुझसे युद्ध करे—

रथे स्थितोऽहं शरचापपाणिर्न प्राकृतं कञ्चन योधयामि।
यस्यास्ति शक्तिर्व्यवसाययुक्तो ददातु मे शीघ्रमिहाद्य युद्धम्॥

(६। ७१। ४५)

रावण-पुत्र अतिकायके अहङ्कारपूर्ण वचनोंको सुनकर श्रीलक्ष्मणजीको अत्यन्त क्रोध हुआ। शत्रुहन्ता श्रीसुमित्राकुमार उसकी बातको सहन नहीं कर सके। आगे बढ़कर अपने मुखमण्डलपर स्मितच्छटा बिखेरते हुए अपना धनुष हाथोंमें ले लिया—

तत्तस्य वाक्यं ब्रुवतो निशम्य चुकोप सौमित्रिरमित्रहन्ता।
अमृष्यमाणश्च समुत्पपात जग्राह चापं च ततः स्मयित्वा॥

(६। ७१। ४६)

श्रीलक्ष्मणके धनुषकी प्रत्यञ्चाका शब्द अति भयङ्कर था। यह शब्द अवनि, अम्बर, सागर, सम्पूर्ण दिशाओंमें गूँजने लगा और राक्षसोंको भयभीत करने लगा—

पूरयन् स महीं सर्वामाकाशं सागरं दिशः।
ज्याशब्दो लक्ष्मणस्योग्रस्त्रासयन् रजनीचरान्॥

(६। ७१। ४८)

अतिकायने कहा—हे सौमित्रे! तुम अभी बच्चे हो, पराक्रममें विचक्षण—दक्ष नहीं हो, अतः लौट जाओ। कालकी भाँति मुझसे युद्धकी इच्छा न करो—

बालस्त्वमसि सौमित्रे विक्रमेष्वविचक्षणः।
गच्छ किं कालसंकाशं मां योधयितुमिच्छसि॥

(६। ७१। ५१)

श्रीलक्ष्मणने कहा—हे दुरात्मन्! वीरताके द्वारा अपना परिचय दो। मिथ्या प्रशस्ति उचित नहीं है। जिसमें पौरुष होता है, वही शूरपद वाच्य है—

कर्मणा सूचयात्मानं न विकत्थितुमर्हसि।
पौरुषेण तु यो युक्तः स तु शूर इति स्मृतः॥

(६। ७१। ५९)

मुझे बालक जानकर मेरी अवज्ञा तुमको नहीं करनी चाहिये। मैं बालक होऊँ या वृद्ध, तुम तो मुझे अपना काल ही समझो—

बालोऽयमिति विज्ञाय न चावज्ञातुमर्हसि।
बालो वा यदि वा वृद्धो मृत्युं जानीहि संयुगे॥

(६। ७१। ६३)

श्रीलक्ष्मण और अतिकायके युद्धको देखनेके लिये विद्याधर, भूत, देवता, दैत्य, महर्षि तथा महामना गुह्यकगण आये—

ततो विद्याधरा भूता देवा दैत्या महर्षयः।
गुह्यकाश्च महात्मानस्तद् युद्धं द्रष्टुमागतम्॥

(६। ७१। ६५)

श्रीलक्ष्मणने एक बाण बड़े वेगसे मारा जो अतिकायके ललाटमें धँस गया—

ललाटे राक्षसश्रेष्ठमाजघान स वीर्यवान्।

(६। ७१। ७२)

बाणसे अत्यन्त पीड़ित होकर भी अतिकायने कहा—साधु! साधु! इस प्रकार बाणके प्रयोगके कारण तुम मेरे स्पृहणीय शत्रु हो—

साधु बाणनिपातेन श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः॥

(६। ७१। ७५)

अतिकायने एक तीखा बाण छोड़ा जो श्रीलक्ष्मणके वक्षःस्थलमें लगा, रक्त बहने लगा, मानो किसी मतवाले हाथीके मस्तकसे मदकी वर्षा हो रही हो—

अतिकायेन सौमित्रिस्ताडितो युधि वक्षसि।
सुस्राव रुधिरं तीव्रं मदं मत्त इव द्विपः॥

(६। ७१। ८२)

परम समर्थ श्रीलक्ष्मणजीने उस बाणको अपनी छातीसे निकाल दिया। इसके अनन्तर दोनोंमें महान् युद्ध हुआ। अनेक प्रकारके दिव्यास्त्रोंका प्रयोग दोनों कर रहे थे। अतिकायने एक दिव्य कवच बाँध रखा था, जिसमें हीरे जड़े हुए थे। लक्ष्मणके बाण अतिकायतक पहुँचकर उसके

कवचसे टकराते और नोंक टूट जानेके कारण सहसा भूमिपर गिर पड़ते थे—

तेऽतिकायं समासाद्य कवचे वज्रभूषिते।
भग्नाग्रशल्याः सहसा पेतुर्बाणामहीतले॥

(६।७१।९५)

तब वायुदेवताने लक्ष्मणके पास आकर कहा—इसको ब्रह्माजीने वर दिया है। यह अभेद्यकवचसे आवृत है। इस कवचको ब्रह्मास्त्रसे विदीर्ण कर डालो, अन्यथा यह नहीं मरेगा—

अथैनमभ्युपागम्य वायुर्वाक्यमुवाच ह॥
ब्रह्मदत्तवरो ह्येष अवध्यकवचावृतः।
ब्राह्मेणास्त्रेण भिन्ध्येनमेष वध्यो हि नान्यथा।
अवध्य एष ह्यन्येषामस्त्राणां कवची बली॥

(६।७१।१०२-१०३)

श्रीलक्ष्मणने पवनदेवके कथनानुसार ब्रह्मास्त्रका प्रयोग कर दिया। परिणामस्वरूप अतिकायका मस्तक कटकर शिरस्त्राणसहित हिमालयके शिखरकी तरह सहसा भूमिपर गिर पड़ा—

तच्छिरः सशिरस्त्राणं लक्ष्मणेषुप्रमर्दितम्।
पपात सहसा भूमौ शृङ्गं हिमवतो यथा॥

(६।७१।१११)

रावणने जब अतिकाय आदि महान् वीरोंके वधका समाचार सुना तब उद्विग्न होकर बोला—मैं आज ऐसे किसी वीरको नहीं देखता जो युद्धमें लक्ष्मणके सहित रामको और सेना तथा सुग्रीवके सहित विभीषणको नष्ट कर दे—

तं न पश्याम्यहं युद्धे योऽद्य रामं सलक्ष्मणम्॥
नाशयेत् सबलं वीरं ससुग्रीवं विभीषणम्।
अहो सुबलवान् रामो महदस्त्रबलं च वै॥

(६।७२।९-१०)

अहो! रामचन्द्र बड़े बलवान् हैं, निश्चय ही उनका अस्त्रबल महान् है। जिनके बल-विक्रमका सामना करके मेरे अनेक राक्षस मर गये। मैं उन वीर राघवेन्द्रको साक्षात् नारायणरूप मानता हूँ—

यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निधनं गताः।
तं मन्ये राघवं वीरं नारायणमनामयम्॥

(६।७२।११)

रावण अन्यन्त दु:खी था उसी समय मेघनादने आकर वीरवाणीमें आश्वासन दिया—हे पितः! आज आप इन्द्रके शत्रु मेघनादकी प्रतिज्ञा सुनें। जो मेरे पुरुषार्थसे और दैवबलसे ही सिद्ध होनेवाली है। मैं आज ही लक्ष्मणसहित रामको अपने अमोघ बाणोंसे अच्छी तरह तृप्त कर दूँगा। हे राजन्! आज इन्द्र, यम, विष्णु, रुद्र, साध्य, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा बलिके यज्ञमण्डपमें विष्णुके भयङ्कर पराक्रमकी तरह मेरे भी अप्रमेय विक्रमको देखेंगे—

इमां प्रतिज्ञां शृणु शक्रशत्रोः सुनिश्चितां पौरुष दैवयुक्ताम्।
अद्यैव रामं सहलक्ष्मणेन सन्तर्पयिष्यामि शरैरमोघैः॥
अद्येन्द्रवैवस्वतविष्णुरुद्रसाध्याश्च वैश्वानरचन्द्रसूर्याः।
द्रक्ष्यन्ति मे विक्रममप्रमेयं विष्णोरिवोग्रं बलियज्ञवाटे॥

(६।७३।६-७)

इस प्रकार कहकर मेघनादने पिताको प्रणाम एवं प्रदक्षिणा करके रणयात्रा आरम्भ की। रणभूमिमें पहुँचकर मेघनादने अभिचार आरम्भ किया। अपने रथके चारों ओर राक्षसोंको खड़ा कर दिया। स्वयं रथसे उतरकर युद्धभूमिमें अग्नि-स्थापन करके चन्दन, पुष्प, लाजाके द्वारा अग्नि-पूजन किया। श्रेष्ठ मन्त्रोंका उच्चारण करके हविष्यकी आहुति दी। अग्निकी वेदीके चारों ओर कुशके स्थानपर शस्त्र बिछा दिया। बहेड़ाकी लकड़ीसे समिधाका कार्य किया। रक्तरंगके वस्त्रोंका उपयोग किया। स्रुवा लोहेका था। काले रंगके जीवित बकरेका उपयोग किया। निर्धूम अग्निमें बड़ी-बड़ी लपटें दक्षिणावर्त्त दिखायी देने लगीं। तदनन्तर मेघनादने ब्रह्मास्त्रका आवाहन

किया और अपने धनुष तथा रथ आदि सभी उपकरणोंको सिद्ध ब्रह्मास्त्रमन्त्रसे अभिमन्त्रित किया। अग्निमें आहुति देनेके पश्चात् धनुष, बाण, रथ, खड्ग, घोड़े और सारथीसमेत अपने-आपको आकाशमें अदृश्य कर लिया।

इस प्रकार मेघनाद अदृश्य होकर युद्ध कर रहा था। उसके बाण सबको लगते थे, परन्तु मारनेवालेको कोई नहीं देख रहा था—

ते केवलं सन्ददृशुः शिताग्रान् बाणान् रणे वानरवाहिनीषु।
मायाविगूढं च सुरेन्द्रशत्रुं न चात्र तं राक्षसमप्यपश्यन्॥

(६। ७३। ५६)

श्रीरामने कहा—हे लक्ष्मण! यह सुरेन्द्रशत्रु राक्षसेन्द्र मेघनाद ब्रह्मास्त्रका आश्रय लेकर समग्र वानर-सेनाको व्याकुल करके सम्प्रति तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे हम दोनोंको व्यथित कर रहा है—

असौ पुनर्लक्ष्मण राक्षसेन्द्रो ब्रह्मास्त्रमाश्रित्य सुरेन्द्रशत्रुः।
निपातयित्वा हरि सैन्यमस्माञ्शितैः शरैरर्दयति प्रसक्तम्॥

(६। ७३। ६८)

इसका शरीर तो दिखायी नहीं देता है, फिर हम लोग इसे किस प्रकार मारें? हे लक्ष्मण! अचिन्त्यस्वरूप भगवान् ब्रह्माका सम्मान करनेके लिये अव्यग्र होकर मेरे साथ यहाँ चुपचाप खड़े होकर इन बाणोंकी मार सहन करो—

मन्ये स्वयम्भूर्भगवानचिन्त्यस्तस्यैतदस्त्रं प्रभवश्च योऽस्य।
बाणावपातं त्वमिहाद्य धीमन् मया सहाव्यग्रमनाः सहस्व॥

(६। ७३। ७०)

दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण मेघनादके बाणोंसे अत्यन्त घायल हो गये। दोनोंको युद्धमें व्यथित करके मेघनादने हर्षपूर्वक गर्जना की—

ततस्तु ताविन्द्रजितोऽस्त्रजालैर्बभूवतुस्तत्र तदा विशस्तौ।
स चापि तौ तत्र विषादयित्वा ननाद हर्षाद् युधि राक्षसेन्द्रः॥

(६। ७३। ७३)

लङ्का जाकर मेघनादने अपने पितासे हर्षपूर्वक अपनी विजयका सब समाचार बताया—'**पित्रे च सर्वं हृषितोऽभ्युवाच**'।

समुद्रके समान विशाल एवं भयङ्कर वानर-सेनाको बाणोंसे व्यथित देखकर विभीषणके साथ श्रीहनुमान्जी श्रीजाम्बवान्को खोजने लगे—

सागरौघनिभं भीमं दृष्ट्वा बाणार्दितं बलम्।
मार्गते जाम्बवन्तं च हनूमान् सविभीषणः॥

(६। ७४। १३)

खोजनेपर जब श्रीजाम्बवान् मिले तब उन्होंने बड़ी कठिनाईसे पूछा—हे सुव्रत विभीषण! यह बताओ कि अञ्जनानन्दसंवर्द्धन पवननन्दन वानर-श्रेष्ठ श्रीहनुमान् कहीं जीवित हैं?

अञ्जना सुप्रजा येन मातरिश्वा च सुव्रत।
हनूमान् वानरश्रेष्ठः प्राणान् धारयते क्वचित्॥

(६। ७४। १८)

श्रीविभीषणने साश्चर्य पूछा—हे ऋक्षराज! आप महाराज कुमार श्रीराम-लक्ष्मणको छोड़कर श्रीहनुमान्जीको क्यों पूछ रहे हैं?

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यमुवाचेदं विभीषणः।
आर्यपुत्रावतिक्रम्य कस्मात्पृच्छसि मारुतिम्॥

(६। ७४। १९)

श्रीजाम्बवान्ने कहा—हे विभीषण! यदि श्रीहनुमान् जीवित हैं तो यह मरी हुई सेना भी जीवित है और यदि उनके प्राण निकल गये हैं तो हम लोग जीते हुए भी मृतकके बराबर हैं—

अस्मिञ्जीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम्।
हनूमत्युज्झितप्राणे जीवन्तोऽपि मृता वयम्॥

(६। ७४। २२)

श्रीजाम्बवान्के इतना कहते ही मारुतात्मज श्रीहनुमान्जी उनके पास आ गये और दोनों चरण पकड़कर उन्होंने उन्हें विनीतभावसे प्रणाम किया। श्रीजाम्बवान्ने प्रसन्न होकर कहा—हे वानरशार्दूल! आओ, समस्त वानरोंके प्राणोंकी रक्षा करो—

ततोऽब्रवीन्महातेजा हनूमन्तं स जाम्बवान्।

आगच्छ हरिशार्दूल वानरांस्त्रातुमर्हसि॥

(६। ७४। २६)

हे वीर! तुम्हारे अतिरिक्त और कोई पूर्ण पराक्रमसे युक्त नहीं है। हे हनूमन्! समुद्रके ऊपर-ऊपर उड़कर बहुत दूरका मार्ग अतिक्रमण करके तुम्हें पर्वतश्रेष्ठ हिमालयपर जाना चाहिये। हे शत्रुसूदन! वहाँपर पहुँचनेपर तुम्हें ऋषभपर्वत तथा कैलाशशिखरका दर्शन होगा। हे पवननन्दन! उन दोनों शिखरोंके मध्यमें अत्यन्त सुदीप्त सम्पूर्ण औषधियोंसे युक्त ओषधिपर्वत है। उसके शिखरपर चार प्रकारकी औषधियाँ हैं। जो अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको सुप्रकाशित किये रहती हैं। हे हनुमन्! उनके नाम इस प्रकार हैं—मृतसञ्जीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी और सन्धानी—

मृतसञ्जीवनीं चैव विशल्यकरणीमपि।
सुवर्णकरणीं चैव सन्धानीं च महौषधीम्॥

(६। ७४। ३३)

इन औषधियोंके नामोंके अर्थ एवं इनके कार्योंका निरूपण आचार्योंने इस प्रकार किया है—जो स्पर्शमात्रसे मृत व्यक्तिको जीवन प्रदान कर दे, उसे मृतसञ्जीवनी-ओषधि कहते हैं। जीवित होनेके बाद व्यक्तिमें सञ्चारक्षमताके लिये, स्पर्शमात्रसे जो बाण आदि शरीरसे निकाल दे, उसे विशल्यकरणी कहते हैं। विशल्य होनेके बाद टूटे-फूटे अङ्गोंको जोड़नेवाली ओषधिको—कटे हुए सिर आदिको यथापूर्व जोड़नेवाली औषधिको सन्धानकरणी कहते हैं। पुन: जोड़नेके बाद व्रणके द्वारा—घावके द्वारा जो वैवर्ण्य हो गया है उसे दूर करके दूसरे अङ्गोंके समान सुन्दर वर्ण करनेवाली ओषधिको सुवर्णकरणी कहते हैं—'**मृतानां सञ्जीवनीं स्पर्शमात्रेण सञ्जीवनकर्त्रीं मृतसञ्जीवनी। जीवनानन्तरं सञ्चारक्षमतायै विशल्यं करोतीति विशल्यकरणी। स्पर्शमात्रेण बाणराहित्य सम्पादिकाम्। विशल्ये कृते त्वच: सन्धानं करोतीति सन्धानकरणी। छिन्न शिर: प्रभृतीनां यथापूर्वं संयोजिकाम्। ततो व्रणकृत वैवर्ण्यं विहाय प्रदेशान्तर सावर्ण्यं करोतीति सावर्ण्यकरणी शोभनवर्ण-सम्पादिकाम्**'। (श्रीगोविन्दराजजी एवं रामायण-शिरोमणि-टीका)

श्रीजाम्बवान्ने कहा—हे गन्धवहात्मज! उन सब ओषधियोंको लेकर जल्दी लौट आओ और वानरोंको प्राणदान देकर आश्वस्त करो—

ता: सर्वा हनुमन् गृह्य क्षिप्रमागन्तुमर्हसि।
आश्वासय हरीन् प्राणैर्योज्य गन्धवहात्मज॥

(६। ७४। ३४)

श्रीहनुमान्जी लम्बी यात्रा करके जब ओषधि-पर्वतपर पहुँचे तब वे औषधियाँ तत्काल अदृश्य हो गयीं। श्रीहनुमान्जी ओषधि-पर्वतको ही उखाड़कर विनतानन्दन गरुड़के समान भयङ्कर वेगसे आकाशमें उड़ चले। उस समय बहुत-से आकाशचारी प्राणी उनकी स्तुति कर रहे थे—

स तं समुत्पाट्य खमुत्पपात वित्रास्य लोकान् ससुरासुरेन्द्रान्।
संस्तूयमान: खचरैरनेकैर्जगाम वेगाद् गरुडोग्रवेग:॥

(६। ७४। ६८)

श्रीहनुमान्जी इस प्रकार बड़े वेगसे श्रीरामदलमें आ गये। उस ओषधिके प्रभावसे दोनों राजकुमार श्रीराम-लक्ष्मण स्वस्थ हो गये। उनके शरीरसे बाण निकल गये और घाव भर गये। इसी प्रकार जो दूसरे-दूसरे प्रमुख वानरवीर वहाँ घायल हुए थे, वे सब लोग भी उन श्रेष्ठ ओषधियोंकी सुगन्धसे रात्रिकी अवसान वेलामें सोकर उठे हुए स्वस्थ प्राणियोंकी भाँति क्षणभरमें विशल्य होकर खड़े हो गये। उनके शरीरसे बाण निकल गये। उनकी सारी व्यथा निवृत्त हो गयी—

सर्वे विशल्या विरुजा क्षणेन हरिप्रवीराश्च हताश्च ये स्यु:।

गन्धेन तासां प्रवरौषधीनां सुप्ता निशान्तेष्विव सम्प्रबुद्धाः॥

(६। ७४। ७४)

तत्पश्चात् प्रचण्ड वेगवाले गन्धवहात्मज श्रीहनुमान्‌जीने पुनः औषधियोंके उस पर्वतको वेगपूर्वक हिमालयपर ही पहुँचा दिया और फिर लौटकर वे श्रीरामचन्द्रजीके पास आ गये—

ततो हरिर्गन्धवहात्मजस्तु तमोषधीशैलमुदग्रवेगः।
निनाय वेगाद्धिमवन्तमेव पुनश्च रामेण समाजगाम॥

(६। ७४। ७७)

इस प्रसङ्गसे समाजको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि किसी कार्यके लिये किसीकी वस्तु ले आवे तो अपना कार्य सम्पन्न करनेके पश्चात् उस वस्तुको तुरन्त उसके मूल स्थानपर पहुँचा देना चाहिये।

श्रीसुग्रीवजीकी आज्ञासे वानरोंने लङ्कापुरीमें आग लगा दी। वानर गोपुरों, द्वारों, अट्टालिकाओं, सड़कों, नाना प्रकारकी गलियों और महलोंमें भी बड़ी प्रसन्नताके साथ किलकिला शब्द करते हुए आग लगाने लगे—

गोपुराट्टप्रतोलीषु चर्यासु विविधासु च।
प्रासादेषु च संहृष्टाः ससृजुस्ते हुताशनम्॥

(६। ७५। ६)

इस प्रकार वानरोंके द्वारा लङ्कापुरीमें यह दूसरी बार लङ्का-दहन हो गया। तदनन्तर राक्षसों और वानरोंका घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। श्रीअङ्गदने कम्पन नामक राक्षसको मार गिराया। यह देखकर शोणिताक्ष रथपर चढ़कर निर्भय होकर श्रीअङ्गदसे लड़ने आया—

ततस्तु कम्पनं दृष्ट्वा शोणिताक्षो हतं रणे।
रथेनाभ्यपतत् क्षिप्रं तत्राङ्गदमभीतवत्॥

(६। ७६। ४)

पराक्रमी द्विविद वानरने अपने तीक्ष्ण नखोंसे शोणिताक्षका मुख नोंच लिया और उसे बलपूर्वक भूमिपर पटककर पीस डाला—

द्विविदः शोणिताक्षं तु विददार नखैर्मुखे।
निष्पिपेष स वीर्येण क्षितावाविध्य वीर्यवान्॥

(६। ७६। ३४)

इसके बाद कुम्भकर्णका बलवान् पुत्र कुम्भ समराङ्गणमें लड़ने आया। उसने रणभूमिमें अद्भुत पराक्रम किया। अनेक वानरोंको मार डाला और अनेकोंको मूर्च्छित कर दिया। वानर-समूहोंको कुम्भकी बाण-वर्षासे पीड़ित देखकर श्रीसुग्रीवजी उससे लड़नेके लिये स्वयं आये। जैसे पर्वत-शिखरपर विचरनेवाले गजेन्द्रपर वेगवान् सिंह आक्रमण करता है, उसी तरह वानरेन्द्र सुग्रीवने कुम्भकर्णकुमार कुम्भके ऊपर आक्रमण किया—

अभिदुद्राव सुग्रीवः कुम्भकर्णात्मजं रणे।
शैलसानुचरं नागं वेगवानिव केसरी॥

(६। ७६। ६५)

कुम्भकी युद्ध-प्रक्रियाको देखकर वानरेन्द्र सुग्रीवने उसकी उदार श्लाघा की है—दिल खोलकर सराहा है—हे कुम्भकर्णकुमार कुम्भ! तुम धनुर्विद्यामें मेघनादके तुल्य हो, प्रतापमें रावणके समान हो। राक्षसोंके संसारमें सम्प्रति बल-वीर्यकी दृष्टिसे तुम सर्वश्रेष्ठ हो—

धनुषीन्द्रजितस्तुल्यः प्रतापे रावणस्य च।
त्वमद्य रक्षसां लोके श्रेष्ठोऽसि बलवीर्यतः॥

(६। ७६। ७६)

इसके पश्चात् कुम्भ और सुग्रीवका बड़ा अद्भुत युद्ध हुआ है। अन्तमें श्रीसुग्रीवके मुष्टि-प्रहारसे वह धराशायी हो गया। अपने भाई कुम्भको सुग्रीवके द्वारा मारा गया देखकर निकुम्भने आग्नेय दृष्टिसे सुग्रीवको देखा—

निकुम्भो भ्रातरं दृष्ट्वा सुग्रीवेण निपातितम्।
प्रदहन्निव कोपेन वानरेन्द्रमुदैक्षत॥

(६। ७७। १)

कुम्भकर्णके पुत्र निकुम्भका श्रीहनुमान्‌जीसे

बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। अन्तमें श्रीहनुमान्‌जीने वेगपूर्वक उसकी छातीपर चढ़कर दोनों हाथोंसे उसका गला मरोड़कर मस्तकको उखाड़ लिया। गला मरोड़ते समय वह भयङ्कर आर्त्तनाद कर रहा था—

परिगृह्य च बाहुभ्यां परिवृत्य शिरोधराम्।
उत्पाटयामास शिरो भैरवं नदतो महत्॥

(६।७७।२२)

कुम्भकर्णके पुत्रों—कुम्भ और निकुम्भके मरनेका समाचार सुनकर क्रोध तथा शोकसे सन्तप्त होकर रावणने खरके पुत्र मकराक्षसे कहा—हे पुत्र! तुम विशाल सेना लेकर युद्धभूमिमें जाओ और वानरोंके साथ दोनों भाइयोंका वध कर दो, यही मेरी आज्ञा है—

गच्छ पुत्र मयाऽऽज्ञप्तो बलेनाभिसमन्वितः।
राघवं लक्ष्मणं चैव जहि तौ सवनौकसौ॥

(६।७८।३)

'बहुत अच्छा' कहकर आज्ञा स्वीकार करके मकराक्षने रावणको प्रणाम करके, प्रदक्षिणा करके युद्धके लिये प्रस्थान किया। समराङ्गणमें पहुँचकर अपने भयानक युद्धसे मकराक्षने वानरोंको भय-सन्त्रस्त कर दिया और श्रीरामजीसे कहा—हे राम! ठहरो, तुम्हारे साथ मेरा द्वन्द्वयुद्ध होगा। आज मैं तुम्हारे प्राण हर लूँगा—

तिष्ठ राम मया सार्द्धं द्वन्द्वयुद्धं भविष्यति।
त्याजयिष्यामि ते प्राणान् धनुर्मुक्तैः शितैः शरैः॥

(६।७९।१०)

दण्डकारण्यमें तुमने मेरे पिताको मारा था, तबसे मैं तुम्हें खोज रहा हूँ, आज सौभाग्यसे मिल गये हो। मकराक्षने आगे कहा—हे राम! तुम्हारा जिस अस्त्रका विशेष अभ्यास हो अथवा जिस प्रकारसे लड़नेका विशेष अभ्यास हो, उसी अस्त्रसे अथवा उसी प्रकारसे मुझसे युद्ध करो। अस्त्रोंसे, गदासे अथवा दोनों भुजाओंसे जिससे भी तुम्हारा अभ्यास हो, उसीके द्वारा आज मेरा, तुम्हारा युद्ध हो और सब लोग देखें—

अस्त्रैर्वा गदया वापि बाहुभ्यां वा रणाजिरे।
अभ्यस्तं येन वा राम वर्ततां तेन वा मृधम्॥

(६।७९।१६)

मकराक्षकी बात सुनकर श्रीरामजी हँसने लगे और बढ़-बढ़कर बोलनेवाले राक्षससे बोले—अरे राक्षस! व्यर्थका प्रलाप क्यों करता है? मात्र वाग्बलसे विजय नहीं होती है, इस तरह कह ही रहे थे कि युद्ध आरम्भ हो गया। श्रीराम और मकराक्षका युद्ध होने लगा। उस समय देव, दानव, गन्धर्व, किन्नर और बड़े-बड़े नाग उस अद्भुत युद्धको देखनेके लिये अन्तरिक्षमें खड़े हो गये—

देवदानवगन्धर्वाः किन्नराश्च महोरगाः।
अन्तरिक्षगताः सर्वे द्रष्टुकामास्तदद्भुतम्॥

(६।७९।२५)

श्रीरामने मकराक्षके रथ, सारथि, घोड़े सब समाप्त कर दिये। तब मकराक्षने शङ्करप्रदत्त भयङ्कर शूल लेकर उसे कई बार घुमा करके क्रोधपूर्वक श्रीरामजीके ऊपर चलाया। श्रीरामजीने उस भयङ्कर प्रज्वलित शूलको चार बाण मारकर आकाशमें ही काट डाला—

तमापतन्तं ज्वलितं खरपुत्रकराच्च्युतम्॥
बाणैश्चतुर्भिराकाशे शूलं चिच्छेद राघवः।

(६।७९।३४-३५)

श्रीरामजीने मकराक्षको आक्रमण करते देखकर हँसकर अपने धनुषपर पावकास्त्रका सन्धान किया। ककुत्स्थनन्दन श्रीरामके उस अस्त्रके आघातसे राक्षसका हृदय विदीर्ण हो गया, अतः वह गिरकर मर गया—

स तं दृष्ट्वा पतन्तं तु प्रहस्य रघुनन्दनः।

पावकास्त्रं ततो रामः संदधे तु शरासने॥
तेनास्त्रेण हतं रक्षः काकुत्स्थेन तदा रणे।
संछिन्नहृदयं तत्र पपात च ममार च॥

(६। ७९। ३८-३९)

मकराक्षका वध सुनकर रावण रोषपूर्वक दाँत कटकटाने लगा और मेघनादको तत्काल बुलाकर बोला—हे वीर! तुम महापराक्रमी श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको छिपकर या प्रत्यक्ष-रूपसे मार डालो, क्योंकि तुम महाबलवान् हो—

जहि वीर महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
अदृश्यो दृश्यमानो वा सर्वथा त्वं बलाधिकः॥

(६। ८०। ३)

पिताकी आज्ञा आदरपूर्वक स्वीकार करके वह समराङ्गणमें गया। पूर्वकी भाँति उसने रणभूमिमें ही अग्नि प्रज्वलित करके होमकार्य सम्पन्न किया। अग्निमें आहुति देकर अन्तर्धानकी शक्तिसे सम्पन्न होकर बोला—आज राम-लक्ष्मणको मारकर पृथ्वीको वानरशून्य करके अपने पिताको परम सन्तुष्ट कर दूँगा। ऐसा कहकर वह अन्तर्धान हो गया—

अद्य निर्वानरामुर्वीं हत्वा रामं च लक्ष्मणम्।
करिष्ये परमां प्रीतिमित्युक्त्वान्तरधीयत॥

(६। ८०। १८)

मेघनादने अनेकों बाणोंके द्वारा वानर वीरोंको घायल कर दिया। मेघनादकी वेगपूर्ण गति, रूप, धनुष और बाणोंको कोई नहीं देख पाता था। मेघोंकी घटाओंमें छिपे सूर्यकी तरह उसकी कोई भी बात किसीको ज्ञात न होती थी। उसके द्वारा कितने ही वानर क्षत-विक्षत हो गये। सैकड़ों योद्धा निष्प्राण होकर धरणीतलपर गिर पड़े—

नास्य वेगगतिं कश्चिन्न च रूपं धनुः शरान्।
न चास्य विदितं किञ्चित्सूर्यस्येवाभ्रसम्प्लवे॥
तेन विद्धाश्च हरयो निहताश्च गतासवः।
बभूवुः शतशस्तत्र पतिता धरणीतले॥

(६। ८०। ३५-३६)

तब श्रीलक्ष्मणको अत्यन्त क्रोध हुआ और उन्होंने श्रीरामजीसे कहा—अब मैं समस्त राक्षसोंके वधके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करूँगा—

लक्ष्मणस्तु ततः क्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवीत्।
ब्राह्ममस्त्रं प्रयोक्ष्यामि वधार्थं सर्वरक्षसाम्॥

(६। ८०। ३७)

श्रीलक्ष्मणजीकी यह बात सुनकर श्रीरामने सद्यः शुभलक्षण लक्ष्मणसे कहा—हे सुमित्राकुमार! एक दुष्टके निमित्तसे पृथ्वीके सम्पूर्ण राक्षसोंका वध करना उचित नहीं है—

तमुवाच ततो रामो लक्ष्मणं शुभलक्षणम्।
नैकस्य हेतो रक्षांसि पृथिव्यां हन्तुमर्हसि॥

(६। ८०। ३८)

हे लक्ष्मण! जो युद्ध न करता हो, प्रच्छन्न हो—छिपा हुआ हो, हाथ जोड़कर शरणागत हो गया हो, पलायमान हो अथवा पागल हो गया हो, ऐसे व्यक्तिको तुम्हें नहीं मारना चाहिये—

अयुध्यमानं प्रच्छन्नं प्राञ्जलिं शरणागतम्।
पलायमानं मत्तं वा न हन्तुं त्वमिहार्हसि॥

(६। ८०। ३९)

हे लक्ष्मण! यह मायावी नीच है, यदि सामने आ जाय तो वानरयूथपति इसे मार डालें फिर भी हे भ्रातः! धैर्य धारण करो, यह अवश्य मरेगा।

मायावी मेघनादने वानरोंके सहित श्रीरामजीका ध्यान युद्धसे हटानेके लिये मायामयी सीताका निर्माण किया और अपने रथपर बैठाकर समराङ्गणमें आया। समराङ्गणके बीचमें माया सीताके बाल पकड़कर हा राम! हा राम! कहती हुई मायामयी सीताको पीटने लगा—'**ताडयामास राक्षसः**' बाल पकड़कर घसीटने लगा। श्रीहनुमान्जी दुःखी होकर रोने लगे—

तां स्त्रियं पश्यतां तेषां ताडयामास राक्षसः।
क्रोशन्तीं राम रामेति मायया योजितां रथे॥

गृहीतमूर्धजां दृष्ट्वा हनूमान् दैन्यमागतः।
दुःखजं वारि नेत्राभ्यामुत्सृजन् मारुतात्मजः॥

(६।८१।१५-१६)

देखते-देखते उसने मायामयी सीताका सिर काट डाला। श्रीहनुमान्‌जीको श्रीरामजीके पास जाते देखकर दुरात्मा इन्द्रजित होम करनेकी इच्छासे निकुम्भिला देवीके मन्दिरमें गया। वहाँ जाकर उसने अग्निमें आहुति दी—

ततः प्रेक्ष्य हनूमन्तं व्रजन्तं यत्र राघवः॥
स होतुकामो दुष्टात्मा गतश्चैत्यं निकुम्भिलाम्।
निकुम्भिलामधिष्ठाय पावकं जुहवेन्द्रजित्॥

(६।८२।२४, २५)

इधर श्रीहनुमान्‌जीने श्रीरामजीके निकट जाकर रोते हुए कहा—हे प्रभो! हमलोग युद्ध करनेमें व्यस्त थे, उसी समय रावणपुत्र मेघनादने हमारे देखते-देखते रुदन करती हुई श्रीसीताजीको मार डाला—

समरे युध्यमानानामस्माकं प्रेक्षतां च सः।
जघान रुदतीं सीतामिन्द्रजिद् रावणात्मजः॥

(६।८३।८)

श्रीहनुमान्‌जीकी इस बातको सुनकर श्रीरामजी तत्काल शोकसे मूर्च्छित होकर छिन्नमूल वृक्षकी तरह भूमिपर गिर पड़े—

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्च्छितः।
निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः॥

(६।८३।१०)

समस्त वानर चारों ओरसे उछल-उछलकर वहाँ आ पहुँचे। श्रीलक्ष्मण दुःखी होकर श्रीरामजीको अपनी दोनों भुजाओंमें भरकर बैठ गये और श्रीरामजीको अनेक तरहसे समझाने लगे। उस समय श्रीविभीषणजीने भगवान् श्रीरामसे कहा—हे महाबाहो! राक्षस मेघनाद वानरोंको मोहमें डालकर चला गया है, उसने मायामयी सीताका वध किया है, इसको निश्चित जानिये। इस समय वह निकुम्भिला मन्दिरमें जाकर हवन करेगा और जब होम सम्पन्न करके वापस आयगा तब उसे संग्राममें पराजित करना इन्द्रसहित समस्त देवताओंके लिये भी कठिन होगा। निश्चय ही उसने इस मायाका प्रयोग हम लोगोंको मोहमें डालनेके लिये ही किया है—

वानरान् मोहयित्वा तु प्रतियातः स राक्षसः।
मायामयीं महाबाहो तां विद्धि जनकात्मजाम्॥
चैत्यं निकुम्भिलामद्य प्राप्य होमं करिष्यति।
हुतवानुपयातो हि देवैरपि सवासवैः॥
दुराधर्षो भवत्येष सङ्ग्रामे रावणात्मजः।
तेन मोहयता नूनमेषा माया प्रयोजिता॥

(६।८४।१३—१५)

हे महाबाहो! ब्रह्माजीने मेघनादको वर देते समय कहा था—'हे इन्द्रशत्रो! निकुम्भिला नामक वटवृक्षके पास पहुँचने तथा होमसम्बन्धी कार्य पूर्ण करनेके पूर्व जो शत्रु तुझ आततायीको मारनेके लिये आक्रमण करेगा उसके हाथसे ही तुम्हारा वध होगा'। हे राजन्! इस प्रकार धीमान् मेघनादकी मृत्युका विधान है—

निकुम्भिलामसम्प्राप्तमकृताग्निं च यो रिपुः।
त्वामाततायिनं हन्यादिन्द्रशत्रो स ते वधः॥
वरो दत्तो महाबाहो सर्वलोकेश्वरेण वै।
इत्येवं विहितो राजन् वधस्तस्यैष धीमतः॥

(६।८५।१४, १५)

हे श्रीराम! आप मेघनादका वध करनेके लिये महाबली श्रीलक्ष्मणजीको आज्ञा प्रदान करिये। उसके मारे जानेपर रावणको अपने सुहृदोंके सहित मरा ही समझिये—

वधायेन्द्रजितो राम संदिशस्व महाबलम्।
हते तस्मिन् हतं विद्धि रावणं ससुहृद्गणम्॥

(६।८५।१६)

श्रीविभीषणके आत्मीयतासे ओतप्रोत वचनोंको सुनकर श्रीरामजीने श्रीलक्ष्मणजीसे कहा—हे लक्ष्मण! वानरेन्द्र सुग्रीवकी सेना साथमें लेकर हनुमान् आदि यूथपतियों, ऋक्षराज जाम्बवान् तथा अन्य सैनिकोंसे घिरे रहकर तुम मायाबलसमन्वित राक्षसराजकुमार मेघनादका वध करो। महात्मा-सहृदयतासम्पन्न श्रीविभीषण उस मायावीकी मायाओंके जानकार हैं। एतावता ये भी अपने मन्त्रियोंके सहित तुम्हारे पीछे-पीछे जायँगे—

यद् वानरेन्द्रस्य बलं तेन सर्वेण संवृतः।
हनूमत्प्रमुखैश्चैव यूथपैः सह लक्ष्मण॥
जाम्बवेनर्क्षपतिना सह सैन्येन संवृतः।
जहि तं राक्षससुतं मायाबलसमन्वितम्॥
अयं त्वां सचिवैः सार्धं महात्मा रजनीचरः।
अभिज्ञस्तस्य मायानां पृष्ठतोऽनुगमिष्यति॥

(६। ८५। २१—२३)

श्रीलक्ष्मणजी प्रसन्न हो गये, आज उन्हें अपने जीवनका फल मिल गया। श्रीरघुनन्दन रामचन्द्रने आज सर्वप्रथम उन्हें एक दायित्वका काम दिया था। संसारके सर्वश्रेष्ठ वीर मेघनादके वधका कार्य सौंपा था। श्रीलक्ष्मण अपने जीवनकी कृतकृत्यताका अनुभव करके गद्गद थे। श्रीलक्ष्मणजी सन्नद्ध हो गये। कवच धारण कर लिया, तलवार बाँध ली और उत्तम बाण तथा बाँये हाथमें धनुष ले लिये। तदनन्तर श्रीरामजीके मङ्गलमय श्रीचरणोंका स्पर्श करके हृदयमें हर्षित हो करके श्रीसुमित्राकुमारने कहा—हे स्वामी! आज मेरे धनुषसे छूटे हुए बाण रावणपुत्रको विदीर्ण करके उसी तरह लङ्कामें गिरेंगे, जिस तरह हंस कमलोंसे भरे हुए सरोवरमें उतरते हैं। हे प्रभो! इस विशाल धनुषसे छूटे हुए मेरे बाण आज ही उस भयङ्कर राक्षसके शरीरको विदीर्ण करके उसे मौतके मुखमें डाल देंगे—

अद्य मत्कार्मुकोन्मुक्ताः शरा निर्भिद्य रावणिम्।
लङ्कामभिपतिष्यन्ति हंसाः पुष्करिणीमिव॥
अद्यैव तस्य रौद्रस्य शरीरं मामकाः शराः।
विधमिष्यन्ति भित्त्वा तं महाचापगुणच्युताः॥

(६। ८५। २६, २७)

श्रीलक्ष्मणजी इस प्रकार कहकर श्रीरामजीके चरणोंमें प्रणाम करके तथा उनकी परिक्रमा करके रावणकुमारद्वारा पालित—सुरक्षित निकुम्भिला मन्दिरकी ओर चल पड़े। श्रीलक्ष्मणजी सेनाके सहित पहुँचकर एक जगह खड़े हो गये। उस समय प्रतापवान् राजपुत्र श्रीलक्ष्मणके साथ विभीषण, वीर अङ्गद और पवननन्दन श्रीहनुमान्जी भी थे—

विभीषणेन सहितो राजपुत्रः प्रतापवान्।
अङ्गदेन च वीरेण तथानिलसुतेन च॥

(६। ८५। ३५)

विभीषणजीके परामर्शसे मेघनादकी सेनाके ऊपर वानरोंने पहले प्रहार आरम्भ कर दिया, वानरश्रेष्ठोंके प्रहारसे मेघनादकी सेना तितर-बितर होने लगी। मेघनादने जब सुना कि मेरी सेना शत्रुओंके द्वारा पीड़ित होकर बड़े दुःखमें पड़ गयी है, तब अनुष्ठान समाप्त होनेके पूर्व ही वह युद्धके लिये उठ खड़ा हुआ—

स्वमनीकं विषण्णं तु श्रुत्वा शत्रुभिरर्दितम्।
उदतिष्ठत दुर्धर्षः स कर्मण्यननुष्ठिते॥

(६। ८६। १४)

मेघनादने देखा कि कपिशार्दूल श्रीहनुमान्जी पर्वतकी भाँति अचल होकर निर्भय होकर अपने शत्रुओंका विनाश कर रहे हैं—

स ददर्श कपिश्रेष्ठमचलोपममिन्द्रजित्।
सूदमानमसन्त्रस्तममित्रान्पवनात्मजम्॥

(६। ८६। २५)

मेघनादने श्रीहनुमान्जीके मस्तकपर बाणों, तलवारों और फरसोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी। श्रीहनुमान्ने कहा—अरे दुर्बुद्धि मेघनाद! यदि

तुम बहुत बड़े वीर हो तो आओ मेरे साथ मल्लयुद्ध करो। मेरे साथ युद्ध करके तुम जीवित नहीं लौट सकोगे। इसके अनन्तर श्रीहनुमान् और मेघनादका बड़ा भयङ्कर युद्ध होने लगा।

विभीषणने एक महान् वनमें प्रवेश करके श्रीलक्ष्मणको मेघनादके कर्मानुष्ठानका स्थान दिखाया। श्रीविभीषणने कहा—हे लक्ष्मण! जबतक मेघनाद इस वटवृक्षके नीचे आये, उसके पहले ही आप अपने सुदीप्त बाणोंके द्वारा इस बलवान् रावणकुमार मेघनादको रथ, घोड़े और सारथिसहित नष्ट कर दीजिये—

तमप्रविष्टं न्यग्रोधं बलिनं रावणात्मजम्।
विध्वंसय शरैर्दीप्तैः सरथं साश्वसारथिम्॥

(६। ८७। ६)

उसी समय मेघनाद वहाँ आ गया, श्रीविभीषणको देखते ही कठोर शब्दोंमें कहने लगा—हे दुर्बुद्धे! तुमने स्वजनोंका परित्याग करके परभृत्यत्व स्वीकार किया है एतावता तुम साधु पुरुषोंके द्वारा निन्दनीय और शोच्य हो—

शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः।
यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः॥

(६। ८७। १३)

मेघनादने कहा—हे रावणानुज राक्षस! तुमने लक्ष्मणको इस स्थानतक ले आकर मेरा वध करानेके लिये प्रयत्न करके जैसी निर्दयता दिखायी है, ऐसा पुरुषार्थ तुम्हारे-जैसा स्वजन ही कर सकता है। तुम्हारे अतिरिक्त दूसरे स्वजनके लिये यह करना सम्भव नहीं है—

निरनुक्रोशता चेयं यादृशी ते निशाचर।
स्वजनेन त्वया शक्यं पौरुषं रावणानुज॥

(६। ८७। १७)

अपने भाईके पुत्र मेघनादके ऐसा कहनेपर श्रीविभीषणने प्रत्युत्तर दिया—हे राक्षस! तू ऐसी शेखी क्यों बघारता है? जान पड़ता है तुझे मेरे शीलका ज्ञान नहीं है—

इत्युक्तो भ्रातृपुत्रेण प्रत्युवाच विभीषणः।
अजानन्निव मच्छीलं किं राक्षस विकत्थसे॥

(६। ८७। १८)

हे इन्द्रजित्! जो दूसरोंके धनके अपहरणमें लगा हो और परस्त्रीपर हाथ लगाता हो, उस दुरात्माको जलते हुए घरकी तरह त्याज्य कहा गया है—

परस्वहरणे युक्तं परदाराभिमर्शकम्।
त्याज्यमाहुर्दुरात्मानं वेश्म प्रज्वलितं यथा॥

(६। ८७। २२)

श्रीविभीषणने आगे कहा—महर्षियोंका घोर वध, सम्पूर्ण देवताओंके साथ विरोध, अभिमान, रोष, वैर और धर्मके प्रतिकूल चलना ये सभी दोष मेरे भाईमें हैं। ये दुर्गुण उसके प्राण और ऐश्वर्यके नाशक हैं। इन दुर्गुणोंने उसके समस्त गुणोंको आच्छादित कर दिया है, जैसे मेघ पर्वतोंको आच्छादित कर देते हैं—

महर्षीणां वधो घोरः सर्वदेवैश्च विग्रहः।
अभिमानश्च रोषश्च वैरत्वं प्रतिकूलता॥
एते दोषा मम भ्रातुर्जीवितैश्वर्यनाशनाः।
गुणान् प्रच्छादयामासुः पर्वतानिव तोयदाः॥

(६। ८७। २४, २५)

इन दोषोंसे मैंने अपने भाई और तेरे पिताको छोड़ा है। अब न तो यह लङ्का ही रहेगी, न तू रहेगा और न तेरे पिता ही रह जायँगे—

दोषैरेतैः परित्यक्तो मया भ्राता पिता तव।
नेयमस्ति पुरी लङ्का न च त्वं न च ते पिता॥

(६। ८७। २६)

अरे राक्षस! तू अत्यन्त अभिमानी, उद्दण्ड और मूर्ख है, कालपाशसे निबद्ध है, अतः तेरी जो इच्छा हो कह ले—

अतिमानश्च बालश्च दुर्विनीतश्च राक्षस।

बद्धस्त्वं कालपाशेन ब्रूहि मां यद् यदिच्छसि॥

(६। ८७। २७)

इस संवादके अनन्तर मेघनाद रथपर चढ़कर जब श्रीलक्ष्मणसे युद्ध करनेके लिये चला तब उसने देखा कि श्रीलक्ष्मणजी श्रीहनुमान्‌जीकी पीठपर आरूढ़ होकर उदयाचलपर विराजमान भगवान् सूर्यके समान प्रकाशमान् हैं—

'हनुमत्पृष्ठमारूढमुदयस्थरविप्रभम्' ।

उसके पश्चात् मेघनाद और श्रीलक्ष्मणके उत्तर और प्रत्युत्तरका विस्तृत वर्णन है। मेघनादने कहा—हे लक्ष्मण! जैसे आग रूईके ढेरको भस्म कर देती है, उसी प्रकार मेरे बाण आज तुम्हारे शरीरकी धज्जियाँ उड़ा देंगे—

अद्य वो मामका बाणा महाकार्मुकनिःसृताः।
विधमिष्यन्ति गात्राणि तूलराशिमिवानलः॥

(६। ८८। ७)

श्रीलक्ष्मणने कहा—अरे राक्षस! इस समय मैं तुम्हारे बाणोंके आगे खड़ा हूँ। आज तुम अपना वह तेज दिखाओ। केवल आत्मश्लाघा करनेसे क्या लाभ है?

यथा बाणपथं प्राप्य स्थितोऽस्मि तव राक्षस।
दर्शयस्वाद्य तत्तेजो वाचा त्वं किं विकत्थसे॥

(६। ८८। १६)

मेघनादने कहा—परम दुर्मति राम! तुम-जैसे अनार्य, क्षत्रियाधम और अपने भक्त भाईको आज मेरे द्वारा मारा गया देखोगे—

क्षत्रबन्धुं सदानार्यं रामः परमदुर्मतिः।
भक्तं भ्रातरमद्यैव त्वां द्रक्ष्यति हतं मया॥

(६। ८८। २४)

श्रीलक्ष्मणने कहा—अरे दुर्बुद्धि राक्षस! वाग्बलका परित्याग कर दे। अरे क्रूरकर्मन्! तू ये सब बातें कहता क्यों है? करके दिखा—

वाग्बलं त्यज दुर्बुद्धे क्रूरकर्मन् हि राक्षस।
अथ कस्माद् वदस्येतत् सम्पादय सुकर्मणा॥

(६। ८८। २७)

श्रीलक्ष्मण और मेघनादमें अत्यन्त लोमहर्षक युद्ध आरम्भ हो गया। एक ओर नरश्रेष्ठ श्रीलक्ष्मण थे तो दूसरी ओर राक्षसश्रेष्ठ मेघनाद। दोनों युद्धस्थलमें एक-दूसरेपर विजय पाना चाहते थे। उन दोनोंका वह तुमुल युद्ध महाभयङ्कर था—

स बभूव महाभीमो नरराक्षससिंहयोः।
विमर्दस्तुमुलो युद्धे परस्पर जयैषिणोः॥

(६। ८८। ३३)

श्रीविभीषणने युद्धभूमिमें वानर वीरोंको उत्साहित करते हुए बड़ा प्रेरक उद्बोधन किया है। अन्तमें श्रीविभीषण कहते हैं—हे वानरो! तुमलोग झुण्ड बनाकर इसके समीपवर्त्ती सेवकोंपर टूट पड़ो और उन्हें मार डालो—

वानरा घ्नत सम्भूय भृत्यानस्य समीपगान्।
इति तेनातियशसा राक्षसेनाभिचोदिताः॥

(६। ८९। १९)

श्रीमान् लक्ष्मणने मेघनादके सारथीका मस्तक शीघ्रतासे धड़से अलग कर दिया। सारथीके वध हो जानेपर महातेजस्वी मन्दोदरीकुमार स्वयं ही सारथ्य भी करता था और धनुष भी चलाता था। युद्धस्थलमें मेघनादका यह कार्य अति अद्भुत था—

स यन्तरि महातेजा हते मन्दोदरीसुतः॥
स्वयं सारथ्यमकरोत् पुनश्च धनुरस्पृशत्॥
तदद्भुतमभूत्तत्र सारथ्यं पश्यतां युधि।

(६। ८९। ४२, ४३)

तदनन्तर प्रमाथी, रभस, शरभ और गन्धमादन इन चार भयङ्कर पराक्रमी वीरोंने मेघनादके रथके घोड़ोंको भी मार गिराया और रथ भी तोड़ दिया। सारथि तो पहले ही मारा गया था। जब घोड़े भी मारे गये तब रावणकुमार रथसे

कूदकर बाणोंकी वर्षा करता हुआ श्रीलक्ष्मणजीकी ओर दौड़ा—

स हताश्वादवप्लुत्य रथान्मथितसारथिः।
शरवर्षेण सौमित्रिमभ्यधावत रावणिः॥

(६। ८९। ५२)

मेघनादने धीरेसे राक्षसोंसे कहकर लङ्का जाकर सुसज्जित रथपर बैठकर रणभूमिमें आकर श्रीलक्ष्मणजीके ऊपर आक्रमण किया। रावण-कुमारको रथस्थ—रथपर बैठा देखकर सुमित्राकुमार, महापराक्रमी वानरगण तथा विभीषण आदि सबको परम विस्मय हुआ। सब लोग उस धीमान् मेघनादका लाघव—फुर्ती देखकर दंग रह गये—

ततो रथस्थमालोक्य सौमित्री रावणात्मजम्।
वानराश्च महावीर्या राक्षसश्च विभीषणः॥
विस्मयं परमं जग्मुर्लाघवात् तस्य धीमतः॥

(६। ९०। १३, १४)

नये रथपर बैठकर मेघनादने वानरोंका संहार करना आरम्भ कर दिया। उसकी मारको सहन न कर सकनेके कारण वानरगण श्रीलक्ष्मणजीकी शरणमें गये। तब शत्रुके युद्धसे श्रीलक्ष्मणका क्रोध भड़क उठा। वे रोषसे जल उठे और उन्होंने हस्तलाघव प्रदर्शित करते हुए मेघनादके धनुषको काट दिया—

सौमित्रिं शरणं प्राप्ताः प्रजापतिमिव प्रजाः।
ततः समरकोपेन ज्वलितो रघुनन्दनः।
चिच्छेद कार्मुकं तस्य दर्शयन् पाणिलाघवम्॥

(६। ९०। १७)

मेघनादने दूसरा धनुष लेकर श्रीलक्ष्मणके ऊपर बाणवर्षा शुरू कर दी। श्रीलक्ष्मण और इन्द्रजित् दोनों वीर महाबलवान् थे, दोनोंके धनुष भी महान्—बड़े थे। दोनों भयङ्कर पराक्रमी थे। वे दोनों एक-दूसरेको बाणोंसे घायल करने लगे—

लक्ष्मणेन्द्रजितौ वीरौ महाबलशरासनौ।
अन्योऽन्यं जघ्नतुर्वीरौ विशिखैर्भीमविक्रमौ॥

(६। ९०। ३६)

इसी बीच मेघनादने विभीषणपर तीन बाणोंका प्रहार किया। विभीषणने क्रुद्ध होकर दुरात्मा रावणकुमारके चारों घोड़ोंको गदाप्रहारसे मार गिराया—

तस्मै दृढतरं क्रुद्धो जघान गदया हयान्।
विभीषणो महातेजा रावणेः स दुरात्मनः॥

(६। ९०। ४१)

मेघनादने अपने चाचा विभीषणको मारनेके लिये शक्तिप्रहार किया। उस शक्तिको आते देखकर सुमित्रानन्दसंवर्द्धन श्रीलक्ष्मणकुमारने बाणोंसे उसके दस टुकड़े करके पृथ्वीपर गिरा दिया—

स हताश्वादवप्लुत्य रथान्निहतसारथेः।
अथ शक्तिं महातेजाः पितृव्याय मुमोच ह॥
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य सुमित्रानन्दवर्द्धनः।
चिच्छेद निशितैर्बाणैर्दशधापातयद् भुवि॥

(६। ९०। ४२, ४३)

इसके बाद श्रीलक्ष्मण और मेघनादमें दिव्यास्त्रोंके द्वारा बड़ा भयङ्कर संग्राम हुआ। इस युद्धको पढ़नेसे ज्ञात होता है कि दोनों कितने महान् पराक्रमी और दिव्यास्त्रोंके परिज्ञानसे सम्पन्न थे। अन्तमें सुमित्राकुमार श्रीलक्ष्मणने मेघनादको मारनेकी इच्छासे अपने उत्तम धनुषपर बाण रखकर ऐन्द्रास्त्रका प्रयोग किया और उसे छोड़ते समय कहा—यदि दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम धर्मात्मा और सत्यप्रतिज्ञ हैं तथा पुरुषार्थमें भी उनकी बराबरी करनेवाला अन्य कोई वीर नहीं है तो हे अस्त्र! तुम इस रावणि—मेघनादका वध कर डालो—

धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि।
पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वस्तदैनं जहि रावणिम्॥

(६।६०।६९)

धनुषसे छूटते ही ऐन्द्रास्त्रने सुप्रकाशित

कुण्डलोंसे संयुक्त शिरस्त्राणसहित मेघनादके दीप्तिमान् मस्तकको काटकर धरतीपर गिरा दिया—

तच्छिरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम्।
प्रमथ्येन्द्रजितः कायात् पातयामास भूतले॥

(६। ९०। ७१)

श्रीलक्ष्मणके इस कार्यसे—इन्द्रजित्के वधसे इन्द्र, देवता, महर्षि सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। आकाशमें अप्सराओंका नृत्य होने लगा, गन्धर्व गाने लगे, दुन्दुभि-ध्वनि होने लगी, देवता फूलकी वर्षा करने लगे। अद्भुत दृश्य हो गया—

आकाशे चापि देवानां शुश्रुवे दुन्दुभिस्वनः।
नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च गन्धर्वैश्च महात्मभिः॥
ववर्षुः पुष्पवर्षाणि तदद्भुतमिवाभवत्।
प्रशशाम हते तस्मिन् राक्षसे क्रूरकर्मणि॥

(६। ९०। ८५, ८६)

श्रीविभीषण, श्रीहनुमान्जी और श्रीजाम्बवान् एवं अन्य सब वानरयूथपति श्रीलक्ष्मणजीका अभिनन्दन करते हुए नाना प्रकारकी स्तुति करने लगे—

विभीषणो हनूमांश्च जाम्बवांश्चर्क्षयूथपः।
विजयेनाभिनन्दन्तस्तुष्टुवुश्चापि लक्ष्मणम्॥

(६। ९०। ९०)

वानर किलकिला ध्वनि करते हुए कूदते, गर्जते श्रीलक्ष्मणजीको घेरकर खड़े हो गये। अपनी पूँछोंको हिलाते और फटकारते हुए वानर वीर 'श्रीलक्ष्मणजीकी जय हो' यह नारा लगाने लगे—

क्ष्वेडन्तश्च प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः।
लब्धलक्षा रघुसुतं परिवार्योपतस्थिरे॥
लाङ्गूलानि प्रविध्यन्तः स्फोटयन्तश्च वानराः।
लक्ष्मणो जयतीत्येव वाक्यं विश्रावयंस्तदा॥

(६। ९०। ९१, ९२)

श्रीलक्ष्मणजी प्रसन्नतासे श्रीहनुमान्, जाम्बवान् आदिसे मिलकर वहाँ आये, जहाँ श्रीरामजी और सुग्रीव विराजमान थे। उस समय श्रीलक्ष्मण श्रीविभीषण और श्रीहनुमान्का सहारा लेकर चल रहे थे—

आजगाम ततः शीघ्रं यत्र सुग्रीवराघवौ।
विभीषणमवष्टभ्य हनूमन्तं च लक्ष्मणः॥

(६। ९१। ३)

श्रीलक्ष्मणजी भगवान् श्रीरामको प्रणाम करके उनके पास खड़े हो गये। उसी समय श्रीविभीषणने भगवान् श्रीरामचन्द्रसे कहा—महात्मा श्रीलक्ष्मणजीने रावणकुमार इन्द्रजित्का मस्तक उच्छिन्न कर दिया है। हे प्रभो! इस प्रकार मेघनादवधका भयङ्कर कार्य सम्पन्न हो गया—

रावणेस्तु शिरश्छिन्नं लक्ष्मणेन महात्मना।
न्यवेदयत रामाय तदा हृष्टो विभीषणः॥

(६। ९१। ६)

इस समाचारसे श्रीरामजीको अनुपम प्रहर्ष प्राप्त हुआ और वे बोले—साधु! साधु! धन्य है! हे लक्ष्मण! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। आज तुमने अत्यन्त दुष्कर कर्म सम्पन्न किया है। रावणपुत्र मेघनादके मरनेसे तुम यह निश्चय मान लो कि अब हमलोग युद्धमें जीत गये—

श्रुत्वैव तु महावीर्यो लक्ष्मणेनेन्द्रजिद्वधम्।
प्रहर्षमतुलं लेभे वाक्यं चेदमुवाच ह॥
साधु लक्ष्मण तुष्टोऽस्मि कर्म चासुकरं कृतम्।
रावणेर्हि विनाशेन जितमित्युपधारय॥

(६। ९१। ७, ८)

कीर्तिवर्द्धन श्रीलक्ष्मण लजा रहे थे, परन्तु पराक्रमी श्रीरामजीने उनको बलपूर्वक खींच करके अपनी गोदमें बिठा लिया और अत्यन्त स्नेहसे उनका मस्तक सूँघा। युद्धमें घायल श्रीलक्ष्मणको गोदमें बिठाकर अपने हृदयमें लगाकर बड़े प्यारसे बार-बार उनका मुख देखने लगे।

स तं शिरस्युपाघ्राय लक्ष्मणं कीर्तिवर्द्धनम्।

लज्जमानं बलात् स्नेहादङ्कमारोप्य वीर्यवान्॥
उपवेश्य तमुत्सङ्गे परिष्वज्यावपीडितम्।
भ्रातरं लक्ष्मणं स्निग्धं पुनः पुनरुदैक्षत॥

(६। ९१। ९, १०)

भगवान् श्रीरामने श्रीलक्ष्मणसे कहा—हे सौमित्रे! तुमने अपने दुष्कर कर्मसे परम कल्याणमय कार्य सम्पन्न किया है। आज पुत्रके मारे जानेपर मैं रावणको भी मारा गया ही मानता हूँ। उस दुरात्मा शत्रुकी मृत्युसे ही आज मैंने विजय पा ली है। सौभाग्यकी बात है कि समराङ्गणमें मेघनादको मार करके तुमने निर्दयी रावणकी दक्षिण भुजाको ही काट दिया है, क्योंकि रावणका मेघनाद ही सबसे बड़ा आश्रय था। विभीषण और हनुमान्ने भी रणभूमिमें महान् पराक्रम किया है। तुम लोगोंने सम्मिलित प्रयास करके तीन दिन और तीन रात्रिमें किसी तरह वीर मेघनादका वध किया और मुझे शत्रुरहित बना दिया, अब तो स्वयं रावण ही युद्धके लिये निकलेगा—

कृतं परमकल्याणं कर्म दुष्करकर्मणा।
अद्य मन्ये हते पुत्रे रावणं निहतं युधि॥
अद्याहं विजयी शत्रौ हते तस्मिन् दुरात्मनि।
रावणस्य नृशंसस्य दिष्ट्या वीर त्वया रणे॥
छिन्नो हि दक्षिणो बाहुः स हि तस्य व्यपाश्रयः।
विभीषणहनूमद्भ्यां कृतं कर्म महद् रणे॥
अहोरात्रैस्त्रिभिर्वीरः कथञ्चिद् विनिपातितः।
निरमित्रः कृतोऽस्म्यद्य निर्यास्यति हि रावणः॥

(६। ९१। १३—१६)

इसके पश्चात् श्रीरामजीने देखा कि श्रीलक्ष्मणजीके श्रीअङ्गोंमें अनेक घाव हो गये हैं, उन्हें साँस लेनेमें भी कष्ट हो रहा है, अतः उन्होंने वानरेन्द्र सुषेण वैद्यको आज्ञा दी—हे सुषेणजी! आप शीघ्र ही ऐसी चिकित्सा करें कि मित्रवत्सल लक्ष्मण पूर्णतः स्वस्थ हो जायँ। लक्ष्मण और विभीषण दोनोंको शीघ्र ही विशल्य करके—बाण निकाल करके घाव भर दें। अन्य सभी वानरों, रीछों और सशल्य वीरोंको विशल्य कर दो, सभीको प्रयत्न करके सुखी और स्वस्थ कर दो, श्रीरामजीके इस प्रकार कहनेपर वानरेन्द्र सुषेणने श्रीलक्ष्मणजीकी नासिकामें एक बहुत ही उत्तम औषधि लगा दी। उसका आघ्राण करते ही—सूँघते ही श्रीलक्ष्मणके शरीरसे बाण निकल गये और उनकी समस्त व्यथा निवृत्त हो गयी तथा उनका शरीर निर्व्रण हो गया—

एवमुक्तः स रामेण महात्मा हरियूथपः।
लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुषेणः परमौषधम्॥
स तस्य गन्धमाघ्राय विशल्यः समपद्यत।
तदा निर्वेदनश्चैव संरूढव्रण एव च॥

(६। ९१। २४, २५)

दशरथनन्दन महात्मा—विशाल अन्तःकरणवाले श्रीरामने अपने अनुज श्रीलक्ष्मणके सुदुष्कर पराक्रमकी महान् श्लाघा की। युद्धमें मेघनादका वध हो गया, यह सुनकर वानरेन्द्र सुग्रीवको भी अत्यन्त हर्ष हुआ—

अपूजयत्कर्म स लक्ष्मणस्य सुदुष्करं दाशरथिर्महात्मा।
बभूव हृष्टो युधि वानरेन्द्रो निशम्य तं शक्रजितं निपातितम्॥

(६। ९१। २९)

रावणके मन्त्रियोंने तुरन्त जाकर रावणको यह समाचार दिया—हे महाराज! विभीषणकी सहायतासे लक्ष्मणने आपके महान् तेजस्वी पुत्रको युद्धमें हमारे देखते-देखते मार डाला—

युद्धे हतो महाराज लक्ष्मणेन तवात्मजः।
विभीषणसहायेन मिषतां नो महाद्युतिः॥

(६। ९२। २)

मेघनादवधका समाचार सुनकर रावण सद्यःमूर्च्छित हो गया। बहुत देरके बाद होशमें

आकर पुत्रशोकसे व्याकुल होकर दीनतापूर्वक विलाप करने लगा—हा वत्स! हा महाबल! हा राक्षसचमूकर्णधार! तुम आज मुझे छोड़कर चले गये। मैं सोचता था कि तुम मुझे सुयोग्य उत्तराधिकारीके रूपमें प्राप्त हो गये हो, परन्तु हे महावीर! तुम लङ्का नगरीके यौवराज्यका परित्याग करके चले गये। तुम्हारे रहनेसे लङ्कामें विशेष चहल-पहल रहती थी; परन्तु हा हन्त! तुम लङ्काको छोड़कर ही चले गये। तुम राक्षसकुलके भूषण थे; परन्तु राक्षसोंको छोड़कर चले गये। तुम्हारी माताका तुमसे बड़ा स्नेह था, हे पुत्र! अब मैं तुम्हारी माँको क्या जवाब दूँगा। हा हन्त! उस पुत्रवत्सला जननीको छोड़कर भी तुम चले गये। तुम्हारे ऊपर मेरा बड़ा स्नेह था, तुम्हारे बलपर मैं निश्चिन्त रहता था; परन्तु तुम मेरी वृद्धावस्थाको अनाथ करके चले गये। हे पुत्र! तुमने अपनी पत्नियोंकी भी चिन्ता नहीं की, इनको भी छोड़कर चले गये। हाय-हाय! हम लोगोंको छोड़कर तुम कहाँ चले गये?

यौवराज्यं च लङ्कां च रक्षांसि च परन्तप।
मातरं मां च भार्याश्च क्व गतोऽसि विहाय नः॥

(६। ९२। १३)

रावण अपने पुत्रवधसे सन्तप्त होकर क्रोधके वशमें होकर अपनी बुद्धिसे सोच-विचारकर श्रीसीताजीको मारनेका निश्चित विचार किया—

स पुत्रवधसन्तप्तः शूरः क्रोधवशं गतः।
समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या वैदेह्या रोचयद् वधम्॥

(६। ९२। २०)

क्रोधसे अचेत-सा हुआ रावण श्रीसीताजीका वध करनेके लिये दौड़ा—

अभिदुद्राव वैदेहीं रावणः क्रोधमूर्च्छितः।

(६। ९२। ४४)

उस समय सब समाचार सुनकर श्रीसीताजीने कहा—हा हन्त! यद्यपि मैं सनाथा हूँ; परन्तु यह नृशंस, दुर्मति मुझे अनाथाकी भाँति मार डालेगा—

वधिष्यति सनाथां मामनाथामिव दुर्मतिः।

(६। ९२। ४९)

उस समय रावणके सुशील और शुद्ध आचार-विचारवाले सुपार्श्व नामक बुद्धिमान् मन्त्रीने दूसरे मन्त्रियोंके निवारण करनेपर भी रावणको नीतिपूर्वक बड़े प्रेमसे समझाकर सीतावधरूप पापकर्मसे बचा लिया।

इस प्रसङ्गमें एक बड़ी भावपूर्णकथा सुननेमें आती है, सम्भवतः कृत्तिवासरामायणकी है। मेघनादवधका दारुण समाचार सुनकर पुत्रवत्सला परमधैर्यशालिनी मन्दोदरीका धैर्य समाप्त हो गया। कुछ क्षणोंके लिये उसका विचार भी समाप्त हो गया। यद्यपि वह रामभक्त थी; परन्तु पुत्रके सद्यः समुत्पन्न शोकने उसकी बुद्धिको मोहग्रस्त कर दिया। वह समस्त अनर्थोंकी जड़ श्रीसीताजीको मानकर आग्नेय नेत्रोंसे आँसू और क्रोधकी वर्षा करती हुई बड़ी तीव्र गतिसे अशोकवाटिकाकी ओर चली।

विभीषणकी पत्नी सरमाने श्रीसीताजीसे कहा—हे मिथिलेशनन्दिनि! मेघनादकी माता राजरानी मन्दोदरी पुत्रशोकसे सन्तप्त परन्तु अत्यन्त क्रोधपूर्वक आपके सन्निकट ही आ रही हैं। हमने अपने जीवनमें उन्हें इतना व्याकुल और क्रुद्ध कभी नहीं देखा है। यह तो परम सुशीला एवं मधुरभाषिणी हैं। श्रीसीताजीका हृदय आशङ्काओंसे भर गया। वे तत्काल उठकर मन्दोदरीके आते ही उसके चरणोंमें गिर पड़ीं और कहने लगीं—हे मातः! आपके पुत्रको मेरे पुत्रने मारा है। इसलिये मैं आपसे विनयपूर्वक प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरे पुत्रको कहीं शाप न दे देना। हे देवि! मेरे मातृभक्त पुत्रने अपनी माताके उद्धारके लिये ही

आपके पुत्रका वध किया है। इसलिये आपको मेरे धर्मनिरत पुत्रको क्षमा करना चाहिये। यदि आपको दण्ड दिये बिना सन्तोष न हो तो जो भी दण्ड देना हो मैं उपस्थित हूँ। मुझे दे देना, मेरे पुत्रको न देना। हे मातः! आप भी माता हैं और मैं भी माता हूँ। यह निश्चित है कि माताके हृदयकी व्यथाको माता ही जान सकती है। आपके पुत्रने अधर्मका साथ दिया है और मेरे पुत्रने धर्मकी रक्षाके लिये कार्य किया है। हे मातः, दोनोंका अन्तर समझकर फिर कुछ निर्णय करें।

श्रीसीताजीके मुखसे 'माता' शब्द सुनकर मन्दोदरीकी समस्त व्यथा निवृत्त हो गयी। उसका क्रोध शान्त हो गया, उसका तमतमाया मुखमण्डल सौम्य हो गया, उसकी आँखोंसे अजस्र करुणाकी वर्षा होने लगी; उसने श्रीसीताजीको उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया और कहा—हे पुत्रि! हे सीते! आज तुम्हारे मुखसे 'माता' शब्द सुनकर मुझे सब कुछ मिल गया। मेघनाद-वधके उपरान्त मुझे तुम्हारी तरह परब्रह्म महिषी पुत्री प्राप्त हो गयी। मेरा जीवन सफल हो गया। अब मुझे कोई क्लेश नहीं है, न मुझे पुत्रवधका शोक है और न पतिके वधकी चिन्ता।

हे पुत्रि! मैं आज अपने रोम-रोमसे आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हारा अखण्ड सौभाग्य बना रहे, तुम्हारे प्राणेश्वर रघुनन्दन श्रीराम युद्धमें विजयी हों, इस परिवर्तित भावनाने सबके हृदयको विभोर कर दिया। समस्त वातावरण करुण हो गया। माता और पुत्रीके अद्भुत मिलनसे आज यह रावणकी अशोकवाटिका भी धन्य-धन्य हो गयी।

पुत्रशोकसे सन्तप्त रावण अपनी सेनाके मुख्य योद्धाओंसे हाथ जोड़कर बोला—

अब्रवीच्च स तान् सर्वान् बलमुख्यान् महाबलः।
रावणः प्राञ्जलिर्वाक्यं पुत्रव्यसनकर्शितः॥

(६। ९३। २)

रावणने कहा—हाथी, घोड़े, रथसमुदाय तथा पैदल सेनाको लेकर आपलोग जाकर एकमात्र रामको चारों ओरसे घेरकर मार डालो—

सर्वे भवन्तः सर्वेण हस्त्यश्वेन समावृताः।
निर्यान्तु रथसङ्घैश्च पादातैश्चोपशोभिताः॥
एकं रामं परिक्षिप्य समरे हन्तुमर्हथ।
वर्षन्तः शरवर्षाणि प्रावृट्काल इवाम्बुदाः॥

(६। ९३। ३, ४)

रावणकी आज्ञाको शिरोधार्य करके सेना लेकर श्रीरामदलमें प्रविष्ट होकर राक्षसलोग भयङ्कर युद्ध करने लगे। उन्होंने अपने पराक्रमसे वानरी सेनाको व्याकुल कर दिया। राक्षसोंके द्वारा बाणोंसे पीड़ित विशाल वानरी सेनाने परम शरण्य दशरथनन्दन श्रीरामकी शरणागति स्वीकार की। महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी सद्यः धनुष-बाण लेकर राक्षसी सेनामें प्रविष्ट होकर बाणोंकी वर्षा करने लगे—

राक्षसैर्वध्यमानानां वानराणां महाचमूः।
शरण्यं शरणं याता रामं दशरथात्मजम्॥
ततो रामो महातेजा धनुरादाय वीर्यवान्।
प्रविश्य राक्षसं सैन्यं शरवर्षं ववर्ष च॥

(६। ९३। १७, १८)

श्रीराघवेन्द्र अत्यन्त लाघवपूर्वक राक्षसी सेनाका विनाश कर रहे थे। ये श्रीराम हैं, जो हाथियोंकी सेनाको मार रहे हैं, ये रहे राम, जो महारथियोंका संहार कर रहे हैं, ये राम हैं, जो अपने तीक्ष्ण बाणोंसे घोड़ोंके सहित पैदल सेनाका वध कर रहे हैं, इस प्रकार वे सब राक्षस श्रीरघुनाथजीकी किञ्चित् समानताके कारण सभीको राम समझ लेते हैं और रामके ही भ्रमसे कुपित होकर आपसमें एक-दूसरेको मारने लगते थे—

एष हन्ति गजानीकमेष हन्ति महारथान्।
एष हन्ति शरैस्तीक्ष्णैः पदातीन् वाजिभिः सह॥

इति ते राक्षसाः सर्वे रामस्य सदृशान् रणे।
अन्योन्यं कुपिता जघ्नुः सादृश्याद् राघवस्य तु॥

(६। ९३। २४, २५)

राक्षसोंको कभी तो समराङ्गणमें हजारों राम दीखते थे और कभी एक ही रामको देखते थे—

ते तु रामसहस्राणि रणे पश्यन्ति राक्षसाः।
पुनः पश्यन्ति काकुत्स्थमेकमेव महाहवे॥

(६। ९३। २७)

श्रीरामजीकी युद्धभूमिमें राक्षसोंका नाश करते हुए साक्षात् चक्रके समान ज्ञात होते थे। महर्षि श्रीवाल्मीकिजीने बड़ी साहित्यिक भाषामें श्रीरामचक्रका निरूपण किया है। समयाभावसे इस चक्रके चक्करको प्रणाम करता हूँ।

श्रीरामजीने केवल डेढ़ घण्टेमें ही राक्षसोंके वायुके समान वेगवान् दस हजार रथोंकी, अठारह हजार हाथियोंकी, चौदह हजार सवारोंसहित घोड़ोंकी और दो लाख पैदल सेनाओंका विनाश कर डाला—

अनीकं दशसाहस्रं रथानां वातरंहसाम्।
अष्टादश सहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम्॥
चतुर्दश सहस्राणि सारोहाणां च वाजिनाम्।
पूर्णे शतसहस्रे द्वे राक्षसानां पदातिनाम्॥
दिवसस्याष्टभागेन शरैरग्निशिखोपमैः।
हतान्येकेन रामेण रक्षसां कामरूपिणाम्॥

(६। ९३। ३१—३३)

शेष निशाचर लङ्कापुरीमें भाग गये। देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियोंने साधुवाद देकर भगवान् श्रीरामकी इस कार्यकी प्रशंसा की—

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
साधु साध्विति रामस्य तत्कर्म समपूजयन्॥

(६। ९३। ३६)

जिन स्त्रियोंके पति, पुत्र और बान्धव मारे गये थे, वे अनाथ राक्षसियाँ एकत्र होकर दुःखसे व्यथित होकर विलाप करती हुई शूर्पणखाको कोसने लगीं—हाय हाय! इस दुष्टा शूर्पणखाने ही सब नाश कर डाला। इस धँसे हुए पेटवाली विकराल बुढ़ियाने कन्दर्पके समान सुन्दर श्रीरामजीके पास जानेकी हिम्मत कैसे की? कहाँ सर्वगुणसम्पन्न महाबली दिव्य मुखारविन्दवाले श्रीरामजी और कहाँ सभी गुणोंसे रहित विकराल मुखी राक्षसी, जिसके सारे अङ्गोंमें झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, जिसके सिरके बाल सफेद हो गये हैं, इतना वैषम्य होनेपर भी यह क्रूर बूढ़िया शूर्पणखा उनके पास कैसे गयी?

कथं सर्वगुणैर्हीना गुणवन्तं महौजसम्।
सुमुखं दुर्मुखी रामं कामयामास राक्षसी॥

(६। ९४। ८)

श्रीविदेहनन्दिनीकी कामना करनेवाले विराध राक्षसको एक ही बाणसे मारनेवाले श्रीरामजीका एक विराधवधका दृष्टान्त ही उनकी अपरिमित शक्तिको जाननेके लिये पर्याप्त है—

वैदेहीं प्रार्थयानं तं विराधं प्रेक्ष्य राक्षसम्।
हतमेकेन रामेण पर्याप्तं तन्निदर्शनम्॥

(६। ९४। १३)

जनस्थानमें चौदह हजार सेनाके साथ खर-दूषण-त्रिशिराका सूर्यकी तरह प्रकाशमान बाणोंसे विनाश कर डाला था। उनकी अजेयताको समझनेके लिये इससे बढ़कर और कौन उदाहरण सम्भव है?

खरश्च निहतः संख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा।
शरैरादित्यसङ्काशैः पर्याप्तं तन्निदर्शनम्॥

(६। ९४। १५)

मेरुपर्वतके समान महाकाय बलवान् इन्द्रकुमारवालीका एक वाणसे वध कर दिया। यह एक ही दृष्टान्त उनके पराक्रमको जाननेके लिये पर्याप्त है—

जघान वलिनं रामः सहस्रनयनात्मजम्।
वालिनं मेरुसंकाशं पर्याप्तं तन्निदर्शनम्॥

(६। ९४। १७)

इस प्रकार विलापमें अनाथ राक्षसियाँ अनेक प्रकारसे श्रीराम-चरित्रका गान करती हुई हाय! मेरा पुत्र मर गया, मेरे भाईको मरना पड़ा, मेरे पति समरभूमिमें मार डाले गये। लङ्काके घर-घरमें राक्षसियोंके ये ही शब्द सुनायी देते हैं—

मम पुत्रो मम भ्राता मम भर्ता रणे हतः।
इत्येष श्रूयते शब्दो राक्षसीनां कुले कुले॥

(६। ९४। २२)

जान पड़ता है कि श्रीरामका रूप धारण करके हमें साक्षात् रुद्र, विष्णु, शतक्रतु इन्द्र अथवा स्वयं यमराज मार रहे हैं। इस प्रकार समस्त स्त्रियाँ आपसमें कहती हैं—

रुद्रो वा यदि वा विष्णुर्महेन्द्रो वा शतक्रतुः।
हन्ति नो रामरूपेण यदि वा स्वयमन्तकः॥

(६। ९४। २४)

राक्षसियाँ आपसमें बातें करती हुई कहती हैं—महात्मा पुलस्त्यनन्दन विभीषणने समयोचित कार्य किया है। उन्हें जिनसे भय दिखायी दिया, उन्हींकी शरणमें चले गये—

प्राप्तकालं कृतं तेन पौलस्त्येन महात्मना।
यत एव भयं दृष्टं तमेव शरणं गतः॥

(६। ९४। ४०)

इस प्रकार अनाथ राक्षसियाँ एक-दूसरेसे लिपटकर अत्यन्त भयसे व्यथित हो करके उच्च स्वरसे अत्यन्त दारुण विलाप करने लगीं—

इतीव सर्वा रजनीचरस्त्रियः
परस्परं सम्परिरभ्य बाहुभिः।
विषेदुरार्तातिभयाभिपीडिता
विनेदुरुच्चैश्च तदा सुदारुणम्॥

(६। ९४। ४१)

लङ्काका श्मशानकी तरह भयावह दृश्य देखकर, राक्षसियोंका घोर करुणक्रन्दन सुनकर रावण बचे हुए प्रधान-प्रधान राक्षसोंको लेकर स्वयं युद्ध करनेके लिये गया और समराङ्गणमें अनेक सुवर्णभूषित बाणोंके द्वारा वानरोंकी सेनामें मार-काट करने लगा—

ततः क्रुद्धो दशग्रीवः शरैः काञ्चनभूषणैः।
वानराणामनीकेषु चकार कदनं महत्॥

(६। ९५। ५१)

रावणने कितने वानरोंके सिर काट डाले, कितनोंकी छाती छेद डाली और कितनोंके कान ही समाप्त कर दिये। कितनोंने घायल होकर प्राण त्याग दिये। रावणने कितने ही वानरोंकी पसलियाँ फाड़ डाली, कितनोंके मस्तक कुचल दिये और कितनोंकी आँखें ही समाप्त कर दी—

निकृत्तशिरसः केचिद् रावणेन बलीमुखाः।
केचिद् विच्छिन्नहृदयाः केचिच्छ्रोत्रविवर्जिताः॥
निरुच्छ्वासा हताः केचित् केचित्पार्श्वेषु दारिताः।
केचिद् विभिन्नशिरसः केचिच्चक्षुर्विनाकृताः॥

(६। ९५। ५२, ५३)

वानरेन्द्र सुग्रीवने जब रावणका यह भयङ्कर समर देखा और अपने सैनिकोंका भागना देखा तब सेनाको स्थिर रखनेका दायित्व सुषेणजीको सौंपकर स्वयं युद्ध करनेका विचार किया—

सुग्रीवस्तान् कपीन् दृष्ट्वा भग्नान् विद्रावितान् रणे।
गुल्मे सुषेणं निक्षिप्य चक्रे युद्धे द्रुतं मनः॥

(६। ९६। ६)

इस प्रकार श्रीसुग्रीवने राक्षसी सेनाका संहार करते हुए विरूपाक्ष नामक बलवान् राक्षसको मार डाला। विरूपाक्षके वधसे क्रुद्ध होकर रावणने महाबली महोदरसे कहा—हे वीर! आज अपना पराक्रम दिखाओ और शत्रुसेनाका वध करो। स्वामीके अन्नका बदला चुकानेका यही समय है। अतः अच्छी तरह युद्ध करो—

जहि शत्रुचमूं वीर दर्शयाद्य पराक्रमम्।
भर्तृपिण्डस्य कालोऽयं निर्वेष्टुं साधु युध्यताम्॥

(६। ९७। ५)

महोदर और सुग्रीवका घोर युद्ध हुआ। अन्तमें श्रीसुग्रीवने महोदरका मस्तक काट डाला। महोदरका वध करके वानरेन्द्र सुग्रीव वानरोंके साथ गर्जना करने लगे। उस समय रावण क्रुद्ध हो गया और श्रीरामजी हृष्ट हो गये—हर्षित हो गये—

हत्वा तं वानरैः सार्द्धं ननाद मुदितो हरिः।
चुक्रोध च दशग्रीवो बभौ हृष्टश्च राघवः॥

(६। ९७। ३५)

श्रीसुग्रीवके द्वारा महोदरके मारे जानेपर महाबली महापार्श्व क्रुद्ध होकर लड़ने आया। उसके द्वारा वानर-सेनाको उद्विग्न देखकर महावेगवान् वालिपुत्र अङ्गदने पूर्णिमाके पर्वपर समुद्रकी तरह अपना भारी वेग प्रकट किया—

निशम्य बलमुद्विग्नमङ्गदो राक्षसार्दितम् ॥
वेगं चक्रे महावेगः समुद्र इव पर्वसु।

(६। ९८। ५, ६)

श्रीअङ्गदने उसके वक्षःस्थलमें बड़े वेगसे एक मुक्का मारा, जिससे महापार्श्वका हृदय फट गया और वह मरकर पृथ्वीपर गिर गया। महापार्श्वका वध हो जानेपर रावणने अत्यन्त कुपित होकर कहा—आज समराङ्गणमें मैं रामरूपी उस वृक्षको उखाड़ फेकूँगा, जो सीतारूपी पुष्पके द्वारा फल-फूल प्रदान करनेवाला है। श्रीसुग्रीव, जाम्बवान्, कुमुद, नल, द्विविद, मैन्द, अङ्गद गन्धमादन, हनुमान् और सुषेण आदि समस्त वानरयूथपति रामवृक्षकी शाखा-प्रशाखाएँ हैं—

रामवृक्षं रणे हन्मि सीतापुष्पफलप्रदम्।
प्रशाखा यस्य सुग्रीवो जाम्बवान् कुमुदो नलः॥
द्विविदश्चैव मैन्दश्च अङ्गदो गन्धमादनः।
हनूमांश्च सुषेणश्च सर्वे च हरियूथपाः॥

(६। ९९। ४, ५)

रावणने रणभूमिमें वानरोंका वध करना आरम्भ कर दिया। श्रीरामचन्द्रजी श्रीलक्ष्मणके साथ खड़े होकर रणभूमिसे वानरोंको भागते और रावणको आते देख करके मनमें हर्षित हो गये। श्रीरामने अपने महान् वेगशाली और महानाद प्रकट करनेवाले उत्तम धनुषको खींचा और टङ्कार करना आरम्भ किया, मानो वे पृथ्वीको विदीर्ण कर डालेंगे—

विस्फारयितुमारेभे ततः स धनुरुत्तमम्।
महावेगं महानादं निर्भिन्दन्निव मेदिनीम्॥

(६। ९९। १५)

श्रीराम-रावणका भयङ्कर समर आरम्भ हो गया। दोनों ही महान् धनुर्धर थे। दोनों ही युद्धकी कलामें परम प्रवीण थे। दोनों ही अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे, अतः दोनों अत्यन्त उत्साहसे रणभूमिमें विचरने लगे—

उभौ हि परमेष्वासावुभौ युद्धविशारदौ।
उभावस्त्रविदां मुख्यावुभौ युद्धे विचेरतुः॥

(६। ९९। ३२)

समरविजयी श्रीरामचन्द्रने बहुत-से बाण मारकर रावणके समस्त अङ्गोंमें घाव कर दिये।

ततो विव्याध गात्रेषु सर्वेषु समितिञ्जयः।
राघवस्तु सुसंक्रुद्धो रावणं बहुभिः शरैः॥

(६। १००। १२)

इसी समय शत्रुओंकी सेनाका संहार करनेवाले श्रीलक्ष्मणजी भी युद्ध करने लगे। श्रीलक्ष्मणने सात सायक हाथमें लिये। एक बाणसे रावणकी मनुष्यशीर्ष—मनुष्यकी खोपड़ीके चिह्नवाली ध्वजाके कई टुकड़े कर दिये—

तैः सायकैर्महावेगै रावणस्य महाद्युतिः।
ध्वजं मनुष्यशीर्षं तु तस्य चिच्छेद नैकधा॥

(६। १००। १४)

एक बाणसे रावणके सारथिका सिर काट लिया और पाँच बाणोंसे उसके हाथीकी शुण्डके समान धनुषको काट दिया। इसके साथ ही श्रीविभीषणने उछलकर अपनी गदासे रावणके

नीलमेघकान्तिसम्पन्न पर्वताकार अच्छी जातिके घोड़ोंका वध कर दिया—

नीलमेघनिभांश्चास्य सदश्वान् पर्वतोपमान्।
जघानाप्लुत्य गदया रावणस्य विभीषणः॥

(६।१००।१७)

राक्षसेन्द्र रावणने विभीषणके वधके लिये एक वज्रके समान महाशक्तिवाली शक्तिका प्रहार किया—

ततः शक्तिं महाशक्तिः प्रदीप्तामशनीमिव।
विभीषणाय चिक्षेप राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्॥

(६।१००।१९)

श्रीलक्ष्मणजीने बीचमें ही तीन बाण मारकर उस शक्तिको काट दिया। यह देखकर समराङ्गणमें ही वानरोंका महान् हर्षनाद गूँज उठा—

अप्राप्तामेव तां बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद लक्ष्मणः।
अथोदतिष्ठत्सन्नादो वानराणां महारणे॥

(६।१००।२०)

तदनन्तर रावणने विभीषणको मारनेके लिये एक प्राणघातिनी शक्ति हाथमें ली। श्रीलक्ष्मणने विभीषणको प्राण संशयकी स्थितिमें पड़ा देखकर तत्काल उनकी रक्षा की। विभीषणको पीछे करके वे स्वयं शक्तिके सामने खड़े हो गये और विभीषणको बचानेके लिये रावणपर बाणोंकी वर्षा करने लगे।

रावणने कहा—अरे बलश्लाघिन् लक्ष्मण! तुमने प्रयास करके विभीषणको तो बचा लिया है, एतावता अब उस राक्षसको छोड़कर मैं तुम्हारे ऊपर ही शक्तिका प्रहार करता हूँ। यह मेरी शक्ति लोहितलक्षणा है। शत्रुरुधिरग्रहणस्वभावा है। यह मेरे हाथसे छूटते ही तुम्हारे हृदयको विदीर्ण करके प्राणोंको अपने साथ ले जायगी—

मोक्षितस्ते बलश्लाघिन् यस्मादेवं विभीषणः।
विमुच्य राक्षसं शक्तिस्त्वयीयं विनिपात्यते॥
एषा ते हृदयं भित्त्वा शक्तिर्लोहितलक्षणा।
मद्बाहुपरिघोत्सृष्टा प्राणानादाय यास्यति॥

(६।१००।२८, २९)

रावणने यह कहकर मयासुरकी मायासे निर्मित आठ घण्टोंसे युक्त महाभयङ्कर शब्द करनेवाली, उस अमोघ एवं शत्रुघातिनी शक्तिको श्रीलक्ष्मणके लिये चला दिया और भयङ्कर स्वरमें गर्जना की।

परम कारुणिक भक्तवत्सल श्रीरामने श्रीलक्ष्मणकी ओर उस शक्तिको आते देखकर उस शक्तिको लक्ष्य करके कहा—मेरे लक्ष्मणका सर्वविध कल्याण हो। तेरा प्राण हननोद्योग नष्ट हो, अतः तू मोघ हो जा—व्यर्थ हो जा—

तामनुव्याहरच्छक्तिमापतन्तीं स राघवः।
स्वस्त्यस्तु लक्ष्मणायेति मोघा भव हतोद्यमा॥

(६।१००।३३)

वह शक्ति सद्यः श्रीलक्ष्मणके हृदयमें गहराई-तक धँस गयी। उस शक्तिसे हृदय विदीर्ण हो जानेपर श्रीलक्ष्मण पृथ्वीपर गिर पड़े—

शक्त्या विभिन्नहृदयः पपात भुवि लक्ष्मणः॥

(६।१००।३६)

वह शक्ति श्रीलक्ष्मणजीके हृदयको विदीर्ण करके धरतीतक चली गयी थी। श्रीरामजीने अपने दोनों कराम्बुजोंसे उस शक्तिको निकालकर उसे तोड़ डाला। उस समय भी रावण निरन्तर बाणोंकी वर्षा कर रहा था। श्रीरामजी रावणके उन बाणोंकी चिन्ता न करके श्रीलक्ष्मणजीको अपने हृदयसे लगाकर श्रीहनुमान् एवं कपीन्द्र सुग्रीवसे बोले—

अचिन्तयित्वा तान् बाणान् समाश्लिष्य च लक्ष्मणम्।
अब्रवीच्च हनूमन्तं सुग्रीवं च महाकपिम्॥

(६।१००।४५)

आपलोग सब तरफसे लक्ष्मणको घेरकर खड़े रहो। आज संसार या अरावण हो जायगा या अराम हो जायगा—‘**अरावणमरामं वा जगद्**

द्रक्ष्यथ वानराः'। हे दुर्द्धर्ष वानरेन्द्रो! अब तुमलोग पर्वतके शिखरोंपर बैठकर मेरे और रावणके युद्धको सुखपूर्वक देखो। आज सङ्ग्राममें देवता, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि और चारणोंके सहित तीनों लोकोंके प्राणी रामका रामत्व देखें—रामके जगदेक वीरत्वका दर्शन करें अथवा रामके अभिराम दातृत्वको देखें। किं वा तीनों लोकोंको, ऋषियों और देवताओंको धर्मसे, सत्यसे और शौर्यसे रमण कराना ही रामत्व है—'**रामस्य रामत्वं त्रींल्लोकान् सर्षिदेवान् धर्मेण, सत्येन शौर्येण च रमयतीत्यन्वर्थं रामत्वम्। तदुचितं कर्माद्यकरिष्यामीतिभावः**'। (तिलक-टीका)

सुखं पश्यत दुर्द्धर्षा युद्धं वानरपुङ्गवाः।
आसीनाः पर्वताग्रेषु ममेदं रावणस्य च॥
अद्य पश्यन्तु रामस्य रामत्वं मम संयुगे।
त्रयो लोकाः सगन्धर्वाः सदेवाः सर्षिचारणाः॥

(६। १००। ५४-५५)

परन्तु थोड़ी ही देर युद्ध करनेके पश्चात् रावण सङ्ग्रामसे भाग गया। श्रीवाल्मीकिजी अपनी भावपूर्ण भाषामें लिखते हैं—जैसे वायुके प्रवाहित होनेपर मेघ फट जाता है, उसी प्रकार सुदीप्त धनुष धारण करनेवाले महात्मा—महाबलवान् श्रीरामचन्द्रके बाणसमूहोंकी वर्षासे अर्दित-व्यथित हुआ रावणभयसे—लक्ष्मणव्यथाजन्य क्रोधसे श्रीराम आज मुझको अवश्य मार डालेंगे इस भयसे भाग गया—'**भयाद् भ्रातृपीडाजनित कोपेन सर्वथा मां हनिष्यत्येवेति भयादित्यर्थः**'। (तिलक-टीका)

भयात् प्रदुद्राव समेत्य रावणो यथानिलेनाभिहतो बलाहकः॥

(६। १००। ६२)

करुणामय श्रीरामजी श्रीलक्ष्मणजीको शक्तिसे घायल देखकर सुषेण वैद्यसे कहते हैं—मेरा लक्ष्मण मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारा है, इसे रक्तसे लथपथ देखकर मेरा मन उद्विग्न हो रहा है, इस स्थितमें मुझमें युद्ध करनेकी शक्ति क्या होगी?

शोणितार्द्रमिमं वीरं प्राणैः प्रियतरं मम।
पश्यतो मम का शक्तिर्योद्धुं पर्याकुलात्मनः॥

(६। १०१। ४)

पुत्रवत्सला माता सुमित्राके सामने मैं कैसे बात करूँगा? जब सुमित्रा माता पुत्र-वियोगसे दुःखी होकर मुझे उपालम्भ देगीं कि मेरा पुत्र आपको ही माता-पिता मानता था, उसे आपने कहाँ छोड़ दिया? तब मैं उन्हें क्या प्रत्युत्तर दूँगा? माता कौसल्या तो सदा ही लक्ष्मणको अधिक प्यार करती हैं, उनके पूछनेपर उन्हें मैं क्या उत्तर दूँगा? माता कैकेयीको क्या जवाब दूँगा? लक्ष्मणको प्राणोंसे अधिक प्यार करनेवाले भावुक भरत और महाबली शत्रुघ्न जब प्रश्न करेंगे—आप लक्ष्मणके साथ वनमें गये थे उनके बिना कैसे वापस आ गये? तब इस प्रश्नका मैं क्या उत्तर दूँगा?

कथं वक्ष्याम्यहं त्वम्बां सुमित्रां पुत्रवत्सलाम्॥
उपालम्भं न शक्ष्यामि सोढुं दत्तं सुमित्रया।
किं नु वक्ष्यामि कौसल्यां मातरं किं नु कैकयीम्॥
भरतं किं नु वक्ष्यामि शत्रुघ्नं च महाबलम्।
सह तेन वनं यातो विना तेनागतः कथम्॥

(६। १०१। १६—१८)

अवश्य ही मेरे किसी अपराधसे मेरा धर्मात्मा भाई मारा गया है। हा भ्रातः! हा नरशार्दूल! हा प्रभावशाली शूरवीरोंमें श्रेष्ठ! तुम मुझे छोड़कर अकेले परलोक क्यों जा रहे हो? अथवा हे लक्ष्मण! तुम मुझे अकेले कभी नहीं छोड़ते थे। अहोरात्र छायाकी भाँति मेरे साथ लगे रहते थे, आज मुझे अकेले छोड़कर परलोक क्यों जा रहे हो? मैं जब श्रीसीताके वियोगमें रोता था तब तुम व्याकुल हो जाते थे, स्वयं भी रोने लगते थे

अथवा मुझे समझाते थे। हे लक्ष्मण! आज मैं रो रहा हूँ; परन्तु न तो तुम मेरे साथ रो ही रहे हो, न व्याकुल ही हो रहे हो और न मुझे समझा ही रहे हो। हे बन्धु! उठो, आँखें खोलकर मुझे देखो। मैं बहुत दीन हो रहा हूँ। हे भैया! मुझे अपनी भावपूर्ण दृष्टिसे देखो। हे महाबाहो! पर्वतों और वनोंमें जब मैं शोकार्त्त हो जाता था, विषण्ण हो जाता था तब तुम्हीं मुझे आश्वस्त करते थे। इस प्रकार करुण क्रन्दन करते हुए परम कारुणिक श्रीरामचन्द्रजीकी समस्त इन्द्रियाँ शोकसे व्याकुल हो गयीं—

हा भ्रातर्मनुजश्रेष्ठ शूराणां प्रवर प्रभो॥
एकाकी किं नु मां त्यक्त्वा परलोकाय गच्छसि।
विलपन्तं च मां भ्रातः किमर्थं नावभाषसे॥
उत्तिष्ठ पश्य किं शेषे दीनं मां पश्य चक्षुषा।
शोकार्तस्य प्रमत्तस्य पर्वतेषु वनेषु च॥
विषण्णस्य महाबाहो समाश्वासयिता मम।
राममेवं ब्रुवाणं तु शोकव्याकुलितेन्द्रियम्॥

(६। १०१। २०—२३)

वानरश्रेष्ठ सुषेण वैद्यने श्रीरामजीको आश्वस्त करके कहा—हे नरशार्दूल! आप चिन्ता न करें। शोभावर्द्धक श्रीलक्ष्मण मरे नहीं हैं, इनके शरीरके समस्त लक्षण इनके जीवित होनेकी सूचना दे रहे हैं।

इसके अनन्तर सुषेणजीके परामर्शसे श्रीहनुमान्जी तत्काल जाकर पूर्वकी भाँति औषधि-पर्वतको ही उखाड़ लाये। महातेजस्वी वानरश्रेष्ठ सुषेणने औषधियोंको कूट-पीसकर श्रीलक्ष्मणजीकी नाकमें सुँघा दिया। उस औषधिको सूँघकर श्रीलक्ष्मण स्वस्थ हो गये। वे नीरोग होकर तत्काल भूतलसे उठकर खड़े हो गये—

ततः संक्षोदयित्वा तामोषधीं वानरोत्तमः।
लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः सुमहाद्युतिः॥
सशल्यः स समाघ्राय लक्ष्मणः परवीरहा।
विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात्॥

(६। १०१। ४४, ४५)

करुणामय श्रीरामजीने 'आओ आओ' ऐसा कहकर श्रीलक्ष्मणको दोनों भुजाओंमें भर लिया और गाढालिङ्गन करके हृदयसे लगा लिया। उस समय उनके नेत्रोंसे आँसू छलक रहे थे—

एह्येहीत्यब्रवीद् रामो लक्ष्मणं परवीरहा।
सस्वजे गाढमालिङ्ग्य बाष्पपर्याकुलेक्षणः॥

(६। १०१। ४७)

श्रीलक्ष्मणजीकी प्रेरणासे पुनः श्रीराम-रावणका युद्ध प्रारम्भ हो गया। जब रावण रथपर चढ़कर समराङ्गणमें आया और अपने बाणोंके द्वारा श्रीरामको बींधने लगा तथा श्रीरामचन्द्रजी भी रावणके ऊपर सुवर्णभूषित बाणोंकी वर्षा करने लगे तब देवता, गन्धर्व और किन्नर कहने लगे कि श्रीरघुनाथजी भूमिपर खड़े हैं और राक्षस रावण रथपर बैठा हुआ है, अतः यह असमान युद्ध है—

भूमौ स्थितस्य रामस्य रथस्थस्य स रक्षसः।
न समं युद्धमित्याहुर्देवगन्धर्वकिन्नराः॥

(६। १०२। ५)

उनकी ये अमृतसमान मधुर बातें सुनकर देवराज इन्द्रने अपने सारथि मातलिको बुलाकर कहा—हे सारथे! तुम श्रीरामके पास रथ लेकर जाओ और कहो कि यह रथ इन्द्रने आपकी सेवामें भेजा है। मातलि वह दिव्य और सर्वाङ्ग सुन्दर रथ लेकर श्रीरामजीके पास आये। मातलिने श्रीरामजीसे हाथ जोड़कर कहा—हे महाबली शत्रुसूदन रघुवीर! हे श्रीमान्! देवराज इन्द्रने आपकी विजयके लिये यह रथ समर्पित किया है। यह इन्द्रका विशाल धनुष, अग्निके समान तेजस्वी कवच, सूर्यसदृश प्रकाशमान

बाण और यह मङ्गलमयी निर्मल शक्ति है इसे भी स्वीकार करें—

सहस्राक्षेण काकुत्स्थ रथोऽयं विजयाय ते।
दत्तस्तव महासत्व श्रीमञ्शत्रुनिबर्हण॥
इदमैन्द्रं महच्चापं कवचं चाग्निसन्निभम्।
शराश्चादित्यसंकाशाः शक्तिश्च विमला शिवा॥

(६। १०२। १४, १५)

श्रीरामजीने इन्द्रकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने उस दिव्य रथकी परिक्रमा की और उसे प्रणाम करके उसपर आरूढ़ हो गये। उस समय शोभासागर श्रीरामजी अपनी सहज शोभासे समस्त लोकोंको सुप्रकाशित करने लगे—

इत्युक्तः सम्परिक्रम्य रथं तमभिवाद्य च।
आरुरोह तदा रामो लोकाँल्लक्ष्म्या विराजयन्॥

(६। १०२। १७)

तत्पश्चात् महाबाहु श्रीराम और राक्षस रावणमें द्वैरथ युद्ध प्रारम्भ हुआ, जो अत्यन्त अद्भुत और रोमहर्षक था—

तद् बभौ चाद्भुतं युद्धं द्वैरथं रोमहर्षणम्।
रामस्य च महाबाहो रावणस्य च रक्षसः॥

(६। १०२। १८)

पहले तो दोनोंमें दिव्यास्त्रोंका पारस्परिक युद्ध हुआ। तदनन्तर रावणने अक्लिष्टकर्मा श्रीरामको हजारों बाणोंसे पीड़ित कर दिया। अपने बाणसमूहोंसे मातलि सारथिको भी घायल कर दिया और अपने बाणोंके जालसे इन्द्रके घोड़ोंको भी चोट पहुँचायी। यह देखकर देवता, गन्धर्व, चारण तथा दानव विषण्ण हो गये। श्रीरामको आर्त्त देखकर सिद्धों और परमर्षियोंके मनमें भी बड़ी पीड़ा हुई। श्रीविभीषणसहित समस्त वानरयूथपति व्यथित हो गये—

विषेदुर्देवगन्धर्वचारणा दानवैः सह॥
राममार्तं तदा दृष्ट्वा सिद्धाश्च परमर्षयः।
व्यथिता वानरेन्द्राश्च बभूवुः सविभीषणाः॥

(६। १०२। ३०, ३१)

तदनन्तर लीलामय श्रीरामजीने क्रोधका भाव अभिव्यक्त किया। उनकी भृकुटि बङ्क हो गयी, नेत्र संरक्त हो गये और उन्हें ऐसा महान् क्रोध हुआ कि जान पड़ता था—ये समस्त राक्षसोंको जला डालेंगे। धीमान् श्रीरामजीके क्रुद्ध मुखमण्डलको देखकर समस्त प्राणी भयसे प्रकम्पित हो गये और पृथ्वी भी काँपने लगी—

स कृत्वा भ्रुकुटिं क्रुद्धः किञ्चित् संरक्तलोचनः॥
जगाम सुमहाक्रोधं निर्दहन्निव राक्षसान्।
तस्य क्रुद्धस्य वदनं दृष्ट्वा रामस्य धीमतः।
सर्वभूतानि वित्रेसुः प्राकम्पत च मेदिनी॥

(६। १०२। ३८-३९)

वहाँ खड़े हुए असुर रावणकी जय-जयकार करने लगे और देवता बारम्बार श्रीरामको पुकारकर कहने लगे—'हे राघवेन्द्र श्रीराम! आपकी जय हो, जय हो'। इसके अनन्तर रावणने अपने हाथमें एक भयङ्कर शूल उठाया और श्रीरामजीसे कहा—हे रणश्लाघिन् राघव! यह शूल वज्रके समान शक्तिशाली है। इसे मैंने रोषपूर्वक अपने हाथमें लिया है। यह शूल तुम्हारा और लक्ष्मणका प्राण सद्यः अपहरण कर लेगा—

शूलोऽयं वज्रसारस्ते राम रोषान्मयोद्यतः।
तव भ्रातृसहायस्य सद्यः प्राणान् हरिष्यति॥

(६। १०२। ५६)

श्रीरामने मातलिके द्वारा लायी हुई, देवेन्द्रके द्वारा सम्मानित शक्तिको हाथमें लेकर प्रहार कर दिया। उस शक्तिके द्वारा वह शूल निस्तेज होकर टुकड़े-टुकड़े होकर भूमिपर गिर पड़ा—

सा क्षिप्ता राक्षसेन्द्रस्य तस्मिञ्छूले पपात ह।
भिन्नः शक्त्या महाञ्शूलो निपपात गतद्युतिः॥

(६। १०२। ६६)

शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले राक्षस रावणने

क्रुद्ध होकर महात्मा श्रीरामचन्द्रकी छातीमें हजारों बाण मारे। समराङ्गणमें उन बाणोंसे घायल हुए श्रीलक्ष्मणके बड़े भाई श्रीराम रक्तसे नहा उठे और जङ्गलमें खिले हुए पलाशके वृक्षके समान सुशोभित होने लगे—

स शोणितसमादिग्धः समरे लक्ष्मणाग्रजः।
दृष्टः फुल्ल इवारण्ये सुमहान् किंशुकद्रुमः॥

(६। १०३। ७)

इसी समय क्रोधसे भरे हुए वीर दशरथात्मज श्रीरामने रावणसे हँसते हुए कठोर वाणीमें कहा—अरे राक्षसाधम! तू मेरी अनुपस्थितिमें मेरी पत्नी श्रीसीताको चोरोंकी तरह जनस्थानकी पर्णकुटीसे हर लाया है, एतावता तू पराक्रमी नहीं है—

मम भार्या जनस्थानादज्ञानाद् राक्षसाधम।
हृता ते विवशा यस्मात्तस्मात्त्वं नासि वीर्यवान्॥

(६। १०३। ११)

असहाय स्त्रियोंपर वीरता दिखानेवाले राक्षस! परस्त्री अपहरण-जैसे कुत्सित पुरुषोंका कार्य करके तू अपनेको शूरवीर मानता है? अरे धर्मकी मर्यादाका नाश करनेवाले! अरे निर्लज्ज! अरे सदाचारशून्य! अरे राक्षस! तूने अपने बलके दर्पसे, श्रीसीताके रूपमें अपनी मृत्युका ही आवाहन किया है। क्या अब भी तू अपनेको बहादुर समझता है?

स्त्रीषु शूर विनाथासु परदाराभिमर्शनम्।
कृत्वा कापुरुषं कर्म शूरोऽहमिति मन्यसे॥
भिन्नमर्याद निर्लज्ज चारित्रेष्वनवस्थित।
दर्पान्मृत्युमुपादाय शूरोऽहमिति मन्यसे॥

(६। १०३। १३, १४)

इस प्रकार कहकर वीरशिरोमणि श्रीराम युद्ध करने लगे। वानरलोग पत्थरोंकी और श्रीराघवेन्द्र बाणोंकी वर्षा कर रहे थे। इन प्रहारोंसे घायल होकर रावणका हृदय व्याकुल एवं विभ्रान्त हो गया—

हरीणां चाश्मनिकरैः शरवर्षैश्च राघवात्।
हन्यमानो दशग्रीवो विघूर्णहृदयोऽभवत्॥

(६। १०३। २७)

रावण अपने हृदयकी व्याकुलताके कारण शस्त्र उठाने, धनुषको खींचने और श्रीरामके पराक्रमका सामना करनेमें असमर्थ हो गया—

यदा च शस्त्रं नारेभे न चकर्ष शरासनम्।
नास्य प्रत्यकरोद् वीर्यं विक्लवेनान्तरात्मना॥

(६। १०३। २८)

रावणके बुद्धिमान् सारथिने अपने राजाको अशक्त होकर रथपर पड़ा देखकर रथको लौटाकर उसके साथ ही भयके कारण समरभूमिसे बाहर निकल गया—

रथं च तस्याथ जवेन सारथिर्निवार्य भीमं जलदस्वनं तदा।
जगाम भीत्या समरान्महीपतिं निरस्तवीर्यं पतितं समीक्ष्य॥

(६। १०३। ३१)

लङ्का पहुँचनेपर रावण अपने सारथीकी भर्त्सना करने लगा—अरे मन्दबुद्धे! क्या तूने मुझे शक्तिरहित, असमर्थ, पुरुषार्थरहित, भीरु, ओछा, धैर्यहीन, निस्तेज, मायारहित और अस्त्रोंके ज्ञानसे वञ्चित समझ रखा है, जो मेरी अवज्ञा करके तू अपनी बुद्धिका स्वतन्त्र होकर प्रयोग कर रहा है?

हीनवीर्यमिवाशक्तं पौरुषेण विवर्जितम्।
भीरुं लघुमिवासत्त्वं विहीनमिव तेजसा॥
विमुक्तमिव मायाभिरस्त्रैरिव बहिष्कृतम्।
मामवज्ञाय दुर्बुद्धे स्वया बुद्ध्या विचेष्टसे॥

(६। १०४। २, ३)

शत्रुके सामनेसे मेरा रथ हटाकर जो तू मुझे भगा लाया यह कार्य हितैषी मित्रका नहीं है। तूने जो कार्य किया है वह शत्रुके द्वारा करनेयोग्य है।

नहि तद् विद्यते कर्म सुहृदो हितकाङ्क्षिणः।
रिपूणां सदृशं त्वेतद् यत्त्वयैतदनुष्ठितम्॥

(६।१०४।८)

सारथिने अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—हे महाराज! मै भयभीत नहीं हूँ, मैं मूढ़ भी नहीं हूँ और मुझे शत्रुओंने बहकाया भी नहीं है। मैं प्रमत्त—असावधान भी नहीं हूँ। आपके प्रति मेरा स्नेह भी कम नहीं है तथा आपके द्वारा मुझे जो जीवनमें सम्मान मिला है—आपने जो मेरा जीवनमें सत्कार्य किया है वह भी मुझे विस्मृत नहीं हुआ है। हे प्रभो! मैं निरन्तर आपका कल्याण चाहता हूँ और आपकी कीर्तिकी रक्षाके लिये मैं निरन्तर प्रयत्नशील रहता हूँ। मेरा हृदय आपके प्रति स्नेहसे आर्द्र है। भले ही आपको मेरा कार्य अरुचिकर लगा है; परन्तु मैं तो आपके हितकी भावनासे ही युद्धभूमिसे रथको लाया हूँ—

न भीतोऽस्मि न मूढोऽस्मि नोपजप्तोऽस्मि शत्रुभिः।
न प्रमत्तो न निःस्नेहो विस्मृता न च सत्क्रिया॥
मया तु हितकामेन यशश्च परिरक्षता।
स्नेहप्रसन्नमनसा हितमित्यप्रियं कृतम्॥

(६।१०४।११, १२)

हे शत्रुसूदन वीर! आपको तथा रथके इन घोड़ोंको थोड़ी देरतक विश्राम देनेके लिये और खेद दूर करनेके लिये मैंने जो यह कार्य किया है, वह सर्वथा उचित है—

तव विश्रामहेतोस्तु तथैषां रथवाजिनाम्।
रौद्रं वर्जयता खेदं क्षमं कृतमिदं मया॥

(६।१०४।२१)

सारथीके वाक्यसे बहुत सन्तुष्ट हो गया और उसने कहा—हे सूत! अब तुम इस रथको शीघ्र रामके सामने ले चलो। अब रावण समरमें अपने शत्रुओंको मारे बिना नहीं लौटेगा। इस प्रकार कहकर राक्षसेश्वर रावणने अपने सारथीको पुरस्कारके रूपमें अपने हाथका एक सुन्दर आभूषण उतारकर दे दिया। रावणका आदेश सुनकर सारथीने पुनः रथको लौटाया—

एवमुक्त्वा रथस्थस्य रावणो राक्षसेश्वरः।
ददौ तस्य शुभं ह्येकं हस्ताभरणमुत्तमम्।
श्रुत्वा रावणवाक्यानि सारथिः सन्न्यवर्तत॥

(६।१०४।२६)

देवतालोग श्रीराम-रावणका रण देखनेके लिये आये थे। उन्हींके साथ भगवान् श्रीअगस्त्यमुनि भी आये थे। ये श्रीरामजीके पास जाकर बोले—हे सबके हृदयमें रमण करनेवाले! हे महाबाहो! हे श्रीराम! यह सनातन गुह्यस्तोत्र सुनो। जिस स्तोत्रके पाठजन्य फलसे युद्धमें तुम अपने समस्त शत्रुओंके ऊपर विजय प्राप्त कर लोगे—

राम राम महाबाहो शृणु गुह्यं सनातनम्।
येन सर्वानरीन् वत्स समरे विजयिष्यसे॥

(६।१०५।३)

यह आदित्यहृदय नामक स्तोत्र बड़ा मङ्गलमय स्तोत्र है, आस्तिक जगत्में इस स्तोत्रका पाठ अभी भी लोग करते हैं। इसके पाठसे लौकिक-पारलौकिक दोनों प्रकारके शत्रुओंका विनाश हो जाता है। यह स्तोत्र सनातन है—'**वेदवन्नित्यम्**' वेदकी तरह नित्य है। गुह्य है—रहस्यमय है अथवा प्रकाश्य है। इसका नाम आदित्यहृदय है—श्रीसूर्यभगवान्का हृदय है अर्थात् श्रीसूर्यभगवान्के मनको प्रसन्न करनेवाला है। पुण्य है—पाठ करनेवालोंके पुण्यका संवर्द्धन होता है।

श्रीअगस्त्यजी मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामसे इस स्तोत्रका वर्णन करते हैं, यह स्तोत्र एकतीस श्लोकोंमें है। पूरे एक सर्गमें है। आप लोगोंको भी इस स्तोत्रका श्रद्धापूर्वक नित्य पाठ करना चाहिये।

श्रीअगस्त्यजीने कहा—इस आदित्यहृदय स्तोत्रका तीन बार पाठ करनेसे हे रघुनन्दन! तुम युद्धमें विजय प्राप्त कर लोगे। हे महाबाहो! तुम इसी क्षण रावणका वध कर सकोगे। यह कहकर भगवान् अगस्त्यजी जैसे आये थे, उसी प्रकार चले गये—

पूजयस्वैनमेकाग्रो देवदेवं जगत्पतिम्।
एतत्त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यति॥
अस्मिन् क्षणे महाबाहो रावणं त्वं जहिष्यसि।
एवमुक्त्वा ततोऽगस्त्यो जगाम स यथागतम्॥

(६। १०५। २६, २७)

तदनन्तर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रने तीन बार आचमन करके आदित्यहृदयका तीन बार पाठ किया। भगवान् सूर्यकी ओर देखते हुए पाठ किया—

आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वेदं परं हर्षमवाप्तवान्।
त्रिराचम्य शुचिर्भूत्वा धनुरादाय वीर्यवान्॥

(६। १०५। २९)

भगवान् भुवनभास्कर, श्रीरामचन्द्रजीके पूर्व-पुरुष अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उन्होंने रावणके वधका समय निकट जानकर हर्षपूर्वक कहा—हे श्रीराम! अब रावणके विनाशमें शीघ्रता करो—

अथ रविरवदन्निरीक्ष्य रामं मुदितमनाः परमं प्रहृष्यमाणः।
निशिचर पतिसंक्षयं विदित्वा सुरगणमध्यगतो वचस्त्वरेति॥

(६। १०५। ३१)

सब प्रकारके अलङ्करणोंसे अलङ्कृत रावणका दिव्य रथ श्रीरामजीने देखा—

तमापतन्तं सहसा स्वनवन्तं महाध्वजम्॥
रथं राक्षसराजस्य नरराजो ददर्श ह।

(६। १०६। ४, ५)

उस रथमें कृष्ण वर्णके घोड़े जुते हुए थे, उसकी कान्ति बड़ी भयङ्कर थी। वह आकाशमें प्रकाशित होनेवाले सूर्यतुल्य तेजस्वी विमानके समान दृष्टिगोचर होता था। उसपर फहर-फहर फहराती हुई पताकाएँ बिजलीके समान परिज्ञात होती थीं। उस रथपर जो रावणका धनुष था, उसके द्वारा वह रथ इन्द्र-धनुषकी छटा छटकाता था और बाणोंकी धारावाहिक वृष्टि करता था। इसलिये वह जलधारा वर्षण करनेवाले बादलकी तरह परिलक्षित होता था—

कृष्णवाजिसमायुक्तं युक्तं रौद्रेण वर्चसा॥
दीप्यमानमिवाकाशे विमान सूर्यवर्चसम्।
तडित्पताकागहनं दर्शितेन्द्रायुधप्रभम्॥

(६। १०६। ५-६)

श्रीरामजीने श्रीइन्द्रके सारथी मातलिसे कहा—हे मातले! मेरे शत्रुका रथ बड़े वेगसे आ रहा है—

उवाच मातलिं रामः सहस्राक्षस्य सारथिम्।
मातले पश्य संरब्धमापतन्तं रथं रिपोः॥

(६। १०६। ९)

हे सारथे! तुम सावधान हो जाओ और शत्रुके रथकी ओर आगे बढ़ो। जैसे प्रबल वायु गगनोत्थ मेघोंको उड़ा देती है उसी प्रकार आज मैं रावणके रथका विध्वंस करना चाहता हूँ। तुम भय तथा उद्विग्नताका परित्याग करके, किसी भी प्रकारकी भ्रान्तिसे रहित होकर, मन और नेत्रको अव्यग्र करके—अचंचल करके अर्थात् स्थिर करके, घोड़ोंकी लगाम अपने नियन्त्रणमें रखो और रथको तेज चलाओ। तुम्हें देवराज इन्द्रके रथको चलानेका अभ्यास है; अतः तुमको कुछ सिखानेकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु मैं एकाग्रचित्त होकर—अनन्यमनस्क होकर युद्ध करना चाहता हूँ, एतावता तुम्हें कर्तव्यका स्मरणमात्र करा रहा हूँ, तुम्हें शिक्षा नहीं दे रहा हूँ—

तदप्रमादमातिष्ठ प्रत्युद्गच्छ रथं रिपोः।
विध्वंसयितुमिच्छामि वायुर्मेघमिवोत्थितम्॥

अविक्लवमसम्भ्रान्तमव्यग्रहृदयेक्षणम्।
रश्मिसञ्चारनियतं प्रचोदय रथं द्रुतम्॥
कामं न त्वं समाधेयः पुरन्दररथोचितः।
युयुत्सुरहमेकाग्रः स्मारये त्वां न शिक्षये॥

(६। १०६। ११—१३)

मातलि श्रीरामजीके वचनसे परम सन्तुष्ट हुए—'**परितुष्टः स रामस्य तेन वाक्येन मातलिः**'। सारथीने रथको आगे बढ़ाया श्रीराम और रावण दोनोंमें भयङ्कर युद्ध आरम्भ हो गया। उस समय रावणके क्षय और श्रीरामकी विजयकी आकाङ्क्षावाले देवता, सिद्ध, गन्धर्व और महर्षि उन दोनोंके द्वैरथ युद्धको देखनेके लिये वहाँ एकत्र हो गये—

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
समीयुर्द्वैरथं द्रष्टुं रावणक्षयकाङ्क्षिणः॥

(६। १०६। १९)

उस समय परम दारुण और रोमहर्षण उत्पात आरम्भ हो गये। जो रावणके विनाश एवं श्रीरघुनाथजीके अभ्युदयकी सूचना देते थे—

समुत्पेतुरथोत्पाता दारुणा रोमहर्षणाः।
रावणस्य विनाशाय राघवस्योदयाय च॥

(६। १०५। २०)

तदनन्तर श्रीराम और रावणमें सुक्रूर महान् द्वैरथ युद्ध आरम्भ हुआ, जो सर्वलोकभयावह था—

ततः प्रवृत्तं सुक्रूरं रामरावणयोस्तदा।
सुमहद् द्वैरथं युद्धं सर्वलोकभयावहम्॥

(६। १०७। १)

'द्वैरथ' युद्ध उसे कहते हैं जिसमें रथपर चढ़े हुए दो महान् योद्धाओंका पारस्परिक युद्ध हो—'**द्वाभ्यां रथाभ्यां प्रवृत्तं युद्धं प्रवृत्तं द्वैरथम्**'।

उस समय राक्षसों और वानरोंका युद्ध रुक गया था। राक्षस रावणकी ओर देख रहे थे और वानर श्रीराघवेन्द्र सरकारकी ओर निहार रहे थे, उन सबके नेत्र विस्मित थे, अतः निस्तब्ध खड़ी रहनेके कारण उभयपक्षकी सेनाएँ चित्र-लिखी-सी जान पड़ती थीं—

रक्षसां रावणं चापि वानराणां च राघवम्।
पश्यतां विस्मिताक्षाणां सैन्यं चित्रमिवाबभौ॥

(६। १०७। ५)

दो स्थितियोंमें अद्भुत पराक्रम होता है, या तो निश्चित हो जाय कि हमें मरना है अथवा निश्चित हो जाय कि हमें जीतना है। श्रीराम-रावण-युद्धकी यही विशेषता थी कि श्रीरामको निश्चय था कि हमारी विजय अवश्यम्भावी है और रावणको भी निश्चय था कि मेरा मरण अवश्यम्भावी है। इसलिये श्रीराम और रावण दोनों युद्धमें अपना समस्त पराक्रम प्रकट करके दिखाने लगे—

जेतव्यमिति काकुत्स्थो मर्तव्यमिति रावणः।
धृतौ स्ववीर्यसर्वस्वं युद्धेऽदर्शयतां तदा॥

(६। १०७। ७)

महान् तेजस्वी श्रीरामने रावणकी ध्वजाको लक्ष्य बनाकर बाण चलाया। वह बाण ध्वजाको छिन्न करके—काट करके भूमिमें समा गया—

रामश्चिक्षेप तेजस्वी केतुमुद्दिश्य सायकम्।
जगाम स महीं छित्त्वा दशग्रीवध्वजं शरः॥

(६। १०७। १२)

इसके बाद रावणने इतने बाणोंका प्रहार किया कि समस्त आकाश भर गया। श्रीवाल्मीकिजी लिखते हैं कि रावण अनासक्त होकर बाण चला रहा था, उसे अपने शरीर, मन आदिका मोह नहीं रह गया था—

मुमोच च दशग्रीवो निःसङ्गेनान्तरात्मना।

(६। १०७। २१)

श्रीराम और रावण दोनों अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए उत्तम रीतिसे युद्ध करने लगे, एक मुहूर्त दो घड़ीतक उन दोनोंमें दारुण, रोमहर्षण तुमुल रण हुआ—

एवं तु तौ सुसंक्रुद्धौ चक्रतुर्युद्धमुत्तमम्।

मुहूर्तमभवद् युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्॥

(६। १०७। २८)

रावणने अपने कठिन बाणोंसे मातलिके ऊपर प्रहार किया। श्रीरामजीको रावणके द्वारा मातलिके ऊपर आक्रमणसे जैसा क्रोध हुआ, वैसा क्रोध अपने ऊपर आक्रमण करनेसे नहीं हुआ था, अतः उन्होंने बाणोंका जाल-सा बिछाकर अपने शत्रुको युद्धसे विमुख कर दिया—

तया धर्षणया क्रुद्धो मातलेर्न तथाऽऽत्मनः॥
चकार शरजालेन राघवो विमुखं रिपुम्।

(६। १०७। ४१, ४२)

इस प्रकार श्रीराम-रावणमें अत्यन्त भयङ्कर लोमहर्षक युद्ध होने लगा। गदाओं, मुसलों और परिघोंकी आवाजसे तथा बाणोंके पंखोंकी सनसनाती हुई हवासे सातों समुद्र विक्षुब्ध हो गये। पातालनिवासी समस्त दानव और हजारों नाग व्याकुल हो गये। सशैलवनकानना मेदिनी प्रकम्पित हो गयी। भगवान् भुवनभास्कर सूर्य भी निष्प्रभ हो गये और वायुकी गति भी स्तब्ध हो गयी, देवता, गन्धर्व, सिद्ध, परमर्षि, किन्नर और बड़े-बड़े नाग सब चिन्तित हो गये—

चकम्पे मेदिनी कृत्स्ना सशैलवनकानना।
भास्करो निष्प्रभश्चासीन्न ववौ चापि मारुतः॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
चिन्तामापेदिरे सर्वे सकिन्नरमहोरगाः॥

(६। १०७। ४७, ४८)

सबके मुखसे यही बात निकलने लगी—गौ और ब्राह्मणोंका मङ्गल हो! प्रवाहरूपसे सदा रहनेवाले इन लोकोंकी रक्षा हो। श्रीराघवेन्द्र सरकार युद्धमें राक्षसेश्वर रावणपर महान् विजय-श्रीकी उपलब्धि करें—

स्वस्ति गोब्राह्मणेभ्यस्तु लोकास्तिष्ठन्तु शाश्वताः।
जयतां राघवः संख्ये रावणं राक्षसेश्वरम्॥

(६। १०७। ४९)

इस प्रकार शुभ कामना—मङ्गलानुशासन करते हुए महर्षियोंके साथ देवतालोग श्रीराघवेन्द्र और रावणके अत्यन्त भयङ्कर तथा रोमहर्षण युद्धको देखने लगे। श्रीराम-रावणका युद्ध देखनेवालोंने एक स्वरमें कहा—आकाश आकाशके ही तुल्य है, समुद्रके समान समुद्र ही है तथा वीरचक्रचूड़ामणि श्रीराम और रावणका भयङ्कर समर श्रीराम और रावणके समरके ही सदृश है, ऐसा कहकर सब लोग पुनः श्रीराम-रावणका समर देखने लगे—

एवं जपन्तोऽपश्यंस्ते देवाः सर्षिगणास्तदा।
रामरावणयोर्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्॥
गन्धर्वाप्सरसां सङ्घा दृष्ट्वा युद्धमनूपमम्।
गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः॥
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव।
एवं ब्रुवन्तो ददृशुस्तद् युद्धं रामरावणम्॥

(६। १०७। ५०—५२)

रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रने महाभयङ्कर विषधर भुजङ्गके समान बाणसे रावणका एक सिर उच्छिन्न कर डाला; परन्तु उसी सिरके स्थानपर एक दूसरा नवीन सिर उत्पन्न हो गया। भगवान् श्रीरामने समराङ्गणमें उसका सद्यः समुत्पन्न मस्तक भी अपने तीक्ष्ण बाणोंसे सद्यः उच्छिन्न कर दिया, परन्तु पुनः अभिनव मस्तक समुत्पन्न हो गया—

द्वितीयं रावणशिरश्छिन्नं संयति सायकैः।
छिन्नमात्रं च तच्छीर्षं पुनरेव प्रदृश्यते॥

(६। १०७। ५६)

इस प्रकार उसके सौ सिरोंके उच्छिन्न करनेपर भी मस्तकोंका अन्त नहीं दिखायी देता था। फिर भी युद्ध उत्साहपूर्वक चल रहा था। अब तो उस महासमरने बड़ा भयङ्कर स्वरूप धारण कर लिया। उस युद्धको देखते ही रोमाञ्च हो जाता था। श्रीराम-रावणका युद्ध कभी आकाशमें होता था, कभी वे भूतलपर अतुल पराक्रम करते दृश्यमान होते थे और कभी पर्वतोंके उत्तुङ्ग

शिखरपर युद्ध करते दिखायी पड़ते थे। देवता, दानव, यक्ष, पिशाच, नाग और राक्षसोंकी उपस्थितिमें उनकी आँखोंके सामने श्रीराम-रावणका महान् समर समस्त रात्रिपर्यन्त चलता रहा। श्रीराम-रावणका वह लोमहर्षक युद्ध न रातमें विश्राम लेता था और न दिनमें। एक मुहूर्त—दो घड़ी किं वा एक क्षणके लिये भी उस युद्धका मध्यान्तर नहीं हुआ—विश्राम नहीं हुआ—

तत्प्रवृत्तं महद् युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्।
अन्तरिक्षे च भूमौ च पुनश्च गिरिमूर्धनि॥
देवदानवयक्षाणां पिशाचोरगरक्षसाम्।
पश्यतां तन्महद् युद्धं सर्वरात्रमवर्तत॥
नैव रात्रिं न दिवसं न मुहूर्तं न च क्षणम्।
रामरावणयोर्युद्धं विराममुपगच्छति॥

(६। १०७। ६४—६६)

इन्द्र-सारथि परम हितैषी मातलिने श्रीरामजीसे कहा—हे वीरशिरोमणे! आप इस भयङ्कर राक्षसके विनाशके लिये पैतामह-अस्त्रका प्रयोग कीजिये। हे रघुनन्दन! समस्त देवताओंने इसके संहारका जो समय निर्दिष्ट किया है वह मङ्गलमय समय उपस्थित हो गया है। मातलिके इस हितपूर्ण वचनसे भगवान् श्रीरामको इस अस्त्रकी स्मृति आ गयी। तदनन्तर वीरेन्द्रमुकुटमणि भगवान् श्रीरामने फुफकारते हुए भयङ्कर भुजङ्गके समान एक सुदीप्त बाण अपने हाथोंमें लिया—

विसृजास्मै वधाय त्वमस्त्रं पैतामहं प्रभो।
विनाशकालः कथितो यः सुरैः सोऽद्य वर्तते॥
ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः।
जग्राह स शरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम्॥

(६। १०८। २, ३)

यह वही दिव्य बाण था जिसको पहले परम शक्तिशाली भगवान् अगस्त्यमुनिने श्रीरामचन्द्रजीको प्रदान किया था। वह ब्रह्माजीका दिया हुआ बाण समराङ्गणमें अमोघ था, उस बाणके वेगमें पवनदेवकी, उसकी धारमें अग्निदेव और भगवान् सूर्यकी, शरीरमें आकाशकी तथा भारीपनमें गिरिराज सुमेरु और मन्दराचलपर्वतकी प्रतिष्ठा की गयी थी—

यस्य वाजेषु पवनः फले पावकभास्करौ।
शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दरौ॥

(६। १०८। ६)

यह बाण सुग्रीवादि समस्त वानरयूथपतियोंको परमानन्द देनेवाला था तथा अत्याचारी राक्षसोंको भयङ्कर दुःख देनेवाला था—**'नन्दनं वानरेन्द्राणां रक्षसामवसादनम्'**।

वह ऐतिहासिक एवं श्रेष्ठ बाण समस्त लोकों तथा इक्ष्वाकुवंशियोंके भयका विनाश करनेवाला था, शत्रुओंकी कीर्तिका अपहरण तथा स्वयं अपनी प्रसन्नताकी अभिवृद्धि करनेवाला था। उस महिमामय बाणको वेदप्रोक्त विधिसे अभिमन्त्रित करके वीरशिरोमणि श्रीराघवेन्द्र सरकारने अपने विशाल धनुषपर रखा—

तमुत्तमेषुं लोकानामिक्ष्वाकुभयनाशनम्।
द्विषतां कीर्तिहरणं प्रहर्षकरमात्मनः॥
अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाबलः।
वेदप्रोक्तेन विधिना संदधे कार्मुके बली॥

(६। १०८। १३, १४)

श्रीराघवेन्द्र उस परमोत्तम सायकका जब सन्धान करने लगे, तब सम्पूर्ण प्राणी सन्त्रस्त हो गये—थर्रा उठे और धरा डगमगा उठी। श्रीरामने संक्रुद्ध होकर बड़े यत्नके साथ अपने विशाल धनुषको भलीभाँति आकर्षित करके—श्रवणपर्यन्त खींच करके उस मर्मविदारण बाणको रावणपर चला दिया।

तस्मिन्सन्धीयमाने तु राघवेण शरोत्तमे।

सर्वभूतानि संत्रेसुश्चचाल च वसुंधरा॥
स रावणाय संक्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम्।
चिक्षेप परमायत्तः शरं मर्मविदारणम्॥

(६। १०८। १५, १६)

शरीरका अन्त कर देनेवाले उस महिमामय परम वेगवान् उत्तम सायकने छूटते ही दुरात्मा रावणके हृदयको विदीर्ण कर डाला—

स विसृष्टो महावेगः शरीरान्तकरः परः।
बिभेद हृदयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः॥

(६। १०८। १८)

इस प्रकार यह बाण महापराक्रमी रावणके विनाशका कार्य सम्पन्न करके रक्तसे लथपथ वह शोभाशाली बाण पुनः विनम्र भृत्यकी भाँति भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके तरकशमें वापस आ गया—

स शरो रावणं हत्वा रुधिरार्द्रकृतच्छविः।
कृतकर्मा निभृतवत् स तूणीं पुनराविशत्॥

(६। १०८। २०)

रावण प्राणहीन होकर अपने रथसे भूतलपर गिर पड़ा—'**पपात स्यन्दनाद् भूमौ**'। उस समय वानर विजयश्रीसे सुशोभित होकर अत्यन्त हर्ष और उत्साहसे परिपूरित हो गये। श्रीराघवेन्द्र सरकारकी विजय और रावणके वधकी घोषणा करते हुए उच्चस्वरसे श्रीरामनामोच्चारणपूर्वक गर्जना करने लगे। उसी समय अन्तरिक्षमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु बहने लगी, आकाशमें उदारचेता देवताओंके मुखसे निकली हुई श्रीराघवेन्द्रसरकारकी स्तुति एवं 'साधु! साधु! धन्य! धन्य! जय! जय!' की श्रेष्ठ वाणी सुनायी देने लगी। अन्तरिक्षसे भूतलपर श्रीराघवेन्द्र सरकारके रथपर पुष्पवृष्टि होने लगी—

ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः।
वदन्तो राघवजयं रावणस्य च तद्वधम्॥
अथान्तरिक्षे व्यनदत् सौम्यस्त्रिदशदुन्दुभिः।
दिव्यगन्धवहस्तत्र मारुतः सुसुखो ववौ॥
निपपातान्तरिक्षाच्च पुष्पवृष्टिस्तदा भुवि।
किरन्ती राघवरथं दुरावापा मनोहरा॥
राघवस्तवसंयुक्ता गगने च विशुश्रुवे।
साधुसाध्विति वागग्र्या देवतानां महात्मनाम्॥

(६। १०८। २६—२९)

श्रीसुग्रीव, विभीषण, अङ्गद तथा श्रीलक्ष्मण अपने सुहृदोंके साथ युद्धमें श्रीराघवविजयसे परम हर्षित हो गये। इसके पश्चात् सबने मिलकर नयनाभिराम रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीकी विधिवत्—राजोपचारसे पूजा की—

ततस्तु सुग्रीवविभीषणाङ्गदाः सुहृद्विशिष्टाः सहलक्ष्मणस्तदा।
समेत्य हृष्टा विजयेन राघवं रणेऽभिरामं विधिनाभ्यपूजयन्॥

(६। १०८। ३३)

युद्धमें अपने पराजित भ्राताको मरकर रणाङ्गणमें पड़ा हुआ देखकर विभीषणका हृदय शोकसे व्याकुल हो गया, वे विलाप करने लगे—हा त्रैलोक्यप्रसिद्ध पराक्रमशील! हा भ्रातः! हा वीर! हा मेरे अग्रज! हा नयकोविद! हा प्रवीण-सर्वविधकर्मकुशल! आप तो सदा बहुमूल्य शैय्यापर शयन करते थे, परन्तु आज इस तरह मारे जाकर भूमिपर क्यों शयन कर रहे हैं?

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा शयानं निर्जितं रणे।
शोकवेगपरीतात्मा विललाप विभीषणः॥
वीरविक्रान्त विख्यात प्रवीण नयकोविद।
महार्हशयनोपेत किं शेषे निहतो भुवि॥

(६। १०९। १, २)

हे भ्रातः! आप महान् अहङ्कारी थे, अपने उसी अहङ्कारके कारण आपने मेरी हितकारी बात नहीं मानी। आपके ही प्रभावमें रहनेके कारण प्रहस्त, मेघनाद, अतिरथी कुम्भकर्ण, अतिकाय, नरान्तक और अन्य लोगोंने भी मेरी हित करनेवाली बातको महत्त्व नहीं दिया।

उसीका उदर्क—उत्तरकालिक फल यह सामने आ गया—

यन्न दर्पात् प्रहस्तो वा नेन्द्रजिन्नापरे जनाः।
न कुम्भकर्णोऽतिरथो नातिकायो नरान्तकः।
न स्वयं बहु मन्येथास्तस्योदर्कोऽयमागतः॥

(६। १०९। ५)

दो वृक्षोंका युद्ध हो गया। एक श्रीरामवृक्ष और दूसरा रावणवृक्ष। रावणने कहा था— '**रामवृक्षं रणे हन्मि**' परन्तु श्रीरामवृक्ष तो भक्तजनोंको युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तर आश्रय देता हुआ अद्यावधि विराजमान है। उस वृक्षकी इतनी शाखाएँ-प्रशाखाएँ हैं जिनका परिगणन अशक्य है। उसका विनाश भी असम्भव है। परन्तु श्रीविभीषण कहते हैं रावणवृक्ष आज ढह गया।

जिस रावणवृक्षके '**धृतिप्रवालः**'—'**धृतिः धैर्यमेव प्रवालो नव पल्लवो यस्य सः**' अर्थात् धैर्य ही रावणवृक्षके पत्ते थे, '**प्रसभाग्र्यपुष्पः—प्रसहते इति प्रसहः स एव अग्र्यपुष्पं श्रेष्ठपुष्पं यस्य सः**' अर्थात् रावणवृक्षका हठ ही सुन्दर फूल था, तपस्या ही बल-स्थैर्यांश था, शौर्य ही मूल था, उस राक्षसराज रावणरूपी महान् वृक्षको श्रीराघवेन्द्र सरकाररूपी महावातने—प्रभञ्जनने सम्मर्दन कर दिया—जड़से समाप्त कर दिया—

धृतिप्रवालः प्रसभाग्र्यपुष्पस्तपोबलः शौर्यनिबद्धमूलः।
रणे महान् राक्षसराजवृक्षः सम्मर्दितो राघवमारुतेन॥

(६। १०९। ९)

श्रीविभीषणजी कहते हैं—रावण अग्निके समान था। '**पराक्रमोत्साहविजृम्भितार्चिः- पराक्रमोत्साहौ विजृम्भितार्चिः प्रज्वलित ज्वाला यस्य**' अर्थात् पराक्रम और उत्साह जिसकी जाज्वल्यमान ज्वालाके समान थे, क्रोधोच्छ्वास ही धूम था, अपना बल ही प्रताप था। उस राक्षस रावणरूपी प्रतापी अग्निको आज इस भयङ्कर समरमें श्रीरामरूपी श्यामघनने निर्वापित कर दिया—बुझा दिया—

पराक्रमोत्साहविजृम्भितार्चिर्निःश्वासधूमः स्वबलप्रतापः।
प्रतापवान् संयति राक्षसाग्निर्निर्वापितो रामपयोधरेण॥

(६। १०९। ११)

श्रीविभीषणजी कहते हैं—रावण बलीवर्द—साँड़ था। राक्षस-सैनिक जिसकी पूँछ, ककुद् और सींग थे, जो शत्रुओंपर विजय पानेवाला था तथा पराक्रम और उत्साह आदि प्रकट करनेमें जो गन्धवाह—पवनके समान था, चपलता—विषय-लौल्य किं वा धर्मादि विषयस्खलन ही रावणरूप साँड़के नेत्र और कर्ण थे इनसे संयुक्त वह राक्षसरूपी बलीवर्द—साँड़, क्षितीश्वर महाराज श्रीरामशार्दूल—व्याघ्रद्वारा मारा जाकर नष्ट हो गया—

सिंहर्क्षलाङ्गूलककुद् विषाणः पराभिजिद्गन्धनगन्धवाहः।
रक्षोवृषश्चापलकर्णचक्षुः क्षितीश्वरव्याघ्रहतोऽवसन्नः॥

(६। १०९। १२)

इस प्रकार विभीषण भाईकी मृत्युके शोकसे व्यथित थे—दुःखी थे।

भगवान् श्रीराम शोकमग्न विभीषणको सान्त्वना देते हुए कहने लगे—हे विभीषण! यह रावण समराङ्गणमें निश्चेष्ट होकर—युद्धभूमिमें कायरोंकी भाँति नहीं मारा गया है, अपितु इसने युद्धभूमिमें प्रचण्ड पराक्रम किया है। युद्धभूमिमें इसका उत्साह समुन्नत था—किसी भी स्थितिमें, परिस्थितिमें कम नहीं हुआ था। इसे मृत्युसे कोई भय नहीं था। यह दैववशात् रणभूमिमें मारा गया है—

नायं विनष्टो निश्चेष्टः समरे चण्डविक्रमः।
अत्युन्नतमहोत्साहः पतितोऽयमशङ्कितः॥

(६। १०९। १४)

हे विभीषण! रावणने समराङ्गणमें लड़ते-लड़ते वीरगतिको प्राप्त किया है। सम्प्रति तुम शोक छोड़कर सात्त्विक बुद्धिका समाश्रयण करके

विज्वर हो जाओ—चिन्तारहित हो जाओ और अब आगे जो करणीय कार्य हो, उसके विषयमें विचार करो—

तदेवं निश्चयं दृष्ट्वा तत्त्वमास्थाय विज्वरः।
यदिहानन्तरं कार्यं कल्प्यं तदनुचिन्तय॥

(६।१०९।१९)

श्रीविभीषणने कहा—हे करुणामय रघुनन्दन! यह रावण अग्निहोत्र करता था, महान् तपस्वी था, वेदान्ती था तथा यज्ञ-यागादि कर्मोंमें श्रेष्ठ शूर था, परम कर्मठ रहा है। सम्प्रति यह प्रेतभावको प्राप्त हुआ है, अतः अब मैं आपकी कृपासे इसका प्रेतकृत्य करना चाहता हूँ—

एषोऽहिताग्निश्च महातपाश्च वेदान्तगः कर्मसु चाग्र्यशूरः।
एतस्य यत् प्रेतगतस्य कृत्यं तत्कर्तुमिच्छामि तव प्रसादात्॥

(६।१०९।२३)

श्रीविभीषणके वचनोंको सुनकर श्रीरामजीने उन्हें रावणकी अन्त्येष्टि-क्रिया करनेकी आज्ञा दी।

उदारचेता श्रीरामजीके द्वारा रावणका वध हो गया है, यह समाचार श्रवण करके शोकसे व्याकुल रावणकी पत्नियाँ तथा अन्य राक्षसियाँ और मन्दोदरी अन्तःपुरसे निकलीं—

रावणं निहतं श्रुत्वा राघवेण महात्मना।
अन्तःपुराद् विनिष्पेतू राक्षस्यः शोककर्शिताः॥

(६।११०।१)

रणभूमिमें आकर कोई तो बड़े सम्मानके साथ रावणके शरीरसे लिपट करके, कोई चरण पकड़ करके और कोई गलेसे लगकर रोने लगीं—

बहुमानात्परिष्वज्य काचिदेनं रुरोद ह।
चरणौ काचिदालम्ब्य काचित् कण्ठेऽवलम्ब्य च॥

(६।११०।८)

वे रावणकी पत्नियाँ बोलीं—हाय! हाय! जिन्होंने इन्द्रको और यमराजको भी वित्रस्त कर रखा था, जिन्होंने राजाधिराज कुबेरका पुष्पक-विमान छीन लिया था तथा गन्धर्वों, ऋषियों और महामनस्वी देवताओंको भी संग्राममें भय प्रदान किया था, हा हन्त! वे ही हमारे प्राणेश्वर आज रणमें मारे जाकर हमेशाके लिये शयन कर रहे हैं—

येन वित्रासितः शक्रो येन वित्रासितो यमः।
येन वैश्रवणो राजा पुष्पकेण वियोजितः॥
गन्धर्वाणामृषीणां च सुराणां च महात्मनाम्।
भयं येन रणे दत्तं सोऽयं शेते रणे हतः॥

(६।११०।१२-१३)

रावणकी ज्येष्ठ एवं प्रियपत्नी मन्दोदरीने अनोखा विलाप किया है। उसके विलापका एक-एक शब्द मनन करनेयोग्य है। मन्दोदरीने अचिन्त्यकर्मा भगवान् श्रीरामचन्द्रके द्वारा मारे गये अपने पति दशग्रीवको देखा। पतिकी स्थिति देखकर मन्दोदरी अत्यन्त दीन और दुःखी होकर विलाप करने लगी—

दशग्रीवं हतं दृष्ट्वा रामेणाचिन्त्यकर्मणा।
पतिं मन्दोदरी तत्र कृपणा पर्यदेवयत्॥

(६।१११।२)

मन्दोदरी कहती है—मुझे विश्वास नहीं होता है कि आपको श्रीरामजीने मारा है? साक्षात् कृतान्त—काल ही अतर्कित माया रचकर आपका वध करनेके लिये श्रीरामके रूपमें यहाँ आ गया था—

अथवा रामरूपेण कृतान्तः स्वयमागतः।
मायां तव विनाशाय विधायाप्रतितर्किताम्॥

(६।१११।९)

निश्चय ही श्रीरामजी महायोगी—स्वाभाविक सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा हैं—सर्वान्तर्यामी हैं, सनातन हैं—इनका कभी नाश नहीं होता है, ये सदा ही अस्तित्वयुक्त हैं, ये जन्म, वृद्धि और नाशसे रहित हैं अर्थात् अनादि मध्य निधन हैं, ये महान्-से-महान हैं, अज्ञानान्धकारसे परे तथा सबको धारण करनेवाले परमेश्वर हैं किं वा

सबके पोषक हैं। भक्तोंकी रक्षाके लिये शङ्ख, चक्र और गदा धारण करते हैं, जिनके वक्षःस्थलके दक्षिण भागमें श्रीवत्सका चिह्न है। श्रीराम नित्यश्री हैं—'**नित्या अनपायिनी श्रीर्यस्यासौ नित्यश्रीः**' अर्थात् श्रीलक्ष्मीजी इनसे कभी अलग नहीं रहती हैं, उनका नित्य संयोग रहता है। श्रीरामको कोई पराक्रमसे नहीं जीत सकता है, ये शाश्वत हैं—अपक्षयरहित हैं, ध्रुव हैं, सर्वलोकेश्वर हैं, सत्य पराक्रमी हैं। भगवान् विष्णुने ही समस्त संसारका कल्याण करनेके लिये मानवरूप धारण करके, वानररूपसे अवतरित सम्पूर्ण देवताओंके साथ आकर राक्षसोंके सहित आपका वध किया है; क्योंकि आप देवताओंके शत्रु और संसारके लिये भयङ्कर थे—

व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः॥
अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान्।
तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः॥
श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः।
मानुषं रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः॥
सर्वैः परिवृतो देवैर्वानरत्वमुपागतैः।
सर्वलोकेश्वरः श्रीमाँल्लोकानां हितकाम्यया॥
स राक्षसपरीवारं देवशत्रुं भयावहम्।

(६। १११। ११—१५)

मन्दोदरी कहती है—हे नाथ! पहले आपने इन्द्रियोंको जीत करके—वशमें करके त्रिभुवनको जीता था, उस वैरको स्मरण करती-सी इन्द्रियोंने अब आपको जीत लिया है—

इन्द्रियाणि पुरा जित्वा जितं त्रिभुवनं त्वया॥
स्मरद्भिरिव तद् वैरमिन्द्रियैरेव निर्जितः।

(६। १११। १५-१६)

हे दुर्मते! तुमने श्रीसीताको नहीं पहचाना। श्रीसीता, अरुन्धती और रोहिणी सभी विशिष्ट पतिव्रता हैं, वे वसुधाकी भी वसुधा हैं—अत्यन्त क्षमाशीला हैं; इसीलिये उन्होंने आपके अपराध करनेपर भी आपको भस्म नहीं किया था। वे श्रीकी भी श्री हैं—'**श्रियः लक्ष्म्या अपि पूज्याम्**' अर्थात् श्रीसीता लक्ष्मीजीकी भी पूज्या हैं। अपने स्वामीके प्रति अत्यन्त स्नेहमयी हैं। सबकी मान्या—उपास्य देवता हैं। श्रीसीताका तिरस्कार करके आपने अत्यन्त अनुचित कार्य किया था—

अरुन्धत्या विशिष्टां तां रोहिण्याश्चापि दुर्मते॥
सीतां धर्षयता मान्यां त्वया ह्यसदृशं कृतम्।
वसुधाया हि वसुधां श्रियाः श्रीं भर्तृवत्सलाम्॥

(६। १११। २०-२१)

मन्दोदरी कहती है—आप पतिव्रता श्रीजनकनन्दिनीकी तपस्यासे जलकर भस्म हो गये, मैं ऐसा ही मानती हूँ—'**पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो**'। हे पतिदेव! आपने मेरा समस्त दर्प दलित कर दिया। दानवराज मय मेरे पिता हैं, राक्षसेश्वर रावण मेरे पति हैं और शक्र-निर्जेता—इन्द्रविजेता मेघनाद मेरा पुत्र है। यह सोचकर मैं अत्यन्त गर्वसे गर्विता रहती थी। परन्तु हाय! हाय! आज मैं कुछ न रही, केवल अभागिनी हूँ—

पिता दानवराजो मे भर्ता मे राक्षसेश्वरः॥
पुत्रो मे शक्रनिर्जेता इत्यहं गर्विता भृशम्।

(६। १११। ३९-४०)

मन्दोदरी कहती है—जब श्रीलक्ष्मणने युद्धमें मेरे पुत्र इन्द्रजित्का वध किया था, उस समय मुझे गहरा आघात पहुँचा था, हे पतिदेव! आज आपका वध होनेसे तो मैं मार ही डाली गयी—

यदा मे तनयः शस्तो लक्ष्मणेनेन्द्रजिद् युधि॥
तदा त्वभिहता तीव्रमद्य त्वस्मिन् निपातिता॥

(६। १११। ५७-५८)

हे पतिदेव! आपको अवगुण्ठन—घूँघट बहुत पसन्द था। आज मेरे मुखपर अवगुण्ठन नहीं है, मैं नगरद्वारसे पैदल ही चलकर समरभूमितक

आयी हूँ। इस स्थितिमें मुझे देखकर आप मुझे डाँट क्यों नहीं रहे हैं, क्रुद्ध क्यों नहीं हो रहे हैं?

दृष्ट्वा न खल्वभिक्रुद्धो मामिहानवगुण्ठिताम्॥
निर्गतां नगरद्वारात् पद्भ्यामेवागतां प्रभो।

(६। १११। ६१-६२)

हे महाराज! 'पतिव्रताओंके आँसू इस पृथ्वीपर व्यर्थ नहीं गिरते' यह लोकोक्ति आपके ऊपर प्रायः चरितार्थ हो रही है—

प्रवादः सत्यमेवायं त्वां प्रति प्रायशो नृप॥
पतिव्रतानां नाकस्मात् पतन्त्यश्रूणि भूतले।

(६। १११। ६६, ६७)

हे महाराज दशानन! हित चाहनेवाले सुहृदोंने और बन्धुओंने जो आपसे सम्पूर्णतः हितकी बात कही थी, उन्हें आपने ध्यानसे नहीं सुना। विभीषणका कथन हेत्वर्थयुक्त था—युक्ति और प्रयोजनसे युक्त था; इसलिये श्रेयस्कर भी था, अदारुण था—हित वचन होते हुए भी मनोहर था, विधिपूर्वक कहा गया था; किन्तु आपने उसमें दोष निकाल दिया कि यह ज्ञातित्वेन मेरा अकल्याण चाहता है और आपने उसे घरसे निकाल दिया। आप अपने बलसे गर्वोन्मत्त हो रहे थे, एतावता मारीच, कुम्भकर्ण और मेरे पिताकी भी कल्याणकारी बात आपने नहीं स्वीकार की। इन सब वचनोंके न माननेका ही यह फल आज आपको मिला है—

सुहृदां हितकामानां न श्रुतं वचनं त्वया।
भ्रातॄणां चैव कार्त्स्न्येन हितमुक्तं दशानन॥
हेत्वर्थयुक्तं विधिवच्छ्रेयस्करमदारुणम्।
विभीषणेनाभिहितं न कृतं हेतुमत् त्वया॥
मारीचकुम्भकर्णाभ्यां वाक्यं मम पितुस्तथा।
न कृतं वीर्यमत्तेन तस्येदं फलमीदृशम्॥

(६। १११। ७६—७८)

वास्तवमें मन्दोदरीका विलाप अत्यन्त उपदेशपूर्ण है। इसमें मन्दोदरीका भक्तस्वरूप सुप्रकाशित हुआ है। इस विलापसे मन्दोदरीका निष्पक्ष विचार प्रकट हुआ है। मन्दोदरीको ठाकुरजीके परतत्त्वका भलीभाँति ज्ञान है।

महाकवि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी अत्यन्त संक्षिप्त और महत्त्वपूर्ण मन्दोदरीके विलापका वर्णन किया है—

राम बिमुख अस हाल तुम्हारा।
रहा न कोउ कुल रोवनिहारा॥
तव बस बिधि प्रपंच सब नाथा।
सभय दिसिप नित नावहिं माथा॥
अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं।
राम बिमुख यह अनुचित नाहीं॥
काल बिबस पति कहा न माना।
अग जग नाथु मनुज करि जाना॥
जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं।
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करुनामयं॥
आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।
तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥
अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन।
जोगि बृन्द दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान॥
मंदोदरी बचन सुनि काना।
सुर मुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना॥

(६। १०४। १०—१३; छं०, दो० १०४; दो० १०५। १)

इसी समय श्रीरामजीने श्रीविभीषणसे कहा—इन स्त्रियोंको सान्त्वना दो और अपने भाईका दाह-संस्कार करो—

एतस्मिन्नन्तरे रामो विभीषणमुवाच ह॥
संस्कारः क्रियतां भ्रातुः स्त्रीगणः परिसान्त्व्यताम्।

(६। १११। ९१-९२)

श्रीविभीषणने कहा—जिसने धर्म और सदाचारका परित्याग कर दिया था, जो क्रूर, नृशंस, निर्दय, मिथ्यावादी तथा परदाराभिमर्षक

था, उसका दाहसंस्कार करना मैं उचित नहीं समझता हूँ—

त्यक्तधर्मव्रतं क्रूरं नृशंसमनृतं तथा॥
नाहमर्हामि संस्कर्तुं परदाराभिमर्शनम्।

(६।१११।९३-९४)

भगवान् श्रीरामने कहा—हे विभीषण! यह रावण भले ही अधर्मी और मिथ्यावादी था, परन्तु संग्राममें सदा ही तेजस्वी, बलवान् तथा शूरवीर रहा है—

अधर्मानृतसंयुक्तः कामं त्वेष निशाचरः॥
तेजस्वी बलवाञ्छूरः संग्रामेषु च नित्यशः।

(६।१११।९८-९९)

राजराजेन्द्रकुमार श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे विभीषण! वैर जीवनकालतक ही रहता है, जीवनके अवसानके अनन्तर वैरका—शत्रुताका भी अवसान हो जाता है। अब हमारा मुख्य प्रयोजन सिद्ध हो चुका है—सीतालाभरूपी प्रयोजन निष्पन्न हो चुका है, एतावता तुम रावणका अन्त्येष्टि-संस्कार सम्पन्न करो, इस समय यह जैसे तुम्हारा है उसी तरह मेरा भी है—

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्॥
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।

(६।१११।१००-१०१)

'**ममापि**' इस शब्दसे रावणको अपना नित्य सखा सूचित किया है—'**ममापीत्यनेन रावणस्य स्व नित्य सखत्वं व्यञ्जितम्**' (रामायणशिरोमणि-टीका) अथवा यह मेरे चित्तके अनुकूल हो गया है, इसलिये तुम मेरे मित्र होनेके नाते रावणके अनुकूल आचरण करो। किं वा जैसे यह तुम्हारा है उसी तरह मेरा भी है। भाव यह है कि इसके संस्कारका जिस प्रकार तुम्हें अधिकार प्राप्त है उसी तरह मुझे भी प्राप्त है। यदि तुम रावणका संस्कार नहीं करोगे तो मैं स्वयं करूँगा—'**ममाप्येष यथा तव। अयं मच्चित्तानुकूलो जातः, अतो मन्मित्रभूतो भवानपि तमनुवर्तितुमर्हति। अथवा एष यथा तव तथा ममापि, अस्य संस्कारस्तव यथा प्राप्तः तथा ममापीत्यर्थः। भवानस्य संस्कारं न करोति चेदहमेव करोमि। बन्धुषु येन केनापि कर्तव्यं खल्विदं तद्दूरे तिष्ठ अहमेव करिष्यामीत्यर्थः**'। (श्रीगोविन्दराजजी) इसके पश्चात् भगवान् श्रीरामकी आज्ञासे विभीषणजीने सबके साथ मिलकर, विशेष करके अपने नाना माल्यवान्के साथ मिलकर रावणका संस्कार किया '**ततो माल्यवतासार्द्धं क्रियामेव चकार सः**'। विभीषणने रावणकी चितामें विधिपूर्वक आग लगायी। तदनन्तर स्नान करके आर्द्र वस्त्रसे ही उन्होंने तिल, कुश और जलके द्वारा विधिवत् रावणको जलाञ्जलि दी—

स ददौ पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः।
स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान्दर्भविमिश्रितान्॥
उदकेन च सम्मिश्रान् प्रदाय विधिपूर्वकम्।

(६।१११।१२०-१२१)

देवता, गन्धर्व और दानव भी रावण-वधका दृश्य देखकर उसकी शुभ कथा कहते हुए अपने विमानसे यथास्थान लौट गये—

ते रावणवधं दृष्ट्वा देवगन्धर्वदानवाः।
जग्मुः स्वैः स्वैर्विमानैस्ते कथयन्तः शुभाः कथाः॥

(६।११२।१)

महाबाहु श्रीराघवेन्द्र सरकारने अग्निकी भाँति प्रकाशमान इन्द्रप्रदत्त दिव्य रथको वापस ले जानेकी आज्ञा देकर मातलिका अनेक प्रकारसे सत्कार किया—

राघवस्तु रथं दिव्यमिन्द्रदत्तं शिखिप्रभम्॥
अनुज्ञाप्य महाबाहुर्मातलिं प्रत्यपूजयत्।

(६।११२।४-५)

कृतज्ञ श्रीरघुनन्दनने श्रीसुग्रीवको हृदयसे लगाकर मानो नेत्रोंकी भाषामें यह कहा कि हे

वानरेन्द्र! हे सखे! आज तुम्हारी सहायतासे ही मैं श्रीराम-रावण समरसागरका अतिक्रमण कर सका हूँ। श्रीरामने श्रीलक्ष्मणका अभिवादन स्वीकार किया। श्रीहनुमदादि भक्त वानरेन्द्रोंने श्रीरामजीकी अनेक सामग्रियोंसे विधिवत् अर्चना की, वन्दना की। इनसे सम्मानित होकर श्रीरघुनन्दन सेनाकी छावनीपर लौट आये—

राघवः परमप्रीतः सुग्रीवं परिषस्वजे।
परिष्वज्य च सुग्रीवं लक्ष्मणेनाभिवादितः॥
पूज्यमानो हरिगणैराजगाम बलालयम्।

(६। ११२। ७-८)

तत्पश्चात् कृतज्ञ श्रीरघुनन्दनने अपने अनुरक्त भ्राता श्रीलक्ष्मणसे कहा—हे सुमित्रानन्दन! अब तुम लङ्का जाकर मेरे मित्र विभीषणका राज्याभिषेक करो; क्योंकि ये मेरे अनुरक्त, भक्त तथा पूर्वोपकारी हैं। हे सुमित्राकुमार! मेरी बड़ी इच्छा है कि रावणानुज विभीषणको मैं लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त देखूँ—

विभीषणमिमं सौम्य लङ्कायामभिषेचय॥
अनुरक्तं च भक्तं च तथा पूर्वोपकारिणम्।
एष मे परमः कामो यदिमं रावणानुजम्॥
लङ्कायां सौम्य पश्येयमभिषिक्तं विभीषणम्।

(६। ११२। ९—११)

समस्त सामग्रियोंका विधिपूर्वक सङ्कलन कराकर श्रीलक्ष्मणने विभीषणजीका लङ्काके राज्यपर वेदोक्त विधिसे अभिषेक कर दिया—

घटेन तेन सौमित्रिरभ्यषिञ्चद् विभीषणम्।
लङ्कायां रक्षसां मध्ये राजानं रामशासनात्॥

(६। ११२। १५)

राक्षसेन्द्र विभीषणको लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त देखकर उनके मन्त्री और प्रेमी राक्षस बहुत प्रसन्न हुए और श्रीलक्ष्मणसहित राघवेन्द्र सरकारको तो अत्यन्त सन्तोष तथा प्रसन्नता हुई—

प्रहर्षमतुलं गत्वा तुष्टवू राममेव हि।
तस्यामात्या जहृषिरे भक्ता ये चास्य राक्षसाः॥
दृष्ट्वाभिषिक्तं लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम्।
राघवः परमां प्रीतिं जगाम सहलक्ष्मणः॥

(६। ११२। १७-१८)

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़कर विनीतभावसे खड़े हुए परमवीर श्रीहनुमान्से कहा—हे सौम्य! महाराज विभीषणकी आज्ञा लेकर लङ्कामें प्रविष्ट हो करके मिथिलेशनन्दिनी सीतासे उनका कुशल-समाचार पूछो—

ततः शैलोपमं वीरं प्राञ्जलिं प्रणतं स्थितम्।
उवाचेदं वचो रामो हनूमन्तं प्लवङ्गमम्॥
अनुज्ञाप्य महाराजमिमं सौम्य विभीषणम्।
प्रविश्य नगरीं लङ्कां कौशलं ब्रूहि मैथिलीम्॥

(६। ११२। २३-२४)

हे हनुमान्! श्रीसीताको सुग्रीव और लक्ष्मणके सहित मेरा कुशल-समाचार सुना करके रावणके युद्धमें मरनेका समाचार भी सुना दो। तत्पश्चात् उनका सन्देश लेकर लौट आओ—

वैदेह्यै मां च कुशलं सुग्रीवं च सलक्ष्मणम्।
आचक्ष्व वदतां श्रेष्ठ रावणं च हतं रणे॥
प्रियमेतदिहाख्याहि वैदेह्यास्त्वं हरीश्वर।
प्रतिगृह्य तु सन्देशमुपावर्तितुमर्हसि॥

(६। ११२। २५-२६)

पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना।
लंका जाहु कहेउ भगवाना॥
समाचार जानकिहि सुनावहु।
तासु कुसल लै तुम्ह चलि आवहु॥

श्रीहनुमान्जी लङ्कापुरीमें प्रवेश करके लङ्केश्वर विभीषणकी आज्ञा ले करके अशोकवाटिकामें गये।

इति प्रतिसमादिष्टो हनूमान्मारुतात्मजः।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः॥

(६। ११३। १)

श्रीहनुमान्‌जीको देखकर श्रीसीताजी बहुत प्रसन्न हुईं। श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे वैदेहि! श्रीरामचन्द्रजी श्रीलक्ष्मण और वानरेन्द्र सुग्रीवके साथ सकुशल हैं। श्रीरामजीने शत्रुका वध कर दिया है, उनका मनोरथ सफल हो गया है। शत्रुञ्जय श्रीरामने आपकी कुशल पूछी है—

वैदेहि कुशली रामः सहसुग्रीवलक्ष्मणः।
कुशलं चाह सिद्धार्थो हतशत्रुरमित्रजित्॥

(६। ११३। ७)

हे धर्मज्ञे! मैं आपको प्रिय संवाद सुनाता हूँ। मैं आपको अधिक-से-अधिक प्रसन्न देखना चाहता हूँ। हे भगवति! आपके अलौकिक पातिव्रत्यधर्मके प्रभावसे ही युद्धमें श्रीराघवेन्द्र सरकारने यह महान् विजय पायी है। अब आप सब प्रकारकी चिन्ताओंका परित्याग करके स्वस्थ हो जायँ। हे मातः! हमलोगोंका प्रबल शत्रु रावण मारा गया और लङ्का-नगरी भगवान् श्रीरामके अधीन हो गयी—

प्रियमाख्यामि ते देवि भूयश्च त्वां सभाजये।
तव प्रभावाद् धर्मज्ञे महान् रामेण संयुगे॥
लब्धोऽयं विजयः सीते स्वस्था भव गतज्वरा।
रावणश्च हतः शत्रुर्लङ्का चैव वशीकृता॥

(६। ११३। ९-१०)

श्रीहनुमान्‌जीसे अपने स्वामीकी विजयका मङ्गलमय समाचार श्रवण करके नित्य किशोरी श्रीसीताजी महान् प्रसन्न हो गयीं। '**शशिनिभानना**' का भाव यह है कि इस समाचारसे श्रीजानकीका मुखमण्डल चन्द्रमण्डलकी तरह खिल उठा और वे अपने आह्लादक प्रकाशसे सबके मनस्तापको शान्त करने लगीं। हर्षके कारण उनका कण्ठावरोध हो गया, वे सहसा कुछ बोल नहीं सकीं—स्तब्ध हो गयीं—

एवमुक्ता तु सा देवी सीता शशिनिभानना।
प्रहर्षेणावरुद्धा सा व्याहर्तुं न शशाक ह॥

(६। ११३। १४)

स्तब्धताको साहित्यशास्त्रमें जड़ता सञ्चारीभाव कहते हैं। जब बहुत प्रसन्नता होती है, तब शरीर ऐसा ही हो जाता है, मानो उससे कोई काम ही नहीं हो सकता। मुझे भी अनेक प्रसङ्गोंमें इसका अनुभव हुआ है। यह कोई रस तो नहीं है, परन्तु रसका पूर्वसूचक भाव अवश्य है।

श्रीसीताजीने कहा—हे सौम्य! इस समाचारको सुनकर मैं तुम्हें कुछ देना चाहती हूँ, परन्तु कोई पदार्थ समझमें नहीं आता है, इस भूतलपर मैं ऐसा कोई पदार्थ नहीं देखती जो पदार्थ इस मङ्गलमय संवादका सादृश्य कर सके—तुलना कर सके। सुवर्ण, रजत और अनेक प्रकारके रत्न किं बहुना त्रैलोक्यका राज्य भी इस समाचारके बराबर नहीं हो सकता है—

न हि पश्यामि तत्सौम्य पृथिव्यामपि वानर।
सदृशं यत् प्रियाख्याने तव दत्त्वा भवेत्सुखम्॥
हिरण्यं वा सुवर्णं वा रत्नानि विविधानि च।
राज्यं वा त्रिषु लोकेषु एतन्नार्हति भाषितम्॥

(६। ११३। १९-२०)

श्रीमिथिलेशनन्दिनीके इस प्रकार कहनेपर श्रीहनुमान्‌जीने स्वयंको कृतार्थ माना। आज वे अपनी वाणीके द्वारा अपनी परम आराध्या श्रीसीताजीको प्रसन्न कर लिये, इससे बड़ी और कौन-सी उपलब्धि होगी? उन्होंने श्रीसीताजीसे कहा—हे अपने पतिकी विजयकी आकाङ्क्षा—अभिलाषा करनेवाली! हे अपने स्वामीके प्रिय तथा हितमें सदा संलग्न रहनेवाली! हे सती-साध्वी देवि! आपके दिव्य मुखचन्द्रसे ही इस प्रकार अमृतमय वचन निर्झरित हो सकते हैं—

भर्तुःप्रियहिते युक्ते भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणि।
स्निग्धमेवंविधं वाक्यं त्वमेवार्हस्यनिन्दिते॥

(६। ११३। २२)

हे सौम्ये! आपके यह वचन मात्र औपचारिक नहीं हैं, अपितु सारगर्भित एवं स्निग्ध हैं सुतराम् अनेक प्रकारकी रत्नराशि और देवताओंके राज्यसे

बढ़कर है। हे वात्सल्यमयि! हे जननि! जब मैं यह देखता हूँ कि मेरे आराध्य, मेरे स्वामी श्रीरामजी अपने शत्रुका वध करके विजयी हो गये हैं और शरीरसे, मनसे सकुशल हैं, तब मैं यह अनुभव करता हूँ कि मेरे समस्त प्रयोजन स्वयं सिद्ध हो गये। अब मुझे कुछ पाना शेष नहीं है, मैंने सब कुछ पा लिया है—

तवैतद् वचनं सौम्ये सारवत् स्निग्धमेव च।
रत्नौघाद् विविधाच्चापि देवराज्याद् विशिष्यते॥
अर्थतश्च मया प्राप्ता देवराज्यादयो गुणाः।
हतशत्रुं विजयिनं रामं पश्यामि सुस्थितम्॥

(६। ११३। २३-२४)

सब बिधि कुसल कोसलाधीसा।
मातु समर जीत्यो दससीसा॥
अबिचल राजु बिभीषन पायो।
सुनि कपि बचन हरष उर छायो॥
अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा॥
सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं।
रन जीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं॥
सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहुँ हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत॥

(श्रीरामचरितमानस ६। १०७। ७-८, छं०, दो० १०७)

तत्पश्चात् श्रीहनुमान्‌जीने श्रीसीताजीके सामने एक अद्भुत प्रस्ताव रखा, वह प्रस्ताव अनुद्विग्न होकर विनम्रतापूर्वक रखा—हे मातः! मैं इन राक्षसियोंको, जो आपको अपने भयावने स्वरूपसे और अपनी कठोर वाणीसे पहले डराती, धमकाती और डाँटती, फटकारती रहती थीं, हे कृपामयि! आप-जैसी पतिव्रताको इन्होंने क्या-क्या कहा है और आपके साथ कैसे-कैसे व्यवहार किये हैं, मैंने इसी अशोकवृक्षपर बैठकर सुना है। आपका उस समयका रोना, विलाप करना, प्राणोत्सर्गके लिये उद्यत होना मेरी आँखोंके सामने नाचता रहता है, मुझे सब कुछ ज्यों-का-त्यों स्मरण है। हे मातः! मैं इन राक्षसियोंको मार डालना चाहता हूँ—

इमास्तु खलु राक्षस्यो यदि त्वमनुमन्यसे।
हन्तुमिच्छामि ताः सर्वा याभिस्त्वं तर्जिता पुरा॥

(६। ११३। ३०)

हे माताजी! मैं इनको सामान्य ढंगसे नहीं मारना चाहता। इनको तड़पा-तड़पाकर मारना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि मुक्कों, लातों, थप्पड़ोंसे आहत करके इनके दाँत तोड़ दूँ, इनकी नाक और कान काट लूँ तथा इनके सिरके बालोंको नोच डालूँ—'**कर्तनैः कर्णनासानां केशानां लुञ्चनैस्तथा**' इस तरह मारूँ, आप मुझे केवल आज्ञा दें।

श्रीसीताजीने कहा—हे हनुमन्! मुझे अपने प्रारब्धकर्मजनित दशाके योगसे यह समस्त क्लेश अवश्यमेव भोगना था; एतावता रावणकी दासियोंका यदि कुछ अपराध भी हो तो मैं उसे क्षमा करती हूँ; क्योंकि इनके प्रति मेरे मनमें दयाके भाव उठ रहे हैं जिसके कारण मैं दुर्बल हो रही हूँ। हे पवननन्दन! ये बिचारीं तो पराधीन थीं, रावणकी आज्ञासे ही मुझे भय दिखाती थीं। जबसे रावणका वध हो गया है तबसे ये मुझे कुछ नहीं कहती हैं। अब तो ये मेरी सेवा भी करती हैं—

प्राप्तव्यं तु दशायोगान् मयैतदिति निश्चितम्।
दासीनां रावणस्याहं मर्षयामीह दुर्बला॥
आज्ञप्ता राक्षसेनेह राक्षस्यस्तर्जयन्ति माम्।
हते तस्मिन् न कुर्वन्ति तर्जनं मारुतात्मज॥

(६। ११३। ४१-४२)

हे हनुमान्! मैं तुम्हें संक्षेपमें एक पुराना इतिहास सुनाती हूँ—पहलेकी बात है, एक व्याघ्रने किसी व्याधका पीछा किया। व्याध

भागकर एक वृक्षपर चढ़ गया। उस वृक्षपर पहलेसे ही कोई रीछ बैठा हुआ था। बाघ वृक्षकी जड़के पास पहुँचकर पेड़पर बैठे हुए रीछसे बोला—हम और तुम दोनों ही वनके जीव हैं और यह व्याध हम दोनोंका विघातक है इसलिये तुम इसको वृक्षसे नीचे गिरा दो। व्याघ्रके ऐसा कहनेपर रीछने उत्तर दिया—यह व्याध मेरे निवास स्थानपर आकर एक प्रकारसे मेरी शरण ले चुका है; अतः मैं इसे नीचे नहीं गिराऊँगा, क्योंकि इसके गिरानेमें महान् अधर्म होगा, इस प्रकार कहकर और निकटस्थ व्याधको भी आश्वस्त करके रीछ सुखपूर्वक सो गया। तब व्याघ्रने व्याधसे कहा—तुम इसे सोते हुए रीछको नीचे गिरा दो तो मैं तुम्हें नहीं खाऊँगा। व्याघ्रके इस प्रकार प्रेरणा देनेपर—न खानेका आश्वासन देनेपर व्याधने सोते हुए रीछको ढकेलकर नीचे गिरा दिया परन्तु रीछ अपने अभ्यास-बलके कारण शाखान्तरका अवलम्बन करके गिरा नहीं; बच गया। तब व्याघ्रने रीछसे कहा कि यह व्याध तुम्हारा अपराधी है, इसने तुम्हें वृक्षसे गिरानेका असफल प्रयास किया है इसलिये अब इसे नीचे गिरा दो। व्याघ्रके इस प्रकार बार-बार प्रेरित करनेपर भी रीछने उस व्याधको नहीं गिराया और व्याघ्रसे कहा कि अपराध करनेपर भी मैं इसकी रक्षा करूँगा। रीछने एक श्लोक कहकर उसको निरुत्तर कर दिया—यह कथा श्रीरामायण-शिरोमणि-टीकासे ली गयी है। सन्तलोग पापियोंके पापकर्मको नहीं अपनाते हैं, इसलिये अपनी प्रतिज्ञा एवं सदाचारकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये; क्योंकि साधुपुरुष अपने उत्तम चरित्रसे ही आभूषित होते हैं। सदाचार ही सन्तोंका अलङ्करण है—

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः॥

(६।११३।४४)

यह कहकर भगवती भास्वती करुणामयी, भक्तवत्सला श्रीमैथिलीने एक श्लोक कहा है, जो श्रीवाल्मीकीय रामायणका प्राण है। बत्तीस अक्षरोंका यह श्लोक भक्तोंको श्रीरामभक्त बननेकी सतत प्रेरणा देता रहेगा। कविताकानन कोकिल आदि कविमहर्षि श्रीवाल्मीकिकी भावमयी लेखनीसे निकले हुए दो श्लोक अतिशय महत्त्वपूर्ण हैं। रामभक्त श्रीवैष्णवलोग इनका नित्य नियमसे पाठ किं वा जप करते हैं। इनमें एक श्लोक श्रीरामजीने समुद्रके तटपर अपने भक्तोंसे कहा है उसकी व्याख्या इसी काण्डके अठारहवें सर्गमें कर चुका हूँ। दूसरा श्लोक करुणामयी श्रीजनकनन्दिनीके मुखसे निकला है। इसकी विशेष व्याख्याका अनवसर है, अतः केवल मूल श्लोक पढ़कर साधारण अर्थ करूँगा—

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥

(६।११३।४५)

कोई पापी हो या पुण्यात्मा अथवा वे वधके योग्य अपराध करनेवाले ही क्यों न हों, उन सबपर दया करें; क्योंकि ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जिससे कभी अपराध होता ही न हो। श्रीसीताजीने कहा—हे हनुमन्! श्रेष्ठ पुरुषको करुणा करनी चाहिये अर्थात् दूसरे लोग चाहे जो कुछ करें परन्तु श्रेष्ठ पुरुषोंको तो करुणा ही करनी चाहिये। करुणाका नाश कभी नहीं होना चाहिये। इस संसारमें केवल करुणाको लेकर ही अनेक धर्म चले हुए हैं। परन्तु हमारा जो सनातन वैदिक धर्म है, इसमें अहिंसा और करुणा तो है ही, सबसे बढ़कर हितभाव है। इसका अर्थ यह है कि यदि किसीके हितके लिये हिंसा और कठोरताका व्यवहार करना पड़े तो किया जा सकता है। परन्तु यहाँ तो करुणाकी बात चल रही है। जिसका हमारे यहाँ बहुत ऊँचा स्थान है।

करुणा हमारे हृदयका सबसे बड़ा धन है, एतावता उसकी रक्षा होनी ही चाहिये। हमारे आराध्य श्रीरघुनन्दन रामचन्द्र परमात्मा करुणामय हैं—'**करुनामय रघुनाथ गोसाँई**'।

श्रीसीताजीका '**कश्चिन्नापराध्यति**' कहनेका तात्पर्य यह है कि अपराध किससे नहीं होते? अपराध तो स्वयं मुझसे भी हुए हैं। हे हनुमन्! जब श्रीरामजी मायामृगवेषधारी मारीचके पीछे चले गये तब मैंने श्रीलक्ष्मणके प्रति अत्यन्त कठोर वचनोंका प्रयोग किया था और उनको हठपूर्वक श्रीरामजीके पास जानेके लिये विवश कर दिया था। हा हन्त! जिस त्यागी, बलिदानी लक्ष्मणने माँको छोड़ा, पिताको छोड़ा, अयोध्याका राजमहल छोड़ा, वैभवका सुख छोड़ा, समस्त कुटुम्बिजनोंको छोड़ा, नवपरिणीता पत्नी उर्मिलाका भी परित्याग करके जो श्रीरामके पीछे-पीछे वनतक चले आये। जिन्होंने श्रीरामजीकी कल्पनातीत कठिन सेवा की, जो श्रीरामजीकी दक्षिण भुजा हैं और श्रीरामजीके बहिश्चर प्राण हैं। जो श्रीरामजीको प्राणोंसे भी प्रिय हैं उन श्रीलक्ष्मणको मैंने कटूक्तियोंसे—वाग्बाणसे विद्ध कर दिया था। हे हनुमन्! क्या यह मेरा साधारण अपराध है? मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि उसी अपराधके कारण मुझे आजतक दुःख भोगना पड़ा—

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा।
सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोसा॥

मेरी अपनी बात छोड़ो, अपराध तो बड़े-बड़े लोगोंसे ज्ञाताज्ञात अवस्थामें हो जाता है। इसलिये हे हनुमन्! आर्य पुरुषोंको चाहिये कि वे अपराधोंपर ध्यान न दें। ध्यान देना ही है तो गुणोंपर ध्यान दें और करुणा करते रहें। यदि कोई वास्तवमें अपराधी है तो किस परिस्थितिमें है, किस कालमें है और किस देशमें है। इन सब बातोंपर विचार करके उसके अपराधके कारणोंको दूर करना चाहिये। इसीमें आर्यपुरुषकी शोभा है।

इस प्रकार श्रीसीताजीने प्रेमसे समझाया तब श्रीहनुमान्जी उनके श्रीचरणोंमें गिर पड़े और कहा—हे देवि! आप श्रीरामजीकी प्राणवल्लभा धर्मपत्नी हैं, एतावता आपका ऐसे सद्गुणोंसे युक्त होना युक्त ही है। अब मैं श्रीरघुनाथजीके पास जाऊँगा, इसलिये आप मुझे कोई सन्देश दें—

युक्ता रामस्य भवती धर्मपत्नी गुणान्विता।
प्रतिसन्दिश मां देवि गमिष्ये यत्र राघवः॥

(६। ११३। ४८)

नित्य किशोरी श्रीजनकराजकिशोरी सीताजीने कहा—हे हनुमन्! मेरे मनमें श्रीरामदर्शनके अतिरिक्त और कोई कामना न पहले थी और न आज है। मैंने तो श्रीरामसे वियुक्त होकर जीवन ही इसलिये धारण किया है कि मुझे पुनः श्रीरामजीका दर्शन हो। हे कपिश्रेष्ठ! मैं अपने भक्तवत्सल करुणामय स्वामीका शीघ्र-से-शीघ्र दर्शन करना चाहती हूँ—

एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा।
साब्रवीद् द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं भक्तवत्सलम्॥

(६। ११३। ४९)

श्रीहनुमान्जीने आकर श्रीरामजीको सब समाचार सुनाया। भगवान् श्रीरामने श्रीविभीषणसे कहा कि हे राक्षसेन्द्र! आप श्रीसीताजीको मस्तकसे स्नान कराके दिव्य अङ्गराग और दिव्य अलङ्कारोंसे अलङ्कृत करके जल्दी ही मेरे पास ले आओ—

दिव्याङ्गरागां वैदेहीं दिव्याभरणभूषिताम्।
इह सीतां शिरःस्नातामुपस्थापय मा चिरम्॥

(६। ११४। ७)

श्रीविभीषणने स्वयं ही जाकर महाभागा श्रीजनकनन्दिनीका दर्शन किया और बद्धाञ्जलि होकर विनीतभावसे निवेदन किया—हे जनकाधिराजतनये! आप स्नान करके दिव्य अङ्गराग

तथा दिव्य वस्त्राभूषणोंसे अलङ्कृत होकर शिविकापर विराजें। हे भगवति! आपका कल्याण हो। आपके स्वामी आपको देखना चाहते हैं—

दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता।
यानमारोह भद्रं ते भर्ता त्वां द्रष्टुमिच्छति॥

(६। ११४। १०)

श्रीसीताजीने विभीषणकी बात सुनकर उनसे कहा—मैं जैसी हूँ वैसी ही अपने स्वामीके पास चलना चाहती हूँ। मैं बिना स्नान किये ही अपने स्वामीका दर्शन करना चाहती हूँ—

एवमुक्ता तु वैदेही प्रत्युवाच विभीषणम्।
अस्नात्वा द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं राक्षसेश्वर॥

(६। ११४। ११)

जब श्रीविभीषणने श्रीसीताजीको श्रीरामजीकी आज्ञा सुनायी तब परम पतिव्रता श्रीसीताने स्वामीकी आज्ञा शिरोधार्य करके सिरसे स्नान करके बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण करके चलनेको प्रस्तुत हो गयीं—

ततः सीतां शिरःस्नातां संयुक्तां प्रतिकर्मणा।
महार्हाभरणोपेतां महार्हाम्बरधारिणीम्॥

(६। ११४। १४)

श्रीविभीषणने भगवान् श्रीरामको श्रीसीताजीके आगमनकी सूचना दी। भगवान् श्रीरामने श्रीसीताजीको ले आनेकी आज्ञा दी।

भगवती भास्वती श्रीसीताजी आयी हैं, हमारी माताजी आयी हैं, जिनके लिये इतना बड़ा समर हुआ वे महादेवी आयी हैं, भगवान् श्रीरामकी प्राणवल्लभा प्रियतमा आयी हैं, वे तो भक्तवत्सला हैं यह सुनकर आँखोंमें चिरप्रतीक्षित दिदृक्षा लिये, भाव भरे उमड़ते हुए हृदयसे वानर, रीछ, गोलाङ्गूल और राक्षस सब दौड़ पड़े। वानरादिके हृदय अतिशय अनुरागके रंगमें रँगे थे, ये साधारण वानर, रीछ नहीं थे, कोई देवता था, कोई सिद्ध था, कोई ऋषि था, ये सब भगवत्-कैङ्कर्यका लाभ लेनेके लिये वानरादि देह धारण किये हैं। आज ये अपने नेत्रोंको सफल करनेके लिये दौड़ पड़े। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओंसे दौड़ पड़े, भीड़ हो जाना स्वाभाविक है—'**को न चहइ जग जीवन लाहू**'। मार्ग ही अवरुद्ध हो गया। श्रीसीताजीकी पालकी आगे बढ़ ही नहीं सकती थी। लङ्काके सिपाही, जो पगड़ी बाँधे हुए थे और अँगरखा पहने थे। हाथोंमें झाँझकी तरह बजती हुई छड़ी लेकर उन वानर-योद्धाओंको हटाते हुए चारों ओर घूमने लगे—

कञ्चुकोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झरपाणयः।
उत्सारयन्तस्तान् योधान् समन्तात् परिचक्रमुः॥

(६। ११४। २१)

जिन वानरादिको हटाया गया वे निराश होकर कुछ दूर जाकर खड़े हो गये। उनकी मातृदर्शनकी भावनामें विक्षेप होनेसे उनका मन दुःखी हो गया। श्रीरामजीका मन अपने प्राणप्रिय वानरों, रीछोंके दुःखी होनेसे अत्यन्त उद्विग्न हो गया। वानरोंके ऊपर अधिक कृपा होनेके कारण करुणामय श्रीरामजीको क्रोध आ गया। फिर तो वे आग्नेय नेत्रोंसे—रोषपूर्ण दृष्टिसे देखने लगे और महाप्राज्ञ श्रीविभीषणको उपालम्भ देते हुए क्रोध-पूर्वक बोले—

संरम्भाच्चाब्रवीद् रामश्चक्षुषा प्रदहन्निव।
विभीषणं महाप्राज्ञं सोपालम्भमिदं वचः॥

(६। ११४। २५)

'**चक्षुषा प्रदहन्निव**' का भाव श्रीगोविन्दराजजी लिखते हैं—जब श्रीविभीषणजी ठाकुरजीके पास आये तो महर्षिने लिखा था—'**लोचनाभ्यां पिबन्निव**' अर्थात् भगवान् उन्हें इस प्रकार देख रहे थे मानो नेत्रसे उनकी स्वरूप-सुधाका पान कर रहे हैं।

यह कहकर जिन श्रीविभीषणका अत्यन्त आदर किया गया था, आज उन्हींके लिये लिख रहे हैं—'**चक्षुषा प्रदहन्निव**' अर्थात् आँखोंसे जलाये हुए-से देख रहे हैं। इसमें विभीषणका दोष यह है कि उन्होंने श्रीरामभक्त वानरोंका उत्सारण—भक्तजनदर्शन निवारण किया था। भक्तवत्सल श्रीरामजी अपने भक्तोंका निग्रह सहन नहीं कर पाते हैं—'**चक्षुषा प्रदहन्निवेति लोचनाभ्यां पिबन्निवेत्युक्तादरपात्रभूतस्य विभीषणस्यैवंविध-दर्शनविषयताकरणं स्वजननिग्रहासहिष्णुत्वात्। सीताविषयसमारोपित रोषविशेषाद् वा**' (श्रीगोविन्दराज) श्रीठाकुरजीने विभीषणको उपालम्भ देते हुए कहा—तुम मेरा अनादर क्यों कर रहे हो और मेरे इन प्राणप्रिय भक्तोंको कष्ट क्यों दे रहे हो? इस उद्वेगजनक कार्यको रोक दो। यहाँ जितने लोग हैं, सब मेरे स्वजन हैं, इनके दर्शनमें कैसी बाधा? जिन लोगोंने प्राणकी बाजी लगाकर श्रीसीतादर्शन करनेके लिये रावण-जैसे दुर्द्धर्ष वीरका सामना किया है, जिन लोगोंने अपना घर, परिवार, राज, सुखसाधन छोड़कर मेरे साथ इस खारे सागरके तटपर दुःख उठाया है, आज उन्हीं लोगोंको श्रीसीतादर्शनके लिये निवारण करना कहाँका न्याय है? और यह सीताका कैसा समादर है? उनका यह कैसा परदा है? वास्तवमें तो अपने पतिसे प्राप्त होनेवाला सत्कार और स्त्रीका अपना सदाचार ही नारीका सच्चा आवरण है—अवगुण्ठन है—परदा है—

न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारस्तिरस्क्रिया।
नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियाः॥

(६। ११४। २७)

कुछ समय ऐसे भी जीवनमें आते हैं जब परदा करनेवाली स्त्रियाँ भी परदा नहीं करती हैं। विपत्तिकालमें, शारीरिक या मानसिक व्यथाके अवसरपर, युद्धमें और विवाहकालमें स्त्रीका दीखना दोषकी बात नहीं है अर्थात् इतने स्थानोंमें स्त्रीको परदा आवश्यक नहीं है—

व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरे।
न क्रतौ नो विवाहे वा दर्शनं दूष्यते स्त्रियाः॥

(६। ११४। २८)

यह सीता इस समय विपत्तिमें है। मानसिक कष्टसे भी युक्त है और विशेषतः मेरे पास है; अतः इसका परदेके बिना सबके सामने आना दोषकी बात नहीं है—

सैषा विपद्गता चैव कृच्छ्रेण च समन्विता।
दर्शने नास्ति दोषोऽस्या मत्समीपे विशेषतः॥

(६। ११४। २९)

इसलिये शिबिका छोड़कर सीता पैदल ही मेरे पास आयें और ये सभी वानर उनका दर्शन करें—

विसृज्य शिबिकां तस्मात्पद्भ्यामेवापसर्पतु।
समीपे मम वैदेहीं पश्यन्त्वेते वनौकसः॥

(६। ११४। ३०)

श्रीसीताजी अपने परम प्रियतम श्रीरामजीके सामने उपस्थित होकर श्रीरामजीका दर्शन करने लगीं। उनका मुखमण्डल अत्यन्त सौम्यभावसे युक्त था। वे अपने पतिको ही देवता माननेवाली थीं। उन्होंने अत्यन्त विस्मयसे कहा—अहा, मैंने तो सोचा था कि अब मुझे पुनः श्रीरामजीका दर्शन नहीं होगा, मैं भाग्यहीना श्रीरामदर्शनके बिना ही राक्षसोंके हाथसे मारी जाऊँगी; परन्तु मेरे सौभाग्यसे अघटित घटना हो गयी, मुझे श्रीरामका दर्शन हो गया, इससे विस्मय हुआ—'**अघटितरामपुनर्दर्शनाद् विस्मयः**' अथवा जब मैं श्रीरामजीके पास थी तब मात्र श्रीराम-लक्ष्मण दो ही भाई थे, परन्तु आज कोटि-कोटि-अर्वुद-अर्वुद वानर-भालुओंका समुदाय चारों ओरसे घेरकर विराजमान हैं, इस प्रकार मित्रसम्पत्ति, परिवारसम्पत्तिसे सम्पन्न श्रीरामजीको देखकर

परम विस्मय हो गया। अथवा मनुष्योंके ऊपर, देवताओंके ऊपर तो अनेक लोगोंको शासन करते देखा-सुना है, परन्तु पशुपर उसमें भी चञ्चल, चपल वानरोंपर शासन करना असम्भव है। परन्तु यहाँ वानरसमुदाय अत्यन्त शिष्टकी भाँति सर्वदा अनुशासित हैं। इनके बैठने-उठने आदि समस्त क्रियाओंमें अनुशासन है, यह देखकर विस्मय हुआ। प्रहर्षसे—भगवान् श्रीरामजीका दर्शन करके श्रीसीताजीको हर्ष हुआ और अनेक भक्तोंसे युक्त श्रीरामजीको देखकर प्रहर्ष हुआ। अथवा श्रीरामजीके दर्शनसे हर्ष हुआ और विजयश्रीसे संयुक्त श्रीरामको देखकर प्रहर्ष हो गया और स्वाभाविक स्नेहसे अपने स्वामीके चित्ताकर्षक सौम्य मुखचन्द्रका दर्शन करने लगीं—

विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता।
उदैक्षत मुखं भर्तुः सौम्यं सौम्यतरानना॥

(६। ११४। ३५)

विनयपूर्वक अपने पासमें खड़ी श्रीसीताजीसे श्रीरामजीने अतिशय कठोर वाणीमें कहा—हे भद्रे! समराङ्गणमें रावण-ऐसे दुर्द्धर्ष, दुर्दान्त शत्रुको जीतकर मैंने तुम्हें छुड़ा लिया। पुरुषार्थके द्वारा जो किया जा सकता था वह मैंने किया—

एषासि निर्जिता भद्रे शत्रुं जित्वा रणाजिरे।
पौरुषाद् यदनुष्ठेयं मयैतदुपपादितम्॥

(६। ११५। २)

हे सीते! अब मेरे अमर्षका—क्रोधका अन्त हो गया। मुझपर जो कलङ्क लगा था उसका मैंने परिमार्जन कर दिया, इस युद्धमें मैंने दो प्रकारकी विजय पायी है। रावणके द्वारा मेरी स्त्री हर ली गयी थी, एक तो यह कलङ्क समाप्त हो गया। दूसरा शत्रुने जो मेरा अनादर किया—इन दोनोंपर मैंने युगपत्—एक साथ विजय प्राप्त कर ली—

‘**शत्रुकर्तृकदारापहरणहेतुकपराभवः सम्प्रमार्जिता—दूरीकृता अतएव अवमानः शत्रुकर्तृकस्वानादरः शत्रुश्च युगपत् मया निहितौ**’। (रामायणशिरोमणि-टीका)

गतोऽस्म्यन्तममर्षस्य धर्षणा सम्प्रमार्जिता।
अवमानश्च शत्रुश्च युगपन्निहतौ मया॥

(६। ११५। ३)

हे सीते! हनुमान्‌का समुद्र लाँघना और हरी-भरी लङ्काका तहस-नहस करना, उनका यह श्लाघ्य कर्म आज सफल हो गया—

लङ्घनं च समुद्रस्य लङ्कायाश्चापि मर्दनम्।
सफलं तस्य च श्लाघ्यमद्य कर्म हनूमतः॥

(६। ११५। ७)

ससैन्य श्रीसुग्रीवका उद्योग और श्रीविभीषणका त्याग और परिश्रम सफल हो गया। हे विदेह-नन्दिनि! हमने रावणादिका जो वध किया वह तुम्हारे लिये नहीं किया, सदाचारकी रक्षा, चारों ओर फैले हुए अपवादका निवारण तथा अपने सुप्रसिद्ध वंशपर लगे हुए कलङ्कका परिमार्जन करनेके लिये ही मैंने सब किया है—

रक्षता तु मया वृत्तमपवादं च सर्वतः।
प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यङ्गं च परिमार्जता॥

(६। ११५। १६)

हे सीते! तुम्हारे चरित्रमें सन्देहका अवसर उपस्थित हो गया है, इसलिये जिस प्रकार नेत्रके रोगीको दीपककी शिखा नहीं सुहाती है, उसी प्रकार तुम मुझे अत्यन्त अप्रिय ज्ञात होती हो—

प्राप्तचारित्रसन्देहा मम प्रतिमुखे स्थिता।
दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढा॥

(६। ११५। १७)

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके शब्दोंसे अभिव्यक्त हो रहा है कि हे सीते! वास्तवमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। तुममें तो दोषकी कल्पना भी नहीं करनी चाहिये, यह उपमान ही ऐसा कह रहा है

कि नेत्रके रोगीको दीपकका प्रकाश नहीं अच्छा लगता है। तो दीपकके प्रकाशमें तो रोग नहीं है, रोग तो दर्शककी आँखोंमें है। भाव कि श्रीरामचन्द्रजी जिस भी भावनासे कह रहे हों उस भावनाको हमारा प्रणाम है; परन्तु श्रीरामजीके मुखसे जो शब्द निकल रहे हैं वे श्रीसीताजीको निर्दोष सिद्ध कर रहे हैं। इसपर बुद्धिपूर्वक विचार करना चाहिये।

हे जनकात्मजे! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ चली जाओ। मैं अपनी ओरसे तुम्हें अनुमति देता हूँ। हे भद्रे! ये दसों दिशाएँ तुम्हारे लिये खुली हैं। अब तुमसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है—

तद् गच्छ त्वानुजानेऽद्य यथेष्टं जनकात्मजे।
एता दश दिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे त्वया॥

(६। ११५। १८)

श्रीरामजीने अनेक प्रकारके कुवाच्योंका प्रयोग किया है, जिनका वर्णन करना मेरे लिये असम्भव है। उन कुवाच्योंको सुनकर श्रीसीताजी फफक-फफक कर रुदन कर रही थीं। जैसे हाथीकी सूँड़से आहत हुई लता मुरझा जाती है उसी प्रकार श्रीसीताजी हो गयीं—

मुमोच बाष्पं रुदती तदाभृशं
गजेन्द्रहस्ताभिहतेव वल्लरी।

(६। ११५। २५)

श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे इस प्रकारके कुवाच्यका श्रवण करके श्रीसीताजी बहुत देरतक रोती रहीं। कुछ देरके पश्चात् आँसुओंसे भीगे हुए अपने मुख-मण्डलको पोंछकर शनैः-शनैः गद्गद वाणीसे श्रीरघुनाथजीसे इस प्रकार बोलीं—

ततो बाष्पपरिक्लिन्नं प्रमार्जन्ती स्वमाननम्।
शनैर्गद्गदया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत्॥

(६। ११६। ४)

हे महाबाहो! आप मुझे जैसा समझ रहे हैं मैं उस प्रकारकी नहीं हूँ। आप मेरा विश्वास कीजिये। मैं अपने सदाचारकी शपथ खाकर कहती हूँ कि मैं सन्देहके योग्य नहीं हूँ—

न तथास्मि महाबाहो यथा मामवगच्छसि।
प्रत्ययं गच्छ मे स्वेन चारित्रेणैव ते शपे॥

(६। ११६। ६)

हे रघुनन्दन! रावणके शरीरसे जो मेरे शरीरका स्पर्श हो गया है, उसमें तो मेरी विवशता है। मैंने स्वेच्छासे तो ऐसा नहीं किया है। इसमें तो मेरे दुर्भाग्यका ही दोष है। जो मेरे अधीन है वह मेरा मन, मेरा हृदय, मेरा अन्तःकरण, मेरा चित्त, मेरी बुद्धि, वह सब तो आपमें ही संलग्न थे, संलग्न हैं और संलग्न रहेंगे। उसपर आपके अतिरिक्त और किसीका अधिकार नहीं हो सकता है—

मदधीनं तु यत् तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरी॥

(६। ११६। ९)

हे राजन्! जब आपने मुझे देखनेके लिये महान् बलशाली श्रीहनुमान्‌जीको लङ्कामें भेजा था, उसी समय आपने मुझे क्यों नहीं त्याग दिया? उस समय उनके मुखसे त्यागका समाचार सुनते ही उन्हींके सामने मैं अपना प्राण त्याग देती—

प्रेषितस्ते महावीरो हनुमानवलोककः।
लङ्कास्थाहं त्वया राजन् किं तदा न विसर्जिता॥
प्रत्यक्षं वानरस्यास्य तद्वाक्यसमनन्तरम्।
त्वया संत्यक्तया वीर त्यक्तं स्याज्जीवितं मया॥

(६। ११६। ११-१२)

हे स्वामी! मेरे मरनेके पश्चात् आपको और आपके मित्रोंको युद्धका श्रम भी न करना पड़ता।

हे नृपश्रेष्ठ! आपने केवल क्रोधका अनुसरण करके निम्नकोटिकी स्त्रियोंका ही स्त्रीस्वभाव अपने सामने रखा है। हे राजन्! मेरी उत्पत्ति भी साधारण मानवजातिसे विलक्षण है, मैं अयोनिजा हूँ, धरित्रीसे प्रकट हुई हूँ। उसी तरह मेरा

सदाचार भी अलौकिक एवं दिव्य है; परन्तु हा हन्त! आपने सब जानते हुए भी मेरी इन विशेषताओंको विशेष महत्त्व नहीं दिया है। हे रघुनन्दन! आपने मेरा शील, मेरी भक्ति और मेरा त्याग सब कुछ विस्मृत कर दिया—

मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम्॥

(६ । ११६। १६)

इतना कहते-कहते श्रीसीताजीका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वे रो रहीं थीं, अश्रुधारा बह रही थी। उन्होंने सहसा श्रीलक्ष्मणपर दृष्टिपात किया, वे भी विषण्ण-वदन, चिन्तानिमग्न, नीचेनयन विराजमान थे। श्रीसीताजीने स्खलिताक्षरोंमें अपने लक्ष्मणसे कहा—

इति ब्रुवन्ती रुदती बाष्पगद्गदभाषिणी।
उवाच लक्ष्मणं सीता दीनं ध्यानपरायणम्॥

(६। ११६। १७)

हे लक्ष्मण! यद्यपि मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है, तुमसे कुछ कहने योग्य नहीं हूँ; परन्तु हे लक्ष्मण! मेरा मन कहता है कि अब भी तुम्हारा मातृभाव नष्ट नहीं हुआ है, तुम्हारी भक्तिमें कोई कमी नहीं देख रही हूँ। अपने आराध्य भगवान् श्रीरामके वचनोंको सुनकर तुम्हारे मनमें जो ऊहापोह है, आक्रोश है, तुम्हारे मुखमण्डलपर जो विषादकी छाया दीख रही है उससे यह ज्ञात हो रहा है कि मेरे प्रति तुम्हारा भक्तिभाव आज भी सरस है, तुम्हारी मातृनिष्ठामें कोई कमी नहीं है। हे लक्ष्मण! मेरे स्वामी मेरे गुणोंसे सन्तुष्ट नहीं हैं, इन्होंने भरी सभामें मुझसे सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है—मेरा परित्याग कर दिया है। हे सुमित्रानन्दन! मिथ्यापवादसे लाञ्छित होकर मैं जीवन धारण नहीं कर सकती हूँ; अतः मैं उचित मार्गपर जानेके लिये पावकमें प्रवेश करूँगी। हे लक्ष्मण! मेरे लिये पवित्र अग्निके द्वारा चिताकी व्यवस्था कर दो। मेरे इस अचानक आये हुए दुःखकी एकमात्र यही औषधि है।

चितां मे कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम्।
मिथ्यापवादोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे॥
अप्रीतेन गुणैर्भर्त्रा त्यक्ताया जनसंसदि।
या क्षमा मे गतिर्गन्तुं प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम्॥

(६। ११६। १८-१९)

श्रीसीताजीके इन करुण वचनोंको श्रवण करके श्रीलक्ष्मणजी अमर्षके वशीभूत हो गये। 'अमर्ष' के दो अर्थ आचार्योंने किये हैं, एक तो दैन्य और दूसरा क्रोध। यह तो निश्चित है कि श्रीलक्ष्मणजीसे यह अपमान सहन नहीं हो रहा है; परन्तु वे विवश हैं। श्रीलक्ष्मणजी तो सदा श्रीरामके हाथोंमें परतन्त्र रहना चाहते हैं। भगवान्के हार्दिक विचारको जाननेमें त्रैलोकमें कौन समर्थ हो सकता है? इस समय प्रभुके स्वभावको, उनकी वाणीको न श्रीसीता समझ पा रही हैं और न श्रीलक्ष्मण।

श्रीलक्ष्मणको ठाकुरजीने नेत्रोंकी ओर इङ्गित भाषामें आज्ञा प्रदान की कि अग्नि तैयार कर दो। श्रीलक्ष्मणने तत्काल श्रीरामजीकी सम्मतिसे चिता तैयार कर दी—

एवमुक्तस्तु वैदेह्या लक्ष्मणः परवीरहा।
अमर्षवशमापन्नो राघवं समुदैक्षत॥
स विज्ञाय मनश्छन्दं रामस्याकारसूचितम्।
चितां चकार सौमित्रिर्मते रामस्य वीर्यवान्॥

(६। ११६। २०-२१)

लछिमन होहु धरम के नेगी।
पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी॥
सुनि लछिमन सीता कै बानी।
बिरह बिबेक धरम निति सानी॥
लोचन सजल जोरि कर दोऊ।
प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ॥
देखि राम रुख लछिमन धाए।
पावक प्रगटि काठ बहु लाए॥

श्रीसीताजीने चिता तैयार होनेके अनन्तर श्रद्धापूर्वक श्रीरामजीकी परिक्रमा की। श्रीरामजी उस समय नीचे मुख करके खड़े थे। आचार्योंने व्याख्या की है—श्रीरामजीने लज्जाके कारण मुख नीचे कर लिया है अथवा, प्रभु सोचते हैं कि श्रीसीताजीका मुख देख लूँगा तो—'**प्रीतिर्नयन-योगतः**' न्यायके अनुसार सहज अनुकूलता अभिव्यक्त हो जायगी और लीलामें अवरोध उत्पन्न हो जायगा—'**मुखदर्शने दाक्षिण्यं भविष्यतीति बुद्ध्या चावनतमुखम्**'।

अधोमुखं स्थितं रामं ततः कृत्वा प्रदक्षिणम्।
उपावर्तत वैदेही दीप्यमानं हुताशनम्॥

(६। ११६। २३)

देवताओं और ब्राह्मणोंको प्रणाम करके श्रीमैथिलीने दोनों हाथ जोड़कर अग्निदेवके समीप जाकर इस प्रकार कहा—यदि मेरा हृदय अपने प्राणप्रियतम श्रीरघुनन्दनसे एक क्षणके लिये भी कभी अलग न हुआ हो तो हे समस्त लोकके साक्षीभूत अग्निदेव! आप मेरी सर्वतः रक्षा करें—

प्रणम्य दैवतेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली।
बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः॥
यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥

(६। ११६। २४-२५)

यदि मैंने मन, वाणी, कर्मद्वारा सर्वधर्मज्ञ श्रीराघवेन्द्रका कभी अतिक्रमण न किया हो तो भगवान् पावक मेरी रक्षा करें—

कर्मणा मनसा वाचा यथा नातिचराम्यहम्।
राघवं सर्वधर्मज्ञं तथा मां पातु पावकः॥

(६। ११६। २७)

श्रीसीताजीने कहा—हे अग्निदेव! अपने प्राण-प्रियतमके मुखसे अतिशय कठोर वचनोंको सुननेके बाद भी, उनके अत्यन्त अप्रिय व्यवहार करनेके पश्चात् भी यदि भगवान् श्रीरामके प्रति मेरी भावना दूषित न हुई हो, मेरी श्रद्धा समाप्त न हुई हो अपितु उनके प्रति भक्तिभावनाके दार्ढ्यमें वृद्धि हुई हो तो हे पावकदेव! आप सर्वतः मेरा परिरक्षण करें। इतना कहकर निःशङ्कचित्तसे अग्निदेवकी परिक्रमा करके श्रीसीता प्रज्वलित अग्निमें समा गयीं—

एवमुक्त्वा तु वैदेही परिक्रम्य हुताशनम्।
विवेश ज्वलनं दीप्तं निःशङ्केनान्तरात्मना॥

(६। ११६। २९)

श्रीसीताजीको अग्निमें प्रवेश करते देखकर—वसोर्धाराकी भाँति अग्निमें गिरते देखकर वहाँ आयी हुई समस्त स्त्रियाँ करुणक्रन्दन करने लगीं—

प्रचुक्रुशुः स्त्रियः सर्वास्तां दृष्ट्वा हव्यवाहने।
पतन्तीं संस्कृतां मन्त्रैर्वसोर्धारामिवाध्वरे॥

(६। ११६। ३४)

श्रीसीताजीके अग्निमें प्रवेश करते समय राक्षस, वानर सब उच्चस्वरसे हाहाकार करने लगे। उनका यह अद्भुत आर्तनाद चारों ओर गूँज उठा—

तस्यामग्निं विशन्त्यां तु हाहेति विपुलः स्वनः।
रक्षसां वानराणां च सम्बभूवाद्भुतोपमः॥

(६। ११६। ३६)

तदनन्तर धर्मात्मा श्रीराम हाहाकार करनेवाले वानर और राक्षसोंकी बात सुनकर, उनकी आर्तवाणी सुनकर खिन्नचित्त हो गये और बाष्पव्याकुल-लोचन श्रीराम सोचने लगे—हा हन्त! मैंने प्राकृत स्त्रीकी भाँति श्रीसीतासे व्यवहार किया। हाय! मैंने क्या कर दिया! मैंने क्या कह दिया! अब आगे क्या करना चाहिये आदि सोचने लगे—

ततो हि दुर्मना रामः श्रुत्वैवं वदतां गिरः।
दध्यौ मुहूर्तं धर्मात्मा बाष्पव्याकुललोचनः॥

(६। ११७। १)

इसी समय श्रीकुबेर, यमराज, इन्द्र, वरुण, श्रीशङ्कर, श्रीब्रह्माजी विमानोंसे लङ्कापुरीमें आकर श्रीरामजीके पास गये। श्रीब्रह्मादि देवताओंने कहा—हे श्रीराम! आप सम्पूर्ण विश्वके कर्ता, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ और विभु हैं। फिर इस समय अग्निमें गिरी हुई श्रीसीताकी उपेक्षा कैसे कर रहे हैं? इस बातको क्यों नहीं समझ रहे हैं कि आप समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीविष्णु ही हैं—

कर्ता सर्वस्व लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदां विभुः।
उपेक्षसे कथं सीतां पतन्तीं हव्यवाहने।
कथं देवगणश्रेष्ठमात्मानं नावबुद्ध्यसे।

(६। ११७। ६)

भगवान् श्रीरामने कहा—हे देवगण! मैं तो अपनेको मनुष्य और दशरथपुत्र राम ही समझता हूँ। हे भगवन्! मैं जो हूँ और जहाँसे आया हूँ वह सब आप ही मुझे बताइये—

आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।
सोऽहं यश्च यतश्चाहं भगवांस्तद् ब्रवीतु मे॥

(६। ११७। ११)

इसके अनन्तर श्रीब्रह्माजीने श्रीरामजीके दिव्य स्वरूपका वर्णन करते हुए अन्तमें कहा—हे श्रीराम! आपका बल अमोघ है, आपका पराक्रम भी कभी मोघ नहीं होता है। आपका दर्शन अमोघ है, आपका स्तवन भी अमोघ है तथा आपमें भक्ति रखनेवाले मनुष्य भी इस भूमण्डलमें अमोघ होंगे—

अमोघं देव वीर्यं ते न तेऽमोघाः पराक्रमाः॥
अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः।
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि॥

(६। ११७। २९-३०)

इसके अनन्तर साक्षात् अग्निदेव विदेहनन्दिनी श्रीसीताको अपनी दायीं गोदमें बिठाकर—जिसमें पुत्री और पुत्रवधूको बैठनेका अधिकार है, चितासे ऊपर उठे—

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं पितामहसमीरितम्।
अङ्केनादाय वैदेहीमुत्पपात विभावसुः॥

(६। ११८। १)

श्रीसीताजी तरुणादित्यसङ्काशा थीं, सुतप्त स्वर्णका आभूषण धारण किये थीं, उनके मङ्गलमय श्रीविग्रहपर लाल रंगकी साड़ी सुशोभित हो रही थी, उनके सिरपर काले-काले घुँघराले बाल थे, उनकी मालाके पुष्प खिले हुए थे, वे अनिन्दिता थीं। सती-साध्वी पतिव्रता श्रीसीताजीका अग्निमें प्रवेश करते समय जैसा रूप और वेष था वैसे ही अनिन्द्य सौन्दर्यसे सुप्रकाशित मिथिलेशनन्दिनीको अपनी गोदमें लेकर श्रीजनकराजकी तरह अग्निदेवने श्रीरामजीको समर्पित कर दिया—

तरुणादित्यसंकाशां तप्तकाञ्चनभूषणाम्।
रक्ताम्बरधरां बालां नीलकुञ्चितमूर्धजाम्॥
अक्लिष्टमाल्याभरणां तथारूपामनिन्दिताम्।
ददौ रामाय वैदेहीमङ्के कृत्वा विभावसुः॥

(६। ११८। ३-४)

लोकसाक्षी श्रीअग्निदेवने कहा—हे श्रीराम! यह सीता है, इसमें कोई पाप या दोष नहीं है—

अब्रवीत्तु तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः।
एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते॥

(६। ११८। ५)

इस श्लोकमें '**एषा**' शब्दके कई भाव आचार्योंने किये हैं—'**एषा**' '**या पूर्वं मयि प्रविष्टा सैषेत्यर्थः**' (श्रीगोविन्दराजजी) अर्थात् यह सीता जो रावणके द्वारा हरी जानेके पूर्व मुझमें प्रविष्ट हुई थीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रस्तुत प्रसङ्गमें माया सीता अग्निमें प्रविष्ट हो गयीं और साक्षात् सीताको अग्निदेवने श्रीरामचन्द्रजीको समर्पण कर दिया।

श्रीअग्नि कहते हैं—हे रघुनन्दन! सदाचार-परायणा, शुभ लक्षणा श्रीसीताजी वाणीसे पवित्र हैं—वाणीसे तुम्हारे अतिरिक्त और किसीका

गुणगान नहीं किया है, मनसे किसी अन्य पुरुषका चिन्तन नहीं किया है, बुद्धिसे और किसीका निश्चय नहीं किया है और नेत्रोंसे कभी किसीको देखा नहीं है। हे रघुनन्दन! आप श्रीसीताको स्वीकार करें। अग्निदेवकी बात सुनकर श्रीरामजीकी आँखोंमें आनन्दाश्रु छलक आये—'**हर्षव्याकुललोचनः**'। श्रीरामने प्रकृतिस्थ होकर कहा—हे अग्निदेव! मैं श्रीसीताजीकी पवित्रताको भलीभाँति जानता हूँ। ये मेरी अनन्यहृदया हैं, ये सदा मेरे मनकी ही बात करती हैं।

अनन्यहृदयां सीतां मच्चित्तपरिरक्षिणीम्।
अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम्॥

(६। ११८। १५)

हे अग्निदेव! संसारमें इनकी महिमाको प्रकट करनेके लिये ही मैंने इनकी अग्नि-परीक्षा की है। भगवान् श्रीरामने कहा—जैसे आत्मवान् व्यक्ति कीर्त्तिका परित्याग नहीं कर सकता है, इसी प्रकार मैं तीनों लोकोंमें पवित्र श्रीसीताजीको नहीं छोड़ सकता हूँ—

विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा।
न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा॥

(६। ११८। २०)

पावक प्रबल देखि बैदेही।
हृदयँ हरष नहिं भय कछु तेही॥
जौं मन बच क्रम मम उर माहीं।
तजि रघुबीर आन गति नाहीं॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना।
मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना॥
श्रीखंड सम पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस बंदित चरन रति अति निर्मली॥
प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे।
प्रभु चरित काहुँ न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे॥
धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग बिदित जो।
जिमि छीरसागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो॥
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली॥
बरषहिं सुमन हरषि सुर बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किंनर सुरबधू नाचहिं चढ़ीं बिमान॥
जनकसुता समेत प्रभु सोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हरषे जय रघुपति सुख सार॥

फिर शङ्करजीने श्रीरामजीका अभिनन्दन करते हुए कहा—हे श्रीराम! रावणके द्वारा समुत्पन्न भय और क्लेश समस्त लोकोंके लिये प्रवृद्ध दारुण अन्धकारके समान था, जिसे आपने समरमें समाप्त कर दिया—

दिष्ट्या सर्वस्य लोकस्य प्रवृद्धं दारुणं तमः।
अपवृत्तं त्वया सङ्ख्ये राम रावणजं भयम्॥

(६। ११९। ३)

फिर श्रीशङ्करजीने कहा—हे श्रीराम! तुम्हारे पिता महाराज श्रीदशरथ विमानपर बैठे हैं। श्रीशङ्करजीकी बात सुनकर श्रीराम-लक्ष्मणने विमान शिखरस्थ श्रीदशरथका अभिवादन किया—

महादेववचः श्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः।
विमानशिखरस्थस्य प्रणाममकरोत् पितुः॥

(६। ११९। ९)

श्रीदशरथजीने श्रीरामजीको गोदमें बिठाकर हृदयसे लगा लिया और बोले—हे रघुनन्दन! तुमसे वियुक्त होकर मुझे स्वर्ग एवं देवताओंका सम्मान नहीं अच्छा लगता है—

आरोप्याङ्के महाबाहुर्वरासनगतः प्रभुः।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य ततो वाक्यं समाददे॥
न मे स्वर्गो बहु मतः सम्मानश्च सुरर्षभैः।
त्वया राम विहीनस्य सत्यं प्रतिशृणोमि ते॥

(६। ११९। १२, १३)

श्रीदशरथने कहा—हे पुत्र! तुम्हारे-ऐसे धर्मात्मा पुत्रने मुझे तार दिया—

तारितोऽहं त्वया पुत्र सुपुत्रेण महात्मना।

(६। ११९। १७)

हे रघुनन्दन! तुम्हारी माता कौसल्याका जीवन धन्य है—कृतकृत्य है, जो वनसे लौटनेपर तुम्हारी तरह विजयी वीर पुत्रको अपने घरमें अत्यन्त हर्ष और उल्लासके साथ देखेंगी—

सिद्धार्था खलु कौसल्याया त्वां राम गृहं गतम्।
वनान्निवृत्तं संहृष्टा द्रक्ष्यते शत्रुसूदनम्॥

(६।११९।१९)

श्रीरामजीने बद्धाञ्जलि होकर श्रीदशरथसे कहा—हे पितः! आप माता कैकेयीजी और भरतपर प्रसन्न हों। हे प्रभो! आपने श्रीकैकेयीसे कहा था कि पुत्रके सहित मैं तुम्हें छोड़ रहा हूँ। आपका यह घोर शाप पुत्रसहित कैकेयीका स्पर्श न करे—

कुरु प्रसादं धर्मज्ञ कैकेय्या भरतस्य च॥
सपुत्रां त्वां त्यजामीति यदुक्ता केकयी त्वया।
स शापः केकयीं घोरः सपुत्रां न स्पृशेत् प्रभो॥

(६।११९।२५, २६)

श्रीदशरथजीने बहुत अच्छा कहकर श्रीरामजीकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। फिर श्रीदशरथजीने श्रीलक्ष्मणको हृदयसे लगाकर कहा—हे पुत्र! तुमने श्रीसीताके साथ श्रीरामचन्द्रकी भक्तिपूर्वक शुश्रूषा करके मुझे बहुत प्रसन्न किया है। तुम्हें इस धर्मका फल प्राप्त हुआ है। हे सेवाधर्मके मर्मज्ञ! आगे भी तुम्हें धर्मका फल प्राप्त होगा और पृथ्वीमें अनन्त कीर्तिकी प्राप्ति होगी। हे लक्ष्मण! श्रीरामकी प्रसन्नतासे तुम्हें उत्तम लोककी प्राप्ति होगी तथा महत्त्व मिलेगा—

धर्मं प्राप्स्यसि धर्मज्ञ यशश्च विपुलं भुवि।
रामे प्रसन्ने स्वर्गं च महिमानं तथोत्तमम्॥

(६।११९।२९)

तदनन्तर श्रीसीताको मधुर वाणीमें 'पुत्री' कहकर बुलाया और कहा—हे मिथिलेशनन्दिनि! तुम्हें श्रीरामपर क्रोध नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे तुम्हारे हितैषी हैं और जगत्‌में तुम्हारी पवित्रता उजागर करनेके लिये इन्होंने कठोर व्यवहार किया है। इस प्रकार श्रीराम-लक्ष्मण और सीताको उपदेश देकर श्रीदशरथ विमानके द्वारा इन्द्रलोक चले गये।

देवेन्द्र इन्द्रसे श्रीरामजीने प्रार्थना की—हे देवेन्द्र! मैं यह चाहता हूँ कि मेरी सीताजीकी प्राप्ति कलङ्कित न हो, कोई यह न कहे कि सीताजीकी प्राप्तिके लिये मेरा भाई मर गया, मेरी माँगका सिन्दूर पुँछ गया—मेरा पति मर गया और मेरी गोद खाली गयी, मेरा पुत्र मर गया।

हे देवेन्द्र! मेरे लिये समराङ्गणमें लड़ते-लड़ते जो वानर, रीछ और गोलाङ्गूल मर गये हैं, वे सब जीवित हो जायँ—

मम हेतोः पराक्रान्ता ये गता यमसादनम्।
ते सर्वे जीवितं प्राप्य समुत्तिष्ठन्तु वानराः॥

(६।१२०।५)

हे सम्मान देनेवाले देवेन्द्र! मैं उन वानर, गोलाङ्गूल और भालुओंको रोगरहित, व्रणहीन और बल-पौरुषसे सम्पन्न देखना चाहता हूँ—

नीरुजो निर्व्रणांश्चैव सम्पन्नबलपौरुषान्।
गोलाङ्गूलांस्तथर्क्षांश्च द्रष्टुमिच्छामि मानद॥

(६।१२०।९)

हे महेन्द्र! ये मेरे वानरादि जहाँपर भी रहें, वहाँ अकालमें भी पुष्प, मूल और फलोंकी बहुतायत हो तथा निर्मल जलवाली नदियाँ बहती रहें—

अकाले चापि पुष्पाणि मूलानि च फलानि च।
नद्यश्च विमलास्तत्र तिष्ठेयुर्यत्र वानराः॥

(६।१२०।१०)

देवराज इन्द्रने ठाकुरजीकी वाणीके अनुसार सब कार्य तत्काल सम्पन्न कर दिया—

सुनु सुरपति कपि भालु हमारे।
परे भूमि निसिचरन्हि जे मारे॥

मम हित लागि तजे इन्ह प्राना।
सकल जिआउ सुरेस सुजाना॥
सुनु खगेस प्रभु कै यह बानी।
अति अगाध जानहिं मुनि ग्यानी॥
प्रभु सक त्रिभुअन मारि जिआई।
केवल सक्रहि दीन्हि बड़ाई॥
सुधा बरषि कपि भालु जिआए।
हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए॥
सुधाबृष्टि भै दुहु दल ऊपर।
जिए भालु कपि नहिं रजनीचर॥
रामाकार भए तिन्ह के मन।
मुक्त भए छूटे भव बंधन॥
सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा।
जिए सकल रघुपति कीं ईछा॥

उस रात्रिमें श्रीरामजीने विश्राम किया। दूसरे दिन प्रात:काल जब उठे तब श्रीविभीषणने विनयपूर्वक पूछा—हे स्वामी! रात्रिमें नींदमें कोई विघ्न तो नहीं आया? आपका श्रीविग्रह सकुशल है? इस प्रकार पूछकर फिर निवेदन किया—हे स्वामी! स्नानके लिये जल, अङ्गराग, वस्त्र, आभूषण, चन्दन अनेक प्रकारकी मालाएँ आपकी सेवामें उपस्थित हैं। आप चलकर स्नान करें, श्रीविभीषणके स्नेहिल वचनोंको सुनकर श्रीरामजीने कहा—हे मित्र! मेरे लिये इस समय महात्मा भरत जो सुकुमार और सुख पाने योग्य हैं, महान् कष्ट उठा रहे हैं। उन भक्ति-धर्मका निर्वाह करनेवाले परम सुकुमार कैकेयीकुमार भरतसे मिले बिना न तो मुझे स्नान अच्छा लगता है, न वस्त्राभूषण। हे मित्र! अब तो हम अपने भरतके साथ ही विधिपूर्वक स्नान करेंगे। पहले उसकी जटा खोलेंगे फिर अपनी जटा। हे मित्र! अब तो तुम यह सोचो कि हमलोग शीघ्रातिशीघ्र श्रीअयोध्याजी कैसे पहुँचें; क्योंकि वहाँतक पैदलयात्रा करनेके लिये मार्ग परम दुर्गम है और हमारे पास अब समय भी नहीं है—

स तु ताम्यति धर्मात्मा मम हेतोः सुखोचितः।
सुकुमारो महाबाहुर्भरतः सत्यसंश्रयः॥
तं विना कैकयीपुत्रं भरतं धर्मचारिणम्।
न मे स्नानं बहु गतं वस्त्राण्याभरणानि च॥
एतत्पश्य यथा क्षिप्रं प्रतिगच्छाम तां पुरीम्।
अयोध्यां गच्छतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः॥

(६।१२१।५—७)

श्रीविभीषणने कहा—हे रघुनन्दन! मैं आपको एक दिनमें ही श्रीअयोध्याजी पहुँचा दूँगा—'**अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज**'। विभीषणने पुनः कहा—हे श्रीरामजी! यदि मैं आपके अनुग्रहके योग्य हूँ और मेरे प्रति आपका सौहार्द है तो श्रीसीताजी और भाई लक्ष्मणके साथ कुछ दिन यहीं विराजिये। हे रघुनन्दन! मैं प्रीतिपूर्वक आपका सत्कार करना चाहता हूँ। मेरे द्वारा प्रस्तुत किये गये सत्कारको आप अपने सुहृदों और सेनाओंके साथ स्वीकार करें। हे राघवेन्द्र! मैं केवल प्रेम, सम्मान और सौहार्दके कारण ही आपसे यह प्रार्थना कर रहा हूँ। मैं आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। मैं आपका प्रेष्य हूँ—सेवक हूँ; अतः आपसे प्रार्थना करता हूँ, आपको आज्ञा नहीं देता हूँ—

प्रीतियुक्तस्य विहितां ससैन्यः ससुहृद्गणः।
सत्क्रियां राम मे तावद् गृहाण त्वं मयोद्यताम्॥
प्रणयाद् बहुमानाच्च सौहार्देन च राघव।
प्रसादयामि प्रेष्योऽहं न खल्वाज्ञापयामि ते॥

(६।१२१।१४-१५)

विभीषणकी प्रार्थना सुनकर श्रीरामजीने कहा—हे राक्षसेन्द्र! तुम्हारी इस प्रार्थनाको मैं अस्वीकार नहीं कर सकता हूँ; परन्तु मेरा मन इस समय अपने महान् प्रेमी, आदर्श भ्राता

भरतको देखनेके लिये समुत्कण्ठित है। वे मुझे अयोध्या लौटा ले जानेके लिये चित्रकूटतक आये थे, उनके विनम्रतापूर्वक चरणोंमें मस्तक रखकर प्रार्थना करनेपर भी मैं उनकी प्रार्थना न मान सकता था—

न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः॥
मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः।
शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया॥

(६। १२१। १८, १९)

माताओं और श्रेष्ठ मित्र निषाद तथा अयोध्यावासियोंको भी देखनेके लिये मेरा मन उतावला हो रहा है। हे सौम्य! अब तो मुझे जानेकी ही आज्ञा दो। मेरे ऊपर क्रोध न करना, मैं बार-बार प्रार्थना करता हूँ। हे मित्र! अब तो पुष्पकविमान शीघ्र बुलाओ—

तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात॥
तापस बेष गात कृस जपत निरंतर मोहि।
देखौं बेगि सो जतनु करु सखा निहोरउँ तोहि॥
बीतें अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि-पुनि पुलक सरीर॥
करेहु कल्प भरि राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं।
पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं॥

(श्रीरामचरितमानस ६। ११६ (क, ख, ग, घ)

उसी समय श्रीविभीषणने पुष्पकविमानका आवाहन किया। वह अनेक प्रकारकी साज-सज्जाओंसे सुसज्जित था। उसका मनके समान वेग था, वह अबाधगति था। विमान आ गया। श्रीविभीषणजी उसके आनेकी सूचना देकर श्रीरामजीके समीप ही खड़े हो गये—

उपस्थितमनाधृष्यं तद् विमानं मनोजवम्।
निवेदयित्वा रामाय तस्थौ तत्र विभीषणः॥

(६। १२१। २९)

राक्षसेश्वर विभीषणने बद्धाञ्जलि होकर विनय और त्वरासंयुक्त वाणीमें पूछा, हे रघुनन्दन! मैं और क्या सेवा करूँ?

स तु बद्धाञ्जलिपुटो विनीतो राक्षसेश्वरः।
अब्रवीत्त्वरयोपेतः किं करोमीति राघवम्॥

(६। १२२। २)

श्रीरामजीने कहा—हे विभीषण! इन वानरोंने प्राणका भय त्याग करके अत्यन्त उत्साहपूर्वक रावणादिके साथ युद्ध करनेमें महान् परिश्रम और प्रयत्न किया है; अतः तुम नाना प्रकारके रत्न और धन आदिके द्वारा इनका सम्मान करो—

कृतप्रयत्नकर्माणः सर्व एव वनौकसः।
रत्नैरर्थैश्च विविधैः सम्पूज्यन्तां विभीषण॥

(६। १२२। ४)

श्रीविभीषणजीने प्रभुकी आज्ञानुसार उदारतापूर्वक समस्त वानरोंका रत्न, धन आदिके द्वारा सत्कार किया—

एवमुक्तस्तु रामेण वानरांस्तान् विभीषणः।
रत्नार्थसंविभागेन सर्वानेवाभ्यपूजयत्॥

(६। १२२। १०)

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने इस प्रसङ्गको अनोखे ढंगसे चित्रित किया है—

लै पुष्पक प्रभु आगें राखा।
हँसि करि कृपासिंधु तब भाषा॥
चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन।
गगन जाइ बरषहु पट भूषन॥
नभ पर जाइ बिभीषन तबही।
बरषि दिए मनि अंबर सबही॥
जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं।
मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं॥
हँसे रामु श्री अनुज समेता।
परम कौतुकी कृपा निकेता॥

(६। ११७। ४—८)

इसके अनन्तर श्रीरामजीने अपने समस्त

वानर सखाओंका अभिनन्दन करके उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त की—हे वानरश्रेष्ठ वीरो! आप लोगोंने मित्रके धर्मका, कार्यका भलीभाँति निर्वाह किया है, अब आपलोग अपने-अपने स्थानको पधारें—

मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरर्षभाः।
अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं प्रतिगच्छत॥

(६।१२२।१४)

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवसे कहा—हे वानरेन्द्र! आपने मित्रधर्मका पूर्ण निर्वाह किया है। अब आप अपनी सेनाके समेत किष्किन्धा जाइये। हे विभीषण! अब आप भी निर्भय होकर लङ्काका राज्य करें। अब आपलोग हमें आज्ञा दें, मैं श्रीअयोध्याजी जाना चाहता हूँ। भगवान्‌की आज्ञा सुन करके उनके वानरवीर श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करके आँखोंमें आँसू भरकर श्रीरामजीको देखते हुए चले गये। कुछ विशेष प्रेमी वानर जाना नहीं चाहते थे और प्रभुके वचनका प्रत्याख्यान भी नहीं करना चाहते थे, वे एकटक भगवान्‌की ओर देख रहे थे—

चितइ सबन्हि पर कीन्ही दाया।
बोले मृदुल बचन रघुराया॥
तुम्हरें बल मैं रावनु मार्‍यो।
तिलक बिभीषन कहँ पुनि सार्‍यो॥
निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू।
सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू॥
सुनत बचन प्रेमाकुल बानर।
जोरि पानि बोले सब सादर॥
प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा।
हमरें होत बचन सुनि मोहा॥
दीन जानि कपि किए सनाथा।
तुम्ह त्रैलोक ईस रघुनाथा॥
सुनि प्रभु बचन लाज हम मरहीं।
मसक कहूँ खगपति हित करहीं॥
देखि राम रुख बानर रीछा।
प्रेम मगन नहिं गृह कै ईछा॥
प्रभु प्रेरित कपि भालु सब राम रूप उर राखि।
हरष बिषाद सहित चले बिनय बिबिध बिधि भाषि॥
कपिपति नील रीछपति अंगद नल हनुमान।
सहित बिभीषन अपर जे जूथप कपि बलवान॥
कहि न सकहिं कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि।
सन्मुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निवारि॥

(श्रीरामचरितमानस ६।११८।३—१०, दो० ११८ (क—ग))

उन वानरोंमेंसे एकने कहा—हे स्वामी! मेरे आराध्य श्रीरामको जन्म देनेका सौभाग्य जिस भाग्यशालिनी जननीको प्राप्त हुआ है, उस स्नेहमयी जननीके दर्शन करनेकी हमारी उत्कट अभिलाषा है। हे रघुनन्दन! उन माता कौसल्याका दर्शन करके उनके श्रीचरणोंमें प्रणति निवेदन करके हम चले आयेंगे। इसलिये हमें अपने साथ श्रीअयोध्याजी ले चलिये। एकने कहा—हे राघवेन्द्र सरकार! श्रीराम-रावणके भयङ्कर युद्धमें रक्तके उड़ते हुए छींटोंसे आपके श्रीविग्रहको स्नान-सा करते हुए हमने देखा है, हे स्वामी! श्रीअयोध्याजीमें विभिन्न तीर्थोंके जलसे भीगे हुए आपके मङ्गलमय दिव्य विग्रहके दर्शन करनेकी हमारी हार्दिक कामना है, अतः हे भक्तवाञ्छाकल्पतरो! हमें श्रीअयोध्याजी ले चलिये। एकने कहा—हे प्रभो! हमने संसारके बहुत काम किये हैं, संसारके कार्यके लिये हम बहुत दौड़े हैं, सम्प्रति हमारी एक अभिलाषा है कि श्रीरामराज्याभिषेकके लिये दौड़-दौड़कर विभिन्न-विभिन्न तीर्थोंसे जल लाकर अनेक सामग्रियोंका सङ्कलन करके हम अपना जीवन कृतार्थ करें। इसलिये हे भक्तवत्सल! हमें श्रीअयोध्याजी ले चलिये। एकने कहा—हे प्रभो! आपको जन्म देनेका सौभाग्य जिस मिट्टीको मिला है, जिस मिट्टीमें आपने बालक्रीड़ा की है और जिस मिट्टीको आपने बालक्रीड़ा करते

समय अपने श्रीमुखमें डाला होगा, हे स्वामी! हमलोग श्रीअयोध्याजी चलकर उस मिट्टीको एक बार अपने मस्तकपर धारण करके कृतार्थ होना चाहते हैं; अतः हमें अपने साथ ले चलिये। एकने कहा—हृदयसिंहासनपर विराजमान हे वानर-हृदय सम्राट्! एक बार आपके राजराजेन्द्र सम्राट्-स्वरूपके दर्शन करनेकी हमारी प्रबल अभिलाषा है, अतः हमें श्रीअयोध्या चलनेकी आज्ञा प्रदान करें। एकने कहा—कई बार जिनकी स्मृतिमें आपको फफक-फफककर रोते देखा है, अनेक बार आपको हा भरत! हा भरत! कहते सुना है। अनेक बार आपके श्रीमुखसे जिनके स्नेहकी चर्चा सुननेका अवसर मिला है। अभी-अभी श्रीविभीषणजीके स्नान करनेकी प्रार्थनाके पश्चात् जिनको देखनेकी उत्सुकता आपने अभिव्यक्त की थी और जिनकी स्मृतियोंने आपकी आँखोंमें प्रेमाश्रुओंका अवतरण कर दिया था। उन महान् स्नेही श्रीभरतजीके श्रीचरणोंका दर्शन करके, उनके जीवनसे कुछ प्रेमका पाठ हम पढ़ना चाहते हैं। इसलिये हे स्वामी! हमें श्रीअयोध्याजी अवश्य ले चलिये—

अयोध्यां गन्तुमिच्छामः सर्वान् नयतु नो भवान्।
मुद्युक्ता विचरिष्यामो वनान्युपवनानि च॥
दृष्ट्वा त्वामभिषेकार्द्रं कौसल्यामभिवाद्य च।
अचिरादागमिष्यामः स्वगृहान् नृपसत्तम॥

(६। १२२। १९-२०)

अतिसय प्रीति देखि रघुराई।
लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई॥

भावग्राही श्रीरघुनन्दनने सपरिकर श्रीसुग्रीव और मन्त्रियोंके साथ विभीषणको चलनेकी आज्ञा प्रदान कर दी—

क्षिप्रमारोह सुग्रीव विमानं सह वानरैः।
त्वमप्यारोह सामात्यो राक्षसेन्द्र विभीषण॥

(६। १२२। २३)

सब लोग उत्साहपूर्वक विमानमें चढ़ गये। सबके चढ़ जानेपर कुबेरका वह परमासन विमान श्रीराघवेन्द्रका आदेश पाकर आकाशमें उड़ चला—

तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेरं परमासनम्।
राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसम्॥

(६। १२२। २५)

जयघोषके साथ विमान उत्तर दिशाकी ओर चल पड़ा—

मन महुँ बिप्र चरन सिरु नायो।
उत्तर दिसिहि बिमान चलायो॥
चलत बिमान कोलाहल होई।
जय रघुबीर कहइ सबु कोई॥
सिंहासन अति उच्च मनोहर।
श्री समेत प्रभु बैठे ता पर॥
राजत रामु सहित भामिनी।
मेरु सृंग जनु घन दामिनी॥
रुचिर बिमानु चलेउ अति आतुर।
कीन्ही सुमन बृष्टि हरषे सुर॥

पुष्पकविमान चलने लगा, भगवान् श्रीराम श्रीसीताजीको एक-एक स्थान दिखाने लगे। हे सीते! यह युद्धभूमि देखो, यहाँ रावण और कुम्भकर्ण मारे गये। यहाँपर तुम्हारे भक्त हनुमान्ने धूम्राक्षादि अनेक राक्षसोंको मारा था। हे सीते! तुम्हें प्राप्त करनेके लिये तुम्हारे लाड़ले पुत्र कल्प देवर लक्ष्मणने यहाँपर संसारके सर्वश्रेष्ठ योद्धा मेघनादका तीन अहोरात्र युद्ध करके वध किया था—

लक्ष्मणेनेन्द्रजिच्चात्र रावणिर्निहतो रणे॥

(६। १२३। ७)

हे विशालाक्षि! इस लम्बे-चौड़े सेतुका निर्माण समुद्रसन्तरणके लिये वीर वानरोंने किया है, इसका नाम नलसेतु है—

तव हेतोर्विशालाक्षि नलसेतुः सुदुष्करः।

(६। १२३। १७)

हे सीते! यह वानरेन्द्र सुग्रीवकी नगरी किष्किन्धा है। यहीं मैंने वालीका वध किया था—

एषा सा दृश्यते सीते किष्किन्धा चित्रकानना॥
सुग्रीवस्य पुरी रम्या यत्र वाली मया हतः।

(६। १२३। २२-२३)

श्रीसीताजीने किष्किन्धा नगरीका दर्शन करके प्रेम विह्वल स्वरमें श्रीरामजीसे कहा—हे महाराज! मैं वानरेन्द्रपत्नी तारा आदि अन्य देवियोंको साथ लेकर श्रीअयोध्या चलना चाहती हूँ—

अथ दृष्ट्वा पुरीं सीता किष्किन्धां वालि पालिताम्॥
अब्रवीत् प्रश्रितं वाक्यं रामं प्रणयसाध्वसा।
सुग्रीवप्रियभार्याभिस्ताराप्रमुखतो नृप॥
अन्येषां वानरेन्द्राणां स्त्रीभिः परिवृता ह्यहम्।
गन्तुमिच्छे सहायोध्यां राजधानीं त्वया सह॥

(६। १२३। २३—२५)

पुष्पकविमान श्रीकिष्किन्धा नगरीमें उतरा, वहाँसे तारा आदि देवियोंको लेकर विमानपर बैठकर प्रभु पुनःचले। ऋष्यमूक पर्वतको दिखानेके बाद जब भक्तवत्सल श्रीरामजी आगे बढ़े तब श्रीरामजीकी आँखें छलछला आयीं। अवरुद्ध कण्ठसे प्रभुने कहा—हे सीते! यहाँपर भक्तिमती माता शबरीका स्थान है। वहाँसे जब पुष्पक-विमान आगे बढ़ा तब जटायुतीर्थ आ गया। भगवान् श्रीरामने स्खलिताक्षरोंमें 'जटायुतीर्थ' का स्मरण किया। 'जटायुतीर्थ' का नाम सुनते ही सबने श्रीजटायुके जयघोषके साथ उस स्थानको प्रणाम किया। श्रीजटायुके चरित्रका स्मरण करके सभी गद्गद हो गये, परन्तु श्रीसीता, राम, लक्ष्मण उस समय अधिक स्नेहार्द्र हो गये। पञ्चवटीका दर्शन करके श्रीअगस्त्यजी, सुतीक्ष्णजी, शरभङ्गजी आदि महर्षियोंके आश्रमका दर्शन करते हुए श्रीचित्रकूट-धाम आ गया, श्रीरामजीने भावविह्वल होकर कहा—हे विदेहनन्दिनि! यह सामने शैलेन्द्र चित्रकूट सुप्रकाशित हो रहा है—तुम्हें स्मरण होगा, यहीं मेरा भरत मुझे प्रसन्न करके लौटानेके लिये आया था—

असौ सुतनु शैलेन्द्रश्चित्रकूटः प्रकाशते।
अत्र मां कैकयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः॥

(६। १२३। ५१)

पुष्पकविमानपर बैठे-बैठे श्रीरामचन्द्रजीने तीर्थराज प्रयागका दर्शन करके कहा—हे सीते! यह शृङ्गवेरपुर है जहाँ मेरा सखा निषादराज गुह निवास करता है। हे विदेहनन्दिनि! यह मेरी यूपमालिनी सरयू है और यह मेरे श्रद्धेय पिताजीकी राजधानी श्रीअयोध्याजी हैं। सब लोग इस पुरीको प्रणाम करो। विभीषणके सहित समस्त राक्षस एवं प्रेमी वानरलोग उछल-उछलकर श्रीअवध, सरयूका दर्शन करने लगे—

ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसाः सविभीषणाः।
उत्पत्योत्पत्य संहृष्टास्तां पुरीं ददृशुस्तदा॥

(६। १२३। ५६)

पुष्पकविमान तीर्थराज प्रयागमें उतरा। श्रीरामचन्द्रजीने तपोधन महर्षि भरद्वाजको प्रणाम करके उनसे उत्कण्ठापूर्वक पूछा—हे महर्षे! आपने श्रीअयोध्याजीके विषयमें भी कुछ सुना है? वहाँ सब कुशल-मङ्गल है। वहाँ सुकाल है? मेरी माताएँ जीवित हैं? भरत प्रजापालन सावधानीपूर्वक करते हैं—

सोऽपृच्छदभिवाद्यैनं भरद्वाजं तपोधनम्।
शृणोषि कच्चिद् भगवन् सुभिक्षानामयं पुरे।
कच्चित् स युक्तो भरतो जीवन्त्यपि च मातरः॥

(६। १२४। २)

श्रीभरद्वाजने स्मितपूर्वक कहा—हे राघवेन्द्र! भरत आपकी आज्ञाके अधीन हैं। वे जटिल हैं, रात-दिन आपकी प्रतीक्षा करते रहते हैं। हे भ्रातृवत्सल! वह नन्दिग्रामका तपस्वी आपकी चरण-पादुकाओंको सामने रखकर उनसे आज्ञा लेकर समस्त राज्यकार्यका संचालन करता है। आपके घरपर और आपके नगरमें सब कुशल है—

आज्ञावशत्वे भरतो जटिलस्त्वां प्रतीक्षते।

पादुके ते पुरस्कृत्य सर्वं च कुशलं गृहे॥

(६।१२४।४)

हे रघुनन्दन! जब आप मेरे यहाँ चौदह वर्ष वनवासमें व्यतीत करनेके लिये सर्व-प्रथम आये थे, उस समय मैं आपको देखकर दु:खी हो गया था; परन्तु सम्प्रति आप शत्रु-विजेताके रूपमें सफलमनोरथ होकर मित्रों और बान्धवोंके साथ श्रीअयोध्या जा रहे हैं। आपका यह रूप देखकर मुझे अतिशय आनन्द मिल रहा है—

साम्प्रतं तु समृद्धार्थं समित्रगणबान्धवम्।
समीक्ष्य विजितारिं च ममाभूत् प्रीतिरुत्तमा॥

(६।१२४।८)

हे रघुनन्दन! हमें उत्तर और दक्षिणका—आपका और श्रीभरतका सब समाचार ज्ञात है।

हे भक्तवत्सल! मेरी अभिलाषा है कि सम्पूर्ण लोकोंको वर देनेवाले आप आज मुझसे एक वरदान माँगें और मेरा अर्घ्य तथा आतिथ्य स्वीकार करके आजकी रात्रि मेरे आश्रमपर विश्राम करके कल प्रात:काल श्रीअयोध्याको प्रस्थान करें—

अहमप्यत्र ते दद्मि वरं शस्त्रभृतां वर।
अर्घ्यं प्रतिगृहाणेदमयोध्यां श्वो गमिष्यसि॥

(६।१२४।१७)

भगवान् श्रीरामने महर्षिसे वर-याचना की—हे भगवन्! प्रयागसे श्रीअयोध्याके मार्गके सब वृक्षोंमें समय न होनेपर भी फल लग जायँ और समस्त वृक्ष मधुक्षरण करनेवाले हो जायँ—

अकालफलिनो वृक्षाः सर्वे चापि मधुस्त्रवाः।
फलान्यमृतगन्धीनि बहूनि विविधानि च॥
भवन्तु मार्गे भगवन्नयोध्यां प्रतिगच्छतः।

(६।१२४।१९-२०)

मुनिके प्रभावसे तत्काल समस्त वृक्ष फलवान्, फूलवान् हो गये। सभी वृक्ष मधुकी धारा बहाने लगे। वानरलोग प्रसन्न होकर दिव्य फलोंका आस्वादन करने लगे।

श्रीभरद्वाज आश्रमसे ही श्रीरामचन्द्रजीने श्रीहनुमान्को श्रीअयोध्या भेजनेका विचार करके कहा—हे हनुमन्! तुम भरतके पास जाकर मेरी ओरसे कुशल-प्रश्न पूछना और उन्हें बता देना कि मैं सकुशल सीता, लक्ष्मणके सहित श्रीअयोध्याजी आ रहा हूँ—

भरतस्तु त्वया वाच्यः कुशलं वचनान्मम।
सिद्धार्थं शंस मां तस्मै सभार्यं सहलक्ष्मणम्॥

(६।१२५।७)

हे हनुमन्! भरतको चित्रकूटसे लेकर आजतकका समस्त वृत्तान्त सुना देना और यह कह देना कि मैं तीर्थराज प्रयागतक आ गया हूँ। मेरे साथ वानरेन्द्र सुग्रीव और लङ्केश विभीषण तथा अन्य बहुत-से लोग हैं।

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा प्राप्त करके पवननन्दन श्रीहनुमान्जी मनुष्यका रूप धारण करके तीव्र गतिसे श्रीअयोध्याजीकी ओर चल दिये—

इति प्रतिसमादिष्टो हनूमान् मारुतात्मजः।
मानुषं धारयन् रूपमयोध्यां त्वरितो ययौ॥

(६।१२५।१९)

बीचमें शृङ्गवेरपुरमें निषादराज गुहको श्रीरामजीके आगमनका समाचार सुना करके श्रीअयोध्याजीसे कुछ दूर नन्दिग्राममें जाकर श्रीहनुमान्जीने भरतजीका दर्शन किया।

श्रीभरतजी वल्कल वस्त्र और कृष्ण मृगचर्मका परिधान धारण किये थे। वे दुर्बल और दीन दिखायी पड़ते थे। उनके मस्तकपर जटाएँ थीं और उनके शरीरपर मैलका आवरण था। श्रीरामजीके वनवासके दु:खने उन्हें अत्यन्त दुर्बल कर दिया था। वे कन्द-मूल-फलका ही आहार करते थे। उनका अन्त:करण परम शुद्ध था। श्रीभरत ब्रह्मर्षिके समान तेजस्वी थे। वे श्रीरामजीकी

मङ्गलमयी पादुकाओंको सामने रखकर वसुन्धराका शासन करते थे—

ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम्।
जटिलं मलदिग्धाङ्गं भ्रातृव्यसनकर्शितम्॥
फलमूलाशिनं दान्तं तापसं धर्मचारिणम्।
समुन्नतजटाभारं वल्कलाजिनवाससम्॥
नियतं भावितात्मानं ब्रह्मर्षिसमतेजसम्।
पादुके ते पुरस्कृत्य प्रशासन्तं वसुन्धराम्॥

(६। १२५। ३०—३२)

श्रीहनुमान्‌जी उनका दर्शन करके हाथ जोड़कर बोले—हे देव! आप जिन ककुत्स्थनन्दन श्रीरामजीके विषयमें दिन-रात सोचते रहते हैं, उन्होंने कुशल, समाचार कहलाया है। अब आप इस दारुण शोकका परित्याग कर दें। हे भावमय! मैं आपको अत्यन्त प्रिय समाचार सुना रहा हूँ—आप शीघ्र ही अपने प्राणप्रिय भ्राता श्रीरामजीका दर्शन करेंगे, वे समराङ्गणमें रावणका वध करके मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीता, श्रीलक्ष्मण और अपने मित्रोंके साथ पूर्ण काम—सफल मनोरथ होकर पधार रहे हैं—

अनुशोचसि काकुत्स्थं स त्वां कौशलमब्रवीत्।
प्रियमाख्यामि ते देव शोकं त्यज सुदारुणम्॥
अस्मिन् मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सह सङ्गतः।
निहत्य रावणं रामः प्रतिलभ्य च मैथिलीम्॥
उपयाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः।
लक्ष्मणश्च महातेजा वैदेही च यशस्विनी।

(६। १२५। ३७—३९)

श्रीहनुमान्‌जीके द्वारा श्रीरामजीके आगमनका समाचार सुनते ही आनन्दातिरेकके कारण श्रीभरतजी परम प्रसन्न होकर भूमिपर गिर पड़े और संज्ञा-शून्य हो गये—

एवमुक्तो हनुमता भरतः कैकयीसुतः।
पपात सहसा हृष्टो हर्षान्मोहमुपागमत्॥

(६। १२५। ४०)

एक मुहूर्तके बाद होशमें आनेके पश्चात् श्रीहनुमान्‌जीको हृदयसे लगाकर श्रीभरत बोले—हे नवजीवन देनेवाले! हे रामसन्देशवाहक! आप कोई देवता हैं या मनुष्य? कृपा करके यहाँ पधारकर आपने जो यह मधुरातिमधुर अमृतोपम समाचार सुनाया है इसके बदले आपको कौन-सा प्रिय पदार्थ प्रदान करूँ?

देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः।
प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम्॥

(६। १२५। ४३)

इसके अनन्तर श्रीभरतजीने श्रीहनुमान्‌जीको कुशासनपर बैठाया और प्राणप्रिय श्रीरामजीका सब समाचार पूछा। श्रीहनुमान्‌जीने उनको बताया कि आपके श्रीचित्रकूटसे चले आनेके पश्चात् श्रीसीता और लक्ष्मणके साथ रघुनन्दन दण्डक कानन चले गये। वहाँ उन्होंने बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंके दर्शन किये और पञ्चवटी पहुँचनेके पश्चात् श्रीलक्ष्मणजीके द्वारा पर्णकुटीका निर्माण हुआ। वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे। वहाँसे रावणने श्रीसीताजीका हरण कर लिया। श्रीरामजी श्रीसीताजीको खोजते-खोजते ऋष्यमूक पर्वतपर पहुँचे। वहींपर वानरेन्द्र सुग्रीवसे मित्रता हुई और वालिवधका कार्य सम्पन्न हुआ। वानरोंकी सेना एकत्र हुई। श्रीसीताजीका समाचार मिला। तदनन्तर समुद्रके ऊपर सेतुका निर्माण करके श्रीरामजी अपने परिकरोंके साथ लङ्का पहुँचे। वहाँपर श्रीराम-रावणका भयानक संग्राम हुआ, श्रीरामकी विजय हुई। इस प्रकार समस्त वृत्तान्त सुनाकर श्रीहनुमान्‌जीने कहा—श्रीरामजी पुष्पकविमानसे चलकर इस समय सपरिकर प्रयागमें श्रीभरद्वाजमुनिके आश्रममें उनके प्रेमाग्रहसे विश्राम कर रहे हैं। कल पुष्य नक्षत्रके योगमें आप बिना किसी विघ्न-बाधाके श्रीरामजीका दर्शन करेंगे।

तां गङ्गां पुनरासाद्य वसन्तं मुनिसन्निधौ।

अविघ्नं पुष्ययोगेन श्वो रामं द्रष्टुमर्हसि॥

(६। १२६। ५४)

श्रीहनुमान्‌जीकी मधुर वाणीके द्वारा समग्र श्रीरामकथा श्रवण करके श्रीभरतजीको अतिशय प्रसन्नता हुई। श्रीभरतजीने हाथ जोड़कर मनको परमानन्द प्रदान करनेवाली वाणीमें कहा—अहा! आज बहुत दिनोंके पश्चात् मेरी अभिलाषा पूर्ण हो गयी—

ततः स वाक्यैर्मधुरैर्हनूमतो निशम्य हृष्टो भरतः कृताञ्जलिः।
उवाच वाणीं मनसः प्रहर्षिणीं चिरस्य पूर्णः खलु मे मनोरथः॥

(६। १२६। ५५)

भगवान् श्रीरामके आनेका आनन्दमय समाचार सुनकर श्रीभरतजीने श्रीशत्रुघ्नको सब समाचार सुनाकर हर्षपूर्वक आज्ञा दी—हे रिपुदमनलाल! आज मेरे जीवनका सबसे महत्त्वपूर्ण दिवस है। आज मेरी साधना फलवती हो गयी है। आज हमारे आराध्य, परम प्रेमास्पद, जीवनसार-सर्वस्व, वीरेन्द्र मुकुटमणि श्रीराघवेन्द्र सरकार, अनुपम त्यागी भ्रातृवत्सल लक्ष्मण और सती शिरोमणि महिमामयी श्रीजानकीजी तथा अन्यान्य मित्रोंके साथ पधार रहे हैं। हे भैया! कुल-देवताओंका, स्थानदेवताओंका सुगन्धित पुष्प आदिके द्वारा पूजन होना चाहिये। नगरको चारों ओरसे सजा दो। सूत, मागध, बन्दी, बाजा बजानेवाले, गणिकाएँ, राजरानियाँ, मन्त्रीगण, सैनिक और उनकी स्त्रियाँ, ब्राह्मण, क्षत्रिय और व्यवसायी प्रमुख लोग श्रीरामचन्द्र-मुखचन्द्रका दर्शन करनेके लिये चलें—

अभिनिर्यान्तु रामस्य द्रष्टुं शशिनिभं मुखम्।

(६। १२७। ५)

श्रीशत्रुघ्न यह आनन्दमय समाचार सुनकर विभोर हो गये। वे अत्यन्त उत्साहसे स्वागतकी प्रस्तुतिमें प्रस्तुत हो गये। श्रीअयोध्यासे नन्दिग्राम-तककी भूमिको समतल करनेमें सहस्त्रों मजदूर लग गये। श्रीशत्रुघ्नने मार्गमें सुगन्धित जलसे छिड़काव करनेकी तथा लावा और पुष्प बिखेरनेकी और ऊँची-से-ऊँची पताकाओंके फहरानेकी आज्ञा दे दी। धृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, अर्थसाधक, अशोक, मन्त्रपाल और सुमन्त्र ये आठों मन्त्री ध्वजा और आभूषणोंसे विभूषित मत्त गजेन्द्रोंपर आरूढ़ होकर चले—

धृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थश्चार्थसाधकः।
अशोको मन्त्रपालश्च सुमन्त्रश्चापि निर्ययुः॥
मन्त्रैर्नागसहस्त्रैश्च सध्वजैः सुविभूषितैः।

(६। १२७। ११-१२)

हाथी, घोड़े, रथ, रथी, पैदल योद्धाओंसे घिरे हुए वीर पुरुष श्रीरामकी अगवानीके लिये चले—'**वीराः परिवृता ययुः**'। श्रीकौसल्यादि साढ़े तीन सौ माताएँ श्रीअयोध्यासे नन्दिग्राममें आ गयीं—

ततो यानान्युपारूढाः सर्वा दशरथस्त्रियः।
कौसल्यां प्रमुखे कृत्वा सुमित्रां चापि निर्ययुः॥
कैकेय्या सहिताः सर्वा नन्दिग्राममुपागमन्।

(६। १२७। १५-१६)

अपने मस्तकपर श्रीरामजीकी पादुकाओंको लेकर शङ्खों और भेरियोंकी गम्भीर ध्वनिके साथ श्रीभरतजी उत्साहपूर्वक चले—

आर्यपादौ गृहीत्वा तु शिरसा धर्मकोविदः॥

(६। १२७। १८)

शङ्खध्वनि, दुन्दुभिध्वनि, जयध्वनिसे वसुन्धरा हिलती हुई-सी प्रतीत हुई—

शङ्खदुन्दुभिनादेन सञ्चचालेव मेदिनी।

(६। १२७। २२)

समस्त नागरिक नन्दिग्राम पहुँच गये।

कृत्स्नं तु नगरं तत्तु नन्दिग्राममुपागमत्।

(६। १२७। २३)

श्रीहनुमान्‌जीसे श्रीभरतने अत्यन्त उत्सुकतासे पूछा—आपने जो कुछ भी समाचार सुनाया है

वह सच है न? मेरे स्वामी पधार रहे हैं न? इतना विलम्ब क्यों हो रहा है? इतनेमें ही श्रीहनुमान्‌जीको पुष्पकविमान दिखायी पड़ा। उन्होंने उच्चस्वरमें कहा—हे भैया! यह रहा पुष्पकविमान जो दूरसे चन्द्रमाकी भाँति चमाचम चमक रहा है—

तदेतद् दृश्यते दूराद् विमानं चन्द्रसन्निभम्॥

(६। १२७। ३०)

श्रीहनुमान्‌जीकी मधुरवाणी सुनकर आबाल वनिता, वृद्ध, युवक, जरठ, नर-नारी सबके मुखसे यह समवेत सुमधुर ध्वनि सुनायी पड़ी—अहो! श्रीरामजी आ रहे हैं। उनकी यह हर्षध्वनि आकाशतक पहुँच गयी—

ततो हर्षसमुद्भूतो निःस्वनो दिवमस्पृशत्।
स्त्रीबालयुववृद्धानां रामोऽयमिति कीर्तिते॥

(६। १२७। ३४)

सबकी दृष्टि आकाशमें लग गयी। श्रीभरतजीने राघवोन्मुख होकर प्रहृष्ट होकर भावपूर्वक नीचेसे ही अर्घ्य, पाद्यादि उपकरणोंके द्वारा श्रीरामजीका भावमय पूजन किया—

प्राञ्जलिर्भरतो भूत्वा प्रहृष्टो राघवोन्मुखः।
यथार्थेनार्घ्यपाद्याद्यैस्ततो राममपूजयत्॥

(६। १२७। ३६)

इतनेमें ही भावग्राही श्रीरघुनन्दनकी आज्ञासे पुष्पकविमान नन्दिग्रामकी पावन धरतीपर उतर गया। श्रीभरतजीने अपने परमाराध्यके श्रीचरणोंमें 'साष्टाङ्ग प्रणाम' किया। श्रीरामजीने उन्हें उठाकर अपनी स्नेहमयी गोदमें बिठा लिया और हृदयसे लगा लिया—

तं समुत्थाय काकुत्स्थश्चिरस्याक्षिपथं गतम्।
अङ्के भरतमारोप्य मुदितः परिषस्वजे॥

(६। १२७। ४१)

श्रीभरतने प्रणाम करते हुए लक्ष्मणको उठाकर हृदयसे लगा लिया और श्रीवैदेहीको अभिवादन किया—

ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परन्तपः।
अथाभ्यवादयत्प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत्॥

(६। १२७। ४२)

इसके अनन्तर श्रीभरतने सुग्रीव, जाम्बवान्, अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील, ऋषभ, सुषेण, नल, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ और पनससे अच्छी तरह हृदयमें लगाकर भेंट किया। ये सभी बलवान् वानर आज मानवरूप धारण किये थे—

ते कृत्वा मानुषं रूपं वानराः कामरूपिणः।

(६। १२७। ४५)

श्रीभरतजीने श्रीसुग्रीवके मनकी अव्यक्त ग्लानिका अनुभव करके उन्हे स्नेहपूर्वक अपने हृदयसे लगाकर कहा—हे वानरेन्द्र! आजसे आप हम चारोंके पाँचवें भ्राता हैं—

त्वमस्माकं चतुर्णां वै भ्राता सुग्रीव पञ्चमः।

(६। १२७। ४७)

श्रीभरतजीने श्रीविभीषणको आश्वस्त करते हुए कहा—हे लङ्केश! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपकी सहायतासे श्रीरघुनाथजीने सुदुष्कर कर्म सम्पन्न किया है—

विभीषणं च भरतः सान्त्ववाक्यमथाब्रवीत्।
दिष्ट्या त्वया सहायेन कृतं कर्म सुदुष्करम्॥

(६। १२७। ४८)

श्रीशत्रुघ्नजीने श्रीराम-लक्ष्मणको प्रणाम करके श्रीसीताजीके चरणोंमें सविनय अभिवादन किया—

शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम्।
सीतायाश्चरणौ वीरो विनयादभ्यवादयत्॥

(६। १२७। ४९)

श्रीरामकी वात्सल्यमयी जननी श्रीकौसल्याजी

श्रीरामविरहसमुद्भूत शोकके कारण अत्यन्त दुर्बल और विवर्ण हो गयीं थीं। उनके निकट पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीने उनके दोनों चरणोंको पकड़कर प्रणाम किया और उनके मनको परमानन्द प्रदान किया—

रामो मातरमासाद्य विवर्णां शोककर्शिताम्।
जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रहर्षयन्॥

(६। १२७। ५०)

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने माताओंके मिलनका प्रसङ्ग बड़े भावमय शब्दोंमें चित्रित किया है—

कौसल्यादि मातु सब धाई।
निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई॥
जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं।
दिन अंत पुर रुख स्त्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहुबिधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोगभव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे॥
भेटेउ तनय सुमित्राँ राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कैकई हृदयँ बहुत सकुचानि॥
लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ॥

(श्रीरामचरितमानस ७। ६)

तदनन्तर श्रीरामजीने कैकेयी और सुमित्रा तथा अन्य माताओंके चरणोंमें प्रणाम करके गुरुदेव श्रीवसिष्ठजीके श्रीचरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया—

बामदेव बसिष्ट मुनिनायक।
देखे प्रभु महि धरि धनु सायक॥
धाइ धरे गुर चरन सरोरुह।
अनुज सहित अति पुलक तनोरुह॥
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया।
हमरें कुसल तुम्हारिहिं दाया॥
सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा।
धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा॥

भगवान् श्रीरामने देखा कि श्रीअयोध्याका अपार जनसमूह, श्रीरामजीका चिर प्रतीक्षित दर्शन करनेके लिये उमड़ता हुआ चला आ रहा है। इनमेंसे प्रत्येकने आजके इस दर्शनके लिये बड़े-बड़े अनुष्ठान नियम और व्रत किये हैं। सबके मनमें एक भावना है कि मेरे श्रीरामजी आ गये हैं—

प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी।
जनित बियोग बिपति सब नासी॥
प्रेमातुर सब लोग निहारी।
कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला।
जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी।
किए सकल नर नारि बिसोकी॥
छन महिं सबहि मिले भगवाना।
उमा मरम यह काहुँ न जाना॥
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा।
आगें चले सील गुन धामा॥

इस प्रसङ्गमें मुझे श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके दो श्लोक स्मरण आ रहे हैं। उन श्लोकोंसे इस प्रसङ्गपर प्रकाश मिलेगा कि भगवान् किस पद्धतिसे भक्तोंसे मिलते हैं। जब आनन्दकन्द व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र हस्तिनापुरसे श्रीद्वारकाजी पधारे तब स्नेही नर-नारियोंसे—पुरवासियोंसे उनके मिलनेका अनोखा वर्णन भगवान् श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासजीने किया है।

प्रह्वाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः ।
आश्वास्य चाश्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः॥
स्वयं च गुरुभिर्विप्रैः सदारैः स्थविरैरपि।
आशीर्भिर्युज्यमानोऽन्यैर्वन्दिभिश्चाविशत्पुरम्॥

(१। ११। २२-२३)

यशोदानन्दन श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीद्वारकाके स्नेही नर-नारियों, बन्धु-बान्धवों और सेवकोंसे उनकी भावनाके अनुसार किं वा उनकी योग्यताके अनुसार अलग-अलग मिलकर सबका सम्मान

किया। किसीको विनम्रतापूर्वक मस्तक झुकाकर प्रणाम किया, किसीको वाणीसे अपना नाम उच्चारण करते हुए अभिवादन किया, किसी अत्यन्त स्नेहीको हृदयसे लगाया, किसी अनन्य सुहृद्से—मित्रसे हाथ मिलाया, किसीकी ओर देखकर अपने अधरोष्ठोंपर हास्यच्छटा बिखेर दी और किसीको अपनी प्रेमभरी चितवनसे निहार भर लिया। जिसकी जो इच्छा थी उसे वही वरदान दिया। इस प्रकार चाण्डालपर्यन्त सबको सन्तुष्ट करके गुरुजन, सपत्नीक ब्राह्मण और ज्ञानवृद्धों, वयोवृद्धों और अनुभववृद्धोंका तथा अन्य लोगोंका भी मङ्गलाशीर्वाद ग्रहण करते एवं बन्दीजनोंसे विरुदावली सुनते हुए सबके साथ भगवान् श्यामसुन्दर श्रीकृष्णने अपने नगरमें प्रवेश किया।

श्रीअयोध्याजीके समस्त नागरिक बद्धाञ्जलि होकर समवेत स्वरमें श्रीरामजीसे बोले—हे कौसल्यानन्दसंवर्द्धन! हे महाबाहो! हे श्रीराम! आपका स्वागत है! स्वागत है!

स्वागतं ते महाबाहो कौसल्यानन्दवर्द्धन।
इति प्राञ्जलयः सर्वे नागरा राममब्रुवन्॥

(६। १२७। ५२)

इसके बाद भक्ति-धर्मके मर्मज्ञ श्रीभरतजीने अपने परमाराध्य श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें पादुकाएँ धारण करा दीं और बद्धाञ्जलि होकर निवेदन किया—हे करुणामय! हे राघवेन्द्र सरकार! मेरे पास धरोहरके रूपमें रखा हुआ आपका यह समस्त राज्य आज मैंने आपके श्रीचरणोंमें लौटा दिया। हे मर्यादा पुरुषोत्तम! इस राज्यका मैंने स्वयं उपभोग नहीं किया है, इसलिये अनुच्छिष्ट होनेके कारण आपके द्वारा यह सर्वथा ग्राह्य है। आप कृपापूर्वक इस राज्यको स्वीकार करें। आज मेरा जन्म सफल हो गया। हे भक्तवाञ्छाकल्पतरो! आज मेरी अभिलाषा पूर्ण हो गयी। हे श्रीअवध-नरेश! आपको श्रीअयोध्याकी पावन धरतीपर पुनः वापस आया देखकर हम कृतकृत्य हो गये—निहाल हो गये—

पादुके ते तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम्।
चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवित्॥
अब्रवीच्च तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः।
एतत् ते सकलं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया॥
अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः।
यत्त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम्॥

(६। १२७। ५४—५६)

भ्रातृवत्सल भरतको इस प्रकार स्नेहिल वचनोंको कहते देखकर समस्त वानर एवं राक्षसेन्द्र विभीषणके नेत्रोंसे गङ्गा-यमुनाकी धारा बह गयी—वे आँसू बहाने लगे—

तथा ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा तं भ्रातृवत्सलम्।
मुमुचुर्वानरा बाष्पं राक्षसश्च विभीषणः॥

(६। १२७। ५८)

इसके अनन्तर भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजी अपने लाड़ले भक्त भरतको अत्यन्त हर्ष और प्रेमके साथ अपनी गोदमें बिठाकर पुष्पकविमानके द्वारा ही सेनासहित उनके आश्रमपर गये—

ततः प्रहर्षाद् भरतमङ्कमारोप्य राघवः।
ययौ तेन विमानेन ससैन्यो भरताश्रमम्॥

(६। १२७। ५९)

श्रीरामजी श्रीभरतके आश्रममें पहुँचकर विमानसे उतरकर परमोत्तम विमानसे कहा—हे विमानराज! मैं तुम्हें अनुमति प्रदान करता हूँ कि अब तुम यहाँसे श्रीकुबेरके ही पास चले जाओ और उन्हींकी सेवामें रहो। श्रीरामजीका आदेश पाकर वह परमोत्तम विमान उत्तर दिशाको लक्ष्य करके श्रीकुबेरके स्थानपर चला गया—

ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद् विमानमनुत्तमम्।
उत्तरां दिशमुद्दिश्य जगाम धनदालयम्॥

(६। १२७। ६२)

नन्दिग्राममें श्रीभरतजीने श्रीरामजीसे प्रार्थना की—हे स्वामी! आपने मेरी माताका सम्मान एवं वचन रखनेके लिये स्वयं वनवासका वरण किया और यह राज्य मुझे दे दिया। जैसे आपने मुझे दिया था उसी प्रकार अब मैं पुनः आपको दे रहा हूँ—

पूजिता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम।
तद् ददामि पुनस्तुभ्यं यथा त्वमददा मम॥

(६। १२८। २)

हे प्रभो! अत्यन्त बलिष्ठ वृषभका भार किशोर वृषभ अपने कोमल कन्धोंपर नहीं उठा सकता है, उसी प्रकार मैं भी इस राज्यका भार वहन करनेमें असमर्थ हूँ। हे शत्रुनिषूदन! जैसे वैशाखनन्दन—गधा अश्वकी और वायस हंसकी गतिका अनुसरण चाहकर भी नहीं कर सकता है, उसी तरह मैं आपकी गतिका—प्रजारक्षणरूपी कौशलका अनुसरण नहीं कर सकता हूँ—

गतिं खर इवाश्वस्य हंसस्येव च वायसः।
नान्वेतुमुत्सहे वीर तव मार्गमरिंदम॥

(६। १२८। ५)

हे राघवेन्द्र प्रभो! अब हमलोगोंकी यह अभिलाषा है कि जगत्के लोग आपके मङ्गलमय राज्याभिषेकका—श्रीरामराज्याभिषेकका दर्शन करें और मध्याह्नकालके प्रचण्ड दिवाकरकी भाँति आपका तेज और प्रताप वृद्धिंगत हो—

जगदद्याभिषिक्तं त्वामनुपश्यतु राघव।
प्रतपन्तमिवादित्यं मध्याह्ने दीप्ततेजसम्॥

(६। १२८। ९)

श्रीरामचन्द्रजीने श्रीभरतजीकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

तदनन्तर श्रीशत्रुघ्नने उत्साहपूर्वक कुशल नापितोंको बुलवाया, जिनके हाथ हलके और तेज चलनेवाले थे। श्रीरामजीकी सेवा करनेके लिये अनेक नाइयोंने उन्हें घेर लिया—

ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणाः श्मश्रुवर्धनाः।
सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्यवारयन्॥

(६। १२८। १३)

पहले श्रीरामजीकी आज्ञासे श्रीभरतजीने स्नान किया, फिर महाबली लक्ष्मणने तदनन्तर अपनी जटाका शोधन करके श्रीरामचन्द्रने स्नान किया—

राम कहा सेवकन्ह बुलाई।
प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई॥
सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए।
सुग्रीवादि तुरत अन्हवाए॥
पुनि करुनानिधि भरतु हँकारे।
निज कर राम जटा निरुआरे॥
अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई।
भगत बछल कृपाल रघुराई॥
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई।
सेष कोटि सत सकहिं न गाई॥
पुनि निज जटा राम बिबराए।
गुर अनुसासन मागि नहाए॥
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे।
अंग अनंग देखि सत लाजे॥

स्नानके पश्चात् चित्र-विचित्र पुष्पमाला, अष्टगन्धसंयुक्त अनुलेपन और बहुमूल्य कौशेय पीताम्बर धारण करके आभूषणोंकी शोभासे सुप्रकाशित होकर श्रीरामचन्द्रजी सिंहासनपर विराजमान हुए—

पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महाबले।
सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे॥
विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः।
महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन्॥

(६। १२८। १४-१५)

श्रीदशरथजीकी मनस्वी रानियोंने बड़ी प्रीतिसे श्रीसीताजीको स्नान कराया और उनका मनोहर शृङ्गार किया—

प्रतिकर्म च सीतायाः सर्वा दशरथस्त्रियः।

आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम्॥

(६। १२८। १७)

सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जन तुरत कराइ।
दिब्य बसन बर भूषन अँग अँग सजे बनाइ॥

(श्रीरामचरितमानस ७। ११ (क))

श्रीकौसल्याजीने श्रीसुग्रीवकी पत्नी रुमा और तारा आदि वानरियोंको बुला करके बड़े प्रेमसे कहा—हे देवियो! हम तुम्हारे बलिदान, त्याग, सेवाके ऋणसे कभी उऋण नहीं हो सकती हैं। आपने हमारे पुत्र रामके लिये अपने सुहाग और गोदकी चिन्ता नहीं की—अपने पतियों और पुत्रोंको रावण-सरीखे दुर्द्धर्ष, दुर्दान्त शत्रुसे लड़नेके लिये समर्पित कर दिया। इतना कहकर पुत्रवत्सला श्रीकौसल्याजीने अपने हाथोंसे तारा, रुमा आदि सभी देवियोंका शृङ्गार बड़े यत्नसे किया। 'बड़े यत्न' का भाव कि वे चाहती नहीं थीं; परन्तु माताने कहा कि तुम भी तो सीताकी तरह ही मेरी पुत्रवधू हो।

ततो वानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभनम्।
चकार यत्नात्कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला॥

(६। १२८। १८)

श्रीराम रथारूढ़ होकर अपने उत्तम नगर श्रीअयोध्याजीकी ओर चले। उस समय श्रीभरतने रथपर बैठकर घोड़ोंकी लगाम और वेत्र अपने करारविन्दमें लेकर 'हुम् हुम्' की ध्वनिके साथ सारथ्य किया। श्रीशत्रुघ्नने पीछे खड़े होकर छत्र लगाया। प्रभुने कहा—हे शत्रुघ्न! हे मेरे भैया! अब तो हमलोग तुम्हारी छत्रच्छायामें रहेंगे। श्रीशत्रुघ्नने कहा—हे स्वामी! आपके ऊपर छत्र लगाकर उसकी छायामें हम स्वयं सुरक्षित हो जायँगे। श्रीलक्ष्मणजी चँवर डुला रहे थे, मानो इन्होंने रक्षाका भार स्वयं स्वीकार कर लिया है—

प्रययौ रथमास्थाय रामो नगरमुत्तमम्॥
जग्राह भरतो रश्मीञ्शत्रुघ्नश्छत्रमाददे।
लक्ष्मणो व्यजनं तस्य मूर्ध्नि संवीजयंस्तदा॥

(६। १२८। २७-२८)

श्रीविभीषणजी भी श्रीलक्ष्मणजीके साथ खड़े होकर चँवर डुला रहे थे।

वानरेन्द्र श्रीसुग्रीव श्रीरामके शत्रुञ्जय नामक हाथीपर चढ़कर चल रहे थे। मानवरूप धारण करनेवाले वानर लोग नौ हजार हाथियोंपर चढ़कर चलते हुए इस विशाल शोभायात्राकी शोभा-वृद्धि कर रहे थे।

श्रीरामचन्द्रजी अपने श्रीअवधके मन्त्रियोंसे श्रीसुग्रीवकी मित्रता और श्रीहनुमान्‌जीके प्रभाव तथा अन्य वानरोंके महान् कर्मकी चर्चा बड़े प्यारसे कर रहे थे—

सख्यं च रामः सुग्रीवे प्रभावं चानिलात्मजे।
वानराणां च तत्कर्म ह्याचचक्षेऽथ मन्त्रिणाम्॥

(६। १२८। ३९)

परम कृतज्ञ श्रीरामजीने कहा—हे भरत! मुक्ता वैदूर्यमणिजटित मेरा विशाल भवन, जो अशोकवाटिकाओंसे आवृत है उसे वानरेन्द्र सुग्रीवको दे दो—

तच्च मद्भवनं श्रेष्ठं साशोकवनिकं महत्।
मुक्तावैदूर्यसङ्कीर्णं सुग्रीवाय निवेदय॥

(६। १२८। ४५)

श्रीविभीषण, श्रीजाम्बवान्, श्रीहनुमान् आदि सभी लोगोंके लिये समुचित आवासीय व्यवस्था की गयी।

श्रीजाम्बवान्, हनुमान्, गवय और ऋषभ ये सभी वानरवीर चारों समुद्रोंसे किं बहुना पाँच सौ प्रशस्त नदियोंसे भी स्वर्ण कलशोंमें ताजा जल भर ले आये—

जाम्बवांश्च हनूमांश्च वेगदर्शी च वानरः।
ऋषभश्चैव कलशाञ्जलपूर्णानथानयन्॥
नदीशतानां पञ्चानां जलं कुम्भैरुपाहरन्॥

(६। १२८। ५२-५३)

ब्राह्मणोंके साथ वृद्ध ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीने श्रीरामजीको रत्नमयी चौकीपर बैठाया—

ततः स प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह।
रामं रत्नमये पीठे ससीतं सन्न्यवेशयत्॥

(६।१२८।५९)

श्रीवसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, कात्यायन, सुयज्ञ, गौतम और विजय—इन आठ मन्त्रियोंने स्वच्छ और सुगन्धित जलसे श्रीसीतारामजीका अभिषेक कराया। सबसे पहले औषधियोंके रससे एवं पूर्वोक्त जलसे ब्राह्मणोंके द्वारा, फिर सोलह कन्याओंके द्वारा, फिर मन्त्रियोंके द्वारा अभिषेक कराया। अन्यान्य योद्धाओं और उत्कण्ठित व्यवसायियोंको भी अभिषेकका अवसर प्रदान किया गया। आकाशस्थ देवतागण तथा लोकपालोंने भी अभिषेक किया। तदनन्तर महात्मा श्रीवसिष्ठजीने अन्य ऋत्विजोंके साथ बहुमूल्य किरीट और अन्यान्य आभूषणोंसे श्रीराघवेन्द्रको अलङ्कृत किया—

किरीटेन ततः पश्चाद् वसिष्ठेन महात्मना।
ऋत्विग्भिर्भूषणैश्चैव समयोक्ष्यत राघवः॥

(६।१२८।६७)

उस माङ्गलिक वेलामें देवेन्द्र इन्द्रकी प्रेरणासे पवनदेवने शतपुष्करा काञ्चनी दीप्तिमती माला और सर्वरत्नसमायुक्त मणियोंसे विभूषित मुक्ताहार राजराजेन्द्र श्रीरामचन्द्रजीको उपहारमें दिया—

मालां ज्वलन्तीं वपुषा काञ्चनीं शतपुष्कराम्॥
राघवाय ददौ वायुर्वासवेन प्रचोदितः॥
सर्वरत्नसमायुक्तं मणिभिश्च विभूषितम्।
मुक्ताहारं नरेन्द्राय ददौ शक्रप्रचोदितः।
प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥

(६।१२८।६९—७१)

उस पावन अवसरपर देवगन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं। श्रीरामचन्द्रजीने सर्वप्रथम ब्राह्मणोंको एक लाख दूध देनेवाली धेनु तथा सौ साँड़ दिये। इसके अतिरिक्त तीस करोड़ अशर्फियाँ और अनेक प्रकारके बहुमूल्य वस्त्राभूषण भी ब्राह्मणोंको दिये। तदनन्तर श्रीराजारामजीने अपने सखा वानरेन्द्र सुग्रीवको अनेक मणियोंसे संयुक्त दिव्य काञ्चनी माला भेंट की। धृतिमान् श्रीरामजीने वालिनन्दन अङ्गदको नीलम जटित अङ्गद—बाजूवन्द भेंट किया, पवनप्रदत्त मुक्ताहार प्रभुने श्रीमैथिलीको पहना दिया। उस समय श्रीसीताजीकी हार्दिक इच्छा हुई कि यह पवनप्रदत्त मुक्ताहार मैं अपने लाड़ले पुत्र पवननन्दनको उपहार दूँ। भगवान् श्रीरामने उनका मनोभाव जानकर कहा—हे सौभाग्यशालिनि! हे भामिनि! तुम जिसपर सन्तुष्ट हो उसको यह मुक्ताहार दे दो। तब वात्सल्यमयी श्रीसीताने पवननन्दन श्रीहनुमान्को जिनमें तेज, धृति, यश, चतुरता, शक्ति, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम और उत्तम बुद्धि ये सद्गुण सदा निवास करते हैं; उन्हें वह दिव्य मुक्ताहार दे दिया—

प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टासि भामिनि।
अथ सा वायुपुत्राय तं हारमसितेक्षणा॥
तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयो नयः।
पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा॥

(६।१२८।८१-८२)

इसके पश्चात् श्रीरामजीने विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, द्विविद, मैन्द, नल, नील प्रभृति समस्त श्रेष्ठ वानरोंका यथेष्ट पदार्थों एवं पुष्कल रत्नराशिके द्वारा यथोचित सम्मान किया। वे सब-के-सब अतिशय प्रसन्न मनसे जैसे आये थे उसी तरह अपने-अपने स्थानोंको प्रस्थान कर गये।

श्रीरामजीने श्रीलक्ष्मणको युवराजपदपर अभिषिक्त करनेका विचार किया; परन्तु श्रीलक्ष्मणने बहुत समझानेपर भी अस्वीकार कर दिया। तदनन्तर राजराजेन्द्र अयोध्यानाथ श्रीरघुनाथजीने श्रीभरतजीको युवराजपदपर अभिषिक्त कर दिया—

सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो यदा न सौमित्रिरुपैति योगम्।
नियुज्यमानो भुवि यौवराज्ये ततोऽभ्यषिञ्चद् भरतं महात्मा॥

(६।१२८।९३)

अब जब इस वसुन्धरापर भगवान् श्रीराघवेन्द्रका मङ्गलमय राज्य स्थापित हो चुका तब समस्त विश्व श्रीराममय हो गया और प्रजा केवल श्रीरामकी चर्चामें निमग्न हो गयी, उन्हींके गुणगान करने लगी—

रामो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः।
रामभूतं जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति॥

(६। १२८। १०२)

श्रीरामचन्द्रका राज्य पाकर भगवती वसुन्धरा शस्यश्यामला हो गयी, प्रभूतमात्रामें अन्न उत्पन्न होने लगा, सर्वत्र जल सुलभ हो गया, नदियाँ सब ऋतुओंमें बहने लगीं और वृक्ष-वनस्पतियाँ फल-फूलोंसे लद गयीं।

पृथ्वी भी देवतास्वरूप है। जब यहाँ राज्य दूषित हो जाता है, पापाचार, अत्याचार, व्यभिचार और अन्याय होने लगते हैं तब पृथ्वीकी शक्ति सुप्त हो जाती है। परन्तु उत्तम राज्य स्थापित होनेपर वह सुषुप्त धरा पुनः जाग्रत् हो उठती है। मनुष्योंके आचरणका प्रभाव पृथ्वीपर अवश्य पड़ता है—अच्छे आचरणका प्रभाव अच्छा और बुरे आचरणका प्रभाव बुरा। अथर्ववेदमें कई मन्त्र ऐसे आये हैं, जिनमें पृथ्वीके वातावरणकी चर्चा है—'**शान्ता द्यौः शान्ता पृथ्वी**' इत्यादि। इसका अर्थ है कि द्युलोक शान्त है, पृथ्वी शान्त है। वातावरणमें कोई अशुद्धि नहीं है अर्थात् न उसमें आँधी है, न धूम है, न तूफान है। इस प्रकार सब पवित्र हो जाते हैं जब राज्य पवित्र हो।

श्रीरामचन्द्रके राज्यमें स्त्रियोंको वैधव्यका कष्ट नहीं उठाना पड़ता था। वृद्ध लोग युवकोंका श्राद्ध नहीं करते थे। किसीको कोई रोग नहीं होता था। खाने-पीनेकी कमी नहीं होती थी, इस प्रकार सभी सुखी रहते थे। भगवान् श्रीरामका राज्य इतना सुखद, शान्तिपूर्ण और सम्पन्न सिद्ध हुआ कि आज भी उसकी चर्चा होती रहती है और लोग चाहते हैं कि भूतलमें पुनः रामराज्यकी स्थापना हो।

अच्छा राजा वही है, जो अपने राज्यमें एक मर्यादाकी स्थापना करके प्रजाको उससे अवगत करा दे और उस मर्यादाका पालन हो रहा है या उल्लङ्घन; इसपर ध्यान रखे। लेकिन मर्यादा ऐसी होनी चाहिये, जिसको मनुष्य हृदयसे स्वीकार कर सके—'**मर्त्यैः मनुष्यैः आदीयते इति मर्यादा**'।

श्रीरामराज्यको हम इसीलिये आदर्श मानते हैं कि उसमें सत्पुरुषोंको अपने कर्तव्य-पालनके लिये जितनी स्वतन्त्रता थी, उतना ही नियन्त्रण था दुष्ट-दुराचारियोंपर। श्रीरामराज्यमें अराजकतत्त्व नहीं थे, यदि कहीं थे भी तो उसको श्रीरामचन्द्रके धनुष-बाणका भय बना रहता था।

आजके युगमें किसी भी अच्छे देशकी पहचान यही है कि उसकी धरती शस्यश्यामला हो, उसमें हरे-भरे पर्वत हों, वन एवं खनिज सम्पदाएँ हों, धनधान्य हों, नदियाँ, नहरें हों, उद्योग-व्यापार हों, फल-फूलसे लदी वृक्ष-वनस्पतियाँ हों; यातायातके साधन हों, शिक्षाकी सुव्यवस्था हो और शक्तिशाली सेना हो। श्रीरामराज्यमें यह सब कुछ था। इसलिये प्रजा अपने राजा श्रीरामचन्द्रसे सर्वथा सन्तुष्ट रहती थी।

जब रामराज्य स्थापित हुआ तब श्रीरामचन्द्रने उसके विभागोंका बँटवारा करके प्रत्येक विभागपर योग्यतम व्यक्तियोंकी नियुक्ति कर दी और अपने जिम्मे यह देखनेका काम रखा कि कहाँ क्या हो रहा है? श्रीवसिष्ठजी तो श्रीरामजीके पूज्यतम गुरु थे ही, सुमन्त्र आदि जो आठ मन्त्री थे, वे भी बड़े नीतिज्ञ, बड़े विद्वान्, बड़े कर्म-कुशल और अत्यन्त विश्वसनीय थे। उनके हृदयमें श्रीराजा रामचन्द्रके साथ-साथ समस्त प्रजाका हित करनेकी भावना रहती थी। वे जो परामर्श श्रीरामजीको देते थे—मन्त्रणा करते थे उनको उनके तथा श्रीरामचन्द्रके

अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था। उनकी मन्त्रणा ज्ञानसम्मत, इतिहाससम्मत, परम्परा-सम्मत, श्रुतिसिद्धान्तसम्मत, लोकसम्मत और प्रजासम्मत हुआ करती थी। राज्यमें जो गुप्तचर रखे गये थे वे सभी विश्वासपात्र थे फिर भी सावधानीके लिये उन गुप्तचरोंके पीछे भी गुप्तचर नियुक्त थे, जिससे यह पता चलता रहे कि वे भलीभाँति कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं? इसी प्रकार श्रीरामचन्द्रके सेनापति बड़े वीर और विश्वसनीय थे। उनके प्रति उनकी सेना बड़ा आदर-भाव रखती थी और अनुशिष्ट थी, रामराज्यका प्रशासन इतना स्वच्छ था कि उसमें न तो किसीके प्रति किसीका कोई पक्षपात था और न किसीको किसीसे कोई शिकायत होनेका अवसर मिलता था।

रामराज्यमें सब लोग अपने-अपने मनको अपने वशमें रखते थे। किसीका भी मन असन्मार्गपर नहीं जाता था। किसीके मनमें न तो कोई उद्वेग था और न मृत्युका भय था। समस्त प्रजा निर्द्वन्द्व होकर अनुशासनका पालन करती थी।

श्रीरामचन्द्र अपने राज्यमें लोकाराधन करते थे। वे यह जानते थे कि उनकी प्रजा ही उनका ईश्वर है। श्रीमद्भागवतमें जो श्रीरामजीके लिये '**उपासितलोकाय**' पदका प्रयोग आया है वह सर्वथा सार्थक है। वे अपनी प्रजाकी उपासना करते थे। यही कारण था कि प्रजा भी उनको अपना उपास्य और अपना हृदयसम्राट् मानती थी। महाकवि भवभूतिने श्रीरामजीकी लोको-पासनाका एक सुन्दर चित्राङ्कन किया है।

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
उपासनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

भगवान् श्रीरामचन्द्र राजाके रूपमें मानो शपथ ग्रहण कर रहे हैं कि लोकोपासनाके लिये, प्रजाराधनके लिये स्नेह, दया, सौख्य और श्रीविदेहनन्दिनी प्राणप्रिया श्रीसीताजीका भी परित्याग करनेमें मुझे कष्टानुभूति नहीं होगी।

श्रीरामजीने राज्य पाकर ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्यका सञ्चालन किया। सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया। उन यज्ञोंमें उत्तम-उत्तम घोड़े छोड़े गये और ऋत्विजोंको प्रशस्त दक्षिणा दी गयी—

राज्यं दशसहस्राणि प्राप्य वर्षाणि राघवः।
शताश्वमेधानाजह्रे सदश्वान् भूरिदक्षिणान्॥

(६। १२८। ९५)

इस श्रीरामायणी कथाका जो श्रवण करते हैं, उनके ऊपर समस्त देवता प्रसन्न हो जाते हैं और विघ्न करनेवाले ग्रह शान्त हो जाते हैं—

श्रवणेन सुराः सर्वे प्रीयन्ते सम्प्रशृण्वताम्।
विनायकाश्च शाम्यन्ति गृहे तिष्ठन्ति यस्य वै॥

(६। १२८। ११५)

साक्षात् आदिदेव महाबाहु ताप-सन्ताप पापापहारी प्रभु श्रीनारायण ही रघुकुलतिलक श्रीराम हैं और श्रीशेषहीको श्रीलक्ष्मण कहा जाता है—

आदिदेवो महाबाहुर्हरिर्नारायणः प्रभुः।
साक्षाद् रामो रघुश्रेष्ठः शेषो लक्ष्मण उच्यते॥

(६। १२८। १२०)

यह श्रीरामायण महाकाव्य आयु, आरोग्य, यश और सौभ्रातृत्वका संवर्द्धन करनेवाला है। यह सद्बुद्धिप्रदाता और कल्याणकारी है, अतः समृद्धिकी अभिलाषा करनेवाले सज्जनोंको इस उत्साहवर्द्धक इतिहासका नियमपूर्वक श्रवण करना चाहिये—

आयुष्यमारोग्यकरं यशस्यं
सौभ्रातृकं बुद्धिकरं शुभञ्च।
श्रोतव्यमेतन्नियमेन सद्भि-
राख्यानमोजस्करमृद्धिकामैः॥

(६। १२८। १२५)

राम-दरबार

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

कथा-सुधा-सागर

उत्तरकाण्ड

भगवान् रघुनन्दन राजाधिराज महाराज अयोध्यानाथ सीतानाथ श्रीरामचन्द्रका मङ्गलमय राज्याभिषेक सम्पन्न हो गया। गतदिवस आप भाग्यवानोंने इस अलौकिक दिव्य मङ्गलमय राज्याभिषेक समारोहके महान् उत्सवका आनन्द लिया। वे भाग्यशाली हैं, जो भगवान्‌के अलौकिक चरित्रोंका उत्सव मनाते हैं, वैष्णवता उत्सवमें ही है। वैष्णवोंका परम धन है कि भगवान्‌के प्रत्येक उत्सवको उत्साहपूर्वक सम्पन्न करे। भक्तोंके यहाँ ही भगवत्सम्बन्धी उत्सव होते हैं। जो भक्त भावुक हृदयका नहीं होगा वह उत्सव मना भी नहीं पायेगा और देख भी नहीं पायेगा। भावुक भक्त ही उत्सवको देख भी पाता है। भक्तिहीन हृदयवाले तो कहते हैं कि यह क्या पागलपन है? पैसे और पदार्थका अपव्यय है। भक्तिहीनहृदय व्यक्ति सङ्कोचवश बैठकर भी आनन्द नहीं ले सकता। जिसपर भगवान्‌की अतिशय कृपा होगी वही इसका आनन्द लेगा।

राक्षसोंका उद्धार करनेके पश्चात् जब श्रीरघुनाथजी श्रीअयोध्याजीके दिव्य राज्यसिंहासनपर विराजमान हुए तब सब मुनि, महात्मा, ऋषि, राजर्षि, महर्षि, ब्रह्मर्षि श्रीरामजीका अभिनन्दन करनेके लिये श्रीअयोध्यापुरीमें आये—

प्राप्तराज्यस्य रामस्य राक्षसानां वधे कृते।
आजग्मुर्मुनयः सर्वे राघवं प्रतिनन्दितुम्॥

(७। १। १)

श्रीकौशिक, यवक्रीत, गार्ग्य, गालव और मेधातिथिके पुत्र कण्व पूर्व दिशासे वहाँ पधारे। स्वस्त्यात्रेय, भगवान् नमुचि, प्रमुचि, अगस्त्य, भगवान् अत्रि, सुमुख और विमुख ये दक्षिण दिशासे श्रीअगस्त्यजीके साथ पधारे। श्रीनृषङ्गु, कवष, धौम्य और महर्षि कौशेय भी अपने शिष्योंके साथ वहाँ पधारे। इसी तरह उत्तर दिशाके नित्य निवासी वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज ये सात ऋषि जिनकी सप्तर्षि संज्ञा है श्रीअयोध्यापुरीमें पधारे।

भगवान् श्रीरामने समागत सभी महात्माओंको एक-एक गौ अर्पण करके पाद्यार्घ्य आदिसे सबका सादर अर्चन किया—

दृष्ट्वा प्राप्तान् मुनींस्तांस्तु प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः।
पाद्यार्घ्यादिभिरानर्च गां निवेद्य च सादरम्॥

(७। १। १३)

कुशल-प्रश्नके अनन्तर समागत सन्तोंने कहा—हे राजन्! सौभाग्यकी बात है कि हमलोग आज श्रीमान्‌को सकुशल देख रहे हैं और आपके समस्त शत्रुओंका विनाश भी हो चुका है। समस्त लोकोंको अशान्त करनेवाले—त्रस्त करनेवाले—रुलानेवाले रावणका आपने वध कर दिया, यह सबके लिये अत्यन्त सौभाग्यकी बात है—

त्वां तु दिष्ट्या कुशलिनं पश्यामो हतशात्रवम्।
दिष्ट्या त्वया हतो राजन् रावणो लोकरावणः॥

(७। १। १७)

हे शत्रुसूदन श्रीराम! आपने राक्षसेश्वर रावणका वध कर दिया और श्रीसीताजीके साथ विजयी

वानरोंको आज हमलोग सकुशल देख रहे हैं, यह बड़े आनन्दकी बात है—

दिष्ट्या त्वया हतो राम रावणो राक्षसेश्वरः।
दिष्ट्या विजयिनं त्वाद्य पश्यामः सह सीतया॥

(७। १। १९)

हे रघुनन्दन! युद्धमें आपके द्वारा जो रावणका पराभव हुआ यह कोई बड़ी बात नहीं है; परन्तु द्वन्द्वयुद्धमें रावणपुत्र मेघनादका श्रीलक्ष्मणके हाथों मारा जाना, वही सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात है—

संङ्ख्ये तस्य न किञ्चित्तु रावणस्य पराभवः।
द्वन्द्वयुद्धमनुप्राप्तो दिष्ट्या ते रावणिर्हतः॥

(७। १। २८)

श्रीरामचन्द्रने हाथ जोड़कर आश्चर्यसे पूछा—हे महात्मन्! राक्षसेश्वर रावण और कुम्भकर्ण ये दोनों ही महान् पराक्रमी थे। उन दोनोंको नगण्य समझकर रावणपुत्र मेघनादकी ही प्रशंसा आप क्यों कर रहे हैं?

विस्मयं परमं गत्वा रामः प्राञ्जलिरब्रवीत्।
भगवन्तः कुम्भकर्णं रावणं च निशाचरम्॥
अतिक्रम्य महावीर्यौ किं प्रशंसथ रावणिम्॥

(७। १। ३४, ३५)

उसका प्रभाव कैसा था? उसमें कौन-सा बल और पराक्रम था? किं वा किस कारणसे वह रावणसे अधिक था? यदि यह मेरे सुननेयोग्य हो, गोपनीय न हो तो मैं इस प्रसङ्गको सुनना चाहता हूँ। महात्मा राजा रामचन्द्रका वह वचन सुन करके महातेजस्वी घटयोनि श्रीअगस्त्यने इस प्रकार कहा—

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः।
कुम्भयोनिर्महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह॥

(७। २। १)

हे श्रीराम! इन्द्रजित्के महान् तेज और बलका वृत्तान्त सुनें। जिस बलके कारण वह अपने शत्रुओंका तो वध कर डालता था; परन्तु स्वयं शत्रुओंके द्वारा नहीं मारा जाता था—

शृणु राम तथा वृत्तं तस्य तेजोबलं महत्।
जघान शत्रून् येनासौ न च वध्यः स शत्रुभिः॥

(७। २। २)

हे राघव! इस प्रसङ्गको समझनेके लिये मैं पहले आपको रावणके कुल, जन्म तथा वरदान प्राप्ति आदिकी कथा सुनाता हूँ—

तावत् ते रावणस्येदं कुलं जन्म च राघव।
वरप्रदानं च तथा तस्मै दत्तं ब्रवीमि ते॥

(७। २। ३)

हे श्रीराम! प्राचीनकालमें—सत्ययुगमें प्रजापति ब्रह्माके ब्रह्मर्षि पुलस्त्य नामके पुत्र हुए। एक बार वे धर्माचरणके प्रसङ्गमें महापर्वत सुमेरुके सन्निकट राजर्षि तृणविन्दुके आश्रममें गये और वहीं रहने लगे—

स तु धर्मप्रसङ्गेन मेरोः पार्श्वे महागिरेः।
तृणबिन्द्वाश्रमं गत्वाप्यवसन्मुनिपुङ्गवः॥

(७। २। ७)

जहाँपर महर्षि पुलस्त्य तपस्या करते थे। वहाँ अनेक ऋषियों, नागों और राजर्षियोंकी कन्याएँ आकर विविध प्रकारकी क्रीड़ाएँ करती थीं। गाती, बजाती और नाचती थीं। तपस्वी मुनिके तपमें विघ्न करती थीं। महर्षि पुलस्त्य रुष्ट होकर बोले—कलसे जो बालिका मेरे दृष्टिपथमें आयेगी वह निश्चय ही गर्भवती हो जायगी—

या मे दर्शनमागच्छेत् सा गर्भं धारयिष्यति।

(७। २। १३)

ब्रह्मशापके भयसे उन कन्याओंने वहाँ आना छोड़ दिया। परन्तु राजर्षि तृणविन्दुकी कन्याने जिसने उस शापको नहीं सुना था, इसलिये वह दूसरे दिन भी आकर निर्भय होकर विचरण

करने लगी। महर्षि पुलस्त्यके मुखसे वेदपाठ श्रवण करके वह वेदध्वनिके सहारे उसी ओर गयी और उसने तपोनिधि पुलस्त्यजीके दर्शन किये। महर्षिकी दृष्टि पड़ते ही सद्यः उसका शरीर पीला पड़ गया और गर्भके लक्षण प्रकट हो गये—

सा तु वेदश्रुतिं श्रुत्वा दृष्ट्वा वै तपसो निधिम्।
अभवत् पाण्डुदेहा सा सुव्यञ्जितशरीरजा॥

(७। २। १७)

अपनी कन्याको देखकर राजर्षि तृणविन्दुने अपने तपोबलसे समस्त कारण जानकर कन्याको लेकर भावितात्मा—शुद्धान्तःकरण महर्षि पुलस्त्यके पास गये और उनसे बोले—हे भगवन्! मेरी यह कन्या आपके गुणोंसे ही विभूषित है। हे महर्षे! आप इसे स्वयं प्राप्त हुई भिक्षाके समान स्वीकार करें—

स तु विज्ञाय तं शापं महर्षेर्भावितात्मनः।
गृहीत्वा तनयां गत्वा पुलस्त्यमिदमब्रवीत्॥
भगवंस्तनयां मे त्वं गुणैः स्वैरेव भूषिताम्।
भिक्षां प्रतिगृहाणेमां महर्षे स्वयमुद्यताम्॥

(७। २। २४, २५)

महर्षि पुलस्त्यने राजर्षि तृणविन्दुकी कन्याको स्वीकार कर लिया। उसके शील और सदाचरणसे प्रसन्न होकर श्रीपुलस्त्यने कहा—हे देवि! मैं तुमसे बहुत सन्तुष्ट हूँ। मैं तुम्हें अपने समान पुत्र प्रदान करता हूँ, उसका नाम पौलस्त्य होगा। हे देवि! मैं यहाँ वेदका स्वाध्याय कर रहा था, उस समय तुमने आकर विशेषरूपसे वेदश्रवण किया था, एतावता तुम्हारे पुत्रका नाम विश्रवा अथवा विश्रवण होगा—

यस्मात्तु विश्रुतो वेदस्त्वयेहाध्ययतो मम॥
तस्मात् स विश्रवा नाम भविष्यति न संशयः।

(७। २। ३१, ३२)

समयपर उस देवीके गर्भसे पुत्र उत्पन्न हुआ। विश्रवामुनि श्रुतिमान्—वेदोंके विद्वान्, समदर्शी थे और वे व्रताचारमें लगे रहते थे। वे पिताके समान ही तपस्वी थे—

श्रुतिमान् समदर्शी च व्रताचाररतस्तथा।
पितेव तपसा युक्तो ह्यभवद् विश्रवा मुनिः॥

(७। २। ३४)

श्रीविश्रवामुनिके उत्तम आचरणसे आकर्षित होकर श्रीभरद्वाज ऋषिने अपनी कन्याका विवाह उनसे कर दिया। कुछ दिनोंके पश्चात् उस कन्याके गर्भसे एक पुत्र हुआ। महर्षि पुलस्त्यने उस बालकका नामकरण-संस्कार किया। श्रीपुलस्त्यने दिव्यदृष्टिसे देखा कि इस बालककी श्रेयस्करी बुद्धि है और यह आगे चलकर धनाध्यक्ष होगा, अतः प्रसन्न होकर नामकरण संस्कार किया। विश्रवाका यह पुत्र विश्रवाके समान उत्पन्न हुआ है, इसलिये यह वैश्रवण नामसे प्रसिद्ध होगा—

दृष्ट्वा श्रेयस्करीं बुद्धिं धनाध्यक्षो भविष्यति।
नाम चास्याकरोत् प्रीतः सार्द्धं देवर्षिभिस्तदा॥
यस्माद् विश्रवसोऽपत्यं सादृश्याद् विश्रवा इव।
तस्माद् वैश्रवणो नाम भविष्यत्येष विश्रुतः॥

(७। ३। ७, ८)

कुमार वैश्रवण वहाँ तपोवनमें ही रहकर आहुति डालनेसे प्रज्वलित हुई अग्निकी भाँति बढ़ने लगे और महान् तेजसे सम्पन्न हो गये—

स तु वैश्रवणस्तत्र तपोवनगतस्तदा।
अवर्धताहुतिहुतो महातेजा यथानलः॥

(७। ३। ९)

अनेक सहस्र वर्षतक तपस्या करनेके पश्चात् ब्रह्माजी इन्द्रादि देवताओंके साथ प्रसन्न होकर वर प्रदान करनेके लिये आये। श्रीब्रह्माजीने वर माँगनेके लिये कहा, तब वैश्रवणने श्रीब्रह्माजीसे

कहा—हे भगवन्! मेरा विचार लोककी रक्षा करनेका है, अतः लोकपाल होना चाहता हूँ—

वरं वृणीष्व भद्रं ते वरार्हस्त्वं महामते।
अथाब्रवीद् वैश्रवणः पितामहमुपस्थितम्॥
भगवँल्लोकपालत्वमिच्छेयं लोकरक्षणम्।

(७। ३। १५, १६)

श्रीब्रह्माजीने लोकपालत्वका वरदान देकर उन्हें सवारीके लिये पुष्पकविमान दे दिया। तदनन्तर अपने पिता विश्रवामुनिकी आज्ञासे वैश्रवण लङ्कापुरीमें सुखपूर्वक रहने लगे।

श्रीरामजीने श्रीअगस्त्यसे पूछा—हे भगवन्! आपके मुखसे कुबेर और रावणके पूर्व लङ्कामें राक्षस रहते थे, यह सुनकर हमें विस्मय हुआ; क्योंकि हमने यही सुना था कि राक्षसोंकी उत्पत्ति श्रीपुलस्त्यके वंशसे ही हुई है। परंतु इस समय आपने किसी अन्य कुलसे भी राक्षसोंके सम्भवकी बात कही है—

पुलस्त्यवंशादुद्भूता राक्षसा इति नः श्रुतम्।
इदानीमन्यतश्चापि सम्भवः कीर्तितस्त्वया॥

(७। ४। ४)

हे ब्रह्मन्! उनका पूर्वज कौन था? उनका विशेष इतिहास हमें सुनायें। श्रीअगस्त्यने कहा—हे श्रीराम! पद्मसम्भव ब्रह्माने पहले समुद्रगत जलकी सृष्टि करके उसकी रक्षाके लिये अनेक जल-जन्तुओंकी सृष्टि की और उनसे कहा—तुम लोग यत्नतः जलका परिरक्षण करो। उन जल-जन्तुओंमें कुछने कहा—'**वयं रक्षामः**' अर्थात् हम जलकी रक्षा करेंगे और कुछने कहा—'**वयं यक्षामः**' अर्थात् हम जलकी पूजा करेंगे। ब्रह्माने उन जल-जन्तुओंको 'राक्षस' और 'यक्ष' नामकी जातियोंमें विभक्त कर दिया। उन राक्षसोंमें हेति और प्रहेति नामवाले दो भाई थे। जो समस्त राक्षसोंके अधिपति थे—

रक्षाम इति यैरुक्तं राक्षसास्ते भवन्तु वः।
यक्षाम इति यैरुक्तं यक्षा एव भवन्तु वः॥
तत्र हेतिः प्रहेतिश्च भ्रातरौ राक्षसाधिपौ।

(७। ४। १३-१४)

उनमें प्रहेति धर्मात्मा था; अतः वह तत्काल तपोवनमें जाकर तप करने लगा। परंतु हेतिने विवाहके लिये अत्यन्त यत्न किया—

प्रहेतिर्धार्मिकस्तत्र तपोवनगतस्तदा।
हेतिर्दारक्रियार्थे तु परं यत्नमथाकरोत्॥

(७। ४। १५)

हेतिने महाभया—अत्यन्त भयंकर कालकन्या भयासे विवाह कर लिया और उसके गर्भसे विद्युत्केश नामक पुत्र उत्पन्न किया। विद्युत्केशका विवाह संध्याकी पुत्री सालकटङ्कटासे हो गया। कुछ समयके पश्चात् सालकटङ्कटाने विद्युत्केशसे गर्भ धारण किया। उस राक्षसीने मन्दराचलपर जाकर पुत्र प्रसव किया; परंतु उस सद्यःप्रसूत बालकको वहीं छोड़कर उसको विस्मृत करके अपने पतिके साथ रमण करने लगी। उधर वह बालक मेघकी गम्भीर गर्जनाके समान शब्द करने लगा—

रेमे तु सार्द्धं पतिना विस्मृत्य सुतमात्मजम्।
उत्सृष्टस्तु तदा गर्भो घनशब्दसमस्वनः॥

(७। ४। २५)

संयोगवश उसी समय वृषभारूढ़ श्रीशंकर-पार्वती आकाशमार्गसे जा रहे थे। बालककी रोदनध्वनि सुनकर उसकी दयनीय अवस्थापर दृष्टिपात करके माता पार्वतीके मनमें करुणाका स्रोत उमड़ पड़ा। पार्वतीजीकी प्रेरणासे शंकरजीने उस विद्युत्केशके पुत्रको माताकी अवस्थाके समान ही नवयुवक बना दिया। साथ ही उस बालकको अमर बनाकर, रहनेके लिये आकाशचारी नगराकार विमान दे दिया। श्रीपार्वतीजीने यह भी वरदान दे दिया कि आजसे राक्षसियाँ शीघ्र ही गर्भ धारण करेंगी,

सद्यः प्रसव करेंगी और सद्यः प्रसूत बालक माताकी अवस्थाके समान हो जायगा—

उमयापि वरो दत्तो राक्षसीनां नृपात्मज॥
सद्योपलब्धिर्गर्भस्य प्रसूतिः सद्य एव च।
सद्य एव वयःप्राप्तिं मातुरेव वयःसमम्॥

(७।४।३०-३१)

विद्युत्केशके पुत्र सुकेशके साथ धर्मात्मा ग्रामणी नामक गन्धर्वने अपनी पुत्री देववतीका विवाह कर दिया। हे राघवेन्द्र! समय आनेपर सुकेशने देववतीके गर्भसे तीन पुत्र उत्पन्न किये, जो तीन अग्नियोंके समान थे—

ततः काले सुकेशस्तु जनयामास राघव॥
त्रीन् पुत्राञ्जनयामास त्रेताग्निसमविग्रहान्।
माल्यवन्तं सुमालिं च मालिं च बलिनां वरम्॥

(७।५।५-६)

उनके नाम थे—माल्यवान्, सुमाली और माली। वे तीनों भाई तपस्या करनेका निश्चय करके सुमेरु पर्वतपर चले गये। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर श्रीब्रह्माजीने आकर वर माँगनेके लिये कहा—मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ—

सुकेशपुत्रानामन्त्र्य वरदोऽस्मीत्यभाषत।

(७।५।१३)

उन लोगोंने हाथ जोड़ करके वरदानकी याचना की—हे देव! हमें कोई जीत न सके, हम अपने शत्रुओंको मार डालें और दीर्घकालतक जीवें तथा प्रभावशाली हों। हमलोगोंमें पारस्परिक स्नेह बना रहे—

अजेयाः शत्रुहन्तारस्तथैव चिरजीविनः।
प्रभविष्णवो भवामेति परस्परमनुव्रताः॥

(७।५।१५)

वरदान पाकर वे भयंकर उपद्रव करने लगे। देवता लोग नारकीय यन्त्रणाके समान कष्ट पाने लगे। एक दिन उन राक्षसोंने विश्वकर्माको अपने लिये श्रीशङ्करजीके समान विशाल निवासस्थान निर्माण करनेके लिये कहा। विश्वकर्माने कहा—मेरे ही द्वारा निर्मित लङ्का नामक नगरी है। आपलोग उसी नगरीमें जाकर निवास कीजिये। विश्वकर्माकी बात सुनकर उन श्रेष्ठ राक्षसोंने सहस्रों अनुचरोंके साथ जाकर लङ्कामें निवास किया। उन्हीं दिनों एक नर्मदा नामकी गन्धर्वी थी। उसके तीन पुत्रियाँ थीं और तीनों सुन्दरी थीं। माता नर्मदाने अपनी तीनों पुत्रियोंका विवाह माल्यवान् आदि तीनों भाइयोंसे कर दिया। माल्यवान्‌की स्त्रीका नाम सुन्दरी था। वह वास्तवमें सुन्दरी थी। माल्यवान् और सुन्दरीके द्वारा वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, राक्षस दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त और उन्मत्त—ये सात पुत्र थे। इनके अतिरिक्त अनला नामकी एक सुन्दरी कन्या भी थी—

ततो माल्यवतो भार्या सुन्दरी नाम सुन्दरी॥
स तस्यां जनयामास यदपत्यं निबोध तत्।
वज्रमुष्टिर्विरूपाक्षो दुर्मुखश्चैव राक्षसः॥
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च मत्तोन्मत्तौ तथैव च।
अनला चाभवत् कन्या सुन्दर्यां राम सुन्दरी॥

(७।५।३५—३७)

सुमालीकी पत्नीका नाम केतुमती था। इन दोनोंसे जो पुत्र उत्पन्न हुए उनके नाम इस प्रकार हैं—प्रहस्त, अकम्पन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दण्ड, महाबली सुपार्श्व, संह्राद, प्रघस तथा राक्षस भासकर्ण—ये सुमालीके पुत्र थे और राका, पुष्पोत्कटा, कैकसी और कुम्भीनसी ये चार उसकी कन्याएँ थीं।

मालीकी पत्नीका नाम वसुदा था, वह गन्धर्व-कन्या थी। माली और वसुदाके द्वारा अनल, अनिल, हर और सम्पाति ये चार पुत्र थे जो इस समय विभीषणके मन्त्री हैं—

अनलश्चानिलश्चैव हरः सम्पातिरेव च।

एते विभीषणामात्या मालेयास्ते निशाचराः॥

(७। ५। ४५)

माल्यवान् आदि तीनों राक्षसश्रेष्ठ अपने सैकड़ों पुत्रों तथा अन्य राक्षसोंके साथ रहकर अपनी भुजाओंके बलसे दर्पित होकर इन्द्रप्रमुख देवताओं, ऋषियों, नागों और यक्षोंको कष्ट देने लगे—

ततस्तु ते राक्षसपुङ्गवास्त्रयो
निशाचरैः पुत्रशतैश्च संवृताः।
सुरान् सहेन्द्रानृषिनागयक्षान्
बबाधिरे तान् बहुवीर्यदर्पिताः॥

(७। ५। ४६)

इन राक्षसोंसे व्यथित देवता तथा तपोधन ऋषि भयार्त होकर देवाधिदेव श्रीमहादेवकी शरणमें गये—

तैर्वध्यमाना देवाश्च ऋषयश्च तपोधनाः।
भयार्ताः शरणं जग्मुर्देवदेवं महेश्वरम्॥

(७। ६। १)

श्रीशंकरजीने कहा—हे देवताओ! मैंने सुकेशके जीवनकी रक्षा की है और ये माल्यवान् आदि सुकेशके ही पुत्र हैं, अतः मैं इनका वध नहीं करूँगा, परंतु आपलोगोंको परामर्श देता हूँ कि आपलोग श्रीविष्णुभगवान्के पास जाओ, वे इन राक्षसोंका विनाश अवश्य करेंगे।

श्रीशंकरजीके ऐसा कहनेपर देवतालोग जय-जयकार करके और उनका अभिनन्दन करके उन निशाचरोंके भयसे पीड़ित हो विष्णुभगवान्के सन्निकट आये—

ततस्तु जयशब्देन प्रतिनन्द्य महेश्वरम्।
विष्णोः समीपमाजग्मुर्निशाचरभयार्दिताः॥

(७। ६। १२)

देवतालोगोंने शङ्ख-चक्रधारी भगवान् विष्णुके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके सुकेशके पुत्रों—माल्यवान्, सुमाली और माली तथा इनके सहयोगियोंके अत्याचारका वर्णन किया तथा देवताओंने भगवान्से प्रार्थना की—हे मधुसूदन! हे सुरेश्वर! आप हमारा हित करनेके लिये माल्यवान् आदि आततायी राक्षसोंका विनाश करें। हम आपके शरणागत हैं, हमारे एकमात्र आप ही आश्रय हैं—

स त्वमस्मद्धितार्थाय जहि तान् मधुसूदन।
शरणं त्वां वयं प्राप्ता गतिर्भव सुरेश्वर॥

(७। ६। १६)

करुणामय भगवान्ने कहा—हे देवताओ! मैं सुकेश और उसके पुत्रोंको जानता हूँ। तुमलोग विज्वर—चिन्तारहित हो जाओ, मैं संक्रुद्ध होकर उसको मार डालूँगा—

निहनिष्यामि संक्रुद्धः सुरा भवत विज्वराः॥

(७। ६। २१)

सुकेशके पुत्रोंका गुप्तचरविभाग बड़ा प्रबल था, अतः उन्हें सब समाचार यथावत् मिल गया। माल्यवान्ने अपने भाइयोंको बुलाकर मन्त्रणा की—

विबुधानां समुद्योगं माल्यवांस्तु निशाचरः।
श्रुत्वा तौ भ्रातरौ वीराविदं वचनमब्रवीत्॥

(७। ६। २३)

माल्यवान्ने अपने भाइयोंको सब समाचार सुनाकर भगवान् विष्णुके यथार्थ पराक्रमका वर्णन करके कहा—श्रीनारायण हमको मारना चाहते हैं, उन्हें जीतना बहुत कठिन है—

दुःखं नारायणं जेतुं यो नो हन्तुमिहेच्छति॥

(७। ६। ३८)

बड़े भ्राताकी बात सुनकर सुमाली और मालीने कहा—हे राक्षसेन्द्र! विष्णुके मनमें हमारे द्वेषका कोई कारण तो नहीं है। हमने उनका कोई अपराध भी नहीं किया है। केवल देवताओंके चुगली खानेसे उनका मन हमारी ओरसे फिर गया है। इसलिये हम सब लोग सम्मिलित होकर

एक-दूसरेका परिरक्षण करते हुए साथ-साथ चलें और आज ही देवताओंको मार डालें, जिनके कारण यह सारा दोष समुत्थ है—

विष्णोर्द्वेषस्य नास्त्येव कारणं राक्षसेश्वर।
देवानामेव दोषेण विष्णोः प्रचलितं मनः॥
तस्मादद्यैव सहिताः सर्वेऽन्योन्यसमावृताः।
देवानेव जिघांसामो येभ्यो दोषः समुत्थितः॥

(७। ६। ४३-४४)

युद्धका निश्चय करके बलगर्वित देवशत्रु राक्षस रथ, हाथी, घोड़े, गदहे, बैल, ऊँट, शिशुमार, सर्प, मगर, कछुआ, मत्स्य, सिंह, बाघ, शूकर, मृग और नीलगाय आदि वाहनोंपर सवार होकर युद्धके लिये चले।

देवताओंके दूतोंसे राक्षसोंके युद्धविषयक उद्योगकी बात सुनकर भगवान् श्रीविष्णुने भी युद्ध करनेका विचार किया। बाणोंसे भरा तरकश तथा अन्य अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर गरुड़पर सवार हो गये—

देवदूतादुपश्रुत्य चक्रे युद्धे तदा मनः।
स सज्जायुधतूणीरो वैनतेयोपरि स्थितः॥

(७। ६। ६३)

युद्धभूमिमें पहुँचनेपर श्रीगरुड़के पक्षोंकी तीव्र वायुसे राक्षसी सेना क्षुब्ध हो गयी। रथोंकी पताकाएँ चक्कर खाने लगीं और सबके हाथोंसे अस्त्र-शस्त्र गिर गये। राक्षसेन्द्र माल्यवान्‌की समस्त सेना काँपने लगी—

सुपर्णपक्षानिलनुन्नपक्षं
भ्रमत्पताकं प्रविकीर्णशस्त्रम्।
चचाल तद् राक्षसराजसैन्यं
चलोपलं नीलमिवाचलाग्रम्॥

(७। ६। ६९)

समस्त राक्षस भगवान् विष्णुके ऊपर ही प्रहार करने लगे। जैसे मछली महासागरपर प्रहार करे, उसी तरह वे निशाचर अपने अस्त्र-शस्त्रोंके द्वारा श्रीनारायणपर प्रहार करने लगे। उस समय दुर्द्धर्ष श्रीविष्णुभगवान्‌ने अपने शार्ङ्ग धनुषसे शर-वृष्टि आरम्भ कर दी—

निशाचरैस्ताड्यमानो मीनैरिव महोदधिः।
शार्ङ्गमायम्य दुर्द्धर्षो राक्षसेभ्योऽसृजच्छरान्॥

(७। ७। ७)

जैसे वायु उठे हुए मेघोंको उड़ा देता है, उसी प्रकार अपनी शरवृष्टिसे राक्षसोंको भगाकर श्रीहरिने महान् शङ्ख पाञ्चजन्यका वादन किया—

विद्राव्य शरवर्षेण वर्षं वायुरिवोत्थितम्।
पाञ्चजन्यं महाशङ्खं प्रदध्मौ पुरुषोत्तमः॥

(७। ७। ९)

शङ्खराजकी ध्वनि, शार्ङ्ग धनुषकी ज्याध्वनि तथा ठाकुरजीकी गर्जनध्वनिसे राक्षसोंका कोलाहल समाप्त हो गया—

शङ्खराजरवश्चापि शार्ङ्गचापरवस्तथा।
राक्षसानां रवांश्चापि ग्रसते वैष्णवो रवः॥

(७। ७। १६)

जैसे सूर्यसे भयंकर किरणें, समुद्रसे जलके प्रवाह, पर्वतसे नागेन्द्र, जलदसे जल-धाराएँ प्रकट होती हैं, उसी प्रकार श्रीहरिके चलाये और शार्ङ्ग-धनुषसे विनिर्मुक्त सैकड़ों-हजारों बाण तत्काल इधर-उधर दौड़ने लगे।

जैसे शरभसे सिंह, सिंहसे हाथी, हाथीसे व्याघ्र, व्याघ्रसे चीते, चीतेसे कुत्ते, कुत्तेसे मार्जार, मार्जारसे सर्प और सर्पसे चूहे डरकर भाग जाते हैं, उसी प्रकार राक्षस श्रीहरिकी मार खाकर भागने लगे।

ठाकुरजीने सुदर्शनचक्रसे राक्षसेन्द्र मालीके मस्तकको काट कर गिरा दिया—

कालचक्रनिभं चक्रं मालेः शीर्षमपातयत्॥

(७। ७। ४३)

मालीको मारा गया देखकर सुमाली और माल्यवान् दोनों राक्षस शोकसन्तप्त होकर सेनासहित लङ्काकी ओर ही भागे—

मालिनं निहतं दृष्ट्वा सुमाली माल्यवानपि।
सबलौ शोकसन्तप्तौ लङ्कामेव प्रधावितौ॥

(७।७।४६)

पद्मनाभभगवान् विष्णुने जब भागती हुई सेनाको पीछेसे मारना आरम्भ किया तब माल्यवान् लौट पड़ा, मानो महासागर अपनी तटभूमितक जाकर निवृत्त हो गया हो—

हन्यमाने बले तस्मिन् पद्मनाभेन पृष्ठतः।
माल्यवान् सन्निवृत्तोऽथ वेलामेत्य इवार्णवः॥

(७।८।१)

माल्यवान्ने कहा—हे नारायणदेव! ज्ञात होता है कि पुरातन क्षात्रधर्मका परिज्ञान तुम्हें नहीं है, तभी तो प्राकृत मनुष्यकी तरह जिनका मन युद्धसे विरत हो गया है तथा जो भयभीत होकर भाग रहे हैं, ऐसे हम राक्षसोंको भी तुम मार रहे हो—

नारायण न जानीषे क्षात्रधर्मं पुरातनम्।
अयुद्धमनसो भीतानस्मान् हंसि यथेतरः॥

(७।८।३)

श्रीठाकुरजीने कहा—हे माल्यवान्! मैंने राक्षसोंके संहारकी प्रतिज्ञा की है, अतः इस रूपमें भी मेरे द्वारा उस प्रतिज्ञाका ही पालन हो रहा है। मुझे अपने प्राण देकर भी सदा देवताओंका प्रिय कार्य करना है; इसलिये तुमलोग भागकर रसातलमें चले जाओ तो भी मैं तुम लोगोंको मारूँगा—

प्राणैरपि प्रियं कार्यं देवानां हि सदा मया।
सोऽहं वो निहनिष्यामि रसातलगतानपि॥

(७।८।८)

इसके बाद माल्यवान्ने शक्तिप्रहार करके भगवान् विष्णुका वक्षःस्थल विदीर्ण कर दिया। श्रीहरिने उस शक्तिको निकालकर उसीसे माल्यवान्को मारा। माल्यवान् मूर्च्छित हो गया। पुनः युद्ध प्रारम्भ होनेपर श्रीगरुड़ने अपने पंखोंकी हवासे उसे उड़ा दिया। यह देखकर सुमाली अपने सैनिकोंके साथ लङ्काकी ओर चल दिया—

द्विजेन्द्रपक्षवातेन द्रावितं दृश्य पूर्वजम्।
सुमाली स्वबलैः सार्द्धं लङ्कामभिमुखो ययौ॥

(७।८।१९)

माल्यवान् भी लज्जित होकर लङ्का चला गया।

श्रीअगस्त्यजी कहते हैं—हे कमलनयन श्रीराम! उन राक्षसोंका भगवान्के साथ अनेक वार युद्ध हुआ; परंतु प्रत्येक बार प्रधान-प्रधान नायकोंके मारे जानेपर उन सबको भागना पड़ा। जब राक्षस-लोग भगवान्का सामना न कर सके, तब सब राक्षस अपनी स्त्रियोंके साथ पातालमें रहनेके लिये चले गये। भगवान् विष्णुके भयसे व्यथित होकर सुमाली राक्षस अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ रसातलमें विचरण करता रहा। इसी बीच धनाध्यक्ष कुबेरने लङ्काको अपना निवासस्थान बना लिया—

चिरात्सुमाली व्यचरद् रसातलं
स राक्षसो विष्णुभयार्दितस्तदा।
पुत्रैश्च पौत्रैश्च समन्वितो बली
ततस्तु लङ्कामवसद्धनेश्वरः॥

(७।८।२९)

सुमाली अति बुद्धिमान् था, वह सोचता रहता था कि राक्षसोंका उत्कर्ष पुनः कैसे होगा? कैसे हमलोग पुनः बढ़ेंगे? यह सोचकर उसने अपनी कैकसी नामकी कन्यासे कहा—हे पुत्रि! सम्मानकी इच्छावाले सभी लोगोंके लिये कन्याका पिता होना दुःखका हेतु है; क्योंकि यह ज्ञान नहीं होता कि कौन और कैसा पुरुष कन्याका वरण करेगा?

कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकाङ्क्षिणाम्।

न ज्ञायते च कः कन्यां वरयेदिति कन्यके॥

(७। ९। ९)

हे पुत्रि! तुम स्वयं जाकर विश्रवा मुनिको पतिके रूपमें वरण करो। कैकसी पिताकी आज्ञा मानकर विश्रवा मुनिके पास सायंकाल पहुँची। महर्षिने उस अनिन्द्य सुन्दरीको देखकर परिचय पूछा—तुम किसकी पुत्री हो? कहाँसे आयी हो? मुझसे क्या कार्य है? कैकसीने कहा—हे मुने! मेरे मुखसे इतना जान लें कि मैं अपने पिताकी आज्ञासे आपके पास आयी हूँ, मेरा नाम कैकसी है। शेष सब आपको स्वयं जान लेना चाहिये—

किं तु मां विद्धि ब्रह्मर्षे शासनात् पितुरागताम्।
कैकसी नाम नाम्नाहं शेषं त्वं ज्ञातुमर्हसि॥

(७। ९। २०)

मुनिने ध्यानसे सब समझ लिया और कहा—इस दारुण वेलामें तुम मेरे पास आयी हो इसलिये हे सुश्रोणि! तुम क्रूरकर्मा राक्षसोंको ही उत्पन्न करोगी। कैकसीके प्रार्थना करनेपर मुनिने कहा—हे शुभानने! तुम्हारा छोटा पुत्र मेरे वंशानुरूप धर्मात्मा होगा इसमें संशय नहीं है—

पश्चिमो यस्तव सुतो भविष्यति शुभानने।
मम वंशानुरूपः स धर्मात्मा च न संशयः॥

(७। ९। २७)

इस प्रकार कैकसीके गर्भसे क्रमशः दशग्रीव, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण—इन चार सन्तानोंका जन्म हुआ।

कुछ दिनोंके पश्चात् एक दिन महर्षि विश्रवाके पास—अपने पिताके पास दर्शन करनेके लिये कुबेरजी आये। उन्हें देखकर कैकसीने दशग्रीवसे कहा—हे पुत्र! अपने भ्राता वैश्रवणकी ओर देखो, वे कैसे तेजस्वी ज्ञात होते हैं। भाई होनेके नाते तुम भी इन्हींके समान हो। परंतु अपनी अवस्था देखो कैसी है? अभिमानी दशग्रीवको माताकी बात अच्छी नहीं लगी। उसने कहा—माँ! अपने पराक्रमसे मैं भाई कुबेरसे बढ़ जाऊँगा। उसी समय दशग्रीव अपने भाइयोंके साथ गोकर्ण तीर्थपर जाकर अनुपम तपस्या करने लगा। अपनी तपस्याके द्वारा उसने ब्रह्माजीको सन्तुष्ट कर लिया और ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर उसे विजय प्राप्त करानेवाले वरदान दिये—

स राक्षसस्तत्र सहानुजस्तदा
तपश्चचारातुलमुग्रविक्रमः।
अतोषयच्चापि पितामहं विभुं
ददौ स तुष्टश्च पराञ्जयावहान्॥

(७। ९। ४८)

इस प्रकार तीनों तेजस्वी भ्राता ब्रह्मासे वरदान प्राप्त करके श्लेष्मातकवनमें—लसोड़ेके जंगलमें गये और वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे—

एवं लब्धवराः सर्वे भ्रातरो दीप्ततेजसः।
श्लेष्मातकवनं गत्वा तत्र ते न्यवसन्सुखम्॥

(७। १०। ४९)

रावणकी वर-प्राप्तिका समाचार सुनकर उसका नाना सुमाली निर्भय होकर रसातलसे आ गया। रावणको हृदयसे लगाकर बोला—हे दशग्रीव! तुम्हारी सफलतासे अब हम निश्चिन्त हो गये। यह लङ्कापुरी हम लोगोंकी है, पहले इसमें राक्षस रहते थे। हे वत्स! लङ्कानगरीको साम, दान, दण्ड और भेद किसी भी प्रकारसे कुबेरसे ले लेना चाहिये। उस समय रावणने कहा—हे नानाजी! धनाध्यक्ष कुबेर हमारे बड़े भाई हैं; अतः आपको उनके सम्बन्धमें इस प्रकारकी चर्चा नहीं करनी चाहिये—

वित्तेशो गुरुरस्माकं नार्हसे वक्तुमीदृशम्।

(७। ११। ११)

परंतु प्रहस्तने रावणकी बुद्धि पलट दी। उसकी बात मानकर रावणने कुबेरके पास सन्देश

भेजा कि आपको राक्षसोंकी नगरी लङ्का मुझे लौटा देना चाहिये। प्रहस्तके मुखसे यह सन्देश सुनकर कुबेरने कहा—हे दूत! तुम जाकर दशग्रीवसे कहो—हे महाबाहो! यह पुरी तथा यह निष्कण्टक राज्य जो कुछ भी मेरे पास है, वह सब तुम्हारा भी है। तुम इसका उपभोग करो—

ब्रूहि गच्छ दशग्रीवं पुरी राज्यं च यन्मम।
तत्राप्येतन्महाबाहो भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम्॥

(७।११।३३)

परंतु विश्रवामुनिने वैश्रवणको अनेक प्रकारसे समझाकर कहा—हे महाबाहो! अब तुम अनुचरोंके साथ लङ्काका परित्याग करके कैलास पर्वतपर चले जाओ और अपने निवासके लिये वहीं दूसरा नगर बसा लो—

तस्माद् गच्छ महाबाहो कैलासं धरणीधरम्।
निवेशय निवासार्थं त्यक्त्वा लङ्कां सहानुगः॥

(७।११।४१)

पूज्य पिताके इस प्रकार कहनेपर कुबेरने पिताका सम्मान रखते हुए उनका वचन स्वीकार कर लिया और स्त्री, पुत्र, मन्त्री, वाहन तथा धन साथ लेकर वे लङ्कासे कैलासको चले गये।

प्रहस्तने आकर रावणको सब समाचार दे दिया और कहा—लङ्कानगरी खाली हो गयी। कुबेर उसका परित्याग करके अन्यत्र चले गये। हे राक्षसेन्द्र! अब आप हमलोगोंके साथ लङ्कामें प्रवेश करके अपने धर्मका पालन कीजिये—

शून्या सा नगरी लङ्का त्यक्त्वैनां धनदो गतः।
प्रविश्य तां सहास्माभिः स्वधर्मं तत्र पालय॥

(७।११।४८)

अपने परिकरोंके साथ रावणने लङ्कापुरीमें प्रवेश किया। सम्पूर्ण निशाचरोंने मिलकर रावणका राज्याभिषेक किया। इधर कुबेरजीने कैलास पर्वतपर अलकापुरी बसायी और वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे।

लङ्केश्वर होनेके बाद रावणने अपनी बहन शूर्पणखाका विवाह दानवेन्द्र विद्युज्जिह्वके साथ कर दिया—

स्वसारं कालकेयाय दानवेन्द्राय राक्षसीम्।
ददौ शूर्पणखां नाम विद्युज्जिह्वाय राक्षसः॥

(७।१२।२)

इसके अनन्तर दानवराज मयने रावणसे कहा—हे राजन्! यह मेरी पुत्री मन्दोदरी है, जो हेमा नामक अप्सराके गर्भसे उत्पन्न हुई है। इसे तुम अपनी पत्नीके रूपमें अङ्गीकार करो। रावणने 'बहुत अच्छा' कहकर स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मन्दोदरी-रावणका विवाह हो गया। रावणने बलिकी दौहित्री वज्रज्वालाके साथ कुम्भकर्णका तथा गन्धर्वराज शैलूषकी कन्या सरमासे विभीषणका विवाह कर दिया। कुछ कालके पश्चात् मन्दोदरीने अपने पुत्र मेघनादको जन्म दिया। उत्पन्न होते ही मेघके समान गम्भीर नादसे मन्दोदरीके पुत्रने रुदन किया, एतावता पिता रावणने उसका नाम मेघनाद रखा। धनाध्यक्ष कुबेरने अग्रज होनेके कारण अपने कर्तव्यका पालन करते हुए रावणके पास सन्देश भेजा—हे दशग्रीव! तुम अपने कुलमें कलङ्क लगानेवाले पापकर्मका परित्याग कर दो—

तदधर्मिष्ठसंयोगान्निवर्त कुलदूषणात्॥

(७।१३।३२)

लङ्केश रावणने अपने खड्गसे सन्देशवाहक दूतके दो टुकड़े कर डाले—

एवमुक्त्वा तु लङ्केशो दूतं खड्गेन जघ्निवान्।

(७।१३।४०)

तत्पश्चात् स्वस्तिवाचन करके रथारूढ़ होकर त्रैलोक्यके विजय करनेकी अभिलाषा लेकर रावण उस स्थानपर गया जहाँ कुबेर रहते थे—

ततः कृतस्वस्त्ययनो रथमारुह्य रावणः।

त्रैलोक्यविजयाकाङ्क्षी ययौ यत्र धनेश्वरः॥

(७। १३। ४१)

रावणने कुबेरकी नगरी अलकापुरीपर आक्रमण किया। वहाँपर यक्षों और राक्षसोंका भयंकर युद्ध हुआ—

ततो युद्धं समभवद् यक्षराक्षससङ्कुलम्।

(७। १४। ८)

अन्तमें रावणने कुबेरको जीतकर विजयके चिह्नके रूपमें पुष्पकविमान छीन लिया—

निर्जित्य राक्षसेन्द्रस्तं धनदं हृष्टमानसः॥
पुष्पकं तस्य जग्राह विमानं जयलक्षणम्।

(७। १५। ३७-३८)

पुष्पकविमानका वेग मनके समान तीव्र था। इच्छानुसार सब जगह जा सकता था, छोटा, बड़ा रूप धारण कर लेता था—'**मनोजवं कामगमं कामरूपं विहङ्गमम्**'॥ वह विमान न अधिक शीतल था और न अधिक उष्ण ही था। सभी ऋतुओंमें सुख देनेवाला और मङ्गलकारी था—'**न तु शीतं न चोष्णं च सर्वर्तुसुखदं शुभम्**'। रावण अहंकारकी अधिकतासे ऐसा मानने लगा कि मैंने त्रैलोक्यको अपने पराक्रमसे जीत लिया। इस प्रकार अत्यन्त दुर्बुद्धि रावण कुबेरको पराजित करके कैलाससे नीचे उतरा—

जितं त्रिभुवनं मेने दर्पोत्सेकात्सुदुर्मतिः।
जित्वा वैश्रवणं देवं कैलासात्समवातरत्॥

(७। १५। ४३)

रावण पुष्पकविमानपर अपने साथियोंके साथ चढ़कर विश्वविजयके लिये जा रहा था कि अचानक उसका विमान रुक गया। वहाँपर उसने भगवान् शङ्करके पार्षद नन्दीश्वरको देखा जो देखनेमें बड़े विकराल थे। नन्दीने निःशङ्क होकर रावणसे कहा—हे दशग्रीव लौट जाओ। इस पर्वतपर भगवान् भवानीपति क्रीडा करते हैं। रावणने नन्दीश्वरका अपमान कर दिया। उन्हें देखकर वह ठहाका मारकर हँसने लगा। श्रीनन्दीश्वर रावणसे बोले—हे दशग्रीव! तुमने वानररूपमें देखकर मेरी अवहेलना की है, हँसी उड़ायी है; अतः तुम्हारे कुलका सर्वनाश करनेके लिये मेरे ही समान पराक्रम, रूप और तेजसे सम्पन्न वानर उत्पन्न होंगे—

यस्माद् वानररूपं मामवज्ञाय दशानन।
अशनीपातसंकाशमपहासं प्रमुक्तवान्॥
तस्मान्मद्वीर्यसंयुक्ता मद्रूपसमतेजसः।
उत्पत्स्यन्ति वधार्थं हि कुलस्य तव वानराः॥

(७। १६। १६-१७)

महात्मा नन्दीके इतना कहते ही देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। परंतु महाबलवान् दशाननने नन्दीके शापकी चिन्ता न करके पर्वतके निकट जाकर कहा—हे पशुपते! तुम्हारे जिस पर्वतके कारण मेरी यात्रामें अवरोध उत्पन्न हो गया है उसे मैं जड़से उखाड़ फेंकता हूँ। इतना कहकर रावणने पर्वतको उखाड़नेके लिये अपनी भुजाएँ लगायीं। पर्वत हिलने लगा, श्रीशङ्करके सारे गण काँप उठे। श्रीगौरीदेवी भी विचलित होकर श्रीशङ्करजीसे लिपट गयीं। हे श्रीराम! उस समय महादेवजीने उस पर्वतको अपने पैरके अँगूठेसे दबा दिया, परिणामस्वरूप रावणकी भुजाएँ पहाड़के नीचे दब गयीं। उसकी बाँहोंमें पीड़ा होने लगी और वह जोरसे रोने लगा, जिससे त्रैलोक्य प्रकम्पित हो गया। तदनन्तर रावणने अपने मन्त्रियोंके परामर्शसे भगवान् शङ्करकी स्तुति की। रावणकी स्तुतिसे आशुतोष भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो गये। दशग्रीवकी भुजाओंको संकटसे मुक्त करके रावणसे कहा—हे दशग्रीव! तुम वीर हो। मैं तुम्हारे शौर्यसे प्रसन्न हूँ। दारुण पहाड़से दब जानेके

कारण तुमने जो सुदारुण राव किया था—आर्तनाद किया था उससे भयभीत होकर तीनों लोकोंके प्राणी रो उठे थे, अतः हे राक्षसेन्द्र! अब तुम रावणके नामसे प्रसिद्ध हो जाओगे—

तस्मात्त्वं रावणो नाम नाम्ना राजन् भविष्यसि॥

(७। १६। ३७)

भगवान्‌ने प्रसन्न होकर उसे चन्द्रहास नामका खड्ग दिया—

ददौ खड्गं महादीप्तं चन्द्रहासमिति श्रुतम्।

(७। १६। ४४)

इसके पश्चात् रावण पुष्पकविमानपर चढ़कर विजयके लिये परिभ्रमण करने लगा। हिमालयके वनमें उसने एक कन्याको तपस्या करते देखकर पूछा—हे भद्रे! इस युवावस्थामें रूपवती होकर तुम तपस्या क्यों कर रही हो? तुम किसकी पुत्री हो? कौन-सा व्रत कर रही हो? रावणके प्रश्नका कन्याने उत्तर दिया—बृहस्पतिके समान मेधावी बृहस्पतिपुत्र कुशध्वजकी मैं पुत्री हूँ, मेरा नाम वेदवती है। मैं भगवान् नारायणको पति बनानेके लिये तपस्या कर रही हूँ। वे ही मेरे पति हैं, उन पुरुषोत्तमके अतिरिक्त अन्य मेरा पति नहीं हो सकता। उन्हींको प्राप्त करनेके लिये मैं कठोर व्रत-नियम कर रही हूँ—

नारायणो मम पतिर्न त्वन्यः पुरुषोत्तमात्।
आश्रये नियमं घोरं नारायणपरीप्सया॥

(७। १७। १८)

रावणने कामातुर होकर वेदवतीका केश पकड़ लिया। वेदवतीने क्रुद्ध होकर अपने हाथसे उन केशोंको काट दिया। उस समय उसके हाथ तलवारके समान हो गये।

वेदवती क्रोधसे प्रज्वलित-सी हो उठी, उसने रावणसे कहा—अरे नीच राक्षस! तूने मेरा तिरस्कार किया है, अतः मैं तेरे देखते-देखते अग्निमें प्रविष्ट हो जाऊँगी। तेरे वध करनेके लिये मैं पुनः उत्पन्न होऊँगी—

तस्मात्तव वधार्थं हि समुत्पत्स्ये ह्यहं पुनः।

(७। १७। ३२)

ऐसा कहकर वेदवती जाज्वल्यमान अग्निमें समा गयी। उस समय चारों ओर आकाशसे दिव्य पुष्पवृष्टि होने लगी।

श्रीअगस्त्यने कहा—हे श्रीराम! वेदवतीके अग्निमें प्रवेश कर जानेपर रावण पुष्पकारूढ़ होकर पृथ्वीपर परिभ्रमण करने लगा—

प्रविष्टायां हुताशं तु वेदवत्यां स रावणः।
पुष्पकं तु समारुह्य परिचक्राम मेदिनीम्॥

(७। १८। १)

उसी यात्रामें रावण उशीरबीज नामक देशमें गया। वहाँ उसने देखा कि राजा मरुत्त यज्ञ कर रहे हैं। साक्षात् बृहस्पतिके भाई अङ्गिरा-नन्दन संवर्त सब देवताओंके साथ वह यज्ञ करा रहे थे—

संवर्तो नाम ब्रह्मर्षिः साक्षाद् भ्राता बृहस्पतेः।
याजयामास धर्मज्ञः सर्वैर्देवगणैर्वृतः॥

(७। १८। ३)

रावणको देखकर उसके आक्रमणसे भयभीत हो देवतालोग तिर्यग्योनिमें प्रविष्ट हो गये। इन्द्र मयूर, धर्मराज काक, कुबेर गिरगिट और वरुण हंस हो गये—

इन्द्रो मयूरः संवृत्तो धर्मराजस्तु वायसः।
कृकलासो धनाध्यक्षो हंसश्च वरुणोऽभवत्॥

(७। १८। ५)

रावणके ललकारनेपर राजा मरुत्त धनुष-बाण लेकर रोषके साथ युद्धके लिये निकले; परंतु महर्षि संवर्तने उनसे कहा—तुम्हारे लिये युद्ध करना उचित नहीं है। अपने आचार्यकी इस आज्ञासे राजा मरुत्त युद्धसे निवृत्त हो गये। धनुष-

बाण छोड़कर यज्ञके लिये उन्मुख हो गये—

स निवृत्तो गुरोर्वाक्यान्मरुत्तः पृथिवीपतिः।
विसृज्य सशरं चापं स्वस्थो मखमुखोऽभवत्॥

(७। १८। १८)

रावण उस यज्ञमें बैठे मुनियोंको खाकर उनका रक्तपान करके पृथ्वीपर विचरण करने लगा।

इन्द्रादि देवताओंने उन-उन पक्षियोंको वरदान दिया, जिन-जिन पक्षियोंके शरीरका आश्रय लेकर अपनेको बचाया था।

रावण दिग्विजय करता हुआ भूमण्डलके नरेन्द्रोंसे विजयपत्र लिखाता हुआ श्रीअयोध्या आया। तत्कालीन राजा अनरण्यसे रावणका घोर संग्राम हुआ, जिस प्रकार सिंहको देखकर मृग भाग जाते हैं, उसी प्रकार रावणके प्रधानमन्त्री एवं पराक्रमी वीर मारीच, शुक, सारण तथा प्रहस्त ये चारों अनरण्यसे पराजित होकर भाग गये; परंतु अन्तमें राजा अनरण्य नीचे गिर पड़े। उस समय रावण अपने बलकी श्लाघा करने लगा। श्रीअनरण्यने कहा—अरे राक्षस! तू आत्मप्रशंसा कर रहा है; परंतु मेरे पराजित होनेमें काल ही कारण है। वास्तवमें कालने ही मुझे मारा है। अरे रावण! तू तो निमित्तमात्र ही मुझे प्रतीत होता है। राजेन्द्र अनरण्यने कहा—अरे राक्षस! यदि मैंने दान, पुण्य, होम और तप किये हों, यदि मैंने धर्मानुसार प्रजापालन किया हो तो मेरी बात सत्य हो। महात्मा इक्ष्वाकुके इस पावन वंशमें दशरथनन्दन श्रीराम प्रकट होंगे, जो तुम्हारे प्राणोंका हरण करेंगे। राजाके शाप देते ही देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और पुष्पवृष्टि होने लगी—

उत्पत्स्यते कुले ह्यस्मिन्निक्ष्वाकूणां महात्मनाम्।
रामो दाशरथिर्नाम स ते प्राणान् हरिष्यति॥
ततो जलधरोदग्रस्ताडितो देवदुन्दुभिः।
तस्मिन्नुदाहृते शापे पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता॥

(७। १९। ३०-३१)

इसके बाद रावणने पुष्पकविमानसे यात्रा करते समय मेघोंके बीचमें श्रीनारदजीका दर्शन किया। रावणने अभिवादन करके कुशल-प्रश्न करके और मुनिके आनेका कारण पूछा। श्रीनारदने कहा—हे राक्षसेन्द्र रावण! मैं तुम्हारी ऊर्जित शक्तिसे बहुत प्रसन्न हूँ। हे तात! तुम तो देवताओंसे भी अवध्य हो, फिर भूलोकके प्राणियोंका वध क्यों कर रहे हो? यहाँके प्राणी तो मृत्युके वशमें होनेके कारण स्वयं ही मरे हुए हैं—

किमयं वध्यते तात त्वयावध्येन दैवतैः।
हत एव ह्ययं लोको यदा मृत्युवशं गतः॥

(७। २०। ७)

श्रीनारदने कहा—यदि तुममें सामर्थ्य हो तो यमराजको अपने वशमें करो। रावणने कहा—हे देवर्षे! प्राणियोंको मौतका कष्ट देनेवाले सूर्यपुत्र यमराजको मैं स्वयं ही मृत्युसे संयुक्त कर दूँगा। ऐसा कहकर मुनि नारदको प्रणाम करके वह दक्षिण दिशाकी ओर चल दिया—

प्राणिसंक्लेशकर्तारं योजयिष्यामि मृत्युना।
एवमुक्त्वा दशग्रीवो मुनिं तमभिवाद्य च॥

(७। २०। २६)

श्रीनारदजीने सोचा कि इस युद्धको मैं भी देखूँगा। रावणके आक्रमणका समाचार देनेके लिये लघुविक्रम श्रीनारद यमलोकमें गये—

एवं सञ्चिन्त्य विप्रेन्द्रो जगाम लघुविक्रमः।
आख्यातुं तद् यथावृत्तं यमस्य सदनं प्रति॥

(७। २१। १)

श्रीयमराजके पास पहुँचकर श्रीनारद बोले—हे पितृराज! मैं एक आवश्यक बात बता रहा हूँ, आप उसे सुनकर उसके प्रतीकारकी कोई युक्ति कर लें। यद्यपि आप सुदुर्जय हैं तथापि दशग्रीव

नामक राक्षस अपने पराक्रमोंसे आपको स्वाधीन करनेके लिये यहाँ आ रहा है—

अब्रवीत्तु तदा वाक्यं नारदो भगवानृषिः।
श्रूयतामभिधास्यामि विधानं च विधीयताम्॥
एष नाम्ना दशग्रीवः पितृराज निशाचरः।
उपयाति वशं नेतुं विक्रमैस्त्वां सुदुर्जयम्॥

(७। २१। ५-६)

इस प्रकार बातें हो रही थीं कि पुष्पकारूढ़ रावण आ गया। आते ही रावणने अपने पापकर्मोंके कारण यातना भोगनेवाले प्राणियोंको अपने पराक्रमद्वारा बलपूर्वक मुक्त कर दिया—

ददर्श स महाबाहू रावणो राक्षसाधिपः।
ततस्तान् भिद्यमानांश्च कर्मभिर्दुष्कृतैः स्वकैः॥
रावणो मोचयामास विक्रमेण बलाद् बली।
प्राणिनो मोक्षितास्तेन दशग्रीवेण रक्षसा॥

(७। २१। २१-२२)

रावण और यमराजका भयंकर संग्राम हुआ। अन्तमें जब यमराज कालदण्डके द्वारा रावणका वध करनेके लिये प्रस्तुत हुए तब साक्षात् ब्रह्माजी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने दर्शन देकर कहा—मैंने इसे देवताओंके द्वारा न मरनेका वरदान दिया है। उसे तुम्हें असत्य नहीं करना चाहिये—

वैवस्वत महाबाहो न खल्वमितविक्रम।
न हन्तव्यस्त्वयैतेन दण्डेनैष निशाचरः॥
वरः खलु मयैतस्मै दत्तस्त्रिदशपुङ्गव।
स त्वया नानृतः कार्यो यन्मया व्याहृतं वचः॥

(७। २२। ३९-४०)

यमराज ब्रह्माजीकी बात सुनकर रथ और घोड़ोंसहित वहीं अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार यमराजको जीतकर अपने नामकी घोषणा करके दशग्रीव रावण पुष्पकारूढ़ होकर यमलोकसे चला गया—'**आरुह्य पुष्पकं भूयो निष्क्रान्तो यमसादनात्**'॥

उसके पश्चात् नागराज वासुकिद्वारा पालित भोगवतीपुरीमें प्रवेश करके रावणने नागोंको स्वाधीन कर लिया—

स तु भोगवतीं गत्वा पुरीं वासुकिपालिताम्।
कृत्वा नागान् वशे हृष्टो ययौ मणिमयीं पुरीम्॥

(७। २३। ५)

तदनन्तर रावणका निवातकवचोंसे भयंकर युद्ध हुआ। श्रीब्रह्माजीने आकर दोनोंमें मित्रता करा दी। तत्पश्चात् कालकेय दानवोंसे युद्ध करके उनका संहार करके अपने बहनोई शूर्पणखाके पति विद्युज्जिह्वको भी खड्‌गसे काट डाला—

शूर्पणख्याश्च भर्तारमसिना प्राच्छिनत्तदा।
श्यालं च बलवन्तं च विद्युज्जिह्वं बलोत्कटम्॥

(७। २३। १८)

तदनन्तर वरुणलोकमें जाकर रावणने वरुण-पुत्रोंसे भयानक युद्ध किया। अन्तमें वरुणपुत्रोंको पराजित करके रावण वरुणालयसे लङ्का चला गया।

रावण जिस कन्या अथवा स्त्रीको दर्शनीय—सुन्दर देखता था उसके रक्षक बन्धुजनोंको मारकर उस कन्याको पुष्पकमें बिठा लेता था—

दर्शनीयां हि यां रक्षः कन्यां स्त्रीं वाथ पश्यति।
हत्वा बन्धुजनं तस्या विमाने तां रुरोध सः॥

(७। २४। २)

इस प्रकार उसने अनेक नरेशों, ऋषियों, देवताओं, दानवों, नागों, राक्षसों, असुरों और यक्षोंकी कन्याओंको हरकर विमानपर चढ़ा लिया।

देव जच्छ गंधर्ब नर किंनर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुंदर बर नारि॥

(रा०च०मा० १। १८२ (ख))

उन कन्याओंने अनेक प्रकारसे करुण क्रन्दन किया।

लङ्कामें रावणके आनेपर सब समाचार

सुनके शूर्पणखाने क्रन्दन करते हुए उसे उपालम्भ दिया। रावणने उसे बहुत समझाया और कहा— मैं तुम्हें दान, मान और अनुग्रहद्वारा यत्नपूर्वक संतुष्ट करूँगा—

दानमानप्रसादैस्त्वां तोषयिष्यामि यत्नतः।

(७। २४। ३३)

हे बहन! मुझसे प्रमाद हो गया, मैं जामाताको पहचान नहीं सका, क्योंकि मैं रणोन्मत्त होकर प्रहार कर रहा था, मुझे क्षमा करो। रावणने शूर्पणखाको खरके संरक्षणमें दण्डकारण्य भेज दिया और कहा कि हे शूर्पणखे! यह महान् शूर खर सदा तुम्हारी आज्ञाका पालन करेगा—

'तत्र ते वचनं शूरः करिष्यति सदा खरः'॥

श्रीशुक्राचार्यके आचार्यत्वमें मेघनादने कृष्ण मृगचर्म, कमण्डलु, शिखा और ध्वज आदि धारण करके बड़े-बड़े अनुष्ठान निकुम्भिलामें सम्पन्न किये। उनमें अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध, वैष्णव तथा माहेश्वर यज्ञ सम्पन्न किये। इन अनुष्ठानोंसे उसे बड़ी-बड़ी उपलब्धियाँ हुईं। परंतु रावण इन यज्ञोंसे बहुत प्रसन्न नहीं हुआ। उसने कहा—हे मेघनाद! तुमने यह शोभन कार्य नहीं किया है; क्योंकि इन यज्ञोंके द्वारा मेरे शत्रु इन्द्रादिका पूजन हुआ है—

ततोऽब्रवीद् दशग्रीवो न शोभनमिदं कृतम्।
पूजिताः शत्रवो यस्माद् द्रव्यैरिन्द्रपुरोगमाः॥

(७। २५। १४)

विभीषणने रावणसे कहा—हे महाराज! इन अनाथा अबलाओंके बन्धु-बान्धवोंका वध करके आपने इनका हरण किया है। इधर मधु नामक दैत्यने आपका अतिक्रमण करके—आपकी चिन्ता न करके माल्यवान् नानाकी दौहित्री हमारी मौसेरी बहन कुम्भीनसीका अपहरण कर लिया है—

ज्ञातींस्तान् धर्षयित्वेमास्त्वयाऽऽनीता वराङ्गनाः।
त्वामतिक्रम्य मधुना राजन् कुम्भीनसी हृता॥

(७। २५। १९)

रावण सुनकर राक्षसोंकी बहुत बड़ी सेना लेकर मधुका वध करने गया। परंतु कुम्भीनसीने भयभीत होकर हाथ जोड़कर राक्षसेन्द्र रावणके चरणोंपर मस्तक रख दिया और प्रार्थना की, मेरे पतिका वध न कीजिये। रावणने कहा कि तुम्हारे प्रति करुणा और सौहार्दके कारण मैंने मधुके वधका विचार छोड़ दिया है—

तव कारुण्यसौहार्दान्निवृत्तोऽस्मि मधोर्वधात्।

(७। २५। ४६)

मधुको भी अपनी सेनामें मिलाकर जगत्-विजयके लिये चल पड़ा।

सूर्यास्त होनेके कारण रावणने अपनी सेना-के साथ कैलास पर्वतपर ही रातमें ठहरना उचित समझा—

स तु तत्र दशग्रीवः सह सैन्येन वीर्यवान्।
अस्तं प्राप्ते दिनकरे निवासं समरोचयत्॥

(७। २६। १)

वहींपर सेनाके सहित छावनी डाल दी। रात्रिमें निर्मल चन्द्रोदय हो गया और नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित राक्षसोंकी विशाल सेना गम्भीर निद्रामें निमग्न हो गयी। परंतु रावण पर्वतके शिखरपर चुपचाप बैठकर उस पर्वतकी नैसर्गिक छटा निहारने लगा। इसी समय समस्त अप्सराओंमें श्रेष्ठ सुन्दरी पूर्णचन्द्रमुखी रम्भा उस मार्गसे आ निकली। उसके अङ्गोंमें दिव्य चन्दनका अनुलेप लगा था, नीली साड़ीसे अपने अङ्गोंको ढँके हुए थी। वह सेनाके बीचसे होकर जा रही थी, अतः उसे रावणने देख लिया। देखते ही मदनशरसे व्यथित होकर रावणने रम्भाका हाथ पकड़ लिया। रम्भाने कहा—आप मेरे पितृतुल्य

हैं, आपको मेरी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि मैं आपके बड़े भाईके पुत्र नलकूबरकी प्रेयसी हूँ। मैं उन्हींके पास जा रही हूँ। मेरा यह शृङ्गार उन्हींके लिये है। रावणने कहा—हे रम्भे! अप्सराओंका कोई पति नहीं होता है। रावणने रम्भाके साथ बलपूर्वक उपभोग किया। तदनन्तर रम्भाको छोड़ दिया। रम्भाने नलकूबरके पास जाकर रोते हुए सब कुछ बता दिया। सुनकर नलकूबरके नेत्र क्रोधसे रक्त हो गये। उन्होंने हाथमें जल लेकर यथाविधि आचमन करके रावणको भयंकर शाप दिया—

गृहीत्वा सलिलं सर्वमुपस्पृश्य यथाविधि॥
उत्ससर्ज तदा शापं राक्षसेन्द्राय दारुणम्।

(७।२६।५३-५४)

यदि रावण आजसे कामार्त्त होकर अकामा युवतीपर बलात्कार करेगा तो तत्काल उसके मस्तकके सात टुकड़े हो जायेंगे—

यदा ह्यकामां कामार्तो धर्षयिष्यति योषितम्॥
मूर्द्धा तु सप्तधा तस्य शकलीभविता तदा।

(७।२६।५५-५६)

इस शापके निकलते ही देवताओंने दुन्दुभियाँ बजायीं और आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी।

उस रोमाञ्चकारी शापको सुनकर रावणने अकामा स्त्रियोंके साथ बलात्कार करना छोड़ दिया—'**नारीषु मैथुनीभावं नाकामास्वभ्यरोचयत्**'॥

रावण अपनी सेनाओंके साथ इन्द्रलोकमें पहुँच गया। इन्द्रने जब सुना तब देवताओंसे कहा—हे आदित्यो! हे वसुओ! हे रुद्रो! हे साध्यो, हे मरुद्गणो! आप सब लोग दुरात्मा रावणसे संग्राम करनेके लिये प्रस्तुत हो जाओ।

आदित्यांश्च वसून् रुद्रान् साध्यांश्च समरुद्गणान्।
सज्जा भवत युद्धार्थं रावणस्य दुरात्मनः॥

(७।२७।४)

इसी समय इन्द्र विष्णुभगवान्‌के पास गये। भगवान्‌से रावणका वध करनेकी प्रार्थना की। भगवान्‌ने कहा—हे महेन्द्र! इसके मरनेका अभी समय नहीं है; परंतु मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि समय आनेपर मैं ही इस राक्षसकी मृत्युका कारण बनूँगा—

प्रतिजाने च देवेन्द्र त्वत्समीपे शतक्रतो।
भवितास्मि यथास्याहं रक्षसो मृत्युकारणम्॥

(७।२७।१९)

देवताओं और राक्षसोंका भयंकर समर आरम्भ हो गया। इसी समय रावणके मन्त्री, शूर-वीर राक्षस जो बड़े भयंकर आकृतिवाले थे, युद्धके लिये आगे बढ़े—

एतस्मिन्नन्तरे शूरा राक्षसा घोरदर्शनाः।
युद्धार्थं समवर्तन्त सचिवा रावणस्य ते॥

(७।२७।२७)

इस संग्राममें रावणके मातुःपिता—नानाने—सुमालीने बड़ा भयंकर युद्ध किया। उसके सामने देवता खड़े नहीं रह सके। देवताओंका पलायन देखकर आठवें वसु सावित्रको महान् क्रोध हुआ। सुमाली और सावित्र वसुका रोमाञ्चक युद्ध होने लगा। अन्तमें सावित्र वसुकी एक भयंकर गदाकी चोटने सुमालीका काम तमाम कर दिया। सुमालीके मारे जानेपर सब राक्षस चारों ओर भाग खड़े हुए।

अपनी सेनाको लौटाकर समराङ्गणमें लड़नेके लिये मेघनाद स्वयं आ गया। इन्द्रपुत्र जयन्तका और मेघनादका युद्ध होने लगा। इसी बीच जयन्तका नाना पुलोमा उसको लेकर भाग गया और समुद्रमें प्रविष्ट हो गया—

संगृह्य तं तु दौहित्रं प्रविष्टः सागरं तदा।
आर्यकः स हि तस्यासीत् पुलोमा येन सा शची॥

(७।२८।२०)

तदनन्तर इन्द्र और रावणमें भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया। उस युद्धमें राक्षसोंकी सेनाका भयंकर संहार हुआ। राक्षसोंकी सेनाका दसवाँ भाग ही शेष बचा और सब राक्षसोंको देवताओंकी सेनाने यमलोक पहुँचा दिया—

ततस्तु देवसैन्येन राक्षसानां बृहद् बलम्।
दशांशं स्थापितं युद्धे शेषं नीतं यमक्षयम्॥

(७। २९। २)

जब रावणने देखा कि मेरी सारी सेना क्षणभरमें मारी गयी, तब उसको बहुत क्रोध हुआ और उसने भयंकर गर्जना की। रावणको इन्द्रके चंगुलमें फँसा हुआ देखकर दानवों और राक्षसोंने 'हाय हम मारे गये' ऐसे कहकर भयंकर आर्तनाद किया—

एतस्मिन्नन्तरे नादो मुक्तो दानवराक्षसैः।
हा हताः स्म इति ग्रस्तं दृष्ट्वा शक्रेण रावणम्॥

(७। २९। २१)

उस समय मेघनादने आकर मायायुद्ध आरम्भ कर दिया। वह अदृश्य होकर युद्ध करने लगा। बाणोंसे एवं अन्य आयुधोंसे मार-मारकर इन्द्रके शरीरको जर्जर कर दिया। मेघनादको जब भलीभाँति ज्ञात हो गया कि इन्द्र बहुत थक गये हैं, तब उन्हें मायासे बाँधकर अपनी सेनामें ले आया—

स तं यदा परिश्रान्तमिन्द्रं जज्ञेऽथ रावणिः।
तदैनं मायया बद्ध्वा स्वसैन्यमभितोऽनयत्॥

(७।२९।२९)

रावणने कहा—हे पुत्र! तुमने अपने पराक्रमसे आज अनुपम बलवान् इन्द्रको पराजित कर दिया है। इससे यह ज्ञात हो गया कि तुम मेरे कुल और वंशके यश और सम्मानकी वृद्धि करनेवाले हो—

अतिबलसदृशैः पराक्रमैस्त्वं
मम कुलवंशविवर्धनः प्रभो।
यदयमतुल्यबलस्त्वयाद्य वै
त्रिदशपतिस्त्रिदशाश्च निर्जिताः॥

(७। २९। ४०)

श्रीअगस्त्यजी कहते हैं—हे श्रीराम! रावणपुत्र मेघनाद महाबलवान् देवेन्द्रको जीतकर जब लङ्का ले गया तब ब्रह्माके नेतृत्वमें समस्त देवता लङ्का गये—

जिते महेन्द्रेऽतिबले रावणस्य सुतेन वै।
प्रजापतिं पुरस्कृत्य ययुर्लङ्कां सुरास्तदा॥

(७। ३०। १)

ब्रह्माजीने आकाशमें खड़े-खड़े ही रावणसे कहा—हे वत्स रावण! तुम्हारे पुत्रकी वीरतासे मैं अति प्रसन्न हूँ। तुम्हारा यह पुत्र अत्यन्त बलवान् एवं पराक्रमी है। आजसे यह जगत्में 'इन्द्रजित्' के नामसे परिख्यात होगा—

अयं च पुत्रोऽतिबलस्तव रावण वीर्यवान्।
जगतीन्द्रजिदित्येव परिख्यातो भविष्यति॥

(७। ३०। ५)

हे महाबाहो! अब तुम इन्द्रको मुक्त कर दो। इन्द्रकी मुक्तिके विनिमयमें तुम्हें क्या प्रदान किया जाय यह बताओ—

तन्मुच्यतां महाबाहो महेन्द्रः पाकशासनः।
किं चास्य मोक्षणार्थाय प्रयच्छन्तु दिवौकसः॥

(७। ३०। ७)

यह सुनकर स्वयं मेघनादने कहा—हे देव! यदि इन्द्रको छोड़ना है तो इसके विनिमयमें मैं अमरत्व लेना चाहता हूँ—

अथाब्रवीन्महातेजा इन्द्रजित् समितिंजयः।
अमरत्वमहं देव वृणे यद्येष मुच्यते॥

(७। ३०। ८)

श्रीब्रह्माने कहा—अमरत्वका वरदान असम्भव है। तब मेघनादने कहा—हे भगवन्! यदि अमरत्व असम्भव है तो इन्द्रकी मुक्तिके बदले जो

दूसरी सिद्धि मुझे अभीष्ट है उसे सुनें। जब मैं संग्राममें उतरना चाहूँ और मन्त्रयुक्त हव्यकी आहुतिसे अग्निदेवका पूजन करूँ, उस समय अग्निसे दो घोड़ोंसे जुता हुआ एक रथ प्रकट हो जाया करे और उसपर जबतक मैं बैठा रहूँ तबतक मुझे कोई मार न सके। यही मेरा निश्चित वर है—

अश्वयुक्तो रथो मह्यमुत्तिष्ठेत्तु विभावसोः।
तत्स्थस्यामरता स्यान्मे एष मे निश्चितो वरः॥

(७। ३०। १३)

यदि युद्धके निमित्त किये जानेवाले जप और होमको पूर्ण किये बिना ही मैं युद्ध करने लगूँ तभी मेरा विनाश हो—

तस्मिन्यद्यसमाप्ते च जप्यहोमे विभावसौ।
युध्येयं देव संग्रामे तदा मे स्याद् विनाशनम्॥

(७। ३०। १४)

श्रीब्रह्माजीने 'एवमस्तु' कहा। तदनन्तर इन्द्रजित्‌ने इन्द्रको मुक्त कर दिया और समस्त देवता उन्हें लेकर स्वर्गलोक चले गये—

एवमस्त्विति तं चाह वाक्यं देवः पितामहः।
मुक्तश्चेन्द्रजिता शक्रो गताश्च त्रिदिवं सुराः॥

(७। ३०। १६)

अपनी पराजयसे खिन्न इन्द्रको ब्रह्माजीने बताया कि पूर्वकालमें मैंने एक नारीकी सृष्टि की। उसका नाम अहल्या था। 'हल' कहते हैं रूपहीनताको। उससे जो निन्दनीयता होती है उसका नाम 'हल्य' है। 'हल्य' से विहीन नारी अहल्या पदवाच्य है, एतावता वह नवनिर्मित नारी 'अहल्या' नामसे विख्यात हुई—

ततो मया रूपगुणैरहल्या स्त्री विनिर्मिता।
हलं नामेह वैरूप्यं हल्यं तत्प्रभवं भवेत्॥
यस्या न विद्यते हल्यं तेनाहल्येति विश्रुता।
अहल्येत्येव च मया तस्या नाम प्रकीर्तितम्॥

(७। ३०। २२-२३)

हे इन्द्र! मैंने उस अहल्याका विवाह इन्द्रियसंयमकी परीक्षा करके गौतमके साथ कर दिया।

हे इन्द्र! तुमने कामसे पीड़ित होकर अहल्याके साथ बलात्कार किया। उस समय महान् ऋषि गौतमने अपने आश्रममें तुम्हें देख लिया—

सा त्वया धर्षिता शक्र कामार्तेन समन्युना।
दृष्टस्त्वं स तदा तेन आश्रमे परमर्षिणा॥

(७। ३०। ३०)

गौतम मुनिने तुम्हें शाप दिया—हे शक्र! तुमने भय और लज्जाका परित्याग करके मेरी पत्नीको धर्षित किया है; अतः हे वासव! तुम युद्धमें शत्रुके हाथमें पड़कर पराभूत हो जाओगे—

यस्मान्मे धर्षिता पत्नी त्वया वासव निर्भयात्।
तस्मात्त्वं समरे शक्र शत्रुहस्तं गमिष्यसि॥

(७। ३०। ३२)

श्रीब्रह्माने कहा—हे महेन्द्र! अब तुम वैष्णव याग करो, चिन्ता न करो। तुम्हारा पुत्र जयन्त अपने नाना पुलोमाके पास सुरक्षित है। देवराज इन्द्र वैष्णव याग करके स्वर्गलोक चले गये।

श्रीअगस्त्यने कहा—हे श्रीराम! यह है इन्द्रजित् मेघनादका बल, जिसका मैंने आपसे वर्णन किया है—

एतदिन्द्रजितो नाम बलं यत् कीर्तितं मया॥

(७। ३०। ५०)

श्रीअगस्त्यजीके मुखसे यह कथा सुनकर सबको महान् आश्चर्य हुआ।

श्रीरामजीने अगस्त्य मुनिसे पूछा—हे भगवन्! क्या उन दिनों कोई क्षत्रिय नरेश अथवा क्षत्रियेतर राजा अधिक बलसम्पन्न नहीं था, जिससे राक्षसेश्वर रावणको धर्षित होना नहीं पड़ा—

राजा वा राजमात्रो वा किं तदा नात्र कश्चन।

धर्षणं यत्र न प्राप्तो रावणो राक्षसेश्वरः॥

(७। ३१। ३)

श्रीअगस्त्यने पुनः कथा आरम्भ की—हे श्रीरघुनन्दन एक माहिष्मती नामकी नगरी थी, जहाँपर अग्नितुल्य तेजस्वी अर्जुन नामका राजा राज्य करता था। एक दिन दिग्विजयकी यात्रा करते हुए रावण पहुँचा। उसी समय अर्जुन अपनी पत्नियोंके साथ नर्मदा नदीमें जलविहार करने चला गया था—

तमेव दिवसं सोऽथ हैहयाधिपतिर्बली।
अर्जुनो नर्मदां रन्तुं गतः स्त्रीभिः सहेश्वरः॥

(७। ३१। ९)

रावण मन्त्रियोंके द्वारा समाचार जानकर नर्मदा तटपर आया। स्नान करके स्वर्णनिर्मित शिवलिङ्गका पूजन करने लगा। यह स्वर्णमय शिवलिङ्ग रावणके साथ हमेशा रहता था। रावणने बालूकी वेदीपर उस शिवलिङ्गको स्थापित कर दिया और चन्दन तथा सुगन्धित पुष्पोंसे पूजन किया—

वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः।
अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः॥

(७। ३१। ४३)

जहाँ यह पूजन कर रहा था वहीं थोड़ी दूरपर राजा अर्जुन जलक्रीडा कर रहा था। उसने अपनी बहुसंख्यक भुजाओंद्वारा नर्मदाका वेग रोक दिया। जलका वह वेग, जिसे मानो सहस्रार्जुनने ही भेजा हो, रावणके समस्त पुष्पोपहारको—पूजन सामग्रीको बहा ले गया—

स वेगः कार्तवीर्येण सम्प्रेषित इवाम्भसः।
पुष्पोपहारं सकलं रावणस्य जहार ह॥

(७। ३२। ७)

रावणने पता लगानेके लिये कहा। रावणके मन्त्री शुक और सारणने आकर सब समाचार सुना दिया। अब तो रावण क्रुद्ध होकर युद्धकी लालसासे वीरोंको साथमें लेकर चल दिया। सहस्रार्जुन और रावणका भयंकर समर हुआ, युद्धमें अर्जुन और रावण दोनों थकते ही नहीं थे—

नार्जुनः खेदमायाति न राक्षसगणेश्वरः।
सममासीत्तयोर्युद्धं यथा पूर्वं बलीन्द्रयोः॥

(७। ३२। ५८)

अन्तमें कार्तवीर्य अर्जुनने कुपित होकर पूरी शक्तिसे रावणके वक्ष:स्थलमें गदाका प्रहार किया—

ततोऽर्जुनेन क्रुद्धेन सर्वप्राणेन सा गदा।
स्तनयोरन्तरे मुक्ता रावणस्य महोरसि॥

(७। ३२। ६०)

रावण आर्त्तनाद करता हुआ बैठ गया। सहस्रार्जुनने बड़े लाघवसे रावणको पकड़कर मजबूत रस्सोंसे बाँध दिया। रावणके बाँधे जानेपर सिद्ध, चारण, देवता साधु-साधु कहकर सहस्रार्जुनके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा करने लगे—

बध्यमाने दशग्रीवे सिद्धचारणदेवताः।
साध्वीति वादिनः पुष्पैः किरन्त्यर्जुनमूर्धनि॥

(७। ३२। ६५)

रावणको पकड़ लेना वायुको पकड़नेके समान था। धीरे-धीरे यह बात स्वर्गमें देवताओंके मुखसे महात्मा पुलस्त्यजीने सुनी—

रावणग्रहणं तत्तु वायुग्रहणसंनिभम्।
ततः पुलस्त्यः शुश्राव कथितं दिवि दैवतैः॥

(७। ३३। १)

संतानके प्रति होनेवाले सहज स्नेहके कारण कृपापरवश होकर पुलस्त्यजी सहस्रार्जुनकी माहिष्मती नगरीमें गये। ब्रह्मर्षि पुलस्त्यको पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क और गौ समर्पित करके राजेन्द्र अर्जुनने हर्ष गद्गद वाणीमें कहा—

स तस्य मधुपर्कं गां पाद्यमर्घ्यं निवेद्य च।

पुलस्त्यमाह राजेन्द्रो हर्षगद्गदया गिरा॥

(७। ३३। ९)

अर्जुनने कहा—आज ही मैं वास्तवमें सकुशल हूँ, आज मेरा व्रत कुशलपूर्वक पूर्ण हो गया, आज मेरा जन्म सफल हो गया और तपस्या भी सफल हो गयी—

अद्य मे कुशलं देव अद्य मे कुशलं व्रतम्।
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः॥

(७। ३३। ११)

राजेन्द्र अर्जुनने कहा—हे ब्रह्मन्! आज्ञा दें कि हम आपकी क्या सेवा करें। महर्षि पुलस्त्य अर्जुनके धर्म, अग्नि और पुत्रोंकी कुशल पूछकर बोले—हे नरेश! जिसके भयसे समुद्र और वायु भी चाञ्चल्यका परित्याग करके सेवामें उपस्थित होते हैं, उस मेरे रणदुर्जय पौत्र रावणको तुमने युद्धभूमिमें बाँध लिया; अतः तुम अतुलित बलशाली हो। हे कमलनयन नरेश! हे पूर्णचन्द्रनिभानन! तुमने मेरे पौत्रका यश पी लिया और सर्वत्र अपने नामका ढिंढोरा पीट दिया। हे वत्स! अब मेरी याचनासे तुम रावणको छोड़ दो—

नरेन्द्राम्बुजपत्राक्ष पूर्णचन्द्रनिभानन।
अतुलं ते बलं येन दशग्रीवस्त्वया जितः॥
भयाद् यस्योपतिष्ठेतां निष्पन्दौ सागरानिलौ।
सोऽयं मृधे त्वया बद्धः पौत्रो मे रणदुर्जयः॥
पुत्रकस्य यशः पीतं नाम विश्रावितं त्वया।
मद्वाक्याद्याच्यमानोऽद्य मुञ्च वत्स दशाननम्॥

(७। ३३। १४—१६)

महर्षि श्रीपुलस्त्यकी आज्ञाके विपरीत सहस्रार्जुनने कुछ नहीं कहा। प्रसन्नतापूर्वक रावणको बन्धनसे मुक्त कर दिया—

एक बहोरि सहसभुज देखा।
धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा॥
कौतुक लागि भवन लै आवा।
सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा॥

(रा०च०मा० ६। २४। १५-१६)

एक बार रावण युद्ध करनेकी इच्छासे किष्किन्धापुरीमें गया। वालिके मन्त्रियोंने तथा युवराज अंगद और सुग्रीवने कहा—वानरराज वालि संध्या करने समुद्र तटपर गये हैं, वे शीघ्र ही आ जायँगे, आप दो घड़ी उनकी प्रतीक्षा कीजिये। वे आकर सद्यः आपकी युद्धकामना पूर्ण कर देंगे। हे राक्षसराज! यदि आपने अमृतरसका पान किया हो तो भी जब आप वालिसे युद्ध करेंगे, तब वही आपके जीवनका अन्तिम क्षण होगा—

यद्वामृतरसः पीतस्त्वया रावण राक्षस।
तदा वालिनमासाद्य तदन्तं तव जीवितम्॥

(७। ३४। ८)

इतना सुनकर भी जब रावणने युद्ध करनेके लिये विशेष दुराग्रह किया तब मन्त्रियोंने कहा—हे रावण! यदि तुम जीवनसे ऊब गये हो, तुम्हारे मनमें मरनेकी तीव्र त्वरा है—बहुत जल्दी है तो तुम दक्षिण समुद्रतटपर चले जाओ '**अथवा त्वरसे मर्तुं गच्छ दक्षिणसागरम्।**' मन्त्रियोंकी बात सुनकर रावण पुष्पक-विमानपर आरूढ़ होकर दक्षिण समुद्रकी ओर चल पड़ा। वहाँ जाकर रावणने महाबली वालिको देखा, उसका मुखमण्डल प्रातःकालीन रविमण्डलकी तरह उद्भासित हो रहा था। उसका शरीर स्वर्णगिरिकी तरह ऊँचा था और चमाचम चमक रहा था। उस समय वह संध्योपासनमें तत्पर था।

तत्र हेमगिरिप्रख्यं तरुणार्कनिभाननम्।
रावणो वालिनं दृष्ट्वा संध्योपासनतत्परम्॥

(७। ३४। १२)

वालीको छलसे पकड़नेके लिये—दबोचनेके

लिये, धीरे-धीरे—शनैः-शनैः पादविन्यास करते हुए दुरात्मा रावण वालिके पास पहुँचा। उस समय वह अपने पैरोंकी आहट नहीं होने देता था—'**निःशब्दपदमव्रजत्**'। वाली उसके पापपूर्ण अभिप्रायको जान गया। ज्यों ही वह आक्रमण करनेके लिये पीछे आया, वालिने उसे पकड़ लिया और काँखमें दबा लिया। काँखमें दबाये हुए रावणको लेकर बड़े वेगसे आकाशमें उछला—

ग्रहीतुकामं तं गृह्य रक्षसामीश्वरं हरिः।
खमुत्पपात वेगेन कृत्वा कक्षावलम्बिनम्॥

(७। ३४। २१)

रावणने वालीकी पकड़से छूटनेके लिये अनेक प्रयास किये। वह नखसे चिकोटी भी काट रहा था—'**वितुदन्तं नखैर्मुहुः**', परंतु छूट नहीं पाया।

वाली अपना दैनन्दिन कर्म संध्योपासनादि सम्पन्न करके रावणको काँखमें दबाये हुए किष्किन्धा-नगरीके उपवनमें आया, रावणको काँखसे निकालकर सामने खड़ा करके उससे पूछा—'आप कैसे पधारे हैं, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' लज्जित रावणने आत्मसमर्पण किया। रावणने कहा—हे महाबली वानरेन्द्र! मैं आपसे युद्ध करनेके लिये आया था; परंतु हे वीरवर! मैंने आपका बल देख लिया। अब तो मैं अग्निकी साक्षीमें आपके साथ सुस्निग्ध सख्यकी—मित्रभावकी आकाङ्क्षा करता हूँ—

सोऽहं दृष्टबलस्तुभ्यमिच्छामि हरिपुङ्गव।
त्वया सह चिरं सख्यं सुस्निग्धं पावकाग्रतः॥

(७। ३४। ४०)

तदनन्तर दोनोंने—वालि और रावणने अग्नि प्रज्वलित करके एक-दूसरेको हृदयसे लगा करके आपसमें भ्रातृत्वका सम्बन्ध—मित्रताका सम्बन्ध स्थापित कर लिया—

ततः प्रज्वालयित्वाग्निं तावुभौ हरिराक्षसौ।
भ्रातृत्वमुपसम्पन्नौ परिष्वज्य परस्परम्॥

(७। ३४। ४२)

इस सम्बन्धको दोनोंने जीवनपर्यन्त निभाया।

यद्यपि अग्रज और अनुजने—वालि और सुग्रीव दोनोंने अग्निकी साक्षीमें ही मित्रता की है; परंतु दोनोंकी मित्रतामें और मित्रताके परिणाममें महान् अन्तर है। एकने आसुरी सम्पत्तिवाले रावणसे नाता जोड़ा है तो दूसरेने दैवी सम्पदाके परम आदर्श श्रीरामजीसे सम्बन्ध स्थापित किया है। एक मित्रताका परिणाम हुआ कि दोनोंका विनाश हो गया और दोनों जीवनपर्यन्त अशान्त वातावरणमें रहे। दूसरी मित्रताका परिणाम यह हुआ कि दोनोंको सब कुछ मिल गया, एक-दूसरेके आश्रयसे जीवनमें शाश्वती शान्ति मिली। मित्र बनानेयोग्य तो श्रीरामजी अथवा श्रीरामजीके भक्त ही हैं। श्रीरामजी यदि मित्र बन जायँ तो जीवन परमानन्द सुधासागरमें डूब जाय। चारों ओर सुख-ही-सुख , शान्ति-ही-शान्ति छा जाय।

श्रीअगस्त्यजीने भगवान् श्रीरामसे कहा—हे प्रभो! इस प्रकार यह घटना पहले घटित हो चुकी है। वालिने रावणको पराभूत किया और पुनः अग्निके सामने उसे भ्राताके रूपमें वरण किया—

एवमेतत्पुरा वृत्तं वालिना रावणः प्रभो।
धर्षितश्च वृतश्चापि भ्राता पावकसंनिधौ॥

(७। ३४। ४५)

हे श्रीराम! वालीमें अनुपम बल था; परंतु आपने उसको भी अपनी बाणाग्निसे उसी तरह भस्म कर दिया जैसे अग्नि शलभको—

बलमप्रतिमं राम वालिनोऽभवदुत्तमम्।
सोऽपि त्वया विनिर्दग्धः शलभो वह्निना यथा॥

(७। ३४। ४६)

भगवान् श्रीरामने अगस्त्यजीसे कहा—हे मुने! यद्यपि रावण और वाली अतुलित बली थे; परंतु इन दोनोंका बल भी हनुमान्‌के बलकी समता नहीं कर सकता था। मेरा ऐसा विचार है—

अतुलं बलमेतद् वै वालिनो रावणस्य च।
न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम॥

(७। ३५। २)

शौर्य, दक्षता, बल, धैर्य, प्राज्ञता, नीति, पराक्रम और प्रभाव इन समस्त सद्‌गुणोंने श्रीहनुमान्‌जीके हृदयमें निवास कर रखा है—

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः॥

(७। ३५। ३)

युद्धमें जो कर्म श्रीहनुमान्‌जीके देखे गये हैं, वैसे वीररसपूर्ण कर्म काल, इन्द्र, भगवान् विष्णु और कुबेर किसीके नहीं सुने गये—

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः॥

(७। ३५। ८)

हे महर्षे—मैंने तो श्रीहनुमान्‌जीके ही भुजबलसे विभीषणके लिये लङ्का, शत्रुओंपर विजय, राज्य, सीता, लक्ष्मण, मित्र और बन्धुजनोंको पाया है—

एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः।
प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः॥

(७। ३५। ९)

हे महर्षे! वाली और सुग्रीवके विरोधके समय, सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये श्रीहनुमान्‌ने जैसे दावानल वृक्षको जला देता है, उसी भाँति वालीको भस्म करके सुग्रीवको सुखी क्यों नहीं किया? यह मेरा सन्देह है—

किमर्थं वाली चैतेन सुग्रीवप्रियकाम्यया।
तदा वैरे समुत्पन्ने न दग्धो वीरुधो यथा॥

(७। ३५। ११)

भगवान् श्रीअगस्त्यने कहा—हे शत्रुसूदन श्रीराम! अमोघशाप मुनियोंने पहले इन्हें शाप दे दिया था कि बल रहनेपर भी इनको अपने पूर्ण बलका ज्ञान नहीं रहेगा—

अमोघशापैः शापस्तु दत्तोऽस्य मुनिभिः पुरा।
न वेत्ता हि बलं सर्वं बली सन्नरिमर्दन॥

(७। ३५। १६)

इसी सन्दर्भमें श्रीअगस्त्यने हनुमान्‌जीकी कथा आरम्भ की। वानरराज केसरीकी पत्नी अञ्जना थीं, उनके गर्भसे वायुदेवने श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न किया—

यत्र राज्यं प्रशास्त्यस्य केसरी नाम वै पिता॥
तस्य भार्या बभूवेष्टा अञ्जनेति परिश्रुता।
जनयामास तस्यां वै वायुरात्मजमुत्तमम्॥

(७। ३५। १९-२०)

एक दिन फल लेनेके लिये माता अञ्जना घने जंगलमें चली गयीं। उस समय माताके वियोगसे और क्षुधासे पीड़ित होनेके कारण बालक हनुमान् उच्चस्वरसे रोने लगे। इतनेमें ही सूर्योदय हुआ। श्रीहनुमान्‌जी उन्हें फल समझकर सूर्यकी ओर उछले। बालसूर्यकी ओर अभिमुख मूर्तिमान् बालसूर्यके समान बालक हनुमान् बालसूर्यको पकड़नेकी इच्छासे आकाशमें उड़ते चले जा रहे थे—

बालार्काभिमुखो बालो बालार्क इव मूर्तिमान्।
ग्रहीतुकामो बालार्कं प्लवतेऽम्बरमध्यगः॥

(७। ३५। २४)

श्रीहनुमान्‌जीके इस उड़ते हुए स्वरूपको देखकर देवताओं, दानवों तथा यक्षोंको महान् आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे यदि इस शिशुका सम्प्रति ऐसा वेग और पराक्रम है तो युवावस्थामें कैसा होगा?

यदि तावच्छिशोरस्य ईदृशो गतिविक्रमः।

यौवनं बलमासाद्य कथं वेगो भविष्यति॥

(७। ३५। २७)

इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जी अपने पिताके पराक्रमसे अनेक सहस्र योजन आकाशको अतिक्रमण करते हुए भगवान् भास्करके पास पहुँच गये। भगवान् दिवाकरने इनके भावी कार्यका विचार करके और बालक समझकर इन्हें दग्ध नहीं किया। जिस दिन हनुमान्‌जी सूर्यदेवके पास गये उस दिन अमावस्या तिथि थी; अतः राहु ग्रहण लगानेके लिये वहाँ उपस्थित था। श्रीहनुमान्‌जीके एक धक्केसे चन्द्रार्कमर्दन राहु भयभीत होकर भाग खड़ा हुआ—

अपक्रान्तस्ततस्त्रस्तो राहुश्चन्द्रार्कमर्दनः॥

(७। ३५। ३२)

राहुकी शिकायतपर इन्द्र ऐरावतपर चढ़कर राहुको साथमें लेकर उस स्थानपर गये जहाँ श्रीहनुमान्‌जीके साथ सूर्यदेव विराजमान थे। तब राहुको ही कोई फल समझकर उसे पकड़नेके लिये हनुमान्‌जी उछले। राहु 'इन्द्र! इन्द्र!' की पुकार मचाने लगा। तत्पश्चात् हनुमान्‌जी ऐरावतको विशाल फल समझकर उसको पकड़नेकी इच्छासे दौड़े। इन्द्रने वज्रके द्वारा प्रहार किया। इन्द्रके वज्रकी चोट खाकर श्रीहनुमान् एक पहाड़पर गिरे। इनकी बायीं ठुड्डी टूट गयी—

ततो गिरौ पपातैष इन्द्रवज्राभिताडितः।
पतमानस्य चैतस्य वामा हनुरभज्यत॥

(७। ३५। ४७)

उस समय वायु देवता रुष्ट हो गये। वायुके प्रकोपसे प्राणियोंकी श्वास बंद होने लगी—'**वायुप्रकोपाद् भूतानि निरुच्छ्वासानि सर्वतः**'। उस समय त्रैलोक्य प्रकम्पित हो उठा। तब गन्धर्व, देवता, असुर और मनुष्य सभी ब्रह्माजीके पास गये। श्रीब्रह्माने कहा—आज देवराज इन्द्रने सिंहिकाके पुत्र राहुकी बात सुनकर वायुके पुत्रको मार गिराया है। एतावता वायु क्रुद्ध हो गये हैं—

पुत्रस्तस्यामरेशेन इन्द्रेणाद्य निपातितः॥
राहोर्वचनमास्थाय ततः स कुपितोऽनिलः।

(७। ३५। ५९-६०)

तदनन्तर देवता, गन्धर्व, नाग और गुह्यक आदि प्रजाओंको साथमें लेकर श्रीब्रह्माजी वहाँ गये, जहाँ पवनदेव इन्द्रद्वारा मारे गये अपने पुत्रको लेकर उदासमुख बैठे हुए थे—

ततः प्रजाभिः सहितः प्रजापतिः
सदेवगन्धर्वभुजङ्गगुह्यकैः।
जगाम तत्रास्यति यत्र मारुतः
सुतं सुरेन्द्राभिहतं प्रगृह्य सः॥

(७। ३५। ६४)

पुत्रके मारे जानेसे वायुदेव दुःखी थे। ब्रह्माजीको देखकर वे अपने शिशुको लिये हुए उनके सामने खड़े हो गये। वायु देवता तीन बार उपस्थान करके ब्रह्माजीके चरणोंमें गिर पड़े। श्रीब्रह्माने अपने करारविन्दोंसे पवनदेवको उठाकर खड़ा किया और उनके शिशुपर भी करस्पर्श किया। जिस प्रकार जलके द्वारा सिञ्चित सूखी खेती हरी हो जाती है, उसी प्रकार पद्मसम्भव ब्रह्माके करस्पर्श होते ही शिशु जीवित हो गया—'**जलसिक्तं यथा सस्यं पुनर्जीवितमाप्तवान्**'॥ अब तो हनुमान्‌जीको प्राणवन्त देखकर जगत्‌के प्राणस्वरूप गन्धवाहन प्रसन्न हो गये। सब लोकोंकी स्थिति पूर्ववत् हो गयी। सारी प्रजा प्रसन्न हो गयी। श्रीब्रह्माजी बोले—हे इन्द्र! हे अग्नि! हे वरुण! हे महादेव! हे कुबेर! हे सम्पूर्ण देवताओ! आपलोग इस अनुपम बालकको, जिसके द्वारा भविष्यमें आपलोगोंके बहुत-से कार्य सिद्ध होंगे, अनुपम वरदान दें। श्रीइन्द्रने हनुमान्‌जीके गलेमें प्रसन्नतापूर्वक कमलोंकी माला पहनाकर कहा—मेरे हाथसे छूटे

हुए वज्रके द्वारा इस बालककी हनु टूट गयी थी, अतः इस कपिशार्दूलका नाम हनुमान् होगा—

मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनुरस्य यथा हतः।
नाम्ना वै कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति॥

(७। ३६। ११)

और इन्द्रने यह भी वर दिया कि यह मेरे वज्रके द्वारा नहीं मारा जा सकेगा। तदनन्तर भगवान् मार्तण्डने कहा—मैं अपने तेजका सौवाँ भाग इस बालकको देता हूँ। इसके अतिरिक्त जब यह शास्त्राध्ययन करने योग्य होगा तब इसे शास्त्रोंका ज्ञान दूँगा, जिससे यह प्रचण्ड वक्ता होगा और शास्त्रज्ञानमें इसकी बराबरी कोई न कर सकेगा—

यदा च शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति।
तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति।
न चास्य भविता कश्चित् सदृशः शास्त्रदर्शने॥

(७। ३६। १४)

श्रीवरुणदेवने कहा—मेरे पाश और जलसे इस बालककी मृत्यु नहीं होगी। यमराजने कहा—यह मेरे दण्डसे अवध्य और रोगरहित होगा। श्रीकुबेरने कहा—इसे युद्धमें कभी विषाद न होगा और मेरी गदा इसे मार न सकेगी। भगवान् शंकरने वरदान दिया कि यह मेरे और मेरे आयुधोंके द्वारा भी अवध्य होगा। बुद्धिमान् विश्वकर्माने वरदान दिया—मेरे बनाये हुए जितने दिव्य अस्त्र-शस्त्र हैं, उनसे अवध्य होकर यह बालक चिरजीवी होगा—

मत्कृतानि च शस्त्राणि यानि दिव्यानि तानि च।
तैरवध्यत्वमापन्नश्चिरजीवी भविष्यति॥

(७। ३६। २०)

अन्तमें श्रीब्रह्माजीने श्रीहनुमान्‌जीको आशीर्वाद देते हुए कहा—यह बालक दीर्घायु, महात्मा और सब प्रकारके ब्रह्मदण्डोंसे अवध्य होगा—

दीर्घायुश्च महात्मा च ब्रह्मा तं प्राब्रवीद् वचः।
सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्योऽयं भविष्यति॥

(७। ३६। २१)

श्रीब्रह्मा वायुदेवसे बोले—हे मारुत! तुम्हारा यह पुत्र मारुति शत्रुओंके लिये भयंकर और मित्रोंके लिये अभयंकर होगा। समराङ्गणमें अजेय होगा—

अमित्राणां भयकरो मित्राणामभयंकरः।
अजेयो भविता पुत्रस्तव मारुत मारुतिः॥

(७। ३६। २३)

इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जीको वर देकर वायु देवताकी अनुमति लेकर ब्रह्मादि समस्त देवता अपने-अपने स्थानको चले गये। पवनदेव भी अपने दुलारे पुत्रको लेकर अञ्जनाके घर आये और उन्हें देवताओंके वरदानकी बात बताकर पधार गये।

वानरश्रेष्ठ श्रीहनुमान्‌जी महर्षियोंके आश्रमोंमें जा-जाकर निर्भय होकर नित्य नये-नये उपद्रव करते थे। ये शान्तचित्त महात्माओंके यज्ञमें काम आनेवाले पात्रोंको फोड़ डालते थे। अग्निहोत्रके साधनभूत स्रुक्, स्रुवा आदिको तोड़ डालते थे और वल्कल वस्त्रोंको फाड़ डालते थे—

स्रुग्भाण्डान्यग्निहोत्राणि वल्कलानां च सञ्चयान्।
भग्नविच्छिन्नविध्वस्तान् संशान्तानां करोत्ययम्॥

(७। ३६। ३०)

श्रीवानरराज केसरी तथा पवनदेवताने भी अञ्जनीकुमार श्रीहनुमान्‌जीको इस उपद्रवके लिये अनेक बार रोका, फिर भी ये वानरवीर मर्यादाका अतिक्रमण कर ही देते थे—

तथा केसरिणा त्वेष वायुना सोऽञ्जनीसुतः॥
प्रतिषिद्धोऽपि मर्यादां लङ्घयत्येव वानरः।

(७। ३६। ३२-३३)

श्रीअगस्त्यने कहा—हे रघुनन्दन! मुनियोंने

अपने हृदयमें अधिक खेद या दु:खको स्थान न देकर हनुमान्‌जीको शाप देते हुए कहा—हे वानरवीर! तुम जिस बलका आश्रय लेकर हमें बाधा पहुँचा रहे हो, उस बलको हमारे शापसे मोहित होकर सुदीर्घकालपर्यन्त भूले रहोगे। जब तुम्हें कोई तुम्हारी कीर्तिका स्मरण करावेगा तभी तुम्हारा बल बढ़ेगा—

शेपुरेनं रघुश्रेष्ठ नातिक्रुद्धातिमन्यवः।
बाधसे यत्समाश्रित्य बलमस्मान् प्लवङ्गम॥
तद् दीर्घकालं वेत्तासि नास्माकं शापमोहितः।
यदा ते स्मार्यते कीर्तिस्तदा ते वर्धते बलम्॥

(७। ३६। ३४-३५)

इस प्रकार महर्षियोंके वचनके प्रभावसे उनका तेज और ओज घट गया, फिर ये इन्हीं आश्रमोंमें मुनियोंके पास मृदुभावको प्राप्त करके विचरने लगे—

ततस्तु हृततेजौजा महर्षिवचनौजसा।
एषोऽऽश्रमाणि तान्येव मृदुभावं गतोऽचरत्॥

(७। ३६। ३६)

श्रीसुग्रीवके ऊपर जब विपत्ति आयी थी, उन दिनों ऋषियोंके शापके कारण इनको अपने बलका परिज्ञान न था; अत: जैसे कोई सिंह हाथीके द्वारा अवरुद्ध होकर चुपचाप खड़ा रहे, उसी प्रकार ये वाली और सुग्रीवके युद्धमें चुपचाप खड़े-खड़े सब कुछ देखते रहे पर कुछ नहीं कर सके—

ऋषिशापाहृतबलस्तदैव कपिसत्तमः।
सिंहः कुञ्जररुद्धो वा आस्थितः सहितो रणे॥

(७। ३६। ४३)

श्रीअगस्त्यजी कहते हैं—संसारमें ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नयाऽनय विवेक, गाम्भीर्य, चातुर्य, सुवीर्य और धैर्यमें श्रीहनुमान्‌से अधिक हो—

पराक्रमोत्साहमतिप्रताप-
सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यै-
र्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके॥

(७। ३६। ४४)

श्रीहनुमान्‌जीने सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, महाभाष्य और संग्रह, इन सबका अच्छी तरह अध्ययन किया है। अन्यान्य शास्त्रोंके ज्ञान तथा छन्दस्-शास्त्रके अध्ययनमें भी इनके सदृश कोई दूसरा विद्वान् नहीं है—

ससूत्रवृत्त्यर्थपदं महार्थं
ससंग्रहं सिद्ध्यति वै कपीन्द्रः।
नह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे
वैशारदे छन्दगतौ तथैव॥

(७। ३६। ४६)

श्रीअगस्त्यजीके मुखसे यह चरित्र सुनकर श्रीराम-लक्ष्मण बड़े विस्मित हुए। श्रीअगस्त्यजीने श्रीरामसे कहा—हे योगियोंके हृदयमें रमण करनेवाले श्रीराम! आपने यह समस्त प्रसङ्ग सुन लिया। हमलोगोंने इसी व्याजसे आपका दर्शन और आपके साथ सम्भाषण कर लिया। अब हमलोग जा रहे हैं—

अगस्त्यस्त्वब्रवीद् रामं सर्वमेतच्छ्रुतं त्वया।
दृष्टः सम्भाषितश्चासि राम गच्छामहे वयम्॥

(७। ३६। ५३)

श्रीरामजीने महात्माओंका अभिनन्दन करके भविष्यमें होनेवाले यज्ञमें मुनियोंके आगमनकी स्वीकृति अभीसे प्राप्त कर ली।

सूर्यास्त होनेपर राजाओं और वानरोंको विदा करके मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामजीने विधिवत् संध्योपासना की और रात होनेपर अन्त:पुरमें पधारे—

संध्यामुपास्य विधिवत् तदा नरवरोत्तमः।

प्रवृत्तायां रजन्यां तु सोऽन्तःपुरचरोऽभवत्॥

(७।३६।६३)

राज्याभिषेक होनेके पश्चात् पुरजनोंकी हर्षवर्द्धिनी प्रथम रात्रि व्यतीत हो गयी। प्रातःकाल होनेपर श्रीरामजीको जगानेके लिये सुमधुर स्वरवाले वन्दीजन राजमहलमें आये। उन्होंने श्रीरामजीका स्तवन प्रारम्भ किया—हे कौसल्याप्रीतिवर्द्धन! हे सौम्य! हे श्रीरघुवीर! आप जगिये। हे नरेन्द्र! आपके सोये रहनेपर सारा संसार ही सो जायगा—

वीर सौम्य प्रबुध्यस्व कौसल्याप्रीतिवर्धन।
जगद्धि सर्वं स्वपिति त्वयि सुप्ते नराधिप॥

(७।३७।४)

श्रीरामजीके शैयासे उठते ही अनेक सेवक जल आदि लेकर सेवामें उपस्थित हुए। प्रभु श्रीरामजीने स्नानादि करके समयपर अग्निमें आहुति दी और तत्काल इक्ष्वाकुसेवित देवागारमें—दिव्य देशमें, श्रीरङ्गमन्दिरमें दर्शनके लिये पधारे—

कृतोदकः शुचिर्भूत्वा काले हुतहुताशनः।
देवागारं जगामाशु पुण्यमिक्ष्वाकुसेवितम्॥

(७।३७।१३)

देवताओं, पितरों, ब्राह्मणोंका पूजन करके श्रीरामजी सभागारमें आये। वहाँपर श्रीवसिष्ठ आदि सभी महर्षि, मन्त्री, पुरोहित आये। अनेक जनपदोंके नरेश भी आये। श्रीभरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न आये। महापराक्रमी, महातेजस्वी, इच्छानुसार वेष धारण करनेवाले सुग्रीव, अंगद, हनुमान्, जाम्बवान्, सुषेण, तार, नील, नल, मैन्द, द्विविद, कुमुद, शरभ, शतबलि, गन्धमादन, गज, गवाक्ष, गवय, धूम्र, रम्य तथा ज्योतिमुख ये प्रधान-प्रधान वानरवीर बीसकी संख्यामें उपस्थित हुए—

वानराश्च महावीर्या विंशतिः कामरूपिणः।
सुग्रीवप्रमुखा राममुपासन्ते महौजसः॥

(७।३७।१९)

अपने चारों मन्त्रियोंके साथ श्रीविभीषण आ गये। अच्छे-अच्छे शास्त्रवेत्ता आये। जब सब लोग यथास्थान बैठ गये, तब पुराणवेत्ता महात्मा लोग भिन्न-भिन्न धर्मकथाएँ कहने लगे—

तेषां समुपविष्टानां तास्ताः सुमधुराः कथाः।
कथ्यन्ते धर्मसंयुक्ताः पुराणज्ञैर्महात्मभिः॥

(७।३७।२४)

महाबाहु श्रीरामजी इसी प्रकार प्रतिदिन राजसभामें विराजमान होकर पुरवासियों और जनपदवासियोंके समस्त कार्योंकी देखभाल करते हुए शासनका कार्य चलाते थे—

एवमास्ते महाबाहुरहन्यहनि राघवः।
प्रशासत् सर्वकार्याणि पौरजानपदेषु च॥

(७।३८।१)

कुछ दिन व्यतीत होनेपर एक दिन श्रीरामचन्द्रजीने मिथिलेश्वर श्रीजनकजीसे बद्धाञ्जलि होकर कहा—हे राजन्! आप हमारे लिये सुन्दर आश्रय हैं। आपने सदा हमलोगोंका अपने वात्सल्यभावसे लालन-पालन किया है। आपके उग्र तेजसे हमने रावण-ऐसे दुर्द्धर्ष शत्रुपर विजय प्राप्त की है—

भवान् हि गतिरव्यग्रा भवता पालिता वयम्।
भवतस्तेजसोग्रेण रावणो निहतो मया॥

(७।३८।३)

हे महाराज! आपको यहाँ पधारे पर्याप्त दिवस हो गये हैं, अब आप हमारे द्वारा समर्पित रत्नोंको स्वीकार करके जनकपुर पधारें। आपकी सहायताके लिये आपके पीछे-पीछे भैया भरत-लाल जायँगे—

तद् भवान् स्वपुरं यातु रत्नान्यादाय पार्थिव।
भरतश्च सहायार्थं पृष्ठतश्चानुयास्यति॥

(७।३८।५)

श्रीजनकजीने 'बहुत अच्छा' कहकर

श्रीराघवेन्द्रसे कहा—हे राजेन्द्र! आपके द्वारा दिये हुए रत्नोंको मैं अपनी सीता आदि पुत्रियोंको प्रदान करता हूँ—

यान्येतानि तु रत्नानि मदर्थं संचितानि वै।
दुहित्रे तान्यहं राजन् सर्वाण्येव ददामि वै॥

(७। ३८। ७)

श्रीजनकके प्रस्थान करनेके पश्चात् श्रीरामजीने अपने मामा केकय नरेश युधाजित्से कहा—हे राजन्! महाराज केकय नरेश वृद्ध हैं, वे आपके लिये चिन्तित होंगे; अतः आपको आज ही प्रस्थान करना चाहिये—

राजा हि वृद्धः संतापं त्वदर्थमुपयास्यति।
तस्माद् गमनमद्यैव रोचते तव पार्थिव॥

(७। ३८। ११)

आप बहुत साधन तथा रत्न लेकर पधारें। मार्गमें आपकी सहायताके लिये भाई लक्ष्मण आपके साथ जायँगे—

लक्ष्मणेनानुयात्रेण पृष्ठतोऽनुगमिष्यते।
धनमादाय बहुलं रत्नानि विविधानि च॥

(७। ३८। १२)

श्रीयुधाजित्ने 'तथास्तु' कहकर श्रीरामजीकी बात स्वीकार कर ली और कहा—हे राघव! ये रत्न और धन सब आपके पास ही अक्षय-रूपसे रहें—

युधाजित् तु तथेत्याह गमनं प्रति राघव।
रत्नानि च धनं चैव त्वय्येवाक्षय्यमस्त्विति॥

(७। ३८। १३)

तदनन्तर कौसल्याप्रीतिवर्द्धन श्रीरामजीने काशिराजको विदा किया। निर्भय काशिराजने श्रीरामजीकी अनुमति लेकर तत्काल वाराणसी नगरीके लिये प्रस्थान कर दिया।

श्रीहनुमान्जीके द्वारा श्रीसीताहरण और श्रीलक्ष्मण-मूर्च्छाका समाचार सुनकर भरतजीने अनेक राज्योंसे तीन सौ राजाओंको बुलाया था। वे लोग एकत्रित हुए तबतक श्रीरामजीके आनेका समाचार मिल गया। फिर इन लोगोंने सोचा कि अब श्रीरामजीके राज्याभिषेकका दर्शन करके ही अपने घर चलेंगे। उन राजाओंको स्नेहपूर्वक अभिनन्दन करके श्रीरामजीने विदा किया। उन राजाओंने कहा—हे राजराजेन्द्र! हे अयोध्यानाथ! हमारे सौभाग्यसे आप प्रचण्ड पराक्रमी शत्रु रावणको पराभूत करके श्रीजानकीजीको लेकर लौट आये। यह हमारा सबसे बड़ा मनोरथ पूर्ण हुआ है। यह हमारे लिये हर्षका प्रसङ्ग है कि हमलोग आज आपको विजयी देख रहे हैं—

दिष्ट्या प्रत्याहृता सीता दिष्ट्या शत्रुः पराजितः॥
एष नः परमः काम एषा नः प्रीतिरुत्तमा।
यत् त्वां विजयिनं राम पश्यामो हतशात्रवम्॥

(७। ३८। २८-२९)

इस तरह अयोध्यानाथ श्रीरामसे आहत होकर सब राजा अपने-अपने देश चले गये। ये सब राजा श्रीभरतजीकी आज्ञासे श्रीरामजीकी सहायताके लिये कई अक्षौहिणी सेना लेकर आये थे। ये सब मार्गमें कहते हुए जा रहे थे—हमलोगोंने श्रीराम-रावणका युद्ध नहीं देखा। श्रीभरतजीने हमको युद्ध समाप्तिके पश्चात् व्यर्थ ही बुलाया। हमलोग श्रीराम-लक्ष्मणकी भुजाओंसे सुरक्षित रहकर समुद्रके उस पार सुखपूर्वक युद्ध कर सकते थे।

भरतेन वयं पश्चात् समानीता निरर्थकम्।
हता हि राक्षसाः क्षिप्रं पार्थिवैः स्युर्न संशयः॥
रामस्य बाहुवीर्येण रक्षिता लक्ष्मणस्य च।
सुखं पारे समुद्रस्य युध्येम विगतज्वराः॥

(७। ३९। ४-५)

इस समय तो ये नरेशगण बिना तैयारीके

आये थे; अतः अपने-अपने नगरोंमें पहुँचकर इन लोगोंने अनेक प्रकारके उपहार श्रीराजा रामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके लिये भेजे—

यथापुराणि ते गत्वा रत्नानि विविधान्यथ।
रामस्य प्रियकामार्थमुपहारं नृपा ददुः॥

(७। ३९। ८)

इसके पश्चात् श्रीरामजीने सुग्रीवादिको अनेक प्रकारके उपहार दिये। श्रीरामजीने अपने दिव्य श्रीविग्रहसे बहुमूल्य आभूषण उतारकर श्रीअंगद एवं श्रीहनुमान्‌जीके अङ्गोंमें बाँध दिया—

इत्युक्त्वा व्यपमुच्याङ्गाद् भूषणानि महायशाः।
स बबन्ध महार्हाणि तदाङ्गदहनूमतोः॥

(७। ३९। १९)

श्रीरामचन्द्रजीने समस्त वानरोंका अभिनन्दन करते हुए कहा—हे वानरवीरो! आपलोग मेरे सुहृद् हैं, शरीर हैं और भाई हैं। आपलोगोंने संकटसे मेरा उद्धार किया है। आप-जैसे सहृदय श्रेष्ठ सुहृदोंको पाकर वानरेन्द्र सुग्रीव धन्य हैं—

सुहृदो मे भवन्तश्च शरीरं भ्रातरस्तथा॥
युष्माभिरुद्धृतश्चाहं व्यसनात् काननौकसः।
धन्यो राजा च सुग्रीवो भवद्भिः सुहृदां वरैः॥

(७। ३९। २३-२४)

ऐसा कहकर श्रीरामजीने उन्हें यथायोग्य आभूषण, बहुमूल्य हीरे आदि रत्न दिये तथा सबका आलिङ्गन किया—

एवमुक्त्वा ददौ तेभ्यो भूषणानि यथार्हतः।
वज्राणि च महार्हाणि सस्वजे च नरर्षभः॥

(७। ३९। २५)

इस प्रकार निवास करते हुए समस्त वानरोंको एक महीनेसे अधिक समय व्यतीत हो गया, परंतु श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें अगाध भक्ति होनेके कारण उन्हें वह समय दो घड़ीके समान ही ज्ञात हुआ।

एवं तेषां निवसतां मासः साग्रो ययौ तदा।
मुहूर्तमिव ते सर्वे रामभक्त्या च मेनिरे॥

(७। ३९। २७)

ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति।
जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास षट बीति॥
बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं।
जिमि परद्रोह संत मन माहीं॥

भगवान् श्रीरामने श्रीसुग्रीवसे कहा—हे सौम्य! अब तुम सुरासुरोंके लिये दुराधर्षा किष्किन्धापुरी पधारो। वहाँ मन्त्रियोंके साथ रहकर अपने निष्कण्टक राज्यका पालन करो—

गम्यतां सौम्य किष्किन्धां दुराधर्षां सुरासुरैः।
पालयस्व सहामात्यै राज्यं निहतकण्टकम्॥

(७। ४०। २)

श्रीसुग्रीवजीको श्रीठाकुरजीने सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करनेके लिये कहा और यह भी कहा कि हे वानरेन्द्र! जिन विशाल हृदयवाले मनस्वी वीरोंने मेरे लिये जीवनकी परवाह नहीं की, उन सबपर तुम प्रेमदृष्टि रखना। उनका कभी अप्रिय न करना—

ये ये मे सुमहात्मानो मदर्थे त्यक्तजीविताः।
पश्य त्वं प्रीतिसंयुक्तो मा चैषां विप्रियं कृथाः॥

(७। ४०। ८)

फिर विभीषणको भी प्रेमपूर्वक समझाकर विदा किया। सबको विदा करते समय एक बात श्रीरामजीने कही—आप सब लोग मुझे नित्यशः—निरन्तर स्मरण करना। इसमें भक्तितत्त्वका रहस्य संनिहित है। भगवान् कहते हैं—अपने सब ज्वर-संताप—क्लेश यहाँ छोड़कर जाओ और मेरा स्मरण लेकर जाओ—

अहं च नित्यशो राजन् सुग्रीवसहितस्त्वया।
स्मर्तव्यः परया प्रीत्या गच्छ त्वं विगतज्वरः॥

(७। ४०। १२)

श्रीरामजीके इस रहस्यमय आदेशको, उपदेशको समस्त वानरोंने—भक्तोंने हृदयङ्गम कर लिया। वानर, रीछ और राक्षसोंने धन्य! धन्य! साधु! साधु! कहकर बार-बार प्रशंसा की।

रामस्य भाषितं श्रुत्वा ऋक्षवानरराक्षसाः।
साधुसाध्विति काकुत्स्थं प्रशशंसुः पुनः पुनः॥

(७। ४०। १३)

श्रीहनुमान्‌जीने प्रणत होकर श्रीरामजीसे निवेदन किया—हे महाराज! आपके मङ्गलमय श्रीचरणारविन्दोंमें मेरा सहज स्नेह सदा बना रहे। हे वीर! आपके श्रीचरणोंमें मेरी अनपायिनी भक्ति हो। हे रघुनन्दन! आपके अतिरिक्त कहीं अन्यत्र मेरा आन्तरिक अनुराग न हो—

स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा।
भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु॥

(७। ४०। १६)

हे श्रीरघुवीर! इस भूतलपर जबतक श्रीरामकथा प्रचलित रहे तबतक असन्दिग्धरूपसे मेरे शरीरमें मेरे प्राण रहें। हे रघुनन्दन! अप्सराएँ अपने सुन्दर भावपूर्ण कण्ठसे मुझे आपका दिव्य चरित्र गाकर सुनाया करें—

यावद् रामकथा वीर चरिष्यति महीतले।
तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः॥
यच्चैतच्चरितं दिव्यं कथा ते रघुनन्दन।
तन्ममाप्सरसो राम श्रावयेयुर्नरर्षभ॥

(७। ४०। १७-१८)

श्रीहनुमान्‌जीके भावपूर्ण वचन एवं उनकी अलौकिक वरयाचना सुनकर श्रीरामजीने अपने दिव्य सिंहासनसे उठकर उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया और स्नेहपूर्वक कहा—हे वानरश्रेष्ठ! असंदिग्धरूपसे ऐसा ही होगा। इस संसारमें मेरी कथा जबतक प्रचलित रहेगी तबतक तुम्हारी कीर्ति रहेगी और तुम्हारे शरीरमें प्राण भी रहेंगे ही। जबतक ये लोक स्थिर रहेंगे तबतक मेरी कथा भी स्थिर रहेगी—

एवं ब्रुवाणं रामस्तु हनूमन्तं वरासनात्।
उत्थाय सस्वजे स्नेहाद् वाक्यमेतदुवाच ह॥
एवमेतत् कपिश्रेष्ठ भविता नात्र संशयः।
चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका॥
तावत् ते भविता कीर्तिः शरीरेऽप्यसवस्तथा।
लोका हि यावत्स्थास्यन्ति तावत् स्थास्यन्ति मे कथाः॥

(७। ४०। २०—२२)

हे हनुमन्! तुमने जो मेरे प्रति उपकार किये हैं उनमें एक-एक उपकारके लिये मैं अपने प्राण न्योछावर कर सकता हूँ। तुम्हारे शेष उपकारोंके लिये तो मैं ऋणी ही रह जाऊँगा। हे पवननन्दन! मैं तो यही चाहता हूँ कि तुम्हारे द्वारा किये उपकार मेरे शरीरमें ही पच जायँ। उनका बदला चुकानेका मुझे कभी अवसर ही न मिले; क्योंकि पुरुषमें उपकारका बदला पानेकी योग्यता आपत्तिकालमें ही आती है। हे पुत्र! मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे ऊपर कभी आपत्ति आवे और मुझे प्रत्युपकार करनेका अवसर मिले। हे मेरे लाल! मैं तो यह चाहता हूँ कि तुम सर्वदा प्रसन्न रहो और महाजन बने रहो तथा मैं ऋणियाँ—कर्जदार बना रहूँ—

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥
मदङ्गे जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्॥

(७। ४०। २३-२४)

इतना कहकर उदारचक्रचूड़ामणि श्रीरामजीने अपने कण्ठसे चन्द्रमाके समान समुज्ज्वल एक हार निकाला, जिसके मध्यमें वैदूर्यमणि लगी हुई थी। उस वैदूर्यमणिजटित हारको भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजीने परम भाग्यवान् श्रीहनुमान्‌जीके गलेमें बाँध दिया।

ततोऽस्य हारं चन्द्राभं मुच्य कण्ठात् स राघवः।
वैदूर्यतरलं कण्ठे बबन्ध च हनूमतः॥

(७। ४०। २५)

विदाईकी करुण वेला आ गयी। श्रीसुग्रीव और विभीषण भगवान्‌के हृदयसे लगकर भुजाओंसे भेंटकर विदा हो गये। सबके नेत्रोंसे गङ्गा-यमुना बह रही थीं—आँसू झर-झर झर रहे थे—'**सर्वे ते बाष्पविक्लवाः**'। सभी वियोगव्यथाकी कल्पनासे कर्तव्याकर्तव्य-विवेकशून्य एवं अचेत-से हो रहे थे। सबके कण्ठ अवरुद्ध हो रहे थे। इस प्रकार सब राक्षस, वानर, रीछ रघुवंशवर्द्धन श्रीरामको प्रणाम करके नेत्रोंमें वियोगजन्य आँसू लिये अपने-अपने घर लौट गये—

ततस्तु ते राक्षसऋक्षवानराः
प्रणम्य रामं रघुवंशवर्द्धनम्।
वियोगजाश्रुप्रतिपूर्णलोचनाः
प्रतिप्रयातास्तु यथा निवासिनः॥

(७। ४०। ३१)

एक दिन श्रीरामजी अपने भाइयोंके साथ बैठे थे। उसी समय आकाशसे मधुर वाणी सुनायी पड़ी—हे सौम्य! मेरी ओर दृष्टिपात करें, मैं पुष्पक विमान हूँ। हे स्वामी! आपकी आज्ञासे मैं अलकापुरीमें श्रीकुबेरजीके पास गया। उन्होंने मुझसे कहा—परमात्मा श्रीरामने लङ्कामें रावणके साथ तुमको भी जीत लिया है; अतः मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम उन्हींकी सेवामें रहो—

स त्वं रामेण लङ्कायां निर्जितः परमात्मना।
वह सौम्य तमेव त्वमहमाज्ञापयामि ते॥

(७। ४१। ७)

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामजीने लाजा, फूल, धूप और चन्दन आदिसे विमानकी पूजा करके कहा—अब तुम जाओ। जब मैं स्मरण करूँ तब आ जाना—

गम्यतामिति चोवाच आगच्छ त्वं स्मरे यदा।

(७। ४१। १४)

पुष्पकके जानेपर श्रीभरतजीने कहा—हे वीरवर! हे श्रीराघवेन्द्र! आपके शासनकालमें सब सुखी हैं। सब लोग रोगरहित हैं। स्त्रियाँ बिना कष्टके प्रसव करती हैं। सभी मनुष्योंके शरीर हृष्ट-पुष्ट हैं—

अरोगप्रसवा नार्यो वपुष्मन्तो हि मानवाः॥

(७। ४१। १९)

पुरवासियोंमें अत्यन्त प्रसन्नताका वातावरण है। मेघ अमृतकी तरह जल गिराते हुए समयपर वर्षा करते हैं—

हर्षश्चाभ्यधिको राजञ्जनस्य पुरवासिनः।
काले वर्षति पर्जन्यः पातयन्नमृतं पयः॥

(७। ४१। २०)

श्रीरामचन्द्रजी अशोकवनिकामें नित्य विहार करने जाते थे। श्रीसीताजी नित्य प्रातःकाल देव-पूजन करती थीं। सासुओंकी समानरूपसे सेवा करती थीं—

सीतापि देवकार्याणि कृत्वा पौर्वाह्णिकानि वै।
श्वश्रूणामकरोत् पूजां सर्वासामविशेषतः॥

(७। ४२। २८)

कुछ कालके अनन्तर श्रीसीताजीमें गर्भका लक्षण देखकर श्रीरामजी बहुत प्रसन्न हुए। श्रीरामजीने कहा—हे मिथिलेशनन्दिनि! तुम्हारे गर्भसे पुत्र प्राप्त होनेका यह समय उपस्थित है। हे सुन्दरि! बताओ, तुम्हारी क्या इच्छा है? मैं तुम्हारी कौन-सी अभिलाषा पूर्ण करूँ?

किमिच्छसि वरारोहे कामः किं क्रियतां तव।

(७। ४२। ३२)

श्रीसीताजीने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा—हे प्राणेश्वर! मेरी अभिलाषा पवित्र तपोवनोंको देखनेकी है। हे पतिदेव! श्रीगङ्गाके पावन तटपर

रहकर फलाहार करनेवाले जो उग्र तेजस्वी महर्षि हैं, हे प्राणवल्लभ! अपने गर्भगत शिशुको सात्त्विक संस्कारसम्पन्न करनेके लिये उन तपोधन संतोंकी सन्निधिमें मैं कुछ काल निवास करना चाहती हूँ—

तपोवनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छामि राघव।
गङ्गातीरोपविष्टानामृषीणामुग्रतेजसाम् ॥
फलमूलाशिनां देव पादमूलेषु वर्तितुम्।
एष मे परमः कामो यन्मूलफलभोजिनाम्॥
अप्येकरात्रिं काकुत्स्थ निवसेयं तपोवने।

(७। ४२। ३३—३५)

श्रीरामचन्द्रजीने सहर्ष श्रीसीताजीकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। अक्लिष्टकर्मा श्रीरामने श्रीसीताजीकी इस इच्छाको पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा की और कहा—हे श्रीसीते! आप निश्चिन्त रहो कल ही वहाँ जाओगी, इसमें संदेह नहीं है।

तथेति च प्रतिज्ञातं रामेणाक्लिष्टकर्मणा।
विस्रब्धा भव वैदेहि श्वो गमिष्यस्यसंशयम्॥

(७। ४२। ३५)

महाराज श्रीरामचन्द्रजी अपने कुशल-विनोदी सखाओंके साथ कुछ देर बैठते थे। उन सखाओंके नाम इस प्रकार हैं—

विजयो मधुमत्तश्च काश्यपो मङ्गलः कुलः।
सुराजिः कालियो भद्रो दन्तवक्त्रः सुमागधः॥

(७। ४३। २)

ये लोग श्रीरामजीको प्रसन्न करनेके लिये हास्य-विनोदपूर्ण कथाएँ कहा करते थे। एक दिन श्रीरामजीने पूछा—हे भद्र! आजकल नगर और राज्योंमें क्या चर्चाएँ होती हैं? भद्रने हाथ जोड़कर कहा—हे अयोध्यानाथ! आपके रावण-विजयकी चर्चा सर्वत्र होती है। हे राजन्! लोग कहते हैं—समुद्रमें सेतुबन्धनका दुष्कर कर्म श्रीरामजीने किया है। ऐसा कर्म तो इसके पूर्व देवता और दानव भी नहीं कर सके तो मानवकी तो चर्चा ही क्या?

दुष्करं कृतवान् रामः समुद्रे सेतुबन्धनम्।
अश्रुतं पूर्वकैः कैश्चिद् देवैरपि सदानवैः॥

(७। ४३। १४)

इसके आगे भद्रने काँपती हुई वाणीमें कहा—हे स्वामी! लोग यह भी कहते हैं—'परंतु एक बात खटकती है, श्रीरामजी युद्धमें रावणका वध करके सीताको अपने साथमें ले आये। उनके मनमें अमर्ष क्यों नहीं हुआ?'

हत्वा च रावणं सङ्ख्ये सीतामाहृत्य राघवः।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्ववेश्म पुनरानयत्॥

(७। ४३। १६)

अब हम लोगोंको भी नारियोंकी इस प्रकारकी बातें सुननी होंगी और सहनी होंगी; क्योंकि राजाका जिस प्रकारका व्यवहार होता है प्रजा भी उसीका अनुकरण करने लगती है।

अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति।
यथा हि कुरुते राजा प्रजास्तमनुवर्तते॥

(७। ४३। १९)

हे राजन्! इस प्रकार सारे नगर और जनपदमें पुरवासी मनुष्य अनेक प्रकारकी चर्चाएँ करते रहते हैं—

एवं बहुविधा वाचो वदन्ति पुरवासिनः।
नगरेषु च सर्वेषु राजन् जनपदेषु च॥

(७। ४३। २०)

भद्रकी बात सुनकर अयोध्यानाथ श्रीरामजीको महती व्यथाका अनुभव हुआ। उन्होंने समस्त सुहृदोंसे पूछा—आपलोग भी बतावें भद्रकी बात कहाँतक ठीक है? तब सब लोग पृथ्वीपर मस्तक रखकर प्रणाम करके बड़ी दीन वाणीमें बोले—हे प्रभो! भद्रने ठीक ही कहा है, इसमें शंका नहीं है। सब मित्रोंके मुखसे यह बात

सुनकर शत्रुसूदन श्रीरामने सद्यः सबको विदा कर दिया।

सबको विदा करके श्रीरामजीने द्वारपालसे कहा—तुम जाकर शीघ्र ही महाभाग भरतको, शुभ लक्षण लक्ष्मणको और अपराजित वीर शत्रुघ्नको बुला लाओ। प्रभुकी आज्ञानुसार तीनों भाई अविलम्ब द्वारपर आ गये। द्वारपालके निवेदन करनेपर श्रीरामने कहा—तीनों राजकुमारोंको शीघ्र ले आओ। मेरा जीवन इन्हींपर अवलम्बित है। ये मेरे प्राणस्वरूप हैं।

प्रवेशय कुमारांस्त्वं मत्समीपं त्वरान्वितः॥
एतेषु जीवितं मह्यमेते प्राणाः प्रिया मम।

(७।४४।१३-१४)

तीनों भाइयोंने श्रीरामजीको अत्यन्त विषाद-निमग्न देखा। ऐसा ज्ञात होता था मानो चन्द्रमाको राहुने ग्रस लिया हो। उस समय श्रीरामजीकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे। तीनों भाई प्रणाम करके खड़े हो गये। सहसा कोई कुछ बोल नहीं सका। श्रीरामजीने उन्हें आसनपर बैठनेकी आज्ञा दी। उनके बैठनेपर प्रभुने कहा—हे नरेश्वरो! तुम लोग मेरे सर्वस्व हो। तुम्हीं मेरे जीवन हो और तुम्हारे द्वारा सम्पादित इस राज्यका मैं पालन करता हूँ—

भवन्तो मम सर्वस्वं भवन्तो जीवितं मम।
भवद्भिश्च कृतं राज्यं पालयामि नरेश्वराः॥

(७।४४।१९)

इस श्लोकमें ठाकुरजीने श्रीभरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, कुमार, राजकुमार, बन्धु, भ्राता आदि सम्बोधन नहीं दिया है। **'नरेश्वराः'** सम्बोधन दिया है। इसका आशय यह है कि आपलोग श्रीअयोध्याके राजा हैं, सब कुछ आपका है और किसी भी प्रकारका निर्णय लेनेमें नरेश्वरकी भाँति निर्णय लें। आपलोग 'कृतशास्त्रार्थ' हैं, भाव कि आपलोगोंने शास्त्र पढ़ा ही नहीं है, उसके अनुसार अनुष्ठान किया है अर्थात् 'अनुष्ठित-शास्त्रार्थ' हैं; अतः मेरी बात ध्यानसे सुनो। इस समय पुरवासियों और जनपदके लोगोंमें सीताके सम्बन्धमें अपवाद फैला हुआ है। मेरे प्रति भी उनके घृणित विचार हैं। इस समाचारसे मुझे मर्मान्तक व्यथा है। यद्यपि सीताकी अग्निपरीक्षा हो गयी है। मेरी अन्तरात्मा यशस्विनी सीताको शुद्ध समझती है—

अन्तरात्मा च मे वेत्ति सीतां शुद्धां यशस्विनीम्॥

(७।४५।१०)

परंतु हे बन्धुओ! मैं अपवादके भयसे अपने प्राणोंको और तुम लोगोंको भी छोड़ सकता हूँ, फिर सीताका त्यागना कौन बड़ी बात है?

अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान् वा पुरुषर्षभाः॥
अपवादभयाद् भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम्।

(७।४५।१४-१५)

हे सुमित्राकुमार! कल प्रातःकाल सुमन्त्रके द्वारा सञ्चालित रथपर सीताको चढ़ाकर गङ्गाके उस पार तमसा तटपर महर्षि वाल्मीकिके आश्रमके निकट सीताको छोड़कर तुम शीघ्र लौट आना। आपलोगोंको मैं अपने जीवन और चरणोंकी शपथ दिलाता हूँ। मेरे निर्णयके विपरीत कुछ न कहना—

तस्मात् त्वं गच्छ सौमित्रे नात्र कार्या विचारणा।

(७।४५।२०)

हे लक्ष्मण! सीताने मुझसे पहले कहा था कि मैं गङ्गातटपर ऋषियोंके आश्रमोंका दर्शन करना चाहती हूँ; अतः उनकी यह अभिलाषा भी पूर्ण करना चाहिये—

पूर्वमुक्तोऽहमनया गङ्गातीरेऽहमाश्रमान्॥
पश्येयमिति तस्याश्च कामः संवर्त्यतामयम्।

(७।४५।२३-२४)

प्रात:काल श्रीलक्ष्मणने दीन हृदय और शुष्क मुखसे सुमन्त्रसे कहा अर्थात् मन, वचन, कर्मसे दु:खी होकर कहा—हे सारथे! शीघ्र चलनेवाले घोड़ोंसे संयुक्त रथको प्रस्तुत करो। उसमें श्रीसीताजीके लिये सुन्दर आसन बिछा दो—

ततो रजन्यां व्युष्टायां लक्ष्मणो दीनचेतनः।
सुमन्त्रमब्रवीद् वाक्यं मुखेन परिशुष्यता॥
सारथे तुरगाञ्शीघ्रान् योजयस्व रथोत्तमे।
स्वास्तीर्णं राजवचनात् सीतायाश्चासनं शुभम्॥

(७। ४६। १-२)

श्रीलक्ष्मणजीने श्रीसीताजीसे कहा—हे देवि! राजेन्द्र श्रीरामजीकी आज्ञासे मैं सेवामें प्रस्तुत हूँ। मैं आपको गङ्गातटपर मुनियोंके आश्रमोंतक ले चलूँगा—

गङ्गातीरे मया देवि ऋषीणामाश्रमाञ्शुभान्।
शीघ्रं गत्वा तु वैदेहि शासनात् पार्थिवस्य नः॥

(७। ४६। ८)

श्रीसीताजीने प्रसन्न होकर यात्रा की। गोमती तटपर पहुँचकर एक आश्रममें रात्रि व्यतीत करके दूसरे दिन प्रात:काल चलकर मध्याह्नतक गङ्गा-तटपर सब लोग पहुँच गये। गङ्गाजीका दर्शन करके श्रीलक्ष्मण दीन होकर उच्चस्वरसे रोने लगे—

अथार्धदिवसे गत्वा भागीरथ्या जलाशयम्।
निरीक्ष्य लक्ष्मणो दीनः प्ररुरोद महास्वनः॥

(७। ४६। २४)

श्रीसीताजीने श्रीलक्ष्मणको विह्वल देखकर कहा—हे लक्ष्मण! तुम रोते क्यों हो? इस हर्षके समय तुम रोकर मेरे मनमें विषाद क्यों उत्पन्न कर रहे हो? गङ्गाजीका दर्शन करके तो मेरी बहुत दिनोंकी इच्छा पूर्ण हो गयी है। हे सुमित्राकुमार! तुम अपने भाई श्रीरामका वियोग क्या एक दिन भी नहीं सह सकते हो? श्रीरामजी मुझे भी प्राणोंसे बढ़कर प्रिय हैं।

श्रीलक्ष्मणने श्रीसीताका वचन सुनकर अपनी दोनों सुन्दर आँखें पोंछ लीं। गङ्गाजीको पार करनेके लिये सीताजीके साथ उस नावपर बैठकर बड़ी सावधानीके साथ उन्होंने श्रीसीताजीको गङ्गाजीके उस पार पहुँचाया—

तितीर्षुर्लक्ष्मणो गङ्गां शुभां नावमुपारुहत्।
गङ्गां संतारयामास लक्ष्मणस्तां समाहितः॥

(७। ४६। ३३)

गङ्गाके उस पार पहुँचकर श्रीलक्ष्मणकी आँखोंमें आँसू भर आये और उन्होंने हाथ जोड़कर श्रीसीतासे कहा—

ततस्तीरमुपागम्य भागीरथ्याः स लक्ष्मणः।
उवाच मैथिलीं वाक्यं प्राञ्जलिर्बाष्पसंवृतः॥

(७। ४७। ३)

उस समय श्रीलक्ष्मणजी सोचते हैं—हा हन्त! अपने चाहनेसे मृत्यु भी नहीं मिलती है। यदि इस समय मेरी मृत्यु हो जाती तो मैं अपने मुखसे श्रीसीताजीसे उनके परित्यागकी बात कहनेसे बच जाता। श्रीलक्ष्मणजी हाथ जोड़कर रो रहे हैं और अपनी मृत्युकी कामना कर रहे हैं, यह देखकर श्रीसीताजी उद्विग्न होकर बोलीं—

रुदन्तं प्राञ्जलिं दृष्ट्वा काङ्क्षन्तं मृत्युमात्मनः।
मैथिली भृशसंविग्ना लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत्॥

(७। ४७। ७)

हे लक्ष्मण! क्या बात है? तुम्हारा मन स्वस्थ नहीं है। मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि महाराज भी कुशलसे नहीं हैं—‘**महीपते रामस्यापि क्षेमं सुखं न पश्यामि**’।

किमिदं नावगच्छामि ब्रूहि तत्त्वेन लक्ष्मण।
पश्यामि त्वां न च स्वस्थमपि क्षेमं महीपतेः॥

(७। ४७। ८)

श्रीलक्ष्मण हृदयपर वज्र बिठाकर बोले—हे मातः! नगरमें और जनपदमें आपके विषयमें अपवाद फैला हुआ है। यद्यपि आप मेरे सामने निर्दोष सिद्ध हो चुकी हैं; परंतु लोकापवादके भयसे महाराजने आपका परित्याग कर दिया है।

हे देवि! यहाँ मेरे पिता श्रीदशरथजीके घनिष्ठ मित्र महायशस्वी महर्षि श्रीवाल्मीकिजी निवास करते हैं। आप उन्हीं महामना—परमोदार—उदार विचारोंवाले संतके श्रीचरणोंकी छत्रछायामें यहाँ सुखपूर्वक निवास करें। हे जनकाधिराजतनये! आप यहाँ उपवासपरायणा होकर, समाहितचित्ता होकर निवास करो—

राज्ञो दशरथस्यैव पितुर्मे मुनिपुङ्गवः॥
सखा परमको विप्रो वाल्मीकिः सुमहायशाः।
पादच्छायामुपागम्य सुखमस्य महात्मनः।
उपवासपरैकाग्रा वस त्वं जनकात्मजे॥

(७। ४७। १६-१७)

श्रीलक्ष्मणका यह परम दारुण वचन श्रवण करके विदेहनन्दिनी श्रीसीता दुःखसे मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ीं। दो घड़ीके पश्चात् चेतना लौटनेपर श्रीसीता बोलीं—हे लक्ष्मण! मेरे शरीरको ब्रह्माने केवल दुःख भोगनेके लिये ही बनाया है। रोते हुए श्रीसीताने कहा—हा हन्त! शुद्ध आचरणका परिज्ञान होनेपर भी, मुझसे अतिशय अनुराग होनेपर भी मेरे प्राणप्रियतमने मेरा परित्याग कर दिया है। निश्चय ही मैंने कभी किसीका पतिवियोग कराया होगा। हे लक्ष्मण! जब सरल-साधुहृदय मुनि लोग मुझसे पूछेंगे कि महात्मा श्रीरामने मुझे किस अपराधसे त्यागा है तो मैं कौन-सा अपराध बताऊँगी?

किं नु वक्ष्यामि मुनिषु कर्म चासत्कृतं प्रभो।
कस्मिन् वा कारणे त्यक्ता राघवेण महात्मना॥

(७। ४८। ७)

हे सुमित्राकुमार! मैं अपने जीवनको आज, अभी, इसी समय, तुम्हारे देखते-देखते पावन गङ्गाजलमें विसर्जन कर देती; परंतु मैं ऐसा नहीं करूँगी; क्योंकि मेरे गर्भमें मेरे प्राणेश्वरका राजवंश पल रहा है। उसके लिये मुझे जीवित रहना है, सब कुछ सहना है—

न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवीजले।
त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यते॥

(७। ४८। ८)

हे लक्ष्मण! तुम वही करो जो तुम्हें श्रीरामजीने कहा है। मुझ अभागिनी दुखियाको यहाँ छोड़कर महाराजकी आज्ञाके पालनमें स्थिर रहो। हे वत्स लक्ष्मण! मेरे आराध्यके श्रीचरणोंमें, मेरी सासुओंके श्रीचरणोंमें मेरा मस्तक नवाकर प्रणाम करना और मेरा समाचार बताना। परम धर्मज्ञ और सर्वज्ञ मेरे प्राणेश्वरके श्रीचरणोंमें मेरा संदेश सुनाना—हे वीरशिरोमणे! आपने अपयशके भयसे मेरा परित्याग किया है। आपकी जो निन्दा हो रही है किं वा मेरे कारण जो अपवाद फैल रहा है, उसे दूर करना मेरा भी कर्तव्य है; क्योंकि मेरे परमाश्रय तो आप ही हैं। हे महाराज! आप श्रीअयोध्याके पुरवासियोंसे रूक्ष व्यवहार न करना, उनसे अपने भाइयोंका-सा ही व्यवहार करना, यही आपका परम धर्म है—

अहं त्यक्ता च ते वीर अयशोभीरुणा जने।
यच्च ते वचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः॥
मया च परिहर्तव्यं त्वं हि मे परमा गतिः।
वक्तव्यश्चैव नृपतिर्धर्मेण सुसमाहितः॥
यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा।
परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात्कीर्तिरनुत्तमा॥

(७। ४८। १३—१५)

श्रीलक्ष्मणजी उच्चस्वरसे करुणक्रन्दन करते

हुए—फफक-फफककर रोते हुए श्रीसीताजीकी परिक्रमा करके चल पड़े—

शिरसा वन्द्य धरणीं व्याहर्तुं न शशाक ह।
प्रदक्षिणं च तां कृत्वा रुदन्नेव महास्वनः॥

(७। ४८। २०)

श्रीसीताजी अनाथकी तरह रोती हुई भूमिपर लोट रही थीं। श्रीलक्ष्मण बार-बार मुड़-मुड़कर यह हृदयविदारक दृश्य देखते हुए गङ्गामें अपने नेत्रोंसे गङ्गा-यमुनाकी धारा बहाते हुए चले जा रहे थे। श्रीसीताजी उसी ओर देख रही थीं। जब रथ और लक्ष्मण आँखोंसे ओझल हो गये तब श्रीसीताजी अधिक उद्विग्न हो गयीं—

दूरस्थं रथमालोक्य लक्ष्मणं च मुहुर्मुहुः।
निरीक्ष्यमाणां तूद्विग्नां सीतां शोकः समाविशत्॥

(७। ४८। २५)

गङ्गातटपर जहाँ श्रीजानकीजी उच्चस्वरसे रो रही थीं, उस स्थानके सन्निकट ही कुछ मुनि-बालक थे। श्रीजानकीजीको रुदन करते देखकर मुनिबालक महर्षि श्रीवाल्मीकिजीके पास दौड़-कर गये—

सीतां तु रुदतीं दृष्ट्वा ते तत्र मुनिदारकाः।
प्राद्रवन् यत्र भगवानास्ते वाल्मीकिरुग्रधीः॥

(७। ४९। १)

बालकोंने जाकर श्रीवाल्मीकिजीको समस्त समाचार सुनाया—हे भगवन्! गङ्गातटपर एक देवी महान् करुणक्रन्दन कर रही हैं। हे ब्रह्मन्! वे साक्षात् महालक्ष्मी परिज्ञात होती हैं। हे महात्मन्! वे निपट असहाय हैं, दीन हैं, उनके आँसुओंको पोंछनेवाला—आश्वस्त करनेवाला कोई नहीं है। हे प्रभो! वे अनाथकी भाँति बिलख-बिलखकर रो रही हैं। हे परमोदार मुने! हमारी समझमें ये मानुषी नहीं हैं। आपको इनका सत्कार करना चाहिये। आपके आश्रमके अति सन्निकट हैं, ऐसा ज्ञात होता है कि ये आपकी ही शरणमें आयी हैं—

न ह्येनां मानुषीं विद्मः सत्क्रियास्याः प्रयुज्यताम्।
आश्रमस्याविदूरे च त्वामियं शरणं गता॥

(७। ४९। ६)

हे भगवन्! ये साध्वी हैं, कोई रक्षक खोज रही हैं, अतः आप इनकी रक्षा करें। उन बालकोंके वचन सुनकर धर्मज्ञ महर्षिने भगवत्प्रदत्त बुद्धिसे निश्चित करके तात्त्विक बात समझ लिया; क्योंकि तपके द्वारा श्रीवाल्मीकिजीको दिव्यदृष्टि प्राप्त थी—

तेषां तु वचनं श्रुत्वा बुद्ध्या निश्चित्य धर्मवित्॥
तपसा लब्धचक्षुष्मान् प्राद्रवद् यत्र मैथिली।

(७। ४९। ७-८)

'तप' शब्दसे यहाँ साधारण तप नहीं लिया गया है। 'तप' शब्दके अनेक अर्थ हैं, उनमें 'तप' का अर्थ पूर्ण ब्रह्म परमात्मा अर्थात् श्रीरामजी भी है। श्रीजानकीजीके तात्त्विक स्वरूपका ज्ञान न पढ़नेसे होगा न लिखनेसे होगा तथा सांसारिक अनुभवसे भी नहीं होगा। करुणामयी श्रीजनकनन्दिनीके स्वरूपका परिज्ञान तो 'तप'—श्रीरामजीकी कृपासे ही होगा और जब उन्हें भगवत्कृपासे श्रीसीतातत्त्वका यथार्थ ज्ञान हो गया तो वे श्रीवाल्मीकि दौड़ते हुए श्रीसीताके पास गये। अथवा जब उन्हें श्रीरामकृपासे यह ज्ञान हो गया कि श्रीसीताजीके रूपमें साक्षात् श्रीरामजीकी करुणा ही मुझे कृतकृत्य करनेके लिये, जीवनका चरम फल देनेके लिये आयी है तब वे दौड़कर श्रीसीताजीके पास गये। अथवा जब उन्हें यह ज्ञान हुआ कि श्रीरामजीकी प्राणप्रिया प्रियतमा प्राणवल्लभा श्रीसीता और मेरे परम प्रिय मित्र चक्रवर्ती नरेन्द्र महाराज श्रीदशरथजीकी स्नुषा—पुत्रवधू मेरे आश्रमके

निकट अनाथकी भाँति रुदन कर रही है तब उनके हृदयमें अद्भुत अनोखा वात्सल्यरस हिलोरें लेने लगा और वे भागकर अपनी पुत्री सीताके पास गये।

महर्षिको आते देखकर श्रीसीताजीका मन काँप उठा कि ये मुझसे कुछ पूछेंगे तो मैं इनके प्रश्नका क्या उत्तर दूँगी? तन-मनसे प्रकम्पित श्रीसीताजीको देखकर, शोकभारसे व्यथित श्रीसीताजीको देखकर अपने तेजसे आह्लादित करते हुए मुनिश्रेष्ठ श्रीवाल्मीकि मनन करके—विचार करके श्रीसीताजीसे मधुरवाणीमें बोले—हे पतिव्रते! तुम चिन्ता न करो। मैं तुमसे कुछ नहीं पूछूँगा, मैं सब कुछ जानता हूँ, तुम चक्रवर्ती नरेन्द्र दशरथजीकी पुत्रवधू हो। अनाथनाथ जगन्नाथ अयोध्यानाथ रघुनाथ श्रीरामजीकी प्राणप्रिया, प्रियतमा एवं पटरानी हो। मिथिलाधिपति राजर्षि जनककी अयोनिजा पुत्री हो, हे पतिव्रते! तुम्हारा स्वागत है—

तां सीतां शोकभारार्तां वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः।
उवाच मधुरां वाणीं ह्लादयन्निव तेजसा॥
स्नुषा दशरथस्य त्वं रामस्य महिषी प्रिया।
जनकस्य सुता राज्ञः स्वागतं ते पतिव्रते॥

(७। ४९। १०-११)

हे पुत्रि! तुम्हारे परित्यागका कारण भी मुझे ज्ञात है—‘**कारणं चैव सर्वं मे हृदयेनोपलक्षितम्**’॥ इस पंक्तिमें ‘**सर्वं कारणम्**’ का अर्थ अत्यन्त गूढ़ है। निश्चित है कि मात्र लोकापवाद ही कारण नहीं है और भी कई अन्य कारण सम्भव हैं। इस पंक्तिमें श्रीसीतात्यागके समस्त कारणोंका निर्देश है। ऊपरसे देखनेमें भले ही लोकापवाद प्रधान कारण प्रतीत हो; परंतु वह बाह्य कारण है, आन्तरिक कारण तो कुछ और ही है। सम्प्रति मैं इस अत्यन्त रहस्यमय प्रसङ्गको विवशताजन्य बद्धाञ्जलि प्रणाम निवेदन करके आगे बढ़ता हूँ।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं—हे मैथिलि! मैं तपस्याके द्वारा प्राप्त दिव्यदृष्टिसे जानता हूँ कि तुम सर्वथा पापरहित हो, तुममें पापकी कल्पना करना भी कल्पनातीत पाप है। हे सीते! तुम अब चिन्तारहित हो जाओ। इस समय तुम मेरे पास हो—अपने पिताके पास हो—

अपापां वेद्मि सीते ते तपोलब्धेन चक्षुषा।
विस्रब्धा भव वैदेहि साम्प्रतं मयि वर्तसे॥

(७। ४९। १४)

हे पुत्रि! मैं तुमको ‘अपापा’ जानता हूँ, भाव कि तुम्हारे दर्शनमात्रसे समस्त प्राणियोंके पाप विनष्ट हो जाते हैं—‘**ते त्वामपापामवलोकनमात्रेण पापनिवर्तिकां वेद्मि मयि मत्समीपे यतस्त्वं वर्तसे अतः विस्रब्धा रामप्रीतिविषयकविश्वासयुक्ता भव**’। (रामायण-शिरोमणि-टीका) महर्षिने पुनः कहा—हे वत्से! मेरे आश्रमके सन्निकट ही तपस्यामें संलग्न कुछ तपस्विनी देवियाँ रहती हैं। वे अपनी पुत्रीकी भाँति तुम्हारा पालन करेंगी। हे सीते! यह मेरा दिया हुआ अर्घ्य स्वीकार करो और निश्चिन्त तथा विगतज्वरा हो जाओ। अपने ही घरमें आ गयी हो, ऐसा समझकर विषाद न करो—

आश्रमस्याविदूरे मे तापस्यस्तपसि स्थिताः।
तास्त्वां वत्से यथा वत्सं पालयिष्यन्ति नित्यशः॥
इदमर्घ्यं प्रतीच्छ त्वं विस्रब्धा विगतज्वरा।
यथा स्वगृहमभ्येत्य विषादं चैव मा कृथाः॥

(७। ४९। १५-१६)

श्रीसीताजीने प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक महर्षिकी आज्ञा स्वीकार कर ली।

श्रीलक्ष्मणजी यह समस्त चरित्र अपनी आँखोंसे देखते रहे। जब श्रीसीता महर्षिके साथ

आश्रममें प्रवेश करने लगीं तब श्रीलक्ष्मणजीको महान् संताप हुआ—

दृष्ट्वा तु मैथिलीं सीतामाश्रमे सम्प्रवेशिताम्।
संतापमगमद् घोरं लक्ष्मणो दीनचेतनः॥

(७।५०।१)

श्रीलक्ष्मणजीको सान्त्वना देते हुए महामन्त्री सुमन्त्रने कहा—हे राजकुमार! महर्षि भृगुने अपनी पत्नीके वधके कारण भगवान् विष्णुको शाप दिया था—हे जनार्दन! आपने मेरी पत्नीका वध किया है; अतः आपको मनुष्यलोकमें जन्म लेना पड़ेगा और वहाँ अनेक वर्षोंतक आपको अपनी पत्नीके वियोगका कष्ट सहना पड़ेगा—

यस्मादवध्यां मे पत्नीमवधीः क्रोधमूर्च्छितः।
तस्मात् त्वं मानुषे लोके जनिष्यसि जनार्दन॥
तत्र पत्नीवियोगं त्वं प्राप्स्यसे बहुवार्षिकम्।

(७।५१।१५-१६)

श्रीसुमन्त्रने कहा—हे सुमित्रानन्दन! विधाताका ऐसा ही विधान होनेके कारण आपको श्रीसीता तथा श्रीरामजीके लिये संताप नहीं करना चाहिये। आप धैर्य धारण करें—

एवं गते न संतापं कर्तुमर्हसि राघव।
सीतार्थे राघवार्थे वा दृढो भव नरोत्तम॥

(७।५१।२८)

श्रीलक्ष्मणजीने श्रीअयोध्या पहुँचकर श्रीरामजीके भवनमें जाकर उनके श्रीचरणोंमें प्रणाम किया। श्रीलक्ष्मणजीने देखा—श्रीरामजी अतिशय दुःखी होकर एक सिंहासनपर बैठे हैं, उनके दोनों नेत्र अश्रुपरिपूर्ण हैं। श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामजीकी इस अवस्थाको देखकर उनके श्रीचरणोंको पकड़कर सुसमाहित होकर दीन वाणीमें बोले—

स दृष्ट्वा राघवं दीनमासीनं परमासने।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां ददर्शाग्रजमग्रतः॥
जग्राह चरणौ तस्य लक्ष्मणो दीनचेतनः।
उवाच दीनया वाचा प्राञ्जलिः सुसमाहितः॥

(७।५२।६-७)

हे स्वामी! मैं आपकी आज्ञासे यशस्विनी, शुद्धाचारा, अपापा श्रीसीताजीको गङ्गातटपर महर्षि वाल्मीकिके पवित्र आश्रमके निकट, निर्दिष्ट स्थानमें छोड़कर आपके श्रीचरणोंमें आ गया हूँ। हे ककुत्स्थ-कुलभूषण! आप-जैसे श्रेष्ठ पुरुष इस तरहके प्रसङ्ग आनेपर मोहित नहीं होते हैं। हे रघुनन्दन! यदि आप दुःखी रहेंगे तो यह अपवाद पुनः जागृत हो जायगा। हे राजेन्द्र! जिस अपकीर्तिके कारण आपने गङ्गाजलकी तरह निष्कलङ्क श्रीजानकीजीका परित्याग किया है, असंदिग्ध-रूपसे वही अपवाद इस नगरमें पुनः होने लगेगा; अतः हे शार्दूल! आप धैर्यसे चित्तको समाहित करके इस दुर्बल शोकबुद्धिका परित्याग करें और संताप न करें—

स त्वं पुरुषशार्दूल धैर्येण सुसमाहितः।
त्यजेमां दुर्बलां बुद्धिं संतापं मा कुरुष्व ह॥

(७।५२।१६)

श्रीलक्ष्मणकी बातसे संतुष्ट होकर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्नतापूर्वक बोले—हे लक्ष्मण! तुमने मेरे आदेशका पालन किया इससे मुझे परितोष है। हे वीर! अब मैं दुःखसे निवृत्त हो गया। हे सौम्य! तुम्हारे सुन्दर वचनोंसे मुझे बड़ी शान्ति मिली है। मेरा संताप भी निराकृत हो गया—

परितोषश्च मे वीर मम कार्यानुशासने॥
निवृत्तिश्चागता सौम्य संतापश्च निराकृतः।
भवद्वाक्यैः सुरुचिरैरनुनीतोऽस्मि लक्ष्मण॥

(७।५२।१८-१९)

श्रीरामने कहा—हे सौम्य सुमित्राकुमार! चार दिवस व्यतीत हो गये, मैंने अपने पुरवासियोंका कुछ भी कार्य नहीं किया है। हे भैया! यह बात मेरे मर्मस्थलका कृन्तन कर रही है—

चत्वारो दिवसाः सौम्य कार्यं पौरजनस्य च।

अकुर्वाणस्य सौमित्रे तन्मे मर्माणि कृन्तति॥

(७। ५३। ४)

हे सुमित्राकुमार! पहले एक नृग नामके राजा थे। धर्मात्मा नृगने पुष्कर तीर्थमें जाकर ब्राह्मणोंको स्वर्णभूषित सवत्सा एक करोड़ गौवें दानमें दीं—

स कदाचिद् गवां कोटीः सवत्साः स्वर्णभूषिताः।
नृदेवो भूमिदेवेभ्यः पुष्करेषु ददौ नृपः॥

(७। ५३। ८)

एक तपस्वी उञ्छवृत्तिसे जीवननिर्वाह करनेवाले ब्राह्मणकी सवत्सा गौ भी गायोंके समूहमें आ गयी। राजाने उस गौका भी दान दे दिया। ब्राह्मणने अपनी गौको कनखलमें किसी ब्राह्मणके यहाँ देखा। पहचानके लिये ब्राह्मणने उसका नाम लिया। नाम लेते ही वह गौ उसके पीछे चल पड़ी। अब तो दोनों ब्राह्मणोंमें कलह आरम्भ हो गया। दोनों ब्राह्मण लड़ते-झगड़ते निर्णय करानेके लिये राजा नृगके पास आये। वे कई दिनोंतक निर्णय करानेके लिये रुके रहे, परंतु उनको राजाका न्याय नहीं मिला। दोनों ब्राह्मणोंको क्रोध आ गया। दोनोंने राजाको शाप दे दिया। अपने कलहका निर्णय करानेकी इच्छासे आये हुए प्रार्थियोंको तुम दर्शन नहीं देते हो; अतः सब प्राणियोंसे छिपकर रहनेवाले कृकलास—गिरगिट हो जाओ। कृकलासका अर्थ है—'**कृकं कण्ठं लासयति शोभान्वितं करोतीति कृकलासः**'। ब्राह्मणोंने कहा—कृकलास होनेपर श्रीकृष्णके हाथोंसे तुम्हारा उद्धार होगा।

भगवान् श्रीरामने कहा—हे सुमित्रानन्दन! तुम जाओ राजद्वारपर प्रतीक्षा करो कि कौन कार्यार्थी पुरुष आ रहा है—'**तस्माद् गच्छ प्रतीक्षस्व सौमित्रे कार्यवाञ्जनः**'।

राजा नृग अपने पुत्र वसुको राज्य देकर स्वयं एक सुनिर्मित गड्ढेमें प्रवेश करके शापको भोगने लगे—

एवमुक्त्वा नृपस्तत्र सुतं राजा महायशाः।
श्वभ्रं जगाम सुकृतं वासाय पुरुषर्षभ॥

(७। ५४। १८)

एक दिन श्रीरामजीने राजर्षि निमिकी कथा सुनायी। महाराज इक्ष्वाकुके पुत्र निमि थे। उन्होंने श्रीवसिष्ठजीको यज्ञके लिये वरण किया। श्रीवसिष्ठने कहा—हे राजन्! देवेन्द्र इन्द्रने एक यज्ञके लिये मेरा पहलेसे ही वरण किया है; अतः जबतक वह यज्ञ समाप्त न हो तबतक मेरी प्रतीक्षा करो—

तमुवाच वसिष्ठस्तु निमिं राजर्षिसत्तमम्।
वृतोऽहं पूर्वमिन्द्रेण अन्तरं प्रतिपालय॥

(७। ५५। १०)

इधर राजा निमिने अधीर होकर महर्षि गौतमके आचार्यत्वमें यज्ञ आरम्भ कर दिया। वसिष्ठने आकर अवज्ञा करनेके कारण राजा निमिको शाप दे दिया—हे निमे! तुमने मेरी अवज्ञा करके दूसरे पुरोहितका वरण कर लिया है; अतः तुम्हारा शरीर चेतनारहित होकर गिर जायगा—

यस्मात् त्वमन्यं वृतवान् मामवज्ञाय पार्थिव।
चेतनेन विनाभूतो देहस्ते पार्थिवैष्यति॥

(७। ५५। १७)

इसी प्रकार राजा निमिने भी शाप दे दिया कि आपका भी शरीर चेतनारहित होकर गिर जाय। श्रीलक्ष्मणने पूछा—हे ककुत्स्थकुलभूषण! वे ब्रह्मर्षि और राजर्षि देवताओंके द्वारा भी समादरणीय थे, उन्होंने अपने शरीरोंका त्याग करके पुनः अभिनव शरीर कैसे ग्रहण किया?

निक्षिप्य देहौ काकुत्स्थ कथं तौ द्विजपार्थिवौ।
पुनर्देहेन संयोगं जग्मतुर्देवसम्मतौ॥

(७। ५६। २)

भगवान् श्रीरामने कहा—हे सुमित्रानन्दन! तपोधन राजर्षि निमि और ब्रह्मर्षि वसिष्ठ दोनों एक-दूसरेके शापसे देह त्याग करके वायुरूप हो गये—

तौ परस्परशापेन देहमुत्सृज्य धार्मिकौ।
अभूतां नृपविप्रर्षी वायुभूतौ तपोधनौ॥

(७। ५६। ४)

तदनन्तर मित्र और वरुणके तेजसे पूर्ण कुम्भसे दो तेजस्वी ब्राह्मण प्रकट हुए—श्रीअगस्त्य और वसिष्ठ। वसिष्ठजीके प्रकट होते ही राजर्षि इक्ष्वाकुने अपने कुलके पौरोहित्य-पदके लिये उनका तुरंत वरण कर लिया—

तमिक्ष्वाकुर्महातेजा जातमात्रमनिन्दितम्।
वव्रे पुरोधसं सौम्य वंशस्यास्य हिताय नः॥

(७। ५७। ८)

राजर्षि निमिने शरीर धारण नहीं किया। उन्होंने देवताओंसे वरदान माँगा कि मैं प्राणिमात्रके नेत्रोंमें निवास करना चाहता हूँ—

नेत्रेषु सर्वभूतानां वसेयं सुरसत्तमाः॥

(७। ५७। १४)

देवताओंने उन्हें लोगोंकी पलकोंपर निवास दे दिया।

उनके जीवरहित शरीरपर अरणि रखकर मन्थन करनेसे महातपस्वी 'मिथि' उत्पन्न हुए। इस अद्भुत जन्मका हेतु होनेके कारण ये 'जनक' कहलाये। जीवरहित देहसे प्रकट होनेके कारण उन्हें 'वैदेह' भी कहा गया। इस प्रकार पहले विदेहराज जनकका नाम महातेजस्वी मिथि हुआ। इसीसे यह जनकवंश मैथिल कहलाया—

अरण्यां मथ्यमानायां प्रादुर्भूतो महातपाः।
मथनान्मिथिरित्याहुर्जननाज्जनकोऽभवत् ॥
यस्माद् विदेहात् सम्भूतो वैदेहस्तु ततः स्मृतः।
एवं विदेहराजश्च जनकः पूर्वकोऽभवत्।
मिथिर्नाम महातेजास्तेनायं मैथिलोऽभवत्॥

(७। ५७। १९-२०)

श्रीलक्ष्मणने कहा—हे महाराज! यह वृत्तान्त अत्यन्त अद्भुत है। परंतु राजा निमिने महात्मा वसिष्ठको शाप दे दिया, जबकि वे क्षत्रिय थे और यज्ञमें दीक्षित थे। क्या यह उचित हुआ?

निमिस्तु क्षत्रियः शूरो विशेषेण च दीक्षितः।
न क्षमं कृतवान् राजा वसिष्ठस्य महात्मनः॥

(७। ५८। ३)

श्रीरामजीने कहा—हे सुमित्राकुमार! जैसी क्षमा ययातिमें थी वैसी क्षमा सब पुरुषोंमें नहीं देखी जाती—

न सर्वत्र क्षमा वीर पुरुषेषु प्रदृश्यते॥
सौमित्रे दुःसहो रोषो यथा क्षान्तो ययातिना।

(७। ५८। ५-६)

ययातिकी पत्नी देवयानीकी प्रेरणासे श्रीशुक्राचार्यने ययातिको वृद्धत्वका शाप दे दिया, परंतु ययातिने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। तदनन्तर अपने पुरुकी युवावस्था लेकर कुछ दिनोंतक उपभोग करके पुनः वापस कर दिया। इस कथाके सुनानेका आशय यह है कि शुक्राचार्यके द्वारा प्रदत्त शापको राजा ययातिने क्षत्रियधर्मके अनुसार धारण कर लिया; परंतु राजा निमिने वसिष्ठजीका शाप सहन नहीं किया—

एष तूशनसा मुक्तः शापोत्सर्गो ययातिना।
धारितः क्षत्रधर्मेण यं निमिश्चक्षमे न च॥

(७। ५९। २१)

भगवान् श्रीराम संध्या-वन्दन आदि नित्यकर्म करके राजधर्मोंका पालन करनेके लिये वेदवेत्ता ब्राह्मणों, पुरोहित वसिष्ठ आदिके साथ राज्यसभामें उपस्थित होकर न्यायके आसनपर विराजमान हुए। वह सभा व्यवहारज्ञ मन्त्रियों, विद्वानों, नीतिज्ञों, राजाओं तथा अन्य सभासदोंसे सुशोभित

थी। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने कहा—हे लक्ष्मण! कार्यार्थियोंको क्रमशः बुलाओ।

श्रीलक्ष्मणने बाहर देखा कि एक कुत्ता बार-बार भूँक रहा है। श्रीलक्ष्मणने कहा—हे महाभाग! तुम शंकारहित होकर बताओ कि तुम्हारा क्या कार्य है? सुनकर कुत्तेने कहा—'**सर्वभूतशरण्याय**'—आजतक जितने राजा हुए हैं उन्होंने गरीब, अमीर सबको आश्रय दिया होगा; परंतु श्वानको तो अपनी शरणमें केवल श्रीरामजी ही ले सकते हैं। कुत्तेकी बातको ध्यानपूर्वक केवल श्रीरामजी ही सुन सकते हैं; अतः वे 'सर्वभूतशरण्य' हैं। कुत्तेने कहा—सर्वभूतशरण्य, अक्लिष्टकर्मा, भयाक्रान्तको निर्भय करनेवाले जो श्रीरामजी हैं, मैं उन्हींके सामने अपना कार्य निवेदन कर सकता हूँ—

सर्वभूतशरण्याय रामायाक्लिष्टकर्मणे।
भयेष्वभयदात्रे च तस्मै वक्तुं समुत्सहे॥

(प्रक्षिप्त सर्ग १। १७)

श्रीलक्ष्मणने श्रीराघवेन्द्रसे जाकर कहा—हे प्रभो! द्वारपर कार्यार्थी कुत्ता खड़ा है। प्रभुने कहा—यहाँ जो भी कार्यार्थी खड़ा है, उसे शीघ्र सभामें ले आओ—

श्वा वै ते तिष्ठते द्वारि कार्यार्थी समुपागतः।
लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत्।
सम्प्रवेशय वै क्षिप्रं कार्यार्थी योऽत्र तिष्ठति॥

(प्रक्षिप्त सर्ग १। २८)

श्रीरामजीने देखा कि आनेवाले कुत्तेका मस्तक फट गया है। प्रभुने कहा—हे सारमेय! तुम निर्भय होकर जो कहना हो कहो—

अथापश्यत तत्रस्थं रामं श्वा भिन्नमस्तकः।
ततो दृष्ट्वा स राजानं सारमेयोऽब्रवीद् वचः॥

(प्रक्षिप्त सर्ग २। ३)

कुत्तेने कहा—हे प्रभो! सर्वार्थसिद्ध नामका एक भिक्षुक है। वह एक ब्राह्मणके घरमें रहता है, उसने मुझे आकर अकारण मारा है। हे न्यायकर्ता प्रभो! मैंने कोई अपराध नहीं किया था—

भिक्षुः सर्वार्थसिद्धश्च ब्राह्मणावसथे वसन्॥
तेन दत्तः प्रहारो मे निष्कारणमनागसः।

(प्रक्षिप्त सर्ग २। १६-१७)

प्रभुने तत्काल उस भिक्षुकको बुलाकर पूछा—हे ब्रह्मन्! आपने इस सारमेयके मस्तकपर क्यों प्रहार किया है? भिक्षुकने कहा—हे राजन्! मैं भूखा था, यह मार्गमें खड़ा था, मेरे बार-बार कहनेपर भी यह हटा नहीं। मैं भूखा तो था ही, मुझे क्रोध आ गया, मैंने इसके मस्तकपर लगुड-प्रहार कर दिया। हे राजराजेन्द्र! मैं अपराधी हूँ, आप मुझे दण्ड दें—

क्रोधेन क्षुधयाविष्टस्ततो दत्तोऽस्य राघव।
प्रहारो राजराजेन्द्र शाधि मामपराधिनम्॥

(प्रक्षिप्त सर्ग २। ३०)

अपराध तो बहुत-से लोग करते हैं, परंतु सामान्यजन उस अपराधको छिपानेका प्रयास करते हैं। एक अपराधको छिपानेके लिये चार अपराध और कर लेते हैं तथा अपराधोंके दलदलमें फँसते जाते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिये, अपराध किससे नहीं होता है? ब्राह्मणने स्पष्ट कह दिया—हे राजराजेन्द्र! मैं अपराधी हूँ, आप मुझे दण्ड दें। दण्ड भोग लेनेपर नरकमें गिरनेका भय समाप्त हो जायगा—

त्वया शस्तस्य राजेन्द्र नास्ति मे नरकाद्भयम्।

(प्रक्षिप्त सर्ग २। ३१)

जब यह विचार होने लगा कि इस अपराधी भिक्षुकको क्या दण्ड दिया जाय, तब उस समय श्वानने कहा—हे प्रभो! इसे मेरी इच्छाके अनुसार दण्ड दिया जाय। हे वीर नराधिप! इसे कालञ्जर

नामक स्थानमें कुलपतिके पदपर प्रतिष्ठित कर दें। श्रीरामजीने उस भिक्षुककी कुलपतिपदपर प्रतिष्ठा कर दी—

कालञ्जरे महाराज कौलपत्यं प्रदीयताम्।
एतच्छ्रुत्वा तु रामेण कौलपत्येऽभिषेचितः॥

(प्रक्षिप्त सर्ग २। ३९)

अब प्रश्न हुआ कि इसे दण्ड दिया गया या पुरस्कार? श्रीरामके पूछनेपर कुत्तेने कहा—हे प्रभो! मैं भी पूर्व जन्ममें कालञ्जरमें कुलपति-पदपर था। मैं सत्कर्म करता था फिर भी मैं कुत्ता बन गया। यह तो निश्चित ही अगले जन्ममें कुत्ता होगा। तब श्वानयोनिमें जानेपर सम्भव है कि इसे भी इस तरह कोई मारेगा, तब इसको मेरी व्यथाकी अनुभूति होगी।

आगे श्वानने कहा—जो ब्राह्मणका, देवताका, स्त्रियोंका और बालकोंका धन अपहरण कर लेता है और जो अपनी दान की हुई सम्पत्तिको पुनः वापस ले लेता है, वह अपने प्रियजनोंके समेत विनाशको प्राप्त होता है—

ब्रह्मस्वं देवताद्रव्यं स्त्रीणां बालधनं च यत्॥
दत्तं हरति यो भूय इष्टैः सह विनश्यति।

(प्रक्षिप्त सर्ग २। ४८-४९)

इसके अनन्तर कुत्तेने काशीमें जाकर अन्न-जलका परित्याग कर प्राण त्याग कर दिया।

इस प्रसङ्गमें 'कुलपति' शब्दपर थोड़ा विचार आवश्यक प्रतीत होता है। शब्दोंके अनेक अर्थ होते हैं। शास्त्रकी दृष्टिसे जो अर्थ विपरीत न हो उस अर्थको अप्रसिद्ध होनेपर भी मान लेना चाहिये। उसका सम्मान करना चाहिये।

'शब्दकल्पद्रुम' नामक कोषमें 'कुलपति' शब्दका अर्थ है—'**कुलस्य वंशस्य गोत्रस्य वा पतिः कुलपतिः**'। महाभारतके प्रसिद्ध टीकाकार श्रीनीलकण्ठजीने 'कुलपति' शब्दकी व्याख्या करते हुए लिखा है—'**एको दशसहस्राणि योऽन्न दानादिना भरेत्। स वै कुलपतिः प्रोक्तः**'। श्रीमद्भागवतके टीकाकार श्रीश्रीधरजीने भी इसीसे मिलता-जुलता लक्षण कहा है—'**मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादिपोषणात्। अध्यापयति विप्रर्षिः स वै कुलपतिः स्मृतः**'। अर्थात् जो विप्रर्षि दस हजार मुनियोंका अन्न-वस्त्रादिके द्वारा भरण-पोषण करता है तथा उन्हें पढ़ाता है—विद्याभूषणसे अलंकृत करता है, वह मुनि 'कुलपति' शब्द-वाच्य है। श्रीमद्भागवतमें शौनक और दुर्वासा महर्षिको कुलपति कहा गया है। इस अत्यन्त संक्षिप्त कुलपतिके लक्षणके ऊपर विद्वान् श्रोता गम्भीरतासे विचार करें।

एक दिन श्रीरामजी सभामें उपस्थित थे, उसी समय श्रीसुमन्त्रने आकर कहा—हे राजराजेन्द्र! भृगुपुत्र च्यवन ऋषिके नेतृत्वमें अनेकों महर्षि पधारे हैं, वे आपका दर्शन शीघ्र करना चाहते हैं—

भार्गवं च्यवनं चैव पुरस्कृत्य महर्षयः।
दर्शनं ते महाराज चोदयन्ति कृतत्वराः॥

(७। ६०। ४)

श्रीरामजीने उन्हें शीघ्र बुलवाया। आनेपर महर्षियोंका स्वागत करके आसन देकर श्रीरामजीने कहा—हे महर्षियो! यह समस्त राज्य, मेरा प्राण तथा समस्त वैभव ब्राह्मणोंकी सेवाके लिये है। मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ—

इदं राज्यं च सकलं जीवितं च हृदि स्थितम्।
सर्वमेतद् द्विजार्थं मे सत्यमेतद् ब्रवीमि वः॥

(७। ६०। १४)

श्रीरामजीके वचन सुनकर यमुनातटके निवासी सब संत बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उच्चस्वरसे श्रीरामजीको साधुवाद दिया—

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा साधुकारो महानभूत्।

ऋषीणामुग्रतपसां यमुनातीरवासिनाम्॥

(७।६०।१५)

मुनियोंने कहा—हे राजराजेन्द्र! सत्ययुगमें एक बुद्धिमान् दैत्य था। वह लोलाका ज्येष्ठ पुत्र था, उसका नाम मधु था। वह ब्रह्मण्य और शरण्य था। परमोदार देवताओंसे उसकी अनोखी प्रीति थी—

ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च बुद्ध्या च परिनिष्ठितः।
सुरैश्च परमोदारैः प्रीतिस्तस्यातुलाभवत्॥

(७।६१।४)

हे श्रीरघुनन्दन! मधुने भगवान् शङ्करकी आराधना की। शङ्करजीने प्रसन्न होकर अपने शक्तिशाली शूलसे प्रकट करके एक शक्तिशाली शूल उसको दिया और कहा—जो व्यक्ति तुम्हारे सामने युद्ध करने आवेगा उसे भस्म करके यह शूल पुनः तुम्हारे पास ही आ जायगा—

यश्च त्वामभियुञ्जीत युद्धाय विगतज्वरः।
तं शूलो भस्मसात्कृत्वा पुनरेष्यति ते करम्॥

(७।६१।९)

मधुने श्रीशङ्करजीसे प्रार्थना की—हे भगवन्! यह शूल मेरे वंशजोंके पास सदा बना रहे। भगवान् शङ्करने कहा—यह असम्भव है; परंतु तुम्हारा सम्मान रखनेके लिये मैं यह वर देता हूँ कि तुम्हारे एक पुत्रके पास यह शूल रहेगा। यह शूल जबतक तुम्हारे पुत्रके हाथमें रहेगा, तबतक वह समस्त प्राणियोंसे अवध्य रहेगा—

यावत्करस्थः शूलोऽयं भविष्यति सुतस्य ते।
अवध्यः सर्वभूतानां शूलहस्तो भविष्यति॥

(७।६१।१४)

महर्षि च्यवनने कहा—हे रघुनन्दन! मधुकी पत्नी कुम्भीनसीसे एक लवण नामका पुत्र है, वह बहुत दुष्ट है, उसके अत्याचारसे सब सज्जन महात्मा बहुत संतप्त हैं। उस शूलके प्रभावसे वह अवध्य-सा हो गया है। यों तो वह सभी प्राणियोंका भोजन करता है; परंतु ऋषि-मुनिका विशेष भक्षण करता है। उसका व्यवहार क्रूर एवं भयानक है, वह सदा मधुवनमें रहता है—

आहारः सर्वसत्त्वानि विशेषेण च तापसाः।
आचारो रौद्रता नित्यं वासो मधुवने तथा॥

(७।६२।३)

श्रीरामजीने मुनियोंको निर्भय करके वहाँ एकत्र हुए अपने सब भाइयोंसे पूछा—हे भाइयो! इस लवणासुरको कौन वीर मारेगा? उसे किसके भागमें रखा जाय, महाबाहु भरतके अथवा बुद्धिमान् शत्रुघ्नके—

को हन्ता लवणं वीरः कस्यांशः स विधीयताम्।
भरतस्य महाबाहोः शत्रुघ्नस्य च धीमतः॥

(७।६२।८)

प्रभुकी बात सुनकर श्रीभरतजी बोले—हे स्वामी! इस लवण दैत्यको मैं मारूँगा। इसे मेरे भागमें रखा जाय। भरतजीकी वीरतापूर्ण वाणी सुनकर श्रीरामको प्रणाम कर श्रीशत्रुघ्न बोले—हे रघुनन्दन! मझले भैया महाबाहु श्रीभरत तो अनेक कार्य कर चुके हैं। चौदह वर्षतक श्रीअयोध्यापुरीका पालन इन्होंने किया था। हे अयोध्यानाथ! महायशस्वी भैया श्रीभरतजीने नन्दिग्राममें बहुत दुःख भोगे हैं, अब ये मुझ सेवकके रहते हुए अधिक क्लेश न उठावें, अतः लवण दैत्यका वध मैं करूँगा। श्रीशत्रुघ्नकी बात सुनकर श्रीरामने कहा—हे ककुत्स्थकुलभूषण! तुम जैसा कहते हो वही हो। तुम्हीं मेरे आदेशका पालन करो। मैं तुम्हें मधुके सुन्दर नगरमें राजाके पदपर अभिषिक्त करूँगा—

तथा ब्रुवति शत्रुघ्ने राघवः पुनरब्रवीत्॥
एवं भवतु काकुत्स्थ क्रियतां मम शासनम्।
राज्ये त्वामभिषेक्ष्यामि मधोस्तु नगरे शुभे॥

(७।६२।१५-१६)

श्रीरामजीकी बात सुनकर श्रीशत्रुघ्न बहुत लज्जित हुए और वे धीरे-धीरे बोले—वास्तवमें मुझसे महान् त्रुटि हो गयी है। मझले भैया श्रीभरतके प्रतिज्ञा कर लेनेपर मुझे कुछ नहीं बोलना चाहिये था—

नोत्तरं हि मया वाच्यं मध्यमे प्रतिजानति॥

(७।६३।४)

हे पुरुषोत्तम! मेरे मुखसे ये बड़े ही अनुचित शब्द निकल गये कि मैं लवणको मारूँगा। उस अनुचित कथनका ही परिणाम है कि मेरी इस प्रकार दुर्गति हो रही है कि बड़ोंके होते हुए मुझे अभिषिक्त होना पड़ेगा और आपका दारुण वियोग सहना पड़ेगा। परंतु मैं यह भी जानता हूँ कि आपका शासन किसीके लिये भी दुर्लङ्घ्य है। भगवान् श्रीरामने श्रीभरत तथा लक्ष्मण आदिसे कहा—तुम सब लोग राज्याभिषेककी सामग्री एकत्रित करो। मैं अभी रघुकुलनन्दन नरशार्दूल शत्रुघ्नका अभिषेक करूँगा—

सम्भारानभिषेकस्य आनयध्वं समाहिताः।
अद्यैव पुरुषव्याघ्रमभिषेक्ष्यामि राघवम्॥

(७।६३।१०)

मेरी आज्ञासे पुरोहित, वैदिक विद्वानों, ऋत्विजों तथा समस्त मन्त्रियोंको बुला लाओ। भगवान् श्रीरामने बड़े हर्ष एवं उत्साहके साथ शत्रुघ्नका मधुपुरीके राजाके पदपर अभिषेक किया। इस समय कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी तथा राज्यभवनकी अन्य राजमहिलाओंने मिलकर मङ्गलकार्य सम्पन्न किया।

श्रीशत्रुघ्नजीके राज्याभिषेक होनेसे यमुनातटपर निवास करनेवाले च्यवन आदि महात्मा ऋषियों-को पूर्ण विश्वास हो गया कि अब लवणासुर मारा गया—

ऋषयश्च महात्मानो यमुनातीरवासिनः॥
हतं लवणमाशंसुः शत्रुघ्नस्याभिषेचनात्।

(७।६३।१७-१८)

अभिषेकके पश्चात् भाग्यशाली शत्रुघ्नको भ्रातृवत्सल श्रीरामजीने अपनी गोदमें बिठाकर उनके तेजका अभिवर्द्धन करते हुए मधुर वाणीमें कहा—हे सौम्य! हे रघुनन्दन! हे शत्रुघ्न! मैं तुम्हें दिव्य अमोघ बाण दे रहा हूँ। इस बाणके द्वारा तुम लवणासुरका वध अवश्य करोगे—

ततोऽभिषिक्तं शत्रुघ्नमङ्कमारोप्य राघवः।
उवाच मधुरां वाणीं तेजस्तस्याभिपूरयन्॥
अयं शरस्त्वमोघस्ते दिव्यः परपुरञ्जयः।
अनेन लवणं सौम्य हन्तासि रघुनन्दन॥

(७।६३।१८-१९)

हे शत्रुघ्न! लवणासुर शङ्करप्रदत्त शूलका नित्य पूजन करता है, वह नगरके बाहर आहार-संग्रहके लिये जाता है। जब वह बाहर जाय उसी समय तुम द्वारपर पहुँच जाओ। जिस समय उसके पास शूल न हो और वह नगरमें भी न पहुँच सका हो, उसी समय नगरद्वारपर ललकारकर उसे मार डालो—

स त्वं पुरुषशार्दूल तमायुधविनाकृतम्।
अप्रविष्टं पुरं पूर्वं द्वारि तिष्ठ धृतायुधः॥

(७।६३।२८)

श्रीरामजीने बहुत बड़ी सेना, प्रभूत सम्पत्ति, अनेक सेवक शत्रुघ्नको ले जानेकी आज्ञा दी। सेनाके प्रस्थान करनेके पश्चात् एक मासपर्यन्त शत्रुघ्नजी श्रीरामजीके पास रहे।

श्रीशत्रुघ्नने एक मासके पश्चात् गुरुदेव वसिष्ठ, कौसल्यादि माताओंको अभिवादन किया। श्रीरामकी परिक्रमा करके उनके श्रीचरणोंमें प्रणाम किया। हाथ जोड़कर श्रीभरत और श्रीलक्ष्मणको प्रणाम किया—

रामं प्रदक्षिणीकृत्य शिरसाभिप्रणम्य च।

लक्ष्मणं भरतं चैव प्रणिपत्य कृताञ्जलिः॥

(७। ६४। १६)

इस प्रकार श्रीशत्रुघ्न अयोध्यासे प्रस्थान करके तीसरे दिन महर्षि वाल्मीकिजीके आश्रमपर पहुँच गये—

द्विरात्रमन्तरे शूर उष्य राघवनन्दनः।
वाल्मीकेराश्रमं पुण्यमगच्छद् वासमुत्तमम्॥

(७। ६५। २)

महर्षि वाल्मीकिके श्रीचरणोंमें प्रणाम किया। महर्षिने उनका स्वागत किया। जिस रात्रिमें शत्रुघ्नने पर्णशालामें प्रवेश किया था, उसी रात्रिमें श्रीसीताजीने दो पुत्रोंको जन्म दिया—

यामेव रात्रिं शत्रुघ्नः पर्णशालां समाविशत्।
तामेव रात्रिं सीतापि प्रसूता दारकद्वयम्॥

(७। ६६। १)

महर्षिने कुश और लवसे उनकी रक्षा-विधानका उपदेश किया तथा बालकोंका कुश तथा लव नामकरण-संस्कार किया और कहा कि मेरे द्वारा निश्चित किये गये इन्हीं नामोंसे ये बालक भूतलमें विख्यात होंगे—

एवं कुशलवौ नाम्ना तावुभौ यमजातकौ।
मत्कृताभ्यां च नामभ्यां ख्यातियुक्तौ भविष्यतः॥

(७। ६६। ९)

अर्द्धरात्रिकी वेलामें श्रीराम और श्रीसीताके नाम और गोत्रके उच्चारणके शब्द श्रीशत्रुघ्नके कानोंमें पड़े। उन्हें श्रीसीताजीके दो सुन्दर पुत्र होनेका महान् सुखद एवं प्रिय समाचार मिला। तदनन्तर वे श्रीसीताजीकी पर्णशालामें गये और बोले—हे करुणामयि! तपस्विनि! हे मातः! यह हमारे बड़े सौभाग्यकी बात है—

तथा तां क्रियमाणां च वृद्धाभिर्गोत्रनाम च।
सङ्कीर्तनं च रामस्य सीतायाः प्रसवौ शुभौ॥
अर्द्धरात्रे तु शत्रुघ्नः शुश्राव सुमहत्प्रियम्।
पर्णशालां ततो गत्वा मातर्दिष्ट्येति चाब्रवीत्॥

(७। ६६। ११-१२)

श्रीशत्रुघ्नजीको लव, कुशके जन्मका समाचार सुनकर इतनी प्रसन्नता हुई कि वर्षा-ऋतुकी वह श्रावणी रात बात-बातमें बीत गयी—

तदा तस्य प्रहृष्टस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः।
व्यतीता वार्षिकी रात्रिः श्रावणी लघुविक्रमा॥

(७। ६६। १३)

प्रातःकाल होनेपर संध्या-वन्दन करके मुनिसे आज्ञा लेकर श्रीशत्रुघ्नने पश्चिम दिशाकी ओर प्रस्थान किया। मार्गमें सात रात व्यतीत करके वे यमुनातटपर पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर च्यवन आदि महर्षियोंके साथ मनोहर कथा-वार्ता-द्वारा महायशस्वी राजा शत्रुघ्न समय बिताने लगे—

स तत्र मुनिभिः सार्धं भार्गवप्रमुखैर्नृपः।
कथाभिरभिरूपाभिर्वासं चक्रे महायशाः॥

(७। ६६। १६)

महर्षि च्यवनने एक दिन रात्रिके समय लवणासुरके शूलकी शक्तिका परिचय देते हुए एक कथा सुनायी। श्रीअयोध्यापुरीमें युवनाश्वके पुत्र चक्रवर्ती मान्धाता रहते थे। वे एक बार स्वर्ग-लोकपर विजय प्राप्त करनेके लिये स्वर्ग गये। वहाँपर देवराज इन्द्रने कहा—हे नरशार्दूल! अभी तो आपने समूची पृथ्वीको भी वशमें नहीं किया है। यह सुनकर मान्धाताने पूछा—भूलोकमें मेरे आदेशकी अवहेलना कहाँ होती है? तब इन्द्रने कहा—हे नरेश! मधुवनमें मधुपुत्र लवण निवास करता है, वह आपकी आज्ञा नहीं मानता—

तमुवाच सहस्राक्षो लवणो नाम राक्षसः।
मधुपुत्रो मधुवने न तेऽऽज्ञां कुरुतेऽनघ॥

(७। ६७। १३)

मान्धाता इन्द्रकी अप्रिय बात सुनकर लज्जित हो गये। फिर वे सेवक, सेना और सवारियोंसहित मधुको वशमें करनेके लिये यमुनातटपर आये। हे शत्रुघ्न! इस लवणासुरने अपने चमाचम चमकते हुए शूलसे मान्धाताका विनाश कर दिया। हे शत्रुघ्न! आप उसका नाश अवश्य करेंगे। मुनियोंने कहा—हे महात्मन्! कल प्रात:काल जब वह बिना शूलके मांस-संग्रहके लिये निकलेगा, उसी समय आप उसको मार डालेंगे, इसमें संदेह नहीं है। हे नरेन्द्र! आपकी विजय अवश्य होगी—

त्वं श्वः प्रभाते लवणं महात्मन्
वधिष्यसे नात्र तु संशयो मे।
शूलं विना निर्गतमामिषार्थे
ध्रुवो जयस्ते भविता नरेन्द्र॥

(७। ६७। २६)

प्रात:काल होनेपर लवणासुर भक्ष्याहार-संग्रह करनेके लिये अपने नगरसे बाहर निकला। इसी मध्यमें वीर शत्रुघ्न यमुनानदीको पार करके, हाथमें धनुष धारण करके मधुपुरीके द्वारपर खड़े हो गये—

एतस्मिन्नन्तरे वीरः शत्रुघ्नो यमुनां नदीम्।
तीर्त्वा मधुपुरद्वारि धनुष्पाणिरतिष्ठत॥

(७। ६८। ३)

मध्याह्नमें हजारों प्राणियोंका भार लिये लवणासुर वहाँ आया। द्वारपर अस्त्र-शस्त्र लिये श्रीशत्रुघ्नको देखकर उसने कहा—अरे नराधम! तेरी तरह अस्त्र-शस्त्र लिये हजारों मनुष्योंको मैं रोषपूर्वक खा चुका हूँ। श्रीशत्रुघ्नने कहा—अरे दुर्बुद्धे! मैं तेरे साथ द्वन्द्व युद्ध करना चाहता हूँ। मैं महाराज श्रीदशरथका पुत्र हूँ। परम बुद्धिमान् भगवान्, श्रीमान् रामका भाई हूँ। मैं नाम और काम दोनोंसे शत्रुघ्न हूँ। मैं तुम्हें मारनेकी इच्छासे यहाँ आया हूँ—

उवाच च सुसंक्रुद्धः शत्रुघ्नः स निशाचरम्।
योद्धुमिच्छामि दुर्बुद्धे द्वन्द्वयुद्धं त्वया सह॥
पुत्रो दशरथस्याहं भ्राता रामस्य धीमतः।
शत्रुघ्नो नाम शत्रुघ्नो वधाकाङ्क्षी तवागतः॥

(७। ६८। १०-११)

लवणासुर श्रीरामका नाम सुनते ही बोला—हे पुरुषाधम! रावण मेरी मौसी शूर्पणखाका भाई था। तेरे भाईने एक स्त्रीके लिये उसको मार डाला। उस समय मैंने क्षमा कर दिया। दो घड़ी ठहर, मैं अपना अस्त्र लेकर आता हूँ। श्रीशत्रुघ्नने कहा—अब तू मेरे हाथसे जीवित बचकर कहाँ जायगा?

तमुवाचाशु शत्रुघ्नः क्व मे जीवन् गमिष्यसि॥

(७। ६८। १८)

अरे राक्षस! जब तूने दूसरे वीरोंको मारा था तब शत्रुघ्नका जन्म भी नहीं हुआ था। आज मेरे बाणोंसे मरकर तू सीधे यमराजके लोकका मार्ग ले—

शत्रुघ्नो न तदा जातो यदान्ये निर्जितास्त्वया।
तदद्य बाणाभिहतो व्रज त्वं यमसादनम्॥

(७। ६९। ४)

श्रीशत्रुघ्न और लवणासुरका भयंकर युद्ध होने लगा। उसी समय दैत्यने एक वृक्ष लेकर उसे शत्रुघ्नके सिरपर दे मारा। उसके द्वारा घायल होकर शत्रुघ्नके अङ्ग-अङ्ग ढीले पड़ गये और उन्हें मूर्च्छा आ गयी—

ततः प्रहस्य लवणो वृक्षमुद्यम्य वीर्यवान्।
शिरस्यभ्यहनच्छूरं स्त्रस्ताङ्गः स मुमोह वै॥

(७। ६९। १२)

वीरवर श्रीशत्रुघ्नके भूमिपर गिरते ही ऋषियों,

देववृन्दों, गन्धर्वों और अप्सराओंमें महान् हाहाकार होने लगा—

तस्मिन्निपतिते वीरे हाहाकारो महानभूत्।
ऋषीणां देवसंघानां गन्धर्वाप्सरसां तथा॥

(७। ६९। १३)

शत्रुघ्नको मूर्च्छित देखकर लवणासुरने समझा कि शत्रुघ्न मर गये; अतः समय मिलनेपर भी न अपने घरमें गया और न शूल ही ले आया—**'रक्षो लब्धान्तरमपि न विवेश स्वमालयम्'**।

एक मुहूर्त्तमें श्रीशत्रुघ्न सचेत हो गये। वे अस्त्र-शस्त्र लेकर नगरद्वारपर पुनः पूर्ववत् खड़े हो गये। उस समय ऋषियोंने उनकी महती श्लाघा की—

मुहूर्ताल्लब्धसंज्ञस्तु पुनस्तस्थौ धृतायुधः।
शत्रुघ्नो वै पुरद्वारि ऋषिभिः सम्प्रपूजितः॥

(७। ६९। १६)

श्रीशत्रुघ्नने श्रीरामजीका दिया हुआ दिव्य और अमोघ रामबाण हाथमें ले लिया। उस समय उस दिव्य बाणको सभी प्राणियोंने देखा कि वह प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्ज्वलित हो रहा था। नभोमण्डलको देवताओंसे खचाखच भरा हुआ देखकर रघुकुलनन्दन श्रीशत्रुघ्नने बड़ा भयंकर सिंहगर्जन करके लवणासुरकी ओर देखा और उसे युद्ध करनेके लिये पुनः ललकारा। लवणासुरके संग्राममें आनेपर धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ महात्मा शत्रुघ्नने अपने धनुषको कर्णपर्यन्त आकर्षित करके उस दिव्य अमोघ श्रीरामप्रदत्त महाबाणका लवणासुरके विशाल वक्षःस्थलपर प्रहार किया। वह देवपूजित बाण तत्काल लवणासुरके हृदयको विदीर्ण करके रसातलमें प्रविष्ट हो गया तथा रसातलमें जाकर पुनः उसी समय इक्ष्वाकुकुलनन्दन श्रीशत्रुघ्नके पास आ गया—

लवणः क्रोधसंयुक्तो युद्धाय समुपस्थितः।
आकर्णात् स विकृष्याथ तद् धनुर्धन्विनां वरः॥
स मुमोच महाबाणं लवणस्य महोरसि।
उरस्तस्य विदार्याशु प्रविवेश रसातलम्॥
गत्वा रसातलं दिव्यः शरो विबुधपूजितः।
पुनरेवागमत् तूर्णमिक्ष्वाकुकुलनन्दनम्॥

(७। ६९। ३४—३६)

लवणासुर पर्वतके समान सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा—मर गया। उसके मरते ही वह दिव्य शूल भगवान् रुद्रके पास आ गया।

उस समय देवता, ऋषि, नाग और समस्त अप्सराएँ शत्रुघ्नजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगीं कि सौभाग्यकी बात है—दशरथनन्दन श्रीशत्रुघ्नने भय छोड़कर विजय प्राप्त की और सर्पके समान लवणासुर मर गया—

ततो हि देवा ऋषिपन्नगाश्च
प्रपूजिरे ह्यप्सरसश्च सर्वाः।
दिष्ट्या जयो दाशरथेरवाप्त-
स्त्यक्त्वा भयं सर्प इव प्रशान्तः॥

(७। ६९। ४०)

इन्द्र, अग्नि आदि देवताओंने आकर श्रीशत्रुघ्नको वर माँगनेके लिये कहा। देवताओंकी बात सुनकर अपने मनको वशमें करनेवाले श्रीशत्रुघ्नने हाथ जोड़कर कहा—हे देवताओ! यह मधुरापुरी शीघ्र ही रमणीय राजधानीके रूपमें बस जाय, यही मेरे लिये श्रेष्ठ वर है—

इयं मधुपुरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता।
निवेशं प्राप्नुयाच्छीघ्रमेष मेऽस्तु वरः परः॥

(७। ७०। ५)

शत्रुघ्नजीका आशय यह था कि जितनी जल्दी यह नगरी बसेगी, उतनी ही जल्दी हमें श्रीरामजीकी सन्निधि मिल जायगी। इसलिये कहते हैं कि यही श्रेष्ठ वर है। देवता प्रसन्न होकर

'बहुत अच्छा' कहकर स्वर्ग चले गये। महातेजस्वी शत्रुघ्नने भी अपनी सेनाको बुलवा लिया—

ते तथोक्त्वा महात्मानो दिवमारुरुहुस्तदा।
शत्रुघ्नोऽपि महातेजास्तां सेनां समुपानयत्॥

(७। ७०। ७)

बारह वर्षतक वह पुरी तथा शूरसेन-जनपद पूर्णरूपसे बस गया। वहाँ कहीं किसीसे भय नहीं था, वह देश दिव्य सुख-सुविधाओंसे सम्पन्न था—

स पुरा दिव्यसंकाशो वर्षे द्वादशमे शुभे।
निविष्टः शूरसेनानां विषयश्चाकुतोभयः॥

(७। ७०। ९)

मधुरापुरीको बसाकर श्रीशत्रुघ्नके मनमें यह विचार हुआ कि श्रीअयोध्यासे आये बारह वर्ष व्यतीत हो गये, अब मुझे अपने आराध्यके पास चलकर उनके श्रीचरणारविन्दोंका दर्शन करना चाहिये—

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना निवेश्य मधुरां पुरीम्।
रामपादौ निरीक्षेऽहं वर्षे द्वादश आगते॥

(७। ७०। १६)

श्रीशत्रुघ्न मधुरापुरीसे चलकर बीचमें सात-आठ परिगणित स्थानोंपर पड़ाव डालते हुए महर्षि श्रीवाल्मीकिजीके आश्रमपर पहुँच गये। महर्षि वाल्मीकिके श्रीचरणोंमें प्रणाम किया। श्रीवाल्मीकिने शत्रुघ्नके महान् कर्म लवणासुर-वधकी बहुत प्रशंसा की और यह कहा कि हे नरश्रेष्ठ! मैंने स्वयं अपनी आँखोंसे तुम्हारा युद्ध देखा था। हे शत्रुघ्न! मेरे हृदयमें तुम्हारे लिये बड़ा प्रेम है; अतः मैं तुम्हारे मस्तकका आघ्राण करूँगा। यही स्नेहकी पराकाष्ठा है—

ममापि परमा प्रीतिर्हृदि शत्रुघ्न वर्तते।
उपाघ्रास्यामि ते मूर्ध्नि स्नेहस्यैषा परा गतिः॥

(७। ७१। १२)

नरश्रेष्ठ श्रीशत्रुघ्नने श्रीमहर्षि वाल्मीकिके द्वारा प्रेमसे समर्पित भोजन करके श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी कथा सुनी। प्रत्यक्षकी भाँति उस अलौकिक चरित्रका श्रवण करके पुरुषसिंह श्रीशत्रुघ्न मूर्च्छित-से हो गये। उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। एक मुहूर्त्ततक अचेत-से होकर बार-बार लम्बी श्वास लेते रहे—

शुश्राव रामचरितं तस्मिन् काले पुरा कृतम्।
तान्यक्षराणि सत्यानि यथावृत्तानि पूर्वशः॥
श्रुत्वा पुरुषशार्दूलो विसंज्ञो बाष्पलोचनः।
स मुहूर्तमिवासंज्ञो विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः॥

(७। ७१। १६-१७)

श्रीशत्रुघ्न श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये उत्कण्ठित थे, एतावता महर्षिके चरणोंमें प्रणाम करके एक सुन्दर रथपर चढ़कर श्रीअयोध्याके लिये प्रस्थान कर दिया—

सोऽभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं रथमारुह्य सुप्रभम्।
अयोध्यामगमत् तूर्णं राघवोत्सुकदर्शनः॥

(७। ७२। ६)

श्रीअयोध्या पहुँचकर अपने परमाराध्य भगवान् श्रीरामके श्रीचरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणति निवेदन करके हाथ जोड़कर विह्वल स्वरमें श्रीशत्रुघ्न बोले—हे महाराज! आपने मुझे जिस कार्यके लिये आज्ञा प्रदान की थी वह कार्य सम्पन्न हो गया। पापात्मा लवण दैत्य मारा गया और मधुरापुरी भी बस गयी। हे रघुनन्दन! आपके दर्शनके बिना बारह वर्ष तो किसी प्रकार व्यतीत हो गये; परंतु हे अयोध्यानाथ! हे करुणामय! अब और अधिक समयतक आपसे अलग रहनेका मुझमें साहस नहीं है। हे भक्तवत्सल! जैसे छोटा बच्चा अपनी माँसे अलग नहीं रह सकता है उसी प्रकार मैं भी चिरकालतक आपसे दूर नहीं रह सकूँगा। हे कृपामूर्ति श्रीरघुनन्दन! आप मुझपर कृपा करें—

यदाज्ञप्तं महाराज सर्वं तत् कृतवानहम्।

हतः स लवणः पापः पुरी चास्य निवेशिता॥
द्वादशैतानि वर्षाणि त्वां विना रघुनन्दन।
नोत्सहेयमहं वस्तुं त्वया विरहितो नृप॥
स मे प्रसादं काकुत्स्थ कुरुष्वामितविक्रम।
मातृहीनो यथा वत्सो न चिरं प्रवसाम्यहम्॥

(७। ७२। १०—१२)

इस प्रकार कहते हुए श्रीशत्रुघ्नको वत्सलहृदय श्रीरामजीने अपने हृदयसे लगा लिया और कहा—हे शूरवीर! विषाद न करो। इस तरह कातरता क्षत्रियोचित नहीं है—

एवं ब्रुवाणं शत्रुघ्नं परिष्वज्येदमब्रवीत्।
मा विषादं कृथाः शूर नैतत् क्षत्रियचेष्टितम्॥

(७। ७२। १३)

हे नरश्रेष्ठ! समय-समयपर मुझसे मिलनेके लिये श्रीअयोध्या आ जाया करो और फिर अपनी पुरीको लौट जाया करो। हे शत्रुघ्न! असन्दिग्धरूपसे तुम मुझे प्राणाधिक प्रिय हो; परंतु हे तात! राज्यका परिपालन भी अवश्य करणीय है। हे रिपुदमनलाल! तुम अभी मेरे पास सात दिन रहो। उसके पश्चात् सेवक, सेना और सवारियोंके साथ मधुरापुरी चले जाना—

काले काले तु मां वीर अयोध्यामवलोकितुम्।
आगच्छ त्वं नरश्रेष्ठ गन्तासि च पुरं तव॥
ममापि त्वं सुदयितः प्राणैरपि न संशयः।
अवश्यं करणीयं च राज्यस्य परिपालनम्॥
तस्मात्त्वं वस काकुत्स्थ सप्तरात्रं मया सह।
ऊर्ध्वं गन्तासि मधुरां सभृत्यबलवाहनः॥

(७। ७२। १५—१७)

'भगवान्‌की आज्ञाका पालन करना ही है' यह सोचकर सात दिनके पश्चात् श्रीरामजी श्रीभरत और श्रीलक्ष्मण सबको प्रणाम करके वियोग संतप्त हृदयसे श्रीरामचन्द्रजीको बार-बार देखते हुए आँखोंमें आँसू लिये हुए श्रीशत्रुघ्नने प्रस्थान किया। महात्मा श्रीलक्ष्मण और महामना श्रीभरत पैदल ही उन्हें पहुँचानेके लिये बहुत दूरतक गये। तत्पश्चात् श्रीशत्रुघ्न रथके द्वारा शीघ्र ही अपनी राजधानीको चले गये—

दूरं पद्भ्यामनुगतो लक्ष्मणेन महात्मना।
भरतेन च शत्रुघ्नो जगामाशु पुरीं तदा॥

(७। ७२। २१)

तदनन्तर कुछ दिनोंके पश्चात् एक वृद्ध ब्राह्मण अपने मृत पुत्रका शव लेकर राजद्वारपर आया। वह स्नेह और दुःखसे उद्विग्न होकर हा पुत्र! हा पुत्र! कहकर विलाप करने लगा। श्रीरामराज्यमें अकालमृत्युकी इस प्रकारकी घटना इसके पूर्व न कभी देखी गयी और न कभी सुनी गयी। अवश्य ही श्रीरामका कोई महान् दुष्कर्म है, जिससे इनके राज्यमें रहनेवाले बालकोंकी मृत्यु होने लगी—

नेदृशं दृष्टपूर्वं मे श्रुतं वा घोरदर्शनम्।
मृत्युरप्राप्तकालानां रामस्य विषये ह्ययम्॥
रामस्य दुष्कृतं किञ्चिन्महदस्ति न संशयः।
यथा हि विषयस्थानां बालानां मृत्युरागतः॥

(७। ७३। ९-१०)

श्रीरामजी इस समाचारसे शोकसंतप्त हो गये। उन्होंने श्रीवसिष्ठजी आदिको बुलवाया। श्रीवसिष्ठके साथ मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन, जाबालि, गौतम और नारद—इन आठ ब्राह्मणोंने राजसभामें प्रवेश किया और देवतुल्य राजाधिराज श्रीरामजीसे कहा—हे महाराज! आपकी जय हो।

ततो द्विजा वसिष्ठेन सार्धमष्टौ प्रवेशिताः।
राजानं देवसंकाशं वर्धस्वेति ततोऽब्रुवन्॥
मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च काश्यपः।
कात्यायनोऽथ जाबालिर्गौतमो नारदस्तथा॥

(७। ७४। ३-४)

श्रीरामजीने उनसे सब बातें कहीं—हे महात्मन्!

यह ब्राह्मण राजद्वारपर धरना देकर पड़ा है। सुनकर श्रीनारदजीने कहा—हे महाराज! सत्ययुगमें केवल ब्राह्मण तपस्या करते थे—

पुरा कृतयुगे राजन् ब्राह्मणा वै तपस्विनः॥
अब्राह्मणस्तदा राजन् न तपस्वी कथंचन।

(७। ७४। ९-१०)

इसी प्रकार त्रेतायुगमें ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों तपस्या करने लगे। अन्य वर्णके लोग सेवा-कार्य किया करते हैं—

त्रेतायुगे च वर्तन्ते ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्च ये।
तपोऽतप्यन्त ते सर्वे शुश्रूषामपरे जनाः॥

(७। ७४। २०)

द्वापरयुगमें तपस्यारूप कर्म वैश्योंको भी प्राप्त होता है। इस तरह तीन युगोंमें क्रमशः तीन वर्णोंको तपस्याका अधिकार प्राप्त होता है।

अस्मिन् द्वापरसंख्याने तपो वैश्यान् समाविशत्।
त्रिभ्यो युगेभ्यस्त्रीन् वर्णान् क्रमाद् वै तप आविशत्॥

(७। ७४। २५)

इसी प्रकार कलियुग आनेपर भविष्यमें होनेवाली शूद्रयोनिमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंके समुदायमें तपश्चर्याकी प्रवृत्ति होगी—

भविष्यच्छूद्रयोन्यां हि तपश्चर्या कलौ युगे॥

(७। ७४। २७)

इस प्रकार आशय यह है कि युगधर्मका आदर करके उन-उन युगोंके धर्मके अनुसार कार्य करना चाहिये। कलियुगमें चारों वर्णोंका तपस्यामें अधिकार है। द्वापरमें तीन वर्णोंको अधिकार है शूद्रको नहीं है। त्रेतामें ब्राह्मण और क्षत्रियको अधिकार है वैश्य और शूद्रको नहीं है। इसी प्रकार सत्ययुगमें केवल ब्राह्मणोंको ही तपस्याका अधिकार है अन्य तीन वर्णोंको नहीं है।

महात्माओंके द्वारा धर्मशास्त्रका निर्णय सुन करके भगवान् श्रीरामने श्रीलक्ष्मणसे कहा—ऐसी व्यवस्था करो, जिससे ब्राह्मणबालकका शरीर सुरक्षित रहे और ब्राह्मणको आश्वस्त कर दो। उसी समय श्रीरामजीने पुष्पकविमानका स्मरण किया। पुष्पकके आनेपर श्रीरामजी पुष्पकारूढ़ होकर पूर्व और पश्चिम दिशाके देशोंको देखते हुए जब दक्षिण दिशामें गये तब देखा कि एक तपस्वी विशाल सरोवरके तटपर अधोमुख होकर उग्र तपस्या कर रहा है—

तस्मिन् सरसि तप्यन्तं तापसं सुमहत्तपः।
ददर्श राघवः श्रीमाँल्लम्बमानमधोमुखम्॥

(७। ७५। १४)

श्रीरामजीके पूछनेपर उस तपस्वीने कहा—हे श्रीराम! मैं असत्य नहीं बोलता। देवलोकपर विजय पानेकी कामनासे मैं तपस्या कर रहा हूँ। मैं शूद्र जातिका हूँ, मेरा नाम शम्बूक है—

न मिथ्याहं वदे राम देवलोकजिगीषया।
शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूकं नाम नामतः॥

(७। ७६। ३)

वह इस प्रकार कह ही रहा था कि श्रीरामने खड्गसे उसका सिर उच्छिन्न कर दिया। समस्त देवता साधुवाद करते हुए श्रीरामजीकी श्लाघा करने लगे। पुष्पवृष्टि होने लगी। देवताओंने कहा—हे मर्यादापुरुषोत्तम! यह शूद्र तपस्या करके युगधर्मके प्रतिकूल कर्म करके पृथ्वीलोककी मर्यादा नष्ट कर रहा था और देवलोककी भी मर्यादा नष्ट करना चाहता था; अतः इसका वध करके आपने मर्यादाका परिपालन किया है। हे रघुनन्दन! आप जो चाहें वर माँग लें। श्रीरामने कहा—यदि देवता मुझपर प्रसन्न हैं तो वह ब्राह्मणपुत्र जीवित हो जाय—

यदि देवाः प्रसन्ना मे द्विजपुत्रः स जीवतु।
दिशन्तु वरमेतं मे ईप्सितं परमं मम॥

(७। ७६। १०)

देवताओंने कहा—हे ककुत्स्थकुलभूषण! आपका

कल्याण हो! जिस मुहूर्त्तमें आपने इस शम्बूकका वध किया है, उसी मुहूर्त्तमें वह बालक जीवित होकर अपने माता-पितासे मिल गया—

यस्मिन् मुहूर्ते काकुत्स्थ शूद्रोऽयं विनिपातितः।
तस्मिन् मुहूर्ते बालोऽसौ जीवेन समयुज्यत॥

(७। ७६। १५)

तदनन्तर श्रीरामजी श्रीअगस्त्यजीके आश्रममें गये। अगस्त्यजीने प्रभुका महान् सम्मान करके कहा—हे श्रीराम! मेरे हृदयमें आपका बहुत सम्मान है। आप मेरे आदरणीय अतिथि हैं और सदा मेरे मनमें निवास करते हैं।

त्वं मे बहुमतो राम गुणैर्बहुभिरुत्तमैः।
अतिथिः पूजनीयश्च मम राजन् हृदि स्थितः॥

(७। ७६। २६)

हे रघुनन्दन! आज रात्रिमें आप मेरे इस आश्रममें ही विश्राम करें। कल प्रातः पुष्पक-विमानद्वारा आप अपने नगर पधारियेगा। श्रीअगस्त्यने कहा—हे प्रभो! ये दिव्य आभूषण आप स्वीकार करें; क्योंकि किसीकी दी हुई वस्तुका पुनः दान करनेसे महान् फलकी प्राप्ति कही जाती है—

प्रतिगृह्णीष्व काकुत्स्थ मत्प्रियं कुरु राघव।
दत्तस्य हि पुनर्दाने सुमहत्फलमुच्यते॥

(७। ७६। ३१)

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे भगवन्! धन लेनेका कार्य तो केवल ब्राह्मणोंके लिये गर्हित नहीं है। फिर क्षत्रिय प्रतिग्रह—विशेषतः ब्राह्मणका दिया हुआ दान कैसे ले सकता है? श्रीअगस्त्यने कहा—हे रघुनन्दन! आप राजा हैं, राजा होनेके कारण आप इस आभूषणके लेनेके अधिकारी हैं। तदनन्तर श्रीरामजीने पूछा—हे भगवन्! यह अत्यन्त अद्भुत तथा दिव्य आभूषण आपको कैसे मिला? यह बतावें। तब श्रीअगस्त्यजीने कहा—हे रघुनन्दन! पूर्व चतुर्युगीके त्रेतायुगका वृत्तान्त है उसे आप सुनें।

हे श्रीराम! प्राचीन कालमें त्रेतायुगकी कथा है। मैंने तपस्याके लिये एक विशाल और सुन्दर वन देखा। उसमें अनेक फलोंके अनेक वृक्ष थे। वनके मध्यमें एक लम्बा-चौड़ा सरोवर था। उस सरोवरके पास ही एक विशाल, अद्भुत तथा परम पावन प्राचीन आश्रम था; जिसमें एक भी तपस्वी नहीं था। हे नरश्रेष्ठ! नैदाघी रात्रि—ग्रीष्म-ऋतुकी रातमें मैं एक रात रहा—

तस्मिन् सरःसमीपे तु महदद्भुतमाश्रमम्॥
पुराणं पुण्यमत्यर्थं तपस्विजनवर्जितम्।
तत्राहमवसं रात्रिं नैदाघीं पुरुषर्षभ॥

(७। ७७। ६-७)

हे रघुनन्दन! मैं प्रातःकाल उस सरोवरमें स्नानादिके लिये जाने लगा। उसी समय मुझे वहाँ एक शव दिखायी पड़ा, जो हृष्ट, पुष्ट और निर्मल था। मैं उस शवके विषयमें सोचता हुआ एक मुहूर्त्ततक उस तालाबके तटपर बैठा रहा। उसी समय एक विमान आया। उसपरसे एक स्वर्गवासी पुरुष उतरकर मेरे देखते-देखते उस शवका भक्षण करने लगा। जब यथेष्ट मांस खा लिया और हाथ-मुँह धो करके पुनः विमानपर चढ़ने लगा, तब मैंने पूछा—हे सौम्य! आप कौन हैं? और इस तरह घृणित भोजन क्यों करते हैं? यह बताइये—

को भवान् देवसंकाश आहारश्च विगर्हितः।
त्वयेदं भुज्यते सौम्य किमर्थं वक्तुमर्हसि॥

(७। ७७। १९)

मेरी बात सुनकर स्वर्गीय पुरुषने कहा—हे ब्रह्मन्! पूर्वकालमें मैं विदर्भदेशके राजा सुदेवका श्वेत नामका पुत्र था। पिताकी मृत्युके पश्चात् मेरा अभिषेक हुआ। एक हजार वर्षतक राज्य करनेके अनन्तर मैं अपने अनुज सुरथको

राज्य देकर इसी वनमें आकर तपस्या करने लगा। तीन हजार वर्षकी दुष्कर तपस्याके अनन्तर मुझे ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई। हे द्विजोत्तम! ब्रह्मलोक प्राप्त होनेपर भी मुझे भूख-प्यास सताती है। जब मैंने ब्रह्माजीसे अपना दुःख निवेदन किया तब उन्होंने कहा—तुम मृत्युलोकमें अपने ही शरीरका मांस भक्षण किया करो। यही तुम्हारा भोजन है—

पितामहस्तु मामाह तवाहारः सुदेवज।
स्वादूनि स्वानि मांसानि तानि भक्षय नित्यशः॥

(७। ७८। १४)

श्रीब्रह्माजीने कहा—तुमने केवल तपस्या ही की, थोड़ा भी दान नहीं दिया; इसलिये हे वत्स! ब्रह्मलोकमें भी आकर तुम्हें भूख-प्यास सताती है—

दत्तं न तेऽस्ति सूक्ष्मोऽपि तप एव निषेवसे।
तेन स्वर्गगतो वत्स बाध्यसे क्षुत्पिपासया॥

(७। ७८। १६)

हे परमोदार महर्षे! श्रीब्रह्माने यह भी कहा है कि जब इस वनमें श्रीअगस्त्य महर्षि पधारेंगे तब तुम्हारा दुःख निवृत्त हो जायगा। निःसन्देह आप भगवान् अगस्त्य हैं। आप मेरा उद्धार करनेके लिये मेरे ये आभूषण स्वीकार करें। हे ब्रह्मर्षे! ये दिव्य आभूषण स्वर्ण, धन, वस्त्र, भक्ष्य, भोज्य तथा अन्य प्रकारके आभरण भी देता है—

इदमाभरणं सौम्य तारणार्थं द्विजोत्तम।
प्रतिगृह्णीष्व भद्रं ते प्रसादं कर्तुमर्हसि॥
इदं तावत् सुवर्णं च धनं वस्त्राणि च द्विज।
भक्ष्यं भोज्यञ्च ब्रह्मर्षे ददात्याभरणानि च॥

(७। ७८। २३-२४)

ज्यों ही मैंने राजा श्वेतकेतुके दुःखसे दुःखी होकर उनका उद्धार करनेके लिये वह उत्तम आभूषण ले लिया त्यों ही राजर्षि श्वेतका वह पूर्व-शरीर अदृश्य हो गया और वे ब्रह्मलोक चले गये। हे रघुनन्दन! ये वही दिव्य आभूषण हैं।

श्रीरामजीने पूछा—हे महर्षे! जहाँ राजर्षि श्वेत तपस्या करने गये थे वह वन सूना क्यों था? यह मैं यथार्थरूपसे जानना चाहता हूँ।

श्रीरामजीका प्रश्न सुनकर महर्षि अगस्त्यने कहा—हे राजन्! मनुपुत्र इक्ष्वाकुने अपने उद्दण्ड पुत्र दण्डको विन्ध्य और शैवल पर्वतके मध्यका राज्य दे दिया। वहाँपर दण्डने एक नगर बसाया। उसका नाम मधुमन्त रखा और शुक्राचार्यको अपना पुरोहित बनाया—

पुरस्य चाकरोन्नाम मधुमन्तमिति प्रभो।
पुरोहितं तूशनसं वरयामास सुव्रतम्॥

(७। ७९। १८)

एक दिन राजा दण्ड अपने गुरु शुक्राचार्यके आश्रमपर गया। वहाँ वह अपने गुरुकी कन्या अरजाको देखकर मुग्ध हो गया। दण्डने अरजासे प्रणय-याचना की। अरजाने राजा दण्डसे कहा—हे राजन्! मैं पुण्यकर्मा शुक्राचार्यकी पुत्री अरजा हूँ। तुम बलपूर्वक मेरा स्पर्श मत करो, मैं पिताके अधीन रहनेवाली कुमारी कन्या हूँ। मेरे पिता तुम्हारे गुरु हैं और तुम उन महात्माके शिष्य हो—

मा मां स्पृश बलाद् राजन् कन्या पितृवशा ह्यहम्।
गुरुः पिता मे राजेन्द्र त्वं च शिष्यो महात्मनः॥

(७। ८०। ९)

कामान्ध दण्डने अरजाके साथ बलात्कार करके उसका कौमार्य नष्ट कर दिया। महान् भयंकर अनर्थ करके दण्ड तत्काल अपने उत्तम नगर मधुमन्तको चला गया।

पुत्रीके द्वारा सब समाचार ज्ञात होनेपर श्रीशुक्राचार्यका रोष बढ़ गया और उन्होंने कहा—

पाप कर्मका आचरण करनेवाला वह दुर्बुद्धि नरेश सात रातके भीतर ही सपुत्र, बलवाहन नष्ट हो जायगा—

सप्तरात्रेण राजासौ सपुत्रबलवाहनः।
पापकर्मसमाचारो वधं प्राप्स्यति दुर्मतिः॥

(७।८१।७)

शुक्राचार्यकी यह बात सुनकर वहाँके रहनेवाले राज्यसे निकल गये। भयंकर आँधी चलने लग गयी। स्थावर, जङ्गम जीव धूलभरी भारी वर्षासे विलीन हो गये। हरा-भरा नगर वीरान जंगलके रूपमें परिणित हो गया। तभीसे यह भू-भाग दण्डकारण्य कहलाया। भगवान् श्रीअगस्त्यने कहा—हे रघुनन्दन! आपने मुझसे जो पूछा वह सब मैंने सुना दिया। हे वीर! अब संध्योपासनाका समय व्यतीत हो रहा है, अब आप भी स्नान आदि करके संध्या करें। श्रीरामजी संध्या करके अनेक गुणोंसे युक्त कन्द-मूल, पवित्र भात आदि वस्तुएँ और अन्य अमृततुल्य स्वादिष्ट भोजन करके तृप्त और प्रसन्न हुए। रात्रिमें विश्राम किया। प्रात:काल संध्यादि दैनन्दिन कर्मसे निवृत्त होकर महर्षि अगस्त्यको प्रणाम करके श्रीरामजीने कहा—अब मैं श्रीअयोध्या प्रस्थान करनेकी आज्ञा चाहता हूँ। हे कृपामय महर्षे! कृपा करके मुझे जानेकी अनुमति प्रदान करें—

अभिवाद्याब्रवीद् रामो महर्षिं कुम्भसम्भवम्।
आपृच्छे त्वां पुरीं गन्तुं मामनुज्ञातुमर्हसि॥

(७।८२।६)

श्रीअगस्त्यने कहा—हे श्रीराम! जो कोई एक मुहूर्त्तके लिये भी आपका दर्शन कर लेते हैं वे पावन हो जाते हैं। स्वर्गके अधिकारी और देवताओंके भी सम्मान्य हो जाते हैं—

मुहूर्तमपि राम त्वां येऽनुपश्यन्ति केचन।
पाविताः स्वर्गभूताश्च पूज्यास्ते त्रिदिवेश्वरैः॥

(७।८२।१०)

अब आप निश्चिन्त होकर कुशलपूर्वक पधारें। श्रीरामजीने श्रीअयोध्याजी पहुँचकर पुष्पकविमानसे कहा—अब तुम जाओ तुम्हारा कल्याण हो।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामजीने श्रीभरत और लक्ष्मणसे कहा—तुम दोनों मेरी आत्मा ही हो; अत: मेरी इच्छा तुम्हारे साथ राजसूय-यज्ञ करनेकी है—

युवाभ्यामात्मभूताभ्यां राजसूयमनुत्तमम्।
सहितो यष्टुमिच्छामि तत्र धर्मस्तु शाश्वतः॥

(७।८३।५)

श्रीरामजीका वचन सुनकर श्रीभरतने हाथ जोड़कर कहा—हे महाबली रघुनन्दन! पुत्र जैसे पिताको देखते हैं, उसी प्रकार भूमण्डलके समस्त राजाओंके भाव आपके प्रति हैं, आप ही समस्त पृथ्वी और सम्पूर्ण प्राणियोंके भी परमाश्रय हैं। हे नरेश्वर! फिर आप ऐसा यज्ञ कैसे कर सकते हैं, जिसमें भूमण्डलके राजवंशोंका नाश दृश्यमान है—

पुत्राश्च पितृवद् राजन् पश्यन्ति त्वां महाबल।
पृथिव्या गतिभूतोऽसि प्राणिनामपि राघव॥
स त्वमेवंविधं यज्ञमाहर्तासि कथं नृप।
पृथिव्यां राजवंशानां विनाशो यत्र दृश्यते॥

(७।८३।१२-१३)

श्रीभरतके अमृतमय वचन सुनकर सत्य-पराक्रमी श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उनकी बात मानकर राजसूय-यज्ञ करनेका विचार छोड़ दिया। यह श्रीरामका रामत्व है, चरित्र है, अनुशासन-प्रियता है, भ्रातृत्व है, भक्तवात्सल्य है और छोटोंको सम्मान देनेवाली प्रवृत्तिका अनुपम उदाहरण है।

श्रीलक्ष्मणने मनमें विचार किया कि मेरे आराध्यके मनमें यज्ञ करनेकी अभिलाषा जागृत हुई, परंतु श्रीभरतने उसका विरोध कर दिया, विरोध उचित भी था। परंतु आराध्यकी इच्छा-पूर्ति कैसे हो? उनकी बुद्धिमें तत्काल एक बात आयी और उन्होंने सद्यः प्रार्थना कर दी। हे रघुनन्दन! अश्वमेध नामक यज्ञ समस्त पापनाशक, परमपावन और दुष्कर है, यह यज्ञ भी क्षत्रियोंके लिये महान् है। इसका भी अनुष्ठान असाधारण है। हे स्वामी! यदि आपको रुचे तो आज्ञा दें—

अश्वमेधो महायज्ञः पावनः सर्वपाप्मनाम्।
पावनस्तव दुर्धर्षो रोचतां रघुनन्दन॥

(७। ८४। २)

हे स्वामी! पुराना इतिहास है कि इन्द्रको वृत्रासुरके वधके कारण जब ब्रह्महत्या लगी थी तब भगवान् विष्णुने उन्हें अश्वमेध-यज्ञ करनेका ही परामर्श दिया था। हे देवताओ! पवित्र अश्वमेध-यज्ञके द्वारा मुझ यज्ञपुरुषका यजन करके इन्द्र पुनः इन्द्रत्वकी उपलब्धि कर लेंगे और ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होकर अकुतोभय हो जायेंगे—

पुण्येन हयमेधेन मामिष्ट्वा पाकशासनः।
पुनरेष्यति देवानामिन्द्रत्वमकुतोभयः॥

(७। ८५। २१)

भगवान् विष्णुकी बात मान करके इन्द्रने अश्वमेध-यज्ञ किया और ब्रह्महत्यासे निवृत्त हो करके उन्होंने पुनः ऐन्द्र पदकी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। इसलिये हे अयोध्यानाथ! आप महान् प्रभावशाली अश्वमेध-यज्ञके द्वारा यजन करें—

ईदृशो ह्यश्वमेधस्य प्रभावो रघुनन्दन।
यजस्व सुमहाभाग हयमेधेन पार्थिव॥

(७। ८६। २०)

भगवान् श्रीरामने श्रीलक्ष्मणकी बातके समर्थनमें अश्वमेध-यज्ञका महत्त्व बतलाते हुए एक कथा सुनायी कि पूर्वकालमें प्रजापति कर्दमके पुत्र श्रीमान् इल जो वाह्लीक-देशके राजा थे और बड़े धर्मात्मा थे—

श्रूयते हि पुरा सौम्य कर्दमस्य प्रजापतेः।
पुत्रो वाह्लीश्वरः श्रीमानिलो नाम सुधार्मिकः॥

(७। ८७। ३)

वे एक बार आखेट करते-करते उस देशमें चले गये, जहाँपर जानेके कारण वे स्त्री हो गये। फिर पार्वतीजीकी आराधनासे उन्हें यह वरदान मिला कि वे एक मास स्त्रीके रूपमें रहें और एक मास पुरुषके रूपमें—

एवं स राजा पुरुषो मासं भूत्वाथ कार्दमिः।
त्रैलोक्यसुन्दरी नारी मासमेकमिलाभवत्॥

(७। ८७। २९)

जब राजा इल, इलाके रूपमें थे तब सोमपुत्र बुध उन्हें देखकर कामातुर हो गये—

बुधस्तु तां समीक्ष्यैव कामबाणवशं गतः।
नोपलेभे तदात्मानं स चचाल तदाम्भसि॥

(७। ८८। १२)

तब बुधने इलासे प्रार्थना की—हे रुचिरानने! हे वरारोहे! मैं चन्द्रमाका प्यारा पुत्र हूँ। तुम मुझे स्निग्ध दृष्टिसे निहारकर अपना बना लो—

सोमस्याहं सुदयितः सुतः सुरुचिरानने।
भजस्व मां वरारोहे भक्त्या स्निग्धेन चक्षुषा॥

(७। ८९। ४)

तदनन्तर सुन्दरी इलाने नौ महीनेके पश्चात् सोमपुत्र बुधसे एक पुत्रको उत्पन्न किया। उसका नाम था पुरूरवा—

ततः सा नवमे मासि इला सोमसुतात् सुतम्।
जनयामास सुश्रोणी पुरूरवसमूर्जितम्॥

(७। ८९। २३)

प्रजापति कर्दम अपने पुत्र इलाकी स्थितिसे

अत्यन्त दु:खी थे। उन्होंने महर्षि पुलस्त्य, क्रतु, वषट्कार और ओङ्कार आदि महर्षियोंकी सहायतासे अश्वमेध-यज्ञ किया। जिससे राजा इलको पुन: पुरुषत्वकी प्राप्ति हो गयी।

भगवान् श्रीरामजीने कहा—हे भरत! हे लक्ष्मण! अश्वमेध-यज्ञका ऐसा ही प्रभाव है कि जो स्त्रीरूप हो गये थे उन राजा इलने अश्वमेध-यज्ञकी महिमासे पुरुषत्वकी उपलब्धि कर ली तथा और भी दुर्लभ पदार्थोंकी प्राप्ति की—

ईदृशो ह्यश्वमेधस्य प्रभावः पुरुषर्षभौ।
स्त्रीभूतः पौरुषं लेभे यच्चान्यदपि दुर्लभम्॥

(७।९०।२४)

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे लक्ष्मण! अश्वमेध-यज्ञके विशेष ज्ञाता श्रीवसिष्ठ, वामदेव, जाबालि और काश्यप आदि सभी ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक बुला करके उनसे मन्त्रणा करके समाहित हो करके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न यज्ञीय अश्व छोड़ूँगा—

वसिष्ठं वामदेवं च जाबालिमथ काश्यपम्।
द्विजांश्च सर्वप्रवरानश्वमेधपुरस्कृतान्॥
एतान् सर्वान् समानीय मन्त्रयित्वा च लक्ष्मण।
हयं लक्षणसम्पन्नं विमोक्ष्यामि समाधिना॥

(७।९१।२-३)

इस प्रकार ब्राह्मणोंकी, आचार्योंकी स्वीकृति प्राप्त करके भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—हे महाबाहो! तुम विशाल हृदयवाले श्रीसुग्रीवके पास संदेश भेजो कि तुम बहुत-से विशालकाय वनवासी वानरोंके साथ अश्वमेधयज्ञ-महोत्सवका दिव्य आनन्द लेनेके लिये आओ, तुम्हारा कल्याण हो। हे सखे! हमारे युद्धके प्रधान-प्रधान साथियोंको अपने साथ अवश्य ले आना—

प्रेषयस्व महाबाहो सुग्रीवाय महात्मने॥
यथा महद्भिर्हरिभिर्बहुभिश्च वनौकसाम्।
सार्धमागच्छ भद्रं ते अनुभोक्तुं महोत्सवम्॥

(७।९१।९-१०)

हे लक्ष्मण! मेरे सखा विभीषणको, मेरे हितैषी जो अन्य महाभाग राजागण हैं उनको सेवकोंके साथ आनेकी सूचना दे दो।

हे लक्ष्मण! जो धर्मनिष्ठ विद्वान् ब्राह्मण कार्यवश—प्रवचन आदि करनेके लिये दूसरे-दूसरे देशोंमें चले गये हैं, उन सबको भी अपने अश्वमेध-यज्ञके लिये आमन्त्रित करो—

देशान्तरगता ये च द्विजा धर्मसमाहिताः।
आमन्त्रयस्व तान् सर्वानश्वमेधाय लक्ष्मण॥

(७।९१।१३)

हे महाबाहो! तपस्या ही जिनका धन है ऐसे महर्षियोंको और श्रीअयोध्यामें रहनेवाले सपत्नीक ब्राह्मणोंको बुलाओ। नट और नर्तकियोंको भी आमन्त्रित करो।

हे लक्ष्मण! नैमिषारण्यमें गोमती नदीके पावन तटपर विशाल यज्ञमण्डप बनानेकी आज्ञा दो—'**यज्ञवाटश्च सुमहान् गोमत्या नैमिषे वने**'। हे लक्ष्मण! यज्ञके विघ्न-बाधारहित पूर्ण होनेके लिये सर्वत्र शान्ति-विधान आरम्भ करा दो।

हे लक्ष्मण! बढ़िया बिना टूटा चावल, तिल, मूँग, चना, कुलथी, उड़द और रामरस—नमकका भार लेकर अनेक पशु चलें, इसीके अनुरूप घी, तेल, दूध, दही, बिना घिसा चन्दन, सुगन्धित पदार्थ, अनेक प्रकारके मसाले, इलायची, लौंग, दालचीनी, जावित्री, जीरक, जायफल, तेजपत्ता, छड़ीला आदि पदार्थ भेजो। भरत करोड़ों सोने-चाँदीके सिक्के लेकर सावधानीपूर्वक चलें—

सुवर्णकोट्यो बहुला हिरण्यस्य शतोत्तराः।
अग्रतो भरतः कृत्वा गच्छत्वग्रे समाधिना॥

(७।९१।२१)

श्रीअयोध्यासे नैमिषारण्यके मार्गमें स्थान-स्थानपर बाजार और दुकानें लगनी चाहिये; अतः वणिक् और व्यवसायीलोग भी यात्रा करें। भरतके साथ आगे-आगे सेना भी जाय। मेरी समस्त माताएँ चलें। माण्डवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति चलें। मेरी पत्नीकी सुवर्णमयी प्रतिमा तथा यज्ञकर्मकी दीक्षाके जानकार ब्राह्मणोंको आगे-आगे करके श्रीभरत चलें—

मम मातॄस्तथा सर्वाः कुमारान्तःपुराणि च॥
काञ्चनीं मम पत्नीं च दीक्षायां ज्ञांश्च कर्मणि।
अग्रतो भरतः कृत्वा गच्छत्वग्रे महायशाः॥

(७। ९१। २४-२५)

तदनन्तर श्रीभरत-शत्रुघ्न चले। सुग्रीवके साथ महात्मा वानरगण रसोईके परिवेषणका कार्य करते थे। स्त्रियों और राक्षसोंके साथ श्रीविभीषणजी उग्रतपस्वी महात्मा-ऋषियोंके स्वागत-सत्कारका कार्य करते थे—

वानराश्च महात्मानः सुग्रीवसहितास्तदा।
विप्राणां प्रवराः सर्वे चक्रुश्च परिवेषणम्॥
विभीषणश्च रक्षोभिः स्त्रीभिश्च बहुभिर्वृतः।
ऋषीणामुग्रतपसां पूजां चक्रे महात्मनाम्॥

(७। ९१। २८-२९)

इस प्रकार समग्र सामग्री अच्छी तरह भेजकर भरताग्रज श्रीरामने सर्वलक्षणसम्पन्न कृष्णवर्णके एक अश्वको छोड़ा जो कृष्णसार मृगके समान था।

तत्सर्वमखिलेनाशु प्रस्थाप्य भरताग्रजः।
हयं लक्षणसम्पन्नं कृष्णसारं मुमोच ह॥

(७। ९२। १)

ऋत्विजोंके साथ श्रीलक्ष्मण उस घोड़ेकी रक्षा करते हुए चले।

नैमिषारण्यमें निवास करते समय भूतलके सभी राजागण श्रीरामजीके पास अनेक प्रकारकी भेंटसामग्री लेकर आये। श्रीरामजीने उन सबका विशेष मान-सम्मान किया—

नैमिषे वसतस्तस्य सर्व एव नराधिपाः।
आनिन्युरुपहारांश्च तान् रामः प्रत्यपूजयत्॥

(७। ९२। ४)

श्रीलक्ष्मणजीके संरक्षणमें यज्ञीय अश्वके भूमण्डलमें भ्रमण करनेका कार्य सुन्दर रीतिसे सम्पन्न हो गया—

एवं सुविहितो यज्ञो ह्यश्वमेधो ह्यवर्तत।
लक्ष्मणेन सुगुप्ता सा हयचर्या प्रवर्तत॥

(७। ९२। ९)

यज्ञारम्भ हो गया। उस यज्ञमें एक बात सर्वत्र सुनायी पड़ती थी—'जबतक याचक संतुष्ट न हों तबतक सब वस्तुएँ देते जाओ।'

छन्दतो देहि देहीति यावत् तुष्यन्ति याचकाः।

(७। ९२। ११)

उस यज्ञमें मार्कण्डेय, लोमश आदि चिरञ्जीवी महात्मा पधारे थे, वे कहते थे—हमें ऐसे किसी यज्ञका स्मरण नहीं है, जिसमें दानका इतना उत्साह हो। वह यज्ञ दानराशिसे समलङ्कृत दृश्यमान था—

ये च तत्र महात्मानो मुनयश्चिरजीविनः॥
नास्मरंस्तादृशं यज्ञं दानौघसमलंकृतम्।

(७। ९२। १४-१५)

वहाँ आये हुए तपोधन संत कहते थे—ऐसा यज्ञ तो पहले कभी इन्द्र, चन्द्र, वरुण और यमके यहाँ भी नहीं देखा गया—

न शक्रस्य न सोमस्य यमस्य वरुणस्य च॥
ईदृशो दृष्टपूर्वो न एवमूचुस्तपोधनाः।

(७। ९२। १७-१८)

वानर और राक्षस प्रत्येक स्थानपर हाथोंमें दानकी सामग्री लेकर खड़े रहते थे—

सर्वत्र वानरास्तस्थुः सर्वत्रैव च राक्षसाः॥

वासोधनान्नकामेभ्यः पूर्णहस्ता ददुर्भृशम्।

(७। ९२। १८-१९)

राजराजेन्द्र अयोध्यानाथ श्रीरामचन्द्रजीका इस प्रकार सर्वगुणसम्पन्न यज्ञ एक वर्षसे अधिक कालपर्यन्त चलता रहा, उसमें कभी किसी बातकी न्यूनता नहीं आयी—

ईदृशो राजसिंहस्य यज्ञः सर्वगुणान्वितः।
संवत्सरमथो साग्रं वर्तते न च हीयते॥

(७। ९२। १९)

वह अत्यन्त अनोखा यज्ञ जब आरम्भ हुआ उस समय भगवान् वाल्मीकि अपने शिष्योंके साथ उसमें पधार गये—

वर्तमाने तथाभूते यज्ञे च परमाद्भुते।
सशिष्य आजगामाशु वाल्मीकिर्भगवानृषिः॥

(७। ९३। १)

ऋषियोंके स्थानके समीप ही महर्षिने अपने लिये पर्णकुटियाँ बनवायीं। वहींपर सुखपूर्वक निवास करते थे।

श्रीवाल्मीकिजी अपने मनमें यह अभिलाषा करके आये हैं कि अपने जीवनको सफल करूँगा। इस यज्ञके माध्यमसे पिता-पुत्र और पति-पत्नीका सम्मिलन करा दूँगा। संसारके सामने भगवती भास्वती करुणामयी श्रीमैथिलीकी पवित्रताको सुप्रकाशित कर दूँगा। कलङ्क-पङ्कका प्रक्षालन कर दूँगा, इस मधुर भावनाको लेकर महर्षि पधारे हैं।

महर्षिने हृष्ट-पुष्ट अपने दोनों शिष्योंसे कहा— तुम दोनों ही भ्राता एकाग्रचित्तसे चारों ओर घूम-फिरकर, अत्यन्त प्रमुदित होकर सम्पूर्ण श्रीरामायण-काव्यका गान करो—

स शिष्यावब्रवीद्धृष्टौ युवां गत्वा समाहितौ।
कृत्स्नं रामायणं काव्यं गायतां परया मुदा॥

(७। ९३। ५)

श्रीरामचन्द्रजीका जो भवन बना हुआ है, उसके दरवाजेपर जहाँ ब्राह्मण लोग यज्ञ कार्य कर रहे हैं, वहाँ तथा ऋत्विजोंके आगे भी इस काव्यका विशेषरूपसे गान करो। गलियोंमें गाओ, राजमार्गोंपर गाओ और राजाओंके निवासस्थानोंमें भी प्रेमसे गाओ। सुन्दर फल-मूल खाना, इससे तुम्हें श्रम भी नहीं होगा और स्वर भी विकृत नहीं होगा—

न यास्यथः श्रमं वत्सौ भक्षयित्वा फलान्यथ।
मूलानि च सुमृष्टानि न रागात् परिहास्यथः॥

(७। ९३। ९)

हे वत्सो! यदि महाराज राम तुम दोनोंको बुलावें तो तुम प्रेमसे जाना और विनयपूर्ण व्यवहार तथा बात करना, प्रतिदिन बीस सर्गोंका मधुर स्वरसे गान करना—

यदि शब्दापयेद् रामः श्रवणाय महीपतिः।
ऋषीणामुपविष्टानां यथायोगं प्रवर्तताम्॥
दिवसे विंशतिः सर्गा गेया मधुरया गिरा।

(७। ९३। १०-११)

'धनकी इच्छासे किञ्चिन्मात्र भी लोभ न करना'। यह महर्षि वाल्मीकिका वाक्य कथा कहनेवालोंके लिये कल्याणमय उपदेश एवं शिक्षा है। जो लोभ करता है उसे ठाकुरजी नहीं मिलते हैं। संसार भले ही मिल जाय परंतु राम नहीं मिलते हैं। अशान्ति भले ही मिल जाय, परंतु शान्ति नहीं मिलती है। सांसारिक राग भले ही मिल जाय, परंतु भगवद्विषयक अनुराग नहीं मिलता है—

लोभश्चापि न कर्तव्यः स्वल्पोऽपि धनवाञ्छया।
किं धनेनाश्रमस्थानां फलमूलाशिनां सदा॥

(७। ९३। १२)

यदि श्रीरामजी पूछें कि तुम दोनों किसके पुत्र हो तो इतना ही कहना कि हम दोनों भाई महर्षि वाल्मीकिजीके शिष्य हैं—

यदि पृच्छेत् स काकुत्स्थो युवां कस्येति दारकौ।

वाल्मीकेरथ शिष्यौ द्वौ ब्रूतमेवं नराधिपम्॥

(७। ९३। १३)

हे वत्सो! तुम लोग कोई ऐसा व्यवहार न करना जिससे राजाकी अवज्ञा हो। उन्हें अपना पिता समझना; क्योंकि राजा धर्मत: सबका पिता होता है—

आदिप्रभृति गेयं स्यान्न चावज्ञाय पार्थिवम्।
पिता हि सर्वभूतानां राजा भवति धर्मतः॥

(७। ९३। १५)

प्रात:काल संध्योपासना, हवन आदि कर्म सम्पन्न करके दोनों भाई—कुश और लव गुरुदेवकी आज्ञानुसार रामायणका गान करने लगे—

तौ रजन्यां प्रभातायां स्नातौ हुतहुताशनौ।
यथोक्तमृषिणा पूर्वं सर्वं तत्रोपगायताम्॥

(७। ९४। १)

मुनिकुमारोंका मनोहर चित्ताकर्षक रामायण-गान सुनकर श्रीरामचन्द्रजीका मन मुग्ध हो गया **'बालाभ्यां राघवः श्रुत्वा कौतूहलपरोऽभवत्॥'** यज्ञीय कर्मके अनुष्ठानसे अवकाश मिलनेपर भगवान् श्रीरामने लवकुशकी रामायणकथा-गानका भव्य विशाल आयोजन किया। बड़े-बड़े मुनियोंको बुलाया, राजाओंको बुलाया, वेदवेत्ता पण्डितोंको बुलाया। पौराणिक आये, वैयाकरण आये, ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध और अनुभववृद्ध आये, संगीतज्ञ आये, निगम और आगमके विद्वान् आये। ज्योतिर्विद् आये, सामुद्रिक शास्त्रवेत्ता आये, हस्तरेखाविद् आये, कर्मकाण्डी आये, नैयायिक और वेदान्ती आये। नीतिज्ञ आये, विधिवेत्ता और ब्रह्मवेत्ता आये। दार्शनिकोंको बुलाया, अनेकों कलाओंके मर्मज्ञोंको बुलाया और महाजनोंको बुलवाया। सबके विराजमान होनेपर रामायणगान करनेवाले उन दोनों बालकोंको सभामें बुलाकर बिठाया—

एतान् सर्वान् समानीय गातारौ समवेशयत्॥

(७। ९४। १०)

दोनों मुनिकुमारोंने अपूर्व रामायणका गान आरम्भ किया। उनकी गेयसम्पदासे प्रभावित होकर सभी श्रोता मुग्ध होकर सुनने लगे, परंतु किसीको तृप्ति नहीं होती थी—

न च तृप्तिं ययुः सर्वे श्रोतारो गेयसम्पदा॥

(७। ९४। १२)

मुनियोंके समुदाय तथा और लोग जिनका श्रीरामजीके प्रति अतिशय वात्सल्य था—श्रीकौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा आदि माताएँ और जिनका सहज वात्सल्य अनजाने ही मुनिकुमारोंके प्रति उमड़ रहा था—माण्डवी, ऊर्मिला, श्रुतिकीर्ति आदि वे सब-के-सब एक स्थानमें बैठकर कथारसका आनन्द ले रही थीं। कथा सुन रही थीं और आनन्दसुधा-समुद्रमें निमग्न होकर दोनों कुमारोंकी रूपमाधुरीका अतृप्त नेत्रोंसे पान कर रही थीं—

पिबन्त इव चक्षुर्भिः पश्यन्ति स्म मुहुर्मुहुः॥

(७। ९४। १३)

लोग समाहितचित्त होकर आपसमें एक-दूसरेसे कहने लगे कि इन दोनों मुनिकुमारोंकी आकृति एकदम हमारे श्रीरामजीके समान है। ये बिम्बसे प्रकट हुए प्रतिबिम्बके समान परिज्ञात होते हैं। यदि इन बालकोंके शिरपर जटाएँ न होतीं और ये वल्कलवस्त्र न धारण किये होते तो हमें श्रीरामजीमें तथा इन रामायणगान करनेवाले कुमारोंमें कोई फर्क न मालूम होता—

ऊचुः परस्परं चेदं सर्व एव समाहिताः।
उभौ रामस्य सदृशौ बिम्बाद् बिम्बमिवोत्थितौ॥
जटिलौ यदि न स्यातां न वल्कलधरौ यदि।
विशेषं नाधिगच्छामो गायतो राघवस्य च॥

(७। ९४। १४-१५)

इस प्रकार प्रथम दिनकी कथाका विश्राम

हो गया। उदार चक्रचूड़ामणि, भक्तवत्सल, भ्रातृवत्सल श्रीरामजीने श्रीभरतसे कहा—हे भरत! इन दोनों महात्मा बालकोंको अट्ठारह हजार स्वर्णमुद्राएँ पुरस्कारके रूपमें शीघ्र प्रदान करो। इसके अतिरिक्त ये कुछ और चाहें तो वह भी इन्हें शीघ्र दे दो। श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर श्रीभरत सद्यः उन दोनों बालकोंको अलग-अलग स्वर्णमुद्राएँ देने लगे; परंतु कुश और लवने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपने हाथ पीछे कर लिये—

श्रुत्वा विंशतिसर्गांस्तान् भ्रातरं भ्रातृवत्सलः।
अष्टादश सहस्राणि सुवर्णस्य महात्मनोः॥
प्रयच्छ शीघ्रं काकुत्स्थ यदन्यदभिकाङ्क्षितम्।
ददौ स शीघ्रं काकुत्स्थो बालयोर्वै पृथक् पृथक्॥
दीयमानं सुवर्णं तु नागृह्णीतां कुशीलवौ।

(७। ९४। १८—२०)

दोनों महामना बन्धुओंने विस्मित होकर कहा—इस धनकी क्या आवश्यकता है? हम क्या करेंगे दक्षिणा लेकर? हम वनके रहनेवाले हैं, पेड़ोंसे टपके हुए फलोंको भोग लगाकर खा लेते हैं, नदियोंके जलसे प्यास बुझा लेते हैं और वृक्षोंका वल्कल पहनकर वस्त्रका काम पूर्ण कर लेते हैं। प्यास मिट गयी, भूख मिट गयी और लज्जा बच गयी। अब हम दक्षिणा लेकर क्या करेंगे? सोना और चाँदी वनमें ले जाकर क्या करेंगे? हम तो इसका उपयोग ही नहीं जानते हैं—

ऊचतुश्च महात्मानौ किमनेनेति विस्मितौ॥
वन्येन फलमूलेन निरतौ वनवासिनौ।
सुवर्णेन हिरण्येन किं करिष्यावहे वने॥

(७। ९४। २०-२१)

सब लोग तथा स्वयं श्रीरामजी भी आश्चर्यचकित हो गये। श्रीरामजीने कुमारोंसे अनेक प्रश्न किये, उन सबका उत्तर उन्होंने दिया। इस प्रकार पूछते हुए श्रीराघवेन्द्रसे मुनिकुमारोंने कहा—हे महाराज! जिस महाकाव्यके द्वारा आपको इन सम्पूर्ण चरित्रोंका प्रदर्शन कराया गया है, उसके रचयिता भगवान् वाल्मीकि हैं और वे इस यज्ञस्थलमें पधारे हैं।

पृच्छन्तं राघवं वाक्यमूचतुर्मुनिदारकौ।
वाल्मीकिर्भगवान् कर्ता सम्प्राप्तो यज्ञसंविधम्।
येनेदं चरितं तुभ्यमशेषं सम्प्रदर्शितम्॥

(७। ९४। २५)

श्रीकुश और लवने कहा—हे महाराज! इसमें चौबीस हजार श्लोक और एक सौ उपाख्यान हैं। पाँच सौ सर्ग तथा छः काण्डोंका निर्माण किया है। इसके अतिरिक्त उत्तरकाण्डकी भी रचना की है। हे महारथी राजेन्द्र! यदि आपका सुननेका विचार हो तो नित्य यज्ञकर्मसे अवकाश मिलनेपर निश्चित समय निकालिये और भाइयोंके समेत बैठकर नियमित सुनिये—

यदि बुद्धिः कृता राजञ्छ्रवणाय महारथ।
कर्मान्तरे क्षणीभूतस्तच्छृणुष्व सहानुजः॥

(७। ९४। २९)

श्रीरामजीने कहा—हम अवश्य सुनेंगे। तदनन्तर कुश और लव दोनों भाई श्रीरामजीसे आज्ञा लेकर अपने गुरुदेवके पास चले गये।

इस प्रकार श्रीरामजी ऋषियों, मुनियों, राजाओं, वानरों, राक्षसों, भाइयों और पारिवारिक जनोंके साथ अतिमनोहर श्रीरामायणी कथाका गायन सुनते रहे। उस कथासे ही उन्हें ज्ञात हो गया कि ये दोनों कुमार कुश और लव श्रीसीताजीके पुत्र हैं।

श्रीरामजीने शुद्ध आचार-विचारसम्पन्न दूतोंको बुलाकर उनसे कहा—तुम लोग यहाँसे भगवान् श्रीवाल्मीकिजीके पास जाओ और मेरा सन्देश उन्हें सुनाओ—हे कविकुल गुरो! हे आदि कवे! हे पितृकल्प! हे जानकीप्रतिपालक महर्षे! हे

भगवन्! यदि सीताका चरित्र शुद्ध है और यदि उनमें किसी तरहका पाप नहीं है तो वे आपकी अनुमति लेकर यहाँ आकर जनसमुदायमें अपनी शुद्धता प्रमाणित करें—

यदि शुद्धसमाचारा यदि वा वीतकल्मषा।
करोत्विहात्मनः शुद्धिमनुमान्य महामुनिम्॥

(७। ९५। ४)

उन दूतोंकी बात सुनकर और श्रीरामके हार्दिक अभिप्रायको समझकर महातेजस्वी महामुनि श्रीवाल्मीकिने प्रत्युत्तर दिया—हे रघुनन्दन! हे जानकीजाने! हे अयोध्यानाथ! आप जैसा कह रहे हैं वैसा ही होगा। कल मेरे साथ मेरी पुत्री आपकी सभामें आवेगी और आपकी आज्ञाका पालन करेगी, क्योंकि वह महान् पतिव्रता है और पतिव्रताके लिये पतिकी आज्ञासे बढ़कर महत्त्वपूर्ण और कुछ नहीं है—

एवं भवतु भद्रं वो यथा वदति राघवः।
तथा करिष्यते सीता दैवतं हि पतिः स्त्रियाः॥

(७। ९५। १०)

महर्षिका सन्देश सुनकर श्रीरामजीने वहाँ आये ऋषियों तथा राजाओंसे कहा—आप सब लोग अपने शिष्यों तथा परिकरोंके समेत कल सभामें पधारें। सेवकोंके सहित राजा लोग भी पधारें और जो भी सीताशपथ सुनना चाहें सब आवें—

भगवन्तः सशिष्या वै सानुगाश्च नराधिपाः।
पश्यन्तु सीताशपथं यश्चैवान्योऽपि काङ्क्षते॥

(७। ९५। १३)

उलझनभरी रात्रि व्यतीत हो गयी, निर्णायक प्रात:काल हो गया। महातेजस्वी राजा रामचन्द्रजी यज्ञशालामें पधारे। उस समय उन्होंने समस्त ऋषियोंको बुलवाया—

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां यज्ञवाटं गतो नृपः।
ऋषीन् सर्वान् महातेजाः शब्दापयति राघवः॥

(७। ९६। १)

भगवान्‌के कहनेसे श्रीवसिष्ठ आये, वामदेव आये, जाबालि आये, काश्यप आये, विश्वामित्र आये, दीर्घतमा आये और महातपस्वी दुर्वासा आये। पुलस्त्य आये, शक्ति आये, भार्गव आये, वामन आये, चिरञ्जीवी मार्कण्डेय आये और महायशस्वी मौद्गल्य आये। गर्ग, च्यवन, धर्मवेत्ता शतानन्द, अग्निपुत्र सुप्रभ, तेजस्वी भरद्वाज, नारद, पर्वत, महायशस्वी गौतम, कात्यायन, सुयज्ञ और तपोनिधि भगवान् अगस्त्य आये—ये महात्मा तथा दूसरे कठोर व्रतका पालन करनेवाले सभी बहुसंख्यक महर्षि वहाँ एकत्र हुए। महापराक्रमी राक्षस और महाबली वानर आये। अनेक देशोंसे पधारे हुए कठोर व्रत करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सहस्रोंकी संख्यामें वहाँ आये। श्रीसीताजीका शपथग्रहण देखनेके लिये ज्ञाननिष्ठ आये, कर्मनिष्ठ आये और योगनिष्ठ भी पधार गये।

महर्षि वाल्मीकिके एक शिष्यने कहा—हे गुरुदेव! राजसभामें सभी लोग आ गये हैं और सब प्रस्तरप्रतिमाकी भाँति निश्चल बैठकर प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह सुनकर महर्षि वाल्मीकिजी श्रीसीताजीको साथमें लेकर तत्काल वहाँ आये—

तदा समागतं सर्वमश्मभूतमिवाचलम्।
श्रुत्वा मुनिवरस्तूर्णं ससीतः समुपागमत्॥

(७। ९६। १०)

महर्षि वाल्मीकिजीके पीछे-पीछे अवाङ्खी—नीचे नेत्र किये श्रीसीताजी चली आ रही थीं। उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़ रखे थे। उनके नेत्रोंसे गङ्गा-यमुना बह रही थीं। वे अपने हृदय-मन्दिरमें विराजमान अपने प्राणप्रियतम श्रीरामका मङ्गलमय चिन्तन कर रही थीं।

तमृषिं पृष्ठतः सीता अन्वगच्छदवाङ्मुखी।

कृताञ्जलिर्बाष्पकला कृत्वा रामं मनोगतम्॥

(७।९६।११)

उन्हें देखकर धन्य है! धन्य है! की ध्वनि चारों ओर उच्चस्वरसे फैल गयी—'**साधुवादो महानभूत्**'। समस्त दर्शकोंका हृदय महान् शोकसे व्याकुल था। उन सबका कोलाहल चारों तरफ फैल गया। कोई कहते थे—'हे रघुकुलभूषण रघुनन्दन! तुम धन्य हो!' दूसरे कहते थे—'हे भारतीय संस्कृतिकी आराध्ये! हे तपस्विनि! हे लोकवन्दिते सीते! तुम धन्य हो!' तथा कुछ दर्शक ऐसे भी थे जो 'अनुपम दम्पति श्रीसीतारामजीकी जय हो' यह उच्चारण करते थे—

साधु रामेति केचित्तु साधु सीतेति चापरे।
उभावेव च तत्रान्ये प्रेक्षकाः सम्प्रचुक्रुशुः॥

(७।९६।१४)

उस जनसमुदायमें श्रीसीताजीके सहित प्रवेश करके परमसहृदय भावुकहृदय, साधुहृदय महर्षि श्रीवाल्मीकिजीने कहा—हे दशरथनन्दन श्रीराम! यह सीता सुव्रता और धर्मपरायणा है। आपने लोकापवादके भयसे भयभीत होकर इसे मेरे आश्रमके सन्निकट परित्याग कर दिया था। हे महान् व्रतधारी राम! मिथ्या लोकापवादके भयसे भयभीत आपको यह महान् सुव्रता सीता अपनी पवित्रताका विश्वास दिलायेगी। इसके लिये आप श्रीसीताको आज्ञा दें—

इयं दाशरथे सीता सुव्रता धर्मचारिणी।
अपवादात् परित्यक्ता ममाश्रमसमीपतः॥
लोकापवादभीतस्य तव राम महाव्रत।
प्रत्ययं दास्यते सीता तामनुज्ञातुमर्हसि॥

(७।९६।१६-१७)

हे रघुनन्दन! ये दोनों धीर गम्भीर सुकुमार कुश और लव श्रीजानकीजीके गर्भसे जुड़वे पैदा हुए हैं। ये आपके ही पुत्र हैं और आपके ही समान दुर्द्धर्ष तथा पराक्रमी हैं। यह मेरी मिथ्या प्रशस्ति नहीं है—

इमौ तु जानकीपुत्रावुभौ च यमजातकौ।
सुतौ तवैव दुर्धर्षौ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥

(७।९६।१८)

हे राघवनन्दन! मैं स्वभावसे ही पवित्र और पवित्र करनेवाले प्रचेता—वरुणका दसवाँ पुत्र हूँ। मुझे स्मरण नहीं आता कि मैंने कभी मिथ्या भाषण किया है। मैं सत्य कहता हूँ कि ये दोनों पुत्र आपके ही हैं—

प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।
न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौ तु तव पुत्रकौ॥

(७।९६।१९)

हे निष्पाप रघुनन्दन! मैंने अनेक सहस्त्र वर्ष-पर्यन्त कठिन तपस्या की है। यदि आपकी पत्नी और निष्पाप राजर्षि मिथिलेशकी पुत्री सीतामें कोई दोष हो तो मुझे उस तपस्याका फल न मिले—

बहुवर्षसहस्त्राणि तपश्चर्या मया कृता।
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली॥

(७।९६।२०)

हे रघुनन्दन! मैंने मन, वाणी और कर्मके द्वारा भी पहले कभी कोई पाप नहीं किया है। हे सीतापते! यदि मैथिली सीता अपापा हो—सर्वथा पापगन्धविन्दुरहित हो, तभी मुझे अपने उस पापशून्य पुण्य कर्मका फल प्राप्त हो—

मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्विषम्।
तस्याहं फलमश्नामि अपापा मैथिली यदि॥

(७।९६।२१)

हे सर्वज्ञ शिरोमणे! मैंने अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों और मन-बुद्धिके द्वारा श्रीसीताकी पवित्रताका अच्छी तरह निश्चय करके ही इन्हें अपने संरक्षणमें लिया है। ये मुझे जंगलमें एक झरनेके

पास मिली थीं, जहाँ इनकी आँखोंसे झरने झर रहे थे। इनका आचरण सर्वथा शुद्ध है। पापने इनका स्पर्श भी नहीं किया है। यह पति-देवता हैं; अतः आपकी आज्ञासे, मिथ्या लोकापवादके भयसे भयभीत आपको अपनी पवित्रताका प्रत्यय—विश्वास दिलायेंगी—

अहं पञ्चसु भूतेषु मनःषष्ठेषु राघव।
विचिन्त्य सीता शुद्धेति जग्राह वननिर्झरे॥
इयं शुद्धसमाचारा अपापा पतिदेवता।
लोकापवादभीतस्य प्रत्ययं तव दास्यति॥

(७। ९६। २२-२३)

हे श्रीदशरथराजकुमार! मैंने श्रीसीताको देखते ही समझ लिया था कि श्रीसीताका भाव और विचार परमपवित्र है, इसीलिये ये मेरे आश्रममें प्रवेश पा सकी हैं। हे सीतापते! हमें यह भी ज्ञात है कि आपको ये प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हैं और आप यह भी जानते हैं कि सीता सर्वथा शुद्ध हैं; तथापि लोकापवादसे कलुषित-चित्त होकर आपने इनका परित्याग किया है—

तस्मादियं नरवरात्मज शुद्धभावा
दिव्येन दृष्टिविषयेण मया प्रविष्टा।
लोकापवादकलुषीकृतचेतसा या
त्यक्ता त्वया प्रियतमा विदितापि शुद्धा॥

(७। ९६। २४)

महर्षि वाल्मीकिके इस प्रकार उदारतापूर्वक श्रीसीताजीकी पवित्रताकी घोषणा करनेपर उनकी ओजस्विनी वाणीको श्रवण करके श्रीरामजी वरवर्णिनी श्रीसीताजीकी ओर दृष्टिपात करके उस जनसमुदायके मध्यमें हाथ जोड़कर बोले—

वाल्मीकिनैवमुक्तस्तु राघवः प्रत्यभाषत।
प्राञ्जलिर्जगतो मध्ये दृष्ट्वा तां वरवर्णिनीम्॥

(७। ९७। १)

हे महाभाग! हे आदिकवे! आप धर्मके यथार्थ जानकार हैं। सीताके सम्बन्धमें आप जो कह रहे हैं वह सब ठीक है। हे ब्रह्मन्! आपके निर्दोष वचनोंसे ही मुझे श्रीजनकनन्दिनीकी पवित्रताका पूर्ण विश्वास हो गया है। एक बार पहले भी देवताओंके समीप विदेहनन्दिनीकी शुद्धताका विश्वास मुझे प्राप्त हो चुका है—

एवमेतन्महाभाग यथा वदसि धर्मवित्।
प्रत्ययस्तु मम ब्रह्मंस्तव वाक्यैरकल्मषैः॥
प्रत्ययश्च पुरा वृत्तो वैदेह्याः सुरसंनिधौ।
शपथश्च कृतस्तत्र तेन वेश्म प्रवेशिता॥

(७। ९७। २-३)

हे ब्रह्मन्! श्रीसीताको सर्वथा निष्पाप जानते हुए भी मैंने केवल समाजके भयसे इन्हें छोड़ दिया था; अतः आप मेरे इस अपराधको क्षमा करें। हे महर्षे! मैं यह भी जानता हूँ कि ये यमजात कुमार कुश और लव मेरे ही पुत्र हैं। तथापि जनसमुदायमें श्रीसीताजीको अपनी शुद्धताका प्रमाण देना चाहिये—

लोकापवादो बलवान् येन त्यक्ता हि मैथिली।
सेयं लोकभयाद् ब्रह्मन्नपापेत्यभिजानता।
परित्यक्ता मया सीता तद् भवान् क्षन्तुमर्हति॥
जानामि चेमौ पुत्रौ मे यमजातौ कुशीलवौ।
शुद्धायां जगतो मध्ये मैथिल्यां प्रीतिरस्तु मे॥

(७। ९७। ४-५)

उसी समय मुख्य-मुख्य महातेजस्वी देवता ब्रह्माको आगे करके वहाँ आ गये। आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, साध्यगण, विश्वेदेवा, सभी महर्षि, नाग, गरुड़ और सम्पूर्ण सिद्धगण प्रसन्नचित्त होकर श्रीसीताजीकी शपथ ग्रहणको देखनेके लिये घबड़ाये हुए वहाँ आ गये। देवताओं और ऋषियोंको उपस्थित देखकर श्रीरामजी पुनः बोले—हे सुरश्रेष्ठवृन्द! यद्यपि मुझे महर्षि श्रीवाल्मीकिके निष्कल्मष वचनोंसे ही पूर्ण विश्वास

हो गया है, तथापि जनसमूहके मध्यमें श्रीसीताजीकी विशुद्धता प्रमाणित हो जानेपर मुझे अधिक प्रसन्नता होगी।

उस समय श्रीसीताजी काषाय वस्त्र धारण किये थीं। सबको उपस्थित जानकर वे हाथ जोड़कर अपनी दृष्टि एवं मुखको नीचा करके बोलीं—

सर्वान् समागतान् दृष्ट्वा सीता काषायवासिनी।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यमधोदृष्टिरवाङ्मुखी॥

(७।९७।१३)

मैं अपने प्राणप्रिय श्रीराघवेन्द्र सरकारके अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुषका मनसे भी चिन्तन नहीं करती; यदि यह सत्य है तो माधवीदेवी—भूदेवी मुझे अपनी गोदमें स्थान दें। यदि मैं मन, वचन, कर्म इन त्रिविध करणोंके द्वारा केवल अपने प्राणप्रियतम श्रीरामजीकी ही आराधना करती हूँ तो भगवती भास्वती माधवीदेवी—भूदेवी मुझे अपनी गोदमें स्थान दें। भगवान् श्रीरामको छोड़कर मैं किसी दूसरे पुरुषको नहीं जानती हूँ, मेरी कही हुई यह बात यदि सत्य हो तो भगवती माधवीदेवी—भूदेवी मुझे अपनी गोदमें स्थान दें—

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥

(७।९७।१४—१६)

श्रीविदेहनन्दिनीके इस प्रकार तीसरी बार शपथ करते ही पृथ्वी फट गयी, उसमेंसे एक परमोत्तम दिव्य और सुन्दर सिंहासन प्रकट हो गया। उस दिव्य सिंहासनको दिव्यरूप धारण करके नागोंने अपने मस्तकपर धारण कर रखा था। सिंहासनके साथ ही पृथ्वीकी अधिष्ठातृ देवी—माधवीदेवी भी दिव्यरूपसे प्रकट हुईं। उन्होंने नित्य किशोरी, मिथिलेशकिशोरी, श्रीसीताजीको अपनी दोनों भुजाओंसे पकड़कर गोदमें उठा लिया और स्वागतपूर्वक उनका अभिनन्दन करके उस भूतलोत्थ सिंहासनपर बिठा दिया—

तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम्।
स्वागतेनाभिनन्द्यैनामासने चोपवेशयत्॥

(७।९७।१९)

उस समय भगवती भास्वती करुणामयी जगज्जननी मिथिलेशनन्दिनी नित्य किशोरी श्रीजानकीजीकी अपूर्व छटा थी। सिंहासनपर विराजमान होकर जब श्रीसीताजी रसातलमें प्रवेश करने लगीं तब देवताओंने उनका दर्शन किया। आकाशसे उनके मस्तकपर नन्दनकाननके दिव्य पुष्पोंकी मङ्गलमयी पुष्पवृष्टि होने लगी—

तामासनगतां दृष्ट्वा प्रविशन्तीं रसातलम्।
पुष्पवृष्टिरविच्छिन्ना दिव्या सीतामवाकिरत्॥

(७।९७।२०)

भूमिसे समुत्पन्न भगवती नित्यकिशोरी भूमिजा आज भूमिमें ही प्रविष्ट हो गयीं। इसी सिंहासन-पर बैठी हुई श्रीसीताजीका दर्शन सीतामढ़ीमें श्रीजनकको हुआ था। सहस्रों वर्षपर्यन्त भगवती वसुन्धराको अपनी आदर्शमयी लीलासे आप्यायित करके, जगत्में नारीधर्मका पवित्र आदर्श स्थापित करके, आज वे ही सीता सिंहासनपर विराजमान होकर नैमिषारण्यकी पवित्र धरित्रीके मार्गसे साकेतके लिये—अपने नित्य लीलाक्षेत्रके लिये पधार गयीं।

चारों ओर धन्य! धन्य! जय-जय, साधु-साधुकी ध्वनि गूँजने लगी। हे सीते! तुम धन्य हो! धन्य हो! तुम्हारी तरह पुत्री इस भूतलपर

आजतक नहीं उत्पन्न हुई। हे विदेहनन्दिनि! तुम्हारा जीवन सर्वथा निर्मल और निष्कलङ्क है। इसे तुमने दो-दो बार प्रमाणित कर दिया। हे जनकनन्दिनि! यह तुम्हारा परम पवित्र दिव्य चरित्र, तुम्हारी सहनशीलता, तुम्हारा सौशील्य, तुम्हारी पतिभक्ति और तुम्हारा अनुपम वात्सल्य कल्प-कल्पान्तरपर्यन्त लोगोंको प्रेरणा देता रहेगा। हे भारतीय संस्कृतिकी आराध्ये! आपकी कीर्ति-सरितामें डूब करके भक्तजन अनन्तानन्त रत्नोंकी प्राप्ति करते रहेंगे। इस प्रकार जयध्वनि चारों ओर होने लगी—

साधुकारश्च सुमहान् देवानां सहसोत्थितः।
साधु साध्विति वै सीते यस्यास्ते शीलमीदृशम्॥

(७।९७।२१)

भगवान् श्रीराम श्रीसीताजीके भूप्रवेशको देखकर अतिशय दुःखी हुए। उनका मन दीन हो गया। वे गूलरके दण्डका आश्रय ले करके खड़े होकर मस्तक झुका करके नेत्रोंसे अश्रुवर्षण करने लगे—

दण्डकाष्ठमवष्टभ्य बाष्पव्याकुलितेक्षणः।
अवाक्शिरा दीनमना रामो ह्यासीत् सुदुःखितः॥

(७।९८।२)

भगवान् श्रीरामने कहा—हे वसुन्धरे! वास्तवमें आप मेरी सास हैं। राजर्षि जनक हाथमें हल लेकर आपको जोत रहे थे, उस समय आपके उदरसे ही श्रीसीताजीका प्राकट्य हुआ था; इसलिये हे वसुधे! या तो तुम मुझे सीताको लौटा दो अथवा मेरे लिये अपनी गोदमें स्थान दो; क्योंकि पाताल हो या स्वर्ग मैं अपनी प्राणप्रिया श्रीसीताके साथ ही रहूँगा—

कामं श्वश्रूर्ममैव त्वं त्वत्सकाशात्तु मैथिली।
कर्षता फालहस्तेन जनकेनोद्धृता पुरा॥
तस्मान्निर्यात्यतां सीता विवरं वा प्रयच्छ मे।
पाताले नाकपृष्ठे वा वसेयं सहितस्तया॥

(७।९८।७-८)

हे क्षमाशीले! हे भूदेवि! तुम मेरी सीताको लाओ। मैं अपनी प्राणप्रिया प्रियतमा मैथिलीके लिये सम्प्रति मत्त हो गया हूँ। श्रीरामजी इस प्रकार क्रोध और शोकसे व्याकुल हो रहे थे, उस समय श्रीब्रह्माजीने श्रीरामजीसे कहा—हे सुव्रत! हे श्रीराम! आप सन्ताप न करें। हे अरिनिषूदन! आप अपने पूर्वस्वरूपका स्मरण करें—

राम राम न संतापं कर्तुमर्हसि सुव्रत।
स्मर त्वं पूर्वकं भावं मन्त्रं चामित्रकर्शन॥

(७।९८।१२)

हे रघुनन्दन! आपका और श्रीसीताजीका सनातन सम्बन्ध है। आपसे उनका कभी वियोग नहीं होता है। वे सर्वथा आपकी अनपायिनी आह्लादिनी शक्ति हैं। हे रघुनन्दन! लीलाक्षेत्रमें अवतरित होकर आप दोनों प्रिया-प्रियतम अपने सम्प्रयोग-विप्रयोगके द्वारा अपने प्रेमका आनन्द लेते हैं। हे प्रभो! साकेतलोकमें पुनः आपका सम्मिलन होगा। श्रीब्रह्माने पुनः कहा—हे रघुनन्दन! आप धर्मपूर्वक सुसमाहित हो करके भविष्यकी घटनाओंसे युक्त अवशिष्ट श्रीरामायण महाकाव्य भी सुन लीजिये—

स त्वं पुरुषशार्दूल धर्मेण सुसमाहितः।
शेषं भविष्यं काकुत्स्थ काव्यं रामायणं शृणु॥

(७।९८।२०)

महर्षि श्रीवाल्मीकिजीके चरणोंमें वन्दना करके श्रीरामजीने कहा—हे महर्षे! हे करुणामय! हम आपके ऋणसे कभी उऋण नहीं हो सकते हैं। मेरे द्वारा लोकापवादके मिथ्या भयसे परित्यक्ता श्रीमैथिलीको आपने अपने पावन वात्सल्यमय स्नेहकी छत्रछायामें पुत्रीकी भाँति परिपालन किया। कुश और लवको वीरता, धीरता, वाग्मिता आदि

गुणोंसे प्रशिक्षित किया। इनकी विनय, इनकी अनुशासनप्रियता वास्तवमें श्लाघ्य है। हे आदि कवे! हे कुशीलवगुरो! कुश और लवपर हमारा अधिकार है, यह कहनेकी मेरी वाणीमें सामर्थ्य नहीं है। ये आपके थे, आपके हैं और आपके ही रहेंगे। परंतु हे उदारहृदय! आपके श्रीचरणोंमें प्रार्थना है कि श्रीरामायणीकथाका अवशिष्टांश हमलोग सुनना चाहते हैं। हे भगवन्! ये ब्रह्मलोकके निवासी महर्षि भी उत्तरकाण्डका शेष अंश सुनना चाहते हैं। एतावता प्रात:कालसे ही उसका गान प्रारम्भ हो जाना चाहिये; इसलिये यदि आप आज्ञा दें तो मैं इन्हें कुछ दिन अपने पास रखकर रामायणीकथाका लाभ लूँ—

भगवञ्श्रोतुमनस ऋषयो ब्राह्मलौकिकाः॥
भविष्यदुत्तरं यन्मे श्वोभूते सम्प्रवर्तताम्।

(७। ९८। २६-२७)

महर्षि श्रीवाल्मीकिने कहा—हे सर्वज्ञ रघुनन्दन! आज मुझे श्रीरामायणजीकी रचनाका फल मिल गया। पुत्र अपने पिताकी स्नेहमयी गोदमें पहुँच गया, आराधक आराध्यकी सन्निधिमें पहुँच गया और भक्त भगवान्के श्रीचरणोंमें पहुँच गया। अब माध्यमकी कोई आवश्यकता नहीं है। हे श्रीराघवेन्द्र! हे सीतापते! मैं तो मात्र माध्यम हूँ। विह्वलवचन, सजलनयन श्रीमुनिने कहा—हे करुणामय! अब मैं पिता-पुत्रके मध्यसे अलग हो रहा हूँ। मेरा कार्य समाप्त हो चुका है। अब आप केवल कथा ही नहीं सुनें। हे पुत्रवत्सल! इस समय इन दोनों बालकोंको आपकी बहुत आवश्यकता है। इनकी माँ चली गयी हैं। हे रघुनन्दन! जिस प्रेमको इन्होंने कभी नहीं पाया, वह पिताका प्रेम भी आपको इन्हें देना है और जो स्नेह इनका छिन गया है वह माँका ममतामय स्नेह भी इन्हें आपको देना है। हे वात्सल्यमय! इनको ले जाओ, इनको स्वीकार करो, इनको अपनी स्नेहमयी गोदमें बिठाकर अपनी स्नेहोच्छलित नेत्रोंकी करुणामयी धारासे इनके तन-मनका अभिषेक करके इन्हें आश्वस्त कर दो कि तुम अनाथ नहीं हो, मातृहीन नहीं हो, पितृहीन नहीं हो। इस प्रकार कहते हुए आँखोंसे अश्रुवर्षण करते हुए लव-कुशको हृदयमें लगाकर मङ्गलमय आशीर्वचन कहते हुए श्रीराम और उनके पुत्रोंका प्रणाम स्वीकार करके महर्षि चले गये।

गुरुकी वियोगव्यथासे व्यथितहृदय, माताकी स्नेहमयी गोदसे वञ्चित कुश और लवको साथमें ले करके श्रीरामजी जनसमुदायको विदा करके अपनी पर्णशालामें आये। वहाँ श्रीसीताजीका चिन्तन करते-करते उन्होंने रात्रि व्यतीत की—

एवं विनिश्चयं कृत्वा सम्प्रगृह्य कुशीलवौ॥
तं जनौघं विसृज्याथ पर्णशालामुपागमत्।
तामेव शोचतः सीता सा व्यतीता च शर्वरी॥

(७। ९८। २७-२८)

इस श्लोकमें '**सम्प्रगृह्य कुशीलवौ**' का भाव मैं आचार्योंके श्रीचरणोंकी छत्रछायामें बैठकर कह रहा हूँ। जब पुत्रवत्सल रघुनन्दन श्रीरामचन्द्र अपने परम वात्सल्यभाजन पुत्रोंको—कुश और लवको लेकर पर्णशालामें प्रविष्ट होते हैं, जब निपट एकान्त मिलता है तब कुश और लवको उठाकर अपनी गोदमें लेकर हृदयसे लगाकर भुजाओंके पाशमें निबद्ध कर लेते हैं। पिता-पुत्र तीनों फफक-फफककर रो पड़े। तीनोंको करुणामयी श्रीजनकनन्दिनीकी स्नेहस्मृति होने लगी। कुश और लव सोचते हैं कि कहीं हम स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं। हम दोनों जीवनमें पिताके स्नेहसे सदा वञ्चित रहे हैं, कहीं यह स्नेह आज मिलकर फिर समाप्त तो नहीं हो जायगा? पिताने पुत्रोंकी अन्तरात्माकी आवाज सुन ली, तत्काल श्रीरघुनन्दनने

कहा—हे मैथिलीनन्दनो! मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैं जबतक इस धराधाममें रामरूपसे रहूँगा इसी भाँति अपनी गोदका आश्रय देता रहूँगा। हे मेरे लाल! अब तुम मुझसे कभी अलग नहीं होगे। हे श्रीसीतापुत्रो! मैं तुम्हारा केवल पिता ही नहीं हूँ। आजसे मैं तुम्हारी माँ भी हूँ और तुम्हारा पिता भी। यह भाव **'सम्प्रगृह्य कुशीलवौ'** इन शब्दोंका है।

रात्रिके व्यतीत होनेपर मङ्गलमय सुप्रभात हुआ। श्रीरामचन्द्रजीने बड़े-बड़े मुनियोंको बुलाकर अपने दोनों पुत्रोंसे कहा कि अब तुम निःशङ्क होकर श्रीरामायणके अवशेष भागका गान करो—

रजन्यां तु प्रभातायां समानीय महामुनीन्।
गीयतामविशङ्काभ्यां रामः पुत्रावुवाच ह॥

(७। ९९। १)

कुश और लवने सम्पूर्ण रामकथा सुनायी। श्रीसीताजीके रसातल प्रवेशसे श्रीरामजीको महान् दुःख हुआ **'रामः परम दुर्मनाः'**। इसके बाद श्रीराघवेन्द्रने यज्ञमें आये हुए राजाओं, राक्षसों, वानरों, रीछों—सबको आदरपूर्वक भेंट देकर विदा किया। मुख्य-मुख्य ब्राह्मणोंको भी सम्मानपूर्वक धन देकर विदा किया। यज्ञीय दक्षिणाका भी विधिवत् वितरण हुआ। इस प्रकार विधिपूर्वक यज्ञ समाप्त हुआ। भगवान् श्रीरामने अपने हृदयमें श्रीसीताजीका स्मरण करते हुए श्रीअयोध्याजीमें प्रवेश किया। यज्ञ समाप्त करके राजराजेश्वर श्रीरामजी अपने दोनों पुत्रोंके साथ रहने लगे—

हृदि कृत्वा तदा सीतामयोध्यां प्रविवेश ह।
इष्टयज्ञो नरपतिः पुत्रद्वयसमन्वितः॥

(७। ९९। ७)

श्रीरामजीने श्रीसीताजीके अतिरिक्त किसी स्त्रीसे विवाह नहीं किया। प्रत्येक यज्ञमें जब-जब धर्मपत्नीकी आवश्यकता होती थी, श्रीरामजी श्रीसीताजीकी काञ्चनीप्रतिमा बनवा लेते थे।

न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः।
यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनीभवत्॥

(७। ९९। ८)

इसके अनन्तर बहुत दिन व्यतीत होनेपर श्रीरामकी परम यशस्विनी माता श्रीकौसल्या पुत्र-पौत्रोंसे घिरी हुई संसारको छोड़कर साकेतलोक चली गयीं। श्रीसुमित्रा और कैकेयीने भी शरीरका परित्याग कर दिया—

अथ दीर्घस्य कालस्य राममाता यशस्विनी।
पुत्रपौत्रैः परिवृता कालधर्ममुपागमत्॥
अन्वियाय सुमित्रा च कैकेयी च यशस्विनी।

(७। ९९। १५-१६)

कुछ कालके पश्चात् केकय देशके राजा, श्रीभरतजीके मामा, राजा युधाजित्ने अनेक प्रकारकी महामूल्यवान् उपहार-सामग्री देकर श्रीरामजीके पास महर्षि गार्ग्यको भेजा। भगवान् श्रीरामचन्द्रने महर्षिका अतिशय आदर-सत्कार किया।

ब्रह्मर्षि गार्ग्य मुनिने कहा—हे महाबाहो! आपके मामा युधाजित् राजाने जो सन्देश भेजा है उसको आप रुचिपूर्वक सुनिये। सिन्धु नदीके दोनों तटोंपर फलमूलोपशोभित गन्धर्व देश बसा हुआ है। गन्धर्वराज शैलूषकी संतानें तीन करोड़ महाबली गन्धर्व जो युद्धकोविद हैं और शस्त्रास्त्रोंसे सम्पन्न हैं, उस देशकी रक्षा करते हैं। हे ककुत्स्थनन्दन! आप उन गन्धर्वोंको जीतकर गन्धर्व नगर बसाइये—

अयं गन्धर्वविषयः फलमूलोपशोभितः॥
सिन्धोरुभयतः पार्श्वे देशः परमशोभनः।
तं च रक्षन्ति गन्धर्वाः सायुधा युद्धकोविदाः॥
शैलूषस्य सुता वीर तिस्त्रः कोट्यो महाबलाः।

तान् विनिर्जित्य काकुत्स्थ गन्धर्वनगरं शुभम्॥

(७। १००। १०—१२)

श्रीरामचन्द्रजीको महर्षि और मामाका संदेश बहुत अच्छा लगा। श्रीरामजीने कहा—हे ब्रह्मर्षे! भरतके वीर पुत्र कुमार तक्ष और पुष्कल भरतको आगे करके सेना और सेवकोंके साथ वहाँ जायँगे और उन गन्धर्वपुत्रोंका संहार करके अलग-अलग दो नगर बसायेंगे। उन दोनों नगरोंको बसाकर भरत अपने दोनों पुत्रोंको वहाँ स्थापित करके पुनः मेरे पास आ जायेंगे—

भरतस्यात्मजौ वीरौ तक्षः पुष्कल एव च।
मातुलेन सुगुप्तौ तु धर्मेण सुसमाहितौ॥
भरतं चाग्रतः कृत्वा कुमारौ सबलानुगौ।
निहत्य गन्धर्वसुतान् द्वे पुरे विभजिष्यतः॥
निवेश्य ते पुरवरे आत्मजौ संनिवेश्य च।
आगमिष्यति मे भूयः सकाशमतिधार्मिकः॥

(७। १००। १६—१८)

श्रीरामजीने दोनों कुमारोंका पहले ही अभिषेक कर दिया। अङ्गिरापुत्र ब्रह्मर्षि गार्ग्यको आगे करके विशाल सेनाके साथ श्रीभरतजीने श्रीरामजीको प्रणाम करके प्रस्थान किया। श्रीरामजी भी कुछ दूरतक साथ गये। लगभग पैंतालीस दिनोंमें सकुशल केकय देश पहुँच गये। श्रीभरत और मामा युधाजित् दोनोंने मिलकर गन्धर्वोंकी राजधानीपर सेना और सवारियोंके साथ आक्रमण किया—

भरतश्च युधाजिच्च समेतौ लघुविक्रमैः।
गन्धर्वनगरं प्राप्तौ सबलौ सपदानुगौ॥

(७। १०१। ३)

महाभयंकर संग्राम हुआ, अन्तमें श्रीभरतजीकी विजय हुई। श्रीभरतजीने गन्धर्व देशमें तक्षशिला नामकी नगरी तथा गान्धार देशमें पुष्कलावत नामका नगर बसाकर उन्हें क्रमशः तक्ष और पुष्कलको सौंप दिया—

तक्षं तक्षशिलायां तु पुष्कलं पुष्कलावते।
गन्धर्वदेशे रुचिरे गान्धारविषये च सः॥

(७। १०१। ११)

पाँच वर्षोंमें उन दोनों राजधानियोंको अच्छी तरह बसा करके केकयीनन्दन राघवानुज महाबाहु भरत श्रीअयोध्यामें लौट आये। श्रीअयोध्यामें आकर अपने आराध्य श्रीरामजीके चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर श्रीभरतने गन्धर्वोंका वध और दोनों नगरोंको अच्छी तरह बसानेका समाचार निवेदन किया। सुनकर भगवान् श्रीरामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए—

शशंस च यथावृत्तं गन्धर्ववधमुत्तमम्।
निवेशनं च देशस्य श्रुत्वा प्रीतोऽस्य राघवः॥

(७। १०१। १८)

श्रीरामजीने कहा—हे सुमित्रानन्द संवर्द्धन! तुम्हारे ये दोनों पुत्र अङ्गद और चित्रकेतु धर्म-विशारद हैं। राजाके योग्य दृढ़ता और पराक्रम-सम्पन्न भी हैं—

इमौ कुमारौ सौमित्रे तव धर्मविशारदौ।
अङ्गदश्चन्द्रकेतुश्च राज्यार्थे दृढविक्रमौ॥

(७। १०२। २)

इसलिये मैं इनका भी राज्याभिषेक करूँगा। तुम इनके लिये किसी अच्छे देशका चयन करो। श्रीभरतने कहा—हे प्रभो! कारुपथ नामका देश बहुत सुन्दर है, रमणीय और निरामय है—

तथोक्तवति रामे तु भरतः प्रत्युवाच ह।
अयं कारुपथो देशो रमणीयो निरामयः॥

(७। १०२। ५)

श्रीरामजीने कारुपथ देशको अपने अधिकारमें करके अङ्गदके लिये 'अङ्गदीया' नामक रम्या पुरी बसायी और चित्रकेतुके लिये 'चन्द्रकान्ता' नामकी नगरी बसायी।

सावधान रहनेवाले उन दोनों कुमारोंका

राज्याभिषेक करके अङ्गदको पश्चिम और चन्द्रकेतुको उत्तर दिशामें भेज दिया—

अभिषिच्य कुमारौ द्वौ प्रस्थाप्य सुसमाहितौ।
अङ्गदं पश्चिमां भूमिं चन्द्रकेतुमुदङ्मुखम्॥

(७।१०२।११)

अङ्गदके साथ श्रीलक्ष्मण और चन्द्रकेतुके साथ श्रीभरत गये। दोनों एक वर्षपर्यन्त रहकर पुरीको सुव्यवस्थित करके श्रीरामजीके पास लौट आये। इस प्रकार स्नेहपूर्वक रहते हुए दस हजार वर्ष बीत गये। तीनों भाई पुरवासियोंके कार्यमें सदा व्यस्त रहते थे और धर्मपालन करनेके लिये प्रयत्नवान् रहते थे—

एवं वर्षसहस्राणि दश तेषां ययुस्तदा।
धर्मे प्रयतमानानां पौरकार्येषु नित्यदा॥

(७।१०२।१६)

एक दिन साक्षात् काल तपस्वीके वेषमें श्रीअयोध्याके राजद्वारपर आया। श्रीलक्ष्मणजीने श्रीरामजीको तपस्वीके आनेकी सूचना दी। श्रीरामजीने कहा—हे तात! महातेजस्वी मुनिको भीतर ले आओ—

तद् वाक्यं लक्ष्मणोक्तं वै श्रुत्वा राम उवाच ह।
प्रवेश्यतां मुनिस्तात महौजास्तस्य वाक्यधृक्॥

(७।१०३।६)

मुनिके आनेपर भगवान् श्रीरामने पाद्य-अर्घ्य आदि पूजनोपचारसे मुनिका स्वागत करके आनेका कारण पूछा। आगन्तुक मुनिने कहा—हे श्रीराम! हमारे वार्तालापके समय मैं और आप दो ही व्यक्ति रहेंगे। आपको यह भी घोषित करना होगा कि कोई मनुष्य हम लोगोंकी बात सुन ले अथवा हमें वार्तालाप करते देख ले तो वह आपके द्वारा मारा जायगा—

यः शृणोति निरीक्षेद् वा स वध्यो भविता तव।

(७।१०३।१३)

श्रीरामजी मुनिकी बात स्वीकार करके श्रीलक्ष्मणसे बोले—हे महाबाहो! द्वारके प्रतिहारको अवकाश देकर उसके स्थानपर तुम स्वयं द्वारपालका कार्य करो। हे सुमित्रानन्दन! जो ऋषिकी और मेरी कही हुई बात सुन लेगा अथवा हमें बात करते हुए देख लेगा वह मेरे द्वारा मारा जायगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है—

द्वारि तिष्ठ महाबाहो प्रतिहारं विसर्जय॥
स मे वध्यः खलु भवेद् वाचं द्वन्द्वसमीरितम्॥
ऋषेर्मम च सौमित्रे पश्येद् वा शृणुयाच्च यः।

(७।१०३।१४-१५)

मुनिवेषधारी महाकालने कहा—हे महाबलवान्! हे महासत्त्व! हे राजराजेन्द्र! मुझे श्रीब्रह्माजीने जिस कार्यके लिये सम्प्रेषित किया है आप उसे श्रवण करें। हे प्रभो! मैं आपसे उत्पन्न होनेके कारण आपका पुत्र स्थानापन्न सर्वसंहारकारक काल हूँ। हे सौम्य! ब्रह्माजीने कहा है—आपने सृष्टिके प्रारम्भमें मुझे उत्पन्न किया है और सृष्टिकी रचनाका कार्य मुझे समर्पित किया। हे प्रभो! मेरे अनुरोधपर प्राणियोंकी रक्षाके लिये सनातन पुरुषरूपसे जगत्पालक विष्णुके स्वरूपमें आप भी प्रकट हुए। आप ही वामन आदि रूपोंमें अवतरित होते हैं। हे जगदीश्वर! ग्यारह हजार वर्षकी अवधि पूर्ण हो गयी है, अतः आप लीला-संवरण करें। भगवान्ने कहा—हे काल! तीनों लोकोंकी कार्यसिद्धिके लिये ही मेरा यह अवतार हुआ था, यह उद्देश्य अब पूर्ण हो गया है; इसलिये अब मैं जहाँसे आया था वहीं चलूँगा—

त्रयाणामपि लोकानां कार्यार्थं मम सम्भवः।
भद्रं तेऽस्तु गमिष्यामि यत एवाहमागतः॥

(७।१०४।१८)

इस प्रकार महाकाल और श्रीरामजीकी वार्ता हो ही रही थी कि उसी समय भगवान्

दुर्वासा ऋषि राजद्वारपर आये। वे श्रीरामजीके दर्शनकी अभिलाषासे आये थे। श्रीदुर्वासाजीने आते ही प्रतिहार स्थानापन्न श्रीलक्ष्मणसे कहा—मुझे जल्दी ही श्रीरामजीसे मिला दो—**'रामं दर्शय मे शीघ्रम्'**। श्रीलक्ष्मणने महर्षिको प्रणाम करके अत्यन्त शालीनता और विनम्रतासे कहा—हे भगवन्! बताइये क्या कार्य है? क्या प्रयोजन है? मैं आपकी क्या सेवा करूँ? हे ब्रह्मन्! इस समय श्रीरामजी परमावश्यक कार्यमें व्यस्त हैं। मात्र एक मुहूर्त्त प्रतीक्षा करें—

किं कार्यं ब्रूहि भगवन् को ह्यर्थः किं करोम्यहम्।
व्यग्रो हि राघवो ब्रह्मन् मुहूर्तं परिपाल्यताम्॥

(७। १०५। ४)

परंतु इन कोमल वचनोंका श्रीदुर्वासापर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे तो श्रीलक्ष्मणको ऐसे देखने लगे मानो भस्म ही कर डालेंगे। श्रीदुर्वासाने कहा—हे सौमित्रे! इसी क्षण श्रीरामको मेरे आनेकी सूचना दो अन्यथा मैं राज्यको, नगरको, तुमको, श्रीरामको, भरतको और तुम लोगोंकी जो संतान हैं उनको भी शाप दे दूँगा—

अस्मिन् क्षणे मां सौमित्रे रामाय प्रतिवेदय।
अस्मिन् क्षणे मां सौमित्रे न निवेदयसे यदि।
विषयं त्वां पुरञ्चैव शपिष्ये राघवं तथा॥
भरतञ्चैव सौमित्रे युष्माकं या च सन्ततिः।
न हि शक्ष्याम्यहं भूयो मन्युं धारयितुं हृदि॥

(७। १०५। ६-७)

श्रीलक्ष्मणने सोचा—एक मेरा मरण हो यह अच्छा है; परंतु सबका विनाश नहीं होना चाहिये। अपनी बुद्धिसे ऐसा निश्चय करके श्रीरामजीको महर्षि दुर्वासाके आनेका समाचार दे दिया—

एकस्य मरणं मेऽस्तु मा भूत् सर्वविनाशनम्।
इति बुद्ध्या विनिश्चित्य राघवाय न्यवेदयत्॥

(७। १०५। ९)

श्रीलक्ष्मणसे दुर्वासाका समाचार सुनकर श्रीरामजी कालको विदा करके अत्रिपुत्र दुर्वासासे मिले। उन्हें प्रणाम करके पूछा—हे महर्षे! मेरे लिये क्या आज्ञा है? श्रीदुर्वासाने कहा—हे राघवेन्द्र! मैंने एक सहस्र वर्षपर्यन्त उपवास किया है। आज मेरे उपवास-व्रतकी समाप्तिका दिन है; इसलिये आपके यहाँ जो भोजन तैयार हो उसे मैं ग्रहण करना चाहता हूँ—

अद्य वर्षसहस्रस्य समाप्तिर्मम राघव।
सोऽहं भोजनमिच्छामि यथासिद्धं तवानघ॥

(७। १०५। १३)

श्रीरामजीने मुनिको जो भोजन तैयार था उसका परिवेषण किया। अमृतके समान सुस्वादु अन्न पा करके संतृप्त होकर अत्रिपुत्र दुर्वासा मुनि श्रीरामजीको साधुवाद देकर अपने आश्रमपर चले गये—

स तु भुक्त्वा मुनिश्रेष्ठस्तदन्नममृतोपमम्।
साधु रामेति सम्भाष्य स्वमाश्रममुपागमत्॥

(७। १०५। १५)

महर्षिके जानेके पश्चात् कालके वचनोंका स्मरण करके श्रीरामजीका मन संतप्त हो गया और वे कुछ बोल नहीं सके—

दुःखेन च सुसंतप्तः स्मृत्वा तद्घोरदर्शनम्।
अवाङ्मुखो दीनमना व्याहर्तुं न शशाक ह॥

(७। १०५। १७)

श्रीरामजीकी शोकसंतप्त दशा देखकर श्रीलक्ष्मणने हर्षके साथ मधुर वाणीमें कहा—हे महाबाहो! आपको मेरे लिये संताप नहीं करना चाहिये। हे महाराज! यदि आपका मुझसे प्रेम है, यदि आप मुझे अपना कृपापात्र समझते हैं, तो शंकारहित होकर मुझे प्राणदण्ड दें। हे राघव! आप अपने धर्मकी वृद्धि करें—

यदि प्रीतिर्महाराज यद्यनुग्राह्यता मयि।

जहि मां निर्विशङ्कस्त्वं धर्मं वर्द्धय राघव॥

(७। १०६। ४)

श्रीरामजी किंकर्तव्यविमूढ़-से होकर श्रीवसिष्ठजी तथा अन्य मन्त्रियोंको बुलाकर आगन्तुक मुनिके सामने की गयी प्रतिज्ञा, श्रीलक्ष्मणजीकी द्वारपालपदपर नियुक्ति, महर्षि दुर्वासाका आगमन, उनके कठोर वचन और लक्ष्मणका प्रतिज्ञा तोड़ना आदि सब वृत्तान्त निवेदन कर दिया। यह हृदयद्रावक समाचार सुनकर मन्त्री और उपाध्याय सहसा कुछ नहीं बोल सके। तब महायशस्वी श्रीवसिष्ठने कहा—हे महायशस्वी श्रीराम! हे महाबाहो! इस समय जो रोमहर्षण विनाश होनेवाला है और श्रीलक्ष्मणसे जो वियोग हो रहा है, यह सब तपोबलसे मैंने पहले ही जान लिया है—

दृष्टमेतन्महाबाहो क्षयं ते रोमहर्षणम्।
लक्ष्मणेन वियोगश्च तव राम महायशः॥

(७। १०६। ८)

हे भ्रातृवत्सल रघुनन्दन! आप लक्ष्मणका परित्याग कर दें। प्रतिज्ञाका पालन करें; क्योंकि प्रतिज्ञाके नष्ट होनेपर धर्मका लोप हो जायगा—

त्यजैनं बलवान् कालो मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः।
प्रतिज्ञायां हि नष्टायां धर्मो हि विलयं व्रजेत्॥

(७। १०६। ९)

भगवान् श्रीरामने स्खलिताक्षरोंमें कहा—हे सुमित्राकुमार! मैं तुम्हारा परित्याग कर रहा हूँ, जिससे धर्मका विपर्यय न हो—लोप न हो। सज्जनोंका वध और त्याग दोनों ही समान है—

विसर्जये त्वां सौमित्रे मा भूद्धर्मविपर्ययः।
त्यागो वधो वा विहितः साधूनां ह्युभयं समम्॥

(७। १०६। १३)

श्रीरामके इतना कहते ही श्रीलक्ष्मणका हृदय उद्वेलित हो गया। उनकी आँखोंसे आँसू बहने लगे और वे मुखसे कुछ बोल नहीं सके, वे तत्काल वहाँसे चल दिये। अपने घरतक नहीं गये—

रामेण भाषिते वाक्ये बाष्पव्याकुलितेन्द्रियः।
लक्ष्मणस्त्वरितं प्रायात् स्वगृहं न विवेश ह॥

(७। १०६। १४)

श्रीसरयूके तटपर जाकर आचमन किया और बद्धाञ्जलि होकर सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें करके प्राणवायुको रोक लिया। इन्द्रादि देवता, ऋषि और अप्सराएँ उनके ऊपर फूलकी वर्षा करने लगे। वे अपने शरीरके साथ ही लोगोंकी दृष्टिसे ओझल हो गये—

अदृश्यं सर्वमनुजैः सशरीरं महाबलम्।
प्रगृह्य लक्ष्मणं शक्रस्त्रिदिवं संविवेश ह॥

(७। १०६। १७)

श्रीलक्ष्मणका त्याग करके दुःख और शोकसे संतप्त श्रीराम पुरोहित, मन्त्री और महाजनोंसे बोले—आज अयोध्याके राज्यपर धर्मवत्सल वीर भाई भरतका राजाके पदपर अभिषेक करके मैं वन चला जाऊँगा—

विसृज्य लक्ष्मणं रामो दुःखशोकसमन्वितः।
पुरोधसं मन्त्रिणश्च नैगमांश्चेदमब्रवीत्॥
अद्य राज्येऽभिषेक्ष्यामि भरतं धर्मवत्सलम्।
अयोध्यायाः पतिं वीरं ततो यास्याम्यहं वनम्॥

(७। १०७। १-२)

श्रीभरतने कहा—हे राजराजेन्द्र! मैं सत्यकी शपथ करके कहता हूँ कि आपके बिना मुझे राज्य और स्वर्गका भी भोग नहीं चाहिये। हे स्वामी! आप दक्षिण कोशलमें कुशका और उत्तर कोशलमें लवका राज्याभिषेक कर दीजिये—

इमौ कुशीलवौ राजन्नभिषिच्य नराधिप।
कोशलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु तथा लवम्॥

(७। १०७। ७)

अयोध्यावासियोंको शोकसंतप्त देखकर वसिष्ठजीने श्रीरामजीसे कहा—हे वत्स श्रीराम! भूमिपर पड़े हुए इन शोकसंतप्त प्रजाजनोंको देखो। इनका अभिप्राय समझकर उसीके अनुसार कार्य करो। इनकी इच्छाके विपरीत करके इन दुःखियोंका हृदय दुःखी न करो—

वत्स राम इमाः पश्य धरणिं प्रकृतीर्गताः।
ज्ञात्वैषामीप्सितं कार्यं मा चैषां विप्रियं कृथाः॥

(७। १०७। १०)

श्रीरामने प्रजाजनोंको धरतीपरसे उठाया और पूछा—हे मेरे पुरवासियो! मैं आपलोगोंका कौन-सा कार्य पूर्ण करूँ? तब सब प्रजाजनोंने कहा—हे राजाधिराज! हे रघुनन्दन! आप जहाँ भी जायँगे आपके पीछे-पीछे हम भी वहाँ चलेंगे। हे ककुत्स्थकुलभूषण! यदि हम पुरवासियोंपर आपका स्नेह है तो हमें साथ चलनेकी आज्ञा दें। हम अपने स्त्री-पुत्रोंसहित आपके साथ ही सन्मार्गपर चलनेको प्रस्तुत हैं। हे सर्वेश्वर! आप तपोवनमें चलें या किसी दुर्गम स्थानमें, नदीमें या समुद्रमें, कहीं भी जायँ हम सबको साथ ले चलें। हे अयोध्यानाथ! यदि आप हमें त्याग देनेयोग्य नहीं मानते हैं तो हमारी प्रार्थना स्वीकार करें—

तपोवनं वा दुर्गं वा नदीमम्भोनिधिं तथा।
वयं ते यदि न त्याज्याः सर्वान्नो नय ईश्वर॥

(७। १०७। १४)

भक्तवत्सल श्रीरामजीने उनकी बात स्वीकार कर ली।

श्रीरामजीने दक्षिणकोशलके राज्यपर वीरवर कुशको और उत्तरकोशलके राज्यपर वीरवर लवको अभिषिक्त कर दिया। अभिषेकके अनन्तर अपनी गोदमें बिठाकर प्यार और आशीर्वाद देकर उन्हें अपनी राजधानीमें भेज दिया।

श्रीरघुनाथजीने शीघ्रगामी दूतोंको महात्मा शत्रुघ्नको बुलानेके लिये भेजा—

दूतान् सम्प्रेषयामास शत्रुघ्नाय महात्मने॥

(७। १०७। २१)

श्रीशत्रुघ्नने दूतोंसे समाचार जानकर भगवान्‌के साथ साकेत जानेका निर्णय करके अपने दोनों पुत्रोंका राज्याभिषेक कर दिया—

ततः पुत्रद्वयं वीरः सोऽभ्यषिञ्चन्नराधिपः॥

(७। १०८। ९)

शत्रुघ्नने सुबाहुको मधुराका और शत्रुघातीको विदिशाका राज्य दे दिया। पुत्रोंको राज्य देकर सबसे विदा होकर श्रीशत्रुघ्न अविरामगतिसे चलकर श्रीअयोध्या आ गये। यहाँ आकर देखा कि महात्मा श्रीराम अपने तेजसे सुदीप्त अग्निके समान सुप्रकाशित हो रहे हैं। उनके शरीरपर महीन रेशमी वस्त्र सुशोभित हो रहा है। वे अविनाशी महर्षियोंके साथ विराजमान हैं। श्रीशत्रुघ्न श्रीरामजीके सन्निकट जाकर प्रणाम करके साहस करके बोले—हे राघवनन्दन! मैं दोनों पुत्रोंको राज्यपर नियुक्त करके आपकी महायात्रामें आपके साथ चलनेके लिये दृढ़प्रतिज्ञ होकर आया हूँ। हे स्वामी! आप इसके विपरीत कुछ न कहियेगा; इससे बढ़कर मेरे लिये दूसरा कोई दण्ड न होगा। हे प्रभो! मैं नहीं चाहता कि मेरे-ऐसे सेवकके द्वारा आपकी आज्ञाकी अवज्ञा हो। हे मेरे सर्वस्व! मैं आपकी आज्ञा पालन करनेके लिये अनेक वर्षपर्यन्त आपकी वियोगाग्निमें जलता रहा; परंतु अब मैं श्रीचरणोंका साथ नहीं छोड़ूँगा—

कृत्वाभिषेकं सुतयोर्द्वयो राघवनन्दन।
तवानुगमने राजन् विद्धि मां कृतनिश्चयम्॥
न चान्यदद्य वक्तव्यमतो वीर न शासनम्।
विहन्यमानमिच्छामि मद्विधेन विशेषतः॥

(७। १०८। १४-१५)

श्रीशत्रुघ्नका यह दृढ़ विचार जानकर श्रीरामजीने **'बाढम्'** कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

इसी समय सुग्रीवको आगे करके अनेक वानर-रीछोंका समुदाय आ गया। सबने श्रीरामजीके चरणोंमें भावपूर्वक प्रणाम किया और कहने लगे—हे राजन्! हमने सब समाचार जान लिया है। हे हमारे परमाराध्य! हम सब भी आपके साथ चलनेके लिये कृतनिश्चय होकर आये हैं। हे पुरुषोत्तम श्रीराम! यदि आप हमें साथ न ले जायँगे तो हम समझेंगे कि आपने यमदण्डसे हमें मारा है—

ते राममभिवाद्योचुः सर्वे वानरराक्षसाः।
तवानुगमने राजन् सम्प्राप्ताः स्म समागताः॥
यदि राम विनास्माभिर्गच्छेस्त्वं पुरुषोत्तम।
यमदण्डमिवोद्यम्य त्वया स्म विनिपातिताः॥

(७। १०८। २०-२१)

रुँधे हुए कण्ठसे श्रीसुग्रीवने कहा—हे राजराजेन्द्र! मैं वीर अङ्गदको राज्य देकर आया हूँ। हे प्राणप्रिय सखे! आपके साथ महायात्रामें अनुगमन करनेका मेरा दृढ़ निश्चय है—

अभिषिच्याङ्गदं वीरमागतोऽस्मि नरेश्वर।
तवानुगमने राजन् विद्धि मां कृतनिश्चयम्॥

(७। १०८। २३)

श्रीरामचन्द्रने कहा—हे सखे सुग्रीव! मैं तुम्हारे बिना देवलोकमें और परमधाममें भी नहीं जा सकता—

सखे शृणुष्व सुग्रीव न त्वयाहं विनाकृतः।
गच्छेयं देवलोकं वा परमं वा पदं महत्॥

(७। १०८। २५)

श्रीविभीषणसे ठाकुरजीने एक कल्पपर्यन्त लङ्कामें राज्य करनेके लिये कहा। इसके बाद श्रीरामजीने कृपा करके श्रीविभीषणको भगवान् विष्णुका शेषशायी विग्रह प्रदान किया और कहा कि ये इक्ष्वाकुकुलके इष्ट देवता हैं। बड़े-बड़े इन्द्रादि देवता भी इनकी आराधना करते हैं। हे सखे! तुम भी सदा इनकी आराधना करते रहना।

आराधय जगन्नाथमिक्ष्वाकुकुलदैवतम्॥

(७। १०८। ३०)

श्रीविभीषणने उत्साहपूर्वक स्वीकार कर लिया।

सभी भक्तोंको श्रीरामजीके साथमें जाता देखकर किं बहुना श्रीरामवियोगकी कल्पनासे व्यथित हो करके श्रीहनुमान्जीका निश्चय डगमगा रहा था। उसी समय श्रीरामजीने कहा—हे हनुमन्! तुमने सुदीर्घ कालपर्यन्त जीवन धारण करनेका निश्चय किया है, अपनी उस प्रतिज्ञाको व्यर्थ न करो। हे वानरेन्द्र! जबतक संसारमें मेरी कथाका प्रचार रहे, तबतक तुम भी मेरी आज्ञाका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक विचरते रहो। श्रीरामजीकी वाणी सुनकर श्रीहनुमान्जी प्रसन्न होकर बोले—हे मेरे प्राणाराध्य! जबतक संसारमें आपकी पावनी रामायणीकथाका प्रचार रहेगा तबतक आपका आदेश पालन करता हुआ मैं इस भूतलपर ही रहूँगा—

जीविते कृतबुद्धिस्त्वं मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः।
मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर॥
तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन्।
एवमुक्तस्तु हनुमान् राघवेण महात्मना॥
वाक्यं विज्ञापयामास परं हर्षमवाप च।
यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी॥
तावत्स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्।

(७। १०८। ३३—३६)

इसके बाद जाम्बवान्, मैन्द और द्विविदको भी भूतलपर रहनेका आदेश देकर शेष सबको साथ चलनेका आदेश दे दिया।

श्रीवसिष्ठमुनिने प्रस्थान-कालके लिये उचित समस्त धार्मिक क्रियाओंका सविधि अनुष्ठान किया। श्रीराम सूक्ष्म वस्त्र धारण करके दोनों

हाथोंमें कुश लेकर परब्रह्मके प्रतिपादक वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए श्रीसरयूके तटपर चले—

ततः सूक्ष्माम्बरधरो ब्रह्ममावर्तयन् परम्।
कुशान् गृहीत्वा पाणिभ्यां सरयूं प्रययावथ॥

(७। १०९। ४)

श्रीरामजीके धनुष, बाण, अस्त्र, शस्त्र सभी पुरुषशरीर धारण करके चले। चारों वेद ब्राह्मणका रूप धारण करके चल रहे थे। गायत्रीदेवी, ओङ्कार और वषट्कार—सभी भक्तिभावसे श्रीरामजीका अनुसरण कर रहे थे—

वेदा ब्राह्मणरूपेण गायत्री सर्वरक्षिणी।
ओङ्कारोऽथ वषट्कारः सर्वे राममनुव्रताः॥

(७। १०९। ८)

महात्मा, ऋषि, समस्त ब्राह्मण, अन्तःपुरकी स्त्रियाँ भी सेवकोंके साथ निकलकर श्रीरामके पीछे-पीछे जा रही थीं। श्रीभरत और शत्रुघ्न अपने अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ अपने परमाश्रय भगवान् श्रीरामके पीछे-पीछे गये।

सान्तःपुरश्च भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ।
रामं गतिमुपागम्य साग्निहोत्रमनुव्रताः॥

(७। १०९। ११)

समस्त मन्त्री और भृत्यवर्ग भी अपने-अपने पुत्रों, पशुओं, बन्धुओं तथा अनुचरोंसहित हर्षपूर्वक श्रीरामके पीछे-पीछे चले। श्रीरामजीके गुणोंपर मुग्ध भगवान्‌की प्रजा सपरिकर श्रीरामजीके पीछे-पीछे प्रसन्नतापूर्वक चली। हृष्ट-पुष्ट वानरगण भी स्नान करके बड़ी प्रसन्नताके साथ किलकिला शब्द करते हुए श्रीरामजीके साथ जा रहे थे। यह सारा समुदाय ही श्रीरामभक्त था—

स्नाताः प्रमुदिताः सर्वे हृष्टपुष्टाश्च वानराः।
दृढं किलकिलाशब्दैः सर्वं राममनुव्रतम्॥

(७। १०९। १६)

जो लोग श्रीरामजीकी यात्रा देखने आये थे वे भी इस समारोहको देखते ही परमधाम जानेको तैयार हो गये—

द्रष्टकामोऽथ निर्यान्तं रामं जानपदो जनः।
यः प्राप्तः सोऽपि दृष्ट्वैव स्वर्गायानुगतो जनः॥

(७। १०९। १८)

श्रीअयोध्याजीसे छः कोस दूर जाकर श्रीरामचन्द्रजीने पश्चिमाभिमुख होकर श्रीसरयूजीका दर्शन किया। सब लोग श्रीसरयूजीके तटपर उपस्थित हो गये।

उसी समय श्रीब्रह्माजी देवताओं और ऋषियोंसे घिरे हुए वहाँ आये। उनके साथ करोड़ों दिव्य विमान सुशोभित हो रहे थे।

अथ तस्मिन् मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामहः।
सर्वैः परिवृतो देवैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः॥
आययौ यत्र काकुत्स्थः स्वर्गाय समुपस्थितः।
विमानशतकोटीभिर्दिव्याभिरभिसंवृतः॥

(७। ११०। ३-४)

उस समय शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु बहने लगी। राशि-राशि पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी, सैकड़ों प्रकारके वाद्य सुवादित होने लगे। गन्धर्वों और अप्सराओंके बड़ी संख्यामें आ जानेसे वहाँका स्थान भर गया। श्रीरामजी सरयूजीके जलमें प्रवेश करनेके लिये आगे बढ़ने लगे।

लोकपितामह श्रीब्रह्माजी आकाशसे ही बोले—हे विष्णुस्वरूप श्रीरामचन्द्र! आइये, आपका मङ्गल हो! हमारा परम सौभाग्य है जो श्रीमान् अपने परमधामको पधार रहे हैं—

ततः पितामहो वाणीं त्वन्तरिक्षादभाषत।
आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव॥

(७। ११०। ८)

श्रीब्रह्माजी कहते हैं कि हे महाबाहो! आप अपने देवतुल्य तेजस्वी भ्राताओंके साथ अपने स्वरूपभूत लोकमें प्रवेश करें। हे प्रभो! आपके अनन्त स्वरूप हैं, आप अपने जिस

स्वरूपमें प्रवेश करना चाहें उसी स्वरूपमें प्रवेश करें—

भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्व स्विकां तनुम्।
यामिच्छसि महाबाहो तां तनुं प्रविश स्विकाम्॥

(७।११०।९)

महातेजस्वी रघुनन्दन श्रीराम! आपकी इच्छा हो तो वैकुण्ठमें प्रवेश करें किं वा अपने सनातन साकेतलोकमें निवास करें। आप ही सम्पूर्ण लोकोंके आश्रय हैं। आपकी पुरातन पत्नी योगमाया—ह्लादिनी शक्तिस्वरूपा जो विशाल लोचना श्रीसीताजी हैं, उनके अतिरिक्त अन्य कोई भी आपके तात्त्विक स्वरूपको नहीं जानते हैं; क्योंकि आप अचिन्त्य, अविनाशी तथा जरा आदि अवस्थाओंसे रहित—विकारोंसे रहित परब्रह्म हैं, अतः हे महातेजस्वी राघवेन्द्र! आप जिसमें चाहें अपने उसी स्वरूपमें प्रवेश करें—

वैष्णवीं तां महातेजो यद्वाऽऽकाशं सनातनम्।
त्वं हि लोकगतिर्देव न त्वां केचित् प्रजानते॥
ऋते मायां विशालाक्षीं तव पूर्वपरिग्रहाम्।
त्वामचिन्त्यं महद् भूतमक्षयं चाजरं तथा।
यामिच्छसि महातेजस्तां तनुं प्रविश स्वयम्॥

(७।११०।१०-११)

पितामह ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर परम बुद्धिमान् श्रीरामजीने कुछ निश्चय करके भाइयोंके साथ शरीरसहित अपने वैष्णवतेजमें प्रवेश किया—

पितामहवचः श्रुत्वा विनिश्चित्य महामतिः।
विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः॥

(७।११०।१२)

तदनन्तर इन्द्र, अग्नि आदि देवता, साध्यगण, मरुद्गण, दिव्य ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस सभी श्रीरामजीकी स्तुति करने लगे।

तदनन्तर महातेजस्वी श्रीरामजीने ब्रह्मासे कहा—हे सुव्रत! इस समस्त जनसमुदायको भी आप उत्तम लोक प्रदान करें। ये सब लोग अपनी भक्तिके कारण मेरा अनुगमन किये हैं। ये सब-के-सब मेरे यशस्वी भक्त हैं। इन्होंने मेरे लिये अपने लौकिक सुखोंका परित्याग कर दिया है। एतावता ये लोग मेरी करुणामयी कृपाके पात्र हैं—

अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाच ह।
एषां लोकं जनौघानां दातुमर्हसि सुव्रत॥
इमे हि सर्वे स्नेहान्मामनुयाता यशस्विनः।
भक्ता हि भजितव्याश्च त्यक्तात्मानश्च मत्कृते॥

(७।११०।१६-१७)

श्रीरामजीका यह वचन सुनकर श्रीब्रह्माने कहा—हे प्रभो! यहाँ आये हुए सब लोग 'सन्तानक' नामक लोकमें जायेंगे। यह लोक ब्रह्मलोकके सन्निकट है और साकेतधामका ही अङ्ग है। उसी लोकमें ये आपके भक्तजन निवास करेंगे।

जिन वानर-रीक्षोंकी देवताओंसे उत्पत्ति हुई थी वे अपनी-अपनी योनियोंमें मिल गये—जिन-जिन देवताओंसे प्रकट हुए थे उन्हींमें प्रविष्ट हो गये। श्रीसुग्रीवने सूर्यमण्डलमें प्रवेश किया। इसी प्रकार अन्य वानर भी सब देवताओंके देखते-देखते अपने-अपने पिताके स्वरूपको प्राप्त हो गये।

जब श्रीब्रह्माजीने 'सन्तानक' लोककी प्राप्तिकी घोषणा की तब श्रीसरयूजीके गोप्रतार घाटपर आये हुए सब लोगोंने आनन्दाश्रुका वर्षण करते हुए श्रीसरयूजीके जलमें गोते लगाये। जिसने-जिसने जलमें डुबकी लगायी वही-वही प्रसन्नतापूर्वक प्राणों और मनुष्य-शरीरको त्यागकर विमानपर जा बैठा। पशु, पक्षी, स्थावर और जङ्गम सभी तरहके प्राणी श्रीसरयूजलमें गोता लगाकर विमानपर बैठकर 'सन्तानक' लोक चले गये—भगवान्के परमधाम चले गये।

इस प्रकार यहाँ आये हुए समस्त प्राणियोंको सन्तानक लोकोंमें स्थान देकर लोकगुरु श्रीब्रह्माजी हर्ष और आनन्दसे भरे हुए देवताओंके साथ अपने महान् धाममें चले गये—

ततः समागतान् सर्वान् स्थाप्य लोकगुरुर्दिवि।
हृष्टैः प्रमुदितैर्देवैर्जगाम त्रिदिवं महत्॥

(७। ११०। २८)

श्रीकुश और लव कहते हैं—आदिकवि महर्षि श्रीवाल्मीकिजीके द्वारा निर्मित यह रामायण नामक श्रेष्ठ आख्यान उत्तरकाण्डसहित इतना ही है। श्रीब्रह्माजीने भी इसका आदर किया है—

एतावदेतदाख्यानं सोत्तरं ब्रह्मपूजितम्।
रामायणमिति ख्यातं मुख्यं वाल्मीकिना कृतम्॥

(७। १११। १)

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके उदात्त चरित्रसे युक्त होनेके कारण देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि सदा प्रसन्नतापूर्वक देवलोकमें इस श्रीरामायण महाकाव्यका श्रवण करते हैं—

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
नित्यं शृण्वन्ति संहृष्टाः काव्यं रामायणं दिवि॥

(७। १११। ३)

यह श्रीरामायण महाकाव्य आयु और सौभाग्यका संवर्धन करता है और समस्त पापोंका विनाशक है। यह श्रीरामायण महाकाव्य साक्षात् वेदके समान महिमामय है। विद्वान् पुरुषोंको श्राद्धके समय इसे पढ़कर सुनाना चाहिये—

इदमाख्यानमायुष्यं सौभाग्यं पापनाशनम्।
रामायणं वेदसमं श्राद्धेषु श्रावयेद् बुधः॥

(७। १११। ४)

इस रामायण महाकाव्यका प्रतिदिन पाठ करना चाहिये। श्रीरामायणजीके पाठमें और कथा-श्रवणमें श्रद्धा परम आवश्यक है। जो सश्रद्ध होकर श्रवण एवं पाठ करता है वह सर्वपाप-विनिर्मुक्त होकर श्रीविष्णुलोककी प्राप्ति कर लेता है।

सम्यक्श्रद्धासमायुक्तः शृणुते राघवीं कथाम्॥
सर्वपापात् प्रमुच्येत विष्णुलोकं स गच्छति।
आदिकाव्यमिदं त्वार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्॥

(७। १११। १५-१६)

यह श्रीरामायण महाकाव्य साक्षात् गायत्री-मन्त्रका प्रतिनिधिभूत है—

गायत्र्याश्च स्वरूपं तद् रामायणमनुत्तमम्॥

(७। १११। १८)

जो व्यक्ति प्रतिदिन भक्तिपूर्वक श्रीराघवेन्द्र रामके इस चरित्रका नित्य पठन या श्रवण करता है वह निष्पाप होकर दीर्घायुकी उपलब्धि करता है—

यः पठेच्छृणुयान्नित्यं चरितं राघवस्य ह।
भक्त्या निष्कल्मषो भूत्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥

(७। १११। १९)

यदि कोई भाग्यवान् व्यक्ति श्रीमद्रामायण महाकाव्यका सम्पूर्ण पाठ कर लेता है तो प्राणान्त होनेपर वह निश्चितरूपसे विष्णुलोक जाता है। इतना ही नहीं, उसके पिता, पितामह, प्रपितामह, वृद्धप्रपितामह तथा उनके भी पिता विष्णुलोककी प्राप्ति करते हैं—

यस्त्विदं रघुनाथस्य चरितं सकलं पठेत्।
सोऽसुक्षये विष्णुलोकं गच्छत्येव न संशयः॥
पिता पितामहस्तस्य तथैव प्रपितामहः।
तत्पिता तत्पिता चैव विष्णुं यान्ति न संशयः॥

(७। १११। २१-२२)

इस प्रकार इस पुरातन आख्यानका आप लोग श्रद्धा-विश्वाससहित पठन, श्रवण करें। आपका भद्र हो! मङ्गल हो! और श्रीविष्णुभगवान्‌के बलकी जय हो! जय हो!! जय हो!!!

श्रीराम-स्तुति

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणं।
नवकंज-लोचन, कंज-मुख, कर-कंज पद कंजारुणं॥
कंदर्प अगणित अमित छबि, नवनील-नीरद सुंदरं।
पट पीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुतावरं॥
भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्यवंश-निकंदनं।
रघुनंद आनँदकंद कोशलचंद दशरथ-नंदनं॥
सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदारु अंग बिभूषणं।
आजानुभुज शर-चाप-धर, संग्राम-जित-खरदूषणं॥
इति वदति तुलसीदास शंकर-शेष-मुनि-मन-रंजनं।
मम हृदय-कंज निवास कुरु, कामादि खलदल-गंजनं॥
मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर साँवरो।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो॥
एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियँ हरषीं अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली॥

सो०—जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे॥

॥ सियावर रामचन्द्रकी जय॥